दर्शन के सौ वर्ष

लेखक
जॉन पैसमोर

अनुवादक
चाँदमल शर्मा
कलानाथ शास्त्री

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार की
मानक ग्रंथ योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

(c) भारत सरकार

प्रथम संस्करण २०००
वर्ष १६६६

प्रस्तुत पुस्तक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार के शतप्रतिशत अनुदान से
प्रकाशित हुई है ।

मूल्य पन्द्रह रुपये ।

प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर ।

मुद्रक भारत प्रिंटर्स
जयपुर ।

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। भारत सरकार ने यह काम वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नए साहित्य में *भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के* आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

दर्शन के सौ वर्ष नामक पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक श्री जान पैसमोर हैं और अनुवादक श्री चांदमल शर्मा एवं श्री कलानाथ शास्त्री हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

आमुख

हिन्दी प्रकाशन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर अपने तृतीय प्रकाशन के रूप मे जान पसमोर कृत हडरेड ईयस आव फिलासफी' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने मे प्रस नता और गौरव का अनुभव करता है। यद्यपि लेखक ने ग्रथ की रचना, जैसा उसने स्पष्ट रूप से अपनी प्रस्तावना में स्वीकृत किया है, ब्रिनानी दृष्टिकोण से की है तथापि विभिन्न विचारधाराओ को समाविष्ट करने की सफल चेष्टा भी इसमें दिखाई देती है। मुझे विश्वास है कि देश के विश्वविद्यालयों, शिक्षा मत्रालय, भारत सरकार, तथा वैज्ञानिक एव तकनीकी शब्दावली आयोग के सयुक्त प्रयत्नो स प्रस्तुत यह अनुवाद योजना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त पाठ्य सामग्री उपलब्ध कर सकेगी।

राजस्थान विश्वविद्यालय भारत सरकार के आयोग एव शिक्षा मत्रालय के प्रति आभारी है कि उन्होने ऐस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी सस्करण प्रकाशित करने का उसे अवसर दिया। मैं डा० शान्तिप्रसाद वर्मा, नियोजक हिन्दी प्रकाशन विभाग, का आभारी हू, जिन्होंने अत्याधिक काय व्यस्त रहते हुये भी पुस्तक को प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करने की व्यवस्था की।

जयपुर
२२ दिसम्बर, १९६६

मुकुट विहारी माथुर,
उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

इस पुस्तक का शीर्षक 'दर्शन के सौ वर्ष' पढ़कर पाठक को इसमें जितना पाने की प्रत्याशा हो सकती है उतना उसे मिलेगा नहीं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस पुस्तक को केवल ज्ञान मीमांसा तर्कशास्त्र तथा तत्वमीमांसा तक ही सीमित रखा गया है, जितना कि एक आस्ट्रेलियायी के लिये ऐसा दृष्टिकोण लेना सम्भव हो सकता है। यह बात अवश्य कह देना चाहता हूँ कि ऐसा करने में अन्य दर्शन शाखाओं, जैसे सौन्दर्य शास्त्र आचारशास्त्र, धर्मदर्शन, समाजदर्शन, विधिदर्शन, का किसी प्रकार का अपमान करना मेरा उद्देश्य कदापि नहीं था। इस मर्यादा को स्वीकार करने का निर्णायक कारण तो संक्षिप्त होने की आवश्यकता था, इस पुस्तक का जो कलेवर इस समय पाठक के सामने है वह वस्तुतः एक बहुत विस्तृत मूल कलेवर का संक्षिप्तीकृत स्वरूप है। मैंने वही विषय चुने हैं जो समन्वित किए जाकर एक विवेक-सम्मत व्यवस्थित आकार ले सकते थे। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि सामान्य पाठक को यह पुस्तक कुछ संकीर्ण और विशेषीकृत लगेगी क्योंकि मैंने इसमें दर्शन की उन शाखाओं के बारे में बहुत कम लिखा है जिनमें एक ऐसा पाठक भी रुचि ले सकता हो जो दार्शनिक न हो।

दूसरे कारण के सम्बन्ध में, इस पुस्तक में विषय का प्रतिपादन करते हुए मैंने अपना क्षेत्र जान बूझकर ब्रितानी व सीमित रखा है। हां, कभी-कभी इस क्षेत्र से बाहर भी चला गया हूँ—जैसे यूरोपीय दर्शन को छू आया हूँ या अमरीकी दर्शन पर कुछ ठहर गया हूं। पर हर हालत में अपने ही क्षेत्र का रहा हूं विदेशी नहीं बना। अमरीकी और यूरोपीय दार्शनिकों के बारे में बहुत कम ही कह पाया हूँ। विषय का प्रतिपादन जिस रूप में मैंने किया है उस रूप में एक अमरीकी या फ्रांसीसी लेखक नहीं करता। मेरा मापदण्ड यही रहा है कि अमुक लेखक के विचारों ने इंगलैण्ड के दार्शनिक विचार क्षेत्र में किस सीमा तक प्रवेश किया है, और दर्शन शास्त्र का पाठक माइंड और द प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटिलियन सोसाइटी जैसी पत्र पत्रिकाओं में उसका नाम पा सकता है या नहीं। इसी आधार पर मैंने लेखकों को प्रतिपादनार्थ चुना है।

एक इसी प्रकार का मापदण्ड मुझे यह बतलाने में सहायक रहा है कि मैं किन लेखकों का विस्तार से वर्णन करूं और किनका केवल संक्षेप में नाम धाम ही गिना दूं। मैंने यह देखा है कि किन लेखकों ने अपने समय में होने वाले दार्शनिक विचार मन्थनों और वाद विवादों में प्रमुख भाग लिया है। इस आधार पर ही मैंने उन्हें

अधिक या कम स्थान दिया है। मैंने अपने दृष्टिकोण से उनके व्यक्तिगत गुणों को परखने की चेष्टा नहीं की। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ नहीं कह सकता।

इसी प्रकार मेरा यह दृष्टिकोण भी रहा है कि लेखकों के उन्हीं पहलुओं को चुना जाय जिनमें दर्शन जगत ने अधिक रुचि दिखाई बजाय इसके कि उनकी सारी कृतियों की सूची दे दी जाए। मैंने एक सटिप्पण सूची बनाने का प्रयत्न नहीं किया है बल्कि दार्शनिक विचार मन्थन का एक इतिहास लिखना चाहा है। मेरे मापदण्ड त्रिकालातीत हैं यह मैं नहीं कहता। यों ही देखिये न यदि मैं सन् १६०० ई० में यह पुस्तक लिखता तो संभवतः बर्कले और ह्यूम पर एकाध पंक्ति ही लिखकर रह जाता क्योंकि उस समय मुझे यह आवश्यक लगता कि डूगाल्ड स्टीवर्ट पर अधिक ध्यान केन्द्रित रखा जाना चाहिये। इसी प्रकार 1950 ई० में लिखते समय मेरा ध्यान सर विलियम हैमिल्टन पर केन्द्रित रहने की ओर होता।

पुस्तक में काफी त्रुटियाँ रही हैं। कुछ चीजें छूट गई हैं कहीं परख की गलती है तो कहीं सीधे-साधे भूल-चूक हो गई है। भूलें हुई हैं-यह मुझे लगता है-भूलें क्या हैं, यह नहीं मालूम। मुझे प्रसन्नता होगी यदि मुझे वे भूलें बताई जाएँ, ताकि आगे कभी उन्हें सुधारा जा सके।

न्यूजीलैण्ड इंग्लण्ड और आस्ट्रेलिया तीनों देशों के दार्शनिकों को मेरे इस पुस्तक लेखन के प्रयत्न के कारण कष्ट उठाना पड़ा है। बहुतों ने मुझे किसी न किसी रूप में सहायता दी है पर किसी ने पूरी पुस्तक नहीं देखी है इसलिये यही अच्छा है कि उनके नाम न लिये जाएँ। मुझे केवल इन व्यक्तियों को धन्यवाद देकर ही सन्तोष कर लेना पड़ेगा-सर्व श्री आर० जी० ड्यूरट आर० ब्रैडले श्रीमती एफ० डड और सबसे अधिक मेरी पत्नी को। इन्होंने पुस्तक लेखन के कठिन काम में सहायता की है। पुस्तक सूची में सबसे अधिक श्रम सुश्री डगमर कारबोच ने किया है। अन्त में मुझे न्यूयार्क के कार्नेगी कारपोरेशन को भी धन्यवाद देना है जिन्होंने पुस्तक लेखन के मध्यान्तर के रूप में आक्सफर्ड में मेरे एक वर्षीय निवास की व्यवस्था करवाई जो पुस्तक को पूरा करने में सहायक रहा। इस एक वर्षीय निवास को सानन्द स्मरणीय बनाने के लिये कार्पस क्रिस्टी कॉलेज के प्रेजीडेंट तथा फलोज को भी धन्यवाद देना चाहूंगा।

ड्यूनेडिन-आक्सफर्ड-कनबरा

जान पसमोर

संक्षिप्त संकेतों का परिचय

अव० अर्व०	अर्वेतनिस
ए जे पी	ऑस्ट्रेलियन जनल ऑव फिलासोफी (जो 1947 तक ऑस्ट्रेलियन जनल ऑव फिलासोफी के नाम से निकलती थी)
एक्चु० अक्चु अलिटेस	एक्चुअलिटेस सायटिफीक्स एत इंडस्ट्रिएलिस
आर० आई० पी०	रिव्यू इंटरनेशनाल द फिलोसफाई
आर० एम०	रिव्यू ऑव मेटाफिजिक्स
आर० एम० एम०	रिव्यू द मेटाफिजिक एत द मोराल
जे० एच० आई०	जनल आव द हिस्ट्री ऑव आइडियाज
जे० पी०	जनल आफ फिलासोफी
जे० एस० एल०	जनल ऑव सिम्बोलिक लाजिक
डी० एन० बी०	डिक्शनरी ऑव नेशनल बॉयोग्राफी
पी० ए० एस० प्रोसी० आर० सोसा०	प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटेलियन सोसायटी
पी० ए० एस० एस०	प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटेलियन सोसायटी सप्लीमेंटरी वाल्यूम
पी० बी० ए० प्रोसी० ब्रि० अ०	प्रासीडिंग्स आव द ब्रिटिश अकडमी
पी० पी० आर०	फिलासोफी एण्ड फिनामिना लॉजिकल रिसर्च
पी० एस० सी०	फिलासोफी आव साइंस
पी० क्यू० फि० क्वा०	द फिलासाफिकल क्वाटरली
पी० आर० फि० रि०	द फिलासोफिकल रिव्यू

पी० एस० फि० स्ट०	फिलासोफिकल स्टडीज
फिलो० फिल०	फिलासोफी
बी० जे० पी० एस०	ब्रिटिश जनल फार द फिलासोफी आव साइंस
बी० पी० एम०	ब्रिटिश फिलासफी एट मिड्सेंचुरी (1957) संपादक सी० ए० मेस ।
यू० एस०	इन्टरनेशनल एनसायक्लापेडिया आव यूनिफाइड साइंस
सी० ए० पी० I तथा II	कन्टेम्परेरी अमरीकन फिलासफी जिल्द I तथा II (1930) संपादक जी० पी० एडम्स तथा डबलू० पी० मांटेग्यू
सी० बी० पी० I तथा II	कन्टेम्परेरी ब्रिटिश फिलासफी I तथा II सीरीज (1924–5) संपादक जे० एच० म्योरहैड,
सी० बी० पी० III	कन्टेम्परेरी ब्रिटिश फिलासोफीस III सीरीज संपादक डी० एच० लुईज
एल० एल० I तथा II	लाजिक एण्ड लग्वेज जिल्द I (1951) तथा II (1953) संपादक ए० जी० एन० फ्लू ।

विषय सूची

अध्याय		पृ० संख्या
1	मिल तथा ब्रितानी अनुभववाद	1
2	भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एव अनीश्वरवाद	29
3	परमात्म की ओर	46
4	व्यक्तित्व एव परमात्म	77
5	अर्थक्रियावाद एव समधर्मी यूरोपीय दर्शन	107
6	तर्कशास्त्र के क्षेत्र म नये विकास	145
7	आकारी तर्कशास्त्र क कुछ समालोचक	190
8	वस्तुपरकता की ओर	212
9	मूर एव रसल	249
10	कुक विलसन एव आक्सफोर्ड दर्शन	299
11	नव यथार्थवादी विचारक	321
12	विवेचनात्मक यथार्थवाद एव अमरीकी प्राकृतवाद	348
13	हठीले तत्ववादी	371
14	प्रकृति वैज्ञानिक दार्शनिक बने	400
15	कुछ कैम्ब्रिज दार्शनिक तथा विटजनस्टीन कृत ट्रैक्टटस	428
16	तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद	456
17	तर्कशास्त्र, अर्थविज्ञान एव रीतिविधान	486
18	विटजनस्टीन एव साधारण भाषादर्शन	526
19	अस्तित्ववाद पर एक पृष्ठ लेख	568

अध्याय 1

मिल तथा ब्रितानी अनुभववाद

दार्शनिक चेतना शताब्दियों तक रूढ बने रहने की स्थिति को सहष स्वीकार नहीं करती। कलाकारों की भाँति दार्शनिक भी निरंतर प्राचीन युग-प्रचेताओं से प्रेरणा लेते रहे हैं और उनके अक्षुण्ण स्रोतों से नवोत्साह प्राप्त करते रहते रहे हैं। प्रत्येक युग के पुनर्निर्माण का अपना एक विशिष्ट तरीका होता है और निश्चय ही उसमें किसी पूर्ववर्ती दार्शनिक या दार्शनिकों का स्पष्ट प्रभाव विद्यमान होता है। दांते का अरस्तू के विषय में भी यह मत था कि वह सभी तत्कालीन जिज्ञासुओं का प्रेरणा-स्रोत था। विगत शताब्दी में बर्कले तथा ह्यूम ब्रितानी दर्शनक्षेत्र की जीवन्त शक्तियां रही और वहाँ एक युग के दार्शनिक कुहरे के पश्चात् प्लेटो का पुनः प्रतिपादन हुआ, उसके प्रति पुनः रुचि जाग्रत होने लगी। दर्शन के क्षेत्र में यह नवजागरण लाने के लिए दार्शनिक परम्परा के नाते विद्वानों की एक दीर्घ शृंखला का हमें आभार मानना होगा जिनके अध्ययन और अध्यवसाय से हमें चिंतन के क्षेत्र में नई धाराओं के दर्शन हुए। प्लेटो, बर्कले, तथा ह्यूम[1] हमारे समय के निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण दार्शनिकों में से हैं। फिर भी, उनकी शिक्षाओं पर शोध करने का यह उपयुक्त अवसर नहीं है।

सौभाग्य से जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक **सिस्टम आफ लाजिक** (1843) को चिंतन के क्षेत्र में अलगाव की एक स्वाभाविक सीमा-रेखा माना जा सकता है। एक ओर जहाँ यह ग्रंथ प्रतिक्रिया अथवा प्रशंसा दोनों ही दृष्टियों से सम-सामयिक दर्शन में प्रकटित अत्यन्त महत्वपूर्ण विचारधाराओं के प्रवर्तन में सहायक रहा है, तो दूसरी ओर इसे अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध की विचारधारा का चरमोत्कर्ष

1 टी० एच० ग्रीन तथा टी० एच० ग्राज द्वारा 1847 ई० में किए गए ह्यूम की कृतियों के सम्पादन के पश्चात ही विचारकों की रुचि ह्यूम में होनी प्रारम्भ हुई थी। बर्कले को तो लोग उनके दृष्टि सिद्धान्त, 'थ्योरी ऑफ विजन' के कारण अनुभववादी मनोवैज्ञानिक (एम्पिरिकल साइकोलोजिस्ट) के रूप में जानते ही थे। दार्शनिक के रूप में उनकी भी प्रतिष्ठा उस समय तक न हो सकी थी जब तक ए० सी० फ्रेजर द्वारा 1871 ई में उनकी रचनाओं का एक पूरा संस्करण प्रकाशित न कर दिया गया। डबलू० ल्यूटोस्लाव्स्की द्वारा अपनी पुस्तक **ओरीजिन एण्ड ग्रोथ आव प्लेटोज लोजिक** (1279) में एल० कैम्पबल के अनुसरण में प्लेटो की वार्ताओं को सफलतापूर्वक क्रमबद्ध कर लेने से उनके दार्शनिक महत्त्व की पुनः स्थापना हो जाती है।

भी माना जा सकता है, इस अपवाद के साथ कि मिल अपनी शती के महान विचारक ह्यूम की रचनाओं से अनभिज्ञ ही रहे।[1] मिल की शिक्षा का तो मूल उद्देश्य ही अपने को अठारहवीं शती का दार्शनिक बनाना का था इसलिए मिल के जीवन और काय सभी की दिशा अपने समय की दार्शनिक विचारधाराओं की कमियों की आलोचना करने की ओर रही।

मिल के शिक्षक उनके पिता जेम्स मिल थे जो स्वयं एक प्रख्यात दार्शनिक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री थे। उनमें भी अन्य लोगों से कुछ सीखने की अद्गुण क्षमता थी। डेविड हार्टले तथा जर्मी बेंथम उनके दो प्रमुख प्रेरणा-स्रोत थे। हार्टले ने अपनी पुस्तक **आब्जर्वेशन्स ऑन मैन** (1749) में एक नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुभव-साहचर्यवाद (एसोसिएशनिज्म) के नाम से जाना जाता है तथा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य का मन संवेदना के क्षेत्र में प्रस्तुत हुई प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक नियमों द्वारा संचालित है। आरम्भ में इस सिद्धान्त ने कोई हलचल उत्पन्न नहीं की और उसे बहुत न्यून व्यक्तियों द्वारा जीवित रखा गया—लेकिन शीघ्र ही उसे जेम्स मिल जैसे समर्थक मिले जिन्होंने **द अनालिसिस आव द फिनोमेना आव दि ह्यूमन माइण्ड** (1829) नामक पुस्तक लिख कर इस सिद्धान्त का विकास और प्रवर्तन भी किया। बाद में जे० एस० मिल द्वारा 1869 में इस सिद्धान्त का सम्पादन और विश्लेषण भी किया गया[2]।

---

1 द्रष्टव्य जोन स्टुअर्ट मिल ए क्रिटिसिज्म विथ पर्सनल रिमिनिसेन्स (1882) एक परम्परागत अनुभववादी दृष्टि के लिए मिल की विचारधारा में हुए परिवर्तनों को आर० पी० एन्सूज द्वारा लिखित पुस्तक **द फिलोसोफी आव जे० एस० मिल** में भली भांति दिखाया गया है। डबलू० एम० जेवन्स की 1890 ई० में प्रकाशित पुस्तक **प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वर्क्स** भी देखिए। 1916 ई० में प्रकाशित जे० एफ० क्राफ्ड द्वारा लिखित पुस्तक **द रिलेशन आफ इनफरेन्स टु फैक्ट इन मिल्स लाजिक**, ओ० ए० कूबिज की **द डवलपमैण्ट आफ जान स्टूअर्ट मिल्स सिस्टम आव लाजिक** (1932)। वर्तमान अनुभववादी दृष्टि के लिए ब्रिटन की पुस्तक **जॉन स्टुअर्ट मिल** (1955) द्रष्टव्य। 1954 में प्रकाशित एम० एस० जे० पैके की पुस्तक **जोन स्टुअर्ट मिल** उनकी जीवनी के लिए 1949, में एच० जे० लास्की द्वारा प्रकाशित संस्करण में उनकी आत्मकथा मिल सकती है। ई० नेगल द्वारा लिखित पुस्तक **मिल्स फिलोसोफी आव साइंटफिक मैथड** (1950) में मिल की तर्क प्रणाली सार रूप में बतायी गयी है।

2 द्रष्टव्य एच० सी० वारेन की **ए हिस्ट्री आव द एसोसियेशन साइकोलोजी** (1921), जे० सी० फ्लूगल की **ए हड्रेड इयर्स आव साइकोलोजी** (1933)

पिता पुत्र दोनों को ही इस सिद्धान्त ने लगभग एक ही कारण से प्रभावित किया और वह यह था कि जिस वैज्ञानिक पद्धति से सावियत संघ के मनोवैज्ञानिक अनुकूलित प्रतिवर्त (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स) का सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे थे। उनमें इस सिद्धान्त का काफी मेल था, और इसने सावियत संघ के मनोवैज्ञानिकों का समर्थन भी प्राप्त करना शुरू कर दिया था। इनका विचार था कि इस सिद्धान्त ने आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में व्याप्त रूढ़ि और अंधविश्वास को झाड़ दिया है और इसके स्थान पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सतर्क आधार प्रस्तुत किया है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सिद्धान्त ने आत्मा सम्बन्धी, दर्शन के क्षेत्र में व्याप्त, मूल मतभेदों का निवारण करके अनन्त पूर्णता की शक्ति का परिचय दिया है। अपने पिता के सम्बन्ध में स्टुअर्ट मिल ने कहा कि उनका मूल उद्देश्य परिस्थितियों के सहारे विकसित मनुष्य के आधार पर मनुष्य की नैतिक और बौद्धिक दशा का शिक्षा के माध्यम से सुधार करना था। अपने प्रारंभिक भाषणों से उनकी अंतिम रचनाओं में भी उनकी इस धारणा में कहीं कमी नहीं दिखाई देती। अपने पिता से जो मौलिक मतभेद मिल के थे उनका उन्होंने तत्काल ही निराकरण दिया था। इस बात का प्रमाण उनकी 1869 में लिखी पुस्तक द सब्जेक्शन आव वीमेन में जितना स्पष्ट रूप में मिलता है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस पुस्तक में उन्होंने संकेत दिया है कि नर नारियों में न्यूनतम समय-शील मतभेदों के समय भी ऐसी स्थितियाँ काम करती रहती हैं जिन्हें किसी स्वाभाविक विकास के अभाव में भी परिस्थितियों से उपजी हुई माना जा सकता है।

इस प्रकार यदि मिल ने हार्टले से यह सीखा कि पूर्णता प्राप्त करना संभव है तो बेन्थम से भी यह कि कथाओं में बुने सत्य मौलिक और विशुद्ध सच्ची स्थितियों के लिए घातक होते हैं और उनके मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। किन्तु कुछ सीमाओं तक बेन्थम से मिल का मतभेद भी था—वैसा मतभेद उनमें हार्टले के प्रति दर्शन में नहीं आया। बेन्थम पर लिखे ऐसे आन बेन्थम (1838)

तथा ए० बेन का आन एसोसियेशन कन्ट्रोवर्सी (माइंड, 1887)। बेन की कृतियों द्वारा ब्रिटानी अनुभववादी परम्परा ने मनोविज्ञान में प्रवेश किया, यह बात अब कुछ स्पष्ट है। उनकी रचनाओं के लिये द्रष्टव्य फर्गुसन की उपयुक्त कृति। माइंड (1876) की स्थापना के लिये बेन ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी सब प्रथम संपादक क्रूम राबर्टसन अनुभववादी परम्परा के सुयोग्य समर्थक थे। उनका दृष्टिकोण प्रमुख रूप से मनोविज्ञान की ओर था। बस उन्होंने लिखा बहुत कम। उनके लेखों में से अधिकतर उनके दार्शनिक अवशेष (फिलोसाफिकल रिमेन्स, 1894) के रूप में पुनः प्रकाशित किये गये थे।

भी माना जा सकता है इस अपवाद के साथ कि मिल अपनी शती के महान विचारक ह्यूम की रचनाओं से अनभिज्ञ ही रहे।[1] मिल की शिक्षा का तो मूल उद्देश्य ही अपने को अठारहवीं शती का दार्शनिक बनाने का था इसलिए मिल के जीवन और काय सभी की दिशा अपने समय की दार्शनिक विचारधाराओं की कमियों की आलोचना करने की ओर रही।

मिल के शिक्षक उनके पिता जेम्स मिल थे जो स्वयं एक प्रख्यात दार्शनिक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री थे। उनमें भी अन्य लोगों से कुछ सीखने की अभूतपूर्व क्षमता थी। डेविड हार्टले तथा जर्मी बेन्थम उनके दो प्रमुख प्रेरणा-स्रोत थे। हार्टले ने अपनी पुस्तक **आब्जर्वेशन ऑन मैन** (1749) में एक नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुभव-साहचर्यवाद (एसोसिएशनिज्म) के नाम से जाना जाता है तथा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य का मन संवेदना के क्षेत्र में प्रस्तुत हुई प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक नियमों द्वारा संचालित है। आरम्भ में इस सिद्धान्त ने कोई हलचल उत्पन्न नहीं की और उसे बहुत न्यून व्यक्तियों द्वारा जीवित रखा गया—लेकिन शीघ्र ही उसे जेम्स मिल जैसे समर्थक मिले जिन्होंने **द अनालिसिस आव द फिनोमेना आव दि ह्यूमन माइण्ड** (1829) नामक पुस्तक लिख कर इस सिद्धान्त का विकास और प्रवर्तन भी किया। बाद में जे० एस० मिल द्वारा 1869 में इस सिद्धान्त का सम्पादन और विश्लेषण भी किया गया[2]।

---

1 द्रष्टव्य जोन स्टुअर्ट मिल ए क्रिटिसिज्म विथ पर्सनल रिफ्लेक्शन्स (1882) एक परम्परागत अनुभववादी दृष्टि के लिए मिल की विचारधारा में हुए परिवर्तनों को आर० पी० एन्सूज द्वारा लिखित पुस्तक **द फिलोसोफी आव जे० एस० मिल** में भली भाँति दिखाया गया है। डब्लू० एस० जेवन्स की 1890 ई० में प्रकाशित पुस्तक **प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वर्क्स** भी देखिए। 1916 ई० में प्रकाशित जे० एफ० फाक्ड द्वारा लिखित पुस्तक **द रिलेशन आफ इनफरेन्स टु फेक्ट इन मिल्स लाजिक**, आ० ए० कूबिज की **द डवलपमैण्ट आफ जान स्टुअर्ट मिल्स सिस्टम आव लाजिक** (1932)। वर्तमान अनुभववादी दृष्टि के लिए ब्रिटन की पुस्तक **जॉन स्टुअर्ट मिल** (1955) द्रष्टव्य। 1954 में प्रकाशित एम० एस० जे० पैक की पुस्तक **जोन स्टुअर्ट मिल** उनकी जीवनी के लिए 1949, में एच० जे० लास्की द्वारा प्रकाशित संस्करण में उनकी आत्मकथा मिल सकती है। ई० नगल द्वारा लिखित पुस्तक **मिल्स फिलोसोफी आव साइन्टफिक मैथड** (1950) में मिल की तर्क प्रणाली सार रूप में बतायी गयी है।

2 द्रष्टव्य एच० सी० वारन की **ए हिस्ट्री आव द एसोसियेशन साइकोलोजी** (1921) जे० सी० फ्लूगल की **ए हण्ड्रड इयर्स आव साइकोलोजी** (1933)

पिता पुत्र दोनों को ही इस सिद्धान्त ने लगभग एक ही कारण से प्रभावित किया और वह यह था कि जिस वैज्ञानिक पद्धति से सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिक अनुकूलित प्रतिवर्त (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स) का सफलता पूर्वक प्रयोग कर रहे थे। उससे इस सिद्धान्त का काफी मेल था, और इसने सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिकों का समर्थन भी प्राप्त करना शुरू कर दिया था। इनका विचार था कि इस सिद्धान्त ने आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में व्याप्त रूढ़ि और अन्धविश्वास को झाड़ दिया है और इसके स्थान पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सतर्क आधार प्रस्तुत किया है। इसमें भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सिद्धान्त ने आत्मा सम्बन्धी, दर्शन के क्षेत्र में व्याप्त, मूल मतभेदों का निवारण करके अनन्त पूर्णता की शक्ति का परिचय दिया है। अपने पिता के सम्बन्ध में स्टुअर्ट मिल ने कहा कि उनका मूल उद्देश्य परिस्थितियों के सहारे विकसित मनुष्य के आधार पर मनुष्य की नैतिक और बौद्धिक दशा का शिक्षा के माध्यम से सुधार करना था। अपने आरम्भिक भाषणों में उनकी अन्तिम रचनाओं में भी उनकी इस धारणा में कहीं कमी नहीं दिखाई देती। अपने पिता से जो मौलिक मतभेद मिल के थे उनको उन्होंने तत्काल ही निकाल दिया था। इस बात का प्रमाण उनकी 1869 में लिखी पुस्तक द सब्जेक्शन आव वीमेन में जितना स्पष्ट रूप से मिलता है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस पुस्तक में उन्होंने कथन दिया है कि नर मादाओं में न्यूनतम संघर्ष-शील मतभेदों के समय भी ऐसी स्थितियाँ काम करती रहती हैं जिन्हें किसी स्वाभाविक विकास के अभाव में भी परिस्थितियों से उपजी हुई माना जा सकता है।

इस प्रकार यदि मिल ने हार्टले से यह सीखा कि पूर्णता प्राप्त करना सम्भव है तो बेन्थम से भी यह कि कथाओं में बुने सत्य मौलिक और विशुद्ध सच्ची स्थितियों के लिए घातक होते हैं और उनके मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। किन्तु कुछ सीमाओं तक बेन्थम से मिल का मतभेद भी था—ऐसा मतभेद उनमें हार्टले के प्रति देखने में नहीं आया। बेन्थम पर लिखे ऐसे आन बेन्थम (1838)

तथा ए० बेन का आन एसोसियेशन कन्ट्रोवर्सीज (माइंड, 1887)। बेन की कृतियों द्वारा ब्रितानी अनुभववादी परम्परा ने मनोविज्ञान में प्रवेश किया, यह बात अब कुछ स्पष्ट है। उनकी रचनाओं के लिए द्रष्टव्य फ्लूगल की उपयुक्त कृति। माइंड (1876) की स्थापना के लिए बेन ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी सर्व प्रथम सम्पादक क्रूम राबर्टसन अनुभववादी परम्परा के सुयोग्य सातत्यसाधक थे। उनका दृष्टिकोण प्रमुख रूप से मनोविज्ञान की ओर था। वैसे उन्होंने लिखा बहुत कम। उनके लेखों में से अधिकतर उनके दार्शनिक अवशेष (फिलोसाफिकल रिमेन्स, 1894) के रूप में पुनः प्रकाशित किये गये थे।

म उन के प्रति मिल का विद्रोह अपनी चरम सीमा पर था। अठारहवी शती की विचारधारा जिसका प्रतिनिधित्व इंग्लड के कालरिज तथा कार्लाइल ने किया—की प्रतिक्रिया स्वरूप मिल न यह अनुभव किया कि बेंथम का सिद्धात अव्यावहारिक है, विचारक होने की भक म उनका अनुभववाद अनुभवहीनता का द्योतक बन गया है। मिल ने बताया कि बन्थम ने एक साफ सुथरे विचारक होने की भख म यह कहन की भीषण गलती कर डाली कि जो अनुभव हम जटिल रूप से प्राप्त करते हैं वह अनुभव ही नही है। बथम न इस प्रकार उन बहुत सी उलझी हुई सामान्य परिस्थितियो को भी अस्वीकृत कर दिया जो मिल के अनुसार, समूची मानवजाति के अनुभवा की युग युग से अविश्लिष्ट शृ खला रही थी।[1]

इतना होते हुए भी मिल एव कालरिज मे अधिक समय तक समझौता चलना सभव नही था—कालरिज और उसके अनुयायी यथाथ से इतर अत साक्ष्यवादी (इण्ट्यूशनिस्ट) थे। इसी व्याज स मिल कई बार उनकी खिल्ली उडाया करत थे। उनके अनुसार ये लोग सीमित और निर्धारित रुचियो के अनुरूप आचरण करने वाले थे और उनका यह काय विशुद्ध अनुभव के क्षेत्र के विरोध मे था। इसके अतिरिक्त भी मिल के मतानुसार उनकी प्रणाली गलत आधार पर टिकी थी। इसलिए मिल कालरिज स्कूल की सामान्य धारणाओ क प्रतिकूल बन्थम की विस्तार म जान वाली प्रणाली के प्रति वफादार रह जिसके अनुसार पूरा को खण्ड करके दखन, अमूत को यथाथ स्तर तक ले जाकर अध्ययन करन व विशिष्ट मूल्या और सामान्य स्थितियो का अलग अलग करके देखने तथा सभी समस्याओ का निदान उनको खण्ड खण्ड करके निकाल लान म था[2]। मिल

---

1 मिल के अधिकतर निबन्धो की भाति बन्थम पर उनका निबन्ध भी **डिसर्टेशन्स एण्ड डिस्कशन्स** (वाल्यूम–1859–75) म सकलित है। साथ ही द्रष्टव्य **बिब्लियोग्राफी आव द पब्लिश्ड वक्स आव जान स्टुअट मिल** सपादक, एम० मक्मिन जे० आर०, हेड्डस जे० एम० मैकरिमन (*1945*) बेंथम तथा मिल–परिवार के लिये द्रष्टव्य ई हवली की **द ग्रोथ आव फिलोसाफिकल रडिकलिज्म** (अग्रेजी अनुवाद *1928*) *तथा एल० स्टीवन* **द इग्लिश यूटिलिटेरियन्स (1900)**। बथम तथा उसक विरोधिया के मिल के साथ सबधो के *लिये देखें—एफ० आर लीविस* **मिल आन बेंथम एण्ड, कालरिज (1950)** तथा श्री स्वामोनर (कालरिज) एव श्री मक क्वेडी (मिल के एक मित्र जे० आर० मक कुलाच) के बीच विमश (टी० एल० पीकाक की **क्रोचेट कासल मे**), इ० नफ की **कार्लाइल एण्ड मिल (1924)**

2 इस प्रणाली के लिय द्रष्टव्य सी० के० *आगडन की बन्थमस थियरी आव* **फिक्शन्स (1932)**

कभी भी गंभीर रूप से यह सोचने का विवश नहीं हुए कि मन अनुभूतियों का आकलन (सेट) है, समाज व्यक्तियों का तथा वस्तु एक घटनाक्रम का। उनकी दृष्टि में तो दर्शन की मूल समस्या सही तौर पर उन सबका विस्तार में खण्ड खण्ड वर्णन करना ही है। वनानिक जगत् में यही बात होती आई है कि वहां पर वस्तु का अध्ययन खण्डों एव उसके विभिन्न उपकरणों को लेकर होता है।

स्वभावत मिल के नैतिक और राजनीतिक लखन पर भी बैंथम का प्रभाव विशद रूप से था। लेकिन मिल का बैंथमवाद कुछ अर्थों में अपनी एक सीमा भी लिए हुए था—खास तौर पर उनके तर्कशास्त्र तथा ज्ञानमीमांसा के लिये यह कहा जा सकता है।

मिल की दृष्टि में अनुभव साहचर्यवाद का यदि भली भांति परीक्षण किया जाए तो वह मात्र एक मनोवैज्ञानिक आकल्प ही नहीं अपितु एक विकासशील समाज नीति की पहली आवश्यकता की भी पूर्ति करता है। अनुभव–वाद भी इसी भांति केवल अनुभव से प्राप्त ज्ञान की मीमांसा मात्र नहीं है। अनुभववादी न होने का अर्थ है कि परम्परा (एस्टाब्लिशमेंट) से चिपका रहना या तथाकथित पावन मूल्यों तथा सिद्धान्तों के संरक्षण के हेतु वचन–बद्ध होना। इसीलिए मिल ने लिखा कि केवल दोषयुक्त विचारक और संस्थाएं ही यह धारणा रख सकते हैं कि सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त न कर पाने के बावजूद भी अंत साक्ष्य से प्राप्त किया जा सकता है। यहां मिल द्वारा प्रयुक्त की गयी शब्दावली का महत्व है। उन्होंने जोर देकर लिखा है "झूठे विचारक और दोष युक्त संस्थाएं।" इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यदाकदा अनुभववाद पर आक्रमण करते तथा अनुभव–साहचर्यवाद की प्रामाणिकता पर संदेहवादी हो जाने के बावजूद भी मिल में इन सिद्धान्तों के प्रति गहरी आस्था है और वे जोड़ तोड़ करके भी इनको सिद्ध कर देते हैं।

1830–42 ई० में आगस्ट काम्ते [1] द्वारा लिखी गई 'कौर्स दन पोजिटिविस्टिक फिलासोफी' नामक पुस्तक में व्यक्त किये गये फ्रांसीसी वस्तुस्थितिवाद के प्रति जानमिल की अभिरुचि ने भी मिल के दर्शन और विचारों पर गहरा प्रभाव

---

1 एच० ब्रूल–ब्रैवी की हिस्ट्री आव माडर्न फिलासफी इन फ्रांस (1899) में काम्ते के सम्बन्ध में बड़ा अच्छा संक्षिप्त वर्णन मिलता है। साथ ही देखें टी व्हाइटाकर की कोम्ते एण्ड मिल (1908), ई० केयर्ड, दि सोशल फिलासफी एण्ड रिलिजन आव कोम्ते (1885), ब्रितानी आदर्शवाद के दृष्टिकोण से एक समीक्षा। काम्ते की दिस्कोर सु ला साम्बल दु पाजितिविस्म एच० बी० एक्टन का कोम्तेज पोलिटिक्स एण्ड द साइन्स आव सोसाइटी (फिलासफी में, (1951), संयुक्तराज्य अमेरिका में कोम्ते के प्रभाव के लिए द्रष्टव्य आर० एल० हाकिन्स की आगस्ट कोम्ते एण्ड द यूनाइटेड स्टेटस (1938)।

डाला है। उन्होंने कोम्त द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक सिस्टम ऑफ पोजिटिविस्ट पोलिटी (1951–54), को मानवीय मस्तिष्क मे अब तक निकली आध्यात्मिक तानाशाही की सवव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू म मिल कोम्त क समाज दशन मे प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नही पाय थ। कोम्ते म उन्होंने एक एसा दाशनिक ज म लेता हुआ पाया था जो बेन्थम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने मे समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूण अभाव उन्हें कार्लाइल और कालरिज म साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे—जो उन्हें बेन्थम म नही मिली थी।

काम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पोजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान निरन्तर हो रही घटनाओं और उनके सयोजन से प्रकट हुई स्थितियो का वणन करन मे ही निहित है, मिल पहल स भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता स सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस एतिहासिक बोध म भी थी जिसके आधार पर उन्होंन यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अन्तिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहल इसी तथ्य को धम–दशन (थियोलाजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद म तत्वमीमासा (मेटा-फिजिक्स) द्वारा ईश्वरधमवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम को सन्त ही दैवी शक्ति के स्वेच्छाकृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजि कल) स्तर पर उन्होंने देवी देवताओ के स्थान पर शक्ति सत्ता एव तत्व–आदि शब्दो का रूपातर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है, मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणो के पारस्परिक सम्ब धो का वणन कर सकन म सफल हुआ है। काम्ते को यह बात मान्य है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण से प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवो से ज्यादा सहायक होते हैं।

विज्ञान की सब विधियां एक तार्किक क्रम म अनुबद्ध होती है और किन्ही खास नियमो के कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर आधारित रहना पडता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परि-चायक है। गणित सवप्रथम ग्रन्थो म सामान्य सिद्धान्त के रूप म हमारे सामन प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमश भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव–विज्ञान उद्भूत हुए। मनोविज्ञान विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पडी बाद म व विकसित हुए। इतना हो जान क बाद काम्त के मतानुसार, इस बार अब सामाजिक विज्ञानो की बारी थी। उनम पहली बार वज्ञानिक विधियो का प्रयोग करके समाज का अध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अंशों में, इस निष्कर्ष के आधार पर ही काम्ते को अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ देना पड़ा। अर्थशास्त्र को तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ से उसे काट देता है और इसीलिए वह समाज में हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओं को देखने में असमर्थ हो जाता है। मनोविज्ञान को भी कोम्ते इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें व्यक्ति के लिए स्वयं अपनी मानसिक अवस्था को निरन्तर एक ही रूप में देख और समझ पाना सम्भव नहीं है क्योंकि विश्लेषण की क्रियाएं मानसिक प्रक्रिया में स्वयं बदल जाती हैं। कोम्ते की इन धारणाओं का निराकरण करता मिल ने एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होने के नाते भी आवश्यक माना। इसके बावजूद भी मिल काम्ते के साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछड़ा हुआ है और उनका यह पिछड़ापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है। मिल का यह विचार अंत साक्ष्यवादियों से इस अर्थ में विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नहीं है जो स्वतः एक वैज्ञानिक दृष्टि-कोण प्रस्तुत कर सके।

इसके अतिरिक्त भी काम्ते की रचनाओं ने मिल को नई पद्धति पर सोचने की प्रेरणा दी। दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप में उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायन-शास्त्र में होता है। मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए करना चाहते थे। इस उपलब्धि के साथ ही मिल अपना ग्रंथ सिस्टम आफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थे जिस पर वे कुछ वर्षों से कार्यरत थे। मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानों की 'तर्क प्रणाली' का प्रवर्तन करना चाहते थे जिसे आज की भाषा में सामाजिक विज्ञानों का रीति-विधान (मेथाडालोजी) कहा जा सकता है। लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी। नैतिक विज्ञानों का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करने से पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था। यहां काम्ते मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके। मिल की धारणा के अनुसार काम्ते जानकारी प्राप्त करने की विधि वर्णन करने में सिद्धहस्त थे लेकिन प्रमाणी-करण (सिद्ध करने) के लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नहीं किया। कोम्ते में सिद्ध और झूठ अनुमानों के बीच में भेद करने जैसी स्थिति की कोई सम्भावनाएं भी नहीं दिखाई देतीं। काम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे जबकि मिल ने उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा प्रमाणीकरण का विज्ञान (साइंस आव प्रूफ आव एविडेंस) है। प्रत्येक साध्य मूल दत्त-सामग्री (आरिजिनल डटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र इन उपकरणों की प्राकृतिक

डाला है। उन्होंने काम्ते द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक **सिस्टम आफ पोजिटिविस्ट पोलिटी** (1951–54) को मानवीय मस्तिष्क से अब तक निकली आध्यात्मिक तानाशाही की सर्वव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू में मिल काम्ते के समाज दशन में प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नहीं पाये थे। कोम्ते में उन्होंने एक ऐसा दार्शनिक जन्म लेता हुआ पाया था जो बन्थम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने में समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूर्ण अभाव उन्हें कार्लाइल और कालरिज में साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे–जो उन्हें बन्थम में नहीं मिली थी।

काम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पाजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान निरन्तर हो रही घटनाओं और उनके संयोजन से प्रकट हुई स्थितियों का वर्णन करने में ही निहित है, मिल पहले से भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता से सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस ऐतिहासिक बोध में भी थी जिसके आधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अन्तिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहले इसी तथ्य को धर्म–दर्शन (थियोलोजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद में तत्वमीमांसा (मेटा–फिजिक्स) द्वारा ईश्वरधर्मवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम का सम्बन्ध ही दैवी शक्ति के स्वच्छन्द कृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजिकल) स्तर पर उन्होंने दैवी देवताओं के स्थान पर शक्ति सत्ता एवं तत्व–आदि शब्दों का रूपांतर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही, जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणों के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन कर सकने में सफल हुआ है। कोम्ते का यह बात मान्य है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण से प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवों से ज्यादा सहायक होते हैं।

विज्ञान की सब विधियां एक तार्किक क्रम में अनुबद्ध होती हैं और किन्हीं खास नियमों के कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर आधारित रहना पड़ता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परि–चायक है। गणित सर्वप्रथम अपने में सामान्य सिद्धान्त के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमश भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव–विज्ञान उद्भूत हुए। सामाजिक विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी बाद में वे विकसित हुए। इतना हो जाने के बाद, कोम्ते के मतानुसार इस बार अब सामाजिक विज्ञानों की बारी थी। उनमें पहली बार वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके समाज का अध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अंशों में, इस निष्कर्ष के आधार पर ही काम्ते को अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ देना पड़ा। अर्थशास्त्र को तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ से उसे काट देता है और इसीलिए यह समाज में हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओं को देखने में असमर्थ हो जाता है। मनोविज्ञान को भी कोम्त इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें व्यक्ति के लिए स्वयं अपनी मानसिक अवस्था को निरंतर एक ही रूप में देख और समझ पाना सम्भव नहीं है क्योंकि विश्लेषण की क्रियाएं मानसिक प्रक्रिया में स्वयं बदल जाती हैं। कोम्त की इन धारणाओं का निराकरण करना मिल ने एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होने के नाते भी आवश्यक माना। इसके बावजूद भी मिल काम्ते के साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछड़े हुए हैं और उनका यह पिछड़ापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है। मिल का यह विचार अंततः साक्ष्यवादियों से इस अर्थ में विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नहीं है जो स्वतः एक वैज्ञानिक दृष्टि-कोण प्रस्तुत कर सके।

इसके अतिरिक्त भी काम्ते की रचनाओं ने मिल को नई पद्धति पर सोचने की प्रेरणा दी। दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप से उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायन-शास्त्र में होता है। मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए करना चाहते थे। इस उपलब्धि के साथ ही मिल अपना ग्रंथ सिस्टम आफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थे जिस पर वे कुछ वर्षों से कार्यरत थे। मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानों की 'तर्क प्रणाली' का प्रचलन करना चाहते थे जिसे आज की भाषा में सामाजिक विज्ञानों का रीति-विधान (मेथोडालाजी) कहा जा सकता है। लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी। नैतिक विज्ञानों का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करने से पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था। यद्यपि काम्ते मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके। मिल की धारणा के अनुसार वे जानकारी प्राप्त करने की विधि वर्णन करने में सिद्धहस्त थे लेकिन प्रमाणों (सिद्ध करने) के लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नहीं किया। काम्ते ने सत्य और झूठ अनुमानों के बीच में भेद करने जैसी स्थिति की कोई संभावनाएं दिखाई दीं। कोम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे अतः उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा प्रमाण विज्ञान (साइंस आव प्रूफ ऑर एविडेंस) है। प्रत्येक शास्त्र (आरिजिनल डेटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र इन

डाला है। उन्होंने कोम्ते द्वारा लिखी एक ग्रन्य पुस्तक **सिस्टम ग्राफ पोजिटिविस्ट पोलिटी** (1951–54) को मानवीय मस्तिष्क मे ग्रब तक निकली ग्राध्यात्मिक तानाशाही की सवव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू म मिल कोम्ते के समाज दशन मे प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नही पाये थे। कोम्त म उन्होंने एक एसा दाशनिक ज म लेता हुआ पाया था जो बेन्थम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने म समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूण ग्रभाव उन्हे कार्लाइल और कालरिज म साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे–जो उन्हे बेन्थम म नही मिली थी।

काम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पाजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूण ज्ञान निरन्तर हो रही घटनाओ और उनके सयोजन मे प्रकट हुई स्थितियो का वणन करन मे ही निहित है मिल पहल से भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता स सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस एतिहासिक बोध म भी थी जिसके ग्राधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अंतिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहले इसी तथ्य को धम–दशन (थियालोजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद म तत्वमीमासा (मेटा–फिजिक्स) द्वारा ईश्वरधमवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम को सदव ही दैवी शक्ति के स्वेच्छाकृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजि-कल) स्तर पर उन्होंने देवी देवताओ के स्थान पर शक्ति सत्ता एव तत्व–ग्रादि शब्दो का रूपान्तर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणो क पारस्परिक सम्बन्धो का वणन कर सकने म सफल हुआ है। कोम्ते का यह मान माय है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण मे प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवो स ज्यादा सहायक होते है।

विज्ञान की तक विधियां एक तार्किक क्रम मे अनुबद्ध होती हैं और किन्ही खास नियमो क कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर ग्राधारित रहना पडता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परि–चायक है। गणित सवप्रथम अन्को म सामान्य सिद्धान्त के रूप म हमारे सामने प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमश भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव–विज्ञान उदभूत हुए। समाजिक विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पडी बाद म वे विकसित हुए। इतना हो जान क बाद, काम्ते के मतानुसार इस बार अब सामाजिक विज्ञानो की बारी थी। उनम पहली बार वैज्ञानिक विधियो का प्रयोग करके समाज का ग्रध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अ शा म इस निष्कर्ष के आधार पर ही काम्त का अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड देना पडा । अर्थशास्त्र का तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ म उसे काट देता है और इसीलिए यह समाज म हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओ का दर्शन म असमर्थ हो जाता है । मनोविज्ञान को भी कोम्ते इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसम व्यक्ति क लिए स्वय अपनी मानसिक अवस्था को निरंतर एक ही रूप म देख और समझ पाना सम्भव नही है क्योकि विश्लेषण की क्रियाए मानसिक प्रक्रिया म स्वय बदल जाती हैं। काम्त की इन धारणाओ का निराकरण करना मिल न एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होन क नाते भी आवश्यक माना । इसके बावजूद भी मिल काम्त क साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछडे हुए है और उनका यह पिछडापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है । मिल का यह विचार अन्त साक्ष्यवादियो से इस अर्थ म विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नही है जो स्वत एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके ।

इसक अतिरिक्त भी काम्ते की रचनाओ न मिल को नई पद्धति पर सोचने को प्रेरणा दी । दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप स उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायन-शास्त्र म होता है । मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज क वैज्ञानिक अध्ययन क लिए करना चाहते थ । इस उपलब्धि क साथ ही मिल अपना ग्रथ सिस्टम आफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थ जिस पर वे कुछ वर्षों म कार्यरत थ । मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानो की 'तर्क प्रणाली' का प्रचलन करना चाहते थ जिसे आज की भाषा म सामाजिक विज्ञानो का रीति-विधान (मेथोडालोजी) कहा जा सकता है । लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी । नैतिक विज्ञानो का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करन स पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था । यहा काम्त मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके । मिल की धारणा क अनुसार काम्त जानकारी प्राप्त करन की विधि वर्णन करन म सिद्धहस्त थ लेकिन प्रमाणीकरण (सिद्ध करन) क लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नही किया । काम्त म सिद्ध और झूठ अनुमानो के बीच म भेद करन जैसी स्थिति की कोई सभावनाए भी नहीं दिखाई देती । कोम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करन म सिद्धहस्त थ जबकि मिल न उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया ।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा प्रमाणीकरण का विज्ञान (साइंस आव प्रूफ आव एविडेंस) है । प्रत्यक साध्य मूल दत्त-सामग्री (ओरिजिनल डेटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र इन उपकरणो की प्राकृतिक

विशदीकरण करने की बात तत्ववाद (मेटाफिजिक्स) के लिए छोड देता है। अपने लिए यह काय सुरक्षित रख लेता है कि उस दत्त सामग्री को किस विधि से उपस्थित किया जाय—ताकि उसे वैज्ञानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग म लाया जा सके[1]।

इन प्रदत्त सामग्रियो के उपस्थापन की पद्धतियो म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है भाषा का विश्लेषण किया जाना जो नाम देने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है, ऐसा मिल का मत था। इसलिए मिल ने बतलाया है कि उनकी लाजिक सवप्रथम भाषा के विश्लेषण के अध्याय से आरम्भ होती है। यही वह बिदु था जहाँ पर बाद म उनकी बहुत कडी आलोचना हुई। कुछ अर्वाचीन दाशनिक तो यह मानते हैं कि नामकरण की प्रक्रिया और भाषा के प्रयोग को एक मान लेना ही दशन की बुराइयो की जड है। मिल शब्दो को दो श्रेणियो म विभाजित करते हैं। एक श्रेणी इस प्रकार की जसे 'सुकरात' जैसा नाम जिसे अपने ही सदम से जाना जा सकता है और दूसरी ऐसी जैसे 'व्याकरण की भाषा का शब्द आफ' (का) जिसे बिना किसी सदभ के जाना ही नही जा सकता। और इन्ही के आधार पर बडे नाम–पद जसे (सुकरात के पिता) आदि निर्मित होने चलते हैं। इंग्लि 'इफ' (यदि) तथा 'ऑर' (या) जसे शब्दो के लिए कुछ भी नही कहते जो अपने आप म न नाम ही है और न नामकरण करने वाले पदो से ही जुडे हैं।

मिल तो यह मानकर ही चलते हैं कि सभी सज्ञाए तथा सभी विशेषण सदभ युक्त नाम है। इसलिए जब कभी भी हम इस प्रकार के शब्दो के सम्पक मे आते हैं तो यह पूछना साथक है कि अमुक नाम किस वस्तु का बोधन कराता है?

व्हाइटनैस (सफेदी) जसी भाववाचक सज्ञाए मिल के अनुसार किसी गुण का व्यक्त करती हैं। विशेषण सफेद उन विभिन्न वस्तुओ के बारे म बताता है जिन्हे सफेद होने वाला माना जा सकता है। 'जान" द सो" द फादर आफ सोक्रेटीज" आदि वस्तुओ के नाम की ओर सकेत करते हैं। व्हाइटनस (सफेदी) और 'जान' म एक मूलभूत अन्तर यह है कि जान और इसी प्रकार की अन्य सज्ञाए नोन–कनोटेटिव (अ–स्वगुण–निर्देशक) पद हैं। मिल स्वगुणनिर्देशक पदो (कनोटेटिव टम्स) की परिभाषा यह देते हैं कि ये वे पद हैं जो किसी कर्ता के बारे

---

1 यहाँ यह मेटाफिजिक्स (तत्ववाद) शब्द थोडा भ्रामक बन सकता है। इस पद से मिल का अभिप्राय कुछ उस अभिव्यक्ति से है जिसे साधारणत 'ज्ञान का सिद्धान्त' (थियरी ऑव नालिज) कहा जा सकता है। काम्त तथा अन्य परवर्ती वस्तुस्थिति–वादियो का इस पद से अभिप्राय किसी ऐसे सिद्धान्त से है जो उन तत्वो के बारे म हम समझाना चाहता है जो अनुभूति (एक्सपरियंस) से परे हैं, अनुभवगम्य नही हैं।

न अथवा किसी गुण के बारे में बताते है। सफेद शब्द उन सभी वस्तुओ की ओर सकेत करता है जो सफेद हैं तथा साथ ही उस सामान्य सफेदी की ओर इंगित करता है जो उन सभी वस्तुओ मे समान रूप मे विद्यमान है। इसी भांति मनुष्य नामक शब्द सुकरात और अफलातून आदि के बारे म बताता है तथा उसके मानवत्व (विवेक) और अमानवत्व (पशुत्व) दोनो की ओर इंगित भी करता है। इसके विपरीत सुकरात किसी एक विशिष्ट व्यक्ति की और उसके किसी गुण का बताये बिना इंगित करता है। इस तरह व्यक्तिवाचक सज्ञाएँ (नाम) सम्बद्ध अर्थ बोधित नही कराती। हा, ऐसे पदो की जैसे 'जेण्टिपी के पति', (हसबण्ड आफ जेण्टिपी) जो किसी अर्थ का बोधन भी करते है—बात और है।

मिल द्वारा किए गए पदावली के विश्लेषण के अनुसार प्रत्येक कथन केवल विभिन्न नामो को आपस म जोडता है। जैसे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' वाली पदावली म दो सार्थक नाम हैं—मनुष्य' तथा मरणशील'। इस प्रकार की पदावली का क्या मतलब हो सकता है ? मिल के अनुभववादी पूर्व प्रभाव को ध्यान म रखते हुए हम उससे यह प्रत्याशा रख सकते है कि वह यह उत्तर देगा कि यह वाक्य दो वर्गों को जोडता है यह बतलाता है कि मनुष्य नामक वर्ग मरणशील नामक वर्ग के अन्तर्गत आता है। लेकिन दरअसल मिल इस सिद्धान्त को परित्यक्त करते हैं—उनके अनुसार गुण का विचार श्रेणी के विचार से पहले का है। क्योकि श्रेणी की परिभाषा वस्तुओ के उन गुणो के आकलन से ही होती है जो सामान्य रूप मे उनमे पाए जाते हैं—इसलिए मिल के अनुसार मनुष्य मरणशील है की प्रमुख ध्वनि इस बात म है कि मनुष्यत्व का गुण सदैव ही मरणशीलता के गुण स सयुक्त है।

चूंकि प्रत्येक गुण घटना या वस्तु के होने मे निहित होता है किसी तत्ववादी पदावली का अन्तिम महत्त्व इस बात मे है कि कुछ अनुभवो अथवा घटनाओ के उपकरण नियमित रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। इसके दूसरी ओर, किसी पदावली का वास्तविक कार्य, उसके तात्त्विक विश्लेषण से अलग, मिल के मतानुसार, यह कहना है कि किसी परिस्थिति म किस प्रकार के परिणाम की आशा की जा सकती है। इस विचारधारा के अनुसार सभी मनुष्य मरणशील हैं का मतलब यह है कि मनुष्यत्व की उपस्थिति मरणशीलता के अस्तित्व का सकेत है एक प्रमाण है एक गवाही है। इस पदावली से निकलने वाले उपर्युक्त तीनो अर्थ समान हैं, इसलिये वे इनम स किसी एक का भी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करने म कोई हिचक महसूस नही करते और उनका अपनी इच्छानुसार जहा वे सर्वोत्तम ढग से प्रयुक्त किये जा सकते हैं प्रयोग करते हैं।

अपने स्वगुण निर्देश (कानोटेशन) सिद्धान्त के जरिए, मिल 'आवश्यक सत्यों' तथा विश्लेषक कथनों' की एक सतोषप्रद व्याख्या देने की आशा रखते हैं और अनुभववादी

सिद्धान्त से भी अपने को अलग करने की आवश्यकता नहीं देखते। 'प्रत्येक मनुष्य विवेकशील है' जैसे कथन मात्र एक शब्द समूह ही है। जैसे ही हम मनुष्य के बारे में समझने लगते हैं हम यह भी जान लेते हैं कि मनुष्य विवेकशील है। इसलिए विवेकशीलता पद मनुष्य पद के एक गुण को आंशिक रूप से व्यक्त करता है। 'सभी मनुष्य विवेकशील हैं' तब, एक ऐसी ध्वनि को प्रकटाता है जो हमें शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में तो बताता है लेकिन मनुष्य के बारे में कुछ नहीं कहता। मिल इस पदावली को कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' इस प्रकार उपर्युक्त 'विवेकशील' वाली पदावली से अलग करते हैं। क्योंकि मरणशीलता मनुष्य के शब्दार्थ के एक गुण को आंशिक रूप से व्यक्त नहीं करती इसलिये यह पदावली वास्तविक सूचना देती है, किन्तु इसी आधार पर वह एक आवश्यक पदावली नहीं हो जाती। आगे का अनुभव ऐसा भी हो सकता है जो इसे झूठा सिद्ध कर दे। इसलिये केवल शब्दावली द्वारा कथन ही सही अर्थों में आवश्यक कथन होते हैं।

तब फिर गणित के कथनों का क्या होगा? निश्चय ही वे वास्तविक और आवश्यक दोनों होते हैं। मिल अपने अनुवर्तियों की भांति यह नहीं मानते कि शब्दावली होने के कारण ही गणित के कथन आवश्यक कथन हो जाते हैं। यह बात नहीं है कि यह सम्भावना मिल के मस्तिष्क में नहीं आई थी। डूगाल्ड स्टीवर्ट ने पहले से यह बता दिया था कि गणित परिभाषाओं से उत्पन्न होने वाली विभिन्न विवक्षाओं के प्रतिपादन में निहित है और परिभाषायें, मिल के मतानुसार केवल शब्दावलियां हैं क्योंकि वे किसी अर्थ का बोधन ही कराती हैं। किन्तु मिल स्टीवर्ट का इस स्थल पर अनुसरण नहीं करते। वे उसके विरोध में कहते हैं कि गणित के स्वयंसिद्ध तथ्यों को परिभाषाओं में नहीं उतारा जा सकता। इसलिये उसका केवल एक ही विकल्प जो उसके पास बचा था वह गणित के कथनों को पूर्ण रूप से आवश्यक सत्यों के रूप में जानकर के चलने की बात का विरोध करना था।

सत्य कथनों के रूप में अनुभव से ज्ञात सामान्य बातें होना उनके लिए आवश्यक है जो निश्चय ही आगे होने वाले अनुभवों से सुधारने की गुंजाइश भी रखे हुए हैं।

इस प्रकार गणित की पदावलियों को आवश्यक सत्य मानने से इनकार करने पर मिल को अपने ही समसामयिक विचारक विलियम ह्वेवल[1] के प्रतिवाद का

1 यही तो शुरुआत करनी ही होती है इसलिये मैंने मनमाने ढंग से ही यह मान लिया है कि ह्वेवल उस कालावधि के पूर्व का था जो मेरी अवधि है। यद्यपि बहुत अंशों में उसका विज्ञान-दर्शन [illegible] अपेक्षा अधिक आधुनिक है। उसकी हिस्ट्री आव इंडक्टिव साइंसेज [illegible] जिसमें मिल ने बहुत से विचार लिये हैं। [illegible] आव [illegible] जो तीसरा

सम्बद्ध मानता है (बिना परिमाण की स्थिति, तथा बिना चौडाई की सरल रख ए) आदि। हमारे अनुभवो म कभी प्रस्तुत नही होत मिल का उत्तर यही है कि हम अपने अनुभवा मे भी तो बहुत से अ शो को अनदेखा कर दते है और कुछ का ही अपना ध्यान द पाते है। एक सरल रेखा की यह परिभाषा करना कि उसकी लम्बाई है, लेकिन चोडाई नही, हमारे इसी मत य को व्यक्त करता है कि हम ज्यामितिक सुविधा के लिए सरल रेखा की चौडाई को अनदेखा करना चाहते है। इस प्रकार हम एस निष्कर्षो पर पहु चत है जिनका उपयोग हम आवश्यक सुधार करके वास्तविक जीवन मे कर सकते हैं। किसी विशेष सरल रखा की चौडाई के बार म विचार करके हम इस सुधार का आरम्भ कर सकते है।

तब अनुमान का क्या होगा ? इन मामलो म ही मिल का विचार है कि हम वास्तविक और मात्र शाब्दिक रुपा तरण म भेद करना होगा। कुछ सम्राट निर कुश होते हैं' को जब हम बदल कर 'कुछ निर कुश सम्राट होते है कहते हैं तो यह रुपा तरण स्पष्टत शब्दो का रूपान्तरण ही है। दोनो पदावलिया करीब एक ही बात कहती हैं कि कुछ अ शा म कुछ गुण दानो ही पदावलियो म साथ विद्यमान है। इसके दूसरी ओर ऐसी सामा य पदावलिया जिनका अनुमान अनुभव के सहार होता है, वे मिल के मतानुसार वास्तविक अनुमान को बतान वाली होती हैं।—इस सदम मे यहा वह प्रक्रिया क्रियमाण देखी जा सकती है जहा पर ज्ञान स पहले की अज्ञात अवस्था तक पहु चा जा सकता है। मिल के अनुसार इसी प्रकार की पदा-वलिया दरअसल अनुमानित प्रक्रिया को प्रकट करती है। इस तरह यह बात स्वीकृत हो जाती है कि तात्कालिक अनुमान क्रियापद क रूपान्तरण से हो सकता है और इस तरह आगमन वास्तविक अनुमान कहा जा सकता है। हमारे सामन प्रश्न यही रहता है कि आगमन (इण्डक्शन) की भाति क्या हेत्वनुमान या तकपदी को भी तात्कालिक अनमान माना जा सकता है ?

मिल की हत्वनुमान के प्रति धारणा को प्राय गलत समझा गया है। उस लाक की भाति परम्परागत तकशास्त्र म निदय आलोचक के रूप म अध्ययन किया

---

1 मिल ने कोम्ते क अथशास्त्रीय सिद्धा ता का खडन भी कुछ इसी तरह किया है द **डेफिनिशन आव पोलिटिकल इकोनामी** निब ध **(1836)** म जो **सम अनसेटल्ड क्वेश्च स आव पोलिटिक्ल इकानामी (1844)** म पुन प्रकाशित हुआ उसने यही कहा है कि अथशास्त्र मानव से उतना ही सम्बन्धित है जितना मानव का धन से सम्ब ध है कि तु उसे प्रयागिक रूप देते समय हमे इस सिद्धा त म सुधार करना पडता है और सम्पत्ति से अतिरिक्त अ य मानव कृत्यो का भी अध्ययन करना पडता है जो मनो-विज्ञान तथा अ य सामाजिक विज्ञानो के सिद्धा त के आलाक म समझ जा सकते है और हम उन विज्ञानो से ही उ ह समझना भी पडता है।

जाता रहा है।[1] जबकि वास्तव में यह बात नहीं है। दरअसल मिल तो सदैव इस बात के लिए तत्पर है कि वे उन अनुभववादियों के उन दोषारोपण से तर्क पद्धति की रक्षा कर सकें जिसके अनुसार वे उसे मध्ययुगीन बकवास कहते हैं। मिल के पिता उनमें से नहीं थे और मिल का संस्कार भी तर्कपद्धति की शास्त्रीय परम्परा में ही हुआ—इसी बीच रिचर्ड व्हेटली ने अपने ग्रन्थ एलीमेंटस आफ लाजिक (1826) में दो शताब्दियों की उपेक्षा के बाद तर्क पद्धति के इंगलैंड में शास्त्रीय अध्ययन किए जाने पर बल दिया है—अपने इस प्रयास में उन्होंने परम्परागत हेत्वनुमान के लिए काफी समर्थन व्यक्त किया है।

मिल के कथनानुसार यह उस मानसिक प्रक्रिया के विश्लेषण की प्रणाली है जो प्रत्येक सही तर्कपद्धति में अनिवार्य रूप में काम में लाई जाती है। यद्यपि मिल अपने अनुभव-वादी पूर्ववर्तियों की मान्यताओं से इतने अधिक अलग हुए कि उन्होंने हेत्वनुमान को भी उपयोगी माना। फिर भी वे व्हाटले के विरोध में उनसे इस बात से सहमत थे—कि यह प्रणाली उस प्रकार के वैज्ञानिक अनुमान की श्रेणी में नहीं आती जिसमें तर्क का आकार नियत किया जा सकता है। यह एक सत्य अनुमान न होकर गोलमोल अनुमान ही कहा जायगा। यह बात उन्हें दृढ़ता के साथ कहनी पड़ी और यही कारण है कि बहुधा उन्हें हेत्वनुमान का प्रबल आलोचक ही माना जाता है।

उदाहरण के लिए हम परम्परागत एक हेत्वनुमान (तर्कपदी) को लें। 'सभी मनुष्य मरणशील हैं सुकरात एक मनुष्य है इसलिए सुकरात भी मरणशील है'। इस पर मिल का यह कहना है कि इस तर्कपदी में सुकरात की मरणशीलता के प्रति पूर्व संकेत हो जाता है। उसे तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। अगर यह भी मान लिया जाय कि हमने कहीं भी सुकरात का नाम भी न सुना हो और हम यह कह रहे हों कि सभी मनुष्य मरणशील है तो भी हम उसकी मरणशीलता को इसके द्वारा सिद्ध ही करना चाहते हैं—जब हम सभी मनुष्यों के बारे में यह कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध करना कि सुकरात मरणशील है और वह भी इस पदावली के सहारे कि मनुष्य मरणशील हैं इस बात का संकेत करता है कि हम केवल किसी बात को सिद्ध करने के लिए ही सिद्ध कर रहे हैं।

इसके बाद भी यदि हम तर्कपदी का यह परम्परागत अर्थ स्वीकार कर लें कि वह एक सामान्य नियम से विशेष नियम की ओर जाने वाली तर्क पद्धति है तो हम

---

1 इसके लिये द्रष्टव्य ए गूज तथा ब्रिटन की उपर्युक्त कृतियां। आर० जैकमन एन एक्जामिनेशन आव द डिडक्टिव लॉजिक आव जान स्टुअर्ट मिल (1941)। दुर्भाग्यवश उस पारम्परिक गलत निर्वचन को पैकी की जीवनी में भी दोहराया गया है।

उसे मात्र क्रियापदी के रूपांतरण के रूप में स्वीकारना होगा। पहले से स्वीकृत सत्य के सहारे किसी उसी के एक अंश को उठाकर उसकी सिद्धि मात्र कर देना ही इसे माना जायगा। वास्तव में यहाँ किन्तु यही कहना चाहते हैं कि तर्कपदी के मूल में भी वास्तविक अनुमान ही काम कर सकता है। यह ऐसा अनुमान है जिसे तर्कपदी अपने आकार के कारण ढक लेना चाहती है। यही हेत्वनुमान उन्हीं साक्ष्यों के सहारे होते हैं जिन पर मानवी अनुभव की सम्पूर्ण स्वीकृतियाँ रखी हैं और जो हम सुकरात के लिए भी एक निष्कर्ष तक पहुँचा देती है। यह साक्ष्य मिल के अनुसार हम एक विशेष अनुभव अथवा पर्यवेक्षण के द्वारा ही प्राप्त करना चाहिए। स्मिथ मरणशील है, ब्राउन भी मरणशील हैं और इसी प्रकार अपने अनुभव से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सुकरात भी अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा—आदि। यह अनुमान इस प्रकार सामान्य से विशिष्ट की ओर न होकर विशिष्ट से विशिष्ट की ओर ही हुआ। लेकिन परम्परागत तर्कपदी में यह लोप है। हाँ, इससे यह बात हमारे देखने में आती है कि सभी मनुष्य भी मरणशील है। क्योंकि यदि हमारा मरणशीलता के बारे में अनुमान स्मिथ और ब्राउन से लेकर सुकरात तक सही है तो इसकी वैधता उस हालत में भी अप्रभावित रहेगी जब हम सुकरात के स्थान पर किसी भी क ख ग नामक आदमी को रख देते हैं—इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है कि अनुमान का एक ऐसा नियम हमने इजाद किया है जिसके सहारे हम सही तौर पर यह तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि मनुष्यता की उपस्थिति जहाँ भी है वहाँ मरणशीलता की भी उपस्थिति है। और यही, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं हमारे इस चुनाव का वैज्ञानिक आधार है कि **सभी मनुष्य मरणशील हैं।**

इस तरह सभी मनुष्य मरणशील हैं, वाली पदावली एक फार्मूला है जो हमें उस पद्धति का बोध कराती है जिसमें हमने भूतकाल में विचार किया है और भविष्य में भी विशिष्ट अनुभव से विशिष्ट अनुमान तक जाने की बात सोच सकते हैं लेकिन तर्क तो इस फार्मूला के बिना भी आगे बढ़ाया जा सकता है और साधारण जीवन में हम ऐसा करते भी हैं। हम कहते हैं कि **'इस आग से मैं जल गया।'** और **'इसलिए दूसरी आग भी मुझे जला देगी।'** इस बात की चिन्ता किये बिना कि सभी प्रकार की आग जलाने वाली होती है। दूसरी ओर वैज्ञानिक अपने अनुमानों को विशद बनाना पसंद करते हैं, इसलिए पहले वे विशेष नियम से सामान्य नियम की ओर अग्रसर होते हैं और तब उस सामान्य नियम से फिर किसी विशेष मामले की ओर। इस प्रकार का तरीका काम में लाकर वे उचित ढंग से अपने अनुभवों का विस्तार करते हैं। अपने नियमों का विश्लेषीकरण करते समय वे अपनी बहुत सी कमजोरियों को भी पकड़ लेते हैं। लेकिन इस प्रणाली का जो अंश अनुमान के रूप में वर्णित किया गया है वह विशिष्ट से सामान्य की ओर जाने वाले सिद्धान्त के संक्रमण की ओर संकेत करता है। अथवा यों कहें कि वह विशिष्ट की ओर ही जाने की प्रणाली है तो अधिक संगत होगा। तथाकथित अनुमान जिसे कि सामान्य से विशेष

की ओर जाने वाला माना गया है, तो केवल एक सूत्र (एक फार्मूला) मात्र है। एक ऐसा मार्ग नहीं है जो कि किसी पहले से अज्ञात वस्तु की ओर संकेत करता है। हेत्वनुमान (तर्कपदी) के नियम इस प्रकार की चेतावनीयाँ हैं जिनके सहारे हमें यह विश्वास दिलाया जाता है कि हमारी व्याख्याएँ हमारे सूत्रों से मेल खाती हुई हैं। वे इस लिए मूल्यवान हैं क्यों कि वह मेल भी मूल्यवान् है। मिल इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि जिसे हम परम्परागत तर्कशास्त्र कहते हैं वह इसी प्रकार के मेल का तर्कशास्त्र है।[1]

तर्कपदी का यह विश्लेषण अन्तःसाक्ष्य के विरुद्ध अनुभव की रक्षा के लिए बहुत अनुकूल पड़ता है। मिल के अनुसार अनुभव स्वयं ही विशिष्ट घटनाक्रम का उपस्थित करता है। हम सीधे रूप में सामान्य अनुभवों को कभी नहीं भोगते। यह बात मिल ने बेंथम और हार्टले से सीखी थी। इस प्रकार यदि सर्वव्यापी पदावलियाँ सामान्य सम्बन्धों को प्रस्तुत करती हैं और यदि ये पदावलियाँ सभी वैज्ञानिक विचारधारा से अलग पड़ती हैं इसका यह मतलब निकलता है कि विज्ञान भी पूर्ण रूप से अनुभव पर आधारित नहीं है। यह धारणा अन्तःसाक्ष्य वादियों के लिए अनुभव वादियों के विरुद्ध लड़ाई का प्रबल मोर्चा बनी। यदि दूसरी ओर यह माना जाय कि सारी तर्क प्रणाली विशिष्ट से विशिष्ट की ओर ही चलती है और सर्वव्यापी पदावलीयाँ तो केवल कथन बनाने के तरीकों के रूप में उपयुक्त हैं और उनमें वैज्ञानिक अनुमान की कोई तात्विक सिद्धि नहीं होती तो मिल के अनुसार सारे आलोचकों की जिज्ञासाओं का शमन केवल अनुभववाद ही कर सकता है।

तर्कपदी में विशिष्ट से विशिष्ट की ओर जाने वाले तर्क के लिए काम में लाये जाने वाले अनुमान की व्याख्या करके मिल ने ऐसा बताया है कि सभी अनुमान अपने आप में आगमनात्मक हैं। (आगमन को साधारण रूप से एक ऐसे अनुमान के रूप में परिभाषित किया गया है जो विशिष्ट से सामान्य नियमों की ओर जाता है, किन्तु यह अनुमान मिल के अनुसार विशिष्ट से विशिष्ट की ओर जाने के अतिरिक्त कुछ नहीं) इस लिए आगमन उनके अनुसार तर्क विज्ञान का आधार नहीं बनाया जा सकता। इसका हल मिल इस प्रकार देते हैं —

परम्परा के रूप में आगमन दो प्रकार का माना गया है। पूर्ण और अपूर्ण। कभी कभी हम यह देखने की कोशिश करते हैं कि क्या एक सीमित दायरे में कोई

1 आकारी तर्कशास्त्र की प्रकृति के वर्णन के लिए उसका सेंट एन्ड्रूज विश्वविद्यालय में दिया गया उद्घाटन भाषण (1867) विशेषतः द्रष्टव्य है जो एफ० ए० कैवनग की 'जेम्स एंड जान मिल आन एजुकेशन' (1931) में पुनः प्रकाशित हुआ।

तत्व सभी द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ? उदाहरण के लिए हम एक श ब्द लेते है —'धर्मोपदेशक' । अब हम इस शब्द पर विचार करते हुए धर्मोपदेशक वर्ग के प्रत्येक सदस्य का परीक्षण करते है और तब यह निष्कर्ष पूर्ण रूप से निकाल पाते हैं कि धर्मोपदेश का तत्व उस वर्ग के सभी व्यक्तियो म व्याप्त है । लेकिन कभी कभी हम केवल उस वर्ग के बहुत ही कम लोगो का परीक्षण करते है और ऐसे समय म हमारा आगमन अपूर्ण होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार का आगमन पूर्णता की ओर जाने की महत्वाकांक्षा रखता है । अपने सामान्य सिद्धान्तो के प्रति वफादार होने के कारण मिल पूर्ण आगमन को शाब्दिक रूपान्तरण कह कर त्याग देते है । मिल का कहना है कि इन दोनो पदावलियो मे जिनमे एक है **'पीटर, पाल तथा जान आदि प्रत्येक धर्मोपदेशक यहूदी थे"** और इसी के आधार पर प्रणीत दूसरी पदावली कि **"सभी धर्मोपदेशक यहूदी थे"**—। दूसरी पदावली मात्र उन तत्वो का सम्मिश्रीकरण है जिन्हें पहली पदावली म व्यक्त किया गया है । वे तो **"सभी धर्मोपदेशक यहूदी है"** को भी सामान्य पदावली मानने को तयार नहीं है । किसी सामान्य पदावली का समूचा अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि वहा पर वास्तव म अनुभव किये हुए मामला का सकेत है या नही ।

इस प्रकार यह स्पष्ट लगता है कि अपूर्ण आगमन ही वास्तविक अनुभव प्रकट करने वाले अनुमान माने जा सकते है—। मिल के अनुसार इस सारी व्याख्या का मतलब यही है कि अनुभव पर आधारित तर्क-प्रणाली ही वास्तविक अनुमान का आधार हो सकती है । किन्तु अब अचानक उनकी धारणा म एक परिवर्तन दिखाई देता है । कुछ मामलो म अपूर्ण आगमन अथवा अनुभव किये हुए आगमन जसा कि वे उन्हे कहना अधिक पसन्द करते हैं, ही पूर्ण रूप से तर्क सम्मत हैं । गणित के सत्य अत्यन्त महत्वपूर्ण नियम बना उन सबको मिल एक साथ प्राकृतिक एक रूपता के भी इसी प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं—और वे सारे सिद्धान्त भी जिनके आधार पर सिद्धान्त के रूप मे वर्णित करते है । य मामले विचित्र है बिल्कुल विशिष्ट है क्योंकि हमारे सारे अनुभव बहुलता से बिखरे हुए है । हम कदाचित ही उनम कोई अपवाद ढूढने मे असमर्थ रहे हो । इसलिए वे अन्तिम रूप से आवश्यक सत्य नही है । यह मानना केवल हमारी हडबडाहट को ही व्यक्त करता है कि कार्य-कारण का सिद्धान्त तारक क्षेत्रा के दूरतम मार्गो म भी लागू होता है । इसका मतलब अधिक से अधिक यही हो सकता है कि ये सिद्धान्त केवल शाब्दिक नही है—वे हम उन सारी आवश्यकताओ की पूर्ति करते दिखाई देते है जिन्हे हम अनुभवो से प्राप्त करना चाहते हैं ।

जब हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि कोई एक विशेष घटना अ किसी दूसरी विशेष घटना ब' को जन्म देती है जसा कि सभी भौतिक विज्ञानो म दिखाया जाता है—तो परिस्थिति पूर्णतया भिन्न होती है क्योंकि इस बारे म पहले

से सचेत होते हैं कि कोई घटना विभिन्न तथा विविध अवसरो पर अपनी पूववर्ती और अनुवर्ती घटनाएँ रख सकती है और किन्हीं अन्य अवसरो पर उनके बिना भी गतिमान रह सकती है। जब हम किसी कारण को नियत एव निरपाधिक पूववृत्त के रूप म परिभाषित करते हैं तो हम उन अवस्थाओं को उपेक्षित नही कर सकते जो इस बीच म घटित हो जाती हैं।

एडिनबरा रिव्यू (1820) के अक म जेम्स मिल द्वारा लिखे हुए "ऐसे आन गवनमट' पर मैकाले न एक खडनात्मक टिप्पणी की है जिसम उन्होंने अनुभवा से प्राप्त की जाने वाली शिक्षा-पद्धति पर लिखते हुए मिल के उस प्रयास का विरोध किया है जिसके आधार पर उन्होंने राजनीतिक गतिविधि की एक निगमनात्मक वैज्ञानिक प्रणाली निर्मित की थी। मिल अपने पिता के विरोध म भी मैकाले से इस बात से सहमत हो गए थे कि राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त उसी प्रकार की स्वय-सिद्ध प्रणाली पर नही बनाए जा सकते जिस प्रकार ज्यामिति के सिद्धान्त बनाए जाते हैं। इसके साथ ही मैकाले द्वारा अनुभव के पक्ष मे दी गई दलील विज्ञान-दृष्टि की प्रबल आलोचना है तथा बेतरतीब सामान्य ज्ञान के मुकाबले कही अधिक अथहीन है। इस प्रकार मिल को दो मोर्चों पर सघष करना पडा। एक ओर व्हैवेल के विरुद्ध उसे अनुभववाद की सुरक्षा करनी पडी तथा मैकाले के विरुद्ध उसकी सीमाओं की ओर निर्देश करना पडा। इस प्रकार, मिल के कथनानुसार, अनुभववाद कटु आलोचना का शिकार हुआ है। वे इस सबध म जिन वाक्याशो का प्रयोग करते हैं, वे हैं 'दोषयुक्त सामान्यीकरण अथवा अनुभववाद। प्रत्यक्ष आगमन अनुभववाद से किसी प्रकार श्रेष्ठ नही। वह स्वय अपने को अनुभववादी कहने के बजाय प्रयोगवादी कहना अधिक पसद करते थे और अनुभववाद का भार मैकाले पर छोडते थे। लेकिन यदि हम अनुभव के आधार पर सामान्यीकरण नही करेंगे तो आगे कस बढेंगे? हमारे पास अनुभव को एक नियमित क्रम से देखने के अतिरिक्त ऐसा सामान्य नियम बनाने का और क्या आधार हो सकता है? हम एक विशिष्ट अ अवस्था से दूसरी विशिष्ट ब अवस्था तक आगे बढे हैं—या कि अ के प्रकटन से उसके अनुवर्ती 'ब के होने के सकेत प्राप्त हुए हैं आदि आदि। इन सब बातो का जवाब मिल ने अपनी पुस्तक **ऑगस्ट कोम्ते एण्ड पोजिटिविज्म** (1865) म दिया है। वहा एक स्थान पर वे लिखते हैं कि एक आगमनात्मक रूप से अनुभव की गई सामान्य पदावली उसी समय सत्य सिद्ध होती है जब-काय कारण के मुकाबले म सामान्यीकरण करते समय की गई असगतियां गलत सिद्ध हो जायें और प्रस्तुत किये गये उदाहरण सही सिद्ध हो जाए। इसी के आधार पर इस तथ्य की सवव्यापकता भी सिद्ध हो जाए कि प्राकृतिक घटनाए अपरिवतनीय नियमो से परिचालित होती हैं। अब हम यह देखते हैं कि मिल अनुभववाद को त्यागते हुए किस दिशा मे बढने की कोशिश करते हैं?

जब हम मिल द्वारा दी गई तकपन्ी के परम्परागत विश्लेषण की आलोचना पढते है, हम र मन म हर वक्त जो बात रहती है वह यह कि पूछताछ करने की तार्किक प्रणाली सदव ही सगति योजन वाली शास्त्रीय तक-प्रणाली से श्रेष्ठ है। लेकिन अब यह सार निकलता है कि आगमनात्मक प्रणाली भी सगत तक शास्त्रीय प्रणाली का ही एक अग है । अ ब का कारण है यह तथ्य ही कायकारण सिद्धात क लिए एक असगति पदा कर दगा यदि उपयुक्त से ही यह सिद्ध कर दिया जावे कि अ, ब का कारण नही है ।

एक ही प्रकार स सचालित कायकारण क सिद्धा त क पक्ष म बोलत हुए मिल न स्वय ऐसा सकेत दिया है कि उसी प्रकार कायकारण क सिद्धा त तथा विशिष्ट काय-कारण-मूलक स्वीकृतिया एक सी ही है जिस प्रकार सभी मनुष्य मरणशील है तथा लाड पाममटन मरणशील है य दाना पदावलिया हैं । लेकिन स्पष्टत जसा इस पदावली से ध्वनित होता है वसी बात वास्तव म ह नही । यदि यह पदावली कि प्रत्यक घटना का एक कारण होता है प्रत्यक मनुष्य मरणशील हैं के समान ही है तो इस घटना का कोई कारण है तथा लाड पामसटन मरणशील है समानार्थी पदावलिया मानी जानी चाहिए—न कि यह कि इस घटना का कारण ब है'। लकिन दरअसल इस दूसर प्रकार की पदावली के आधार पर ही मिल यह बताना चाहते थ कि उसकी स्थिति काय-कारण-सिद्धात के लिए भी बेमेल होगी ।

यहा पर एक खाचा है—और वह खाचा है इन दो पदावलियो के बाच कि एक घटना घटित हुई है तथा इसका अमुक अमुक कारण है । अगर मिल यह स्थिति नही दख पाए ता वह उनकी इस धारणा क कारण ही है जिसके आधार पर वे एसा मानत हैं कि इन दोनो पदावलियो के बीच के खाचे को उन्हाने अपन प्रयागात्मक विधि से पूरित कर लिया है जिसके अन्तगत, सहमति भेद, अवशेष (रेसीडयूज) तथा सहपरिवतन (कानकामिटनट वेरियेशन)[1] की विधिया प्रयुक्त हुई हैं । इन सभी विधियो का सामान्य रूप सर्वोत्कृष्ट रूप म भेद विधि (मेथड आव डिफरेंस) स उदघत

1 य पद्धतिया सर जान हशल की डिस्कोस आन द स्टडी आव नेचुरल फिलासफी (1830) पर आधारित हैं । वे अच्छी हैं पर बहु आलोचित हैं । रब ब्रिटन एशूज तथा हैवल का 'आन मिल्स लाजिक (आन द फिलासफी आव डिस्कवरी), डब्लू० एस जेवन्स मिल्स फिलासफी टेस्ड (प्योर लाजक) (1830) । टी० एच० ग्रीन द लाजिक आव जे० एस० मिल, (वक्स भाग 2, 1886) एफ० एच० ब्रेडले द प्रिंसिपल्स आव लाजिक (1883) कुक विल्सन स्टेटमेंट एड इन्फरेंस (1926) एम० कोहेन तथा ई० नेजल इ टोड्क्शन टू लाजिक एड साइटिफिक मेथड (1934)

किया जा सकता है। मानलो कि हम लोहे में जंग लगने के कारण की खोज करना चाहते हैं। तब हम को कोई न कोई ऐसी स्थिति की खोज करनी पड़ेगी जिसमें लोहे में जंग लग जाता है और उसमें निहित विभिन्न अवस्थाओं का भी विश्लेषण करना होगा। हम यह भी खोज कर सकते हैं कि नमी, आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन सभी विद्यमान हैं—इनमें से हाइड्रोजन और नाइट्रोजन हटा देने से हम देखते हैं कि जंग लगना प्रारम्भ हो गया है और नमी तथा आक्सीजन को हटा देने से जंग लगना बन्द हो जाता है।

इस प्रकार जब जंग लगने की यह क्रिया कार्यकारण-सिद्धान्त के अनुसार निश्चय ही कोई अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती स्थिति लिए हुए है तो हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह आक्सीजन और नमी के कारण ही है जिसके होने से जंग भी लग जाता है और न होने से नहीं लगता।

इसे संक्षेप में या प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी घटनाओं का एक कारण होता है और चूंकि प्रस्तुत घटना में यह स्थिति आक्सीजन और नमी के कारण प्रकट हुई है इसलिए जंग का कारण नमी और आक्सीजन ही है। हम यहां यह मानना चाहिए कि यहां वास्तविक अनुमान विशिष्ट से विशिष्ट की ही प्रक्रिया को व्यक्त करने से ही प्रकट हुआ है। तब हम पूछ सकते हैं इस अनुमान की वैधता किस बात में है? हमें इसका यही जवाब मिल सकता है कि प्रस्तुत स्थिति का औचित्य इसी में है कि उसे एक साधारण अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया है। मिल का इस सम्बन्ध में आगे यह कहना है कि आगमनात्मक तर्क प्रणाली का कार्य उन नियमों तथा प्रकारों को प्रस्तुत करना है (जैसा कि तर्कपदों और इसके तार्किक अनुगणन (रेशियासिनेशन) के लिए बनाए गए नियमों में प्रस्तुत हुआ है) जिन्हें आगमनात्मक तर्क पूर्ण करते हैं तो वे तर्क निर्णयात्मक होते हैं, गलत नहीं। जो एक मात्र नियम वास्तव में हमारे ध्यान में आ गए हैं वे तर्कपदों के समान-धर्मी नहीं हैं किन्तु अनुभव से सिद्ध होने के कारण उन्हीं नियमों पर विवश होकर विश्वास करना पड़ता है। इस प्रकार मिल के कुछ अनुगामियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि या तो आगमन का कोई तार्किक आधार नहीं है अथवा फिर मिल की यह धारणा गलत है। गणनात्मक अनुभव के आधार पर प्राप्त की गई निश्चयात्मकता विशुद्ध रूप में मनोवैज्ञानिक है और उसे भी अनुभव-साहचर्य के नियमों पर आधारित माना गया है। इस प्रकार आगमन की समस्या अपूर्ण आगमन का शास्त्रीय औचित्य रूप की ही समस्या रह जाती है—और चाहें तो इसे सम्भावना के सिद्धान्त की सहायता से भी सिद्ध किया जा सकता है। कदाचित् इस पर मिल ने प्रयत्न नहीं किया था।

मिल के लिए दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसके कारण उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, अनुभववाद के स्थान पर प्रयोगवाद को प्रमुखता देना था।

जब हम मिल द्वारा दी गई तकपदी के परम्परागत विश्लपरा का आलोचना पढते हैं, हम।र मन म हर वक्त जो बात रहती है वह यह कि पृच्छाछ करने की तार्किक प्रणाली सन्व ही सगनि गाजने वाली शास्त्रीय तक-प्रणाली से श्रेष्ठ ह। लेकिन अब यह सार निकलता है कि आगमनात्मक प्रणाली भी सगत तक शास्त्रीय प्रणाली का ही एक अग है। अ व का कारण है यह तथ्य ही कायकारण सिद्धात के लिए एक असगति पदा कर देगा यदि उपयुक्त से ही यह सिद्ध कर दिया जाव कि अ, ब का कारण नही है।

एक ही प्रकार से सचालित कायकारण के सिद्धात क पम मे बोलत हुए मिल न स्वय ऐसा सकेत दिया है कि उसी प्रकार कायकारण के सिद्धात तथा विशिष्ट काय-कारण-मूलक स्वीकृतिया एक सी हा है जिस प्रकार सभी मनुष्य मरणशील हैं तथा लाड पामसटन मरणशील है ये दानो पदावलिया हैं। लकिन स्पष्टत जसा इस पदावली से ध्वनित होता है वसी बात वास्तव म है नहा। यदि यह पदावली कि 'प्रत्यक घटना का एक कारण होता है प्रत्येक मनुष्य मरणशील हैं के समान ही है ता 'इस घटना का कोई कारण है' तथा लाड पामसटन मरणशील है समानार्थी पदावलिया मानी जानी चाहिए—न कि यह कि इस घटना का कारण ब है'। लकिन दरअसल इस दूसरे प्रकार की पदावली के आधार पर ही मिल यह बताना चाहते थ कि उसकी स्थिति काय-कारण-सिद्धात क लिए भी बमेल होगी।

यहा पर एक खाचा है—और वह खाचा है इन दा पदावलियो क बाच कि एक घटना घटित हुई है तथा इसका अमुक अमुक कारण है। अगर मिल यह स्थिति नही देख पाए ता वह उनकी इस धारणा के कारण ही है जिसके आधार पर वे ऐसा मानते हैं कि इन दानो पदावलियो के बीच के खाच का उद्घाटन अपन प्रयोगात्मक विधि स पूरित कर दिया ह जिसके अन्तगत सहमति भेद अवशेष (रसीडयूज) तथा सहपरिवतन (कोनकोमिटेनट वरियेशन)[1] की विधिया प्रयुक्त हुई हैं। इन सभी विधियों का सामान्य रूप सर्वोत्कृष्ट रूप म भेद विधि (मेथड ऑव डिफरेन्स) स उत्पन्न

1 य पद्धतिया सर जान हशल की डिस्कोस आन द स्टडी आव नेचुरल फिलासफी (1830)' पर आधारित है। वे अच्छी हैं पर बहु आलाचित है। दखें श्लिन एशूज तथा हैवल का 'आन मिल्स लाजिक (आन द फिलासफी आव डिस्कवरी), डब्लू० एम जेवन्स मिल्स फिलासफी टस्टेड (प्योर लाजक) (1830)। टी० एच० ग्रीन द लाजिक आव ज० एस० मिल, (वक्स भाग 2, 1886) एफ० एच० ब्रेडले द प्रिंसिपल्स आव लॉजिक (1883) कुक विल्सन स्टेटमेंट एंड इन्फरेंस (1926) एम० कोहेन तथा ई० नेजल इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक एंड साइंटिफिक मेथड (1934)

किया जा सकता है। मानलो कि हम लाह में जंग लगने के कारण की खोज करना चाहते हैं। तब हम को कोई न कोई ऐसी स्थिति की खोज करनी पड़ेगी जिसमें लोहे में जंग लग जाता है और उसमें निहित विभिन्न अवस्थाओं का भी विश्लेषण करना होगा। हम यह भी खोज कर सकते हैं कि नमी, आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन सभी विद्यमान हैं—इनमें से हाइड्रोजन और नाइट्रोजन हटा देने से हम देखते हैं कि जंग लगना प्रारम्भ हो गया है और नमी तथा आक्सीजन को हटा देने में जंग लगाना बन्द हो जाता है।

इस प्रकार जब जंग लगने की यह क्रिया कार्यकारण सिद्धांत के अनुसार निश्चय ही कोई अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती स्थिति लिए हुए है तो हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह आक्सीजन और नमी के कारण ही है जिसके होने से जंग भी लग जाता है और न होने से नहीं लगता।

इसे संक्षेप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी घटनाओं का एक कारण होता है और चूंकि प्रस्तुत घटना में यह स्थिति आक्सीजन और नमी के कारण प्रकट हुई है इसलिए जंग का कारण नमी और आक्सीजन ही है। हमें यहां यह मानना चाहिए कि यहां वास्तविक अनुमान विशिष्ट से विशिष्ट की ही प्रक्रिया को व्यक्त करने में ही प्रकट हुआ है। तब हम पूछ सकते हैं इस अनुमान की वैधता किस बात में है? हमें इसका यही जवाब मिल सकता है कि प्रस्तुत स्थिति का औचित्य इसी में है कि उस एक साधारण अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया है। मिल का इस सम्बन्ध में आगे यह कहना है कि आगमनात्मक तर्क प्रणाली का कार्य उन नियमों तथा प्रकारों को प्रस्तुत करना है (जैसा कि तर्कपदी और इसके तार्किक अनुगणन (रेशियोसिनेशन) के लिए बनाए गए नियमों में प्रस्तुत हुआ है) जिन्हें आगमनात्मक तर्क पुष्ट करते हैं तो वे तर्क निर्णयात्मक होते है, गलत नहीं। जो एक मात्र नियम वास्तव में हमारे ध्यान में आ गए हैं वे तर्कपदी के समान-धर्मी नहीं हैं किन्तु अनुभव में सिद्ध होने के कारण उन्हीं नियमों पर विवश होकर विश्वास करना पड़ता है। इस प्रकार मिल के कुछ अनुगामियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि या तो आगमन का कोई तार्किक आधार नहीं है अथवा फिर मिल की यह धारणा गलत है। गणनात्मक अनुभव के आधार पर प्राप्त की गई निश्चयात्मकता विशुद्ध रूप में मनोवैज्ञानिक है और उसे भी अनुभव-साहचर्य के नियमों पर आधारित माना गया है। इस प्रकार आगमन की समस्या अपूर्ण आगमन का शास्त्रीय औचित्य बन की ही समस्या रह जाती है—और चाहे तो इसे सम्भावना के सिद्धांत की सहायता से भी सिद्ध किया जा सकता है। कदाचित इस पर मिल ने प्रयत्न नहीं किया था।

मिल के लिए दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसके कारण उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, अनुभववाद के स्थान पर प्रयोगवाद को प्रमुखता देना था।

उनके आगमनात्मक प्रमाणीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परिस्थिति को बहुत सी विभिन्न अवस्थाओ म विश्लेपित कर सकत है। इस प्रकार जग लगन वाले हमारे उदाहरण म हमको यह मानना पडा कि हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आक्सीजन और नमी क अतिरिक्त कोई अय उपकरण वहा उपस्थित नही ह—तब दूसर प्रकार के आकारगत तक द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं–चू कि जग लगन की अवस्थाओ क पूववर्ती के रूप म आक्सीजन हाइड्राजन, नाइट्रोजन तथा नमी है इसलिए इनम से कोई न कोई जग का कारण है ही। विश्लपण से भी हमने यह पाया था कि *आक्सीजन और नमी इसके कारण है। स्पष्टत यह तक एक गम्भीर समस्या खडी* कर देना है। हमारे पास इस बात का क्या प्रमाण है कि हमारे द्वारा माने गए तत्वा क अतिरिक्त उनक पूववर्ती कारणो म वे अय तत्व *नियमाण या विद्यमान नही रह* जिह हमने अनदखा कर दिया है।

मिल की विचारप्रणाली इस बात पर आधारित ह कि प्रत्यक स्थिति हमार सामन बहुत स उपकरणा का लेकर प्रस्तुत होती है। उनम से कारण का पता लगाना हमारा काम है। यह परम्परागत अनुभववादिया से महत्वपूण अलगाव की स्थिति है। मिल का कहना है कि अनुभव हमारे सामने उपकरणा का विशुद्ध रूप म ही प्रस्तुत करता है जिनके सहारे सामाय तत्व की खोज करनी ही पडती है। इस तरह आगमन एक विशेष से दूसरे विशेष की ओर जाना न होकर सम्मुख प्रस्तुत *हुए विभिन्न उपकरणो मे स एक तरीका चुनने म निहित ह। इस विधि क आधार* पर अ ब, स आदि म स यह चुनना पडता है कि कौन प्रस्तुत स्थिति का वास्तविक कारण है ? और इस तरह जो तक प्रणाली इसके लिए काम म लाई जाती है वह शास्त्रीय तक प्रणाली ही है।

यदि आगमन के लिए किसी विशेष तकविधि को काम म लाया जाना ता वह सम्भवत उन नियमो की शृ खला का ही रूप ले सकता था जिनके आधार पर यह कहना सम्भव होता कि किन सामाय *अवस्थाओ स कौनसी विशेष अवस्थाए* हमारे चुन व म सहायक हा सकती है। लकिन इस प्रकार की तव प्रणाली निर्मित करने का *मिल न प्रयास ही नही किया। ह्वैवेल के मतानुसार इन प्रणालियो की* दुबलता यही है कि इनमे हम उही चीजा को पहन से मानकर चलन लगत हैं जिह खाज पाना अत्यत मुश्किल है। हम अ ब अथवा स जसी स्थितिया जीवन म कहा मिलती है ? प्रकृति स्थितिया का हमार सम्मुख इस तरह कभी नही रखती। तब हम उह इस आकार म रखन के क्से हकदार हैं ? यहा आकर भी मिल के अनुगामिया का उनस मतभेद रहा। इन अनुगामियो न एक एसी तकप्रणाली का प्रवतन करने का प्रयास किया था जिसमें धार धीरे एक एक असबद्ध स्थितिया की छटनी हा जाए ता ह्वैवल *की आलाचना की पात्र भी न बन।*

मिल ने स्वयं भी अपनी उन बहुत सी कमजोरियों का पता लगा लिया था जिन्हें आलोचकों ने बनाया है। उन्होंने यह बात स्वीकार की कि तर्क प्रणाली का विकास करते समय मैंने कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की उपेक्षा नहीं की है। इस बारे में दृढतापूर्वक कह सकना असंभव है। उन्होंने बहुकारणवाद (प्लूरेलिटी आव काजेज) का सिद्धान्त प्रवर्तित करके तो स्थिति को और भी जटिल बना दिया था। एक 'कारण' का अविभाज्य रूप से कार्य की पूर्ववर्ती अवस्था बनाने के बावजूद भी वे यह कहते हैं कि वही कार्य अन्य दूसरे कारणों से दूसरी परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है। उनकी यह धारणा उनकी सारी तर्क प्रणाली का मटियामेट कर देती है। इसका यही अर्थ हुआ कि यदि कार्य के लिए बहुत से दूसरे कारण भी हो सकते हैं तो जो एक कारण हमने बनाया है वह उसका मूल कारण नहीं। लेकिन मिल के अनुसार ये कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। इनके बारे में जानकारी होना इस बात का द्योतक है कि वैज्ञानिक अनुसंधान कोई सरल कार्य नहीं है।

कहने का तात्पर्य यही है कि ऊपर दी गयी चार विधियाँ एक ओर हम अनुभवों के और परीक्षणों के आधार पर किसी निष्कर्ष की ओर ले जाने में भी उपयोगी लगती हैं। इस संबंध में प्रकट रूप से उपस्थित हो जाने वाली कठिनाइयों के कारण ही भौतिक वैज्ञानिक तथा उससे भी कहीं अधिक समाज-विज्ञान-शास्त्री अपने लिए सहाय विधियों का प्रयोग करते हैं।

मिल के अनुसार भौतिक-विज्ञान-विद इन चार विधियों की सहायता से कुछ एसे नियमों की स्थापना करता है जिनमें से प्रत्येक सामान्य अनुभवों को व्यक्त करने वाले होते हैं। यह वह सीमा-रेखा है जहाँ तक प्रयोग विधि के जरिए मिल अपनी सामर्थ्य भर आगे बढ़ सकने हो। किसी ऐसे नियम के आधार पर जो स्वयं ऐसे ही चुन लिया गया हो, कोई भौतिक-विज्ञान विद् किसी विशेष वस्तु के व्यवहार के बारे में शायद कोई अनुमान कर सकता हो। इसलिए इन नियमों को आबद्ध करना होगा। किसी गिरती हुई वस्तु के मार्ग की भविष्यवाणी करते समय वह गुरुत्वाकर्षण और विकर्षण के नियमों का सहारा लेता है। यह वह इसलिए भी कर पाता है क्योंकि गणित में इनके नियमों का अनेक सम्मिलित रूप में किया जाना भी असंभव है। दूसरी बात यह है कि एक भौतिक-विज्ञान-विद अपने अर्जित अनुमानों का गिरती हुई वस्तु के वास्तविक व्यवहार द्वारा भी जान सकता है। यदि वस्तु के व्यवहार में तथा उसकी भविष्यवाणियों में भेद है तो मिल के अनुसार, यह किसी अवस्था का अनदेखा किए जाने के कारण ही है। इसलिए वे इन गलतियों के होने की संभावना में भी एक नियम की खोज करते हैं। परीक्षण के दौरान हो सकने वाली भूलों के संबंध में बनाए जाने वाली विधि, जो नियमों का निष्कर्ष तक पहुँचाने में सहायक होती है और जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव से सुधारा जा सकता है प्रकृति के नियमों की खोज में किए जाने वाले परीक्षणों में मनुष्य की एक बहुत बड़ी विजय का प्रतीक

उनके आगमनात्मक प्रमाणीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परिस्थिति को बहुत सी विभिन्न अवस्थाओं म विश्लेषित कर सकते हैं। इस प्रकार जग लगन वाले हमारे उदाहरण में हमको यह मानना पड़ा कि हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन और नमी के अतिरिक्त कोई अन्य उपकरण वहा उपस्थित नही है—तब दूसरे प्रकार के आकारगत तर्क द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं—*चूकि जग लगन की अवस्थाओं के पूववर्ती के रूप म आक्सीजन हाइड्रोजन नाइट्रोजन तथा नमी है इसलिए इनमें से कोई न कोई जग का कारण है ही।* विश्लेषण से भी हमने यह पाया था कि आक्सीजन और नमी इसके कारण हैं। स्पष्टत यह तर्क एक गम्भीर समस्या खड़ी कर देता है। हमारे पास इस बात का क्या प्रमाण है कि हमारे द्वारा माने गए तत्वों के अतिरिक्त उनके पूववर्ती कारणों म वे अन्य तत्व क्रियमाण या विद्यमान नही रहे जिन्हें हमने अनदेखा कर दिया है।

मिल की विचारप्रणाली इस बात पर आधारित है कि प्रत्येक स्थिति हमारे सामने बहुत से उपकरणों को लेकर प्रस्तुत होती है। उनमें से कारण का पता लगाना हमारा काम है। यह परम्परागत अनुभववादियों से महत्वपूर्ण अलगाव की स्थिति है। मिल का कहना है कि अनुभव हमारे सामने उपकरणों का विशुद्ध रूप में ही प्रस्तुत करता है जिनके सहारे सामान्य तत्व की खोज करनी ही पड़ती है। इस तरह आगमन एक विशेष से दूसरे विशेष की ओर जाना न होकर सम्मुख प्रस्तुत हुए विभिन्न उपकरणों में से एक तरीका चुनने में निहित है। इस विधि के आधार पर *अ, ब, स आदि में से यह चुनना पड़ता है कि कौन प्रस्तुत स्थिति का वास्तविक कारण है? और इस तरह जो तर्क प्रणाली इसके लिए काम में लाई जाती है* वह शास्त्रीय तर्क प्रणाली ही है।

यदि आगमन के लिए किसी विशेष तकविधि को काम में लाया जाता तो *वह सम्भवत उन नियमों की शृंखला का ही रूप ले* सकता था जिनके आधार पर यह कहना सम्भव होता कि किन सामान्य अवस्थाओं से कौनसी विशेष अवस्थाएं हमारे चुनाव में सहायक हो सकती हैं। लेकिन इस प्रकार की तर्क प्रणाली निर्मित करने का मिल ने प्रयास ही नहीं किया। व्हैवल के मतानुसार इन प्रणालियों की दुबलता यही है कि इनमें हम उन्हीं चीजों को पहले से मानकर चलने लगते हैं जिन्हें खोज पाना अत्यन्त मुश्किल है। हम अ ब अथवा स जैसी स्थितियां जीवन में कहा मिलती हैं? प्रकृति स्थितियों को हमारे सम्मुख इस तरह कभी नहीं रखती। तब हम इन्हें इस प्रकार में रखने के कैसे हकदार हैं? यहां आकर भी मिल के अनुगामियों का उनसे मतभेद रहा। इन अनुगामियों ने एक ऐसी तर्कप्रणाली का प्रवतन करने का प्रयास किया था जिसमें धीरे धीरे एक एक असंबद्ध स्थितियों की छटनी हो जाए तो व्हैवल की आलोचना की पात्र भी न बने।

मिल ने स्वयं भी अपनी उन बहुत सी कमजोरियों का पता लगा लिया था जिन्हें आलोचकों ने बताया है। उन्होंने यह बात स्वीकार की कि तर्क प्रणाली का विकास करते समय मैंने कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की उपेक्षा नहीं की है। इस बारे में दृढतापूर्वक कह सकना असंभव है। उन्होंने बहुकारणवाद (प्लूरलिटी आव काजेज) का सिद्धान्त प्रवर्तित करके तो स्थिति को और भी जटिल बना दिया था। एक कारण' का अविभाज्य रूप से कार्य की पूर्ववर्ती अवस्था बनाने के बावजूद भी वह यह कहते हैं कि वही कार्य अन्य दूसरे कारणों से दूसरी परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है। उनकी यह धारणा उनकी सारी तर्क प्रणाली को मटियामेट कर देती है। इसका यही अर्थ हुआ कि यदि कार्य के लिए बहुत से दूसरे कारण भी हो सकते हैं तो जो एक कारण हमने बताया है वह उसका मूल कारण नहीं। लेकिन मिल के अनुसार ये कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। इनके बारे में जानकारी होना इस बात का द्योतक है कि वैज्ञानिक अनुसंधान कोई सरल कार्य नहीं है।

कहने का तात्पर्य यही है कि ऊपर दी गयी चार विधियाँ एक ओर हमें अनुभवों के और परीक्षणों के आधार पर किसी निष्कर्ष की ओर ले जाने में भी उपयोगी लगती हैं। इस संबंध में प्रकट रूप से उपस्थित हो जाने वाली कठिनाइयों के कारण ही भौतिक वैज्ञानिक तथा उससे भी कहीं अधिक समाज-विज्ञान-शास्त्री अपने लिए सहाय विधियों का प्रयोग करते हैं।

मिल के अनुसार भौतिक-विज्ञान-विद, इन चार विधियों की सहायता से कुछ ऐसे नियमों की स्थापना करता है जिनमें से प्रत्येक सामान्य अनुभवों को व्यक्त करने वाले होते हैं। यह वह सीमा-रेखा है जहाँ तक प्रयोग विधि के जरिए मिल अपनी सामर्थ्य भर आगे बढ़ सकने हों। किसी ऐसे नियम के आधार पर जो स्वयं एक ही चुन लिया गया हो कोई भौतिक-विज्ञान विद किसी विशेष वस्तु के व्यवहार के बारे में शायद कोई अनुमान कर सकता हो। इसलिए इन नियमों का आबद्ध करना होता। किसी गिरती हुई वस्तु के मार्ग की भविष्यवाणी करते समय वह गुरुत्वाकर्षण और विकर्षण के नियमों का सहारा लेता है। यह वह इसलिए भी कर पाता है क्योंकि गणित में इनके नियमों का अंकन सम्मिलित रूप में किया जाना भी संभव है। दूसरी बात यह है कि एक भौतिक-विज्ञान-विद अपने अनुमानों का [illegible] हुई वस्तु के वास्तविक व्यवहार द्वारा भी जान सकता है। यदि वस्तु के [illegible] तथा उसकी भविष्यवाणियों में भेद है तो मिल के अनुसार [illegible] अनदेखा किए जाने के कारण ही है। इसलिए व [illegible] में भी एक नियम की खोज करते हैं। परीक्षण के दौरान [illegible] संबंध में बनाए जाने वाली विधि जो नियमों का [illegible] होती है और जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव से सुधारा जा [illegible] खोज में किए जाने वाले परीक्षणों में [illegible]

है और जिसके लिए मनुष्य का मन हमेशा हमेशा के लिए कृतज्ञ रहेगा। स्पष्टतः वे यहाँ पर एक ऐसी स्थिति की अधिक यथार्थ स्थापना की ओर बढ़ रहे हैं जिसमें वैज्ञानिक स्वयं अपने आपको प्रवृत्त पाता है। यहाँ पर हमको अब इस बात की अधिक आवश्यकता नहीं रहती कि वह एक पूर्ण रूप से विश्लेषित स्थिति पर ही कार्य करें। अब महत्व भविष्यवाणियों तथा परिश्रमों पर दिया जा रहा है। किसी मामले में इस तरह से दृष्टिपात करना मिल के अनुगामियों ने यहाँ और उनसे सीखा।

अपने द्वारा किये गये सामाजिक विज्ञानों की प्रणाली के वर्णन में मिल अपने मौलिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से भी आगे बढ़ जाते हैं। यहाँ आकर सामाजिक-विज्ञानवेत्ता एक निगमनात्मक विधि का प्रयोग करने लग जाते हैं।

यह सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए बिल्कुल यथार्थ स्थिति है कि वे ज्यामिति विधि की नकल करें (जैसा कि जेम्स के पिता ने अपनी रचनाओं में किया है) क्योंकि समाज में जो चीज़ घटित होती है वह मानव विशेष समय में निश्चित ऐतिहासिक स्थिति से प्रभावित होती है। भौतिकशास्त्र का तरीका भी अनुकरणीय तथा सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि वहाँ पर सामाजिक प्रवृत्तियों के मिले जुले प्रभाव का अन्दाज लगाने का कोई तरीका सुझाया नहीं गया। मेकाले की भाँति हमें समाज का सीधा अध्ययन करना होगा और तब सामान्यीकरण के सिद्धान्त बनाने होंगे जो कि इतिहास के साक्ष्य पर और विकास पर आधारित होंगे। इस स्थिति पर भी हम स्थायी नहीं रह सकते। राजनीतिक विषयों पर सही प्रणालियाँ हैं जो कि बेकन के आगमन के सिद्धान्त पर आधारित हैं।[1] यह मानना बेहूदा विचार है और एक दिन इस किसी युग के विचार-प्रणाली के दिवालियापन के रूप में प्रस्तुत किया जायगा। समाजशास्त्री को मकॉले के प्रतिकूल यह दर्शाना चाहिए कि ऐतिहासिक सामान्यीकरण सही रूप में हमारे मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है। कोम्ते इसी बात को जीव विज्ञान के सहारे सिद्ध करते। इस प्रकार मनुष्य की प्रवृत्ति में सामाजिक नियमों का प्रयोगात्मक विधि के सहारे निगमन करके समाजशास्त्री पहले ऐतिहासिक दृष्टि से सामान्यीकरण करते हैं और तब यह दर्शाते हैं कि ये नियम प्रयोगात्मक विधि से भी निगमित किए जा सकते थे। मिल द्वारा विज्ञान-विधि का विस्तृत विश्लेषण उनके निगमन के सिद्धान्त से अधिक सूक्ष्म और जटिल है।

---

1 एस० वी० रासमुसन **सर विलियम हैमिल्टन (1925)** डब्लू० ए० एस० मार्क **सर विलि० हैमि० (1881)** जान वीच **'हैमिल्टन' (1882)** लेसली स्टीवन का हैमि० पर लेख (डी० ने० बा०) वीच ने हैमिल्टन का मिल के आक्षेप से बचाया है। मिल के एग्जामिनेशन के कुछ पहलुओं को ई० नेजला ने सकलित किया है सपा० ए० आयर व आर० विच० (1951)। द्रष्टव्य सेथ **स्काटिस फिलासफी (1885)** हैमिल्टन का एक लेख जो **डिस्कशन्स आन फिलासफी एड लिटरेचर (1852)** में सकलित है उसकी फिलासफी आव द अनकडीशड पर प्रकाश डालता है।

मस्तिष्क म कुछ अपेक्षाएँ विद्यमान रहती हैं अर्थात हमारा मन सम्भावित सवेदनाओ की कल्पना कर सकता है, उन सवेदनाओ की जो वतमान अनुभव को प्रकट नहीं कर रही है अपितु विभिन्न परिस्थितिया म विभिन्न अवसरो पर उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, जब हम अपने आग मे कहते हैं, यदि आग बुझ जायगी तो मै ठण्डा हो जाऊँगा'। उनकी दूसरी मान्यता है कि मन साहचय से कायशील है। यदि दो सवदनाएँ एक साथ अनुभव हुई हैं तो उनके बारे म ऐसा विचार किया जाता है कि वे नियमित क्रम से एकदूसरी के समानान्तर चल रही थी। और यदि उनका यह साहचय निरन्तर हो और उसे हम तत्काल अलग नहीं कर सकें तो ऐसा मान लिया जाता है।

चूंकि हम अपेक्षाए रखते हैं इसलिये हम उनके आधार पर एसे जगत् की रचना कर सकते हैं जो हमारी वतमान अनुभूतियो से पूरी तौर पर जुडा हुआ भी न हो। मानलो कि हम कमरे से बाहर आते हैं। बाहर की सभी अवस्थाओ की कल्पना का ध्यान हम वसे ही रहता है चाहे हम अभी उन्हें नही देख रहे हैं। क्योंकि हम कुछ ऐसी सवदनाएँ प्राप्त करने की अपेक्षा कमरे मे लौट आने पर रहती हैं। कमरे का निरन्तर अस्तित्व इस तथ्य पर निभर करता है कि एक विशेष प्रकार की सवदनाओ को निरन्तर प्राप्त करने की स्थिति हमारे सामने उस रूप मे विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी सम्भव सवेदनाओ के प्रति हमारी अपेक्षाएँ जिनको मिल ने विस्तार स वर्णित किया है तत्व या वस्तु के प्रति हमारे मन म एक धारणा उत्पन्न करने म सहायक होती है और इन्हें मिल बाह्य जगत म अस्तित्वमान मानते है। मिल कहते है कि पदाथ निश्चय ही सवदनाओ की निरन्तर सम्भावना का नाम है और बाह्य जगत की स्थिति नियमानुसार परिचलित एक सवेदना का निरन्तर अनुसरण करती हुई दूसरी सवदनाओ के होने के कारण ही है। मिल द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्कोटीय विचार-प्रणाली के चेतना से सीधी मुक्ति के सिद्धान्त से काफी अलग है, और यह सिद्ध करता है कि बाह्य जगत के बारे म हमारी धारणा शनै शनै विचार-साहचय-प्रक्रिया से निर्मित होती है।

क्या हमारे मन के निरन्तर अस्तित्व के प्रति विश्वास का इसके समकक्ष कोई और उदाहरण कहीं मिल सकता है? मिल के मतानुसार कदाचित् नहीं, क्योंकि मन न केवल सवदनाओ को समेटता है अपितु स्मृतियो और अपेक्षाओ की भी स्थिति को स्वीकारता है और ये स्थितिया ही अपने आप इस विश्वास का सिद्ध करती हैं कि मुझे कभी कोई अनुभव हुआ था, या आगे होने वाला है। इस प्रकार यदि हम कह कि मन भावनाओ की शृंखला है तो हमे इसकी पूर्ति यह मानकर भी करनी पड़ेगी कि मन भूत और भविष्य के प्रति सजग अनुभूतियो की शृंखला भी है और इस तरह हम यह मानने के लिए विवश हो जाते है कि मन या अहम् की स्थिति किसी भी प्रकार की भावना, शृंखला से अथवा उनकी भविष्य

मस्तिष्क में कुछ अपेक्षाएँ विद्यमान रहती हैं अर्थात् हमारा मन सम्भावित संवेदनाओं की कल्पना कर सकता है, उन संवेदनाओं की जो वर्तमान अनुभव का प्रकट नहीं कर रही हैं अपितु विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न अवसरों पर उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, जब हम अपने आप से कहते हैं, 'यदि आग बुझ जायगी तो मैं ठण्डा हो जाऊँगा'। उनकी दूसरी मान्यता है कि मन साहचर्य में क्रियाशील है। यदि दो संवेदनाएँ एक साथ अनुभव हुई हैं तो उनके बारे में ऐसा विचार किया जाता है कि वे नियमित क्रम से एकदूसरी के समानान्तर चल रही थीं। और यदि उनका यह साहचर्य निरन्तर हो और उसे हम तत्काल अलग नहीं कर सकें तो ऐसा मान लिया जाता है।

चूँकि हम अपेक्षाएं रखते हैं, इसलिये हम उनके आधार पर एक जगत् की रचना कर सकते हैं जो हमारी वर्तमान अनुभूतियों से पूरी तौर पर जुड़ा हुआ भी न हो। मानलो कि हम कमरे से बाहर आते हैं। बाहर की सभी अवस्थाओं की कल्पना या ध्यान हमें बस ही रहता है चाहे हम अभी उन्हें नहीं देख रहे हैं। क्योंकि हम कुछ ऐसी संवेदनाएँ प्राप्त करने की अपेक्षा कमरे में लौट आने पर रखते हैं। कमरे का निरन्तर अस्तित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि एक विशेष प्रकार की संवेदनाओं को निरन्तर प्राप्त करने की स्थिति हमारे सामने उस रूप में विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी सम्भव संवेदनाओं के प्रति हमारी अपेक्षाएँ, जिनको मिल ने विस्तार से वर्णित किया है, तत्व या वस्तु के प्रति हमारे मन में एक धारणा उत्पन्न करने में सहायक होती हैं और इन्हें मिल बाह्य जगत में अस्तित्वमान मानते हैं। मिल कहते हैं कि पदार्थ निश्चय ही संवेदनाओं की निरन्तर सम्भावना का नाम है और बाह्य जगत की स्थिति नियमानुसार परिचालित एक संवेदना का निरन्तर अनुसरण करती हुई दूसरी संवेदनाओं के होने के कारण ही है। मिल द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्काटीय विचार-प्रणाली के चेतना से सीधी मुक्ति के सिद्धान्त से काफी अलग है, और यह सिद्ध करता है कि बाह्य जगत के बारे में हमारी धारणा शनैः शनैः विचार-साहचर्य-प्रक्रिया से निर्मित होती है।

क्या हमारे मन के निरन्तर अस्तित्व के प्रति विश्वास का इसके समकक्ष कोई और उदाहरण कहीं मिल सकता है? मिल के मतानुसार कदाचित् नहीं, क्योंकि मन न केवल संवेदनाओं का समूह है अपितु स्मृतियों और अपेक्षाओं की भी स्थिति को स्वीकारता है और ये स्थितियाँ ही अपने आप इस विश्वास को सिद्ध करती हैं कि मुझे कभी कोई अनुभव हुआ था, या आगे होने वाला है। इस प्रकार यदि हम कहें कि मन भावनाओं की शृंखला है तो हम इसकी पूर्ति यह मानकर भी करनी पड़ेगी कि मन भूत और भविष्य के प्रति सजग अनुभूतियों की शृंखला भी है और इस तरह हम यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि मन या अहम् की स्थिति किसी भी प्रकार की भावना, शृंखला से अथवा उनकी भविष्य

की सम्भावनाओं से अलग नहीं है। इसस विरोधाभास के रूप में यह बात भी हमें स्वीकार करनी पड़ जाती है कि अनुभूति की शृंखला में बाह्य कारण (एक्स हाइ पाथसी) रहे है। उनके प्रति भी मन स्वत सजग हो सकता है। यहाँ आकर मिल के कुछ अनुवर्तियों ने ऐसा माना है कि उनके घटनावाद के सिद्धान्त का भंजन हो गया है और कुछ के अनुसार यहाँ घटनावाद को चुनौति-पूर्वक अधिक संतापप्रद ढंग से पुन: स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

हैमिल्टन स्वाभाविक विश्वासों के सिद्धान्त का न केवल प्रणेता ही था वह ज्ञान की सापेक्षिकता के तथा निर्बन्धता के दर्शन (फिलोसाफी आव अनकण्डीशण्ड) का भी प्रवर्तक था। मोटे तौर पर मिल को यह दर्शन में कठिनाई नहीं हुई कि हैमिल्टन ने जिस प्रकार विभिन्न तरीकों में गूढ़ तत्त्व मायासंकेतों का प्रयोग किया—उसके अनुसार यह मानकर काम चल जाता है कि यद्यपि हम मन और पदार्थ की स्वतन्त्र रूप से विद्यमान सत्ता के प्रति सीधे सचेत होते हैं फिर भी न तो मन की न पदार्थ की स्वायत्त स्थितियों से हमारा परिचय हो हो सकता है। हम वस्तुओं को उसी रूप में जानते है जिस रूप में उनका हमारे अनुभव से सम्बन्ध होता है उस रूप मे नहीं जिसमें वे निर्बाध रूप से हमारी इन्द्रिय-चेतना के बाहर विद्यमान रहती है। हैमिल्टन के सब प्रसिद्ध अनुवर्ती हेनरी मन्सल ने इस सिद्धान्त का उस सीमा तक तो पालन किया जहाँ तक उसका हमारे आत्म ज्ञान से सम्बन्ध न होकर ईश्वर के ज्ञान से सम्बन्ध हो। इसका उन्होंने अपनी 1885 में प्रकाशित पुस्तक **'द लिमिटस आफ रिलीजस थाट'** में उल्लेख किया है। ईश्वर अपने आप में क्या है यह जानना असम्भव है। इसलिए उसके वर्णन के लिये उपयोग मे लाए जाने वाले शब्द प्रतीकात्मक ही हो सकते हैं। शब्दश उसका वर्णन करना सम्भव नहीं। शब्दश उसका वर्णन करने का मतलब विरोधाभास का आह्वान करना है।[1]

इस तरह यदि हम कहते है कि ईश्वर अच्छा है तो वह अच्छाई मानवी अच्छाई से न केवल आंशिक रूप से अपितु वस्तुत भिन्न होनी चाहिए। मन्सल ने लिखा है कि हमारे भौतिक कष्ट नैतिक बुराइयाँ भले आदमी का यातना मे पड़ना दुष्टों का समृद्ध होना, ये ऐसे तथ्य है जिन्हें निस्सदेह सुधारा जा सकता है और हो सकता है

1 मन्सल की इस विचारधारा ने काफी हलचल मचा दी थी। किन्तु ये विचार ह्यूम द्वारा लिखित पुस्तक **"डायलोग्स आव नेचुरल रिलीजन"** के पात्र **'डमिया'** से काफी मेल खाते हुए लगते है। फर्क इतना ही है कि इन्हें हैमिल्टन की तत्त्ववादी माया के जरिए पुन स्थापित करने का प्रयास किया गया है और उनमें हैमिल्टन के द्वारा सुझाए कुछ सुधार भी विद्यमान हैं। स्काटीय विचार पद्धति के कोई भी अनुयायी हैमिल्टन के अनास्थावादी विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। द्रष्टव्य एच० काल्डरवुड की पुस्तक **फिलोसोफी आफ द इनफिनिट (1854)**

इसने ईश्वर की असीम अच्छाई का हाथ हो, किन्तु निश्चय के साथ यह मान लेना सही नहीं है। इसका एकमात्र और संतोषप्रद रूप 'सीमित मानवीय अच्छाई' के विचार से मिल सकता है।

स्वाभाविक आध्यात्मवाद पर आक्रमण ने मिल के नैतिक क्रोध को काफी भड़काया। उन्होंने लिखा कि मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति को अच्छा नहीं मानूंगा जिसकी अच्छाई का सम्बन्ध मेरे जैसे मनुष्यों से न हो और यदि ऐसा करने के कारण मुझे यह तथाकथित अच्छा व्यक्ति नरक की सजा देता है तो मैं वहां जाने के लिए भी तैयार हूं। मिल का अध्यात्मवाद विशद रूप से उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई पुस्तक थ्री एसेज ऑन रिलीजन (1879)[1] में मिलता है। उनके पिता ने ईसाई धर्म को न केवल एक भ्रम ही कहा था किन्तु एक महान नैतिक बुराई भी बताया था। वास्तव में उसे नैतिकता का सबसे बड़ा शत्रु भी माना था। मिल ने इसी बात को जरा संजीदगी से यों कहा : अनुभव ने मनुष्य की उस प्रबल आशा को झुठला दिया है जिसे कभी मनुष्य जाति के पुनर्निर्माण का तत्व माना जाता था और जो नकारात्मक धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह बात, जैसे जैसे अन्ध-विश्वास दूर हुए, वैसे वैसे साफ होती गई। लेकिन मिल भी स्रष्टा के उस परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं कर सके जिसमें उसे सर्वशक्तिमान और मंगलकारी माना गया है। अधिक से अधिक हम यह मान सकते हैं, और वह भी पूर्व निश्चय के साथ नहीं, कि यह जगत किसी विवेकशील मस्तिष्क द्वारा सर्जित किया गया है जिसकी पूर्व शक्ति सृष्टि के उपकरणों पर नहीं थी और न उसका जीव मात्र के प्रति प्रेम ही पूर्ण था। फिर भी वह मानव मात्र का भला चाहता था। यह तर्क प्राकृतिक व्यापारों के पीछे एक रचनात्मक मन (डिजाइन) होने की बात को सिद्ध करता है। मनुष्य में, अपनी शक्ति भर, प्राकृतिक व्यापारों की अनुकृति से कुछ उसी प्रकार की रचना करने की क्षमता है।

इसीलिए, सृष्टि की रचना यदि सर्वशक्तिमान नहीं तो अधिक शक्तिशाली मन द्वारा हुई, ऐसा माना गया। मिल ने कहा कि यदि मेन्सल की इस बात को सही मान लिया जाय कि ईश्वरीय मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से सर्वथा भिन्न है तो ईश्वर के अस्तित्व के सारे विचार ध्वस्त हो जाएंगे।

---

1 तुलनात्मक दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, डब्लू० जी० वार्ड की एसेज ऑन द फिलोसोफी ऑफ थीइज्म (1884) वार्ड ने, जो ऑक्सफोर्ड आन्दोलन के प्रमुख सदस्य थे, और जिनको 1845 में कैथोलिक बना लिया गया, मिल के घटनावाद को अन्त साक्ष्य सिद्धान्तों की संज्ञा देकर काफी चोटें पहुंचाई। यह मिल का एक तरह से पुनर्जन्म माना गया है।

की सम्भावनाओं से अलग नहीं है। इस विरोधाभास के रूप में यह बात भी हमें स्वीकार करनी पड जाती है कि अनुभूति की शृंखला में बाह्य कारण (एक्स हाइ पोथसी) रहे हैं। उनके प्रति भी मन स्वत सजग हो सकता है। यहाँ आकर मिल के कुछ अनुवर्तियों ने ऐसा माना है कि उनके घटनावाद के सिद्धान्त का भजन हो गया है और कुछ के अनुसार यहाँ घटनावाद को चुनौति-पूर्वक अधिक सतोषप्रद ढंग से पुन स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

हैमिल्टन स्वाभाविक विश्वमा के सिद्धान्त का न केवल प्रणेता ही था वह ज्ञान की सापेक्षिकता के तथा निबन्धता के दर्शन (फिलोसाफी आव अनकण्डीशण्ड) का भी प्रवर्तक था। मोटे तौर पर मिल को यह दर्शाने में कठिनाई नहीं हुई कि हेमिल्टन ने जिस प्रकार विभिन्न तरीकों से गुटनिरपेक्ष भाषासंकेतों का प्रयोग किया—उसके अनुसार यह मानकर काम चल जाता है कि यद्यपि हम मन और पदार्थ की स्वतन्त्र रूप से विद्यमान सत्ता के प्रति सीधे सचेत होते हैं फिर भी न तो मन की न पदार्थ की स्वायत्त स्थितियों से हमारा परिचय हो हो सकता है। हम वस्तुओं को उसी रूप में जानते हैं जिस रूप में उनका हमारे अनुभव से सबंध होता है उस रूप में नहीं जिसमें वे निर्बाध रूप से हमारी इन्द्रिय-चेतना के बाहर विद्यमान रहती हैं। हैमिल्टन के सबसे प्रसिद्ध अनुवर्ती हेनरी मेन्सल ने इस सिद्धान्त का उस सीमा तक तो पालन किया जहाँ तक उसका हमारे आत्मज्ञान से सम्बन्ध न होकर ईश्वर के ज्ञान से सबंध हो। इसका उन्होंने अपनी 1885 में प्रकाशित पुस्तक **'द लिमिटस आफ रिलीजस थाट'** में उल्लेख किया है। ईश्वर अपने आप में क्या है यह जानना असभव है। इसलिए उसके वर्णन के लिये उपयोग में लाए जाने वाले शब्द प्रतीकात्मक ही हो सकते हैं। शब्दश उसका वर्णन करना समव नहीं। शब्दश उसका वर्णन करने का मतलब विरोधाभास का आह्वान करना है।[1]

इस तरह यदि हम कहते हैं कि ईश्वर अच्छा है तो वह अच्छाई मानवी अच्छाई से न केवल आंशिक रूप से अपितु वस्तुत भिन्न होनी चाहिए। मेन्सल ने लिखा है कि हमारे भौतिक कष्ट नैतिक बुराइयाँ भले आदमी का यातना में पडना दुष्टों का समृद्ध होना, ये ऐसे तथ्य हैं जिन्हें निस्सन्देह सुधारा जा सकता है और हो सकता है

1 मन्सल की इस विचारधारा ने काफी हलचल मचा दी थी। किन्तु ये विचार ह्यूम द्वारा लिखित पुस्तक **'डायलोग्स आव नेचुरल रिलाजन'** के पात्र **'डमिया'** से काफी मेल खाते हुए लगते हैं। फर्क इतना ही है कि इन्हें हैमिल्टन की तत्ववादी भाषा के जरिए पुन स्थापित करने का प्रयास किया गया है और उनमें हैमिल्टन के द्वारा सुझाए कुछ सुधार भी विद्यमान हैं। स्काटीय विचार पद्धति के कोई भी अनुयायी हैमिल्टन के अनाम्यावादी विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। द्रष्टव्य ए० के टइरवुड की पुस्तक **फिलोसोफी आफ द इनफिनिट (1854)**

इमन ईश्वर की असीम अच्छाई का हाथ हो किन्तु निश्चय के साथ यह मान लेना सही नहीं है। इसका एकमात्र और संतोषप्रद रूप 'सीमित मानवीय अच्छाई के विचार से मिल सकता है।

स्वाभाविक आध्यात्मवाद पर आक्रमण ने मिल के नैतिक भाव को काफी भड़काया। उन्होंने लिखा कि मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति को अच्छा नहीं मानूंगा जिसकी अच्छाई का सम्बन्ध मेरे जैसे मनुष्यों से न हो और यदि ऐसा करने के कारण मुझे यह तथाकथित अच्छा व्यक्ति नरक की सजा देता है तो मैं वहां जाने के लिए भी तैयार हूं। मिल का अध्यात्मवाद विशद रूप से उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई पुस्तक 'थ्री एसेज आन रिलीजन' (1879)[1] में मिलता है। उनके पिता ने ईसाई धर्म को न केवल एक भ्रम ही कहा था किन्तु एक महान् नैतिक बुराई भी बताया था। वास्तव में उसे नैतिकता का सबसे बड़ा शत्रु भी माना था। मिल ने इसी बात को जरा संजीदगी से यों कहा अनुभव ने मनुष्य की उस प्रबल आशा को झुठला दिया है जिसे कभी मनुष्य जाति के पुनर्निर्माण का तत्व माना जाता था और जो नकारात्मक धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह बात, जैसे जैसे अन्ध-विश्वास दूर हुए, वैसे वैसे साफ होती गई। लेकिन मिल भी स्रष्टा के उस परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं कर सके जिसमें उसे सर्वशक्तिमान और मंगलकारी माना गया है। अधिक से अधिक हम यह मान सकते हैं, और वह भी पूर्ण निश्चय के साथ नहीं, कि यह जगत *किसी विवेकशील मस्तिष्क द्वारा सर्जित किया गया है* जिसकी पूर्ण शक्ति सृष्टि के उपकरणों पर नहीं थी और न उसका जीव मात्र के प्रति प्रेम ही पूर्ण था। फिर भी वह मानव मात्र का भला चाहता था। यह तर्क प्राकृतिक व्यापारों के पीछे एक रचनात्मक मन (डिजाइन) होने की बात को सिद्ध करता है। मनुष्य में, अपनी शक्ति भर, प्राकृतिक व्यापारों की अनुकृति में कुछ उसी प्रकार की रचना करने की क्षमता है।

इसीलिए, सृष्टि की रचना यदि सर्वशक्तिमान नहीं तो अधिक शक्तिशाली मन द्वारा हुई, ऐसा माना गया। मिल ने कहा कि यदि मेन्सल की इस बात को सही मान लिया जाय कि ईश्वरीय मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से सर्वथा भिन्न है तो ईश्वर के अस्तित्व के सारे विचार ध्वस्त हो जाएंगे।

---

1 तुलनात्मक दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, डब्लू० जी० वार्ड की एसेज आन द फिलोसोफी आफ थीइज्म (1884) वार्ड ने, जो आक्सफोर्ड आन्दोलन के प्रमुख सदस्य थे, और जिनको 1845 में कैथोलिक बना लिया गया, मिल के घटनावाद को अन्त साक्ष्य सिद्धान्तों की सत्ता देकर काफी चोटें पहुंचाईं। यह मिल का एक तरह से पुनर्जन्म माना गया है।

शेष बातों क लिए हम अमरत्व की बात साच ल सक्त हैं क्योंकि इनके विरुद्ध कोई ठोस तक नहा है। धार्मिक मामलों म विवक का सहारा लेना न ता आस्थाशील होना ही हे और न नास्तिक। सन्देहवादी हान क अलावा यह कुछ नहीं है। फिर भी आशाओं के सहारे जीना अविवेकपूर्ण नहीं है। मिल के अनुसार हमारा मूल कतव्य बुराई के विरुद्ध तथा अच्छाई क लिए लडना है। इस विश्वास क साथ कि इस सघष म हम उस अदृष्ट शक्ति स सहयोग कर रहे हैं जिसम हम जिन्दगी का सम्पूर्ण आनन्द भोग रहे हैं। मनुष्यता का धम कतव्यपरायणता का धम, केवल अतिप्राकृत आशाओं के सहारे उस सीमा और स्थिति तक भी नहीं टिका रह सकता जहाँ तक विवकशील सदहवादिता न भी उस स्वीकृति दी है।[1] यह भी कहा जा सकता है कि इस परिष्कृत विचारप्रणाली न आध्यात्मवादियों अथवा परम्परागत पदार्थवादियों म कोई नवीन प्रेरणा जाग्रत की हो।

---

1 तुलना और विभेद क लिए द्रष्टव्य एफ० डब्लू० मायर द्वारा लिखित "ऐसेज क्लेसिकल एण्ड माडन (1883)। इसम जाज इलियट के साथ हुई बातचीत का वृत्तान्त है। तीन शब्द मनुष्य के लिए प्रेरणा देने वाल कहे गय है ईश्वर, अमरत्व तथा कतव्य। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होने माना है कि इनम स प्रथम शब्द'ईश्वर' कितना विचारेतर है। अमरत्व अविश्वसनीय तथा कत्तव्य बनावटी और पूर्ण है। इस विशुद्ध रूप स कोम्ते के वस्तु स्थितिवाद क समकक्ष माना जा सकता है जिसका प्रवतन जाज इलियट के प्रेमी जाज हेनरी लीविस ने 1850 की दशाब्दी मे किया था और जिस क समथक फ्रेडरिक हैरीसन और हैरियट मार्टिन थे— जिसके फलस्वरूप बाद म (1887 ई० मे) लन्दन पोजिटिविस्ट सोसाइटी का प्रादुर्भाव हुआ।

अध्याय 2

भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एवं अनीश्वरवाद

अब उन्नीसवीं शती का भौतिकवाद नामक मुहावरा काफी परिचित सा हो गया है। बहुधा इसका प्रयोग भी विशुद्ध रूप से उन्नीसवीं शती में ही प्रकटे किसी वाद का संकेत देने के लिए होता है--किन्तु एक ओर इसने औद्योगीकरण के भीषण परिणामों को दार्शनिक अभिव्यक्ति दी है, वहाँ दूसरी ओर नए रईसों की अर्थसंचयी वृत्ति तथा 'मिस्टर ब्र उण्डाइड' जैसों की दयनीय व कठिन परिस्थिति की ओर भी संकेत किया है। वास्तव में उन्नीसवीं शती का यह भौतिकवाद इतना होते हुए भी काफी मात्रा में अठारहवीं शती के ही भौतिकवाद का पुनरावर्तन है और इसका मूल खोजने के लिए भी हम यूनानी दर्शन क्षेत्र में बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। वैसा देखा जाय तो भौतिकवाद दर्शन शास्त्र के समान ही प्राचीन है। उन्नीसवीं शती के इसके प्रवर्तकों ने इसे मात्र सनसनीखेज वैज्ञानिक भाषा का जामा पहनाकर इसकी पुनः स्थापना की है। यही कारण है कि भौतिकवादी दार्शनिकों का प्रारम्भ एक विशिष्ट तिथि से भी माना जाता है लेकिन सैद्धांतिक रूप से मौलिक कहने के लिए इनके पास कुछ नहीं था। बहुत से तो इनमें दार्शनिक भी नहीं थे। खींच-तान कर इन्हें यदि कुछ मानें तो इनको वैज्ञानिकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। और वह भी प्रायः भौतिक शास्त्री तथा जीवविज्ञान-शास्त्रियों की श्रेणी में। इनका भौतिकवाद स्वयं इन्हीं के कथनानुसार प्रकृति विज्ञान के सिद्धान्तों से प्रकट हुआ है--दार्शनिक चिंतन से उसका कोई सरोकार नहीं है।

अठारहवीं शती की पाँचवीं दशाब्दी के जर्मन भौतिकवादियों के लिए उपर्युक्त बात वस्तुतः लागू होती है। एल० बूकनर[1] की सन 1855 ई० में प्रकाशित पुस्तक 'फोर्स एण्ड मैटर' ने शीघ्र ही भौतिकवादियों की बाइबल के नाम से ख्याति प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। यह बात सदैव स्मरणीय रहे कि जर्मनी में जहाँ पर राज्य संचालित विश्वविद्यालय हैं और दर्शन एक राजकीय स्तर प्राप्त करता रहा है वहाँ, हीगेल के प्रभाव के जरिए प्रकृतिविज्ञान के विरुद्ध आध्यात्मिक जीवन की वकालत और आमूल परिवर्तनवादियों के विरुद्ध राज्य की सुरक्षा भी की जाती रही है। स्वभावतः जर्मनी में दर्शन के इस राजकीय स्तर ने ही इसका अपयश किया है।

---

1 द्रष्टव्य, एफ० लैंग हिस्ट्री आफ मैटीरियलिज्म (1866), जे०टी० मर्ज हिस्ट्री आफ यूरोपियन थोट इन द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1896), आर० बी० पेरी प्रेजेन्ट फिलोसोफीकल टेंडेन्सीज (1912), पी० ए० आर० जनेट द मटीरियलिज्म आव दी प्रेजेन्ट डे (अंग्रेजी अनुवाद--जी मैसन, 1865)

शप वालो क लिए हम ग्रमरत्व की वात साच ल सक्त हैं क्याकि इनके विरुद्ध कोई ठास तक नही है। धार्मिक मामलो म विवक का सहारा लना न ता ग्रास्थाशील होना ही है और न नास्तिर। सन्देहवादी हान क ग्रलावा यह कुछ नही है। फिर भी ग्राशाग्रा क सहार जीना ग्रविवेकपूण नही है। मिल क ग्रनुसार हमारा मूल कतव्य बुराई के विरुद्ध तथा ग्रच्छाई क लिए लडना है। इस विश्वास के साथ कि इस सघप म हम उस ग्रदष्ट शक्ति म सहयाग कर रहे हैं जिसम हम जिन्दगी का सम्पूण ग्रानन्द माग रहे हैं। मनुष्यता का धम, कतव्यपरायणता का धम, केवल ग्रतिप्राकृत ग्राशाग्रो के सहारे उस सीमा और स्थिति तक भी नहा टिका रह सकता जहाँ तक विवकशील सदेहवादिता न भी उस स्वीकृति दी है।[1] यह भी कहा जा सकता है कि इस परिष्कृत विचारप्रणाली ने ग्राध्यात्मवादिग्रा ग्रथवा परम्परागत पदाथवादिया म कोई नवीन प्रेरणा जाग्रत की हा।

1 तुलना और विभेद के लिए द्रष्टव्य एफ० डब्लू० मायर द्वारा लिखित "ऐसेज क्लेसिकल एण्ड माडन (1883)। इसम जाज इलियट क साथ हुई बातचीत का वृत्तान्त है। तीन शब्द मनुष्य के लिए प्रेरणा दने वाल कहे गय है ईश्वर, ग्रमरत्व तथा कतव्य। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होन माना है कि इनम से प्रथम शब्द 'ईश्वर' कितना विचारेतर है। ग्रमरत्व ग्रविश्वसनीय तथा कत्तव्य बनावटी और पूण है। इसे विशुद्ध रूप से काम्त के वस्तु स्थितिवाद क समकक्ष माना जा सकता है जिसका प्रवतन जाज इलियट के प्रेमी जाज हेनरा लीविस न 1850 की दशाब्दी म किया था और जिस के समथक फ्रेडरिक हैरीसन और हैरियट मार्टिन थे— जिसके फलस्वरूप बाद मे (1887 ई० म) लन्दन पोजिटिविस्ट सोसाइटी का प्रादुर्भाव हुग्रा।

अध्याय 2

भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एव अनीश्वरवाद

अब उन्नीसवी शती का भौतिकवाद नामक मुहावरा काफी परिचित सा हो गया है। बहुधा इसका प्रयोग भी विशुद्ध रूप से उन्नसवी शती म ही प्रकट किसी वाद का सकेत देन के लिए होता है–किन्तु एक ओर इसने औद्योगीकरण के भीषण परिणामो को दाशनिक अभिव्यक्ति दी ह वहाँ दूसरी ओर नए रईसो की अथसचयी वृत्ति तथा 'मिस्टर ग्र डग्राइन्ड' जसा की दयनीय व कठिन परिस्थिति की ओर भी सकेत किया है। वस्तव मे उन्नीसवी शती का यह भौतिकवाद इतना होते हुए भी काफी मात्रा म अठारहवी शती के ही भौतिकवाद का पुनराकलन है और इसका मूल खोजने के लिए भी हमे यूनानी दशन क्षेत्र म बहुत दूर नही जाना पडेगा। वसा देखा जाय तो भौतिकवाद दशन शास्त्र के समान ही प्राचीन है। उन्नीसवी शती के इसके प्रवतको न इसे मात्र समसामयिक वज्ञानिक भाषा का जामा पहनाकर इसकी पुन स्थापना की है। यही कारण है कि भौतिकवादी दाशनिको का प्रारम्भ एक विशिष्ट तिथि से भी माना जाता है लकिन सद्धान्तिक रूप से मौलिक कहने के लिए इनके पास कुछ नही था। बहुत स तो इनम दाशनिक भी नहीं थ। खींच–तान कर इन्हे यदि कुछ मानें तो इनको वैज्ञानिको की श्रेणी मे रखा जा सकता है। और वह भी प्राय भौतिक शास्त्री तथा जीवविज्ञान–शास्त्रियो की श्रेणी म। इनका भौतिकवाद स्वय इन्हीं के कथानुसार प्रकृति विज्ञान के सिद्धान्तो से प्रकट हुआ है—दाशनिक चिनन से उसका कोइ सरोकार नही हैं।

अठारहवीं शती की पाँचवी दशाब्दी के जमन भौतिकवादियो के लिए उपयुक्त बात वस्तुत लागू होती है। एल० बूकनर[1] की सन 1855 ई म प्रकाशित पुस्तक 'फोस एण्ड मटर' न शीघ्र ही भौतिकवादियो का बाइबल के नाम से ख्याति प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। यह बात सदव स्मरणीय रहे कि जमनी न जहा पर राज्य *सचालित विश्वविद्यालय है और दशन एक* राजकीय स्तर प्राप्त करता रहा है वहाँ, हीगेल के प्रभाव क जरिए प्रकृतिविज्ञान के विरुद्ध आध्यात्मिक जीवन की वकालत और आमूल परिवतनवादियो के विरुद्ध राज्य की सुरक्षा भी की जाती रही है। स्वभावत जमनी म दशन क इस राजकीय स्तर ने ही इसको अपयश दिया है।

---

1 द्रष्टव्य, एफ लग हिस्ट्री आफ मेटीरियलिज्म (1866), जे०टी० मज हिस्ट्री आफ यूरोपियन थोट इन द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1896), आर० बी० परी प्रजेण्ट फिलोसोफीकल टेंडेन्सीज (1912), पी० ए० आर० जनट द मटीरियलिज्म आव दी प्रजेण्ट डे (अग्रेजी अनुवाद–जी मैसन 1865)

फिर भी यत्र–तत्र जहाँ जमनी के नए प्रभाव उभर हैं—और यह बात स्पष्ट प्रकट हो गई है कि जमन आदशवाद प्रकृतिविज्ञान की अनुभववादी आत्मा को अपने म समेट लेने म पूणरूप स असफल हो गया है, वहा धीरे धीरे प्राकृतिक दशन के आधार पर प्रागनुभवी (अ प्रायोरी) स्थितियों का औचित्य देने का प्रयास हुआ है। बूकनर के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान के लिए दाशनिक चिंतन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अपने ही साधना द्वारा यह समष्टि की एक सामान्य तस्वीर–हमारे समक्ष प्रस्तुत कर सकता है—और दाशनिक चिंतन के आधार की परवाह किए बिना ही अनुभवजन्य स्थितियों को अपने निर्देशन का ठोस आधार बना सकता है।

यह समष्टि–दृष्टि भौतिकवादी थी। बूकनर के अनुसार विज्ञान शनै शनै इस बात की प्रस्थापना करता है कि वस्तु म निहित गुरु–ब्रह्माण्डीय तथा लघु–ब्रह्माण्डीय सत्ता उसकी जीवनी शक्ति और क्षरण य सब यान्त्रिक नियमों द्वारा सचालित है और इनके लिए किसी भी प्रकार के अतिप्राकृतिक तत्वों का या आदशवादिता का सहारा लेना आवश्यक नहीं है। इस प्रतिवाद का उत्तर कि अन्तर्निहित जडता कभी भी सक्रिय जीवन को उत्पन्न करने म सक्षम नहीं है बूकनर यह देते हैं कि जड मूल रूप से अपने आप म जड होता ही नहीं है। शक्ति के बिना जड की कल्पना करना व्यथ है। इसी प्रकार जड के बिना भी शक्ति नहीं है। दोनों ही स्रोत एक दूसरे के अस्तित्व के लिए साधक हैं।

बूकनर का यह सूत्र कि जड के बिना शक्ति नहीं है शक्ति के बिना जड नहीं है' विशिष्टत अतिप्रकृतिवाद के खण्डन के लिए है। और अपने इसी रूप म इस सिद्धान्त ने व्यग्र युरोप के आमूल परिवतनवादी आन्दोलन को एक दशन दिया जो चच और राज्य की समान रूप स आलोचना करता था।[1] अपनी पुस्तक 'फिजियो–लाजिकल एपिसल्स' (1847) म काल वाग्त की यह घोषणा कि मस्तिष्क म विचारों का स्राव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार से यकृत से पित्त का होता है। बहुत से जमन भौतिकवादियों के आदशवाद के समादत सिद्धान्तों का जान बूझकर चोट पहुचाने के अभियान का एक हिस्सा थी।

इगलैंड म सामाजिक एव बौद्धिक स्थिति बिलकुल दूसरी थी। सामान्य तौर पर यूरोपीय दशन पर लगाए गए आमूल–परिवतनवादियों के अभियोग के अनुसार निश्चय ही मिल राज्यसेवक तो नहीं थ न उन्होंने बूकनर के आदशवाद पर लगाये गये अभियोगों के मुताबिक, अनुभव के बिना विचारों मे प्रकृति का निर्मित

1 उदाहरणाथ बूकनर द्वारा लिखित पुस्तक फोस एण्ड मैटर का तुगनेव ने अपनी पुस्तक फादस एण्ड स स (1892) के पात्र बाजारोव के मुह से आरम्भिक अध्ययन के लिए पढी जाने योग्य बताया है।

ही माना।। जर्मनी की भांति इगलैंड म जाति जसा कुछ था भी नहीं। बूकनर की घोषणा थी कि दर्शन का स्वभावत सामान्य रूप से वाधाम्य होना चाहिए अन्यथा उसकी कीमत एक कागज म लिखे शब्दों स ज्यादा कुछ भी नहीं। तो भी जब जर्मन भौतिकवाद इगलैंड म प्रवर्तित होना शुरू हुआ, तो अपन सभी रूपा म वह अग्रेजियत लिए हुए था। इसकी शक्ति जरा कम हो गयी थी। इसका आमूल परिवर्तनवाद क्षीण हो गया था इसकी मुखरता कुछ मुरझा गयी थी—तो भी—उत्तेजनात्मक उसम, इनके बावजूद भी, विद्यमान थी।

अपन निबन्ध 'ऐसे आन लिबर्टी' म मिल न सुझाया था कि इन लोगो क लिए विधर्मी राय यही है कि कभी दूर दूर तक प्रकाशित न होओ। केवल विचारा के एक सकुचित वत्त म कूपमण्डूक की भांति सिकुडे रहो और उन मौलिक प्रतिभाओ का अनुसरण करत रहो जो वही कुछ नया प्रवर्तित कर देते हैं। और इस प्रकार एक ऐसी अवस्था कायम रहती है जो कुछ मनुष्या का काफी सतोष दन वाली होती है क्योकि किसी को बन्दी करने अथवा किसी पर जुर्माना करने के बिना ही यह बाहर व किसी प्रभाव स तटस्थ रहकर भी सभी प्रचलित मान्यताओ की सिद्धि भी करती है। हा, यह पूर्ण बुद्धि के प्रयोग का निषिद्ध नहीं मानती जो विचार की शृङ्खला मे स्वत उतर जाते है। एक परम्परागत सामाजिक प्रभाव की नवविज्ञान-वादी प्रचेताओ न बदनामी भी की। इनम जे० टिण्डेल, टी०एच० हक्सले तथा डब्लू० के० क्लिफर्ड[1] जस लाग हैं। इन्होने इसका खण्डन अपनी समादृत सामाजिक मर्यादाओ म किया। य एस लोग य जो विज्ञान का श्रमिक वग तक ले गए और विज्ञान क साथ ही ईश्वरसम्बन्धी विधर्मी विचारा को भी जो पहले बौद्धिक लोगा के एक सीमित दायर मे ही प्रचलित थे।

---

1 इन लेखको के विषय म द्रष्टव्य, ए० डब्लू० ब्राउन द मेटाफिजिकल सोसायटी (1947), डब्लू० एच० मैलोक द न्यू रिपब्लिक (1877), जिसम, स्टोवस हक्सले, स्टाकटन टिण्डल तथा सोण्डस क्लिफर्ड हैं। निम्राल एनान लेसली स्टीवन (1951)। वर्जीनिया वुल्फ द्वारा प्रस्तुत अपन पिता लेसली स्टीवन का चित्र उनके पात्र मिस्टर रमसे म देखा जा सकता है और उनके मित्रों का वर्णन टू द लाइट हाउस (1927) म। जार्ज मरेडिथ की पुस्तक 'द इगोइस्ट' (1879) वर्नन व्हिटफोर्ड स्टीवन के चरित्र पर आधारित है। एफ० डब्लू० मैटलैंण्ड की पुस्तक द लाइट एण्ड लेटस आफ लेसली स्टीवेन (1906), एम० एच० करे फ्रनेज आफ थोट इन इगलण्ड (1949), विलियम जेम्स प्रिंसिपल्स आफ साइकोलोजी (1890)। हक्सले क सम्बन्ध म द्रष्टव्य हक्सले व प्रोफेट आफ साइन्स (1932), इ० डब्लू मैकब्राइड हक्सले (1954) हक्सलेज लाइफ एण्ड लेटस (सम्पादित, एल० हक्सले 1900)

इनकी धारणाएं अधिक प्रभाविष्णु थीं—जो उन दार्शनिकों की विचार-पद्धति से बिल्कुल दूसरे छोर पर थीं, जिनमें भाषा और विचारों की गूढ़ता और अलंकरण होता है। इनकी भाषा में शब्दों के चमत्कार से कहीं बेहतर इस बात का विचार था कि वह ऐसे पाठक तक जा रही है जो दार्शनिक परम्परा से अपरिचित है। इस तरह विज्ञान तेजी से अपनी जड़ कायम कर रहा था—प्रत्येक ऐसे इंजन के साथ जो आगे धकेला जा रहा था जिसके कारण विज्ञान की प्रगति निरन्तर होती चली गई। इस प्रकार वैज्ञानिक के पास नए और चमत्कृत कर देने वाले एम तथ्य मौजूद होते जा रहे थे—जिनके कारण ईश्वर में विश्वास करना आवश्यक नहीं रह गया था। स्वतन्त्रता और अमरता लोकप्रिय शब्दावलि में विज्ञान की यही दिशा थी।

ये नयी खोजें विभिन्न स्रोतों से आईं। पहले पहल शारीरिक विज्ञान था। मस्तिष्क अलग कर दिए जाने पर भी मेढक सार्थक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है,' ने इस बात का संकेत दिया। ऊपर से सार्थक दिखाई देने वाली क्रियाएं, बहुत सम्भव है, मूलतः स्वतःज्ञात हों या किसी बाह्योत्तेजना की प्रतिक्रिया से उपजा परावर्तन हो। मस्तिष्क कटे हुए इस मेढक ने अध्यात्म को कुछ इस तरह ध्वस्त किया जिसे अपने पूरे मस्तिष्क से भी चर्च के पादरी दुबारा खड़ा नहीं कर सके।[1] ई० डु बाइस रेमण्ड ने अपनी कृति **एनिमल इलेक्ट्रिसिटी** (1848) में भी शरीरिक प्रक्रियाओं में निहित रहस्यमयता को कम करके परिचित भौतिक नियमों के अनुरूप ढालकर परम्परा को काफी ठेस पहुंचाई। ये सब केवल कुछ उदाहरण हैं।

भौतिकी के ऊर्जा संधारण (कन्जर्वेशन आफ एनर्जी) के सिद्धान्त को एच० हेमहोज (1847) ने जैव और अजैव (ओरगैनिक, इनोरगैनिक) जीवन की विवेचना में प्रयुक्त किया है।

इसमें इस सिद्धान्त का विरोध किया गया है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति से घटनाक्रम को प्रभावित कर सकता है। सामान्य ऊर्जा के सिद्धान्त में इसे कहीं भी मान्यता नहीं दी गई है। रसायन शास्त्र में यूरिया के संश्लेषण (1828) के सिद्धान्त ने इस मान्यता का खण्डन कर दिया है कि प्रयोगशाला की रसायन विद्या में तथा जीवन के रसायन के बीच कभी न पाटी जा सकने वाली खाई है। इसी बीच एल० ए० क्वेटेलेट ने अपने नैतिक प्रेक्षण के

---

1 डा० जेनकिन्सन के उपदेश **द न्यू रपब्लिक** में से उद्धृत इस प्रसिद्ध मेंढक के संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए देखें टी० एच० हक्सले की पुस्तक **आफ द हाइपोथेसीस दट एनीमल्स आर ओटोमैटा** (1874), पुनः प्रकाशित **साइन्स एण्ड कल्चर** (1882)।

आधार पर इस बात का उदघाटन किया (अपनी पुस्तक मु स्यु होमे (1835) मे) कि ऐसी प्रत्येक स्थिति म जिसका सबध अपराध से है, एक ही प्रकार की सख्या बार बार आवृत्त होती है और उसकी निरन्तरता को गलत नही माना जा सकता। यह बात उन अपराधा क बारे म भी सही बठती है जा मानवीय प्रत्युत्पन्नमति स भी परे है, उदाहरणाथ हत्याए।" निरन्तर एक ही प्रकार की इस आवृत्ति को मनुष्य की इच्छा शक्ति के परम्परागत सिद्धान्त के जरिए कसे समझा जाय ? एक दूसरे ही क्षेत्र म बाइबल पर उच्चस्तरीय आलोचना प्रस्तुत करने की कसौटी साधारण बुद्धि के सिद्धान्तो को बनाया जाना भी इस बात को सिद्ध करता है कि धीरे धीरे विज्ञान के विरुद्ध धम और शास्त्रो के निर्विवाद रूप से सही खडे रहने की बात का झकझोर दिया गया था।

डार्विन[1] का प्रादुर्भाव हुआ। विज्ञान के धम का डिजरेली न अपनी पुस्तक लाथेयर (1870) म एक धमाधिकारी द्वारा वर्णित करवाया है। यह बताया गया है कि इस धम के दो रूप है, पहले सिद्धान्त के अनुसार आदम के बजाय हमारी पीढी जडवत जानवरो में से निकली हुई मानी गई है हमारा चिंतन फॉस्फोरस का ही एक प्रकार है और आत्मा जटिल नाडियाँ हैं। दूसरी क अनुसार हमारी नतिकता एक विशेष प्रकार की शकरा का स्राव है। इस धम का अग्रेजी तत्व जो कि डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त म प्रतिपादित हुआ, जमनी के औपधिक भौतिकवाद (मडिकल मटारियलिज्म) स किन्ही अर्थों म कम शक्तिशाली नही था। 1859 म लिखी अपनी ओरिजिन आफ स्पैसीज म स्वय डार्विन न भी पहल पहल विकासवादी सिद्धान्त का प्रयोग नही किया था। 'तुम पूछोग क्या मैं मनुष्य की चर्चा करूगा ?', उसन 1857 म लिखा—— इस प्रकार पूर्वाग्रहो स घिरे इस विषय का मैं अभी टाल जाऊँगा। लकिन दूसर लोगो न, जिनमे हक्स्ले की 1863 म लिखी पुस्तक मेंस प्लेस इन नेचर भी शामिल की जा सकती है—मनुष्य पर विकासवादी सिद्धान्त का प्रयोग करन म चूक नही की—डार्विन न भी इस 1871 म अपनी पुस्तक 'द डिसेन्ट आफ मैन' म लिखा है।

विकासवाद का यह सिद्धान्त, और उसम प्रतिपादित यह धारणा कि पशुओ की प्रजाति जो हम ज्ञात विदित है, अपन वतमान रूप म दीघकालीन सघष के कारण विद्यमान है और शन शन अपन विकास को प्राप्त हुई है—सवप्रथम डार्विन द्वारा ही प्रवर्तित नही की गई थी। यहाँ तक कि डार्विन के नाम से विख्यात उनके

1 द्रष्टव्य, आर० डब्लू० जी० हिम्सटन की 'डार्विन' (1934)। सदभ पुस्तक सूची भी है इसम।

स्वाभाविक चुनाव (नेचरल सलेक्शन) के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन पहले कुछ लोग कर चुके थ।[1]

डार्विन के हाथों म विकासवाद का सिद्धान्त एक समृद्ध सिद्धान्त के रूप म विकसित हुआ है और अत्यन्त सन्तोषप्रद ढग स इसने जीवविज्ञान और सामाजिक सिद्धान्त म प्रचलित प्रवत्तियो के साथ अपना सिलसिला बढाया है।

न तो कोई मूलभूत एपणा और न मानवीय दष्टि स सोची गयी अपने आपको और अच्छा बनाने की कामना ही के साथ अब विकासमान प्रजाति को जोडा जाना था। केवल वे ही अलग लक्षणो वाली प्रजातिया अपन आप को मजबूती स कायम रख पाई जिनम वतमान स्थितियो स निरन्तर सघष करते रहन की क्षमता थी। यह एक एसा सघष था जिसे अथशास्त्री माल्थस ने 1798 ई० म ही मानवीय इतिहास म घटने वाली घटना के रूप म पहले से ही खोज निकाला था।

डार्विन की कृतियो का एक और प्रभाव इस मान्यता को असिद्ध करन म हुआ कि अतिप्राकृतिक उपकरणो के होन के कारण मनुष्य मूलत प्रकृति के विरुद्ध खडा है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त ने इस धारणा का भी ध्वस्त कर दिया कि प्रकृति म निहित श्रम के लिए आवश्यक रूप से एक आध्यात्मिक दृष्टि का सहारा चाहिए। क्योकि यदि वातावरण मे मनुष्य की शारीरिक क्षमता इस बात पर अवलम्बित रहती है कि उसम एकाएक उत्पन्न हो जान वाली भिन्न स्थितिया तथा बदलती हुई परिस्थितियो के साथ अपने आपको ढालने की गु जाइश होती है—तो फिर इसकी इस क्षमता को किसी भी तरह स दवी शक्ति का प्रमाण नही माना जा सकता।

इस प्रकार धम की सम्भावनाए करीब करीब मिटन की स्थिति तक आ गयी थी। भौतिकवाद की तथा डिटरमिनिज्म की एक लहर की अपेक्षा करना बिल्कुल तकसगत था और ये ही व सिद्धान्त थ जिनके बारे म प्रतिपक्षियो का एसा विचार था कि उन्ह उन्होने हक्सल और उसके साथी लोगो के दशन म खोज निकाले है।

हक्सले ने कुछ उत्तेजना म इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि व न तो भौतिकवादी हैं न नास्तिक निश्चय ही व यह मानते थे कि मनुष्य सचेतन स्वय-

---

1 द्रष्टव्य टी० एच० हक्सले इवोल्यूशन इन बायलोजी (1874) पुन प्रकाशित साइस एण्ड कल्चर। ई० कसीरर द प्रोब्लेम आफ नोलेज (1950) ए० लवजोय द ग्रेट चेन आफ बीइग (1936), आर०एच० श्रियोक द स्ट्रेन्ज केस आफ वेल्सेस थयोरी आफ नेचुरल सेलेक्शन, 'स्टडीज एण्ड ऐसेज इन द हिस्ट्री आफ साइस एण्ड लर्निग (1946) म प्रकाशित।

च न या आपकर्ता (आटामटा) है, लकिन वे अपने स्पष्टीकरण के मुताविक, भौतिक-
वादी नही थे । यद्यपि उन्हान ईश्वर के अस्तित्व के हर तक को अस्वीकार किया है
फिर भी वे नास्तिक नही थे । वास्तव म यदि ईश्वर की परिभाषा अनन्त और
पूर्ण जसे शब्दो से की जाती है तो वह अपन आपको आस्तिक मानने के लिए तयार
थे क्योंकि उनके मतानुसार, ऊर्जा अनन्त और पूर्ण दोना ही है । व अपन आपको
एक डिटर्मिनिस्ट मानन को भी तैयार थे । यह उनव ही मनानुसार एक समादन
स्थिति थी—वे दरअसल पक्के कालविनावादी थे [1] ।

भौतिकवाद के प्रति हक्सले का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रभावशाली ढग स उनके
दर्शन की विचित्रता का प्रकट करता है । एक सच्चे भौतिकवादी के लिए जा कुछ
अस्तित्व म है वह जड या शक्ति का कोई मिला जुला रूप है—लकिन उनके अनुसार
चेतना एसा मिला जुला रूप नही हैं यद्यपि यह निकटतम रूप म जड से मिली है ।
इस निकटतम जुडाव के स्वभाव को अधिक गहराई से हक्सले के सघटनावाद
(एपिफिनामिनिज्म) के सिद्धान्त म जिस उन्होने अपने निबध **'आफ द हाइपोथेसिस
देट एनीमल्स आर आटोमेटा'** म बतलाया, देखा जा सकता है । जानवरा की चेतना
उनके शरीर से ही सबधित दिखाई देती है और केवल यह उनकी क्रियाओं के साथ
जुडी है—यह इजन से निकलन वाली वाष्प की भाति स्वत अपने आप म सुधार नही
ला सकती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाष्प इजन की मशीनरी को प्रभावित नही
कर सकता । आकस्मिक तौर पर इस भाषा का प्रयाग कूनकर द्वारा किया गया
हो है ।

जा बात जानवरा के लिए सत्य है—मनुष्य मात्र के लिए भी सत्य है । चेतना
स्वत न तो कार्यशील हाती ह और न हो ही सकती है क्योंकि इसकी कोई अपनी
कोई ऊर्जा नही होती । यह मस्तिष्क की कार्यप्रणाली से उद्भूत हाती है—एक सत्ता
म निहित अनात रहस्यमय शक्ति के रूप म ।

यहाँ तक तो अग्रेजी मुलम्मा चढा हुआ यह 'जमन भौतिकवाद' है । लेकिन
अब इसके विचार दर्शन म एकाएक मोड आता है । हक्सले के कथानुसार डेकार्ट के
द्वारा प्रयुक्त किया गया यह तर्क की हमारी ज्ञानानुभूति का एक विशिष्ट अश हमारी
चेतनावस्था स बाहर ही है, अपन आपम सही है । मन तो जड का विद्युत्पुज है ।
इसके साथ ही उन्होने यह भी कहा कि इस क्षेत्र म एक भी निश्चित रूप स की गई
धारणा मनोजगत क अस्तित्व का प्रमाण है ।

हक्सले को दार्शनिक भूलभुलैया काफी प्रफुल्लित करती थी । और इसीलिए
उन्होने ह्यूम पर 1877 म लिखी अपनी पुस्तक के उनके न्यून सन्देहवाद की पुष्टि

1 **साइंस एण्ड मोरेल्स** (1886) पुन मुद्रित **ऐसेज अपान सम कन्ट्रोवर्टेड
क्वेश्चन्स** (1892) ।

स्वाभाविक चुनाव (नेचरल सलेक्शन) क सिद्धान्त का भी प्रतिपादन पहल कुछ लोग कर चुके थे।[1]

डार्विन क हाथो म विकासवाद का सिद्धान्त एक समृद्ध सिद्धान्त के रूप म विकसित हुआ है और अत्यन्त सन्तोषप्रद ढग स इसन जीवविज्ञान और सामाजिक सिद्धान्त म प्रचलित प्रवत्तियो क साथ अपना सिलसिला बढाया है।

न तो कोई मूलभूत एषणा और न मानवीय दृष्टि स सोची गयी अपने आपको और अच्छा बनाने की कामना ही के साथ अब विकासमान प्रजाति को जोडा जाना था। केवल वे ही अलग लक्षणो वाली प्रजातिया अपन आप को मजबूती स कायम रख पाई जिनम वतमान स्थितियो से निरन्तर सघष करते रहने की क्षमता थी। यह एक एसा सघष था जिस अथशास्त्री माल्थस न 1798 इ० म ही मानवीय इतिहास म घटने वाली घटना क रूप म पहले से ही खोज निकाला था।

डार्विन की कृतियो का एक और प्रभाव इस मान्यता को असिद्ध करने म हुआ कि अतिप्राकृतिक उपकरणो के होन के कारण मनुष्य मूलत प्रकृति के विरुद्ध खडा है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त न इस धारणा को भी ध्वस्त कर दिया कि प्रकृति म निहित क्रम के लिए आवश्यक रूप से एक आध्यात्मिक दृष्टि का सहारा चाहिए। क्योकि यदि वातावरण म मनुष्य की शारीरिक क्षमता इस बात पर अवलम्बित रहती है कि उसम एकाएक उत्पन्न हो जाने वाली भिन्न स्थितिया तथा बदलती हुई परिस्थितियो के साथ अपने आपको ढालन की गुजाइश होती है—तो फिर इसकी इस क्षमता को किसी भी तरह से दैवी शक्ति का प्रमाण नही माना जा सकता।

इस प्रकार धम की सम्भावनाए करीब करीब मिटने की स्थिति तक आगयी थी। भौतिकवाद की तथा डिटरमिनिज्म की एक लहर का अपक्षा करना बिल्कुल तकसगत था और ये ही वे सिद्धान्त थे जिनके बारे म प्रतिपक्षियो का ऐसा विचार था कि उन्ह उन्होने हक्सले और उसके साथी लोगो के दशन म खोज निकाले हैं।

हक्सले ने कुछ उत्तेजना म इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि व न तो भौतिकवादी हैं न नास्तिक। निश्चय ही व यह मानते थ कि मनुष्य सचेतन स्वय—

---

1 द्रष्टव्य टी० एच० हक्सल इवोल्यूशन इन बायलोजी (1874) पुन प्रकाशित साइस एण्ड कल्चर। ई० कसीरर द प्रोब्लेम आफ नोलेज (1950) ए० लवजोय द ग्रेट चेन आफ बीइग(1936), आर०एच० श्रियोक द स्ट्रेंज केस आफ वेलसस थयोरी आफ नेचुरल सेलेक्शन, 'स्टडीज एण्ड ऐसेज इन द हिस्ट्री आफ साइन्स एण्ड लर्निग (1946) म प्रकाशित।

यंत्र या आपकर्ता (आटोमटा) है, लेकिन वे अपने स्पष्टीकरण के मुताबिक, भौतिकवादी नहीं थे। यद्यपि उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व के हद तक को अस्वीकार किया है फिर भी वे नास्तिक नहीं थे। वास्तव में यदि ईश्वर की परिभाषा, अनन्त और पूर्ण जैसे शब्दों में की जाती है तो वह अपने आपको आस्तिक मानने के लिए तैयार थे, क्योंकि उनके मतानुसार, ऊर्जा, अनन्त और पूर्ण दोनों ही है। वे अपने आपको एक डिटर्मिनिस्ट मानने को भी तैयार थे। यह उनके ही मतानुसार एक समादृत स्थिति थी—वे एकदम पक्के कॉनविनावादी थे[1]।

भौतिकवाद के प्रति हक्सले का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से उनके दर्शन की विचित्रता को प्रकट करता है। एक सच्चे भौतिकवादी के लिए जो कुछ अस्तित्व में है, वह जड़ या शक्ति का कोई मिला जुला रूप है—लेकिन उनके अनुसार चेतना ऐसा मिला जुला रूप नहीं है, यद्यपि यह निकटतम रूप में जड़ से मिली है। इस निकटतम जुड़ाव के स्वभाव को अधिक गहराई से हक्सले ने संघटनावाद (एपिफिनोमिनिलिज्म) के सिद्धान्त में जिसे उन्होंने अपने निबंध 'आफ द हाइपोथेसिस देट एनीमल्स आर आटोमेटा' में बतलाया, देखा जा सकता है। जानवरों की चेतना उनके शरीर से ही संबंधित दिखाई देती है और केवल यह उनकी क्रियाओं के साथ जुड़ी है—यह इंजन से निकलने वाली वाष्प की भांति स्वतः अपने आप में सुधार नहीं ला सकती ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाष्प इंजन की मशीनरी को प्रभावित नहीं कर सकता। आकस्मिक तौर पर इस भाषा का प्रयोग बूनकर द्वारा किया गया ही है।

जो बात जानवरों के लिए सत्य है—मनुष्य मात्र के लिए भी सत्य है। चेतना स्वतः न तो कार्यशील होती है और न हो ही सकती है क्योंकि इसकी कोई अपनी कोई ऊर्जा नहीं होती। यह मस्तिष्क की कार्यप्रणाली से उद्भूत होती है—एक सत्ता में निहित अज्ञात रहस्यमय शक्ति के रूप में।

यहां तक तो अंग्रेजी मुलम्मा चढ़ा हुआ यह जमन 'भौतिकवाद' है। लेकिन अब इनके विचार स्थान में एकाएक मोड़ आता है। हक्सले के कथनानुसार डेकार्ट के द्वारा प्रयुक्त किया गया यह तर्क की हमारी चेतनानुभूति का एक विशिष्ट अंश हमारी चेतनावस्था से बाहर हो है, अपने आपमें सही है। मन तो जड़ का विद्युत्पुंज है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि इस क्षेत्र में एक भी निश्चित रूप से की गई धारणा मनोजगत् के अस्तित्व का प्रमाण है।

हक्सले का दार्शनिक भूलभुलैया काफी प्रफुल्लित करती थी। और इसीलिए उन्होंने ह्यूम पर 1877 में लिखी अपनी पुस्तक के उनके यून सन्देहवाद की पुष्टि

---

[1] साइंस एण्ड मोरेल्स (1886) पुनः मुद्रित ऐसेज अपॉन सम कन्ट्रोवर्टेड क्वेश्चन्स (1892)।

हो की है। उनके नास्तिक और अनीश्वरवादी ज्ञान का यह स्थिति और भी प्रबलरूप से प्रस्तुत करती है। एग्नास्टिक नामक शब्द उन्हीं के द्वारा निर्मित है।[1] अस्तित्व के अन्तिम कारण के सम्बन्ध में उठ खड़ी हुई समस्या ऐसी है जिसका समाधान करना मेरे बूते से बाहर है। हक्सले का उन लोगों को हमेशा के लिए यह जवाब होता था जो उन पर नास्तिक होने और भौतिकवादी होने का अभियोग लगाते हैं हक्सले और उनके साथ निश्चय ही विवाद खड़ा करने वालों में ऊँचे थे, वे अपने आलोचकों को यह कह कर हमेशा टाल देते थे कि वास्तव में अधिकारपूर्वक हम कुछ भी जानने का दावा नहीं करते। लेकिन के इस कथन से शायद पादरी लोग सहमत हों कि हक्सले का अनीश्वरवाद उनके भौतिकवाद की ढकामूदी के लिए एक जामे की भांति सहारे का काम करता है। लेकिन हक्सले यह उत्तर देकर इस संबंध में संतुष्ट हो जाते थे, 'यदि मुझे भौतिकवाद और आदर्शवाद के बीच से कुछ चुनना पड़ा तो मैं आदर्शवाद को चुनूंगा।' अब इससे अधिक क्या कहना शेष रह गया था?

स्वभावतः इतना सुविधाजनक सिद्धान्त समर्थकों से वंचित नहीं रह सकता। डार्विन स्वयं धर्मसम्बन्धी अपने विचारों को अनीश्वरवादी मानते थे। लेसली स्टीवन की पुस्तक, **एन एग्नोस्टिक अपोलोजी** (1893) जो 1876 में एक निबन्धाकार रूप में प्रकाशित हुई थी ने अनीश्वरवाद को एक ऐसी अधिकारिक स्थिति प्रदान की जिससे उसका विचारों के इतिहास में खड़ा होना निश्चित हो गया। जर्मनी में भी ई० दु बोय्स रेमण्ड ने अपने एक भाषण द्वारा जिसका विषय **द लिमिटेशन आफ नेचुरल नालेज था**, काफी हलचल मचाई। इस निबन्ध की विशेषता यह थी कि इसमें अनीश्वरवादी व चर्चविरोधी भावना को अंग्रेजी तौर-तरीके से कहा गया था।[2] लेकिन इसके बावजूद भी एक अनीश्वरवादी विकासवाद की दर्शन के रूप में स्थापना का श्रेय हर्बर्ट स्पेंसर को ही है जिससे संसार में एक हलचल हो गई।[3]

हर्बर्ट स्पेंसर द्वारा रचित पुस्तक **सिस्टम आफ सिंथेटिक फिलोसोफी** (1862 1893) ने एक दार्शनिक ग्रंथ के रूप में लोगों का ध्यान इतना आकर्षित नहीं किया जितना जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र की पुस्तक के रूप में किया। उनकी पुस्तक **एज्यूकेशन** (1861) का उनको प्रसिद्ध करने में काफी बड़ा

1 आर० फ्लिंट **एग्नोस्टिसिज्म** (1903)।

2 1872 में दिया गया यह भाषण 1886-87 में प्रकाशित उनकी पुस्तक एड्रेसेज" में है। इस निबन्ध की इति इगनोरेबिमस नामक शब्द से हुई है जो बाद में जर्मन अनीश्वरवाद का उद्दिष्ट शब्द (मोटो) हो गया।

3 डबलू० एच० हडसन **हर्बट स्पेंसर** (1908), एच० ईलियट हर्बट-स्पेंसर (1817)।

हाथ रहा और जब उन्होंने द मैन वरसस द स्टेट म निजी उपक्रम का जोरदार पक्ष लिया तो उनका यश एसे स्थानों म भी फला जिनका दशन से कोई वास्ता नही था। लकिन जिन दार्शनिक मान्यताओं को उन्होंने सिन्थेटिक फिलोसोफी के प्रारंभिक ग्रंथ म फस्ट प्रिंसिपल के नाम स स्थापित किया है वे मान्यताएँ ही स्वयमेव उनके समसामयिक विचारकों म उत्साह जगाने के लिए पर्याप्त थी।

इस सबध मे उनका प्रयास दो तरह का है, पहला विज्ञान और धम का समन्वय करना तथा दूसरा ऐसे ससार म दशन को स्थानासीन करना जो निरन्तर विशिष्ट विज्ञान के क्षेत्रों म विभक्त होता चला जा रहा था। पहल पहल वे यह प्रकट करने के लिए अंतिम वैज्ञानिक कल्पनाएँ ऐसे सत्यों का प्रतिनिधित्व करत हैं जिन्हें समझ लेना सभव नहीं है हैमिल्टन एव मन्सल दोनों के विचारों का काफी मात्रा म उद्धृत करते हैं। निकष म कहते हैं कि वैज्ञानिक ही इस बात को जानता है कि अंतिम रूप से किसी भी चीज को जान लेना सभव नहीं है। यद्यपि भौतिक शास्त्र द्वारा सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों को अवकाश (वरिमा या स्पस) व समय म शक्ति मान सत्ताए माना गया है तथापि इस बात के लिए स्पेन्सर हम आश्वस्त कर देना चाहते हैं कि पदार्थ के निजी स्वभाव का ज्ञान हमारे लिए आज भी सदव की भांति रहस्यमय है क्योंकि हमारे ज्ञान की सभी उपलब्धियों को शक्ति, अवकाश और समय पार कर जाते हैं। यदि यह भी मान लिया जाय कि सभी मानसिक क्रियाए सवदनाओं का आकलन मात्र है फिर भी वज्ञानिक के लिए मन एक पहेली रह ही जाता है क्योंकि, वज्ञानिक, सवेदनाए अपने आपमे क्या है न तो इसका ही उत्तर दे पाता है और न यही बता पाता है कि इन सवेदनाओं की चेतना प्राप्त करने वाली कौन सी स्थिति हमारे अन्दर विद्यमान है। इस प्रकार स्पेन्सर के व्याख्यानुसार विज्ञान स्वय हमें अज्ञेय सत्ता की ओर ले जाता है। इसके अतिरिक्त यह अज्ञेय ही एक शक्ति के रूप म जाना गया है, यद्यपि यह शक्ति अगम्य है। स्पेन्सर ने इन शब्दों पर विशेष जोर दिया है। स्पेन्सर के कथनानुसार हैमिल्टन की यह बात सही है कि हम मात्र सापेक्ष स्थितियों के अतिरिक्त किसी वस्तु का मूलरूप के निश्चित ज्ञान नहीं होता। उनका यह कहना गलत था कि हम निरपेक्ष रूप से किसी वस्तु के बारे म कुछ भी नहीं जान सकते, क्योंकि वास्तव म हम वस्तु की चरम सत्ता (एवसाल्यूट) का एसा आभास तो होता ही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

यदि हम निरपेक्ष की किसी भी प्रकार की चेतना न होती, तो यह कहना भी निरर्थक होता कि सामान्य चेतना सापेक्ष के सबध म ही होती है—क्यो कि यदि एसा होतो फिर इस बात का उत्तर हमारे पास क्या है कि यह सापेक्ष भाव किसके प्रति है, अनुभव से जिस जगत का साक्षात्कार हो जाता है उसका बयान करने के लिए अनुभव हमारे लिए वस्तुओं का जो रूप प्रस्तुत करता है, उसके बारे म आवश्यक रूप से हमें सोचना होगा और तब यह मानना भी आवश्यक होगा कि

ही की है। उनक नास्तिक और अनीश्वरवादी हान का यह स्थिति और भी प्रबलरूप से प्रस्तुत करती है। एग्नास्टिक नामक शब्द उन्ही के द्वारा निर्मित है।[1] अस्तित्व क अन्तिम कारण के सम्बन्ध म उठ खडी हुई समस्या एसी है जिसका समाधान करना मरे बूत स बाहर है। हक्सले का उन लोगो को हमेशा के लिए यह जवाब होता था जो उन पर नास्तिक हाने और भौतिकवादी होन का अभियोग लगाते हैं, हक्सले और उनके साथ निश्चय ही विवाद खडा करन वालो मे ऊचे थ, व अपन आलोचको को यह कह कर हमशा टाल दते थ कि वास्तव मे अधिकारपूवक हम कुछ भी जानन का दावा नही करत। लेनिन के इस कथन स शायद पादरी लाग सहमत हो कि हक्सले का अनीश्वरवाद उनक भौतिकवाद की दरामूदी के लिए एक जामे की भाति सहारे का काय करता है। लकिन हक्सले यह उत्तर दे कर इस सबध मे सतुष्ट हो जाते थ, यदि मुझे भौतिकवाद और आदशवाद के बीच से कुछ चुनना पडा तो मैं आदशवाद का चुनूगा।' अब इसस अधिक क्या कहना शष रह गया था ?

स्वभावत इतना सुविधाजनक सिद्धान्त समथको से वचित नही रह सकता। डार्विन स्वय धमसम्बन्धी अपने विचारो को अनीश्वरवादी मानते थ। लसली स्टीवन की पुस्तक **एन एग्नोस्टिक अपोलोजी** (1893) जो 1876 म एक निबन्धाकार रूप मे प्रकाशित हुई थी ने अनीश्वरवाद को एक ऐसी अधिकारिक स्थिति प्रदान की जिसस उसका विचारो के इतिहास म खडा होना निश्चित हो गया। जमनी म भी ई० दु बोय्स रेमण्ड न अपने एक भाषण द्वारा जिसका विषय **द लिमिटेशन आफ नेचुरल नालेज था** काफी हलचल मचाई। इस निबन्ध की विशेषता यह थी कि इसम अनीश्वरवादी व चचविरोधी भावना को अग्रेजी तौर-तरीके स कहा गया था।[2] लेकिन इसके बावजूद भी एक अनीश्वरवादी विकासवाद को दशन के रूप मे स्थापना का श्रेय हबट स्पेसर को ही है जिससे ससार म एक हलचल हो गई।[3]

हबट स्पेसर द्वारा रचित पुस्तक, **सिस्टम आफ सिथेटिक फिलोसोफी** (1862 1893) ने एक दाशनिक ग्रन्थ क रूप मे लोगो का ध्यान इतना आकर्षित नही किया जितना जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र की पुस्तक के रूप म किया। उनकी पुस्तक **एज्यूकेशन** (1861) का उनको प्रसिद्ध करने म काफी बडा

---

1 आर० फिलट **एग्नोस्टिसिज्म** (1903)।

2 1872 म दिया गया यह भाषण 1886–87 म प्रकाशित उनकी पुस्तक **एड्रेसेज**" म है। इस निबन्ध की इति इगनारबिमस नामक शब्द स हुई है जो बाद म जमन अनीश्वरवाद का उद्दिष्ट शब्द (माटो) हो गया।

3 डबलू० एच० हडसन **हबट स्पेसर** (1908), एच० ईलियट **हबट-स्पेसर** (1817)।

निरन्तर एक ही सरणि में रूपान्तरित होती रहती है।[1] अपने ग्रन्थ सिन्थेटिक फिलोसोफी में उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्हीं सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया है। अजैव विज्ञानों को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड़ दिया है। और शायद उनके आलोचकों ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने में चूक नहीं की है। वे समूची परिस्थितियां जिनके कारण सिन्थेटीक फिलोसोफी को समसामयिक जगत में यश मिला था, इस बात के ज्ञान के साथ ही कि वह शीघ्रता से विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानों के लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुंजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पड़ने लगा।

मिल ने भी उनके विषय में यह लिखा कि स्पेन्सर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप से प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी धकेल में छोड़ दिया है जो बहुत अंशों में उनकी विचारधारा से मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र में दिया हुआ योगदान अभी भी आवश्यक है। लेकिन दर्शन की गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर का पढ़ना व्यर्थ है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के एक असामान्य रूप से प्रसिद्ध व्यक्ति है।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनमें अर्नेस्ट हेकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक द रिडल आफ यूनीवर्स (1899) में डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमें डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एक ऐसी गणितीय आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है। अपने आप को निरीश्वर-वादी घोषित किए जाने की आशंका में वह यह घोषणा करते हैं कि विकासवाद अब तक की खोजों में एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओं का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा कि उन समस्याओं के निदान का एक भाग तो निश्चित हो जायगा। हेकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्सक्यूरण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होंने अपनी पुस्तक फ्रीडम इन साइन्स एण्ड टीचिंग (1878) से डु बोइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक में उनकी आलोचनदृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० विरचव पर ही केन्द्रित रही है। इन महोदय ने उन्हीं दिनों धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रक्खी थी। विरचाव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यों पर रखनी चाहिए और चेतना-

---

1 स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए जे० वार्ड नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म (1899), एच०एस० शेल्टन स्पेन्सर्स फोरमूला आफ इवोल्यूशन (पी० आर० 1910)।

अनुभव द्वारा वस्तु के जिस रूप का हम ज्ञान होता है, सत्य इसम परे की स्थिति है। और अगम्य के प्रति यह चेतना ही वह अवस्था है जिस पर धम टिका है।[1]

ऐसी अगम्य शक्ति के अनन्त चेतना से अभिमण्डित होने के कारण, जो वर्णनातीत है, धम का अपना विशिष्ट अधिकार प्राप्त हुआ है। अपन विश्लेषण म य बातें तो स्पेंसर ने कह दी लेकिन दशन का अपना उपयुक्त काय बताना अभी तक उनके लिए शेष रह गया। वे उस विज्ञान के अशत सगठित ज्ञान के विपरीत पूणत सगठित ज्ञान की सज्ञा म अभिहित करते हैं। स्पेंसर क अनुसार दाशनिक विज्ञानो का सगठन सामान्य तत्त्वो की सर्वोच्च दशा खोजकर करता है और तब वह विभिन्न विशिष्ट विज्ञानो म उन सिद्धान्तो को भी प्रदशित कर सकता है। इस प्रकार उन्नीसवी शती के बहुत से दाशनिको की भाति (जा० एच० लविस उसका एक उदाहरण ह)[2] स्पेंसर दशन को अनुभव प्रणीत खोजबीन मानते है–जिसकी आत्मा वज्ञानिक तो है किन्तु अपनी व्यापक-सामान्यीकरण की क्षमता के कारण वह अन्य विज्ञानो से भिन्न हो जाता है।

स्पेंसर तब इन सामान्य सिद्धान्तो पर काय करने लग जाते हैं। इनम विकास और विनाश सबधी नियमो की उनकी खोज सर्वाधिक विदित है। स्पेंसर ने विकास वाद पर डार्विन से पूव भी सोचा था डार्विन का जीवविज्ञान इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त का एक विशिष्ट उदाहरण है। 'विकास सृष्टि का नियम है' इसे केवल प्राणीमात्र तक ही सीमित नही किया जा सकता (डार्विन ने फिस्के को 1874 म लिखे एक पत्र म यह कहा था कि कुछ बातो के अतिरिक्त मुझे स्पेंसर का सामान्यीकरण सिद्धान्त समझ म नही आता) स्पेंसर का कथन है कि विकास, पदाथ का समाकलन और गति सहवर्ती विसरण (कानमिटण्ट डिसीपेशन) है। इन्ही के बीच पदाथ अपन अव्यक्त रूप से अपनी असम्बद्ध समावस्था से एक निश्चित अससवायी विषयावस्था तक पहुँचता रहता है और इसी बीच उपलब्ध गति

---

1 सदभ फ्रेडरिक हैरीसन द्वारा द नाइण्टीन्थ सेन्चुरी म किया गया सशक्त आलोचनात्मक प्रहार पेलीकन वाल्यूम नाइण्टी थ सेन्चुरी ओपीनियन (सम्पादक एम गोडविन) म 'द घोस्ट आफ रिलीजन' नामक शीषक से पुनमुद्रित। द्रष्टव्य ब्रडेले का अभिमत 'स्पेंसर महोदय का अज्ञेय के प्रति रुख एक ऐसी विवश धारणा लगती है जिसम ईश्वर के लिए कुछ इसलिए कहा गया है कि वह क्या बना है यह हम जान नही सकते।'

2 सदभ जे० केमिस्की द एम्पिरिकल मेटाफिजिक्स आफ जाज हेनरी लेवीस, 1952 म जे० एच० आई० म प्रकाशित उनकी प्रमुख रचना प्रोबलम्स आफ लाइफ एण्ड माइण्ड (1874 9)। द्रष्टव्य, ए० बेन जी० एच० लेवीस आन पोस्टूलेटस आफ एक्सपेरिएन्स (पत्र, 'माइण्ड' मे 1876 मे प्रकाशित)

निरन्तर एक ही सरणि में रूपांतरित होती रहती है।[1] अपने ग्रंथ सिन्थेटिक फिलोसोफी में उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्हीं सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया है। अजैव विज्ञानों को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड़ दिया है। और शायद उनके आलोचकों ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने में चूक नहीं की है। वे समूची परिस्थितियां जिनके कारण सिन्थेटीक फिलोसोफी को सममामयिक जगत में यश मिला था, इस बात के ज्ञान के साथ ही कि वह शीघ्रता से विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानों के लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुंजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पड़ने लगा।

मिल ने भी उनके विषय में यह लिखा कि स्पेन्सर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप से प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी धकल में ढाल दिया है जो बहुत अंशों में उनकी विचारधारा से मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र में दिया हुआ योगदान अभी भी आकर्षक है। लेकिन दर्शन का गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर को पढ़ना व्यर्थ है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के एक असामान्य रूप से प्रसिद्ध व्यक्ति है।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनमें अर्नेस्ट हैकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक द रिडल आफ यूनीवर्स (1899) में डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमें डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एवं ऐसी गणिनाएं आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है। अपने आप को निरीश्वर-वादी घोषित किए जाने की आशंका में वह यह घोषणा करते हैं कि विकासवाद अब तक की खोजों में एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओं का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा कि उन समस्याओं के निदान का एक भाग तो निश्चित हो जायगा। हेकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्सक्यारण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होंने अपनी पुस्तक फ्रीडम इन साइंस एण्ड टीचिंग (1878) से दु बोइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक में उनका आलोचनदृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० विरचव पर ही केंद्रित रहा है। इन महोदय ने उन्हीं दिनों धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रक्खी थी। विरचव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यों पर रखनी चाहिए और अन्य-

---

1 स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए न० रा० नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म (1899) एच०एस० शल्टन स्पेन्सर प्रास्त आफ इवोल्यूशन (पी० आर० 1910)।

अनुभव द्वारा वस्तु के जिस रूप का हम ज्ञान होता है, सत्य इससे परे की स्थिति है। और अगम्य के प्रति यह चेतना ही वह अवस्था है जिस पर धम टिका है।[1]

ऐसी अगम्य शक्ति क अन त चेतना से अभिमण्डित होने के कारण, जो वर्णनातीत है, धम को अपना विशिष्ट अधिकार प्राप्त हुआ है। अपन विश्लेषण म य बातें तो स्पेन्सर ने कह दी लेकिन दशन का अपना उपयुक्त काय बताना अभी तक उनके लिए शप रह गया। वे उसे विज्ञान के अ शत सगठित ज्ञान के विपरीत पूणत सगठित ज्ञान की सत्ता म अभिहित करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार दाशनिक विज्ञानो का सगठन सामान्य तत्वो की सर्वोच्च दशा खोजकर करता है और तब वह विभिन्न विशिष्ट विज्ञानो म उन सिद्धान्तो का भी प्रदर्शित कर सकता है। इस प्रकार उन्नीसवी शती के बहुत से दाशनिको की भाति (जी० एच० लेविस उसका एक उदाहरण ह)[2] स्पेन्सर दशन को अनुभव प्रणीत खोजबीन मानते हैं—जिसकी आत्मा वज्ञानिक तो है किन्तु अपनी व्यापक-सामान्यीकरण की क्षमता के कारण वह अन्य विज्ञानो से भिन्न हो जाता है।

स्पेन्सर तब इन सामान्य सिद्धान्तो पर काय करने लग जाते हैं। इनम विकास और विनाश सबधी नियमो की उनकी खोज सर्वाधिक विदित है। स्पन्सर ने विकास वाद पर डार्विन से पूव भी सोचा था डार्विन का जीवविज्ञान इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त का एक विशिष्ट उदाहरण ह। 'विकास सृष्टि का नियम है' इसे केवल प्राणीमात्र तक ही सीमित नही किया जा सकता, (डार्विन ने फिस्के को 1874 म लिखे एक पत्र म यह कहा था कि कुछ बातो के अतिरिक्त मुझे स्पेन्सर का सामान्यीकरण सिद्धान्त समझ म नही आता) स्पेन्सर का कथन है कि विकास, पदाथ का समाकलन और गति सहवर्ती विसरण (कोनसिटेण्ड डिसीपेशन) है। इन्ही के बीच पदाथ अपने अव्यक्त रूप से अपनी असम्बद्ध समावस्था से एक निश्चित असमवायी विषमावस्था तक पहुँचता रहता है और इसी बीच उपलब्ध गति

---

1 सदभ फ्रेडरिक हैरीसन द्वारा द नाइण्टीन्थ सेन्चुरी म किया गया सशक्त आलोचनात्मक प्रहार, पेन्गीकन वाल्यूम नाइण्टीन्थ सेन्चुरी ओपोनियन (सम्पादक एम गोडविन) म 'द पोस्ट आफ रिलीजन' नामक शीषक से पुनमुद्रित। द्रष्टव्य ब्रडेले का अभिमत 'स्पेन्सर महोदय का अज्ञेय के प्रति रख एक ऐसी विवश घोषणा लगती है जिसम ईश्वर के लिए कुछ इसलिए कहा गया है कि वह क्या बना है यह हम जान नही सकते।

2 सदभ जे० केमिस्री द एम्पिरिकल मेटाफिजिक्स आफ जाज हेनरी लेवीस, 1952 म जे० एच० आई० म प्रकाशित उनकी प्रमुख रचना प्रोबलम्स आफ लाइफ एण्ड माइण्ड (1874 9)। द्रष्टव्य, ए० वन जी० एच० लेवीस आन पोस्टूलेटस आफ एक्सपेरिएन्स (पत्र 'माइण्ड' म 1876 मे प्रकाशित)

निरन्तर एक ही सरणि म रूपान्तरित होती रहती है।[1] अपने ग्रन्थ सिथेटिक फिलोसोफी म उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्ही सिद्धान्ता को प्रयुक्त किया है। अजव विज्ञानो को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड दिया है। और शायद उनके आलोचको ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने म चूक नही की है। वे समूची परिस्थितिया जिनके कारण सिथेटीक फिलोसोफी का समसामयिक जगत म यश मिला था, इस बात के ज्ञान क साथ ही कि वह शीघ्रता स विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानो क लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पडने लगा।

मिल ने भी उनके विषय म यह लिखा कि स्पेसर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप स प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी धकल म छोड दिया है जो बहुत अंशो म उनकी विचारधारा स मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र म दिया हुआ योगदान अभी भी आकर्षक है। लेकिन दर्शन की गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर को पढना व्यर्थ है। वह उन्नीसवी शताब्दी के एक असामान्य रूप स प्रसिद्ध व्यक्ति है।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनम अर्नेस्ट हैकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक **द रिडल आफ यूनीवर्स** (1899) म डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमे डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एक एसी गणितीय आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाण की जरूरत नही है। अपने आप को निरीश्वरवादी घोषित किए जाने की आशका म वह यह घोषणा करते है कि विकासवाद अब तक की खोजो म एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओ का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम स कम इतना तो होगा कि उन समस्याओ के निदान का एक भाग तो निश्चित हो जायगा। हैकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्सक्यारण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नही। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होने अपनी पुस्तक **फ्रीडम इन साइन्स एण्ड टीचिंग** (1878) म दु बाइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक म उनकी आलोचनदृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० विरचेव पर ही केन्द्रित रही है। इन महोदय ने उन्हा दिनो धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रक्खी थी। विरचाव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यो पर रखनी चाहिए और चेतना-

---

1 स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए जे० वार्ड **नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म** (1899), एच०एस० शेल्टन **स्पेन्सर्स फोरमूला आफ इवोल्यूशन** (पी० आर० 1910)।

सम्बन्धी सभी अनुमानो को चच या राज्य के लिए छोड देना चाहिए। दोनो सस्थाओ को यह अधिकार है कि वे चेतना सम्बन्धी ऊलजलूल मतवादो का प्रकाश म न आने दें।

हैकल का ऐसी कोई स्थिति स्वीकाय नही है। सबसे पहले उन्होने इस बात का प्रतिवाद किया कि तथ्यो एव अनुमानो म तथा विज्ञान और दशन के बीच कोई विशद सीमारेखा खीची जा सकती है। सच्चा विज्ञान उनके अनुसार एक प्रकार का प्राकृतिक दशन है। उनका यह कथन ऐसे वक्त निश्चय ही चौकाने वाला था। हीगलोत्तर स्कूलवादियो के व्यापक अनुमानो और प्राकृतिक दशन म साम्य माना जाने लगा था। इसलिए उनके अनुसार ऐसे दशन को एकेश्वरवादी ही होना चाहिए था क्योकि अब एकेश्वरवाद की कल्पना एक ऐसे अतिम सिद्धान्त के रूप म की जानी सम्भव हो गयी थी—जिसके जरिए यह देखा जा सकता था कि किस प्रकार विशाल रूप से निरन्तर हो रही घटनाओ के विकासक्रम को प्रकृति अपने म समेट रही है। यह भी कि आकाश के ग्रहा उपग्रहों की गति स लकर उनके टूटकर गिरना तथा उनमे वनस्पति उत्पन्न होकर जीव और चेतना का उदय होना सभी एक ही तरह स काय-कारण के महान नियम से परिचलित है और अतिमत सभी का सम्बन्ध परमाणु विज्ञान स ही है। यह बात यहा विशेष रूप से जोड देनी चाहिए कि इन परमाणुओ की हैकल क मतानुसार एक आत्मा[1] है। लेकिन उनकी यह धारणा कि आत्माए हरेक जगह हैं और ईश्वर स्पेस (वरिमा), पूरक पदाथ ससार को सार रूप से अपने अन्दर समाहित करने वाली एक सत्ता है—किसी भी प्रकार से अध्यात्मवादियो की भावना को सन्तोष प्रदान नही कर सकी। अपना यह मन्तव्य हैकल ने अपनी पुस्तक लास्ट वडस आन ईवोल्यूशन' (1905) म व्यक्त किया है।

यही विज्ञान-धम था। और इसे हक्सले के अनीश्वरवाद से भी अधिक अनादर मिला। उन्नीसवी शती के भौतिकवाद के आलोचका न ही विशेष रूप से इसके विरुद्ध प्रहार किया।

---

1 इङ्गलैड मे इसी प्रकार क्लिफड ने घोषणा की थी कि सृष्टि केवल मनस्तत्व से ही निर्मित है। यही उनके निबन्ध आन द नेचर आफ थिंग्स इन देमसेल्वज' (सवप्रथम प्रकाशित 1878 के माइण्ड म) और 1879 लेक्चस एण्ड ऐसेज के रूप म पुन मुद्रित। उनके आलोचका ने यह बात विशेषरूप से बताई थी कि क्लिफोड का मनस्तत्व असाधारण रूप स अन्य लोगो की पदाथ की परिभाषा स मिलता जुलता है। जी० जे० रोमन्स ने अपनी 1895 मे प्रकाशित पुस्तक माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म' म क्लिफड के सिद्धान्त को मनोभूत वादी (पन साइकिक) दिशा मे विकसित किया है।

ता भी अमेरिका म विकासवाद का एक दूसरा ही रूप प्रस्फुटित हो गया।[1] वहाँ इसका प्रचार करने वाला म जान फिस्क थे। उन्होंने अपनी दो पुस्तकों, **आउटलाइन्स आफ कोस्मिक फिलोसोफी** (1874) तथा **द आइडिया आफ गाड एज अफेक्टेड बाई माडन नोलेज** (1886) म उत्साह पूर्वक स्पेंसर द्वारा प्रणीत धम और विज्ञान के बीच स्पष्ट विरोधाभास के सिद्धान्त को अपनाया। लेकिन फिस्के के दशन म अज्ञेय विशिष्ट एक क्रिश्चियानी रूप ले लेता है। जो अनन्त और अखण्ड सत्ता सृष्टि की धडकन म विद्यमान है। वह सजीव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नही है। प्रारम्भ म तो विकासवाद प्रकृतिवाद का मजबूती स पल्ला पकडे रहा लेकिन शीघ्र ही उसका उपयोग आदशवाद के लिए भी किया जाने लगा।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक खोजो स व्यापक तौर पर और असाधारण रूप म दाशनिक ने अपने इरादे सिद्ध किए हैं।

उन्नीसवी शती के भौतिकवाद की सम्पूर्ण विविधताओ म से सर्वाधिक प्रभावशाली मार्क्सवादियो का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद रहा (यदि यह प्रभाव अनुयायी बनाने वालो की गणना की दृष्टि स मालुम किया जाय तो) किन्तु यदि ऐतिहासिकता की दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रभाव एक आकस्मिक घटना के रूप म ही अपना महत्व रखता है। स्कोलास्टिसिज्म की भाँति जिसके अनुगामियो की सख्या हजारो म है, यह एक ऐसा दशन है जिसका समाज के एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियो स निकट का सबध है—इस सदभ म ये सस्थाए सावियत सघ और साम्यवादी पार्टी हैं। इसका प्रभाव सिवाय उन दाशनिको के जो इस सिद्धान्त के प्रतिबद्ध है, और अपनी शतहीन आस्था दर्शाते हैं, सामान्यत कम ही रहा।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का स्पष्टीकरण कर देना आसान नही है।[3]

---

1 एम०एच० फिश इवोल्यूशन इन अमेरिकन फिलासाफी (पी०आर० 1957), एच०डब्लू० श्रीदर हिस्ट्री आव अमेरिकन फिलासाफी (1946), पी०पी० वीनर इवोल्यूशन एण्ड द फाउन्डेशन आन प्रगमेटिज्म (1949)।

2 जम्स मैकोश की कुशलता के विषय म कुछ भी न कहकर हम यहाँ इतना ही करते हैं कि उन्होंने अपनी पुस्तक, **'द रिलीजस आसपेक्ट आफ इवोल्यूशन'** (1888) म डार्विन के प्राकृतिक चुनाव को सिद्धान्त को कालिवनवाद की एक जीव-शास्त्री अभिव्यजना माना था जिसम ईश्वर को महान चुनावकर्ता माना गया है।

3 खुलासा दृष्टि के लिए द्रष्टव्य एम कोनफोर्थ **डाइलेक्टिकल मेटीरियलिज्म** (3 भाग 1952–53), टी०ए० जक्सन **डाइलेक्टिक्स** (1938) आलोचक एम० ईस्टमैन की **मार्क्सिज्म, इज इट साइन्स** नामक पुस्तक का नाम भी गिना है। एच० एक्टन **द इल्यूजन्स आफ द इपोक** (1955)। के० पोपर **व्हाट इज डाइलेक्टिक** (माइण्ड 1940) जे० एण्डरसन **मार्क्सिस्ट फिलोसोफी** (ए० जे० पी० 1935)। मार्क्स ने अपने विचार विस्तार म कही नही लिखे—एंगेल्स ही मार्क्सवाद का दाशनिक व्याख्याता है।

सम्बन्धी सभी अनुमानों को चर्च या राज्य के लिए छोड़ देना चाहिए। दोनों संस्थाओं का यह अधिकार है कि वे चेतना सम्बन्धी ऊलजलूल मतवादों को प्रकाश में न आने दें।

हैक्ल को ऐसी कोई स्थिति स्वीकार्य नहीं है। सबसे पहले उन्होंने इस बात का प्रतिवाद किया कि तथ्यों एवं अनुमानों में तथा विज्ञान और दर्शन के बीच कोई विशद सीमारेखा खींची जा सकती है। सच्चा विज्ञान उनके अनुसार एक प्रकार का प्राकृतिक दर्शन है। उनका यह कथन ऐसे वक्त निश्चय ही चौंकाने वाला था। ह्यूमोत्तर स्कूलवादियों के व्यापक अनुमानों और प्राकृतिक दर्शन में साम्य माना जाने लगा था। इसलिए उनके अनुसार इस दर्शन को एकेश्वरवादी ही होना चाहिए था क्योंकि अब एकेश्वरवाद की कल्पना एक ऐसे अन्तिम सिद्धान्त के रूप में की जानी सम्भव हो गयी थी—जिसके जरिए यह देखा जा सकता था कि किस प्रकार विशाल रूप में निरन्तर हो रही घटनाओं के विकासक्रम को प्रकृति अपने में समेट रही है। यह भी कि आकाश के ग्रहों, उपग्रहों की गति से लेकर उनके टूटकर गिरने तथा उनमें वनस्पति उत्पन्न होकर जीव और चेतना का उदय होना सभी एक ही तरह से कार्य-कारण के महान नियम से परिचालित हैं और अन्ततः सभी का सम्बन्ध परमाणु विज्ञान से ही है। यह बात यहां विशेष रूप से जोड़ देनी चाहिए कि इन परमाणुओं की हैकल के मतानुसार एक आत्मा[1] है। लेकिन उनकी यह धारणा कि आत्माएं हरेक जगह हैं और ईश्वर स्पेस (वरिमा) पूर्ण पदार्थ संसार को सार रूप से अपने अन्दर समाहित करने वाली एक सत्ता है—किसी भी प्रकार से अध्यात्मवादियों की भावना को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकी। अपना यह मन्तव्य हैकल ने अपनी पुस्तक 'लास्ट वडस आन ईवोल्यूशन' (1905) में व्यक्त किया है।

यही विज्ञान-धर्म था। और इसे हक्सले के अनीश्वरवाद से भी अधिक अनादर मिला। उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद के आलोचकों ने ही विशेष रूप से इसके विरुद्ध प्रहार किया।

---

1 इङ्गलैंड में इसी प्रकार क्लिफर्ड ने घोषणा की थी कि सृष्टि केवल मनस्तत्व से ही निर्मित है। यही उनके निबन्ध 'आन द नेचर आफ थिंग्स इन देमसेल्व्ज' (सर्वप्रथम प्रकाशित 1878 के माइण्ड में) और 1879 लेक्चर्स एण्ड ऐसेज के रूप में पुनः मुद्रित। उनके आलोचकों ने यह बात विशेषरूप से बताई थी कि क्लिफोर्ड का मनस्तत्व असाधारण रूप से अन्य लोगों की पदार्थ की परिभाषा से मिलता जुलता है। जी० जे० रोमान्स ने अपनी 1895 में प्रकाशित पुस्तक 'माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म' में क्लिफर्ड के सिद्धान्त को मनोभूत वादी (पन साइकिक) दिशा में विकसित किया है।

तो भी अमरिका म विकासवाद का एक दूसरा ही रूप प्रस्फुटित हो गया ।[1] यहां इसका प्रचार करने वाला म जान फिस्के थे । उन्होंने अपनी दो पुस्तकों आउटलाइन्स आफ कोस्मिक फिलोसोफी (1874) तथा द आइडिया आफ गाड एज अफेक्टेड बाई माडन नोलेज (1886) मे उत्साह पूर्वक स्पेंसर द्वारा प्रणीत धर्म और विज्ञान के बीच स्पष्ट विरोधाभास के सिद्धान्त का अपनाया । लेकिन फिस्के के दर्शन म 'अज्ञेय' विशिष्टत एक क्रियमाण रूप ले लेता है । जो अनन्त और अखण्ड सत्ता सृष्टि की धड़कन म विद्यमान है । वह सजीव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नही है । प्रारम्भ म तो विकासवाद प्रकृतिवाद का मजबूती स पल्ला पकडे रहा लेकिन शीघ्र ही उसका उपयोग आदर्शवाद के लिए भी किया जाने लगा ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि वनानिक खोजो स व्यापक तौर पर और असाधारण रूप स दार्शनिक ने अपने इरादे सिद्ध किए है ।

उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद की सम्पूर्ण विविधताओ म से सर्वाधिक प्रभावशाली म वसवादियो का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद रहा (यदि यह प्रभाव अनुयायी बनाने वालो की गणना की दृष्टि स मालुम किया जाय तो) किन्तु यदि एतिहासिकता की दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रभाव एक आकस्मिक घटना के रूप म ही अपना महत्व रखता है । स्कालास्टिसिज्म की भांति, जिसके अनुगामियो की सख्या हजारो म है, यह एक ऐसा दर्शन है जिसका समाज क एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियो स निकट का सबध है—इस सदर्भ म ये सस्थाए सावियत सघ और साम्यवादी पार्टी हैं । इसका प्रभाव सिवाय उन दार्शनिको के जो इस सिद्धान्त के प्रतिबद्ध हैं और अपनी शर्तहीन आस्था दर्शाते हैं, सामान्यत कम ही रहा ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का स्पष्टीकरण कर देना आसान नही है ।[3]

---

1 एम०एच० फिश इवोल्यूशन इन अमेरिकन फिलासाफी (पी०आर० 1957), एच०डब्लू० श्रीदर हिस्ट्री आव अमेरिकन फिलासाफी (1946), पी०पी० वीनर इवोल्यूशन एण्ड द फाउन्डेस आन प्रगमेटिज्म (1949) ।

2 जम्स मैकक्रोश की कुशलता के विषय म कुछ भी न कहकर हम यहाँ इतना ही करते हैं कि उन्होंने अपनी पुस्तक द रिलीजस आसपेक्ट आफ इवोल्यूशन (1888) मे डार्विन के प्राकृतिक चुनाव को सिद्धान्त को कल्विनवाद की एक जीव-शास्त्री अभिव्यंजना माना था जिसमे ईश्वर को महान चुनावकर्ता माना गया है ।

3 खुलासा दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, एम कोनफोथ डाइलेक्टिकल मेटीरियलिज्म (3 भाग 1952–53), टी०ए० जक्सन डाइलेक्टिक्स (1938), आलोचक एम० ईस्टमैन की मार्क्सिज्म, इज इट साइन्स नामक पुस्तक का नाम भी गिना है । एच० एक्टन द इल्यूजन्स आफ द इपोक (1955) । के० पोपर व्हाट इज डाइलक्टिक (माइण्ड 1940) जे० एण्डरसन मार्क्सिस्ट फिलोसोफी (ए० ज० पी० 1935) । मार्क्स ने अपने विचार विस्तार म कहीं नही लिखे—एन्गेल्स ही मार्क्सवाद का दार्शनिक व्याख्याता है ।

साधारणत इसके आलोचक मार्क्स के भौतिकवाद का बूख्नर एवं उनके अनुगामियों के मैडिकल मटीरियलिज्म या चिकित्सात्मक द्रव्यवाद के सिद्धान्त के समकक्ष ठहराते है। कदाचित मार्क्सवाद के लिए बौद्धिक वातावरण तयार करने में बूकनर ने कुछ योग तो दिया ही था जबकि सत्य यह है कि फ्रेडरिक एंगल्स ने अपनी 1888 में लिखी पुस्तक **लुडविग फयोरबाख एंड द आउटकम ग्राफ क्लासिकल जमन फिलोसोफी** में भूतवादी चिन्तकों को भद्द फरीवाले एवं छिछले उपदेशकों की संज्ञा दी है। बूकनर द्वारा विज्ञान के व्याज से 'चिंतन से मुक्त दर्शन पर किए गए प्रहार के प्रति न तो मार्क्स और न एंगल्स ही कोई सहानुभूति रखते है। वे तो केवल हीगल और फयोरबाख इन दो विचारकों में जरूर अपनी आस्था रखते थे।

आज भी फयोरबाख की मान्यताओं में जो सर्वविदित है वह है भूतवादी चिकित्सा पर यह कह कर किया गया उनका प्रहार कि मनुष्य की पहचान इससे होती कि वह किस प्रकार का खाना खाता है। देखें हुक (**फ्राम हीगेल टू मार्क्स**)। लेकिन यह सिद्धान्त उनके अन्तिम दिनों का था। मार्क्स और एंगेल्स की प्रेरणा के स्रोत फयोरबाख वही थे जहां उन्होंने अपनी पुस्तक **ए क्रिटिक ग्राफ द हीगलियन फिलोसोफी** (1839) में यह तक दिया था कि हीगल का तत्ववाद छद्मवश में एक प्रकार का अध्यात्म ही है अध्यात्म को अंतिम प्रश्रय और उसे तार्किक सहारा देकर खड़ा करने की प्रवृत्ति। अपनी दूसरी पुस्तक **इसेंस ग्राफ क्रिश्चियनिटी** (1841) में उन्होंने अध्यात्म को सामाजिक संबंधों को प्रकट करने का एक उलझा हुआ और रहस्यमय माध्यम माना है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य को अपनी ही प्रतिकृति के रूप में बनाया है। धर्म मनुष्य के मन का एक स्वप्न है। हां लेकिन स्वप्न में कोई न कोई सत्य तो रहता ही है। स्वप्न में हम वास्तविक चीजों को कल्पना की मदहोश शान में भीगी हुई देखते है—सामान्य रूप से दैनिक यथार्थ व आवश्यकताओं की रोशनी में चाह हम उन्हें न देख सकें। फयोरबाख का उद्देश्य अध्यात्मवादियों का ग्राख खोल देना ही था। कोंट की तरह वह अतिप्राकृतिकवाद की फण्टेसाज के स्थान पर मानवता के धर्म की स्थापना करना चाहते थे जो कि प्रेम पर आधारित हो।

फयोरबाख ने मार्क्सवादियों के अनुरूप एक ही चोट में धर्म और तत्ववाद को नष्ट कर दिया है मात्र प्रकृति ही अनुभव द्वारा देखी जानी शेष है विचार द्वारा नहीं। लेकिन हीगल के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते समय मार्क्स की दृष्टि में फयोरबाख हीगल के दर्शन के क्षेत्र में किए गए योगदान के महत्व का अनुमान लगाने में असफल रहे—यह योगदान उनकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली थी। यह द्वन्द्वात्मक क्या था? एंगल्स ने इसके तीन नियमों की अपनी 1872 से 1882 के दौरान लिखी और 1927 में प्रकाशित हुई अपनी पुस्तक **डायलेक्टिक्स ग्राफ नेचर** में चर्चा की है (1) परिमाण का गुण में तब्दील करने का नियम (2) विपरीत स्थितियों के पारस्परिकता का नियम (3) नकारात्मकता के नकार का नियम।

इनम पहला नियम इस तथ्य उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है कि जब पानी का तापमान कम हो जाता है जो कि परिमाण म परिवतन की ही अवस्था है—यह बफ म बदल जाता है अर्थात अपन गुण म भी बदल जाता है।

एगल्स द्वारा निर्धारित नियमो म पिछल दो विवादास्पद हो गए है। 1875 म लिखी अपनी पुस्तक **कास आफ फिलोसोफी** म डूहरिंग[1] न इनकी कटु आलोचना की। वस्तुओ म कोई विरोधाभास नही होता बल्कि यह कहना भी बहूदगी की हद है कि यथाथ म भी विरोधाभास विद्यमान है। डूहरिंग की इस कटु आलोचना का उत्तर एगल्स न 1878 म एटी डूहरिंग लिख कर दिया—उसम एगल्स न बताया कि यह बात उस समय सत्य है जब हम वस्तुओ को जड मानें। गति अपन आप म एक विरोधाभास है। अति सरल और सामान्य भौतिक परिवतन एक वस्तु क दूसर स्थान पर आने क बिना हो ही नही सकता पहले उसका वहाँ होना जरूरी है फिर उसका न होना। एगल्स एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते है जो उनके विरोधाभास की नई व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रकृति द्वारा एक ओर बहुलता मे पदा किए गए कीटाणुओ क समूह और उनम से केवल कुछ का ही बचे होकर जीवित रह पाना इन दोनो को वे विरोधाभास मानते हैं। इसके अतिरिक्त पूजीवादी उत्पादन की विधि म तथा पूजीवादी उत्पादन क लिए काम करने वाली शक्तियो म भी एक बडा विरोधाभास है।

नकारात्मकता के नकार को डूहरिंग ने हीगल का शब्द-चमत्कार कहकर अमान्य घोषित किया है। लकिन एगल्स न उत्तर म कहा है कि यह सिद्धान्त विज्ञान और दनिक जीवन के साथ पूरी तरह मल खाता है। बीजगणित म माने गए 'अ' पर विचार करें जिसको नकारने पर (–अ) बनता है, इसी का पुन नकार तो (अ²) बन जाता है। इस प्रकार मौलिक अ' का मान अब पहले स बडी अवस्था प्राप्त कर लेता है। इसके अलावा जौ का पौधा उसी बीज को नकारता है जिसम स वह उत्पन्न होता है। यही नकार फिर बीजो की एक फसल उत्पन्न करता है जो इस प्रकार नकारात्मकता का नकार है—और पौधो पर अकुरित बीज इसका उदाहरण है।

यह पर्याप्त रूप मे स्पष्ट है कि विरोधाभास जसी नकारात्मकता को बिना परिभाषा क अजीब ढग स समझना पडेगा। इसम (1) को (–1) से, (अ) को (–अ) से गुणा करना तथा बीज के रूप म विकसित होना ये सब नकारात्मकताए

1 डूहरिंग की भौतिकवाद-सम्बन्धी अपनी व्यक्तिगत मान्यता थी। द्रष्टव्य एच० हाफडिंग **हिस्ट्री आफ माडन फिलोसोफी** **अङ्क 2**। अग्रेजी अनुवाद (1900)।

है। लेकिन क्या पदार्थ की कोई ठोस परिभाषा दी गई है ? इस सम्बन्ध में मार्क्स और एंगल्स के विचार फ्योरबाख के अधिक निकट पड़ते हैं। फ्योरबाख ने कहा था—मैं यह नहीं मानता कि द्रव्य विचार से उत्पन्न हुआ है। विचार द्रव्य से ही उत्पन्न हुआ है। उस द्रव्य से जिसका अस्तित्व मस्तिष्क से परे है। फ्योरबाख का यह सिद्धान्त जो या तो यथार्थवाद है या भौतिकवाद, मार्क्सवादी भौतिकवाद का मूलाधार है। मार्क्सवादी भौतिकवाद प्रतिरूपवाद (रिप्रेजेण्टेशनलिज्म) जैसी प्रचलित विचारधारा से काफी साम्य रखता है जिसमें यह माना गया है कि मस्तिष्क में उत्पन्न विचार यथार्थ वस्तुओं के ही प्रतिबिम्ब हैं।

इस तरह की लेनिन द्वारा लिखी पुस्तक **मैटीरियलिज्म एण्ड एम्पिरियो-क्रिटिसिज्म** (1908) में पदार्थ को एक ऐसी सत्ता माना गया है जो हमारी इन्द्रिय चेतना के संसर्ग में आने ही संवेदना उत्पन्न करती है। अर्थात् द्रव्य या पदार्थ हमारी इन्द्रियों का स्पर्श करने वाली भौतिक सत्ता है।

तब बर्कले की आलोचना का भी उत्तर देना होगा। उन्होंने लिखा था कि यदि पदार्थ अपने आप में कोई संवेदना नहीं है और केवल मात्र संवेदना को उत्पन्न करने वाली सत्ता है तो हमारे पास इसके हो सकने का कोई प्रमाण नहीं होगा। एंगल्स के मतानुसार बर्कले को तर्क द्वारा परास्त किया जा सकना कठिन है। लेकिन तो भी यह बात सही है कि तर्क से (विचार से) पहले क्रिया ही थी। शुरुआत में तो केवल क्रिया ही थी वस्तुओं के व्यावहारिक उपयोग के समय यह भेद करना सीख जाते हैं कि कौन से ऐसे विचार हैं जो भौतिक पदार्थों के प्रतिबिम्ब हैं और कौन से नहीं।[1] इसी सिद्धान्त का मार्क्स ने पहले ही अपनी पुस्तक **थीसेज आन फ्योरबाख** (1845) में प्रवर्तित किया था। मार्क्सवाद का यह पक्ष उसे अर्थक्रियावाद (प्रैग्मेटिज्म) के बहुत करीब खींच लाता है।[2]

संक्षेप में यही कहना ठीक है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि वस्तुएं हमारी चेतना से अलग हैं और हमारे मन में प्रतिबिम्बित होकर विचार के रूप में प्रकट होती हैं। ये भौतिक सत्ताएं और उनसे उत्पन्न तत्सम्बन्धी विचार निरंतर एक परिवर्तनशील अवस्था को प्रकटाते हैं। जो एंगल्स के अनुसार विरोधाभास को समाप्त करते हुए नकारात्मकता के नकार के सिद्धान्त को ही सिद्ध करता है।

---

1 सन्दर्भ जी० पाल लेनिन **थ्योरी आफ पर्सेप्शन** (एनालिसिस 1938)।

2 एस० हुक के द्वारा प्रस्तुत मार्क्स की व्याख्या 1939 में प्रकाशित पुस्तक **टुवर्ड्स द अंडरस्टैण्डिङ्ग आफ कार्ल मार्क्स** में। विशेषतः उन्होंने अर्थक्रियावाद से मार्क्सवाद का काफी अंशों में सादृश्य दिखाया है।

इस प्रकार मावर्स प्राकृतिक विज्ञान के सूक्ष्म भौतिकवाद (दृष्टव्य कपिटल 1867) का खण्डन करते है क्योकि यह इतिहास और उसकी प्रक्रिया को नही मानता। यह भौतिकवाद, प्राकृतिक वस्तुओ का केवल मात्र अपरिवर्तनशील अणुओ का क्रमबद्ध हो जाना मानता है। हीगल द्वारा प्रस्तुत इसी परिवर्तन (फलक्स) के सिद्धान्त ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को बहुत से वैज्ञानिको का समर्थन प्राप्त कराया है और वह भी उस वक्त जब विज्ञान परमाणुवाद[1] के पौराणिक रूपो को अमान्य कर रहा था। उन्नीसवी शती की उन अन्य भौतिकवादी मान्यताओ के विपरीत जो उस समय प्रचलित पदार्थ और शक्ति की परिभाषा करके ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर गये द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने अपनी जटिलता के सहारे प्रस्तुत अवस्थाओ को एक लचीले हथियार के रूप मे उपयोग किया।

1 जे० बी० एस० हाल्डेन द मार्क्सिस्ट फिलोसोफी एण्ड द साइन्सेज (1938)। एच० लेवी० की पुस्तक ए फिलोसोफी फार द माडर्न मन (1938) इस के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत की जा सकती है।

अध्याय 3
परमात्म की ओर

उन्नासवीं शती का कोई भी जाना पहचाना वैज्ञानिक, दार्शनिक के रूप में अधिक महत्व का सिद्ध न हो सका। इसके बावजूद भी उनकी रचनाओं का दर्शन के विकास पर काफी अंश में प्रभाव पड़ा ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार निम्नस्तरीय लोगों का अस्तित्व समाज के प्रतिष्ठित नागरिकों के जीवन का उनके समग्र में आन का साहस न रखते हुए भी प्रभावित करता है। भौतिकवाद और अनीश्वरवाद को अब केवल कुछेक विचित्र व्यक्तियों का दूषित और निजी आविष्कार कह कर पदच्युत नहीं किया जा सकता था। दार्शनिकों ने इन्हें न अपनाने के लिए भरसक यह प्रयत्न किए थे कि वे इनकी उपलब्धियों को अपने क्षेत्र में प्रवेश न करने देने के लिए अपने दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर लें। कुछ स्थानों पर तो दर्शन का केवल धर्म और परम्परागत नैतिकता की सुरक्षार्थ वैज्ञानिक दृष्टि के विरुद्ध स्थापित करने का कार्य चल रहा था।[1] और तो और दर्शन की अपनी सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी। अस्फुट स्वरों में तो दर्शन पर बंजरता, गंवारपन और विनाशी मुखता के आरोप भी लगाए जा रहे थे।

जर्मनी में तो हीगलवाद और भौतिक विज्ञानों का सहारा लेकर कान्तोत्तर आदर्शवाद के समूचे ढांचे को बड़ी तीव्र गति से ढहाया जा रहा था और प्रत्येक स्थान पर एक पुकार उठ रही थी—काण्ट की ओर दुबारा लौट चलो। किन्तु अभी काण्ट के ये नव-समर्थक उनके दर्शन के बारे में एकमत नहीं हो रहे थे। कुछ लोगों ने केवल काण्ट के **क्रीटीक आफ प्योर रीजन** पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया था। और उसमें दी गई मानवीय ज्ञान की व्याख्या का समालोचनात्मक विश्लेषण ही किया था। उनके अनुसार एक वैज्ञानिक युग में दर्शन का सही कार्य इसी प्रकार का विश्लेषण करना ही था। कुछ उनके **क्रिटीक आफ प्रैक्टीकल रीजन** से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। उनके अनुसार विज्ञान को इसमें नैतिकता और धर्म का सहचारी माना गया है। **क्रिटीक आफ जजमण्ट** में उनके अनुसार अनुभव द्वारा स्थापित ध्येय उद्देश्य और मूल सत्ता, विज्ञान और धर्म को समझने में एक ही तरह से मदद करते हैं।

---

1 सदभ, ए एलिओटा **द आइडियलिस्टिक रिएक्शन अगेन्स्ट साइंस** (अंग्रेजी संस्करण 1914), एम० एच० करे **फेजेज आफ थाट इन इंगलण्ड** (1949)

2 यह सामूहिक पुकार सर्वप्रथम प्रो० लीबमन की पुस्तक **काण्ट एण्ड द एपीगोनी** (1865) में सुनाई दे सकती है।

इन सभी विभिन्नताओं के कारण जर्मनी के नव-काण्टवाद का एक सामान्य प्रभाव पड़ा। विज्ञान की नकल पर दार्शनिकों ने विशेषीकरण, ज्ञान-मीमांसा, मूल्यों के विश्लेषण के सिद्धान्त और धर्म-दर्शन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया था। नए दार्शनिक सिद्धान्तों को गढ़ने में उनकी रुचि खत्म हो गई थी।

विशेष तौर पर ज्ञान मीमांसा की ललक जर्मनी में नयी नयी थी, और इस ललक के साथ ही जर्मनी में ब्रितानी अनुभववादी दर्शन के प्रति रुचि जाग्रत हुई थी। क्योंकि इस सिद्धान्त का बल सदैव ही ज्ञान मीमांसा पर ही रहा था।[1] कुछ समय तक तो परम्परागत प्रमाण्य को कौतूहलवश ही उथला जाता रहा। यह अजीब बात है कि ब्रिटेन में जर्मन पद्धति पर जिस समय महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया जाना प्रारम्भ हुआ था ठीक उसी समय जर्मन में भी ब्रितानी तरीके से विचार होना शुरू हुआ था और बाद में तो ब्रिटेन में तैयार किए गए तथा जर्मनी में धार लगाकर तीखे किए गए वैचारिक हथियारों से बीसवीं शती के ब्रितानी अनुभववाद ने आंग्लजर्मन आदर्शवाद पर विजय प्राप्त की थी।

किन्तु सारे जर्मन दार्शनिक ज्ञानमीमांसा के लिए तत्वमीमांसा पूर्णतया छोड़ देने को तैयार नहीं थे। इस चेतना के संवाहकों में से इंग्लैण्ड में सर्वाधिक प्रभावशाली आर० एच० लात्ज रहे थे।[2] अपनी पुस्तक *मेटाफीजिक्स* (1879) में उन्होंने लिखा

---

1 उदाहरणार्थ द्रष्टव्य एफ० लंग की पुस्तक हिस्ट्री आफ मटीरियलिज्म (1886) जो काण्टवादी विचारधारा की एक बहुत महत्वपूर्ण उपज है। लंग ब्रितानी दर्शन के एक सामान्य विद्यार्थी थे एवं जान स्टुअर्ट मिल के शिष्य थे। अध्याय चार भी देखें।

2 अनुवादकों की असाधारण श्रृंखला द्वारा उनका अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। इनमें ग्रीन बोसांके नेटलशिप, (तर्कशास्त्री) कान्सटेंस जोन्स और सर विलियम हैमिल्टन की पुत्री वगैरह थे। द्रष्टव्य, एच० जोन्स ए क्रिटीकल एकाउंट आफ दी फिलासफी आफ लोत्जे (1895)। नवहीगलवादी दृष्टि से यह लाज के प्रभाव के ज्वार को कम करने का एक अतुलनीय प्रयास है ई० ई० टामस लात्जज थ्योरी आफ रीअलिटी (1821) या उनका 'माइण्ड' में प्रकाशित निबन्ध लात्जेस रिलेशन टू आइडियालिज्म (1915) एल० स्टालिन कार्ल, लोत्जे एण्ड रिशल, (अंग्रेजी अनुवाद 1889)। टा० एम० लिण्डसे हरमन लोत्जे (माइण्ड, 1876), जो० सन्तयाना लोत्जेज मोरल आइडियलिज्म (माइण्ड 1890), गिलर लात्जेज मोनिज्म (पी० आर० 1896)। जर्मनी के इस सम्बन्ध के साहित्य के लिए द्रष्टव्य एफ यूबरवग ग्रुन्दरिस देर गेसीट देर फिलोसोफी। लोत्ज की विचारधारा पर विस्तृत विवरण के लिए देखें, ज० इ० एडमन हिस्ट्री आफ फिलोसोफी खण्ड ३ (अंग्रेजी अनुवाद 1890)। लाज पर निबन्धों के लिए देखें आर० एडमन कृत ए शार्ट हिस्ट्री आफ लाजिक। इंग्लैण्ड में लाज के प्रभाव के लिए देखें पी० डीवाउन (1911) इनफ्लुएंस आफ लोत्जेज फिलोसोफी आन एंग्लोमेरिकन (1932)।

कि जब चाकू से कोई वस्तु काटने का काम न लिया जाता हो तो उसे लगातार तीखा करना निरर्थक है। इसलिए करणीय यही है कि दार्शनिक समस्याओं को सीधे ढंग से हल किया जाय। बेहतर यही है कि बजाय यत्नपूर्वक ज्ञान के मार्ग को खोजने के सीधा ज्ञान प्राप्त ही क्यों न किया जाय।

तो भी कुछ अंशों में लोत्जे नवकाण्टवादियों द्वारा दर्शन प्रणाली (सिस्टम) पर किये जा रहे प्रहारों के समर्थक थे। भौतिकवादी और हीगलवादी इन दोनों ही प्रकार के विचारकों ने उनके मतानुसार उसी प्रकार की गलती की थी। उन्होंने न केवल कोशिश की बल्कि एक ही सिद्धान्त से अनुभव की बहुलता में बिखरे वैभव का व्यर्थ ही व्यक्त करना चाहा। चाहे यह कोई यन्त्रवत कार्य हो, भौतिकवादियों की तरह अथवा हीगलवादियों की तरह विचार की आवश्यक परिस्थिति हो। उनके अनुसार इस प्रकार से विचारक्रम का अंग बढाना तत्वमीमांसा की सीमाओं तथा उसकी प्रकृति को गलत समझना ही है। तत्व–मीमांसा एक प्रकार से सृष्टिक्रम की अवस्थाओं के बारे में ऐसी जानकारी हासिल करती है जिसके द्वारा उन सब वस्तुओं की व्याख्या होती है जिन्हें अस्तित्वमान और घटित होने वाला गिना जाता है। कोई घटना वास्तव में कैसे घटित होती है उसके लिए हमें तत्वमीमांसा का नहीं अपितु अनुभव का सहारा लेना चाहिए।

लोत्जे के दर्शन [1] को आत्मवादी यथार्थ की संज्ञा दी गई है—यथार्थ में यहां सही तात्पर्य है कि किसी घटना का घटित होना यान्त्रिक दशाओं पर अवलम्बित रहता है और आदर्शवाद का यही कि या तो घटनाएं एक पूर्वयोजना के सहारे घटित होती हैं अथवा वे घटित होकर किसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं।[2] चूंकि लात्जे ने डाक्टरी का प्रशिक्षण प्राप्त किया था इसलिए उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में जिनमें

---

1 लोत्जे कृत **सिस्टम आफ फिलोसोफी** जिसे वह अपने दार्शनिक विचारों का एक सिलेसिलेवार और पूर्ण ग्रन्थ बनाना चाहते थे उनकी मृत्यु के कारण अधूरी रह गयी। उनकी केवल दो पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकी **लोजिक** (1874) तथा **मेटाफिजिक्स**। 1856 से 1864 तक लिखे गए उनके ग्रन्थ **'माइक्रोकोस्मस'** में उनके विचार अधिक लोकप्रिय ढङ्ग से प्रस्तुत हुए हैं।

2 ब्रितानी दर्शन प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के पूर्वग्रह के कारण दार्शनिक विचारधाराओं को अपने प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि से ही भौतिक पदार्थों का वर्गीकरण करता है। यथार्थवाद उनके लिए ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें यह माना गया है कि भौतिक पदार्थ अदृश्यमान हो जाने पर भी अस्तित्व में होते हैं और आदर्शवाद तो यह मानता है कि पदार्थ तभी अस्तित्वमान हैं जब वे दिखाई देते हैं। इस तरह हक्सले अपने आपको आदर्शवादी कहते हैं क्योंकि वे पदार्थ को संवेदना के आकलन के अलावा कुछ नहीं मानते।

जनरल फीजियोलोजी आफ बोडीली लाइफ (1851) नामक पुस्तक ... यथार्थ वाद मिलता है और इसमे शारीरिक क्रियाओ के यांत्रिक विश्लषण के प्रति गहरी आस्था दिखाई गयी है—और लोत्जे की इन प्रारम्भिक रचनाओ ने जमनी की भौतिकवादी विचारधारा को हिला देने मे काफी हाथ बटाया है। किन्तु जसा उन्होंने अपनी पुस्तक 'माइक्रोकोस्मस' मे स्वय कहा है कि उनका उद्देश्य एक ओर यह दिखाना है कि समष्टि तत्व किस सीमा तक सृष्टि म निहित यान्त्रिकता के नियम का पालन करता है तो दूसरी ओर यह भी कि यान्त्रिकता का यह नियम पूणतया उसी पर आधारित भी है। लोत्जे के मतानुसार यह इसलिए है क्योकि यान्त्रिकता के सभी नियम समष्टि म व्याप्त आत्मा की ही इच्छा प्रकट करते हैं। ये शिवत्व के परिनान की एक दशा के अतिरिक्त कुछ नही है। अपने ही द्वारा लिय गए इस निष्कष को तक द्वारा या अभ्यास मे वे सिद्ध नही कर सकते एसा उन्होने स्वय माना है। मनुष्य की बुद्धि के लिए मूल्यो की सृष्टि तथा यान्त्रिकता की सृष्टि म जमीन आसमान का अतर है, उस सृष्टि म जिसमे पदाथ हैं बस ही, जसे कि वे हैं, क्योकि वसे ही होना उनके लिए सत्य है और उस सृष्टि म जिसम व हैं, अपनी अवस्थानुसार हैं क्योकि यान्त्रिकता की शक्तिया उन्ह उन्ही अवस्थाओ म रहन क लिए विवश कर रही है। लोत्जे के मतानुसार हमने जब जब भी पूव विश्वास के साथ उन दोनो के एकीकरण का प्रयास किया है, हमारी चेतना हम स्पष्टत यह विश्वास देती रही है कि इस प्रकार के एकीकरण का ज्ञान होना असम्भव है। इसलिए जिन लोगो म लोत्जे के द्वारा बताए गए इस पक्के विश्वास की कमी है उन्होने कभी इस तरीके से तो कभी उस तरीके मे अपनी विचार की एक ऐसी प्रणाली ईजाद कर लेन म सफलता हासिल की है जो उनके उद्देश्यो की पूर्ति करती हो। बहुधा लोत्जे को उन लोगो का पक्षधर माना गया है जो मूल्यो और तथ्यो म व सकारात्मक तथा अवमानात्मक जाच पडताल म स्पष्ट अतर मानते है चाहे यह बात उनकी विचारधारा का मूलाधार रही है कि वे इस प्रकार की प्रतिवादी स्थितिया का समाप्त करें।

लोत्जे के बारे म बनी यह सामान्य धारणा पूणत उचित है कि व सफल जाच पडताल की विशिष्टता के कारण रहे हैं चाहे यह जाच पडताल तकशास्त्र सम्बन्धी रही हो अथवा नतिकता, सौन्दयशास्त्र या मनोविज्ञान सम्बन्धी ही क्यो न रही हो (क्योकि यदि उन्ह मेधावी न माना जाय तो दशन म उनका अस्तित्व ही नही रहेगा)। व अपनी जाच पडताल द्वारा कभी भी सृष्टि का एक समवायी स्वरूप गठन म सफल नही हुए उनम सृष्टि म एकत्व ढूढन की तीव्र चाह थी फिर भी उनकी जाच पडताल की वृत्ति उन्ह सन्त द्वैत की ओर ल ही जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्होने जो कुछ भी बाद म लिखा है उसके कारण जितना यश उनको मिला उतना बहुत कम लोगो को मिला होगा फिर भी उनके अनुयायी एक प्रकार स नही क बराबर ही थ। उनके बारे म यह परिचित धारणा कि व केवल आधे दार्शनिक थे, पूरी तौर से गलत नही है। उनके द्वारा प्रवर्तित दशन को आगे बढ़ाना

न क्वल कठिन ह अपितु असम्भव भी है। कदाचित ही उसका कोई परिणाम निक्ल क्योंकि मूलत उनकी दृष्टि काई विचारधारा बनाने की ओर थी ही नहीं। लोत्ज के ब्रह्माण्ड म प्रत्यक प्रकार की स्थिति को स्थान था। लेकिन उतनी सामथ्य स काई अ य उनक उस जगत म पदापण नही कर सका।

कुछ समय क लिए इङ्गलण्ड की ओर लौटकर देखता हम पता लगगा कि वहा जो घटित हुआ वह विचित्र ही था। विलियम जेम्स ने इसका सक्षिप्त चित्रण इस प्रकार किया है। जमनी म हीगल के शव सस्कार के बाद अमेरीका व इङ्गलण्ड म उसका नव प्रभाव जाग्रत हो जाना आश्चय की बात है। मैं सोचता हूँ कि उनकी विचारधारा का क्रिश्चियन धम के प्रति हमारी उदार दृष्टि के विकास म काफी महत्वपूण प्रभाव होगा। इसने अध्यात्म के लिए चिर-अपेक्षित तत्व–मीमासा का योगदान दकर रीढ की हडडी का काम किया है। जबकि जमनी म हीगलवाद भौतिकवाद की प्रगति के साथ कदम स कदम मिलाने म असफल हो गया था। शायद सत्य यही है कि ब्रिटेन म उसका प्रवतन उसी उद्देश्य की पूर्ति क लिए ही हुआ हो।[1]

हीगल क प्रति जागत हो रही नई नई रुचि की पृष्ठभूमि म जा अध्यात्मिक वत्ति काम कर रही थी उसका प्रदशन जे० एच० स्टलिंग की कृतियो म स्पष्ट रूप स हुआ है।[2] 1865 म प्रकाशित उनकी पुस्तक **'द सीक्रेट आफ हीगेल'** जिसक बार म आलोचको न लिखा है कि इस पुस्तक म सीक्रेट (भद) बडी चतुराई स छिपाकर रखा गया है के साथ ही हीगलवाद सवप्रथम अपक्षाकृत अधिक बोधगम्य तथा सम्यक रूप स इगलड म आया।

स्टलिंग अपन समथनात्मक इरादो के विषय म पूण रूप से खुले हुए थ, बिना इस बात की पर्वाह किए कि व सही है अथवा गलत। उन्होने बड उत्साह से लिखा कि काट तथा हीगल का काम आस्था को पुन स्थापित करने के

---

1 निश्चय ही अन्य दाशनिको ने हक्सले पर परम्परागत अध्यात्मवाद का सहारा लेकर प्रहार किया है। इनम सबस अधिक परिचित राबट फ्लिण्ट को **थीइज्म** (1877) है जिसके तरह सस्करण निकल। द्रष्टव्य, डी मकमिलन **लाइफ आफ रोबट फ्लिट** (1914)।

2 द्रष्टव्य ए० एच० स्टलिंग **जे० एच० स्टलिंग हिज लाइफ एण्ड वक (1912)** यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि कयड तथा वनस की भाति स्टलिंग महोदय भी स्काट थ। परम्परागत स्काटलड के दशन के प्रति असन्तोष न ही योरपीय दशन म नवरुचि जागत की थी।

अतिरिक्त कुछ नहीं था । यह आस्था ईश्वर के प्रति थी आत्मा की अमरता के प्रति थी और इच्छा शक्ति की स्वतन्त्रता के लिए थी, यही नहीं यह आस्था ईसाईयत के एक स्वत जात धम होने के प्रति भी थी । और यही कारण था कि उन्होने हीगल और काट की अपने पाठको द्वारा पढे जाने की भी सिफारिश की । अमेरिका म ता सण्ट लुई के हीगलवादियो के उत्साही समूह ने एक ओर वहाँ पर उसके सिद्धान्तो को सरल और स्वाभाविक मोड दिया था तो दूसरी ओर उन्होन यह भी घोषणा की थी कि हीगल ने राजनीति म निहित तीन मुखो वाले दत्य को, धम म निहित परम्परामुखता को, तथा विज्ञान म निहित प्रकृतिवाद को समाप्त कर दिया है ।[1] य सब अपेक्षाए कालान्तर म समाप्त होनी ही थी । नव हीगलवादियो न अपना एक अलग दार्शनिक आन्दोलन खडा कर दिया था जो उदारतम ईसाइयो की मान्यताओ से भी काफी परे था । लेकिन यह बात सही थी कि इस प्रकार की अवस्थाओ का व्यापक तौर पर स्वागत हुआ तो उसके कारण ब्रिटन म उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो म आदशवाद के प्रति एकाएक रुचि जाग्रत हो गई, इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता ।

निश्चय ही एकाएक उपस्थित हो जाने वाली इस स्थिति पर अतिशयोक्तिया की गई और की भी जा सकती थी । इससे पूव दो बार आदशवाद इगलड म प्रचलित हुआ था दोनो ही अवसर पर भौतिकवाद के बढते हुए चरणो से बचाव के रूप म । पहले अवसर पर कम्ब्रिज के प्लेटोवादी, डेकाट और प्लेटो की सहायता स 17वी शती म विकसित हुई यान्त्रिकता एव अनीश्वरवादी विचारधाराओ के विरुद्ध सघष करत रहे । दूसरे अवसर पर न्यूटन द्वारा प्रणीत विज्ञान से उपज भौतिकवाद एव देववाद द्वारा बक्ल की विचारधारा को काफी धक्का लगा । यद्यपि आदशवाद की कोई परम्परा अब तक ब्रिटन म विद्यमान नही थी तो भी उसका समथन करने वालो की वहाँ कमी नही थी । साहित्यिक विचारको ने जिनम

---

1 मरम जे० एच० म्योरहेड प्लेटोनिक ट्रेडीशन इन एङ्गलोसेक्सन फिलोसोफी (1931) म हीगलवाद के इङ्गलंड और अमरीका म प्रवर्तित होन के बारे म विस्तार से वणन है । अन्य उपलब्धियो म सेण्ट लुई हीगलवादी द जनरल आफ स्पेकूलेटिव फिलोसोफी जसी पत्रिका की स्थापना करने के लिए जिम्मेदार थे । यह पत्रिका (1867) एग्लोसक्सन जगत म अपनी तरह की पहली ही थी । द्रष्टव्य पी० आर० एण्डरसन और एम० एच० फिश द्वारा लिखित फिलोसोफी इन अमेरिका फ्राम दी प्यूरिटन्स टु जेम्स (1939) । जे० एल० ब्लाउ मैन एण्ड मूवमेण्ट्स इन अमेरिकन फ़िलोसोफी (1952), जी० वाट कनिंघम द आइडियलिस्ट आग्र्यूमेण्ट इन रीसेण्ट ब्रिटिश एण्ड अमेरिकन फिलोसोफी (1933)। डब्लू० टी० हरिस सण्ट लुई हीगलवाद के नेता थ ।

कालरिज तथा कार्लाइल (इगलड) और एमसन (अमरीका) प्र दि सम्मिलित थ—'द सीक्रट आफ हीगल' क प्रति रुचि जाग्रत करनी प्रारम्भ की थी। यह शीषक ही एक बाह्य स्थिति की ओर सकत करता था। दस बात का आमास दता था कि हीगल म अवश्य ही कुछ न कुछ था। और प्रमुख विचारधारा क रूप म प्रवतित हा जान म पूव दो उल्लेखनीय यक्ति इगन्ड म आदशवा ी विचारक थ। य ज० एफ० फेरियर और जान ग्राटे थ।[1] फरियर एक एस विद्वान[2] थ, जिन्ह हीगल और शलिग की कृतियो का कुछ परिचय था और जिन्ह बक्ल की विचारधारा क प्रति भी रुचि थी—अब तक बक्ल की विचारधारा का लोगा न अनदेखा कर रखा था। अपनी पुस्तक **इन्स्टीटयूटस आफ मैटाफिजिक्स** म (1854) वह एक एस दाशनिक क रूप म प्रकट हुए हैं जिन्हे परम तम (एब्सोल्यूट) की खाज है। उनके अनुसार परमात्म स्पष्ट मनासत्त मुक्त सात्त्विक, शुद्ध एव निरविलव सत्ता है। ब्रिटन म निश्चय ही इस प्रकार की साहसिक विचारधारा बहुत यून देखन म आती है शायद इसका कोइ पूव सूत्र इगलड म नही मिलता। यूराप म चाहे इसका प्रचलन हा गया था। फेरियर की विचार प्रणाली भी इसी प्रकार अपराम्परागत थी। ब्रितानी दशन न सदव इस बात पर गव किया है कि वहा जम विचार लचीन अनौपचारिक और दाशनिक भाषा को गढने क प्रति लापरवाह रह हैं जब कि फरियर ने प्रयास करके अपने विचारा का प्रामाणिकता की एक अटूट शृखला म आबद्ध कर दिया था। य विचार पूण रूप से तथ्यो पर आधारित थे। इन तथ्यो की परिभाषा उन्होन यह की थी कि य किसी भी अकल्पनीय स्थिति क प्रतिकूल है—परस्पर विरोधाभास से लीन हैं असगति से रहित और सम्भव है।

उनके निष्कष कदाचित कम आश्चयजनक थ। काट जियन सिद्धान्त जिन्हान ब्रिटन म एक व्यापक स्वीकृति प्राप्त की थी से आरम्भ करक उन्हाने यह प्रमाणित

---

1 कालरिज स लकर ब्रेडले तक प्रारम्भ हुए इस आन्दोलन के लिए द्रष्टव्य म्योरहड और जे० प्यूमल कृत **आइडियलिज्म इन इगलण्ड फ्राम कालरिज टू ब्रेडले** (1955)

2 ई० एस० हाल्डन जे० एफ० फरियर (1899), जी० एफ० स्टाउट फिलोसोफी (बोटिवा टेबेला (1911) मे)। **लेक्चस इन अर्ली ग्रीक फिलोसोफी एण्ड रिमेस** (1866) नामक रचना उनकी महत्वपूण कृति मानी जाती है। मिल द्वारा फरियर पर की गई टिप्पणी मनोरजक है उनक विचारधारा के ततु इतन प्रभावशील ढङ्ग स बुने गए है और इतन आतक डालन वाल हैं कि लगभग उन्ह एक कलाकृति की सना म रखा जा सकता है। उनका सारा दशन वृत्ताकार तर्कों का एक अद्वितीय नमूना पेश करता है और काव्य के समीप हान पर भी उन्ह दशन समझा जा रहा है।

करने की कोशिश की कि अधिक से अधिक हम जितना जान सकते है वह न तो शुद्ध पदार्थ है न शुद्ध आत्म, किन्तु पदार्थ को जानता हुआ आत्म है। दूसरे यह भी कि भौतिक पदार्थ की भांति इसका अस्तित्वमान होना कम से कम सम्भव है किन्तु प्रकट म यही सबसे ज्यादा होने की स्थिति म है। मस्तिष्क स्वतन्त्र रूप से अस्तित्वमान परम सत्ता नहीं हो सकते क्योंकि वस्तु का अनुभव करने के कारण ही उनका अस्तित्व है और यह कहना कि परमात्म एक ऐसी सत्ता है जो हमारे ज्ञान से पर है, और जिसके बारे म हम बिल्कुल कुछ भी नहीं जानते, फरियर के मतानुसार यह मानने के बराबर है कि हम किसी सम्भव ज्ञान के उपकरण को नहीं जान सकते। यह बात स्पष्टत स्वीकरणीय है कि हम केन्सर के कारण से परिचित नहीं है किन्तु यह उभी समय है जब उसका कोई न कोई कारण है और उससे अनभिज्ञ है और कारण को जान सकने की स्थिति विद्यमान है।

यह निष्कर्ष विशिष्टत ब्रितानी है क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान का उपकरण–सापेक्ष माना गया है और यही सत्य के ज्ञान की कुंजी है। फरियर का दर्शन सामान्य बुद्धि से किसी प्रकार मेल नहीं खाता था।

स्कॉट विचारधारा के एक महान प्रवर्तक टामस रीड के बारे म फरियर का यह मत है (कदाचित यह इसलिए भी है कि स्वयं स्कोटलैंड मे प्रोफेसर होने के कारण ही उन्होंने ऐसा लिखा) कि अपने मन्तव्यों म नेक होने तथा दर्शन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों म श्रेष्ठतम योग्यता रखने वाले टोमस रीड म तार्किक अनुमान सम्बन्धी योग्यता नहीं थी—निश्चय ही उनका मस्तिष्क अदार्शनिक था, जिसका सामान्य बुद्धि वाले पाठकों को प्रसन्न रखने के लिए किया गया उनके द्वारा उपयोग अपनी सूझ–बूझ और नवीनता के कारण अतुलनीय माना जा सकता है। फरियर के मन म सामान्य व लोकप्रिय रुचियों की कामचलाऊ, किलवन्दियों के प्रति एक गहरी घृणा थी जिसके परिणाम से ब्रिटेन म दर्शन के नये स्वर प्रकट होने लगे थे। बाहरी क्षेत्रों म अब ब्रितानी दर्शन के प्रति यह अपेक्षा और औत्सुक्य स्वाभाविक था कि कैसे उसका विकास ठोस तथ्यों पर हो रहा है। और धीरे-धीरे सामान्य रुचि के अनुकूल प्रस्तुत की जाने वाली दार्शनिक विचारधारा के प्रति एक अनिच्छा का भाव सभी क्षेत्रों म विकसित हो रहा था।

जान ग्राट यद्यपि इतना क्रांतिकारी नहीं था तो भी उसकी कृति एक्सप्लोरेशियों फिलोसोफिका भाग 1 अपने उपशीर्षक रफ नोटस ग्रान माडन इण्टेलेक्चुअल साइंस (1865) के साथ घर घर म विकसित हो रहे आदर्शवाद का मनोरंजक नमूना है। जैसा कि इसके शीर्षक से ध्वनित है यह अपने आप म एक पूर्ण कृति नहीं है। इसके अधिकांश भाग म मिल, हैमिल्टन ह्वेवैल और फरियर आदि पर समालोचनात्मक निबन्ध हैं किन्तु विज्ञान को अपना अपेक्षित दर्जा दिलवाने के इनके

प्रयास से इनका सामा य म तव्य प्रकट हो जाता ही है। लात्ज की भाति ग्रोट भी चाहते थे कि सभी प्राकृतिक वैज्ञानिको को यात्रिक विश्लषण के जरिए ही आगे बढना चाहिए और उन्ह उसके दाशनिक परिणामो की कोई चिन्ता नही करनी चाहिए। इसके बावजूद व मिल के इस दृष्टिकोण का प्रबल विरोध करते ह कि वज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नतिक विज्ञानो पर भी वस ही किया जा सकता है। *शारीरिक प्रक्रियाओ से परे मानवी भावनाए कोई भौतिक पदाथ नही है इसलिए* ग्रोटे के मतानुसार वे विज्ञान के क्षेत्र से बाहर है।

उनके अनुसार विज्ञान, वस्तुओ के बारे म ज्ञात तथ्यो के आधार पर सूक्ष्म अध्ययन करने का नाम है। इस प्रकार का सूक्ष्मीकरण मानवीय भावनाओ के बारे म किया जाना असम्भव है। हा, दशन की दृष्टि से उनकी ज्ञातव्यता हा उनकी वास्तविक एव मूल अवस्था के सम्बन्ध म एक अत्यन्त महत्वपूण प्रश्न है। अब हम पदार्थों पर इस दृष्टि स विचार करते हैं तो ग्रोट के मतानुसार हम इसीलिए उन्ह जान सकते हैं क्योकि उनम हमारी बुद्धि के साथ जुड जाने का एक गुण विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दो म वे इसीलिए ज्ञातव्य हैं क्योकि वे स्वय म विवेक-सम्पृक्त है। इसका अथ यही हुआ कि उनम स्वय म अपना मस्तिष्क है—ग्रोटे के मतानुसार यही एक ऐसा निष्कष है जो हम इस ब्रह्माण्ड के साथ एक कुटुम्ब के रूप म जोडता है। मिल द्वारा प्रदर्शित केवल सघटनात्मक आत्मा, जो हम एक अकथनीय एव कष्ट-प्रद व उजाड अवस्था म छोड देती है, के विरोध म ग्रोटे ने यह सात्वनात्मक बात कही। इस ब्रह्माण्ड के साथ कुटुम्ब की यह भावना जो हम इतनी अनुभूति प्रदान करती है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना स्वय भी की जा सकती है—आदशवादी दशन के उद्देश्य को अत्यन्त शक्तिशाली ढग से पुष्ट करती है। ग्रोटे की इस सम्बन्ध म की गई उक्तिया काफी मुखर हैं।

लेकिन न तो ग्रोटे की भी नल्बी[1] और न फरियर जसा विशद प्रमाणीकरण इस

---

1 केम्ब्रिज भावना को समाहित करती कदाचित ग्रोटे की यह सवप्रथम विचार धारा है। *व केम्ब्रिज विश्वविद्यालय म नतिक दशन के प्रोफेसर थ। इस नतिक दशन* न अपना चरमोत्कष जी० ई० मूर की कृतियो म प्राप्त किया है।

मूर का मनीषीपन उनके द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा स मुक्त अव्याव हारिक तथ्य उद्धरणपूण शली, उनकी तल्ख, विशिष्ट किन्तु विद्वत्ता के बोझ से मुक्त आलोचना उनका सामान्य आदमी के समझने योग्य भाषा का प्रयोग करने के प्रति जोर, इन सभी बातो म झलकता है। कुछ स्थलो पर तो वे मौलिक हैं, जब व परिचय द्वारा ज्ञान और किसी वस्तु के बारे म ज्ञान के अन्तर की चर्चा कर रहे होते हैं जिसका प्रवतन बाद की केम्ब्रिज विचारधारा का एक अङ्ग बन गया। ग्रोटे बहुत दृष्टियो स एक प्रभावशाली दाशनिक रहे हैं, किन्तु उनका प्रभाव एसा है जिसे सक्षेप म नही कहा जा सकता।

ब्रितानी आदर्शवादी विचार प्रणाली म कही मिलता है । विदेशी प्रभावो के ज्वार न उन्हे अपने साथ बहा लिया ।[1] सातवी दशाब्दी म ही सवप्रथम अनुवाद और टिप्पणियो पर बल दिया जाता रहा था । आक्सफोर्ड म बेंजामिन जोवेट द्वारा 1871 म किए गए प्लेटो के अनुवाद न उनके विशिष्ट शिष्यो म उन्हा के द्वारा समर्थित जमन आदर्शवाद से किसी प्रकार का कम प्रेम व नहीं छोडा था । विलियम वलेस की पुस्तक द लाजिक आफ हीगल (1874) अनुवाद और टिप्पणी दोना ही दृष्टियों स महत्वपूर्ण थी । एडवर्ड केयड न कान्ट का एक विस्तृत अध्ययन 1817 म प्रस्तुत किया था। इनके द्वारा कान्ट को हीगल के प्रभाव के चश्मे स देखा गया है। 1833 म उन्ही के द्वारा प्रकाशित सक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण ग्रन्थ हीगल म उन्होंने हीगल का अध्ययन प्रस्तुत किया ।

केयड की पुस्तक हीगल जिसम हीगल के दर्शन के महत्व को समझाया गया है स्पष्ट स्काट हीगलवादियो के प्रभावो और मन्तव्यो को ही प्रदर्शित करती है । केयड की दृष्टि म हीगल सवप्रथम एक अध्यात्मवादी थे । उनकी विचारधारा प्रबल रूप म उत्तम मानवी जीवन जीने की व्यावहारिक दृष्टि से ही निर्मित हुई है । उनम एक ऐसी भावना थी जिसस व मानवी अस्तित्व के धार्मिक और नतिक आधार को पुन प्राप्त करना चाहते थे जिसे भौतिकवादी सदहवाद ने ध्वस्त कर दिया था। और उनकी विचार प्रणाली अर्थात् उनकी द्वन्द्वात्मकता की विधि समन्वयवादी दृष्टि प्रस्तुत करती है। उनके मत म हीगल के लिए कोई ऐसी प्रतिवादी स्थिति नहीं है जिसका समन्वय न होता हो । निश्चय ही उच्चतर एकता की कोई भावना हमारे या प्रकृति के स्वभाव म निहित है, जो प्रतिवादी स्थितियो का समन्वय करवा देती है इसलिए यदि विज्ञान और धर्म म कोई विरोध है तो वह मात्र ऊपरी है । वास्तव म व किसी उच्चतर एकता की सिद्धि म लगे हुए दो उपकरण है ।

केयड वास्तव म यह बताने की कोशिश करते हैं कि परम्परागत धर्म व भौतिकवादी विज्ञान के बीच की खाई को पाटा जा सकता है—यह एक एस धर्मदर्शन स सभव है जो विज्ञान की इस बात का समर्थन करता है कि वैज्ञानिक नियमो के किसी प्रकार के अपवाद नहीं होते और धर्म की इस बात का कि आत्मा की या आदर्श की स्थिति ही सर्वोच्च है । इन ऊपर स विरोधी दिखने वाले सिद्धान्तो को यह कह कर जोडा जा सकता है कि वैज्ञानिक नियम अपने आपम आत्मिक हैं । केयड ने लिखा है कि—एस विश्व म जो प्राकृतिक है पहले की भांति अब यह दैवी या दैवी तत्व

---

1 द्रष्टव्य म्योरहैड की उपर्युक्त कृति । एफ० होधाग लोनीपोहीपल्यिनिज्म एन एङ्गलेतेरी ।

प्रयास से इनका सामान्य मन्तव्य प्रकट हो जाता ही है। लात्ज की भांति ग्रोटे भी चाहते थे कि सभी प्राकृतिक वैज्ञानिकों को यान्त्रिक विश्लेषण के जरिए ही आगे बढ़ना चाहिए और उन्हें उसके दार्शनिक परिणामों की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसके बावजूद वे मिल के इस दृष्टिकोण का प्रबल विरोध करते हैं कि वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नैतिक विज्ञानों पर भी वैसे ही किया जा सकता है। शारीरिक प्रक्रियाओं से परे मानवी भावनाएं कोई भौतिक पदार्थ नहीं हैं इसलिए ग्रोटे के मतानुसार वे विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं।

उनके अनुसार विज्ञान, वस्तुओं के बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर सूक्ष्म अध्ययन करने का नाम है। इस प्रकार का सूक्ष्मीकरण मानवीय भावनाओं के बारे में किया जाना असम्भव है। हां, दर्शन की दृष्टि से उनकी ज्ञातव्यता ही उनकी वास्तविक एवं मूल अवस्था के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। अब हम पदार्थों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो ग्रोटे के मतानुसार हम इसीलिए उन्हें जान सकते हैं क्योंकि उनमें हमारी बुद्धि के साथ जुड़ जाने का एक गुण विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दों में वे इसीलिए ज्ञातव्य हैं क्योंकि वे स्वयं में विवेक-सम्पृक्त हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि उनमें स्वयं में अपना मस्तिष्क है—ग्रोटे के मतानुसार यही एक ऐसा निष्कर्ष है जो हमें इस ब्रह्माण्ड के साथ एक कुटुम्ब के रूप में जोड़ता है। मिल द्वारा प्रदर्शित केवल संघटनात्मक आत्मा, जो हमें एक अकथनीय एवं कष्टप्रद व उजाड़ अवस्था में छोड़ देती है के विरोध में ग्रोटे ने यह सान्त्वनात्मक बात कही। इस ब्रह्माण्ड के साथ कुटुम्ब की यह भावना जो हमें इतनी अनुभूति प्रदान करती है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना स्वयं भी की जा सकती है—आदर्शवादी दर्शन के उद्देश्य को अत्यन्त शक्तिशाली ढंग से पुष्ट करती है। ग्रोटे की इस सम्बन्ध में की गई उक्तियां काफी मुखर हैं।

लेकिन न तो ग्रोटे की भी तल्खी[1] और न फरियर जैसा विशेष प्रमाणीकरण इस

---

1 केम्ब्रिज भावना को समाहित करती कदाचित ग्रोटे की यह सर्वप्रथम विचारधारा है। वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शन के प्रोफेसर थे। इस नैतिक दर्शन ने अपना चरमोत्कर्ष जी० ई० मूर की कृतियों में प्राप्त किया है।

मूर का मनीषीपन उनके द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा से मुक्त आपचारिक तथ्य, उद्धरणपूर्ण शैली उनकी तल्ख विशिष्ट, किन्तु विद्वत्ता के बोझ से मुक्त आलोचना उनका सामान्य आदमी के समझने योग्य भाषा का प्रयोग करने के प्रति जोर इन सभी बातों में झलकता है। कुछ स्थलों पर तो वे मौलिक हैं जब वे परिचय द्वारा ज्ञान और किसी वस्तु के बारे में ज्ञान के अन्तर की चर्चा कर रहे होते हैं जिसका प्रवर्तन बाद की केम्ब्रिज विचारधारा का एक अङ्ग बन गया। ग्रोटे बहुत दृष्टियों से एक प्रभावशाली दार्शनिक रहे हैं, किन्तु उनका प्रभाव ऐसा है जिसे संक्षेप में नहीं कहा जा सकता।

पहली पीढ़ी के सभी ग्रादशवादियो म सवाधिक प्रभावशाली टी० एच० ग्रीन थ। जेम्स के कथनानुसार ग्रीन की विचारधारा ने ग्रन्य सब ग्रादशवादियो की अपेक्षा चच सम्बधी उदारवादी दृष्टिकोण निर्माण करने म ग्राधिभौतिक (तत्त्ववादी) रीढ की हड्डी का काम किया है—उनके इस दशन न ग्रपन समय के जिज्ञासु ग्रौर लोकबुद्धि वाले ग्राक्सफोड के विद्यार्थियो को प्रबलरूप से प्रभावित किया। जैसा कि ग्रार० जी० कॉलिंगवुड ने 1939 म प्रकाशित ग्रपनी ग्राटोबायोग्राफी म लिखा है ग्रीन की विचार-प्रणाली न लोकजीवन म शिष्यो की एक एसी निमाण परम्परा प्रवाहित की जो ग्रपने साथ यह ग्रास्था लिए थे कि जो दशन उन्होंने ग्रॉक्सफोड म पढा है वह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी ग्रौर उनका ध्येय उसे व्यवहार म लाना था। इसी प्रकार की ग्रास्था विभिन्न प्रकार के तत्कालीन राजनीतिज्ञो मे भी थी जिनम एसक्विथ ग्रौर मिलनर जसे राजनीतिक थे, गोरो एव स्कॉट हॉलैण्ड जसे पादरी थे ग्रौर ग्रारनोल्ड टायनबी जसे समाजसुधारक थ। इस प्रकार के प्रभाव के जरिए ग्रीन की विचार प्रणाली 1880—

स्मरणाश (पी० बी० ए० 1921)। वे एक उत्साही ग्रौर समथ ग्रध्यापक थे—जन्म के वल्श थे, जिन्होंने ग्रपन जीवनान्त तक केयड द्वारा प्रतिपादित हीगलवाद का प्रवतन किया (द्रष्टव्य ए फथ देट इनक्वायस 1922)। इसके लिए उ ह उन तथा-कथित नए विचारको का विरोध करना पडा जो ग्रपन ग्रापको परमात्मवादी तथा वयक्तिक ग्रादशवादी मानत थे। उनकी ग्रत्यन्त महत्वपूर्ण कृति क्रिटिकल एग्जामिनेशन ग्राफ लोत्सो फिलोसोफी (1895) है। वाटसन भी एडवड कयड के भाई जान केयड की भाँति प्रमुखत धमदशन म रुचि रखते थ। जान कयड के सबध मे देखें, सी० एल० वार कृत मेमोयस ग्राफ प्रिंसिपल केयड (1926)। म्यारहेड ग्रौर मेकेन्जी तो कयड की ग्रादशवादी परम्परा को वतमान शताब्दी की तीसरी दशाब्दी तक चलाते रहे उन्होंने इसका सबध राजनीतिक, नतिक तथा सामाजिक विचार-धाराग्रो के साथ स्थापित करत हुए बहुत समय बाद तक विकसित हुए विज्ञान ग्रौर दशन के साथ भी उस जोडे रखा। किन्तु केयड का दशन कभी कसा हुग्रा ग्रौर व्यवस्थित न रहा। ग्रौर मकेन्जी के हाथो म तो वह एक उदार मठवाद म विकसित हो गया। द्रष्टव्य ज० एस० मेकेन्जी कृत एलीमण्टस ग्राफ कान्स्ट्रक्टिव फिलोसोफी (1917) ग्रौर पी० बी० ए० म (1935) प्रकाशित म्योरहैड क स्मरणाश। म्योरहैड की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाग्रो म उनका नीतिशास्त्र तथा दशन का इतिहास है। द लाइब्रेरी ग्राव फिलोसफी एव कन्टम्पोरेरी ब्रिटिश फिलोसोफी (1924) नामक ग्रन्थो क सम्पादक के रूप म उन्होंने विभिन्न प्रकार के दाशनिको को एक साथ लाकर खडा कर दिया है। कयड की समन्वयवादी परम्परा का सदव उन्हें स्मरण रहता था। म्यारहैड की ग्रात्मकथा रिफ्लेक्शन्स बाई ए जर्नीमैन इन फिलोसोफी (मरणोपरान्त प्रकाशित, 1942) ग्रादि ग्रादि। इस युग म प्रकट हो रही नयी सामाजिक प्रवृत्तियो क निर्माण म ग्रादशवादियो का क्या योगदान रहा यह बात म्योरहैड की इस ग्रात्मकथा म देखी जा सकती है।

भौतिक शक्तियो का भेद करवाना और अधिक सभव है–हम आदश को कही भी प्राप्त करे इसके लिए यह आवश्यक है कि वह सब जगह प्राप्त हो। विशेष आत्मिक प्रक्षेप की घटनाओ को(जस काई दवी चमत्कार)जिन पर रूढिवादी धम अधिक बल देता है–अन्धविश्वास कह कर त्याग दना चाहिए। इस प्रकार क अन्धविश्वास की एम जगत म आवश्यकता क्या है जो पूणत आत्मवादी हो ? परम्परागत अध्यात्मवाद प्रचलना से ईश्वर, आदमी और प्रकृति म भेद करता है।आदशवाद इसीलिए दरअमल सही दाशनिक अध्यात्म है क्योकि केयड के मतानुसार वह इन तीनो म एक आत्मिक सत्ता को काय करते हुए देखता है। केयड तथ्यो क जगत और मूल्यो क जगत जमी परिचित धारणा को भी नही मानते। मूल्य वस्तुत तथ्यो म ही सन्निहित हैं अन्यत्र कही नही, और प्रत्यक तथ्य का अपना मूल्य है।

केयड के हीगलवाद का एक अन्य पहलू उनका विकास के सिद्धान्त पर जोर दना ह। जिस उच्चतर सत्ता म प्रतिवदी विचारधाराए समन्वित हो जाती है वह एक एकात्मक सत्ता अपने आगिक प्रक्रिया के विकास को ही प्रकट करती है। कयड क मतानुसार धम का अध्ययन एतिहासिक दष्टि स भी होना चाहिए। हम यह देखना है कि किस प्रकार धम आरभ से ही मनुष्य के जीवन म आकस्मिक शक्ति के रूप म काय करता रहा है। यही उनकी दो पुस्तको **द इवोल्यूशन आफ रिलीजन** (1893) तथा **द इवोल्यूशन आफ थियोलोजी इन द ग्रीक फिलोसफी** (1904) के मूल कथ्य ह। यह प्रश्न करना उनके अनुसार गलत है कि अमुक धम गलत है या सही ? हम देखना यह चाहिए कि सत्य को कितनी मात्रा म अमुक धम द्वारा अभिव्यक्ति मिली हे और उसम क्या विसगतियाँ और अस्पष्ट धारणाए आज भी विद्यमान हैं।

डार्विन और काम्त के विषय म अन्यत्र से कुछ लिख सकने की स्थिति मे केयड अपन आप को इसलिए पाते हैं कि उन्होने विकासवाद क सिद्धान्त की धारणा को एक बहुत बडा योगदान दिया है। उनकी इसी गहरी सहानुभूति न अभिव्यक्ति का अदभुत क्षमता न तथा उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व न स्काटलेण्ड मे हीगलवाद के प्रचार म काफी योग दिया। वे वहा पर 1866 स लकर 1892 तक ग्लासगो विश्वविद्यालय म नतिक दशन के प्रोफेसर थ। इगलण्ड मे भी अपने ही गुरू जावेट के बाद उन्ह मास्टर आफ बलियल क रूप म प्रतिष्ठित किया गया।[1]

---

1 केयड और उसके सम्बन्ध म द्रष्टव्य एच० जोन्स एव जे० एम० म्योरहैड कृत **द लाइफ एण्ड फिलोसोफी आफ एडवड केयड** (1921)। जे०एस० मकेन्जी **एडवड केयड एज ए फिलोसोफीकल टीचर** (माइण्ड 1909)। जोन वाटसन **द आइडियलिजम आफ एडवड केयड** (पी० आर० 1909)। जोन्स मूरहैड, मकेनजी एव वाटसन केयड के प्रमुख शिष्यो म से थ। जोन्स के लिए देख, एच डब्लू० जे० हैथरिंगटन **लाइफ एण्ड लेटस आफ सर हैनरी जोन्स** (1924)। जे०एच०म्योरहैड के

पहली पीढ़ी के सभी आदशवादियों में सर्वाधिक प्रभावशाली टी० एच० ग्रीन थे। जेम्स के कथनानुसार ग्रीन की विचारधारा ने अन्य सब आदशवादियों की अपेक्षा उच्च मध्यवर्ती उत्तरवादी दृष्टिकोण निर्माण करने में आधिभौतिक (तत्त्ववादी) रीढ़ की हड्डी का काम किया है—उनके इस दर्शन ने अपने समय के जिज्ञासु और लोकबुद्धि वाले आक्सफोर्ड के विद्यार्थियों को प्रबलरूप से प्रभावित किया। जैसा कि आर० जी० कॉलिंगवुड ने 1939 में प्रकाशित अपनी आटोबायोग्राफी में लिखा है, ग्रीन की विचार प्रणाली ने लोकजीवन में शिष्यों की एक ऐसी निर्माण परम्परा प्रवाहित की जो अपने साथ यह आस्था लिए थे कि जो दर्शन उन्होंने ऑक्सफोर्ड में पढ़ा है वह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी और उनका ध्येय उसे व्यवहार में लाना था। इसी प्रकार की आस्था विभिन्न प्रकार के तत्कालीन राजनीतिज्ञों में भी थी जिनमें एस्क्विथ और मिलनर जैसे राजनीतिज्ञ थे गोरो एवं स्कॉट हालण्ड जैसे पादरी थे और ऑरनोल्ड टायनबी जैसे समाजसुधारक थे। इस प्रकार के प्रभाव के जरिए ग्रीन की विचार प्रणाली 1880–

स्मरणांश (पी० बी० ए० 1921)। वे एक उत्साही और समर्थ अध्यापक थे—जन्म के वेल्श थे, जिन्होंने अपने जीवनान्त तक केयर्ड द्वारा प्रतिपादित हीगलवाद का प्रवर्तन किया (द्रष्टव्य ए फेथ दैट इनक्वायर्स 1922)। इसके लिए उन्हें उन तथाकथित नए विचारकों का विरोध करना पड़ा जो अपने आपको परमात्मवादी तथा वैयक्तिक आदशवादी मानते थे। उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति क्रिटिकल एग्जामिनेशन आफ लोत्ज़े फिलोसोफी (1895) है। वाटसन भी एडवर्ड केयर्ड के भाई जान केयर्ड की भाँति प्रमुखतः धर्मदर्शन में रुचि रखते थे। जान केयर्ड के संबंध में देखें, सी० एल० वार कृत मेमोयर्स आफ प्रिंसिपल केयर्ड (1926)। म्यारहेड और मेकेन्जी तो केयर्ड की आदशवादी परम्परा को वर्तमान शताब्दी की तीसरी दशाब्दी तक चलाते रहे उन्होंने इसका संबंध राजनैतिक, नैतिक तथा सामाजिक विचार-धाराओं के साथ स्थापित करते हुए बहुत समय बाद तक विकसित हुए विज्ञान और दर्शन के साथ भी उसे जोड़े रखा। किन्तु केयर्ड का दर्शन कभी वैसा हुआ और व्यवस्थित न रहा। और मेकेन्जी के हाथों में तो वह एक उदार मतवाद में विकसित हो गया। द्रष्टव्य जे० एस० मेकेन्जी उक्त एलीमेण्ट्स आफ कान्स्ट्रक्टिव फिलोसोफी (1917) और पी० बी० ए० में (1935) प्रकाशित म्योरहैड के स्मरणांश। म्योरहैड की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाओं में उनका नीतिशास्त्र तथा दर्शन का इतिहास है। द लाइब्रेरी आफ फिलोसफी एवं कन्टम्पोरेरी ब्रिटिश फिलोसोफी (1924) नामक ग्रन्थों के सम्पादक के रूप में उन्होंने विभिन्न प्रकार के दार्शनिकों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया है। केयर्ड की समन्वयवादी परम्परा का सदैव उन्हें स्मरण रहता था। म्यारहेड की आत्मकथा रिफ्लेक्शन्स बाई ए जर्नीमैन इन फिलोसोफी (मरणोपरान्त प्रकाशित, 1942) आदि आदि। इस युग में प्रकट हो रही नयी सामाजिक प्रवृत्तियों के निर्माण में आदशवादियों का क्या योगदान रहा यह बात म्यारहेड की इस आत्मकथा में देखी जा सकती है।

म लेकर 1910 तक राष्ट्रीय जीवन क प्रत्यक भाग पर अपनी छाप अंकित करती रही[1]।

जान्स और बहुत स अन्य ब्रितानी आत्मवादियो की भाति ग्रीन एक सधे हुए अध्यापक थ यद्यपि उन्होन एक शिक्षाशास्त्री और समाजसुधारक क रूप म मुक्त रूप स व्यापक धरातल पर काय किया था। उन्होने अपन पीछ अपने तत्त्ववादी सिद्धान्तो का कोई भी पूणताप्राप्त वक्तव्य नही छाडा। उन्ह एक साचे म लान क लिए 1874 म प्रकाशित उनकी पुस्तक **इण्ट्राडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज आन ह्यूमन नेचर** और 1883 म मरणोपरान्त प्रकाशित उनक ग्रथ **प्रोलेगोमेना टू एथिक्स** म उनकी विचारधाराओ का सम्पादन व आकलन किया जाना जरूरी था। इसके अतिरिक्त उनक कुछ ऐसे भाषण भी थ जो प्रकाशित नही हुए थे।

शुरू म ही इस सबध म एक बात पर बल दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रीन को नवहीगलवाद कहन की एक परम्परा सी हो गयी थी लकिन हीगलवादी विचारधारा के प्रबल समथक मूलत कयडवादी थे ग्रीन नही थ। ग्रीन ने कयडवादियो की इसी आधार पर आलोचना भी की थी क्योकि ग्रीन क विचार म य लोग अनावश्यक

---

1 ग्रीन के इस पक्ष क लिए द्रष्टव्य जे० ब्राउस कृत **स्टडीज इन कण्टेम्पोरेरी बायोग्राफी** (1905)। लकिन फिर भी कालिगवुड का मत है कि लाकजीवन पर हुए ग्रीन विचारप्रणाली के प्रभाव का पूण रूप स कभी भी नही बताया गया है। निश्चय ही ग्रीन निर्विवाद रूप स सब क्षेत्रो म लोकप्रिय थ। वारगोट एसक्विथ न अपनी 1980 मे प्रकाशित **आटोबायोग्राफी** म लिखा है कि जब उन्होंने जावट स पूछा था कि व ग्रीन को कितना चाहत थे तो फौरन ही उन्हे यह जवाब मिला था मैंने उन्ह कभी भी प्रेम नही किया। सबस अधिक उनके जीवन को उजागर करन वाल स्मरणाशो म आर० एल० नटलशिप की **मेमोइस** (ग्रीन की **आकलित कृतियाँ**, खड 3 888) है जो अपने आप म एक महत्वपूण दाशनिक कृति हो गई है। नटलशिप स्वय इस विचार प्रणाली के प्रतिभाशाली सदस्य थ। इनकी मृत्यु 47 वष की अवस्था म हो गई। उनकी भी बिखरी हुई कृतियो का सम्पादन ए० सी ब्रैडल क जीवन कथाश सहित **फिलोसोफिकल लेक्चस एण्ड रिमेन्स** (1897) नाम स प्रकाशित हुआ। 1896 म प्रकाशित फयरब्रादर की पुस्तक **द फिलोसोफी आफ टी० एच० ग्रीन** भी दख। ए० ज० बलफार का 1884 म **माइण्ड** म प्रकाशित निबन्ध ग्रीन्स मेटाफिजिक्स आव नोलेज' ई० केयड' ए इट्रोडक्शन टू एसेज इन **फिलोसोफिकल क्रिटिसिज्म** मे प्रकाशन (1883) एच० सिजविक **द फिलासफी आव टी० एच० ग्रीन** (माइड 1901) एच० वी० नाक्स ग्रीस रपयुटशन आव आइडियलिज्म (माइड 1900)। हम्फ्रे वाड क उपयास **राबट एल्समेयर** (1888) म ग्रीन मि० ग्र क रूप म दख जा सकते है।

रूप से हीगल के प्रभाव में आए हुए थे। (ब्रैडले ने ग्रीन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि वे हीगलवादी नहीं थे और कुछ अंशों में तो हीगल के विरोध में थे।) जॉन केयर्ड की पुस्तक इन्ट्रोडक्शन टू द फिलोसोफी आफ रिलीजन (1880) के सम्बन्ध में ग्रीन ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा है कि यदि अपने निष्कर्षों में नहीं तो अपनी विचार प्रणाली में केयर्ड हीगेल से बहुत अधिक प्रभावित लगने लगे हैं। वे हीगल के इस निष्कर्ष को कि स्वयं चेतन और आत्मिक सत्ता एक ही हैं और जो कुछ सत्य है अथवा तथ्य है वह उसी की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकटता है, हम संसार के उपकरण हैं जो उसकी अभिव्यक्ति हैं किन्तु मूलतः ही हम इस भौतिक जगत के सचेत भोक्ता हैं—यही चेतना एक साथ ही हमें इस जगत का अंशी तथा हमें उससे असंपृक्त भी बनाती है। इसके साथ ही वे सारे तत्व जो हमें इस निष्कर्ष तक सहायक रहे अपर्याप्त ही थे इसलिए प्रारम्भ से अब तक इन सबको दुबारा में लिखना पड़ेगा।

खास तौर पर वे यह मानते थे कि हीगल द्वारा विचार पर दिया गया बल हीगलवादियों का यह धारणा बनाने के लिए विवश कर रहा था कि इस संसार में परिव्याप्त आत्मतत्व की सिद्धि इस बात से होती है कि हम वस्तु-जन्य विचारों के अतिरिक्त पीछे और किसी के बारे में सचेत नहीं होते। फरियर के इस मत का कि कोई भी सच्चा आदर्शवादी बर्कले का मतानुयायी नहीं हो सकता यह लगातार विरोध करते रहे। इस बारे में सही दृष्टि किसी एक व्यक्ति के मन द्वारा प्राप्त की गई विश्व की जानकारी नहीं है बल्कि विश्व के जरिए एक समष्टिव्यापी मन की कल्पना करना है। इस प्रकार विश्व को अपने दर्शन का प्रारम्भिक सूत्र मानकर बहुत से अपने समय के विचारकों की भांति काण्ट की ओर ही लौटे हैं। उनका तार्किक विश्लेषण स्वयं काण्टवादी है या बहुधा प्लेटोवादी। उसमें प्लेटो की थियेटेटस वाली तर्क प्रणाली की झलक मिलती है—हीगलवादी प्रभाव उसमें नहीं है।

ग्रीन की पुस्तक इन्ट्रोडक्शन टू ह्यूम, आदर्शवादी परम्परा की एक स्थायी उपलब्धि है—और जे० एफ० मिल द्वारा सद्य प्रणीत अनुभववादी परम्परा से भली भांति प्रतिस्पर्धा कर सकती है। ग्रीन इस बात का प्रबल विरोध करते हैं कि यथार्थ रूप से होने का मतलब केवल संघटनात्मकता ही है—संघटनात्मकता तो हमारे अनुभवों की दी गई एक ऐसी अवस्था है जो हमें एकत्रित इन्द्रियबोध के कारण प्राप्त होती है। अधिक से अधिक जो अनुभव हम प्राप्त कर सकते हैं वे पहले से ही सम्बन्धों के आकलन मात्र हैं। उदाहरण के लिए मान लो यह कहा जाए कि हम सफेदपन की संवेदना का अनुभव हो रहा है तब इसे सफेदपन की संवेदना कहना ही इस पहले से किसी अवस्था में सम्बन्धित कर देना है, चाहे वह उस पदार्थ से ही क्यों न सम्बन्धित हो जिसका वह गुण है। और यदि यह बात न मानकर यही मान लिया जाय कि हमारा 'वर्णन' हमारे पहले के इन संवेदनाओं की ही पुष्टि करता हुआ 'सफेदपन' का एक चित्र हमारे सामने रख रहा है तो भी पहले वाली अवस्थाओं में

स लकर 1910 तर राष्ट्रीय जीवन व प्रत्यक भाग पर अपनी छाप अकित करती रही[1]।

जान्स और बहुत स अय ब्रितानी आदशवादियो की भाति ग्रीन एक सधे हुए अध्यापक थ यद्यपि उन्होने एक शिक्षाशास्त्री और समाजसुधारक के रूप म मुक्त रूप स व्यापक धरातल पर काय किया था। उन्होने अपने पीछे अपन तत्त्ववादी सिद्धान्तो का कोई भी पूणताप्राप्त वक्तव्य नही छाडा। उह एक साथ म लान क लिए 1874 म प्रकाशित उनकी पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज आन ह्यूमन नेचर और 1883 म मरणोपरान्त प्रकाशित उनके ग्र थ प्रोलेगोमेना टू एथिक्स स उनकी विचारधाराओ का सम्पादन व आकलन किया जाना जरूरी था। इसके अतिरिक्त उनके कुछ ऐस भाषण भी थ जो प्रकाशित नही हुए थ।

शुरू म ही इस सबध म एक बात पर बल दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रीन को नवहीगलवाद कहन की एक परम्परा सी हो गयी थी लकिन हीगलवादी विचारधारा के प्रबल समथक मूलत कयडवादी थे ग्रीन नही थ। ग्रीन न केयडवादियो की इसी आधार पर आलोचना भी की थी क्योकि ग्रीन क विचार मे य लाग अनावश्यक

---

1 ग्रीन के इस पक्ष क लिए द्रष्टव्य जे० ब्राइस कृत स्टडीज इन कण्टेम्पोरेरी बायोग्राफी (1905)। लेकिन फिर भी कालिगवुड का मत है कि लाकजीवन पर हुए ग्रीन विचारप्रणाली क प्रभाव को पूण रूप से कभी भी नही बताया गया है। निश्चय ही ग्रीन निर्विवाद रूप स सब क्षेत्रो मे लोकप्रिय थे। वारगोट एसक्विथ ने अपनी 1980 मे प्रकाशित आटोबायोग्राफी म लिखा है कि जब उन्होने जोवेट से पूछा था कि व ग्रीन को कितना चाहते थ तो फौरन ही उन्हे यह जवाब मिला था मैंने उह कभी भी प्रेम नही किया। सबस अधिक उनके जीवन को उजागर करने वाल स्मरणाशो म आर० एल० नटलशिप की मेमोइस (ग्रीन की आकलित कृतियाँ, खड 3 888) है जो अपने आप म एक महत्वपूण दाशनिक कृति हो गई है। नटलशिप स्वय इस विचार प्रणाली के प्रतिभाशाली सदस्य थ। इनकी मृत्यु 47 वष की अवस्था म हो गई। उनकी भी बिखरी हुई कृतियो का सम्पादन ए० सी ब्रेडल क जीवन कथाश सहित फिलोसोफिकल लेक्चस एण्ड रिमेन्स (1897) नाम स प्रकाशित हुआ। 1896 म प्रकाशित फेयरब्रादर की पुस्तक द फिलोसोफी आफ टी० एच० ग्रीन भी दख। ए० जे० बलफार का 1884 म माइण्ड म प्रकाशित निबन्ध ग्रीन्स मेटाफ़िजिक्स आव नोलेज ई० केयड ए नेडक्शन टू एसेज इन फिलोसोफिकल क्रिटिसिज्म मे प्रकाशन (1883) एच० सिजविक द फिलासफी आव टी० एच० ग्रीन (माइ ड 1901) एच० वी० नाक्स ग्रीस रेप्युटेशन आव आइडियलिज्म (माइ ड 1900)। हम्फ्री वाड क उपन्यास राबट एल्समेयर (1888) मे ग्रीन मि० ग्र के रूप म दख जा सकत हैं।

रूप म हीगल के प्रभाव म आए हुए थ । (ब्रैडल न ग्रीन पर टिप्पणी करत हुए लिखा है कि व हीगलवादी नहीं थे और कुछ अशो मे तो हीगल के विरोध म थे ।) जान केयड की पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू द फिलोसाफी आफ रिलीजन (1880) के सम्बन्ध मे ग्रीन ने अपनी एक टिप्पणी म लिखा है कि यदि अपने निष्कर्षों म नहीं तो अपनी विचार प्रणाली म केयड हीगल से बहुत अधिक प्रभावित लगने लग हैं । व हीगल के इस निष्कर्ष को कि स्वय चेतन और आत्मिक सत्ता एक ही हैं और जो कुछ सत्य है अथवा तथ्य है वह उसी की अभिव्यक्ति के रूप म प्रकटता है, हम ससार के उपकरण हैं जो उसकी अभिव्यक्ति हैं किन्तु मूलत ही हम इस भौतिक जगत के सचेत भोक्ता हैं—यही चलना एक साथ हो हम इस जगत का अंशी तथा हम उससे असपृक्त भी बनाती है । इसके साथ ही व सारे तत्व जो हम इस निष्कर्ष तक सहायक रहे अपर्याप्त हो ये, इसलिए प्रारम म अब तक इन सबको दुबारा स लिखना पडेगा ।

खास तौर पर वे यह मानते थे कि हीगल द्वारा विचार पर दिया गया बल हीगलवादियो को यह धारणा बनाने के लिए विवश कर रहा था कि इस ससार म परिव्याप्त आत्मतत्व की सिद्धि इस बात स होती है कि हम वस्तुजन्य विचारो के अतिरिक्त पीछे और किसी के बारे म सचेत नहीं होत । फरियर के इस मत को कि कोई भी सच्चा आदर्शवादी अकेले का मतानुयायी नहीं हो सकता यह लगातार विरोध करत रहे । इस बारे म सही दृष्टि किसी एक व्यक्ति के मन द्वारा प्राप्त की गई विश्व की जानकारी नहीं है बल्कि विश्व के जरिए एक समष्टिव्यापी मन की कल्पना करना है । इस प्रकार विश्व को अपने दर्शन का प्रारम्भिक सूत्र मानकर बहुत स अपने समय के विचारको की भाति काण्ट की ओर ही लौट हैं । उनका तात्विक विश्लेषण स्वय काण्टवादी है या बहुधा प्लेटोवादी । उसम प्लेटो की थिएटेटस वाली तर्क प्रणाली की झलक मिलती है—हीगलवादी प्रभाव उसम नहीं हैं ।

ग्रीन की पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू ह्यूम, आदर्शवादी परम्परा की एक स्थायी उपलब्धि है—और जे० एफ० मिल द्वारा नव प्रणीत अनुभववादी परम्परा स भली भाँति प्रतिस्पर्धा कर सकती है । ग्रीन इस बात का प्रबल विरोध करत हैं कि यथार्थ रूप स ज्ञान का मतलब केवल सघटनात्मकता ही है—सघटनात्मकता तो हमारे अनुभवो की दी गई एक ऐसी अवस्था है जो हम एकत्रित इन्द्रियबोध क कारण प्राप्त होती है । अधिक स अधिक जो अनुभव हम प्राप्त कर सकते हैं व पहले स हो सम्बन्धो के आकलन मात्र हैं । उदाहरण के लिए मान लो यह कहा जाए कि हम सफेदपन की सवेदना का अनुभव हो रहा है तब इस सफेदपन की सवेदना कहना ही इसे पहले से किसी अवस्था मे सम्बन्धित कर देना है, चाहे वह उस पदार्थ स हो जिससे न सम्बन्धित हो जिसका वह गुण है । और यदि यह बात न मानकर यह मान लिया जाय कि हमारा वर्णन' हमारे पहले के इन सवेदनाओं का ही पुन कथन ... सफेदपन' का एक चित्र हमारे सामने रख रहा है तो भी पहले इसका ...

उसका सम्बन्ध कायम करने से हम कोई न रोक सकेगा। इसके अलावा इस एक संवेदना की सत्ता देने का अर्थ यही है कि हम उसे बहुत सी अवस्थाओं से अलग करके एक ऐसी पृष्ठभूमि से जोड़ रहे है जिसमें से ही उसे हमने चुना है और तब उसे संवेदना कहने का यहा अर्थ है कि हम उसे सत्व ही किसी सावयव स्थिति से जोड़ते ही हैं। इससे निष्कर्ष यही निकला कि किसी के विषय में चर्चा करने का अर्थ उसका सम्बन्ध स्थापित करना है। इस प्रकार यह मान लेना कि संवेदना की सरलावस्था अपने आपमें मौलिक है और सत्य है अपने आपमें सत्य को निरर्थक सिद्ध करना है। एक ऐसा शून्य बनना है जिसके विषय में कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं है।'

ग्रीन के कथनानुसार 'सत्य या तो अगम्य निर्वचनीय नेति भाव है या सम्बन्धित सापेक्ष सत्ता है। अनुभववादियो तक ने यह बात तो मानी है कि संबंध मन द्वारा रचित अवस्था है। इसलिए यदि सत्य सापेक्ष है तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य अपनी स्थिति के लिए मन के अस्तित्व का ही मुह जोहता है। अनुभववादियो से ग्रीन वहा अलग हो जाते है जहा वे उनके द्वारा स्थापित यह बात नही मानते कि संबंध प्रस्तुत स्थितियो का ही परिणाम है। वस्तुस्थिति एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई सापेक्ष भाव नही है। किन्तु उनके अनुसार ये सम्बन्ध यदि हटा दें तो वस्तु स्वयं पूर्णत गायब हो जाती है निरपेक्ष' वस्तु-स्थिति एक भ्रामक एवं मनगढ़त आविष्कार है।

यह उनके तर्क की प्रणाली है। सम्पूर्ण सत्य सापेक्षिक है। और केवल विचारशील चेतना ही इन संबधो को देख पाती है-इसलिए वास्तविक जगत निश्चय ही किसी न किसी मस्तिष्क द्वारा निर्मित है। दो समस्याएँ एक साथ खड़ी हो जाती है। संसार जैसा हम उसे अनुभव करते है 'भौतिक' है। वह हमारे द्वारा वहां पर अनुभव करने के लिए ही है। यदि यह मन द्वारा निर्मित है तो यह कैसे संभव है? इसके अतिरिक्त भी हम सत्य को अपने से अलग करने के अभ्यासी हो गए है। जैसा है, उसे अपने से अलग करने के अभ्यस्त हम इस प्रयास में काल्पनिक हो जाते है-और तब हम उसे अपने ही लिए फिर रचते है-इसलिए यह अन्तर प्रत्येक प्रकार की जाचपड़ताल के लिए जरूरी है। लेकिन यदि विश्व को मन से निर्मित मानलें तो यह अन्तर तुरंत हट जाता है।

ग्रीन द्वारा इन दो समस्याओं का हल करने का प्रयास उन्हें व्यक्तिगत चेतना से अनन्त चेतना की ओर ले जाता है जिसे वे ईश्वर सदृश मानते है। जानने की प्रक्रिया में हम शनै शनै एक व्यक्ति के रूप में इस बात के प्रति सजग हो जाते है कि वस्तु अनन्त चेतना के उपकरण के रूप में ही सदैव अस्तित्वमान रही है। यही कारण है कि जिसे हम जानने का प्रयास करते है वह हमें भौतिक दिखाई देता है। मन से बिल्कुल परे हम उसे नही रचते। वह हमारे मन से परे है। किन्तु यह बात

भी पूर्णत सही नहीं है क्योंकि उसी अवस्था के प्रति सचेत हो कर जिसके विषय में अनन्त चेतना पहले से ही सचेत है हम स्वयं अनन्त चेतनामय हो जाते हैं या उसके उपकरण तो हो ही जाते हैं। हमारे अनुभव के विकास में, वे अपनी प्रोलेगोमेना टू एथिक्स में लिखते हैं एक भौतिक अवयव, जो समय की एतिहासिक स्थिति है शन शन अनन्त चेतना के उपकरण का काम करने लग जाता है—इस तरह जो हम जानते हैं हम हमारे मन से परे है, विशेष कर हमारे व्यक्तिगत मन के। तो भी यह हमारे ही उस मन द्वारा, जो अनन्त चेतना का भागीदार है निर्मित है। हमारा मस्तिष्क जिस शरीर में भौतिक अवयव होने के कारण बाधित रहता है, तो कभी कभी यह उस भौतिक शरीर से कोई भी तादात्म्य सबंध स्थापित करने में असफल हो जाता है जो अनन्त चेतना द्वारा निर्मित है। यह उस समय वस्तु के सम्बन्ध मात्र व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही करने लग जाता है। सभी वास्तविक पदार्थों के स्थान पर काल्पनिक पदार्थ दृष्टिगत होने लगते हैं। उस समय पदार्थ जैसे व्यक्तिगत रूप से हम उन्हें देखते हैं बस दिखाई देते हैं—अनन्त चेतना के द्वारा निर्मित पदार्थ के रूप में नहीं।

अनन्त चेतना द्वारा निर्मित जगत और अपूर्ण मानवी अस्तित्व द्वारा रची सृष्टि में यह भेद ग्रीन के अनुसार हमारे भौतिक पदार्थों के अनुभवों का तथा दिन प्रतिदिन भी यथार्थ और काल्पनिक अवस्थाओं के भेद का भली प्रकार समझा देता है। और ऐसा मान लेने में भी हमारे इस सामान्य सिद्धान्त से हम वंचित नहीं होना पड़ता कि अनुभव के सारे पदार्थ मन द्वारा निर्मित है। इसी तरह से वे अनन्त चेतना और व्यक्तिगत चेतना में सामञ्जस्य और अन्तर की चर्चा भी करते हैं और यह मानते हैं कि यह अन्तर आदर्शवादी का भौतिकवाद के सत्यों को स्वीकार करने में बिना अपने मूल सिद्धान्त से विचलित हुए भी सहायता करता है। निस्सदेह पदार्थ 'सत्य' है किन्तु ऐसा करने का सीधा अर्थ यही है कि वे विचार द्वारा निर्मित हैं। मस्तिष्क को पदार्थ से उपजा मानना आधार-आधेय के सही क्रम को उलटने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हमारी क्षणिक मानसिक अवस्थाएँ हमारी लुप्त होती हुई भावनाएँ हैं जिन्हें मनोविज्ञान अध्ययन करता है। ये कदाचित भौतिक शरीर की ही दशाएँ हों, किन्तु ये ग्रीन के मतानुसार पूर्वत मानसिक ही नहीं हैं और न उनसे संबंधी चेतना ही है।[1] मन अपने आप में गुजरती हुई क्षणिक अवस्था नहीं है क्योंकि यह समय सापेक्ष नहीं है। यदि ऐसा होता तो समय के क्रम में घटित हो रही घटना का संयोजन यह नहीं कर सकता था और न भूत और भविष्य का भेद ही कर सकता था और न पूर्ववर्ती स्थितियों का अनुवर्ती स्थितियों से भिन्न करके ही देख सकता था। ग्रीन यह बात विजयोल्लास में कहते हैं कि मिल तक ने यह बात स्वीकार की है कि कोई अस्थायी मन स्थिति क्रम अनुक्रम के विषय में स्वयं सचेत नहीं हो

1 वे वास्तव में क्या है यह दूसरी बात है। ग्रीन के विचारों की आलोचनात्मक समीक्षा के लिए देखिये एम० अलेक्जेंडर कृत द एकेडेमी (1885)।

उसका सम्बन्ध कायम करन स हम काई न राक सकगा। इसके अलावा इस एक मवन्ना की मना न्न का अथ यही है कि हम उस बहुत सी अवस्थाश्रा स अलग करके एक एसा पृष्ठभूमि म जोड रह है जिसम स ही उस हमन चुना है और तब उस सवेदना कहन का यहा अथ है कि हम उम सदव ही किसी सावयव स्थिति स जाडते ही हैं। इमस निष्कप यही निकला कि किसी क विषय म चर्चा करने का अथ उसका सम्बन्ध स्थापित करना है। इस प्रकार यह मान लना कि सवदना की मरलावस्था अपने आपम मौलिक है और सत्य है अपन आपम सत्य का निरथक सिद्ध करना है। एक एसा शून्य बनना है जिसके विषय म कुछ भी कहा जाना सम्भव नही है।'

ग्रीन के कथनानुसार 'सत्य या ता अगम्य निवचनीय नति भाव है या सम्बन्धित सापेक्ष सत्ता है। अनुभववादिया तक ने यह बात तो मानी ह कि सबध मन द्वारा रचित अवस्था है। इसलिए यदि सत्य सापेक्ष है तो इसका अथ यह हुआ कि सत्य अपनी स्थिति के लिए मन के अस्तित्व का ही मुह जोहता है। अनुभववादियो स ग्रीन वहा अलग हा जात हैं जहा व उनके द्वारा स्थापित यह बात नही मानते कि सबध प्रस्तुत स्थितियो का ही परिणाम है। वस्तुस्थिति एक ऐसी अवस्था है जिसम कोई सापेक्ष भाव नही है। किन्तु उनके अनुसार य सम्बन्ध यदि हटा दें तो वस्तु स्वय पूणत गायब हो जाती है निरपेक्ष वस्तु-स्थिति एक भ्रामक एव मनगढत आविष्कार है।

यह उनके तक की प्रणाली है। सम्पूण सत्य सापक्षिक है। और केवल *विचारशील चेतना ही इन सबधो का दख पाती है—इसलिए वास्तविक जगत निश्चय* ही किसी न किसी मस्तिष्क द्वारा निर्मित है। दा समस्याएँ एक साथ खडी हा जाती है। ससार जसा हम उम अनुमव करत है 'भौतिक' है। वह हमारे द्वारा वहा पर अनुभव करने के लिए ही है। यदि यह मन द्वारा निर्मित है तो यह कस समव है? इसके अतिरिक्त भी हम सत्य को अपने से अलग करन के अभ्यासी हो गए है। जसा है, उम अपन स अलग करने क अभ्यस्त हम इस प्रयास म काल्पनिक हा जाते हैं—और तब हम उसे अपने ही लिए फिर रचत हैं—इसलिए यह अन्तर प्रत्यक प्रकार की जाँचपडताल क लिए जरूरी है। लकिन यदि विश्व को मन से निर्मित मानल तो यह अन्तर तुरत हट जाता है।

ग्रीन द्वारा इन दो समस्याश्रा का हल करने का प्रयास उन्ह व्यक्तिगत चेतना स अन त चतना की ओर ले जाता है जिस वे ईश्वर सदश मानते है। जानन की प्रक्रिया म हम शन शन एक व्यक्ति के रूप म इस बात क प्रति सचत हो जाते है कि वस्तु अनन्त चतना क उपकरण क रूप म ही सदव अस्तित्वमान रही है। यही कारण है कि जिस हम जानने का प्रयास करते है वह हमे भौतिक दिखाई दता है। मन म बिल्कुल परे हम उम नही रचते। वह हमारे मन से परे है। किन्तु यह बात

भी पूणत सही नही है क्योकि उसी अवस्था क प्रति सचेत हो कर जिसके विषय म
अनन्त चेतना पहल स ही सचत है हम स्वय अनन्त चेतनामय हो जाते हैं या उसक
उपकरण ता हो ही जात है। हमारे अनुभव के विश्राम म, वे अपनी प्रोलेगोमेना टू
एथिक्स म लिखते है एक भौतिक अवयव जो समय की एतिहासिक स्थिति है शन
शन अनन्त चतना के उपकरण का काम करन लग जाता है—इस तरह जो हम
जानते हैं हम हमारे मन स परे हैं, विशेष कर हमारे व्यक्तिगत मन के। तो भी यह
हमारे ही उस मन द्वारा जो अनन्त चेतना का भागीदार है निर्मित है। हमारा मस्तिष्क
जिस शरीर म भौतिक अवयव होने के कारण बाधित रहता है, तो कभी कभी यह
उस भौतिक शरीर से कोई भी तादात्म्य सबध स्थापित करने म असफल हो जाता
है जो अनन्त चेतना द्वारा निर्मित है। यह उस समय वस्तु के सम्बन्ध मात्र व्यक्तिगत
दृष्टिकोण स ही करन लग जाता है। सभी वास्तविक पदार्थों के स्थान पर काल्पनिक
पदाथ दृष्टिगत होन लगते है। उस समय पदाथ जसे व्यक्तिगत रूप स हम उन्ह देखत
है वसे दिखाई देते है—अनन्त चेतना के द्वारा निर्मित पदाथ के रूप म नही।

अनन्त चेतना द्वारा निर्मित जगत और अपूर्ण मानवी अस्तित्व द्वारा रची
सृष्टि म यह भेद ग्रीन के अनुसार हमारे भौतिक पदार्थों के अनुभवो को तथा दिन
प्रतिदिन भी यथाथ और काल्पनिक अवस्थाओ के भेद का भली प्रकार समझा देता
है। और ऐसा मान लन स भी हमारे इस सामान्य सिद्धान्त स हम वचित नही होना
पडता कि अनुभव के सारे पदाथ मन द्वारा निर्मित है। इसी तरह स व अनन्त चतना
और व्यक्तिगत चतना म सामन्जस्य और अन्तर की चर्चा भी करते हैं और यह
मानते है कि यह अन्तर आदशवादी को भौतिकवाद के सत्यो को स्वीकार करन म
बिना अपने मूल सिद्धान्त से विचलित हुए भी सहायता करता है। निस्सदह पदाथ
'सत्य' है किन्तु ऐसा करन का सीधा अथ यही है कि व विचार द्वारा निर्मित हैं।
मस्तिष्क को पदाथ स उपजा मानना आधार-आधेय के सही क्रम का उलटने के
अतिरिक्त कुछ भी नही। हमारी क्षणिक मानसिक अवस्थाए हमारी लुप्त होती हुई
भावनाएं हैं जिन्हे मनोविज्ञान अध्ययन करता है। ये कदाचित भौतिक शरीर की ही
दशाएँ हो, किन्तु य ग्रीन के मतानुसार पूवत मानसिक ही नही है और न इनसे सबधी
चतना ही है।[1] मन अपन आप म गुजरती हुई क्षणिक अवस्था नही है क्योकि
यह समय सापेक्ष नही है। यदि ऐसा होता तो समय क क्रम म घटित हो रही घटना
का सयोजन यह नही कर सकता था और न भूत और भविष्य का भेद ही कर सकता
था और न पूववर्ती स्थितियो का अनुवर्ती स्थितियो स भिन्न करके ही रख सकता
था। ग्रीन यह बात विजयोल्लास म कहते हैं कि मिल तक न यह बात स्वीकार की
है कि कोई अस्थायी मन स्थिति क्रम अनुक्रम के विषय म स्वय सचेत नहीं हो

1 व वास्तव म क्या है वह दूसरी बात है। ग्रीन के विचारो की आलोचनात्मक समीक्षा के लिए देखिये एम० अलेक्जेंडर इन द एकेडमी (1885)।

सकती। तब फिर मन किस प्रकार माना जा सकता है ? तो भाव अनुभूतियाँ जिन्हें भौतिक मनोवैज्ञानिक 'मन' कहता है निरंतर परिवर्तन की अवस्था में रहती हैं।

विकासवाद के सम्बन्ध में प्रकट हुई नई आस्थाएँ, ग्रीन सहर्ष स्वीकार करता है पुरातन 'प्राकृतिक अध्यात्म' का दर्जा घटाती हैं यह बात अच्छी है किन्तु सत्य तो यह है कि विकासवाद का सिद्धान्त अनन्त चेतना के अनुकूल पड़ता है। अपितु तार्किक दृष्टि से उसकी आवश्यकता को और भी सिद्ध करता है। (द्रष्टव्य लेक्चर्स ऑन द लॉजिक ऑफ द फोमल लाजीशियन्स) अन्यथा तो हम निश्चय ही यह सोचना पड़ता, कि कुछ नहीं में से भी कुछ प्रकट हो सकता है। और यह अवस्था सम्भव नहीं है। इसका परिष्कार हम उसी समय कर सकते हैं जब हम यह सोचें कि जो मात्र मानवीय दृष्टि से उपजी हुई स्थिति है वह सदैव ही अनन्त चेतना में पहले से विद्यमान रही है।

ग्रीन के आलोचकों ने उनकी तत्त्ववाद में खोंच ढूंढ लेने में बहुत शीघ्रता दिखाई। उनमें सबसे बड़ी भूल ग्रीन की यह बतायी गई है कि वे व्यक्तिगत और अनन्त चेतना के बीच विद्यमान सम्बन्धों की चर्चा ही नहीं करते। हाँ परम्परागत अनुभववाद पर की गई उनकी समालोचना वास्तव में विध्वंसक थी। कोई विचारक भी उनकी इस आलोचना के कारण यह न मान सका कि इसे अन्तिमरूप में नष्ट कर दिया गया है।[1] जब कुछ युवा चिंतकों ने अपनी पुस्तक ऐसेज इन फिलोसोफीकल क्रिटिसिज्म प्रकाशित की जिसने सर्व प्रथम आदर्शवादी आन्दोलन के क्षेत्र और सीमा का स्पष्ट निर्धारण किया था तो उसका टी०एच० ग्रीन को समर्पित किया जाना बिल्कुल उचित ही था।[2]

ब्रितानी आदर्शवादियों के सबसे सुदृढ दार्शनिक निश्चय ही एफ० एच० ब्रेडले

---

1 निश्चय ही कुछ लोगों ने इसके लिए संघर्ष भी किया द्रष्टव्य द कन्टेम्पोरेरी रिव्यू (1880) में प्रकाशित ग्रीन—ह्यूम स्पेन्सर विवाद।

2 इसमें तर्कशास्त्र पर निबन्ध संग्रहीत है तथा सामाजिक दर्शन इतिहास एवं तत्त्ववाद पर भी कुछ निबन्ध हैं। इसके लेखकों में एण्ड्रू सथ आर० बी० और ज० एस० हाल्डेन बोसांके, सोरले, डी०जी० रिशी डब्लू० पी० केर हनरी जेम्स एव जेम्स बोनार हैं। इनमें केर ने बाद में साहित्यिक चिंतक के रूप में ख्याति प्राप्त की। आर० बी० हाल्डेन जो बाद में लार्ड हो गए ने राजनीतिक दार्शनिक के रूप में ज० एस० हाल्डेन ने एक दार्शनिक वैज्ञानिक के रूप में तथा बोनार ने अर्थशास्त्र के इतिहासज्ञ के रूप में ख्यातियां अर्जित कीं। इस प्रकार अब आदर्शवाद को विभिन्न क्षेत्रों में जाने का अवसर मिला। शेक्सपीयर सम्बन्धी विद्वान ए० सी० ब्रेडले इस दल के निकटतम सम्पर्क में थे।

थे[1]। और यदि ब्रितानी अनुभववाद की ब्रैडले उतनी ही तीव्रता से आलोचना कर रहे थे जितनी ग्रीन और केयड ने की थी–और दार्शनिक प्रणाली मे तो वे उन दोनो से अधिक प्रबल थे[2]–तो भी वे बिना शर्त के ग्रीन की इस मूल धारणा का खण्डन करते हैं कि सत्य केवल सापेक्षता मे ही निहित है। और हीगेल के प्रशसक होने के बावजूद भी ब्रैडले किसी भी भांति हीगलवादी नही हैं। उनकी द्वन्द्वात्मक तर्कप्रणाली हीगल के बजाय पारमनीडीज और जेनो की द्वन्द्वात्मक प्रणाली है। यह स्पष्ट है कि उन्होने प्लेटो द्वारा पारमेनीडीज तथा सोफिस्ट पर लिखी अलग पुस्तको से बहुत कुछ ग्रहण किया है जिनमे यह द्वन्द्वात्मक प्रणाली दिखाई गई है–तथा प्लेटो के द्वारा प्रस्तुत वार्तालाप प्रणाली के माध्यम से भी उन्होंने काफी सीखा[3]। उनकी पुस्तक

---

1 द्रष्टव्य मूरहैड प्लेटोनिक ट्रेडीशन। इसमे ब्रैडले के दर्शन का विस्तार मे देखा जा सकता है। ए० ई० टेलर एफ० एच० ब्रैडले (पी० बी० ए० 1924) आर० डब्लू० चर्च ब्रैडलेयन डायलेक्टिक (1942) सी० ए० केमबेल स्केप्टीसिज्म एण्ड कन्सट्रक्शन (1931) एच० रशडल द मैटाफिजिक्स आफ मिस्टर एफ० एच ब्रैडले (पी० बी० ए 1912), ब्रैडले पर लिखे निबन्ध, रचयिता जी० डी० हिक्स, जी० एफ० स्टाउट एफ० सी० एस० शिलर ए० ई० टेलर एव वार्ड (माइण्ड 1925)। एम० टी० एंटावेली द मैटाफिजिका डी एफ० एच० ब्रैडले (1952) एलिवोर ग्लाइन की पुस्तक हैलिक्योन (1912) मे ब्रैडले को सीरो के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

2 द्रष्टव्य, प्रीसपोजीशन्स आफ क्रिटीकल हिस्ट्री (1874) जहाँ पर वे यह मन्तव्य व्यक्त करते हैं कि इन्द्रियबोध सत्य के परीक्षण के सम्बन्ध मे कम से कम विश्वसनीय हैं, इन्द्रियबोध एक अन्धविश्वास है यह दार्शनिक ज्ञान से पूर्णत अनभिज्ञ होने का प्रमाण है जो यह प्रतिदिन के हमे होने वाले अनुभव के प्रति पूर्णाध कर देता है–जो मात्र एक दोषपूर्ण पूर्वाग्रहिल रूढिवादिता मे ही सम्भव है।

3 जर्मन दार्शनिको मे, जो ब्रैडले के समकक्ष खडे हो सकते हैं उनमे जे० एफ० हर्बट का नाम लिया जा सकता है। हर्बट गोटिंजन विश्वविद्यालय मे लोत्जे के अग्रज थे। ब्रैडले ने एपीयरेन्स एण्ड रिएलिटी मे जो द्वन्द्वात्मक वार्तालाप प्रणाली अपनाई है–हर्बट मे भी बहुत से स्थलो पर देखी जा सकती है। ब्रैडले, हर्बट के कार्यों के प्रति पूर्ण जिज्ञासु थे। उन्होने ए० ई० टेलर को हर्बट का अध्ययन करने के लिए इसलिए कहा था ताकि वह हीगल के अत्यधिक प्रभाव से बच जाए। जब ब्रैडले द प्रिंसिपल्स आफ लॉजिक के अतिरिक्त परिशिष्ट मे यह कहते हैं कि उनका (1883) हर्बट से परिचय नही है तो उनका आशय कदाचित् हर्बट के मनोविज्ञान से अपरिचित होने से है क्योंकि उन्होने इसी किताब मे हर्बट के तर्कशास्त्र का सन्दर्भ दिया है। द्रष्टव्य, जे० वार्ड द्वारा एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के नये सस्करण मे हर्बट पर लिखा निबन्ध। जी० एच० सेंगल का 1913 मे माइण्ड मे प्रकाशित निबन्ध द मेटाफ्रिजिकल मेथड

प्रिंसिपल्स ग्राफ लाजिक (1883) के कुछ ग्रशो म ˉयाप्त व्यजनात्मकता प्लेटो की मुकरात पर लिखी व्यजनात्मकता स कदाचित् ही मल खाती हो "मैं मानता हू कि मैं इस प्रकार के अपमानो की कतई पर्वाह नही करता। और इसके लिए मिस्टर स्पेसर अथवा वसे तो दूसरे महान् आधिकारिक विचारक जो इस प्रकार के अपमान को अनदखा कर सकते हैं या उस समभते नही, व ही उस अपने पर ले सकत है।

प्रारम से ही ब्रेडले ने अपने आलोचनात्मक ग्रस्त्र का प्रयोग विरोधाभास पर ᷇गपारोपण करने के लिए ही किया। तकशास्त्र म उनकी आस्था थी। प्लेटो की भाषा मे तक द्वारा जहा तक जाया जा सकता हो वहाँ तक उदारता से जाने की प्रवृत्ति उनम थी। यह बात अग्रजी दशन मे ˉयूनतम है। उ᷇होने अपनी पुस्तक प्रीसपोजीशन्स ग्राफ क्रिटिकल हिस्ट्री मे लिखा कि यदि आलोचना आलोचना है तो सबस पहले उस प्रत्यक वस्तु की सत्यता पर सदेह करक चलना होगा और यदि इसके बावजूद भी कुछ एसे स्थल रह जाते हैं जिनको गलत बताया जाना असभव हो जाय तो यह उन स्थलो की निजी महत्ता है। किन्तु यदि तथ्यो मे और सिद्धा᷇तो म मल नही बैठ रहा हो सा यह तथ्यो के लिए ˉलत अवस्था है। यदि एक महान ऐतिहासिक तथ्य' और 'एक महान सूक्ष्म सिद्धा᷇त' के बीच म वरण का प्रश्न सामने उपस्थित हो जाए तो ब्रेडल का मत है कि वे सिद्धा᷇त और महान सत्य के पक्ष म ही बोलेंगे। उलट कर अब आक्सफोड की उच्च शिक्षा' का यही माग हो गया था।

एपीयरन्स एण्ड रीयलिटी (1893) म तकशास्त्र के आधार पर विकसित किय गय तत्त्ववाद का ब्रेडल द्वारा प्रस्तुत किया गया अच्छा उदाहरण मिलता है। उनकी यह कठिन पुस्तक उनकी एक अ᷇य पुस्तक प्रिंसिपल्स ग्राफ लाजिक के साथ म ही पढी जाय ता ठीक है। विशपकर इस के दूसरे सस्करण (1922) म जोडे हुए टर्मिनल एसेज के लिए उनके एसेज ग्रान ट्रुथ एण्ड रीयलिटी (1914) के लिए और उनके सापेक्षता पर लिखे अपूण निबधो क लिए जिनका प्रकाशन उनक *मरणोपरान्त कलेक्टेड पेसेज नामक पुस्तक (1935) म हुआ, यह बात ठीक पडती* है। ब्रेडले कृत एथिकल स्टडीज (1876) और मूल्यो की विशेषत उसम सग्रहीत निबध माई स्टेशन एण्ड इटस डयूटीज नतिक मूल्यो की दृष्टि स नयी दृष्टि स युक्त होने के कारण काफी महत्त्वपूण है। यही पुस्तक उनके तत्त्ववादी सिद्धा᷇तो का आग जाकर आधार बनी।[1]

ग्राफ ह्वट। ब्रेडल ट्यूबिगन स्कूल के प्रणेता एफ० सा० बौर म काफी प्रभावित थ। एफ० सी० बौर न 1830 और 1860 के मध्य प्रकाशित अनेक ग्र᷇थो म हागलवा᷇दी चच का समथन किया। द्रष्टव्य आर०मकाय द ट्यूबिंगन स्कूल (1863) ए०ए० श्वाइजर पाल एण्ड हिज इन्टरप्रेटस (1911 अग्रेजी अनुवाद 1912)

1 ब्रेडले ने तत्त्वमीमासा (आधिभौतिकी तत्त्ववाद या मटाफिजिक्स) की परिभाषा देते हुए कहा है कि मूल वृत्तिया के आधार पर खड हमारे विश्वासो मे कुछ

एपीयरन्स एण्ड रीयलिटी का मूल विषय विचार एवं सत्य के संबंध को उजागर करना है—जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक द प्रिंसिपल्स आफ लॉजिक में बहुत अंशों में अपर्याप्त छोड़ दिया था। अपनी भाषा के माध्यम से जिसमें बहुत कुछ लाज का प्रभाव है— ब्रेडले ने हीगल के इस सिद्धांत का खंडन किया है कि सत्य होना और विचार की अवस्था में होना दोनों समान स्थितियां हैं। अपनी पुस्तक द प्रिंसीपल्स आफ लॉजिक में ब्रेडले ने लिखा कि यह मान्यता कि अस्तित्व संभवतः वही है जो विचार उतना ही निर्जीव और काल्पनिक है जितना सूक्ष्म भौतिकवाद है। इस विश्व की गरिमा अंततः यही है कि यदि संसार को किसी अपरिवर्तित हुए सत्ता की झलक के रूप में देखें तो विश्व हमारे सम्मुख अधिक शानदार रूप में आता है। किन्तु केन्द्रीय आवरण एक प्रकार का छल करते हैं। हमारे सत्य यदि परमाणुओं की रंगहीन गति को हमारी ऊपरी आंख से छिपा लेते हैं सूक्ष्मतम अवस्थाओं के स्थिर रंगमय तान बान को देख सकने से वंचित रख देते हैं और रक्तहीन वर्गों की अपार्थिव लीला का आनंद हमें नहीं लेने देते व निश्चय ही तब उस परम के निर्णायक तत्व के रूप में काम नहीं करते हैं जो हमारी श्रद्धा की अपेक्षा करते है, सिवाय मनुष्य की बुद्धि के पार्थिव शारीरिक सौन्दर्य में रमण करके सुख प्राप्त कर लेने वाली अवस्था के।

तो भी इसमें निकलने वाले निष्कर्ष की कठिनाई यही थी कि इससे सीधा अनीश्वरवादी विचारधारा की ओर उन्मुख होना पड़ता था। यदि सत्य सभी विचारों से परे है तो हमेशा हमेशा के लिए निश्चय ही हमारे लिए एक अज्ञेय सत्ता के रूप में अनुपलब्ध होगा। ब्रेडले की समस्या विचार की पहुंच और मीमांसा का रखना था और इसमें वह न तो तात्कालिक अनुभव का परित्याग करते थे और न परमात्म के बोध को, जो कितना ही सीमित क्यों न हुआ हो, छोड़ना चाहते थे।

ब्रेडले की तत्त्वमीमांसा इसलिए तात्कालिक अनुभव की समस्या को लेकर शुरू होती है। इसी समस्या पर विस्तार में उन्होंने 1906 में माइण्ड में प्रकाशित और 'ट्रूथ एण्ड रीएलिटी" के नाम से पुनर्मुद्रित हुए अपने निबन्ध आन अवर नालेज

न कुछ बुराई ढूंढ़ना होता है। उनकी पुस्तक माइ स्टेशन एण्ड इटस ड्यूटीज में उन्होंने मूल वृत्तियों पर खड़े अपने विश्वासों के बारे में बतलाया है और लिखा है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कहीं न कहीं जगह होनी चाहिए और वह वस्तु केवल अपने ही स्थान में शामिल होती है। ब्रेडले की तत्त्वमीमांसा के संबंध में द्रष्टव्य, ए० ई० टेलर कृत एलीमेन्टस ऑफ मैटाफिजिक्स (1903)। टेलर जिन्होंने भी बाद में हीगल वादी विचारधारा को छोड़ दिया उस समय ब्रेडले से काफी प्रभावित थे और उनकी पुस्तक एलीमेन्टस आफ मेटाफिजिक्स काफी अंशों में ब्रेडले की विचारधारा का ही विवेकपूर्ण विवेचन है। उसके विपरीत उनकी पुस्तक द फेथ आफ ए मोरेलिस्ट (1930) नैतिक आधार पर ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि करती है और ऐसा लगता है जैसे उसे मार्गीय क्रिश्चियन धर्म के लिए लिखा गया है।

श्राफ इमीजिएन एक्सपीरिएन्स' म विचार किया है। हम एस अनुभव भी मिलत है जहा 'मेरे बोध म और उस अवस्था म जिसका बोध मरी चेतना कर रही है, कोई अन्तर नही है। ज्ञान के प्रारम्भ के साथ हा जानन की और होन की तात्कालिक अनुभूति होती है। और चाहे एक तरीक स यह भद मिट भी जाए तो भी मेर सासारिक ज्ञान का वतमान मूलाधार सच यही स्थिति है। तात्कालिक अनुभूति शुद्ध और सरल है। इसम हम किसी वस्तु का अनुभव करते हुए कभी शामिल नही होते। क्योकि यही हमम और हमारी वस्तुश्रा म आवश्यक भद कर दती है और यह भेद केवल विचार द्वारा ही सम्भव हुआ। यह ता यथावत अनुभूति है। यह न तो किसी की अनुभूति न किसी वस्तु के बारे म अनुभूति है।[1] इसकी भी विभिन्न अवस्थाए है लेकिन वह विभिन्नता सापेक्षिकता स पूव की है। एक लाल मडक का अनुभव उदाहरणाथ प्रस्तुत करे। हमारा यह अनुभव लालिमा और मडक के फलाव इन दाना गुणा को अलग २ करक नही दखता। लालिमा और फलाव दानो कही न कही किसी एक सम्बन्ध के कारण जुडे है। यह जोडने वाला तत्व भावना है लकिन फिर भी इसम यह वभिन्नय समाया है।

जस ही हम वस्तुसम्बन्धी माया की चचा प्रारम्भ करत है उसम गुणो और सम्बन्धा क बारे म सतक हाते है—जा उसके सम्बन्ध म विचार करते ही निणय तन ही उसकी सत्यता सिद्ध करन के लिय आवश्यक रूप स प्रस्तुत हा जाते है। तब हम इस भावना के स्तर स परे चले जाते है। विचार पूणत चाह अनुभव का नही छोडे लकिन उसका सूक्ष्मीकरण कर लता है।[2] लाल को एक धब्ब क रूप म पहली दष्टि म अलग कर देने पर हम यह समझते है कि यह उसका एक अलग

---

1 बर्नार्ड बासाक द्वारा यह बात अपनी पुस्तक नोलेज एण्ड रीएलिटी (1885) म शीघ्र ही कह दी गई। चाहे दूसर ब्रडल के उत्तरो स सन्तुष्ट न हुए हो किन्तु य तो हो ही गए। तुलना के लिए द्रष्टव्य ए०ई० टलर का टिप्पणी कि हीगलवादियो न अज्ञेय पर बहुत मज मनाए उनका परमात्मा स्वय अपन विश्वास की अवस्था म होन क कारण अज्ञय ही है। द्रष्टव्य ग० क्यूमिन्न कृत लोज ब्रडले एण्ड बासाँ क (मान्ष्ट 1892)।

2 जम्स वाड इस बात का खण्डन करते है कि तात्कालिक अनुभव जसी कोई स्थिति हा सकती है। द्रष्टव्य, उनका लिखा मिस्टर ब्रडलज एनालिसस आफ माइण्ड (माइण्ड 1887) एव ब्रडलेज डाक्ट्रीन्स आफ एक्सपीरीयन्स (माइण्ड 1925)। किन्तु ब्रडल का मत था कि मनोविज्ञान की सामान्य प्रवृत्ति उन्ही की तरफदारी करती है विशषकर विलियम जम्स उनका तात्कालिक अनुभव का सिद्धान्त ही उन कुछ चन्द चीजा म स था जिन पर ब्रडल क ही कथनानुसार हीगल का भारी प्रभाव था।

गुण है। यह अलगाव का और एक साथ जुड़ाव का प्रयास हम तत्काल ही अपने हो विरोधाभास की ओर ले जाता है। यही एपीयरेंस एण्ड रीयलिटी के प्रथम खण्ड का मूल कथ्य है। इस बाह्य जगत के बारे में हम जो कुछ भी कह सकने की स्थिति में है, वह सब या उससे सम्बन्धित कोई भी सामान्य धारणा इसी प्रकार के विरोधाभासों से भरपूर है और इसलिए वह मात्र दिखावा है–माया है–सत्य नहीं।

उदाहरण के लिए यह उक्ति लें शक्कर मीठा है। ब्रेडले पूछते हैं कि इस उक्ति में 'है' जिस प्रकार से वस्तु और गुण दोनों को जोड़ता है उसका क्या अभिप्राय है? हम यहाँ यह नहीं कहते कि शक्कर ठोस है सफेद है, आदि आदि। शक्कर अपने इन विभिन्न गुणों में से किसी एक के 'तद्वत्' नहीं हो सकती, लेकिन अन्य किसी भी तरह से शक्कर को इन तमाम गुणों में युक्त, कैसे बताया जा सकता है? यदि केवल इस इन गुणों का संयोग मात्र ही कहें तो इसकी इयत्ता समाप्त हो जाती है। और यदि इसे गुणेतर कोई अवस्था माना जाय तो वह गुणेतर जो कुछ भी है उसको बताना हमारे लिए असम्भव हो जायगा।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि शक्कर अपने विभिन्न गुणों से युक्त होने के साथ साथ उनको एकत्व में बाँधने वाले तत्वों से भी बनी है। तब ब्रेडले कहते हैं कि ये सम्बन्ध किस प्रकार से गुणों को जोड़कर एक कर देते हैं यह एक पहेली रह जाता है। ये गुण निश्चय ही किसी दूसरे के आश्रय नहीं है। सफेदी ठोस नहीं है, न मीठापन ही सफेद है। फिर यह कैसे जुड़ सकते है? उसके अतिरिक्त प्रस्तुत उक्ति में 'है' का सम्बन्ध बताने वाले 'है' से क्या ताल्लुक है? निश्चय ही हम नहीं कह सकते कि मीठापन यहाँ सफेदी से जुड़ जाने के कारण सम्भव हुआ है। यदि 'है' के स्थान पर 'रखता है' जैसा कोई पद हम आवेश में कह दें तो भी समस्या का केवल क्रियात्मक रूपान्तर ही होता है। 'वस्तु से सम्बन्धित है' नामक पदावली में 'वस्तु से सम्बन्ध रखती है', नामक पदावली किसी भी अर्थ में ज्यादा स्पष्ट नहीं है। दुविधा वैसी की वैसी रहती है चाहे हम उससे किसी भी भाँति बचने की कोशिश करें। भाषा में हम जो कुछ करते हैं वह यही है कि या तो हम किसी दूसरे व्यक्ति के गुण को उसके कर्ता का विधेय बना देते है और इस प्रकार हम यह कहते हैं कि अमुक वस्तु क्या नहीं है अथवा हम कई बार ऐसी अवस्था को उसका विधेय बना देते हैं, जो उससे अभिन्न है। तब हमारा कथन मात्र एक खोखले तर्क, कि क क ही है वाली अवस्था में व्यर्थ हो जाता है। कोई कथन पुनरुक्ति दोष से बचे इसके लिए यह जरूरी है कि उसमें विभिन्न अवस्थाओं को उजागर किया गया हो। लेकिन इसके साथ ही उसमें एकत्व भाव होना ही चाहिए। किन्तु कोई भी कथन भिन्नता को एकता में मिला देने से सफल नहीं हो सकता।

एपीयरेंस एण्ड रीयलिटी के तीसरे अध्याय में इस प्रकार के कथनों पर आलोचना आगे बढ़ती हुई नजर आती है और तीसरा अध्याय तो सम्बन्धों की

सामान्य ग्रालोचना प्रस्तुत करता है।[1] इस ग्रध्याय के ग्रार म स्वय ब्र डल ने कहा है जो पाठक इस ग्रध्याय म दिय गए सिद्धान्तो स परिचित हो चुके हैं उन्ह ग्रागामी ग्रध्यायो म ग्रपना समय बिताने की ग्रावश्यकता ही नही है। उमने यह ता देख लिया ही होगा कि हमारे ग्रनुभव जहा कही भी सम्बन्ध–सापेक्ष है वहा व सत्य नही है ग्रौर तब उसने बिना किमी बात को सुन ही बहुत सघटनाग्रो को स्वीकार नही किया होगा। यह स्पष्ट सही है कि यदि सम्बन्ध ही दोषपूर्ण है ता ग्राकाश समय काय, कारण ग्रौर परिवतन सभी उसी दोष स युक्त होने चाहिए। ब्रेडल के मत म सम्बन्ध गुणो का जोडते हैं क्योकि कोई भी वस्तु मात्र उसके सम्बन्धो स ही निर्मित नही होती—सम्बन्ध बनाने वाली ग्रवस्थाग्रो के ग्रपने ऐसे गुण होने चाहिए जा उन सम्बन्धो स ग्रलग हो। लेकिन गुण बताना ही एक तरह स ग्रलग करना है ग्रर्थात् सम्बन्धित करना है। इस प्रकार वही एक गुण सम्बन्धो पर ग्राधारित भी है ग्रौर उनके लिए ग्राधार भी है कि गुणो के कोई सम्बन्ध नही है लेकिन बिना सम्बन्धो के गुण भी तो नही है। इस प्रकार यदि गुण यह दोहरा काय ग्रदा करते हैं ता हम किसी गुण क के विषय म ग्राश्रय के रूप क1 तथा उसके ग्राश्रित के रूप म क2 की ग्रवस्थाग्रो का भेद करना ही होगा। तब चू कि स्पष्ट ही यह दिखाना ग्रसम्भव है कि किन स्थितियो म शक्कर का एक कण सफेद ग्रौर मीठा दोनो हो सकता है उसी प्रकार क1 तथा क2 क सम्बन्ध के बारे म किसी बोधगम्य तरीके स कोई स्पष्टीकरण देना ग्रसम्भव है। कोई भी एक दूसर का विधेय नही है ग्रौर इसके बावजूद भी किसी ग्रन्य सम्बन्धो म मूलत भिन्न ग्रवस्थाए जुड जाती है तो फिर क1 का क2 तथा क1 क साथ जोडन म उसी प्रकार की कठिनाई ग्राएगी। इस प्रकार हम ग्रनन्त उलटफेर म पड जाते हैं। ग्रौर इस प्रकार हम ग्रपनी मूल समस्या के करीब कभी नही पहुचत।

इन तर्कों तथा इसी के समकक्ष दूसरे तर्कों क सहार ब्रेडल ग्रपन इस निष्कष की ग्रोर बढत है कि सापेक्षिक तौर पर किया गया विचार जगत् के मायात्मक रूप का ही प्रस्तुत करत है। उसके सत्य स्वरूप का नही। यह तो सतही ग्रौर व्यावहारिक तौर पर बुद्धि मे किया गया समझौता मात्र है। ग्रत्यावश्यक है फिर भी पूर्णत ग्रसुरक्षित। ग्रावश्यक इसलिए है क्योकि बुद्धि लगातार परिवतन स ग्रस्थायी ग्रौर तात्कालिक ग्रनुभव स तुष्ट नही होती। यह व्यावहारिक समझौता इस ग्रथ म है क्योकि इसके ग्राधार पर सभी ग्रनुभवो को जोडकर ऐक्य मे गूथने का प्रयास इसके द्वारा होता है जबकि उसी ग्रवस्था ग्रनुभव का खण्ड खण्ड करने सूक्ष्म दृष्टि स रखने की क्रिया भी होती है। यह पूर्णत ग्रसुरक्षित इस ग्रथ म है कि यह विरोधाभास

---

1 पी० ए० एस० 1901 म प्रकाशित एलेज्ड सेल्फकन्टाडिक्शन इन द कसेप्ट ग्राफ रिलेशन्स, लेखक जी० एस० स्टाउट।

का जन्म देती है। ग्रीन का यह विचार कि विचार स्वभावतः सार्पेक्षिक है सही ही था। बिना सम्बन्धों के विज्ञान एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। लेकिन इसमें यह मानना कि विचार विज्ञान का ही एक रूप है ब्रैडले को कभी नहीं भाया।

ब्रैडले द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार जो आदर्शवादियों की बहु परिचित धारणा की ही पुष्टि करते हैं कि विज्ञान का जिस जगत से सम्बन्ध है वह पूर्ण सत्य नहीं है अब तक काफी जटिल है। किन्तु सबसे ज्यादा जिस बात ने हलचल उत्पन्न की वह थी ईश्वर और आत्म के सम्बन्ध में भी ब्रैडले द्वारा अपना इसी प्रकार का तर्क प्रस्तुत करना।[1]

आत्मा सम्बन्धी किए गए विचारों में जो कमियाँ रह गई हैं यदि उनका ख्याल न करें तो ब्रैडले के अनुसार आत्मा सापेक्ष स्थितियाँ ही उजागर करती है। यह ससरणशील है, अर्थात इसका भूत इसके वर्तमान से जुड़ा है। और यह अनेक प्रकार से इस चारों ओर फैले विश्व से जुड़ी हुई हैं। जो दार्शनिक इस निष्कर्ष की अवहेलना करने का प्रयत्न करते हैं और एक शुद्ध अहम् अथवा विश्वेतर 'आत्म' की स्थापना करने में लगे हैं ब्रैडले के मतानुसार वे दिन प्रतिदिन की आत्मा के विषय में कुछ नहीं कहते हैं और न ही ये दार्शनिक किन्हीं सम्बन्धों और परिवर्तनशील अवस्थाओं का सहारा लिये बिना अपनी इस विश्वेतर आत्मा को दिन प्रतिदिन की आत्मा से जोड़ सकते हैं। ईश्वर भी उनके अनुसार इसी दोष से युक्त है धर्म के ईश्वर का सम्बन्ध मानवता से है। इसके बावजूद भी मनुष्य और ईश्वर के बीच किसी भी प्रकार के ज्ञेय सम्बन्धों की स्थिति बन ही नहीं पाती है। यदि आप परमात्मा का ईश्वर से तादात्म्य करके देखते हैं तो वह धर्म का ईश्वर नहीं होगा क्योंकि परमात्म का कोई व्यक्तित्व नहीं होता। बस इसका एक मात्र मतापप्रद हल यही है कि ईश्वर मात्र एक अवस्था है और इसका अर्थ यही है कि वह परमात्मा का ही सगुणात्मक रूप है।

यह ब्रैडले का प्रथम निष्कर्ष है कि जैसे ही हम वस्तुओं गुणों तथा संबंधों का नग्न रूप प्रस्तुत करते हैं तो हम सगुणात्मक अथवा माया के जगत में निश्चित रूप से चले जाते हैं जो जगत विरोधी स्थितियों से भरपूर तथा अबूझ है। लेकिन क्या इससे कोई फर्क पड़ता है? क्या हमारे पास सिवाय इसके कि इस विरोधाभास को बंध बिचका कर स्वीकार कर लें कोई अन्य विकल्प है?

एक स्तर तक तो यह अवस्था विकल्पहीन है। किसी भौतिक सिद्धान्त के विरोध में यह कहना कि यह विरोधास्पद तत्वों से बनी है तो जहाँ तक संबंधों का प्रश्न है और जहाँ वह मनोविज्ञान के विरुद्ध संघटनात्मक स्पष्टीकरण की स्वीकृति

1 द्रष्टव्य एम० जे० सैक्जी ब्रैडलेज व्यू आफ द सेल्फ (माइण्ड 1894)।

देता है जो पूर्णत अबूझ है तो यह निश्चय ही तत्त्ववादी सिद्धांतों का ऐसी जगह प्रयोग करना हुआ जहाँ वे प्रयुक्त नहीं किए जा सकते। सभी जगह इस प्रकार के विज्ञान का सार तत्व यही है कि वे अर्द्ध सत्य का प्रयोग करें। दूसरे शब्दों में, सुविधानुसार कल्पना और झूठ का खुलकर काम में लाएं। यह बात ब्रेडले ने अपने एक निबंध 'ए डिफेन्स आफ फिनामनालिज्म इन साइकोलोजी' (माइण्ड 1900) में स्पष्ट की है[1]।

लेकिन तत्त्वमीमांसा के उद्देश्य इससे कहीं बड़े हैं। ब्रेडले के अनुसार तत्त्वमीमांसा का उद्देश्य एक ऐसा सामान्य दृष्टिकोण खोजना है जो मस्तिष्क को तुष्टि प्रदान कर सके। क्योंकि सत्य वही है जो मस्तिष्क को पूर्णत संतुष्ट करे। व्यवहार में लेने पर यह दृष्टिकोण लाजे की परिभाषा के अनुकूल ही है। उन्होंने लिखा था तत्त्ववाद का केवल मात्र यह बताना है कि ऐसी कौनसी सम्पूर्णसम्मत दशाएं हैं जिनके बारे में हम बिना कोई विरोधास्पद बात किए ही कह सकें कि ये सत्य हैं अथवा ऐसा तो होता ही है। परमात्म के अलावा सभी जगह इस प्रकार का विरोधाभास मिलेगा। फिर भी बुद्धि इससे कम में तो संतुष्ट होती ही नहीं। परमात्म पर विचार इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि विचारने का अर्थ है विरोधास्पद होना। किन्तु साथ ही साथ यह केवल मात्र अज्ञेय अथवा अगम्य भी नहीं है। हमारे अनुभव के कुछ ऐसे रूप हैं जो हमें यह अनुभूति प्रदान करते हैं कि परमात्मा किस प्रकार का होगा चाहे तुम परमात्मवान जीवन को अपने सम्पूर्ण विस्तार में स्वयं निर्मित नहीं कर सकते।

ब्रेडले को अपना प्रथम सूत्र तात्कालिक अनुभव में प्राप्त होता है। यद्यपि यह अनुभव अस्थायी और सचल है और इसीलिए स्वयं बुद्धि को ही यह तुष्ट नहीं कर सकता तो भी यह उस माध्यम की सीख देता है जिसके कारण हम एकत्व और अनेकत्व का समन्वय रख सकते हैं। हमारे सम्पूर्ण अनुभव का सामान्य विचार जहां आकर भावना और बुद्धि और इच्छाशक्ति सभी पुन एक हो जाती हैं। इसका एक दूसरा सूत्र स्वयं विचार की प्रक्रिया से ही व्यक्त होता है—बुद्धि को अपने मुक्त प्रयास में संतुष्ट करने के लिए जिस दिशा में विचार गतिमान होता है वही गति इस बात का संकेत देती है कि परमात्म किस प्रकार का है। जब हम सोचने लग जाते हैं तो

---

1 ए० ई० टेलर हमको बताता है कि ब्रेडले ने उनसे कहा था कि मुझे गंभीरता में अनुभववादी मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहिए। कलेक्टेड एसेज में संगृहीत ब्रेडले की मनोवैज्ञानिक कृतियां लाक की ब्रितानी मनोविज्ञान परम्परा का निर्वाह करती हैं। ब्रेडले जिस बात का विरोध करते थे वह थी मनोविज्ञान का भी दर्शन बनाने की सनक। उनकी कृतियों का अनवरत कथन यही था कि वे तत्त्वमीमांसा को मनोविज्ञान से पूर्णत अलग रखना चाहते थे।

हमें एक ऐसी तरह का सत्य मिलता है जो अकेले विचार द्वारा हमें प्राप्त नहीं होता। तब हम संयोग ढूंढने की कोशिश करते हैं—एस संयोग जो केवल मात्र जोडने वाली अवस्थाओं से भिन्न होते हैं। हम यह देखने की आशा में रहते हैं कि अमुक व्यक्ति "अ" का निश्चय ही 'ब' के साथ जाना चाहिए। केवल यही नहीं कि अ, ब के पास गया विचार हमें सदैव क्रूर संयोजकों के फेरे में छोडकर चल जाते हैं। क्योंकि यदि हमें यह मालूम भी पड़ जाय कि अ 'ब' के पास इसलिए गया कि 'स' वहाँ था तो भी 'अ' और 'ब' को एक साथ रखकर 'स' को संयोजक करके देखा है। जब तक हम अलग अलग सत्यों के संबन्ध में खोज करते रहेंगे और उन्हें अन्य अवस्थाओं से तथा परस्पर जोडते रहेंगे तो हम वह संयोग प्राप्त नहीं हो सकता—जो इनमें अन्तरंग रूप से व्याप्त है और जिसकी खोज हम कर रहे हैं। और न परमात्म के संबंध में अभावों दृष्टि से ही हम कुछ ऐसी पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे जिसका विचार हम निरन्तर प्रवृत्त करता रहता है। सत्य उस समय तक संतुष्ट नहीं होता जब तक सम्पूर्ण तत्व हमारे सम्मुख न हो और जो कुछ हमारे पास है उसे हम पूर्ण रूप से जान न लें। और सच तो यह है कि जब तक संगति में सभी चीजें हमारे सम्मुख न हो तब तक उन्हें पूर्ण रूप से समझना हमारे लिए संभव भी नहीं है। वे सब उपकरण भी ऐसी अवस्था में होने चाहिए कि तब हम उनसे अच्छे या बुरे की उस संबन्ध में कोई कामना न करें।

ब्रेडले का मत है कि विचार का अपने ही द्वारा रचे उपकरणों (खोजे गए सत्यों) के प्रति असन्तोष हमें यह देख लेने में सहायता करता है कि मन के संतुष्ट हो जाने की अवस्था में सत्य का क्या स्वरूप होगा। यह सर्वात्म, परिपूर्ण, और पूर्णतः संगत होना चाहिए। यदि मन शक्ति और भावना के दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो भी हम परमात्म के संबन्ध में इसी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इस प्रकार के परमात्म में हम केवल अपनी नैतिक भावनाओं की पूर्ण तुष्टि कर सकते हैं। परमात्म से इतर किसी भी विचार में मनुष्य स्वयं सिद्धि एवं आत्मोत्सर्ग के लक्ष्यों के मध्य पिसता रहता है और अपनी इच्छाओं के विरोधाभास से मुक्त नहीं हो पाता और उसे संतोष या शक्ति उसी समय मिलती है जब वह पूर्णतः अपना विनाश करले।

परमात्म केवल एक होना चाहिए क्योंकि ब्रेडले एकत्व के रूप में ही अनेकत्व सापेक्षिकता को निमन्त्रण देता है। तो भी एकत्व अनेकत्व को अपने में समाहित किए है क्योंकि इस अनेकत्व के अभाव में परमात्म केवल शून्य ही होगा। इसी जगह आकर ब्रेडले की ठोस समष्टितत्वों की धारणा उभर कर सामने आती है। हम वस्तुओं को वर्गीकृत करके देखने के आदी है—घोडों को चौपायों में, चौपायों को जानवरों में और जानवरों को प्राणियों में आदि आदि। और इस प्रकार यह वर्गीकरण जैसे जैसे अन्ततः हम सामान्यता की ओर लगातार लेता चला जाता

है—इस तरह वस्तु-सम्बन्धी धारणा समाप्त होती जाती है। प्राणी नामक शब्द घोड़े जैसे शब्द से कम विशिष्ट है तथा अमूर्त हो गया है। इसी तर्क प्रणाली पर यदि परमात्म के विषय में सोचें तो उसके निर्णायक तत्व भी अत्यन्त निकृष्ट कोटि के द्वारा अन्ततः शून्य में विनष्ट हो जाएँगे।

इस प्रकार का वर्गीकरण अमूर्त समष्टियों का प्रयोग करता है। विचार इस प्रकार की अमूर्त समष्टियों के निर्माण में अधिक लगा रहता है। इस प्रकार की समष्टियों के बिल्कुल विपरीत ब्रेडले अपनी ठोस समष्टियों के प्रयोग का सुझाव देते हुए कहते हैं कि ये वस्तुओं के अमूर्तीकरण नहीं अपितु उसके विभिन्न नियामक तत्वों का आकलन मात्र है। उनका समुदाय है। यह एक व्यक्ति है, हम इसके स्वभाव से परिचित हो सकते हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक व्यक्ति तथा समाज से। एक समाज अपने सदस्यों की सम्पन्न बहुलता को अपने सभी संघर्षों और सहयोगी प्रयत्नों को अपने में समाहित किए रहता है। यह समाज के एक व्यक्ति से अधिक सम्पन्न है अपनी इस बहुलता को एकता में बाँधते हैं जैसे एक जाति बाँधती है। किन्तु यह समष्टि एक व्यक्तित्व हो जाता है और जाति नहीं रहता।

तो भी ब्रेडले के अनुसार इसकी वैयक्तिकता अपूर्ण है। पूर्ण व्यक्ति तो परमात्म ही हो सकता है। जबकि व्यक्ति अथवा समाज कुछ अंशों में सदा ही वातावरण और परिस्थितियों के सहारे रहते हैं। इस प्रकार अपूर्ण व्यक्ति सत्ता हो सकता है। एक ऐसी सत्य और सर्वव्यापी व्यष्टि जिसमें समष्टि का भाव भी समाहित है और यह समष्टि शून्य की समष्टि नहीं है।

ब्रेडले यहाँ तक तो स्वीकारने के लिए तैयार है कि यह परमात्म अनुभव-सिद्ध है। एक अननुभूत सत्य दोषपूर्ण अमूर्तीकरण पर आधारित होता है जिसका अस्तित्व ही निरर्थक है जो किसी भी भाँति अनुभवसिद्ध नहीं है वह मेरे लिए अर्थहीन है। यहाँ आकर ब्रेडले आदर्शवादी ज्ञान मीमांसा की विशिष्ट तर्कप्रणाली अपनाते हैं। हम किसी वस्तु के विषय में उस समय तक नहीं सोच सकते जब

1 अमूर्त एवं ठोस समष्टियों के लिए द्रष्टव्य एन० के स्मिथ द नेचर ऑफ यूनीवर्सल्स (माइण्ड 1927)। एम० बी० फोस्टर द कोन्क्रीट यूनीवर्सल माइण्ड 1931)। एच० बी० एक्टन थ्योरी ऑफ कोन्क्रीट यूनीवर्सल्स (माइण्ड 1936-7)। एवं परिसंवाद (जे० डब्लू० स्काट जी० इ० मूर एच० विल्डन कार जी० हाउस हिक्स) क्या ठोस समष्टि ही सही प्रकार का समष्टि दर्शन है? ((पी० ए० स० 1919) द्रष्टव्य स्वयं आदर्शवादियों की रचनाएं बी० बोसांके द प्रिंसिपल ऑफ इण्डवीजुएलिटी एण्ड वेल्यू (1912) ब्रेडले प्रिंसिपल्स ऑफ लोजिक, हीगल द फिनोमेनोलोजी ऑफ स्पिरिट (1807)।

तक कि वसा सोचने की अनुभूति हमम नही और इसीलिए अनुभवहीन काई विचार विचार हो ही नही सकता। तो भी कही भी वे यह नही कहते कि परमात्म का अनुभव किया जा चुका है। क्योंकि इसका अर्थ यही होता कि उसकी अनुभूति करने वाला व्यक्ति उसस अलग होता। इसलिए वह तो केवल अनुभूति मात्र है।

यहा ब्रेडले का परमात्म एक सवव्यापी एव निरपक्ष अनुभूति है। यह न तो मन है न आत्मा।[1] मन द्वारा अनुभव की गई अवस्था से तो यह निश्चय ही कुछ और है क्योकि उपयु क्त दोनो प्राक्ल्प उसको सापेक्षिक बना देते हैं। हम पारमात्मिक अनुभूति का एक ऐसा सामान्य रूप बना सकते हैं जिसम सघटनात्मक विशिष्टताए एकीकृत हो जाती हैं। उच्च स्तर पर एव सम्पूर्ण एकत्व की एसी तात्कालिक अनुभूति होती है जिसम उसकी बहुलता का कोई भी अ श छूटता नही। यही विचार, जिसे हम बिल्कुल समझ नही पाते, विस्तार म—अनुभूति पाने पर परमात्म का विचार हो जाता है।

तब यह परमात्म अपनी प्रकट बहुलता स किस प्रकार सयुक्त है? परमात्म के विषय म उसके सबधो का जिक्र करना उसके बारे म गलत सोचना है। वास्तव म परमात्म के विषय म अथवा उसकी माया के बारे म जो भी कथन हम कहते हैं निश्चय ही दोषपूर्ण होगा क्योकि इसके लिए विचार की भाषा का प्रयोग हम करना पडेगा और अमूर्त सत्यो का सहारा लेना पडेगा। किन्तु सभी भिन्नतावे, परमात्म की सवव्यापिनी शक्ति म अपने लिए स्वय स्थान ले ही लेंगे।[2]

जब प्रतीतिया स्वत विरोधी हो और परमात्म सम्पूर्ण रूप से स्वत सगत, तो फिर इन दोनो का निभाव कसे सभव है? यही प्रश्न स्वाभाविक तौर पर हम करते है। ब्रेडले ने इस प्रश्न का उत्तर अपने विरोधाभास के विशिष्ट सिद्धात के आधार पर दिया है। इसे उन्होने अपनी पुस्तक 'द प्रिंसिपल्स आफ लाजिक' के नकारात्मक विवक वाले अध्याय म विकसित किया है। सामान्य तौर पर क का विरोधाभास अ–क होगा अर्थात् यह अ–क क का आन्तरिक रूप से विरोधी है।

---

1 इसके बावजूद भी ब्रेडले अपनी कृति अपिएरेन्स ऐंड रिएलिटी का हीगल के इस आवश्यक सदेश के साथ समापन करते हैं आत्मा से परे कोई भी सत्य न तो है और न ही हो सकता है और जो वस्तु जितनी अधिक आत्मिक है उतनी ही अधिक वह सत्य भी है। यह रूढ आदर्शवाद ही है—लेकिन ब्रेडले न 'अपियरेन्स एण्ड रियेलिटी' म इस एसा ही स्वीकार नही किया है।

2 सदम, आर० एफ० ए० हानले प्रेग्मेटिज्म वसज एब्सोल्यूटिज्म (1) (माइण्ड 1905) एव जी० हाउस ट्विस 'एफ० एच० ब्रेडले द्वारा प्रणीत प्रकृति पर विचार (माइण्ड 1925, पुनमु द्रित क्रिटीकल रिएलिज्म' 1938)।

इस प्रकार कोई परमात्म, चाह वह कितना ही व्यापक क्या न हो इन दोनो विरोधी तत्वों को एक साथ अपने म समाहित कर सकता है। किन्तु ब्रेडले के मतानुसार प्रश्न का अर्थ क म विरोधी न होकर व म भिन्न अथवा कोई अन्य स्थिति का होना ही माना जाना चाहिए जो घूम फिर कर एक दूसरी सकारात्मक अवस्था व को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।[1] इस प्रकार हमारा यह कहना कि अ लाल नहीं है इस बात की ही स्वीकृति है कि यह कोई दूसरा रंग है जैसे हरा आदि।

निस्सन्देह यह बात असम्भव है कि एक ही समय म कोई वस्तु लाल भी हो और हरी भी। किन्तु ब्रेडले क अनुसार इस प्रकार क्षण और अवस्थाओं की बात करना विज्ञान की कल्पना का ही प्रयोग करना हुआ। यदि हम विभिन्न प्रणालियो के विषय म जैसा हम सोचना चाहिए वैसा अलग अलग ढग स सोचें तो इस बात को देखने म कोई मुश्किल नहीं है कि लाल और हरा एक ही वस्तु म एक साथ कैसे रखा जा सकता है – यदि किसी एक व्यवस्था द्वारा उन्हे विरोध म खडा कर दिया गया है तो एक उससे भी बडी व्यवस्था म यह भेद मिट जाना चाहिए और दोनो को एक साथ हो सगति स अपने म समाहित कर लेना चाहिए। निश्चय ही इतने पर भी हमारे लिए यह समझना कि हमारे दैनिक जीवन के सभी विरोधाभास कसे दूर हो जायेंगे काफी मुश्किल है। किन्तु ब्रेडले के अनुसार हम यह जानने की आवश्यकता भी नहीं है। हमारे लिए तो यही जान लेना पर्याप्त है कि विरोधाभासो का दूर किया जाना सभव है और परमात्मा ही इनको पार कर सकता है। एक प्रसिद्ध सूत्र इस सबध म द्रष्टव्य है जो सभव है और होगा वह है भी।"

इस अर्थ म सभी प्रतीतियां ब्रेडेले के परमात्म द्वारा पार कर ली जाती है सत्य शिव और सुदर यह आदर्शवादी मूल्यो की त्रिविधा अपने किसी भी परिचित रूप म वहा विद्यमान नहीं रहती। बुरा भद्दा और झूठा य भी इसी क्रम के रूप हैं और परमात्म म इनकी भी विद्यमानता रहती ही है। लेकिन ब्रेडल यहा यह बात कतई नहीं मानते हैं कि परमात्म के इस पार-करण म गुणो का यह मौलिक भेद मिट जाता है। कुछ प्रतीतियां अन्यो की अपेक्षा परमात्म के अधिक करीब है य प्रतीतियां सर्वाधिक सत्य और सर्वाधिक मूल्यवान हैं। इन प्रतीतियो म से प्रत्यक के विषय म हम यह-प्रश्न पूछना चाहिए कि कितने और सयोग से वह परमात्म म

---

1 तकनीकी भाषा म ब्रेडले विरोधास्पद और विसगत म कोई भेद नहीं मानते। (द्रष्टव्य एपियरेन्स एण्ड रिएलिटी का परिशिष्ट नोट—1।) प्लेटो ने सोफिस्ट नामक ग्रथ म जिस तरह विचार किया है ब्रेडल के सबध म भी यही कहा जाता है कि उन्होने भी लगभग वैसा ही किया है। किन्तु ब्रेडले पर तात्कालिक प्रभाव हीगल का ही था। द्रष्टव्य द लाजिक आफ हीगल' (अनुवाद वलस) अध्याय 7।

विलीन हो जाएगा। जितने कम सयोग की अपेक्षा होगी उस प्रतीति की उतना ही अधिक महत्ता होगी। और इस सत्य का परीक्षण प्रतीतियों म निहित सगति और व्यापकत्व-भाव से ही होगा।

जिसे हम भूल कहते है,[1] उसे गभीर रूप मे ममजित किया जाना आवश्यक है। वे इस बात का पूर्व खण्डन करते है कि भूल म कोई सत्य नही है। हमारी अन्य धारणाओं की अपेक्षा केवल वे अधिक भ्रामक होती है। अन्य सभी धारणाए भी किसी न किसी तरह दोषपूर्ण होती हैं। क्योंकि वे किसी ऐसी अकेली अवस्था की ओर इंगित करने म असफल हो जाती है जो ही एक मात्र सत्य है। वह कहते है कि पुस्तक लाल है और हम ऐसा कह कर उसके विषय म सतोष भी प्राप्त कर लेते है किन्तु वर्तमान परिस्थितियों म पुस्तक देखने म उसका जो रूप हमारे सामने आता है उसी के आधार पर दुर्भाग्यवश हम यह समझ लेते हैं कि पुस्तक पूर्णत लाल है। किन्तु यह गलत है क्योंकि जो सम्पूर्ण अवस्थाए उस पुस्तक के लाल रग को देखने के लिए हमारे पास होनी चाहिए पुस्तक की प्रस्तुत अनुमति के कारण वे हमारे पास पूर्ण रूप म नही है। इसलिए हमारी यह धारणा कि पुस्तक लाल है— हमारे उस झूठे बोध पर ही आधारित लगती है जिसके अपूर्ण होने पर भी हम उसे पूर्ण मान हुए रहते हैं।[2] इस प्रकार का अपूर्ण बोध इतना मूल्यवान तो होता है कि यह पुस्तक सम्बन्धी हमारे अन्य बोधो से किसी न किसी रूप से जुडा है। यदि यह गलत भी हो तो भी इसके कुछ न कुछ सत्य तो है ही क्योंकि इस वस्तु मे नही तो किसी अन्य वस्तु के विषय म यह कुछ बताता है। सिर्फ वर्तमान सन्दर्भ म इसका गलत होने का अर्थ यही है कि प्रस्तुत वस्तु म सम्बन्धित सत्य से इसका कम स कम सयोग हो सका है।

दोनो ही अवस्थाओ म किताब लाल है वाली धारणा ब्रेडले के अनुसार दुर्बलतम धारणा है क्योंकि इसका व्यापकत्व से जरा सा भी सम्बन्ध नही है। दृश्यमान तथ्यो के सम्बन्ध म भी यही बात सही है जिनम सत्य खोज लेने की आशाए करते हैं। इन्द्रिय सवेदना द्वारा परीक्षित अनुभूतियां निम्न कोटि के सत्य होती हैं। इसके विपरीत ब्रेडले के मतानुसार ईश्वर मे सत्य की उच्चतर अवस्था है, क्योंकि इसकी पूजा एक व्यापक सत्ता के रूप म की जाती है और इसका स्पष्टीकरण एक व्यापक भाव के रूप म ही दिया जाता है।

---

1 जी० एफ स्टाउट ब्रेडले आन ट्रुथ एण्ड फालिसिटी (माइण्ड 1928) 1930 म पुनर्मुद्रित स्टडीज इन फिलोसोफी एण्ड साइकोलोजी। सी० डी० ब्राड मिस्टर ब्रेडले आन ट्रुथ एण्ड रीएलिटी (माइण्ड 1914)

द्रष्टव्य प्रिंसिपल्स आफ लोजिक म से दूसरा टर्मिनल एस। जी० एस० स्टाउट मिस्टर ब्रेडलेज थ्योरी आफ जजमेण्ट (पी० ए० आर० 1903—स्टडीज म पुनर्मुद्रित)

केवल यही ब्रेडल का भौतिकवादियो का ग्रतिम जवाब है। भौतिकवान्यिा के तथ्य ही न कवल सत्य स शून्य होते हैं ग्रपितु प्रतीतियो के रूप म उनकी सत्यता की ग्रवस्था निम्न कोटि की हाती है। इमी प्रकार के मिद्धान्त क प्रतिपान्नार्थ ब्रेडले न 'एपीयरेन्स एण्ड रीएलिटी' क परिशिष्ट म लिखा है कि जा हमारी दृष्टि म सर्वोच्च है वही समष्टि के लिए मर्वाधिक सत्य है ग्रौर उसकी सत्यता के ग्रपदस्थ होन का काई प्रश्न ही नहा उठता दूमरी ग्रोर सामान्य भौतिकवाद म ग्र तत वस्तु के बार मे हम जो कुछ जानते है उसक सत्य की ग्रवस्था न्यून होती जाती है क्याकि ग्रनुभव स उसका मम्बन्ध टूट जाता है ग्रौर ग्रन्तत प्राप्त की गई ग्रवस्था मूलत ग्रपनी पूर्वावस्थाग्रो स ही जुडी होती है ग्रौर उसी का परिणाम होती है। इस ग्रवस्था तक तो ब्रेडले ने विश्वाम के साथ लिखा किन्तु प्रत्यक प्रकार की प्रतीति के विश्लेपण की बात उसन तत्ववादिया पर छाड दी।

कोई भी ग्रादशवादी ब्रेडले क इस निष्कप म सहमत न हा मका कि ग्रात्मा यद्यपि पूर्ण सत्य नही है तो भी कम स कम प्र१थ से तो वह ग्रधिक सत्य ही है। ग्रात्मा ग्रौर प्रकृति तथ्य ग्रौर मूल्य ग्रौर यन्त्रीकृत विश्व सम्बन्धा दृष्टिकोण ग्रौर ग्रादशवाद के प्रस्तुत द्वत तथा सघप को समाप्त करन म ब्रेडल का प्रमुख हाथ था। लेकिन बहुत स ग्रालोचका की दष्टि म एसा करके ब्रेडल ने धम ग्रौर नतिकता का तो ध्वस ही कर डाला।

अध्याय 4

व्यक्तित्व एव परमात्म

ब्रॅडले की पुस्तक एपीयरेंस एण्ड रीएलिटी के प्रकाशन के 6 वष पूव एण्ड सथ को[1] पुस्तक हीगेलियनिज्म एण्ड पसनलिटी (1887) प्रकाशित हो चुकी थी। उमसे 4 वष पूव सथ की जिम्मदारी तथा सहयाग मे नवहीगलवादी निबधो का सग्रह ऐसेज इन फिलोसोफीकल क्रिटिसिज्म भी प्रकाशित हो चुका था इस सग्रह म स्वय उनका एक निबध था जिस पर हीगल का प्रभाव था। तो भी उपयुक्त पुस्तक हीगलियनिज्म एण्ड पसनलिटी हीगलवाद की समूची वृत्तियो के प्रतिरोध म एक आवाज है और इसमे हीगलवाद द्वारा प्रतिपादित चतना के एक मात्र साक्ष्य के सिद्धान्त का ता डटकर विरोध है–यही प्रतिरोध आग जाकर ब्रॅडले की व्यक्तित्व मूलक आदशवादी समालोचना का आधार बना।

कुछ अशो म सथ स्काट परम्परा का कायापलट करत हुए लगत है। इसका सूत्र हम उनकी पुस्तक स्कोटिश फिलोसोफी ए कम्पेराजन आफ द स्कोटिश एण्ड जमन आसस टू ह्यूम (1885) म आसानी स खोज सकत है। यहा आकर व यह मानन लग जाते है कि दशन को किसी न किसी भाति ईश्वरविषयक हमारी आस्था को औचित्य दना ही होगा चाह वह आत्मा परमात्म स तादात्म्य के जरिए हो अथवा हमारी चेतना स परे बलात खडे हुए वाह्य वस्तुगत अथवा जागतिक सत्ता के जरिए ही क्यो न हो। लकिन सथ नाज का भी दृष्टि म रखने की आवश्यकता स्वीकार करते हुए कहत ह कि उनका दशन तो स्काट विचारधारा क काफी अनुकूल पडता है। ब्रॅडले ने लिखा था कि एक मनक पाठक के लिए भी लाज की इस मान्यता का पता लगा लना कठिन है कि उनके लिए एकात्म सदैव ही सघटनात्मक विशषण म कुछ अधिक

---

1 कौटुम्बिक कारणो स उन्होन बाद म अपना नाम वदलकर प्रिंगल पटीसन रख लिया था। द्रष्टव्य जी० एफ० बारबर की उनके मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक बालफोर लेक्चस आन रीएलिज्म (1933) एव जे० बी० बली एव जे बी० वपर के निबध (पी० बी० ए० 1931), एच० एफ० हैलेट की श्रद्धाजलि (माइण्ड 1934), एव ई० एम० मैरिंगटन की ए० जे० पी० 1931 मे प्रकाशित स्मरणाजलि। व ए० केम्पवलर फ्रजर के विद्यार्थी थ और लाक तथा बर्कले की कृतियो के सम्पादक थ और इनके द्वारा लिखित पुस्तक थेराइटी आफ थीस्म वयक्तिक आदशवाद पर काफी प्रकाश डालती है। इस पर हुए सुवाद के लिए द्रष्टव्य सथ द्वारा 1919 म माइण्ड म प्रकाशित निबध द आइडिया आफ गोड जिसम उन्होन कुछ आलोचनाओ का जवाब दिया है।

अपना अधिक ध्यान केंद्रित रखा है । कट्टर आध्यात्मवादी उनकी इस बात म सहमत न हो सके कि ईश्वर मात्र एक अपूर्ण सत्ता है ।

यदि उस मनुष्य स अलग कर दिया जाय तो तब आदशवादियो को यह शिकायत थी कि सथ न प्रकृति को पर्याप्त स्वतन्त्रता नही दी है । मनस्तत्ववादियो का मत था कि उन्होने प्रकृति और मन म बहुत भेद रक्खा है । लकिन सचाई तो यह है कि सथ की विचारधारा सामान्य मस्तिष्क वाल बुद्धिजीवियो के लिए काफी आकपक रही और उनके द्वारा अपेक्षित इस स्थिति की कि दशन को प्रकृतिवाद तथा परमात्मवाद क बीच म कोई माध्यम खोज निकालना चाहिए–सथ की यह विचार धारा काफी अशा म पूरा करती है । इसम धम और विज्ञान का भी सतुलन है तथा व्यक्तित्व के अधिकारो तथा समुदाय की माग के लिए भी पर्याप्त जगह है । मैज[1] क शब्दो म–इस प्रकार एक साधारण आदशवाद का प्रादुर्भाव हो गया था और इसका प्रवतन प्रान्तीय एव उपनिवशी विश्वविद्यालयो म काफी हुआ । इसके अनुयायियो म स कुछ तो सास्कृतिक परम्परा के व्यक्ति थ जिनकी व्यापक रुचिया न सेथ के मठवाद म ही सतोष पाया था लकिन कुछ का मत था कि इस प्रकार का विभाजन निश्चय ही ठस दिमाग की ही उपज हो सकता है– । दशन इस प्रकार के लोगो क हाथो म पड़कर गम्भीर चिंतन मनन म हट कर विविध प्रकार की सजावट का माध्यम बन गया था ।

हीगलियनिज्म एण्ड पसनलिटी नामक पुस्तक म प्रतिपादित अपने व्यक्तिवाद म यदि सेथ थोडा मुकर गय हो तो इसका कारण यहा था कि आदशवाद की एक नई प्रजाति प्रवतन म आ चुकी थी इस आदशवाद ने व्यक्ति को उस सीमा तक स्वतन्त्र माना जिस सथ भी कभी अतिवादी रहा करते थ । और व्यक्ति यहा आकर इतना स्वतत्र हो गया था कि ईश्वर और प्रकृति की सत्ताओ को यह एक चुनौती थी । यह प्रवृत्ति अमरीकी आदशवादी विचारक जी एच होवीसन म देखी जा सकती है ।[2]

होवीसन न अपन दाशनिक जीवन का समारम सेन्ट लुईस फिलासोफीकल सोसाइटी के अग्रणी सदस्य होकर किया और यह भी सेथ की भाति समझौतावादी

---

1 अपनी श्रेष्ठ कृति ए हण्ड्रेड **ईयस आफ ब्रिटिश फिलोसोफी** (1935 अग्रेजी म अनूदित 1935) म मैज ने इस प्रकार का मतव्य व्यक्त किया है । उनका मैं काफी आभार मानता हू ।

2 विशषत द्रष्टव्य **द लिमिटस आफ इवोल्यूशन** (1901) 1905 के इसके द्वितीय सस्करण मे आलोचको का जवाब दिया ह । मेकरेगट का **माइण्ड** के 1902 म प्रकाशित **रिव्यू**, 1934 म प्रकाशित जेडवबू० बूखम एव जी एम स्ट्रेटन की पुस्तक **जोज होम्स होवीसन फिलोसीफर एण्ड टीचर** इत्यादि ।

टकर नही। वे व्यक्तित्व के स्टई होगल व विरुद्ध हो गए। उनके अनुसार परमात्म वाद पौर्वात्य सिद्धान्त है और पाश्चात्य आदमी म वसा ही वैयक्तिक सूझ बूझ के प्रति एक जन्मजात आग्रह है। उनम दायित्व एव पैठ के लिए भी एक आग्रह है। उसके इस आग्रह को कोई भी एकतत्ववादी दशन सतुष्ट नही कर पा रहा था चाहे वह एक-तत्ववाद प्रकृतिवादी हो अथवा आदशवादी-ही क्यो न हो।[1] अनकतावादी आदशवाद जिमके अनुसार सत्य परस्पर जुड हुए मनो का तथा उनसे मयुक्त ईश्वर का एक ऐसा अनन्त गणराज्य है जिसका विना वैयक्तिकता का समाप्त किय ही प्रकृति वाद के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है। वह यह बात स्वीकार नही करना चाहते हैं कि मनस्तत्व ईश्वर मे ही नि सृत है। होवीसन ने लिखा कि कोई दवी निमित्त भी अपने से भिन्न एक स्वत कमशील बुद्धि को किसी भी उत्पादक कम द्वारा प्रकट नही कर सकता। प्रत्यक मन आत्माओ के समाज म अनन्त रूप से अस्तित्वमान रहता है और ईश्वर केवल मात्र वहा बराबरी का दर्जा पाने वाले मे सबमे अग्रज है। हा यह एक ऐसा अग्रज है जिसका अन्य सभी आत्माए निरन्तर सदर्भ प्राप्त करती रहती हैं।

इसलिए हनरी स्टट के द्वारा सम्पादित एक पुस्तक के शीषक के रूप म 1902 म पसनल आइडियलिज्म प्रकाशित हुआ तो होवीसन को क्रोध हो आया। इसम बहुत से नए युवक विचारको ने अपने आपको ब्रैडले की सम्पूण आदशवादी परपरा का अनुयायी माना है। स्पष्ट ही होवीसन को अपना कापी राइट खतरे म पडता हुआ लगा और होवीसन के मतानुसार जो इसस भी अधिक खराब बात थी वह यह थी कि इनम से बहुत से लिव प्रकार तो व्यक्तिमूलक आदशवादी भी नही

---

1 यहा प्रस्तुत व्यक्तित्वमूलक आदशवाद बडे ही स्पष्ट तौर पर एक प्रजातान्त्रिक दशन की माग को पूरा करता है। इसी योजना का उत्कष तक ले जाने वालो म होवीसन के शिष्य एच० ए० स्ट्रीट का नाम लिया जा सकता है। उनका 1913 ई म हिब्बट जनल म प्रकाशित यह निबन्ध दशनीय है डेमोक्रेटिक कन्सेप्शन आफ गॉड जिसमे इस बात पर अभियोग लगाया गया है कि प्रजातान्त्रिक समाज म किसी ऐसी सत्ता का जो सर्वोच्च हो-तथा सभी दृष्टियो स पूण हो—और बहुलता से फले उससे सघषशील अयोजगत् के बीच भेद कायम रखना सरासर गलत है। इस प्रकार की यह अमरीकी दृष्टि एक यूरोपीय को विचित्र सी ही लगती है। कदाचित इसका कारण यह हो कि यह अपने विषय वस्तु की निम्नता की पर्वाह नही करती। होवीसन की इस बात को सहमति दी जा सकती है कि भारतीय दाशनिक पूण आत्मवाद या परमात्मवाद की ओर उन्मुख थे और उन्हीं के कारण कदाचित ब्रैडले का नाम ऐसे समय म भी जीवित है जिसम पश्चिमी जगत म उनका कोई अनुयायी शेष नही है। द्रष्टव्य द फिलोसोफी आफ एस० राधाकृष्णन्, लाइब्रेरी आफ द लिविंग फिलोसोफस वाला सस्करण (सम्पादन पी० ए० शिल्प 1952)

थ। वे तो विलियम जेम्स के अनुयायी थे जिसके विरुद्ध होवीसन ने अपनी वक्तृत्व शक्ति का पूर्ण उपयोग किया था।[1]

हेस्टिंग्स रेशडल अपने निबन्ध **पर्सनलिटी, ह्यूमन एण्ड डिवाइन** में हावीसन के निकटतम पहुचे है। उन्होंने लिखा है कि परमात्म, ईश्वर और आत्म दोनो को समाहित किये है अपने द्वारा जानने एव *अनुभव करने की सभी अवस्थाओं के साथ।* लेकिन होवीसन की तरह रेशडल आत्माओं की अनन्तता को स्वीकृति नही देते। प्रत्येक आत्मा ईश्वर द्वारा निर्मित है। किन्तु कट्टरपंथियों के लिए दी गई इस छूट का सतुलन इस धारणा से होता है कि ईश्वर अपनी सृष्टि के उपकरणो से ही सीमित और उनसे ही प्रतिबद्ध है।[2]

अब तक यह बात काफी स्पष्ट हो गई है स्वतन्त्र आत्माओं के समुदाय के रूप मे सत्य का विचार सरलता से ईश्वर के विचार से मेल नही खाता। सेथ को यह बताने मे कोई कठिनाई नही हुई कि हावीसन ईश्वर को प्रारम्भिक अन्त क्रियाशील स्थिति के रूप मे सीमित नही कर सके। रेशडल और होवीसन फिर भी न्यायपूर्ण ढग से सेथ को यह उत्तर दे सकते है कि उनके स्वय द्वारा निर्मित ईश्वर और एकात्म सत्ताओं के बीच का सम्बन्ध कट्टर अध्यात्म एव प्रगतिशील आदर्शवादियो के बीच एक अकुलाहट भरा सयोग मात्र ही है। इसका उद्घाटन बाद मे जे० ई० मकटेगट ने किया। ईश्वर का पलायन होना चाहिए क्योकि सत्य तो सीमित आत्माओं के समुदाय की समवायी सत्ता ही है।

मक्टेगट का व्यक्तित्व मूलक आदर्शवाद सेथ हावीसन व रेशडल की ढीली ढाली विचार प्रणालियो से सर्वथा भिन्न है। उन्हे अपनी योग्यता के कारण व्यक्तित्व मूलक आदर्शवाद का ब्रेडले कहा जा सकता है। ब्रेडले की ही भाति न कि होवीसन एव सेथ की तरह उनकी आदर्शवाद के समसामयिक विरोधियो द्वारा

---

1 स्टट के लिए देखे सी० जे० बेव (माइण्ड 1947)। एफ सी एस शिलर पर लिखा हुआ अध्याय 8 देखें। दूसरे निबन्धकारो मे जी० एफ० स्टाउट है। उन पर अध्याय 13 को देखा जा सकता है। डब्लू आर बाइस गिबसन योरोपीय दर्शन के अनुवादक एव टिप्पणीकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। (देखें डब्लू ए मैरीलीन ए जे पी 1935) एव नतिक सिद्धान्तवादी हस्टिंग्स रेशडल (देखें मथियसन द्वारा लिखित **द लाइफ आफ एच० रेशडल** (1928)

2 इसी प्रसग के लोकप्रिय प्रस्तुतीकरण के लिए देखें एच जी वेल्स कृत **मिस्टर ब्रिटलिंग सीज इट थ्रो** (1961) **गाड द इनविजिबल किंग** (1917, एव **स्पष्टोसिज्म आफ द इस्ट मेष्ट** (1904)

कटु आलोचना की गई है।[1]

किन्तु जहां ब्रेडले द्वारा तत्ववाद का कार्य यह माना गया है कि जिस बात पर हम सहज रूप में विश्वास कर लेते हैं उस विश्वास की अयथार्थता की गलतियां निकाली जाय वहीं मेकटेगट सहज रूप में कुछ विश्वास करने में बहुत कुछ सचाई देखते हैं। हम हमारे सहजात विश्वासों के लायक ही नहीं यदि हम उन्हें दार्शनिक विचारधारा में पुष्ट नहीं कर सकें। कोई भी ऐसा आदमी धार्मिक भाव रखने का अधिकारी नहीं है जब तक उसने उनका दार्शनिक अध्ययन न कर लिया हो। यह बात मेकटेगट ने अपनी पुस्तक सम डाग्माज आफ रिलिजन (1906) में लिखी है।

इस पुस्तक का उद्देश्य मूलतः नकारात्मक है। यहां मेकटेगट ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि लोकप्रिय अध्यात्म-दार्शनिक आलोचना के समक्ष खड़ा नहीं रह सकता।[2] अपनी दूसरी रचनाओं में वे एक ऐसे तत्ववाद की खोज में है जो धार्मिक भाव की पुष्टि कर सके और वे धार्मिक भाव की परिभाषा एक ऐसे विश्वास से देते हैं जो हमारे और वस्तुजगत के बीच कोई संगति बैठा सके। यह संगति होने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होना जरूरी हैं। पहली कि यह ब्रह्माण्ड आत्माओं से निर्मित है दूसरी कि आत्मा अमर है। तीसरी यह कि आत्मा प्रेममय है अथवा अपने प्रमुख तत्वों में वह यथार्थ उपकरणों को लिए है। चौथे, यह ब्रह्माण्ड शिवमय है और निरन्तर पूर्ण शिवत्व की ओर अग्रसर हो रहा है।

---

1 सन्दर्भ 1935 से 38 में प्रकाशित सी० डी० ब्राड कृत ऐग्जामिनेशन आफ मेकटेगट्स फिलोसाफी (तीनों ग्रन्थ)। किसी भी समसामयिक दार्शनिक पर इतनी टिप्पणियां नहीं लिखी गईं। जब केम्ब्रिज के विचारक तत्ववादी युक्तियों का विश्लेषण करते हैं तो उनमें मेकटेगट का उद्धरण देने की विशेष वृत्ति रहती है-जिसमें उन्होंने इस बात से इन्कार किया है कि समय सत्य है। द्रष्टव्य डिकिन्सन कृत जे० ई० मेकटेगट 1931। एम० वी० कीलिंग मेकटेगट दर्शन के स्मृति ग्रन्थ। सी० ब्राड के स्मरणार्थ (पी ओ ए 1927। पुनर्मुद्रित संशोधन सहित 1930)। जी० ई० मूर की श्रद्धांजलि (माइण्ड 1928)। मेकटेगट द्वारा अपने ही दर्शन का सारांश एन आण्टोलोजीकल आइडियलिज्म (सी० बी० पी०)

2 मेकटेगट सामान्यतः व्यक्तित्वमूलक आदर्शवादियों के विपरीत निश्चयवाद के प्रबल आलोचक हैं। वे इसे नीतिशास्त्र अथवा अध्ययन मात्र ही मानते हैं। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है—इन सब से परे कोई निश्चयन है तो उसे ईसा मसीह की पूजा करनी पड़ेगी। और मैं ईसा मसीह को बहुत ज्यादा पसन्द नहीं करता। क्या तुम किसी ऐसे आदमी या औरत को दरअसल पसन्द करोगे जो ईसा मसीह की नकल करते हों? द्रष्टव्य एच० रेशडेल मेकटागर्टस डोग्माज आफ रिलीजन (माइण्ड 1906)

पहल पहल ता उन्होने यह सोचा कि वे अपनी इन शर्तों की पूर्ति हीगल की द्वन्द्वात्मकता के जरिए कर सकते हैं। अधिकाश ब्रितानी दार्शनिकों ने इस द्वन्द्वात्मकता का ट्यूटानियो की भाति रहस्यलोक म विचरण करने की प्रवृत्ति कह कर उसे अस्वीकार कर दिया था। मक्टगट ने लिखा कि इसके बावजूद भी इन सभी न हीगल के निष्कर्षों को तो स्वीकार किया है किन्तु उनके द्वारा दिय गये प्रमाणों को व्यर्थ का कह कर अस्वीकार किया है। 1896 म लिखी अपनी पुस्तक स्टडीज इन द हीगेलियन डाइलेक्टिक मे तथा 1910 म लिखी ए कमेण्ट्री आन हीगल्स लोजिक मे उन्होन हीगल की भाति विचार करन का निष्फल प्रयास भी किया ह किन्तु इसके बावजूद भी यह स्पष्ट हो जाता है कि हीगेल का भी उन्हान अपने द्वारा निर्धारित निष्कर्षों के समर्थन ही पढा ह। कोई भी इस बात से सहमत नही हुआ ह कि जिस हीगल का वर्णन वह करते हैं वह कही भी उनकी कल्पना स बाहर का कोई हीगल है। 1910 म लिखी उनकी पुस्तक स्टडीज इन द हीगेलियन कोस्मोलोजी निश्चय ही उनके हीगल–विषय के अध्ययन की भ्रम–पूर्ण सूचना देती ह। यह तो उनके सामने ही प्रस्तुत नतिक और धार्मिक प्रश्नो क समाधान क लिए लिखी गई एक विचारपूर्ण पुस्तक है। उन्होने यह भी स्वीकारा है कि हीगल न प्रश्नो को न्यूनतम रुप म छुआ है। मक्टगट की प्रकट मुश्किल यह थी कि हीगल ने अमरत्व क प्रति एक बहुत ही आकस्मिक दृष्टि रखी थी। फिर भी उनकी मान्यता ह कि जो विचार उन्होने अपन हीगल सबधी अध्ययनो म व्यक्त किए हैं जिनम अधिकतर लाज और ब्रेडले की आलोचना ही है अपने स्वभाव म हीगलवादी ही हैं चाहे वे हीगल की मूल विचार शृखला स कितने ही कठिनाई स क्यो न जुडे।

ये ही कुछ एस वर्ष थ जिनम हीगलवादी दर्शन पर करारी चोटें की जा रही थी। विशेष तौर पर मेक्टेगट क केम्ब्रिज सहयोगियो द्वारा। बर्टेण्ड रसल जा हीगलवाद के प्रबल विरोधी हो गए थ और जी० ई० मूर जो स्वय हीगल दर्शन म अधिक रुचि नही रखते थ इन दोनो म मक्टेगेट द्वारा प्रतिपादित नव हीगलवादी विचारधारा का अध्ययन करना प्रारम किया था[1]। मेक्टेगट अभी भी यह बात मानते थ कि हीगलवादी द्वन्द्वात्मकता सर्वोप अवस्था है, लेकिन जस जस वह अपनी श्रेष्ठतम कृति द नेचर आफ एक्जिस्टेन्स (2 अक 1921 27) लिख रह थ वे निश्चय ही हीगल प्रणाली से विपरीत जा रह थे।

द नेचर आफ एक्जिस्टेन्स दर्शन के इतिहास म बहुत सावधानी से तयार की गई रचनाओ मे से एक मानी जानी चाहिए। आग्ल विचारधारा की दृष्टि से तो यह अद्वितीय है। इसलिए नही कि फरियर न भी यही प्रणाली अपनायी थी–बल्कि

---

1 द्रष्टव्य 1936 म प्रकाशित मकडोनाल्ड की पुस्तक रसेल एण्ड मेक्टेगट, जी० ई० मूर कृत मिस्टर मेक्टेगट स स्टडीज इन हीगेलियन कोस्मोलोजी (पी०ए०एस० 1901) एव 1903 म प्रकाशित मिस्टर मेक्टेगट स एथिकस (ऐथिक्स 1930)

इसलिए कि एक निगमनात्मक तत्ववाद तयार करने म जिसम सारे दार्शनिक निष्कषपूर्ण निर्धारित कुछ असदिग्ध तक वाक्यो पर विकसित होते हैं, इसका कोई मानी नही हैं।

मकटेगट प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि 'अमुक वस्तु अस्तित्व म है', यह बात असदिग्ध है। इसको जिस ढग से व सिद्ध करत हैं वह कार्टेजियन तक प्रणाली की याद दिलाती है। यदि हम अमुक वस्तु के अस्तित्व के प्रति सदहशील है तो हमारा वह सदेह भी अस्तित्वमान् हो जाता है। इस प्रकार हमारा सदह करने का प्रयत्न अपन आपको ही पराजित करने वाला सिद्ध होता है। इस तरह यह कुछ अमुक *गुणो स युक्त होनी चाहिए क्योकि गुणहीन वस्तु मात्र एक खोखली* मत्ताहीनता क अतिरिक्त कुछ भी नही और शून्य म और उसम कोई भद नही है। इस प्रकार हम यह निष्कष निकाल सकत हैं कि अमुक वस्तु न केवल अस्तित्वमान है अपितु गुणो स युक्त भी है। और इमस यह भी निष्कष निकलता है कि यह अमुक वस्तु चू कि अय सभी वस्तुओ के सभी गुणो को अपन म धारण नही करती इसलिये निश्चय ही इस वस्तु स बाहर कुछ ऐसे गुण भी हैं जो इस अमुक वस्तु म नही हैं–क्योकि एक विशष गुण उसम नही है–। उदाहरणाथ यदि कहा जाए कि अमुक वस्तु एक वर्गाकार है तो निश्चय ही एक त्रिकोण नही है। इस प्रकार अमुक वस्तु क विषय म कुछ भी कह कर हम उसम नय गुणो की हमारे इस कथन के साथ ही स्थापना करत है। क्योकि त्रिकोणात्मक न होने का मतलब अ–त्रिकोणात्मक होना है, अर्थात् यदि किसी वस्तु म कोई गुण नही है तो उसम उन गुणो का अभाव होना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक अस्तित्वमान् वस्तु म बहुत से गुण होने चाहिए–इस असदिग्ध तथ्य क साथ किसी वस्तु के होने का अथ ही उसम आवश्यक रूप से गुणो का होना ही है। *(यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मेक्टेगट न गुण शब्द का प्रयोग* व्यापक सदभ म किया है) अत् अस्तित्वमान एव बहुत से गुणो स युक्त होना, य तीनो अवस्थाए ही मूलत अपने आप म सभी गुणो को समाहित कर सकती हैं।

कोई वस्तु सगुण है यही तथ्य उसके अस्तित्व की प्रकृति पर काफी प्रकाश डालता है। यदि इसम कुछ गुण हैं तो निश्चय ही उन गुणो का धारण करने वाली कोई अवस्था होनी चाहिए जसे कि कोई तत्व वही है जिसे मेक्टेगट के शब्दो म सगुणात्मक रूप से वर्णित किया जा सके जसे छोक ताश के खिलाडी लाल बोलो वाले आकडीकन पशुओ की जाति य प्रत्येक एक तत्व है। लेकिन इससे आगे इनमे एक से अधिक तत्व रहन चाहिए और यह मक्टेगट का अनेकतावाद की तरफ जाता हुआ कदम है। इस बार फिर उनका तक अपने आकार म कार्टेसियन है। यदि हम इस बात पर सन्देह करेंगे कि वस्तु म एक स अधिक तत्त्व कैसे हैं तो हमारे सदेह की इस क्रिया म ही कम स कम दो तत्वो की सत्ता सिद्ध हो ही जाती है। एक सदेह करने वाला तथा दूसरा जिसके विषय म सदह किया गया है। इस प्रकार हमारा सदह *अपने को ही पराजित करने वाला ह।*

इसके साथ जो एक नकारात्मक बात मिद्ध की जा सकता है वह यह है कि ऐसा कोई ससार नही है जिसे हम अनुभव द्वारा निर्मित कर–और वह हमारी आधिभौतिक (तत्ववादी) आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है । इस प्रकार प्रकृतिवादियो के द्वारा वर्णित विश्व कभी भी सत्य नही हो सकता ।

इस तरह की ही विचारधारा मे से जिससे उनकी पुस्तक का दूसरा भाग भरा पडा है समय की सत्यता पर उनके द्वारा किया किया गया प्रहार सर्वाधिक चर्चित हुआ है ।[1] यह विचार 1908 म सब प्रथम माइण्ड नामक पत्र मे प्रकाशित हुआ था किन्तु अब तो उसका एकत्वतत्ववादी सिद्धान्त के रूप म भी पूर्ण विकास हो चुका है । और यह उनकी सामान्य विचारधारा के प्रतिनिधित्व के लिए एक विशिष्ट उदाहरण के रूप म लिया जाता रहा है । सामान्य रूप से हम जिसे सामयिक कहते हैं उसकी दो शृखलाएँ हैं । पहली शृखला है जिसे सुविधा के लिए अ नाम दिया जा सकता है, के अन्तगत घटनाए अपना स्थान भूत वतमान या भविष्य म कही न कही रखती ही हैं । दूसरी शृखला जिसे ब की सज्ञा दी जा सकती है घटनाए कवल पहले या पीछे का एक क्रम रखती है । समय के कल्प के लिए अशृखला अ निवाय है । क्यो कि जब इन घटनाओ को समय क्रम म वर्णित करते है तो हम कवल यही नही कहते कि उनके पहले और पीछे की अवस्थाए दो रही हैं । हम यहा पर वतमान भूत और भविष्य के किसी भी निश्चत क्रम घटित होने के लिए उसका विशिष्ट स्थान खोज रह होते है । यह अन्तत इस सत्य को उद्घाटित करता है कि समय परिवतनशील है जिसका ब शृखला से कोई ताल्लुक ही नही है । रोम का पतन सदव ही जनजागरण काल से पहले हुआ था और वह रहेगा ही । यहाँ कोई परिवतन नही है, यह परिवतन उस समय दिखाई देता है जब हम यह मानें कि पुनजागरण का काल कभी था और अब नही है । अर्थात उसी समय इसकी महत्ता है जब हम अ शृखला को नष्ट करदें तो समय और परिवतन उसके साथ ही विलुप्त हो जाएग ।

इसके बावजूद भी मक्टेगट का कथन है कि व अ शृखला की असत्यता को और भी कई तरह स साबित कर सकते है । उनके कथनानुसार भूत वतमान और भविष्य अपन आपमें असम्बद्ध स्थितिया हैं । और अ शृखला फिर भी आवश्यक रूप से प्रत्येक कडी को जोडने की कोशिश करती है । स्पष्टत यह बात तो सभी को दिखाई देती है कि चू कि घटनाए एक दूसर के बाद घटती है इसलिए कोई विरोधास्पद बात सोचने का कारण है ही नही । वे भूत मे रही हैं वतमान म हैं और भविष्य म होगी ही लकिन इन सबका अथ यही हुआ कि घटना के घटित होने के लिए इन तथाकथित अवस्थाओ के बीच एक क्षण होना जरूरी है जिसमे वह घटती हैं । इसके वतमान

1 द्रष्टव्य पी मारहेंकी कृत मेक्टेगट स एनोलीसस आफ टाइम (कलिफोर्निया पब्लिकेशस इन फिलोसाफी 1935)

होने और भविष्य मे आने के भी क्षण बने हैं। अर्थात् यह स्वय ही भूत और वतमान है और भविष्य भी। इस प्रकार हमारी मूल समस्या फिर आ खडी होती है और जो भी हल हम प्रस्तुत करेंगे उसी वक्त वह फिर उठ खडी होगी। घटना के सम्बन्ध के भूत भविष्य और वतमान का कल्प ही एक विरोधास्पद स्थिति खडी कर देता है जिसका कोई हल नही है इसलिए विरोधास्पद होने से समय सत्य नही हो सकता।

किन्तु मेक्टेगट महोदय हमे यह पूछने की छूट फिर भी देते हैं कि वह आखिर क्या है जो समय की तरह लगता है? समय की विशेष प्रकार की शृंखला के बारे मे हमारी गलत धारणा है। इसमे हमारी दृष्टि अथवा पयवेक्षण मे एक प्रकार का क्रम-सम्बन्धी आग्रह हो जाता है। और तब पहले का प्रत्येक पयवेक्षण इस क्रम मे जुडता चला जाता है। (इस सुविधाजनक धारणा पर जिसे हम अभी तक देखते आये हैं उसे, और जिसे आगे के क्षण मे भी यदि वसा ही देख सके तो उसे भी, हम वतमान कहते हैं।) इस प्रकार मक्टेगट यह बताना चाहते हैं कि जिसे हमने समय का आभास माना था वह पयवेक्षणो के सम्बन्धो को एक क्रम मे बदल जाता है।

इस प्रकार के तक द्वारा, बल्कि उससे अधिक ठोस रूप से, मेक्टेगट यह बताने का प्रयास करते हैं कि पदाथ भी असत्य है। वास्तव मे तो आत्म तत्वो के अतिरिक्त कुछ भी है ही नहीं जो कि परस्पर एक दूसरे को देखती हैं और जिसे देखते हैं। वह उनके प्रेम के कारण है और यही प्रेम अपने आवम परिपूण एव परस्पर की सच्ची समझ पर आधारित है। सत्य को गलत समझ लेने से ही प्रत्येक प्रकार की मानसिक अवस्था समय और पदार्थों की उलझन मे खो जाती हैं। यदि वह निष्कप विरोधाभासी है तो मेक्टेगट की समझ मे कोई अन्य इसका विकल्प दिखता ही नही। कोई भी दशन अभी तक विरोधाभास को दूर कर सकने मे सफल नही हुआ है क्योंकि किसी भी दशन ने इस सृष्टि को जसा वह दिखती है वसा ही मान लेने मे ही सन्तोष प्राप्त नही किया है। केवल जिस एक ही विरोधाभास से हमे बचना चाहिए वह है स्वभञ्जक विचार प्रणाली। और इस अथ मे तत्त्ववाद (आधिभौतिकी) विरोधाभासी नही है। लोकबुद्धि ही विरोधाभासी है।

यदि केम्ब्रिज को बेवाजबी तौर पर प्रोत्साहन मिला या उसे बेवाजबी तौर पर निरुत्साहित किया गया तो सामान्य विवेक की यही माग है कि मेक्टेगट को उसे स्मरण रखने देना ही होगा।

जेम्स वाड[1] भी केंब्रिज की ही उपज थे। और ये ऑक्सफोड की परमात्मवादी धारणा के प्रति विद्रोही भी थे। अबतक जिसको वास्तव मे अन्य केम्ब्रिज वालो से भी

---

1 द्रष्टव्य उनकी पुत्री श्रो० डब्लू केम्पबेल की स्मारिका, उनके ऐसेज इन फिलासफी की भूमिका के रूप मे मरणोपरान्त मुद्रित। ए०एच० मरे द फिलासफी

समथन प्राप्त नही हुआ। इसके अलावा भी केम्ब्रिज क तथा ओक्सफड के दार्शनिको म बहुत कम साम्य है। मक्टेगट न या तो विज्ञान का अनदेखा कर दिया या फिर विज्ञान के प्रति उनकी घृणा ही थी। वाड एक पक्के लाज-वादी थ और लाज ने विज्ञान को दशन का एक अविभाज्य अ ग मान लिया था। मक्टगट का धम अपनी तरह का एक ही था। उसम क्रिश्चयन धम का निश्चय ही लेश भी नही था। वाड पहल पहल एक पादरी थे और क्रिश्चियन अध्यात्म म आस्था रखन वाले ता अन्त तक रहे। तो मक्टेगट दाशनिको क दाशनिक थ यदि यह माना जाय कि कोई ऐसा हा सकता है। वाड की रचनाए इसक विपरीत, लोकप्रिय रूचि की है और ऐस आध्यात्मिका एव वज्ञानिको के लिए भी हैं जिनका दशन की ओर झुकाव है।

जहाँ तक मक्टेगट का सवाल है व मूल रूप म अपनी विचार धारा का प्रवतन करते हैं जब कि वाड दाशनिक महत्व के मामला के सबध म अपना क्या मतव्य है यही निश्चय करन म व्यस्त दिखाई दत हैं। यह बात स्पष्ट ह कि भिन्नता एव परमात्मत्व तथा वयक्तिकता एव ईश्वर क लिए उन्होने कही न कही काई जगह छोड दी है। एक प्रणाली के रूप म इन सभी का कोई समन्वय कर पा सकन और इस अवस्था स अनुस्यूत मांग का निराकरण करने का काई इरादा भी उनका दिखाई नही देता।

मनोविज्ञान पर सवप्रथम उन्होन एक मनोवज्ञानिक के रूप म प्रसिद्धि प्राप्त की और यह प्रसिद्धि उन्हें अपने द्वारा **एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका**' (1886) म लिखे गए निबध म मिली थी[1]। इनके इस लेख ने ब्रितानी सहचर्यवादी परम्परा को गहरा धक्का पहुचाया। सहचर्यवादी सिद्धान्त के अनुसार मन विचारो का आकलन मात्र है–और ज्ञान की वृद्धि तथा विकास भी इन विचारो को सहचर्य वादी ढग स युक्त कर लन म ही तथा उन्हें व्यापक पूण मे बाट लेने पर ही सभव माना है। इस सिद्धात म सम्पूण प्रक्रिया की बुनावट आणविक भौतिकी की समता पर की गई है। विचार अ गुओ की भाति एक दूसरो को आकर्षित विकर्षित करत रहते हैं। इसके विपरीत वाड मन की अवस्थाओ को एक जीवशास्त्री के ढग से पकडते है। व कहते हैं मन सक्रिय है–इच्छालु है अनुभव–सवेगो का निर्जीव अ कन ही न होकर प्रयोग पर प्रयोग करते हुए अधिक सिद्ध होन की प्रक्रिया है।

आफ जेम्स वाड (१९३७) ड दु० आर० सोर्ली **जेम्स वाड**, जी०डी० हिक्स **द फिलासफी आफ जेम्स वाड** उनके द मोनिस्ट म प्रकाशित वाड पर लेख। वाड एक सुशिक्षक तथा ऊच व्यक्तित्व वाल थे उनक शिष्य उनकी बहुत प्रशसा करते हैं, वे शिष्य भी जा उनके दाशनिक सिद्धान्ता के अनुयायी नहीं हैं जसे जी०ई० मूर।

1 दाशनिको क लिए वाड का मनोविज्ञान अधिक आकषक साबित हुआ है बजाय उसक परवर्ती दशनिको के। एफ० आर० टेनेन **फिलासाफिकल थियोलाजी**

अनुभव का यह सिद्धात, और भौतिकवादी ढग स दशन की समस्याओ का निरूपण करने के प्रति यह आलोचनात्मक मार्ग उन्हें मान मनोवानिक क्षेत्र म खीच कर तत्ववाद क क्षेत्र तक ल आया है।[2] उनके अनुसार डेकाट न यह मौतिकहकर बडी भारी गलती की थी कि मौनकी हम यह बतना सकती है कि यह ससार वास्तव म किस प्रकार का है और चू कि एक भौतिकशास्त्री के लिय यह ससार मात्र अणुओ सचलन सकलन ही है इसलिए उसका वणन हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी के अनुभवो स बिलकुल मेल नही खाता। और यही कारण है कि डेकाट को द्वद्व को स्वीकार करना पडा। द्वतवादी परम्परा और डेकाट की विचारधारा दोनो म ही विश्व को दो भागो म विभक्त किया गया है। एक बाहरी या भौतिक जगत, जिसका ससार भौतिकी म दिखाई गयी अवस्थाओ के अनुरूप नियन्त्रित ढग से होता है और दूसरा आन्तरिक या आत्मिक जगत् जिसकी गुणात्मक भिन्नता नतिकता धम और कलाओ का जन्म दती है। इस प्रकार की विचारधारा के कारण इस अदम्य कठिनाई का अनुभव एक दार्शनिक को करना पडता है। य दोनो मूलत भिन्न जगत् एक दूसरे से सबधित हो जायेंगे। उदाहरणाथ किस प्रकार हमारा मास का लोथडा हमार चेतन मन स जुडेगा? इस कठिनाई का हल प्रस्तुत करने के उत्तर म कार्टेजियन दार्शनिकों को यह निष्कष ल लना पडा कि उपयु क्त प्रकार के जगतो म से केवल एक ही सत्य है। दूसरा मात्र उसका दिखावा है—उससे सहज उत्पन्न कोई स्थिति है। कुछ तो यहा तक भी सोचने लग कि दोनो पूर्ण सत्य नही हैं क्योंकि दोनो ही परमात्म की माया हैं।

(2 भाग, 1928 30) क लिए इसने नीव का काम दिया है। हेगल के अनुसरण मे ब्रेडले ने दशन क स्थान पर एसोसियशनिस्ट मनोविज्ञान की स्थापना का खडन किया था पर आश्चय है कि मनोविज्ञान के क्षेत्र म वे एसोसियशनिस्ट परम्परा के पृष्ठपोषक लगते हैं। ब्रेडले ने वाड की मनोवैज्ञानिक उद्भावनाओ की इस आधार पर आलोचना की थी कि वे दशन और मन शास्त्र का साक्य पदा करती है। वाड की सहचर्यवादी समीक्षा की परम्परा का निर्वाह जी० एफ० स्टाउट न उनकी एनेलीटिक साइकोलॉजी (1896) म किया है। साथ ही देखें, जी० डी० हिक्स का प्रो० वाडस् साइकोलोजिकल प्रिंसिपल्स (माइण्ड म 1921)। जी० एफ० स्टाउट का वाड एज ए साइकोलाजिस्ट (मोनिस्ट म 1926 तथा स्टडीज म)

2 ब्रेडले ने विशेषकर वाड के क्रियाशीलता पर बल देन पर आक्षेप किया ह। इन दोनो के विरोध के लिए द्रष्टव्य एपीयरेंस एण्ड रियालिटी की वाड कृत समीक्षा तथा ब्रेडल का उत्तर (माइड 1894)। साथ ही द्रष्टव्य इ० ई० सी० जोन्स कृत वाडस रेपयूटेशन आव डयूआलिज्म तथा ए० ई० टेलर का वाडस नेचर लिज्म एण्ड एग्नॉस्टिसिज्म (माइड मे 1900)

वाड दूसरा माग ही अपनाते हैं उनके अनुसार भौतिकी अमूर्तीकरण का आवलन मात्र है। अणु और उसी प्रकार के तत्ववत्तानिको क मस्तिष्क की देन है। अपने आप म ठोस सत्ताएँ नही। भौतिकशास्त्रियो के लिए यह मुश्किल इसीलिए आती है कि व पदार्थों का एक मात्र सत्ताओ के रूप म अध्ययन व वणन करते हैं और मन से जोडने की भी कोशिश नही करते। प्रकृतिवाद इस प्रकार के अमूर्तीकरण को अतिम रूप स स्वीकार कर लेता है। इस तरह 1899 म लिखी वाड की पुस्तक **नेचरलिज्म एण्ड एग्नास्टिसिम** के अनुसार प्रकृतिवाद अमूत स्थितिया एव सत्यो मे घोल मल कर देता है-और यहा भौतिकी को ही तत्ववाद (आधि भौतिकी) मान लिया जाता है।

यदि हमे सत्य क भौतिक रूप का दशन करना है तो हम और भौतिकी की ओर नही इतिहास की ओर जाना होगा। ऐतिहासिक खोजबीन म इससे जो भिन्नता है वह यह है कि वहा व्यक्ति को सक्रिय प्रयत्नशील और बाह्य जगत स निरतर सघप करती सत्ता के रूप म देखा गया है। और वहा पर उसे अपना विकास तथा रक्षा स्वय करने वाली सत्ता क रूप म भी देखा गया है। 1905 म **हूबट जरनल** म प्रकाशित अपने एक शोध निबध **मिकनिज्म एण्ड मोरल्स** म उन्होंने लिखा कि इतिहास तथ्यो का हमार व्यक्तियो को उनक उद्देश्यो को उनके उत्थान पतन को व्यक्त करता है और य सारी ऐसी स्थितिया हैं जिन्हें तात्रिक जगत मे कोई स्थान नही। इतिहास म कर्ता से कम की ओर जाते समय कोइ झूठा अमूर्तीकरण नही होता। इतिहासकार का तो कथ्य ही मनुष्य को अपनी परि स्थितियो के बीच देखना है और यही हमारे दनिक अनुभवो की ठोस सच्चाई है।[1]

जिस क्षण हम व्यक्ति और परिस्थिति की यह इकाई देख लेते हैं और उसे अपने विवेचन के आरम्भ म स्वीकार लेते हैं तो हम मन और पदाथ के बीच किसी निरतरता के टूटने का भी भान नही होगा। भौतिकवादी कुछ अश तक तो उस स्वीकारते हैं किन्तु य लोग मनुष्य के सघप एव मूल्याकन करते हुए व्यक्ति की सत्ता को कोई महत्व नही देते—जबकि व्यक्ति को समझने के लिए हमे भौतिकवादियो द्वारा छोड दी गई सोद्देश्यता की स्थिति को फिर स्वीकारना पडेगा। किन्तु यदि हम यह मानें कि परिस्थितिया स्वय भी सोद्देश्य है तो सारे झगडे ही समाप्त हो जायेंगे।

1 इतिहास तथा भौतिकी के भेद पर बल दना डब्लू० विडलबड (**हिस्ट्री एण्ड नेचरल साइन्स** 1894) तथा आर० रिकेट (**कल्चरल एण्ड द नेचरल सायसेज** 1899) जसे लात्से के परवर्ती जमन दाशनिको के विचारो स काफी साम्य रखता है। वाड पुन देकात परपरा क विरुद्ध विद्रोह करता है देकात इस आधार पर इतिहास को हेय बतलाता था (**डिस्कोस आन मेथड मे**) कि जो वास्तव म है उसका यह स्वभावत बडा एकपक्षीय तथा अपर्याप्त चित्र ही प्रस्तुत करता है।

इसके कारण ही हम यह समझ सकेंगे म यथा तो वतई नही वि किस प्रकार परिस्थितियो म से हमारा मन अपने विचारो का पूण कर लने का अवसर खोज निकालता है। लकिन तब शीघ्र ही वाड यह कहते हैं कि इसका यह मतलब नही कि वज्ञानिक सिद्धान्तो को छोड ही दिया जाए। हम यही देखना है कि किसी निष्कप पर पहुचन के लिए बनाया गया सिद्धान्त भी हमारे ही मन की तो उपज है—और वह भी हमार परिस्थितियो के प्रति, सजग होन को ही सिद्ध करता है। मनुष्य जिस समुदाय का अग है, उसम जस सिद्धान्त बनते हैं विज्ञान व नियम भी उन्ही क अनुरूप हैं।

अभी तक तो ऐसा लगता है जसे वाड की विचारधारा व्यक्तित्ववादी आदशवाद का ही, जीव विज्ञान के पुट के साथ, नया रूपान्तरण है। अब हम उनसे इस आशय के कथन की भी अपेक्षा करते हैं कि सत्य सहयोगी एव सघष शील सता की बहुलता म ही निहित है। उनके दशन का समसामयिक विचारको ने भी अधिकाशत इसी प्रकार का अथ लगाया है। यद्यपि यह सत्य है कि वाड हावीसन की विचारधारा स बहुत प्रभावित थ तथापि व बहुलवादी नही थ। वे इस बात की स्वय भी घोषणा करते रहे थे। सन् 1911 म प्रकाशित उनकी कृति द रेल्म आफ एण्ड्स यद्यपि बहुलवादी दशन पर एक सहानुभूतिपूण टीका है तो भी इसका 'निष्कष यही है कि" बहुलवाद अपने आप म पर्याप्त नही है।" बहुलवादियो का सम्पूर्ण अनुभवो का पूर्णत्व तो है लेकिन सम्पूर्ण अनुभव नही है। प्राणिमात्र का पूर्णत्व है किन्तु एक जीवन्त पूर्णत्व नही, सत्ता का पूर्णत्व है लेकिन सम्पूर्ण एव निष्कलक सत्ता नही। केवल ईश्वर ही इस बहुलता को एक समष्टि म बदल सकता है। लकिन उनके पास ईश्वर क अस्तित्व का कोई प्रमाण नही है। अपनी बहुत सी रचनाओ म जहा पर व अध्यात्म पर चर्चा करत निकलत हैं, स्पष्टत उन्हें एक उपदेशक के रूप म ही अधिक देखा जा सकता है। दाशनिक के रूप म नही। और यही कारण है कि उनके दशन को व्यक्तित्वमूलक की सज्ञा दी जाती रही है।[1]

---

1 तुलना कीजिए डा० राधाकृष्णन् द रेनआव रिलीजन इन कटम्परेरी फिलासफी (1920)। इसम वाड के ईश्वरवाद ने किस दूरी तक उसे एक बात की ओर भटका दिया इसका पूरा विवेचन है। यह ध्यान देने की बात है कि जिन बहुलवादियो की इस अध्याय म बात की गई है वे सभी आत्माओ की बहुलता का अपन आप म एकीभूत प्रणाली को जन्म दने वाली चीज मानत हैं। इस प्रकार वे अपन आपको इस आलोचना का पात्र बना देते हैं कि व अन्तत एक ही सत्य अर्थात् प्रणाली के अस्तित्व का समथन ही करते है। उनके दशनो म खीचतान इसी कारण है कि व प्रणाली की एकता तथा उसके विभिन्न तत्वों की विभिन्नता म सगति बिठाने का प्रयत्न करते रहते है। वाड के अभिप्रायों या अन्दाज उनके विलियम

व्यक्तित्वमूलक आदशवाद की दमज टीकाम्रो स असतुष्ट होने के कारण ब्रितानी दशन न योरोप की अन्य विचारधाराम्रा का आयात किया। बर्नाडिनो की स्पष्टत वाड जसी विचारधारा—इनके द्वारा प्रदत्त आई मेसिकी प्रोब्लमो (1910)' के विचार का 1914 मे **द ग्रेट प्रोब्लेम** के नाम स अग्रेजी अनुवाद भी हुआ और उसका प्रभाव भी काफी पडा था। रूडाल्फ यूकन की विचारधारा के प्रति ता और भी ज्यादा उत्साह यहा देखने को मिल रहा है क्योकि उसकी प्राय सभी रचनाम्रा का अग्रेजी अनुवाद हो गया।

यूकन की रचनाम्रो म आदशवाद खुल रूप स आध्यात्मिक पुनरावतन की एक नइ विधा म रूपान्तरित हो गया है। 1912 म प्रकाशित अपनी पुस्तक **द मेन करेण्टस आव माडन थोट** के अग्रेजी सस्करण के आमुख म उन्हाने लिखा है कि इस कृति का प्रथम लक्ष्य यह है कि वतमान समय म बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर जो *उलझन पदा होगई है उस पर प्रतिक्रिया जाहिर करना—यह उलझन केवल* सिद्धान्तो से ठीक नही हो सकती। यूकन तो एक नये प्रकार के आत्मिक जीवन की खोज कर रहे थ। ऐसा आत्मिक जीवन जा आत्मनिभर हो। स्वय सत्य का उद्घाटन कर सकता हो। यह एक ऐसा जीवन है जिसस मानवी जगत की सामान्य क्रियाए कोसा दूर हैं, फिर भी इसे एक महान् लक्ष्य मानकर इस तक पहुचने म मानवी जीवन सक्रिय तो है ही।

इस प्रकार की घोषणा म हीगल के आदशवाद की गन्ध आती है। जबकि सत्य यह है कि यूकन की आत्मिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा उम अथ म कोई दशन नही हैं जिस अथ मे ब्रेडले एव हीगल किसी विचारधारा को दशन मानते थ। बर्नाड बासाके द्वारा यह तथ्य उस समय प्रकट हुआ था जब उन्हाने पौराणिक आदशवाद का बचाव व्यक्तिगत अटकलपच्चियो के विरुद्ध किया था। 1914 ई० म उन्हाने **क्वाटरली रिव्यू** म लिखा है—

यूकन की प्रबल साहित्यिक कृतिया को दरअसल किसी भी भाति विचार विज्ञान को गभीर योगदान की सज्ञा से विभूषित नही किया जा सकता। उनके वास्ते नतिक बल स्वच्छन्द ज्ञानोपलब्धि से कही अधिक महत्व का हागया है।"

जेम्स को 1899 म लिखे गये पत्र स जो आर० डी० परी कृत **द थाटस एण्ड करेक्टर आव विलियम जेम्स** (1936) मे छपा था लगाया जा सकता है।

1 टिप्पणियो के लिए द्रष्टव्य डब्लू० आर० बोयस गिबसन कृत **रूडोल्फ यूकन्स फिलोसोफी आफ लाइफ**, एम० बूथ कृत **यूडोल्फ यूकन, हिज फिलोसोफी एड इन्फ्लुएन्स** (1913) डब्लू० ट्यूडर जोन्स कृत **एन इटरमिटेशन आफ यूकन्स फिलोसोफी** (1912) जिसे स्पोतोजी मे

बोसाके पराजित युद्ध को फिर स लड रहे थ । दार्शनिक परम्परा मे सुकरात के समय स ही जिन दो धागा स एक सी बुनावट की गई है–उनम पहला है विश्लपण का धागा जिसका उदाहरण प्लटो के वातालाप म यूथाइफ्रो नामक ग्रथ म देखा जा सकता है। इनम दूसरा है नतिक धार्मिकता का धागा जिसे अपोलोजी म दखा जा सकता है। किन्तु तत्कालीन दशन प्रणाली म इन दोना का निर्वाह किया जाना बन्द हो गया था। सुकरात ने इन दोना का एक साथ निर्वाह इसलिए भी किया था कि उनकी विचारधारा म अच्छाई को ही ज्ञान माना गया हैं। केवल दार्शनिक ही जान सकता है कि सवश्रेष्ठ जीवन जीना कसा होता है और इस ज्ञान क बिना कोई भी भलीभाति रह नही सकता। किन्तु नव आदशवादिया के लिए जिन्दगी तक से कही बडी है और अच्छाई के साथ ज्ञान का तादाम्य मात्र कर देना केवल शुद्ध बौद्धिकता के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार यूकन की रचनाम्रा का उद्देश्य यह दिखाना है कि जीवन का उदात्तीकरण ही दशन का जन्मदाता है और इस प्रकार की प्रक्रिया म परम्परागत दार्शनिक विश्लेषण और शोध प्रणाली का कोई स्थान नही है। दूसरी ओर ब्रितानी युवक विचारक यह दावा करने लगे थे कि दशन विश्लेषण प्रणाली के अतिरिक्त और कुछ भी नही। दार्शनिक का कोई व्यवसाय नही है और वह केवल निजी तौर पर एक प्रकार का जीवन चुन कर नागरिक होन क अपन अधिकारो का ही उपयोग करता है। परिणामत दशन के क्षेत्र म दरारें पड गई थी और बोसाके न इस अवस्था को भली प्रकार देख लिया था।

बोसाके एक अत्यन्त मेधावी दार्शनिक थे।[1] य उन थोडे से ब्रितानी दार्शनिको म से एक हैं जिन्होन सौन्दयशास्त्र पर गभीरतापूवक मनन किया। उनके द्वारा लिखी *हिस्ट्री आफ एस्थेटिक्स* (1892) आज भी स्तरीय रचनाम्रा म अपना स्थान रखती है। राजनीतिक एव सामाजिक सिद्धान्तो पर उनका व्यापक प्रभाव रहा है। उनके द्वारा लिखी गई ठोस कृतिया समसामयिक दशन म अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। कोई भी मानवीय तत्व उनसे अछूता नही रहा था। अपने साथी

1 उनका दार्शनिक जीवन 1883 स शुरू हुआ जब उन्होंने ऐसेज इन फिलोसाफिकल क्रिटिसिज्म म लिखना शुरू किया। यह तब तक चला जब उन्होने 1923 म अपने जीवन व दशन पर कटेंपरेरी ब्रिटिश फिलासफी के लिये लेख लिखा। देखो जे० एच० म्योरहैड बनड बोसांके एण्ड हिज फ्रेंडस (1924) जिसमे उनके पत्र भी हैं। हेलन बोसाके कृत बनड बोसांके ए शाट अकाउन्ट आफ हिज लाइफ (1924), जे० एच० म्योरहैड का बनड बोसांके (माइण्ड म 1923), एच० विल्डन कार का इन मेमोरियम बनड बोसाके, ए० सी० ब्रेडले व लाड हाल्डेन का बनड बोसाके (प्रो० ब्रि० ए० 1923)

दाशनिको पर भी उन्होने मुक्तहस्त से लिखा। इसके बावजूद भी उनकी बहुमुखी बौद्धिकता उन्ह अन्य लोगो की तरह मठवादी नही बनने देती और न ही युक्ति युक्तता के प्रति उनकी धारणा म कोई अन्तर आने देती। व ब्रैडल की अपेक्षा निश्चय ही कम प्रबल विचारक हैं—समन्वय के प्रति उनके उत्साह के कारण प्राय उनके द्वारा अपने विरोधियो को भी कुछ असमाव्य छूट दी गई है। अच्छा जीवन जीने के लिए उनका उत्साह कभी-कभी तक और युक्ति से परे उन्ह भावावेश म बहा ले जाता है लेकिन तो भी इनके अन्दर उच्चस्तर आत्मिक सत्यान्वेषण के माग म युक्ति का आश्रय छोड देना उनका उद्दिष्ट कतई नही था।

उनकी सबसे पहली रचनाओ म जो आदशवादी तकप्रणाली के हित म एक ठोस योगदान थी। लोजिक आर द मोरफोलोजी आफ नोलेज (1888) महत्वपूण कृति थी और इस प्रकार की युक्तियुक्तता के प्रति 1920 म फिर उनकी रुचि हुई जब उन्होने इम्प्लीकेशन्स एण्ड लीनियर इनफरेन्स नामक पुस्तक लिखी। 1912 म प्रकाशित उनकी पुस्तक द प्रिंसिपल आव इन्डीविजुएलिटी जो उनकी तत्व मीमासा की प्रमुख रचना मानी जाती है उसमे भी तक प्रणाली का काफी जोर दिखाई देता है। बोसाके का कथन था कि तक प्रणाली के जो आदशवादी विरोधी हैं वे दर असल तक क्या है इसीसे परिचित नही। वाड का उदाहरण देते हुए उन्होने कहा कि ऐसे व्यक्तियो के लिए तार्किक विचार प्रणाली जीवन की खोखली अमूतता पर काम करने की प्रक्रिया है और उसमे हम जीवन के ठोस धरातल से हट कर सामान्य सूत्रों की जटिलता म उलझ जाना पडता है। इस तरह से हम कभी भी दनिक जीवन की बहुमुखी गरिमा पर सोच पाने म असमथ हो जाते है। तक के इस रूप पर ही विचार करने से तार्किक लक्ष्य के रूप मे हमारे सामने ठोस धरातल न रहकर अमूत धरातल ही रह जायगा।[1] बोसाके की समझ म तक जीवन को पूणता से समझने का प्रयास है क्योकि सत्य स्वय पूण है। तार्किक दृष्टि से सोचने का मतलब खण्ड खण्ड से चलते हुए एक ऐसी प्रणाली तक पहुचना है जिसम हमारे खण्ड अनुभव उसके क्रम म जुडे रहे और दूसरे अनुभवो के सहयोग से पूणता तक पहुचते-पहुचते पहल स भी अधिक सम्पन्न हो सकें।

बोसाके के मतानुसार हम किसी अनुभव को पहली बार उसी समय समझत है जब हम उसे किसी परिचित प्रणाली के अग के रूप म देखते हैं अथवा उस समय भी समझ सकते हैं जब उस अनुभव म कोई परिचित प्रणाली हमे दृष्टिगत हो आए। तक भी हम इसी प्रकार का बोध देता है।

---

1 कान्क्रीट यूनिवसल के विवचन हेतु इसी पुस्तक का तीसरा अध्याय देख, बोसाके के तक के लिए अध्याय 7 देखें। साथ ही देखें, जो० एच० सबाइन का बोसाकेज लाजिक एण्ड कान्क्रीट यूनिवसल (फिला० रिव्यू 1912)

इस प्रकार तक सम्पूर्णता की आत्मा है। और अपने इसी रूप म वह सत्य मूल्यशोध एव स्वतन्त्रता की कुजी भी है। बडे विचार, महान् चरित्र तथा कला की महान् रचनाए अपनी तार्किक क्षमता ही पर शक्तिशाली मानी जाती हैं। उनकी यह क्षमता सम्पूर्णत्व के साथ मल वठान म ही निहित होती है। इस तरह मूर्खता-पूर्ण बनावटीपन क उदाहरणो म स जो सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है वह ह तक विरोधी भावना।

मूलत बोसाके यहा पर ब्रेडले की तत्वमीमासा का स्वीकारते हुए लगत है। फिर भी दाना म कुछ अ तर है ही। ब्रेडले की शक्ति परमात्म-सिद्धि की ओर लगती थी जबकि बोसाक की कला विज्ञान तथा समुदाया की ओर। यदि तत्व-मीमासा विषयक कोई प्रश्न बोसाके क समक्ष उठे तो व निस्सदह यही कहग कि सभी को एकत्व म समटता हुआ, कोइ परमात्म विद्यमान नही है। ब्रेडले के इस कथन का कि यह ससार परमात्म का दिखावा मात्र है बोसाक इस प्रकार स रूपा तरित करके मजाक उडाते हैं-, हाँ, परमात्मभाव का यह भूठा दिखावा मात्र ही तो है। उ होने लिखा कि किसी भी विशिष्ट प्रकार क व्यक्ति के दनिक जीवन का सतक विश्लषण ही परमात्म भाव के लिए अपेक्षित किसी भी सिद्धा त को सफलतापूवक स्थापित कर सकता है। यह हम यह ज्ञान दगा कि किस प्रकार हम अपने जीवन म बुराई का भलाई म बदलते रह सकते है। और उसी जीवन म हम यह देख सकत हैं कि अपन इस सिद्धा त के पालन के लिए किसी व्यक्ति ने किस प्रकार सघष को सुखमय बरक स्वीकार लिया है। पीडाओ को प्रेम से रूपा तरित करके और कठिनाइया को साहस से रूपान्तरित करके इस बात की सिद्धि की है कि मनुष्य मूलत किस धातु का बना है। इसक अतिरिक्त यह तो हमारे यक्तित्व का अत्य त महत्वपूर्ण अश हैं कि हम सहज ही उन अपन से गहरे और उदात्त व्यक्तित्वा को अपन अन्दर उतारन का प्रयास करने लग जाते ह।

ये गहन और व्यापक अनुभव जा कला विज्ञान, धम एव सामाजिक आदान प्रदानो म प्रकटते हैं जिसकी परिभाषा बोसाके ने 'अच्छे से तादात्म्य भाव' होने म दी है, ये ही बोसाके के अनुसार हमारे जीवन क सही मूल्य रखते हैं। बोसाके के अनुसार परमात्म भाव तक यदि कोई पहुँच है तो वह इन्ही के जरिए सभव है। बोसाके द्वारा वयक्तिकता पर दिया गया बल यदाकदा उनके सतही पाठको को भ्रम म डाल सकता है-व उनके वयक्तिकता के विश्लेषण म यह अथ लगा सकते है कि मूल्य सामा यत एक एक व्यक्ति के लिए ही है। यह व्यक्तित्वमूलक आदशवादी भी कहते रह हैं। इसम बडी गलती बोसाके के बारे म और नही हो सकती।[1]

---

1 देखें बोसाके द्वारा आयोजित गोष्ठी जिसम प्रिंगल पटीसन स्टाउट एव हाल्डेन ने भाग लिया। इसका विषय था लाइफ एण्ड फाइनिट इण्डीविजुयल्टी

बोसांक लिखते हैं कि व्यक्ति जिसमें मूल्य भी निहित है अपनी सत्ता पर खड़े होने की क्षमता से युक्त है। कोई अन्य भाव व्यक्ति नहीं हो सकता। मनुष्यों के जीवन की गहनतम तथा उदात्ततम उपलब्धि किसी एक व्यक्ति के पश्चात्तापपूर्ण अलगाव में नहीं होती। 1899 में लिखी फिलासोफिकल थ्योरी आव स्टेट के आमुख में उन्होंने ऐसा मन्तव्य व्यक्त किया है। पश्चात्तापपूर्ण अलगाव उस समय की दार्शनिक रचनाओं का एक लोकप्रिय मुहावरा बन गया था। मनुष्य की उपलब्धि उसकी अपने से बाह्य परिस्थितियों के साथ सफलतापूर्वक खड़े होने में ही है। चाहे यह उसे प्रकृति से संघर्ष में करना पड़े अथवा सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से भाग लेते वक्त। इस प्रकार के संघर्ष से अलग और इस प्रकार के भाग लेने की स्थिति से भिन्न व्यक्ति की कोई सार्थक सत्ता ही नहीं है।

पन-साइकिज्म अर्थात् सर्व मनस्तत्ववाद का विरोध करने का उनका आधार यही है। यह सब वस्तुएं ही हैं जो व्यक्तियों के लिए समस्याएं खड़ी करती हैं—और यदि आप सभी वस्तुओं को व्यक्तियों में बदल देते हैं तो जो भेद जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न करता है वह कूच कर जाता है। बोसांक ने नव-यथार्थवाद का इस सीमा तक स्वागत किया जहाँ तक कि उसमें मन में प्रस्तुत उपकरणों को मन से स्वतन्त्र सत्ता के रूप में देखा जाता है—और वे आदर्शवाद के नाम से ही नाक भौं सिकोड़ते थे क्योंकि उसमें प्रकृति को हमारे मस्तिष्क से ही उत्पन्न माना गया है। मन के शारीरिक अवयव के रूप में विकसित होने वाले सिद्धान्त से उन्हें कोई एतराज नहीं था। यही कारण था कि मक्टेगट ने 'माइण्ड' में 1912 में प्रकाशित द प्रिंसिपल आफ इण्डिवीजुएलिटी एण्ड वल्यू नामक पुस्तक की रिव्यू में यह शिकायत की है कि मन और पदार्थ के सम्बन्ध को प्रकट करने वाला जो भी शब्द डा० बोसांके ने लिखा है विशेषतः उसके सातवें अध्याय में वह किसी पूर्ण भौतिकवादी द्वारा ही लिखा जा सकता था।

यहीं बोसांक की विचारधारा एक मुश्किल खड़ी कर देती है क्योंकि वे वास्तव में एक भौतिकवादी नहीं है। अन्त में ये यह स्वीकारने को विवश हो जाते हैं कि प्रकृति किसी मन शक्ति पर आधृत है। ऐसा कैसे हो सकता है जब प्रकृति का अस्तित्व मन के अस्तित्व के लिए पूर्व आवश्यक है।[1] प्रकृति तो वरिमा (स्पेस) और समय का समष्टि रूप है—हमारी क्षणिक अभिवृत्तियों का सूक्ष्म रूप है—और स्वयंभू है। इसके साथ ही यह गुण धर्मा भी है जिसका अर्थ यही है कि उसके

(पी० ए० एस० एस० 1915) आर० ई० स्टेडमान का 1931 के माइंड में प्रकाशित निबन्ध एन एक्जामिनेशन आव बोसांकेज डाक्टिन आव सेल्फट्रांसडेंस।

1 आर० ई० स्टेडमन नेचर इन द फिलोसोफी आव बोसांके (माइण्ड 1930)।

प्राग्भाव म कोई सचेत सत्ता की स्थिति है ही-और यह सचेत सत्ता सोद्देश्य इन्द्रिय सवद तथा भावमयी है ही। इस विचारधारा के आधार पर मन ही प्रकृति म एक सम्पूर्णता की स्थिति का प्रकटाता है। उस अवस्था के बिना प्रकृति खण्ड खण्ड हो जाती है लेकिन इसके साथ ही प्रकृति के बिना मन सभी उपकरणो से शून्य है। मन एक सक्रिय सम्पूर्णता के भाव के अलावा अपने म कुछ भी नही। प्रत्येक भाव वह प्रकृति से ग्रहण करता है। व्यक्तित्व मूलक आदर्शवादी को इस सम्बन्ध म यह शिकायत थी कि यदि प्रकृति और मन दोनो इस प्रकार एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं ता फिर मन की पदार्थ पर वरिष्ठता का क्या होगा !

भौतिकवाद के सम्बन्ध म वाड उस विचारको की जो धारणाए थी, उनके एक एक अंश का बोसाके खण्डन करते है। वाड ने उद्देश्यवाद (टीलियोलोजी) को *पुन स्थापित करने का प्रयास किया था। प्राकृतिक प्रक्रियाए उस समय तक अबूझ* हैं जब तक हम यह नही मानत कि व किसी लक्ष्य की ओर जा रही हैं अथवा उनका कोई उद्देश्य है। इस तरह या तो व स्वय ही मनस्तत्व से युक्त है या उसके द्वारा निर्देशित हैं। बोसाके इस प्रकार की युक्ति स्वीकारना नही चाहते। निर्देशन की बात करना केयर्ड द्वारा प्रतिशोधित उस स्थिति की ओर लौटना है जिसमे उन्होने प्राकृतिक जगत म आदर्श की अन्त क्रियात्मक स्थिति का विरोध किया था।

वाड को लिखे एक पत्र मे उन्होने बताया है कि इस आधार पर मन और प्रकृति दो भिन्न सत्ताए लगती हैं। और उनम स एक दूसरे को निर्देशित करती हुई दिखाई गयी है। इस प्रकार का वर्णन बोसाके के अनुसार प्रकृति और मन की ठोस पूरकता के भाव को समाप्तप्राय कर देता है।

द मीनिंग आव टीलियोलोजी (उद्देश्यवाद की सार्थकता) नामक विषय पर ब्रिटिश एकेडेमी म भाषण करते हुए उन्होने नव उद्देश्यवाद की आलोचना का अधिक मुखर रूप प्रदान किया था। उन्होने कहा कि यदि मेरा इस विचारधारा का अध्ययन सही है ता तान्त्रिकता के विरुद्ध बढती हुई प्रतिक्रिया कानून एव व्यवस्था के क्षेत्र को समाप्त कर रही है और सजीव आत्माओ को प्रकृति और इतिहास का निर्देशक बनाकर उन्हे सिंहासनासीन किया जा रहा है। यदि यह सही है तो हम इतिहास और दर्शन एव धर्म की भलाई के लिए तान्त्रिकतावादियो को प्लिनाशा के व्याघ्र स पुन नियत्रित करना पडेगा नव उद्देश्यवाद स उन्होने स्पष्ट दो प्रवृत्तिया देखी थी, एक यह कि प्राकृतिक क्रियाए किसी उद्देश्य की ओर अभिमुख है तथा दूसरे कि यह ध्येयगामीयता म मूल्यवान है। इस प्रकार मूल्य अपनी सम्पूर्णता म प्राप्त होने के नाते भविष्य मुखी हो जाते हैं लेकिन एव विशिष्ट मूल्य की सार्थकता तो यहा और इसी समय होने म निहित है। आदर्श सम्पूर्णता के बोध का नाम ही है। इस सम्बन्ध म विवेकपूर्ण कहा जा सकने वाला उद्देश्यवाद इस अभिमान म निहित है कि प्रत्येक विशिष्ट

बोसाके लिखते हैं कि व्यक्ति जिसमे मूल्य भी निहित है अपनी सत्ता पर खडे होने की क्षमता से युक्त है। कोई अन्य भाव व्यक्ति नही हो सकता। मनुष्यो के जीवन की गहनतम तथा उदात्ततम उपलब्धि किसी एक व्यक्ति के पश्चात्तापपूर्ण अलगाव मे नही होती। 1899 म लिखी फिलोसोफिकल थ्योरी आव स्टेट के आमुख म उन्होने ऐसा मन्तव्य व्यक्त किया है। पश्चात्तापपूर्ण अलगाव उस समय की दाश निक रचनाओ का एक लोकप्रिय मुहावरा बन गया था। मनुष्य की उपलब्धि उसकी अपने से बाह्य परिस्थितियो के साथ सफलतापूवक खडे होने म ही है। चाहे यह उसे प्रकृति से सघष म करना पडे अथवा सामाजिक जीवन म व्यापक रूप से भाग लेते वक्त। इस प्रकार के सघष से अलग और इस प्रकार के भाग लेने की स्थिति स भिन्न व्यक्ति की कोई सार्थक सता ही नही है।

पन–साइकिज्म अर्थात् सब मनस्तत्ववाद का विरोध करने का उनका आधार यही है। यह सब वस्तुए ही हैं जो व्यक्तियो के लिए समस्याए खडी करती हैं–और यदि आप सभी वस्तुओ को व्यक्तियो म बदल देते है तो जो भेद जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न करता है वह कूच कर जाता है। बोसाके न नव-यथाथवाद का इस सीमा तक स्वागत किया जहा तक कि उसम मन म प्रस्तुत उपकरणो को मन स स्वतन्त्र सत्ता के रूप म देखा जाता है–और वे आदशवाद के नाम से ही नाक भी सिकोडते थे क्योकि उसम प्रकृति को हमारे मस्तिष्क से ही उत्पन्न माना गया है। मन के शारीरिक अवयव के रूप म विकसित होने वाले सिद्धान्त से उन्हे कोई एत राज नही था। यही कारण था कि मक्टेगट ने माइण्ड' म 1912 म प्रकाशित द प्रिंसिपल आफ इण्डिवीजुएलिटी एण्ड वेल्यू नामक पुस्तक की रिव्यू म यह शिकायत की है कि मन और पदाथ के सम्बन्ध का प्रकट करने वाला जो भी शब्द डा० बोसाके ने लिखा है विशेषत उसके सातवें अध्याय म वह किसी पूर्ण भौतिकवादी द्वारा ही लिखा जा सकता था।

यही बोसाके की विचारधारा एक मुश्किल खडी कर देती है क्योकि वे वास्तव म एक भौतिकवादी नही हैं। अन्त म व यह स्वीकारने को विवश हो जाते है कि प्रकृति किसी मन शक्ति पर आवृत है। ऐसा कैसे हो सकता है जब प्रकृति का अस्तित्व मन के अस्तित्व के लिए पूव आवश्यक हैं।[1] प्रकृति तो वरिमा (स्पेस) और समय का समष्टि रूप है–हमारी क्षणिक अभिवृत्तियो का सूक्ष्म रूप है–और स्वयभू है। इसके साथ ही यह गुण धर्मा भी है जिसका अर्थ यही है कि उसके

(बी० ए० एस० एस० 1915) आर० ई० स्टेडमान का 1931 के माइडमे म प्रका शित निबन्ध एन एक्जामिनेशन आव बोसाकेज डाक्टिन आव सल्फट्रासडेंस।

1 आर० ई० स्टेडमन नेचर इन द फिलोसोफी आव बोसाके (माइण्ड 1930)।

सचेत सत्ता साद्देश्य इन्द्रिय प्राग्मात्र म काइ सचेत सत्ता की स्थिति है ही-और यह सचेत सत्ता साद्देश्य इन्द्रिय सवद तथा भावमयी है ही। इस विचारधारा के आधार पर मन ही प्रकृति म एक सम्पूर्णता की स्थिति का प्रकटाता है। उस अवस्था के बिना प्रकृति खण्ड खण्ड हो जाती है लेकिन इसके साथ ही प्रकृति के बिना मन सभी उपकरणो से शून्य हैं। मन एक सक्रिय सम्पूर्णता के भाव के अलावा अपने म कुछ भी नहीं। प्रत्यक भाव वह प्रकति मे ग्रहण करता हैं। व्यक्तित्व मूलक आदर्शवादो को इस सम्बन्ध म यह शिकायत थी कि यदि प्रकृति और मन दोना इस प्रकार एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं ता फिर मन की पदाथ पर वरिष्ठता का क्या होगा।

भौतिकवाद के सम्बन्ध म वाड जैसे विचारको की जो धारणाए थी, उनके एक एक अश का बोसाके खण्डन करते हैं। वाड ने उद्देश्यवाद (टीलियोलोजी) को पुन स्थापित करन का प्रयास किया था। प्राकृतिक प्रक्रियाए उस समय तक अबूझ हैं जब तक हम यह नही मानत कि वे किसी लक्ष्य की ओर जा रही हैं अथवा उनका कोई उद्देश्य है। इस तरह या तो वे स्वय ही मनस्तत्व से युक्त है या उसके द्वारा निर्देशित हैं। बोसाक इस प्रकार की युक्ति स्वीकारना नही चाहते। निर्देशन की वात करना केयर्ड दारा प्रतिशोधित उस स्थिति की ओर लौटना है जिसमे उन्होने प्राक तिक जगत म आदश की अत क्रियात्मक स्थिति का विरोध किया था।

वाड का लिखे एक पत्र म उन्होने बताया है कि इस आधार पर मन और प्रकृति दो भिन्न सत्ताए लगती हैं। और उनम से एक दूसरे को निर्देशित करती हुई दिखाई गयी है। इस प्रकार का वर्णन बोसाके के अनुसार प्रकृति और मन की ठोस पूरकता के भाव को समाप्तप्राय कर देता है।

द मीनिंग आव टीलियोलोजी (उद्देश्यवाद की सार्थकता) नामक विषय पर ब्रिटिश एकेडेमी म भाषण करते हुए उन्होन नव उद्देश्यवाद की आलोचना का अधिक मुखर रूप प्रदान किया था। उन्होने कहा कि यदि मेरा इस विचारधारा का अध्ययन सही है तो तान्त्रिकता के विरुद्ध बढती हुई प्रतिक्रिया कानून एव व्यवस्था क क्षेत्र को समाप्त कर रही है और सजीव आत्माओ को प्रकृति और इतिहास का निर्देशक बनाकर उन्हें सिंहासनासीन किया जा रहा है। यदि यह सही है तो हम इतिहास और दर्शन एव धम की भलाई के लिए तान्त्रिकतावादियो का अपना नाश के व्याज स पुन नियन्त्रित करना पडेगा नव उद्देश्यवाद स उन्होने स्पष्टत दो प्रवृत्तिया देखी थी एक यह कि प्राकृतिक क्रियाए किसी उद्देश्य की ओर अभिमुख हैं तथा दूसरे कि मह ध्वंसशीलता म मूल्यवान है। इस प्रकार मूल्य अपनी सम्पूर्णता म प्राप्त होने क नाते भविष्य मुखी हो जाते हैं लेकिन एव विशिष्ट मूल्य की सार्थकता तो यहाँ और इसी समय होन म निहित है। आदश सम्पूर्णता के बोध का नाम ही है। इस सम्बन्ध म विवेकपूर्ण कहा जा सकने वाला उद्देश्यवाद इस अभिमान म निहित है कि प्रत्यक विशिष्ट

वस्तु अपना स्थान वस्तुग्रा की किसी प्रणाली म ही रखती हैं और वह विशिष्ट प्रणाली अ तत परमात्म ही है। इस प्रकार की प्रणाली म नियमित एव प्राकृतिक प्रक्रियाग्रो क ग्रस्तित्व को भी पर्याप्त स्थान है और इसी मे स ससीम चेतना स्वत प्रकट जाती है। मानवी उद्देश्य तो शरीर घम हैं। व उसी के जरिए निधारित होते ग्रोर स्वीकृति पाते है—ग्रावयविक क्रिया प्रतिक्रियाग्रो से ही वस्तुग्रो म निहित उद्देश्य पूण योजना का ग्राभास मिल जाता है। इस तरह की परिपूण योजना ही विशिष्ट प्रक्रिया नही ग्रादश का निर्माण करने म सलग्न हैं। इसी ग्राधार पर एक यक्ति के लिए ग्रमरत्व की माग करना निरथक है। मूल्यो का स्थायित्व ही हैं' इस सम्ब ध म साथक है ग्रौर इस प्रकार की योजना ही इसकी गारटी देती है।

बोसाके क प्रत्ययवाद के अनुयायी बहुत कम हुए। तार्किक विश्लेषण क साथ दशन का मेल देखन वाले दार्शनिको जिनकी सख्या निर तर बढती जा रही थी की दृष्टि म बोसाके एक पुरातन चलन के प्रवक्ता मात्र थे फिर ग्रध्यात्मवादियो का प्रसन्न करने योग्य वे पूणत क्रिश्चियन भी नही थे। और न इतने विज्ञान वादी थे जो ग्रादशवादी विचारधारा म विश्वास रखने वाले भौतिकशास्त्रियो का भी ध्यान अपनी ग्रोर खीच सकते। उनके पदचि हो पर चलन वाला म सर्वाधिक परिचित ग्रार० एफ० ए० हानली थे।

होनली बोसाके की विशालहृदयता से प्रभावित थ जिसे व एक प्रारूपाभि मुख दशन की ग्रार जाते हुए देखते हैं। होनली का कहना है कि बोसाके की प्रतिभा दशन के नए सिद्धा त गढने के बजाय[1] उसकी सहानुभूति एव चतुरतापूण याख्या करन म लगी हुई थी।

ग्रमरीका मे बोसाके के द्वारा प्रतिपादित ग्रादशवाद ने जे० ई० क्रेटन जस दाशनिको मे एक प्रतिक्रिया जागृत की जि होने बोसाके की तक-प्रणाली का ग्राधार लेकर जोर शोर से बढते हुए ग्रमरीकी ग्रथक्रियावाद (प्रैग्मटिज्म) का प्रतिरोध किया था।[2] लेकिन ग्रमरीका इससे पूव भी जोसिया रोयस के परम ग्रादशवाद से परिचित था ही। ग्रौर रोयस न अपने हावड के साथियो तथा विलियम जेम्स जस

---

1 द्रष्ट य डी० एस० एवि सन की मरणोपरा त प्रकाशित पुस्तक **स्टडीज इन फिलोसोफी** (1952) मे दिया गया स्मरणाश।

2 1925 म प्रकाशित पुस्तक **स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलोसोफी** म इनके निब धो को सग्रहीत किया गया है। क्रेटन ने बहुत कम लिखा-लेकिन फिर भी वे प्रभावशाली ग्रध्यापक थे। पी० ग्रार० 1925 म प्रकाशित जी० एच० सबाइन ग्रौर एफ० थिएली के क्रेटन पर लिखे निब ध देखने योग्य हैं।

सम सामयिक विचारको का सहारा लेकर इग्लैंड को अमरीकी दर्शन से परिचित कराया था।[1] रोयस के हाथो म परम आदर्शवाद व्यक्तित्वमूलक आदर्शवाद से मुक्ति पाने की जी तोड कोशिश करता हुआ दिखाई देता है और विलियम जेम्स की नई दार्शनिक विचारधाराओ म तो यह कोशिश और भी प्रबल रूप से देखी जा सकती है। नये रूप से विकसित हुए विचारो के कारण आदर्शवाद को जो खतरा उत्पन्न हो गया[2] उससे इन दोनो ने इसको बचाया था।

यहा उल्लेखनीय बात यही है कि रोयस की दार्शनिक प्रणाली ज्ञानमीमासा का आधार ग्रहण करती है। परमात्म के मार्ग म सत्य का सिद्धात नही ज्ञान के सिद्धात का सहारा लेना होगा। 1882 म माइण्ड म प्रकाशित एक निबन्ध माइण्ड एण्ड रीएलिटी म उन्होने लिखा कि जीव-विकास-विज्ञान तो खेल है, ज्ञान का सिद्धान्त खिलौना। जीव-विकास-विज्ञान एक ऐसा बच्चा है जो साबुन के झागो के बुलबुले उठा रहा है। दार्शनिक विश्लेषण सोना खोदने वाला मजदूर है। इस प्रकार इन दोनो स्थितियो की भिन्नता म काण्ट की ओर लौटने की वृत्ति देखी जा सकती है। ब्रैडले और बोसाके ने जिसके विरुद्ध अभियान किया था उसी ज्ञान मीमासा के प्रवर्तन का प्रश्न फिर उपस्थित था।

रोयस के अनुसार मिल और बकल यह सिद्ध करने म लगे थे कि हमारे सारे अनुभव घटनाओ या विचारो से उद्भूत हैं। उनके तर्कों म इस सृष्टि को अस्वीकार करने की पर्याप्त सामर्थ्य थी जो मात्र प्राकृतिक है और मनस् से युक्त है।

---

1 जे० एच० म्योरहैड कृत द प्लेटोनिक ट्रेडीशन इन एंग्लोसेक्सन फिलोसोफी म रायस के दर्शन का विस्तृत वर्णन है। द्रष्टव्य जी० मासल की आर० एम० एम० 1918-19 म प्रकाशित और 1945 मे पुस्तकाकार रूप म प्रकाशित रचना 'ला मैटाफिजीक डी रोयस।' 1920 मे प्रकाशित जोज सण्टयाना कृत करेक्टर एण्ड ओपीनियन इन द यूनाइटेड स्टेटस, पेपर्स इन आनर आफ जोसिया रोयस (सपा० ज० ई० क्रेटन 1916) आर० बी० परी द थाट एण्ड कैरेक्टर आफ विलियम जेम्स (1935) और डिक्शनरी आफ अमरिकन बायाग्राफी म प्रकाशित पैरी का रायस पर लेख। डी० एस० राबिन्सन कृत जासिया रोयस दर्शन के क्षेत्र म कोलिफोर्निया का एक योगदान (पर्सनलिस्ट 1950)। जे ई स्मिथ रोयस, सोश्यल इन्फिनिट (1950) जे एच कोटन रोयस आन द ह्यूमन सेल्फ (1945), डी मोन्समेन रायस कन्सम्शन आफ एक्सपीरिएन्स एण्ड द सल्फ (पी० आर० 1940), जे० पी० 1956 का रोयस विशेषांक।

2 बोसाके का कथन है, मैं वास्तव म ज्ञानमीमासा म विश्वास नही करता। (1914) और ब्रडले की यह व्यग्यात्मक उक्ति, 'ज्ञानमीमांसा मे कौन सी स्थिति सही होगी इसके बारे म अपनी राय देने का मैं अपने को अधिकारी नही मानता।'

तो भी वह मिल की इस धारणा से कि भौतिक पदार्थ संवेदना की अनन्त सम्भावनाएं हैं इसलिए असंतुष्ट थे कि इन सम्भावनाओं के बारे में कोई स्पष्ट बात नहीं कही थी। रोयस यहां एक प्रश्न पूछते हैं। ठोस असनियत नाम का मुहावरा कौन से भूठ सत्य की ओर इंगित करता है? हमारे सामान्य दैनिक जीवन में जब हम किसी वस्तु को सम्भव कहते हैं तो उसका अर्थ यही होता है कि हम उसके घटित होने की कल्पना कर सकते हैं। ये सम्भावनाएं केवल मात्र हमारे विचार ही हैं। ये हम इन विचारों से परे कहीं नहीं ले जाते और जहां तक मिल का प्रश्न है उनकी अनन्त सम्भावनाएं उस समय भी विद्यमान रहती हैं जब हम उनके प्रति सचेत नहीं होते और यहां एक ऐसा जगत है जिसे निमित्त सृष्टि से परे हम खोजते रहते हैं। रोयस के अनुसार विशृंखल एवं विभक्त जगत को निरन्तर एवं व्यवस्थित जगत् में बदलने का एक ही तरीका है और वह यह है कि हम यह मानलें कि कहीं अनुभव की एक निरपेक्ष सत्ता है जिसे सारे तथ्यों की जानकारी है और जिसके समक्ष सारे तथ्य समष्टिव्यापी मर्यादा में कार्य कर रहे हैं।

रोयस के अपने मतानुसार ही इस प्रकार की विचार प्रणाली किसी तात्विक दिशा की ओर न ले जाकर मात्र एक अभिधारणा का ही कार्य करती है। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि पारमार्थिक अनुभव की स्थिति कहीं है भी। यह तो केवल इतना बोध ही देती है उपर्युक्त प्रकार का अनुभव कहीं न कहीं होना चाहिए क्योंकि हम यह विश्वास किए बिना नहीं रह सकते कि तथ्यों का निरन्तर एवं व्यवस्थित संसार है ही। यह सिद्धान्त इतना कह चुकने के बावजूद भी इस आशय को भी व्यक्त करने में नहीं चूकता कि प्रस्तुत धारणा गलत भी हो सकती है। रोयस इस प्रकार की संदेहास्पद विचारभूमि पर खड़े होकर संतुष्ट नहीं हो सकते थे व तो पारमार्थिक अनुभव की सिद्धि का अवसर खोजने में व्यस्त थे।

और अब रोयस द्वारा स्थापित हुए डे फाप (बुद्धिव्यायाम) का सिद्धान्त सम्मुख आता है। पारमार्थिक प्रत्ययवाद की भीषण बाधा उसका दोष स्वीकारना था। उसके विरोधी सहजता से प्रश्न करते कि किस भांति दोषमुक्त अवस्था को सत्य में स्थान प्राप्त हो सकता है। किन्तु रोयस के आदर्शवाद में दोष की स्थिति असंदिग्ध है क्योंकि उसे इन्कार करने का अर्थ उस दृष्टिकोण का समर्थन करना है जिसमें दोष को लोप कहकर स्वीकार किया गया है। और यही स्थिति हमें पुनः परमात्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। परम्परात्मक अनुभववाद के अनुसार दोष उस विचार-स्थिति का नाम है जो उस सम्बन्ध में वर्णित किसी पदार्थ के साथ मेल स्थापित करने में असमर्थ हो जाती है। यहां रोयस एक एतराज प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-किसी के साथ मेल खाने में असमर्थ होने के विचार को ही दोष की संज्ञा नहीं दी जा सकती-अपितु दोष वहां है जहां हमारा

तत्सम्बन्धी विचार उन सभी स्थितियों से मेल खाने में असमर्थ हो जाए जिनके द्वारा हम किसी वस्तु की सिद्धि करते हैं। किसी बात को गलत समझना एक चीज है और उसका अर्थ है कोई अन्य तरह की धारणा रखना–जबकि दोषपूर्ण विचार का अर्थ है अपने उद्देश्य में जाकर असफल हो जाना। और यहां हम क्या चाहते थे इसका कोई संकेत भी नहीं मिलता। मुडी हुई बेंत के विचार में उस समय दोष होगा जब हम सीधी बेंत पर विचार करते समय मुडी हुई अवस्था की कल्पना भी करें। इस प्रकार रोयस के अनुसार कोई विचार दोषपूर्ण तभी है जब हमारी बुद्धि यह अन्तर करने की स्थिति में हो कि हमारा विचार क्या था और उसकी कौन सी अवस्थाओं से हम तत्सम्बन्धी विचार की संगति पाने में असफल रहे हैं।

अपनी पुस्तक द रिलीजस आस्पेक्ट्स आफ फिलोसोफी (188५) में उन्होंने दोष की परिभाषा देते हुए कहा है–एक पूर्ण विचारशृंखला में अपूर्ण विचार का होना ही दोष है और जिस उद्देश्य की ओर स्पष्टतः पूर्ण विचार बढ़ रहा था उस शृंखला में अपूर्ण विचार को रखकर उसके दोष को जाना जा सकता है। अर्थात् पूर्ण विचार अपूर्ण विचार की सीमाओं को उजागर कर सकता है और इस किसी स्थिति में पूर्णता प्राप्त हो जाने पर बडी सरलता से देखा जा सकता है। हम अपने दोषों का ज्ञान उस समय होना प्रारम्भ हो जायगा जब हम एक पूर्ण विचार–सत्ता में अपनी आंशिक क्षमताओं को जोडकर देखना प्रारम्भ करेंगे। लेकिन सम्भावित दोषों की संख्या अनन्त है क्योंकि प्रत्येक सत्य अपने साथ अन्तहीन दोषों की भीड लेकर प्रस्तुत होता है।[1] अमुक वस्तु को झूठ मानने का दोष अमुक दोष के बारे में यह मानना कि वह दोष नहीं आदि आदि। केवल पारमात्मिक अनुभव इस तरह दोष के सत्य को उदघाटित कर सकता है। ससीम अनुभव किसी भी भांति दोषों के जगत् व्यापी कुछ सूत्रों से परिचित करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता।

रोयस की दृष्टि में दोष कुछ ऐसी वस्तु नहीं है जिसके हम मानव मात्र होने के कारण शिकार हो जाते हैं–अपने अस्तित्व के लिए मानवी अस्तित्व का उसके लिए होना आवश्यक नहीं है। यहां यह घडी है, यह बल्ला है यह बर्फ का टुकडा है, इन तीनों प्रकार के अनुभवों में भी अनन्त दोष हो सकते हैं। न केवल हो सकते हैं अपितु दर असल हैं भी। आप अपने विचार से इनकी सचाई और झूठ को निर्मित नहीं कर सकते। इसीलिए तो उस अनन्त विचार में ही किसी

1 जहां ब्रेडले अनन्त अपवर्तन का किसी विचार से विरोधाभास होने का प्रमाण कहते हैं वहां रोयस अनन्त अपवर्तन को स्वीकृति देने में कोई हानि नहीं देखते। द्रष्टव्य 1900 में द वर्ल्ड एण्ड द इण्डिवीजुअल में रायस द्वारा ब्रेडले को दिया गया उत्तर।

माति प्रारम्भ से ही यह विचार विद्यमान था। सैण्टायाना ने इसके प्रतिरोध में कहा कि इस प्रकार के तर्क से रायस जीव-विकास-प्रक्रिया की आकस्मिकता पर दर्शन का निर्माण करना चाहते हैं। यह तो सही है कि मनुष्य गलती करते हैं लेकिन दरअसल रॉयस ने दोष को जीव-विकास-प्रक्रिया के आकस्मिक रूप में कहीं भी नहीं देखा। यह तो एक तार्किक आवश्यकता थी सत्य का आवश्यक रूप से दूसरा पहलू क्योंकि यह कहना ही कि सत्य मालूम कर लिया गया है इस बात का आभास देता है कि कुछ दोषों की धारणा हो गई है। उदाहरणार्थ—यह मानना का दोष कि सत्य मालूम नहीं किया गया था।

अभी तक परमात्मा को परम्परागत आदर्शवादी तरीके से भी अनुभव-सिद्ध माना गया है। रायस ने अपनी कृति **द रिलीजस आस्पेक्ट आव थॉट'** के शुरू के अध्याय में जिनमें वे धार्मिक और नैतिक प्रश्नों पर चर्चा कर रहे हैं और जो उनके मतानुसार मानव मात्र का सर्वाधिक रुचि के हैं वहां पर परमात्म को पारमात्मिक इच्छा के रूप में प्रदर्शित किया गया है। रायस की नीति काण्टवादी है। नैतिक जीवन मानवी जीवन का दैवी इच्छा से तादात्म्य करने का ही नाम है।

इस प्रकार यह परमात्म जिसके साथ उनका नीतिशास्त्र जुड़ा है, एक दैवी इच्छा है। नीतिशास्त्र का यह परमात्म उनकी ज्ञान की व्याख्या करते समय के परमात्म से काफी भिन्न लगता है।

द वर्ल्ड एण्ड द इण्डीवीजुयल में जो कि उनकी सर्वाधिक प्रभाव-शाली कृतियों में से एक है इच्छाशक्ति प्रबल रूप से प्रवतन में आ जाती है। रॉयस की अपनी नैतिक मान्यताओं में जेम्स की विचारधारा का तारतम्य बैठने लगता है।[1]

---

1 सन्तयाना के अनुसार रायस के परमात्मवाद के लिए अमरिका के नैतिक आदर्श काफी प्रबल थे। परमात्मवाद के लिए बुराई समष्टिव्यापी योजना का एक अनिवार्य अंग है लेकिन नैतिकता के लिए बुराई एक ऐसी अवस्था है जिसका शमन किया जा सकता है यदि उसे पर्याप्त मात्रा में अच्छाई का आधार मिल सके। रॉयस इन दोनों प्रकार की दृष्टियों में मेल बठाने में कभी सफल नहीं हुए। वे तो अपने से अधिक इनकी विरोधी अवस्थाओं में पूर्ण निष्ठा से नम्रता से तथा दयनीयता से जुड़े हैं। उनकी नैतिकता उन्हें इच्छाशक्ति पर जोर देने के लिए विवश करती है। लेकिन उनके परमात्म के सम्मुख जिसे वे छोड़ना नहीं चाहते और जहां यह सिद्ध भी हो जाता है कि इच्छाशक्ति अपूर्ण होने के कारण दिखावा मात्र है इच्छाशक्ति का दर्जा कम हो जाता है। द्रष्टव्य सी एम बेकवल का 1930 में सातवीं दार्शनिक परिषद् में पढ़ा गया निबन्ध द सिग्निफिकेंस आफ रोयस इन अमरिकन फिलोसोफी। प्रतिनिधित्ववादी एवं अर्थ—क्रियावादी सिद्धान्तों में सत्य की व्याख्या के लिये एन्सायक्लोपिडिया आव एथिक्स एण्ड रिलिजन में उनका निबन्ध देखें।

तो भी रोयस ज्ञानमीमांसा पर लगातार जोर दिए जाने के पक्ष में हैं। हाँ, यहाँ आकर कोई कल्प अब एवं प्रतिनिधित्व मात्र नहीं है। यह तो, यदि स्टाउट के शब्दों में कहें, तो वस्तु का विवेचन करने की योजना मात्र है और केवल यही उद्देश्य कोई कल्प पूरा कर सकता है। मान लो हम अपने ही लिए कोई स्वरावलि गुनगुनाते हैं—तो उस स्वरावली की अन्तरिम सार्थकता ही वह उद्देश्य होनी चाहिए जिसे वह गाना संतुष्ट करता है। लेकिन फिर भी वह स्वरावली हमारे द्वारा कहीं सुनी किसी गीत की अनुवृत्ति भी हो सकती है जैसा कि 'गाड सेव द क्वीन' जैसे प्रचलित गीत की कड़ी है। एक समय हम उस उस स्वरावली की अपनी सार्थकता मात्र मान सकते हैं।

सबसे पहले रोयस कदाचित अन्तरिम सार्थकता और ऊपरी सार्थकता का यह भेद हमारी संकल्पात्मक (कानटिव) तथा ज्ञानाश्रित (कोग्नटिव) विचार प्रणाली का परिचय देने के लिए करते हुए लगते हैं। अन्तरिम सार्थकता हमारी उस संकल्पात्मक शक्ति का परिचय देती है जो किसी उद्देश्य की ओर इंगित करती है। और ऊपरी सार्थकता जो ज्ञानाश्रित है हमारे द्वारा बाहरी जगत को समझने की शक्ति का ही नाम है। फिर भी रोयस इस प्रकार किसी बाह्य जगत के विचार के होने को अबूझ कहकर अस्वीकृत कर देते हैं। अब वह मक्टगट की भाँति (द्रष्टव्य द नेचर आव एग्जिस्टेन्स) यह कहते हैं कि कोई दो वस्तुएँ एक दूसरे से भिन्न हो सकती हैं। फिर भी एक में परिवर्तन दूसरे में परिवर्तन ले आएगा। इस प्रकार समानताओं तथा असमानताओं का क्षरण होता रहता है। इस तरह ऐसे संसार का विचार जो केवल है, चाहे उसे कोई जाने अथवा नहीं वह तो वैसा ही रहेगा और जो मन से स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है रोयस उसे कभी स्वीकृति नहीं देते। उसे वे तर्कसम्मत नहीं मानते।

इस प्रकार रोयस के लिए विचार और बाहरी सार्थकता, दो भिन्न अवस्थाएं नहीं हैं। वे अपनी बात को समझाने के लिए एक उदाहरण देते हैं, कि मान लो हम दस जहाजों को गिन रहे हैं। अब साधारणतः यह तो कहा ही जा सकता है कि दस की संख्या उन जहाजों से अपने आपमें अलग है लेकिन यह सच कैसे घटित होता है कि हम मस्तूल गिनने की बजाय जहाजों को गिनते हैं। हम केवल इन्हीं जहाजों को क्यों अपने विचारों में सम्मिलित करते हैं और अन्य का विचार क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर उनके अनुसार यह होगा कि हमारे सारे उद्देश्य या सभी योजनाएं उस पदार्थ का ही निर्माण करते हैं जिसे हम गिन रहे हैं। यह हमारे इरादों के उद्दिष्ट के रूप में ही विद्यमान है। बाहरी सार्थकता, विकासमान होते हुए भी आन्तरिक सार्थकता पर अवलम्बित है।

विचार परमात्म का ही एक सूक्ष्मांश है। इसी बात को वे भी कहते हैं कि एक विशिष्ट विचार अथवा कल्प, एक विभक्त और अपूर्ण उद्देश्य ही है—और

उसम सदव अपनी सीमाओ का अतिक्रमण कर अपने को पूणता की ओर ले जाने की वृत्ति विद्यमान होती है। किसी व्यापक प्रणाली की खोज म जिसम काइ कल्प अपनी पूर्ति कर सकता है यह कल्प अपनी नानात्मक अवस्था म रहता है—और उसकी बाह्य साथकता उसके द्वारा इ गित की जा रही अपने से बाहरी अवस्था म निहित रहती है। लेकिन इसका अथ यही होगा कि अब एक विशिष्ट कल्प न एक व्यापक उद्देश्य म अपना स्थान निर्धारित कर लिया है। यह अपन ही द्वारा फलीभूत नही हुआ है।

इस बिन्दु पर रोयस एक बार फिर अपने द्वारा निर्धारित समय और स्थान के सिद्धान्तो स परमात्मवादी सिद्धात स भटकते हुए लगते है। व यह नही कहना चाहते कि व्यक्तिगत उद्देश्य समष्टिगत योजना म विलीन हो जाते हैं अथवा कि उनकी वयक्तिकता केवल एक दिखावा है--रोयस की दष्टि म प्रत्यक अ श सम्पूण है अपना एक विशिष्ट योगदान दता है और उसी म उसकी वयक्तिकता है। परमात्म म आकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी वही स्थिति रखता है जो उसने अपन साथियो की दष्टि म प्राप्त की थी। हा वहा आकर वह अद्वितीय रूप से मूल्यवान और अपदान्तरकारी हो जाती है। ओ मुक्त पुरुष तब उठ तरे इस ससार म आग बढ। यह ईश्वर का ससार है। यह तेरा भी है।

यही निष्कष रोयस द्वारा अपनी कलोफार्निया वादी प्रबल तक क्षमता द्वारा व्यक्त किया गया है। यूरोपीय परमात्मवादियो के लिए रायस द्वारा वयक्तिक इच्छा शक्ति को दी गइ छूट आदशवादी परम्परा के प्रति एक धोखाधडी है। बहुत स अमरीकियो के लिए तो वह अमरीकी यक्तिवाद के प्रति भी एक धोखा है। विलियम जेम्स जस लोग जब परमात्मवाद पर प्रहार करते है तो अमरीकी लोगो की यह धारणा है कि एसा रोयस क प्रभाव के कारण हो रहा है। बोसाके न लिखा है कि अग्र जी आदशवाद को प्रबल रूप से गलत समझा जाना, जिसका आधिक्य वतमान अमरीकी लेखको म पाया जा रहा है—मूलत रोयस के कारण ही है। (द्रष्टव्य **द मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कन्टेम्पोरेरी फिलोसोफी** (1921)। रोयस के दशन के सहारे ही अमरीका की नवोदित प्रतिभाओ ने अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण किया। उसी प्रकार जिस प्रकार इग्लड म विचारको ने अपने दाता का ब्रेडल क सहारे तीक्ष्ण किया था।

अध्याय 5

अर्थक्रिया-वाद एव समधर्मी योरोपीय दशन

आधुनिक दशन इस सिद्धान्त पर स्थापित है कि दार्शनिक रूप से विचार करने का अथ उसी बात को सत्य मानना है जिसे हमारी बुद्धि स्वीकृत कर यह धारणा डेकाट ने निर्विवाद रूप स अपन दशन म स्वीकार की थी। इसके विपरीत अदार्शनिक होने का अथ है इच्छाशक्ति के द्वारा व्यभिचरित हो जाना—इसके कारण मनुष्य बुद्धि द्वारा निर्धारित सीमाओ के बाहर चले जाते हैं और दोषपूर्ण स्थलो के जगलो म भटक जाते हैं। इग्लण्ड म लाक ने इस कोर्टेजियन आदश को दशानुकूलित बनाया था—उन्होन लिखा था कि एक ऐसी दोषहीन अवस्था भी है जिसके द्वारा मनुष्य यह मालूम कर सकता है कि वह सत्य के लिए ही सत्य को प्रम कर रहा ह या नही और वह है-किसी कथन को तभी विश्वास के साथ स्वीकारना जब कि पुष्ट प्रमाण उस स्वीकार को पूर्णत समर्थित करते हो। उन्नीसवी शती क अनीश्वरवाद न लाक के इस कथन को गहरी नतिकता क साथ पुन स्वाकृत किया। डब्लू के क्लिफोड की रचना 'द एथिक्स आव बिलीफ' म एक प्रमुख मारभूत उद्धरण द्वारा इस सरणि को सुझाया गया है। सभी स्थानो म किसी के द्वारा बिना पर्याप्त कारणो क किसी बात पर विश्वास कर लना गलत है।'[1]

क्लिफोड ने विश्वास के साथ इन शब्दो को लिखा। उनके इस कथन म एक एस मनुष्य का सकेत मिलता था जिसे वज्ञानिक विकास का आधार मिला था। फिर भी बुद्धिवाद क विरुद्ध हुआ विद्रोह जिसे उसके आलोचको ने कार्टेजियन आदश की सज्ञा भी दी है—जमनी म ठीक स प्रवतन मे आ गया था। हमने नव स्वच्छन्दवाद' का पहल ही क्रियाशील अवस्था म दख लिया है—खासतौर पर लाज क दशन म सकीर्ण नमावस्था म और यूकन, रोयस और वाड के दशन म तो इसक और भी प्रबल रूप म दशन होते हैं। लकिन विलियम जेम्स के हाथो मे आकर इसने और भी क्रान्तिकारी रूप ग्रहण किया क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत विचारधारा ब्रितानी पाठको के अनुकूल थी।

एक बार फिर काण्ट इस सबके सूत्रधार हो जाते है। उन्होने लिखा था मुझे ज्ञान का उन्मूलन करना होगा—और विश्वास के लिए कही न कही स्थान रखना पडेगा-(सदभ, क्रिटीक आव प्योर रीजन के दूसरे सस्करण का आमुख) इस

---

1 कन्टेम्परेरी रिव्यु (1876) म प्रकाशित। लेक्चस एण्ड एसेज (1879) म पुन प्रकाशित।

वात को प्रदर्शित करन का कार्ई तरीका नही है कि कायकारी घटनाओ के वाहर काई ऐसी स्थिति है जो हमारे अनुभव का निर्माण करती है। लेकिन नतिकता का दाय हम अपन आपका स्वतन्त्र अभिकर्ता मानन को विवश करता है और तव हम अपन उस सत्य अथवा स्वस्थित आत्म का ज्ञान होता है जा काय-कारण-सयोग स परे है। इस तरह उच्च नतिकता के नाम पर यह सिद्धान्त वुद्धि पर प्रहार करता हुआ दिखाई द सकता है।

एकत्व को आदश मानन वाल हीगल काण्ट के द्वारा किए गए सघठन (फिनोमीना) एव स्वस्थन (नामीना) के अ तर को नष्ट कर दते हैं। उनक समसामयिक विचारक शापनहवर इसी की पुनर्व्याख्या करत हुए इसे वुद्धिविरोधी आत्म मानते हैं।[1]

शोपनहवर ने सव प्रथम काण्ट क सघटन को प्रत्ययो म वदला है। ब्रितानी अनुभववाद ने प्राय वुद्धि के अपदश के विरुद्ध सघष म काफी सहयोग दिया है। वर्कल के इस कथन म निश्चय ही सचाई थी कि जो कुछ दृश्यमान है वह केवल द्रष्टा के लिए ही उपस्थित है। किन्तु दूसरे प्रकार के 19 वी शती के वर्कले क प्रशसको की भाति शोपेनहवर इस निष्कष पर नही पहुचते कि विचारो के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अस्तित्वमान नही हैं। इस निष्कष से उनकी धारणा के अनुसार

1 शोपेनहवर की 18 वी शती की पूर्वी दशा नी से पूव तक कोई निश्चित विचारधारा नही वनी थी। उसक वाद भी उनके विचारो की जितना उनक निवधो (पररगा एण्ड परालिपोमना–1851 म देखा जा सकता है) उतना उनकी व्यवस्थित विचारप्रणाली (दि वल्ड एज विल एण्ड आइडिया 1818) म नही मिलता जिसने ही उनके प्रशसको म वृद्धि की है। हीगलवाद पर उनका यह प्रहार इस विचार धारा की प्रबल शक्ति उनक आदश म नही है चाह उस कितनी ही स्वीकृतिया और वढावे दिय जायें। उनकी शक्ति मूलत उन वास्तविक उद्देश्यो म निहित है जो व्यक्तिगत व्यावसायिक लखन सम्बन्धी राजनीतिक और सक्षप म कह ता भौतिक रुचियो मे निहित है –एक राज्य दशन के खिलाफ प्रतिक्रिया प्रकट करने वाल लोगो के लिय स्वागत का विषय था। शोपनहवर का निराशावाद भी वहुत से व्यवसायी आदशवादी दाशनिको की अपेक्षा अधिक उत्तेजक था। उनका दशन अपेक्षाकृत अधिक सगत लगता था। विशेषत उन सजनशील वल्टसमज–विचार-धारा को मानने वाल लोगो के लिए जो 19 वी शती की जमन सभ्यता का एक विशिष्ट अग बन गई थी और जिसके अन्तगत देवताओ की रोशनी के नाम से वहुत स सगीत प्रधान नाटको की रचना की गई थी। द्रष्टव्य, डब्लू० वलस कृत लाइफ (1880) एफ० कपल्स्टन कृत आथर शोपेनहवर, फिलोसाफर आफ पेसीमिज्म (1946 टामसमन दलिविग थौटस ऑव शोपेनहवर (1939)।

कोई भी मनुष्य स्थायी तौर पर उपमत नहीं हो सकता। अनिवार्य रूप से हम वस्तु की अपनी सत्ता की खोज में रहते हैं और यह सत्ता उन प्रत्ययों को धारण करने वाली है जिन्हें हम देखते हैं और उन्हें सार्थकता और महत्व प्रदान करते हैं।

किन्तु हमें यह कहां उपलब्ध होगी ? शोपनहॉवर के अनुसार इसे हम निश्चय ही अपने चारों ओर फैले जगत में प्राप्त नहीं कर सकते हैं क्योंकि वहां पर हम अपने ही प्रत्ययों के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से साक्षात्कार नहीं कर सकते। यह रहस्य तो अब दम्भी है और हमारी उस चेतना में निहित है जिसके द्वारा हम अपने को इच्छाशक्ति रखने वाले एक व्यक्ति के रूप में देखते हैं। क्योंकि जब हम अपने किसी कार्य को अपनी इच्छा शक्ति के प्रकटीकरण के रूप में देखते और समझते हैं तो यह एक तरह से केवल मात्र प्रत्ययों का आपसी सम्बन्ध नहीं रह जाता। कोई भी कार्य अपना एक इच्छित भाव रखता है जिसे यदि हम अनदेखा कर दें तो उस कार्य को समझने में कठिनाई होगी। तो भी हमारे कार्य यदि हम उन्हें दृश्यमान जगत का एक अंग मानें अपने आप में प्रत्यय ही हैं। उनके ही पहलू होते हैं। संघटन के रूप में वे प्रत्यय हैं और अपनी सार्थकता के रूप में इच्छाशक्ति के प्रकटीकरण हैं।

इसी प्रकार का द्वन्द्व शोपेनहॉवर के अनुसार प्रत्येक प्रत्यय का मूलतत्व होना चाहिए। हम इच्छाशक्ति के अलावा किसी भी ऐसी वस्तु से परिचित नहीं हैं जो हमारे विचारों को महत्व प्रदान कर सकें और यह तो निश्चय ही है कि कोई भी विचार या कार्य बिना महत्व का नहीं है। हम उनके सम्बन्ध में निश्चय ही हमारी इच्छाशक्ति के ठोस उदाहरण के रूप में स्वीकृति देनी होगी और चूंकि प्रत्ययों में ही सत्य की एक प्रणाली निर्मित होती है इसलिए शोपनहॉवर के अनुसार वस्तु की अपनी स्वायत्त सत्ता होनी जरूरी है और वह सत्ता है उसकी इच्छाशक्ति जिसका यह समस्त भौतिक जगत एक प्रतिरूप है। यह इच्छाशक्ति निश्चय ही हमारी इच्छाशक्तियों से भिन्न होगी ही—विशेषकर अपने इस रूप में कि उसमें यहां चेतना नहीं होती—किन्तु हमारी अपनी चेतना भी शोपनहॉवर के अनुसार और वही शोपनहॉवर के सिद्धान्त का सर्वाधिक प्रभावशाली स्थल था— इच्छाशक्ति के लिए साधन होने के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। इच्छाशक्ति द्वारा उपयोग में लाई गई यह एक ऐसी क्रिया है जो वह व्यक्ति की सत्ता को कायम रखने के लिए काम में लेती है और इस तरह उसकी प्रजाति की स्थापना करती है। शोपनहॉवर केवल कलाओं के लिए ही इतनी छूट देते हुए यह स्वीकार करते हैं कि चूंकि वहां पर वस्तु के शुद्ध रूप पर अनासक्त विचार होता है इसलिए एकाध क्षण के लिए विचार वस्तु में निहित अनन्त संघर्ष कुंठाओं एवं निराशाओं, संतोष एवं विषाद इन सभी अवस्थाओं से अपने को मुक्त कर लेता है जिनमें इच्छाशक्ति निरन्तर प्रकट होती रही है।

यहा तक कि मधावी व्यक्ति की मधा भी शोपनहवर क अनुमार वस्तुम्रा के विषय म एक तटस्थ दष्टि प्राप्त कर लने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाती और वह कला के स्तर का स्पश यन्न कदा ही कर पाती है। इस तरह शापनहवर यह निष्कष निकालते हैं कि मनुष्य स्थायी तौर पर अपने कष्टा एव सघर्षों स उस समय तक मुक्ति नही पा सकता जब तक कि वह सम्पूण रूप स वस्तुस्थिति स अपना अलगाव न करल–यही पूर्वी धर्मों म निर्वाण की अवस्था मानी गई है और यहां आकर ही इच्छाशक्ति स्वय का अभिनिष्क्रमण कर लती है।

शापनहवर के निराशावाद न मानवी सस्कृति पर एक अमिट छाप अकित की है। विशेषत फ्राइड[1] और वान हाटमन पर तो उसका काफी प्रभाव रहा है। विचार को साधन क रूप म देखना अब हम भली प्रकार जचन लगा है। और डार्विन की नइ जीवशास्त्रीय प्रणाली के तो यह काफी अनुकूल हैं। उपकरणवादियो द्वारा किया मानवी विचारधारा का विश्लषण भी इमसे काफी मल खाता हुआ दिखता है–और विलियम जम्स तो इस विचारधारा को सीधे ही ग्रहण करने वाला म से है।[2]

इस परम्परा का दशन काण्ट से लेकर जम्स तक म किया जा सकता है। जम्स के पास काण्ट की ओर लौटने क अलावा कोई अय चारा नहा था– और वे

---

1 ई० वोन हाटमन कृत **फिलोसोफी आव द अनकोशस** (1869) जहा पर शोपनहवर की इच्छा शक्ति अचेतन म परिणत हो गइ है। इस पुस्तक क दस सालो के अदर आठ सस्करण प्रकाशित हुए– वोन हाटमैन जस निराशावादी के लिए इस प्रकार की लोकप्रियता एक विचित्र बात ही थी। द्रष्टव्य, (जमन भाषा म लिखित) डबनू वोन श्नहन **एडुवाड वोन हाटमान** (1929) जे डब्ल्यू काल्डवल का माइण्ड 1863 म प्रकाशित लख द एपिस्टिमालोजी आव एडवड वोन हाटमन डब्लू० एस० नाथरीज कृत **मोडन थ्योरीज आव द अनकोशस** (1924)

2 जेम्म, जो सामायत सहिष्णु प्रकृति के थ शोपेनवहर के प्रति बडे कठोर रहे किन्तु यह सब इसीलिए था क्योकि वह उनसे काफी आतकित थे। दष्टव्य पेरी का **थोट एण्ड करेक्टर** म लिखा एक उल्लेखनीय पत्र जिसम उन्होने शोपनहवर का स्मारक बनाने वालो को चदा दने से इन्कार किया है। इमी पुस्तक का 45 वाँ अध्याय इसी सम्बध म देखने योग्य है।

इस दृष्टि से नवकाण्टवादी एफ० ए० लंग से भिन्न थे। लंग द्वारा की गई काण्टवाद[1] की टीका जिसे उन्होंने हिस्ट्री आव मैटीरियलिज़्म के दूसरे संस्करण में विकसित किया है, वह भी काण्ट को बिलानी अनुभववादी तरीके से परखने के अलावा कुछ नहीं। यहां संघटनों को संवेदनाओं में रूपान्तरित कर दिया गया है— और काण्ट ने जहां विचारों के सामान्य रूपों का निर्धारण करने की कोशिश की है और जिसे परम्परागत तत्वशास्त्र के प्रति आदर भाव सहित अनुभव द्वारा सिद्ध किया गया है लंग इन्हीं को मनोवैज्ञानिकता में से ढूंढ निकालने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं कि यह मनुष्य की प्रकृति और उसका स्वभाव है। जो उसी प्रकार के जगत का निर्माण करता है जैसा उसे हम अनुभव करते हैं। शापनहॉवर की भांति, एक बार फिर लंग यह मानने के लिए भी तैयार नहीं कि हमारा अनुभव केवल संवेदनाएं ये हैं न वे वस्तु-स्थिति वालियां की यह बात मानते हैं कि जो अनुभव हमारे संवेदनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन करते हैं वे ही सही अनुभव हैं।

मिल की इस बात से लंग सहमत थे कि संवेदनाओं के अलावा कोई अनुभव सिद्ध करने योग्य हमारे पास वास्तव में नहीं है लेकिन यह हमारे प्रभाव की अक्षमता ही है। मनुष्य को अपना स्वयं का एक आदर्श विश्व निर्माण करके सत्य का एक पूरक खड़ा करना चाहिए। काण्ट को वे आत्मा का सदन निर्माण करने की प्रक्रिया मानते हैं। तत्वदर्शन को वे निरर्थक कहकर छोड़ देते हैं। और ज्ञान की शाखा के रूप में उसकी आलोचना करना समूची स्थिति का मटियामेट कर देना है।—पैलेस्ट्रिना द्वारा चित्रित मास का खण्डनकौन करेगा तथा रफेल कृत मडोना पर कौन अभियोग लगाएगा? बाद में तो धीरे धीरे यह बात भी सामने आने लगी कि तत्वदर्शन एक प्रकार का काव्य ही है।

---

1 कूनो फिशर का हिस्टरी आफ मॉडर्न फिलोसोफी (1860) में लिखा निबन्ध एक्सपोजीशन आव काण्ट्स फिलोसोफी काण्ट पर किया गया प्रथम गंभीर अध्ययन—माना जा सकता है। अरस्तू दर्शन के विद्वान ए० टेण्डेलबर्ग द्वारा इस सम्बन्ध में जो सुवाद (कान्टोवर्सी) खड़ा किया गया है वह काण्ट की विचार धाराओं को अधिक स्पष्ट करने में सहायक रहा है। इस सुवाद का संतोषप्रद जवाब एच० कोहेन ने काण्ट्स थ्योरी आफ एक्सपीरियन्स (1871) में दिया है। लंग की व्याख्या इसी पुस्तक पर आधारित है। यद्यपि 'मारबर्ग' विचारधारा के नव काण्टवादियों ने कोहेन के नेतृत्व में मनोवैज्ञानिकीकरण का काफी विरोध किया था और काण्ट की अफलातूनी व्याख्या पर बल दिया था। द्रष्टव्य कैसियर कृत, एच० कोहेन 1842–1918, सोशल रिसर्च (1943)

लग के अनुयायी जिनम खासतौर पर काण्टवाद के विद्वान वेहिंगर[1] का नाम लिया जा सकता है अपन प्रवतक से भी आग निकल गए है। उनका कहना है कि तत्व दशन के लिए जितना गल्प अनिवाय है उतना ही विज्ञान के लिए भी है। विज्ञान की अणु की खोज ऐसी ही है--चाहे अणु पर प्रस्तुत विचारो म परस्पर असगतिया विद्यमान है।—इसस यहा सिद्ध होता है कि अनुभव के विज्ञान के लिए गल्पात्मकता का होना काफी उचित है। इस गल्पात्मकता के अभाव म आग बढना दशन जीवन और विज्ञान के लिए भी घातक है— विलफाड का बात को गम्भीरता पूवक स्वीकार न करन का अथ विज्ञान का विनष्ट करना धम और तत्वदशन का हत्या करना होगा।

इसी प्रकार के विचार नाटकीय और सशक्त ढग से फ्रेडरिक नीत्शे द्वारा भी व्यक्त किये गये थ। फ्रेडरिक नीत्श एक व्यवस्थित शास्त्रीय विचारक न होते हुए भी अद्भुत प्रतिभा और चमत्कारी साहित्यिक योग्यता के व्यक्ति थ। उन्होने 1886 ई० म प्रकाशित अपनी पुस्तक **बियोण्ड गुड एण्ड ईविल** म लिखा कि सारे दाशनिक ऐसा प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं माना कि उनकी वास्तविक धारणाये स्वविकासशील शुद्ध नियोजित एव एक तटस्थ दनिक द्वन्द्वात्मकता स नि सृत है जबकि वास्तव म उनके सारे कथन विचार और सुझाव उनकी हार्दिक इच्छाओ के सूक्ष्म और परिष्कृत रूप के अतिरिक्त कुछ नही और ही का लकर वे बाद म अपन तर्कों द्वारा अपना बचाव करते रह हैं। वे एक ऐसी तरह के वकील हैं जो अपने को वकील मानने के लिए तयार नहो। (ब्रेडल द्वारा किया गया तत्व दशन का यह वणन तुलना के योग्य है कि जिसे हम अपनी मूल वृत्तियो पर आधारित मानकर विश्वसनीय मानते हैं तत्व दशन उसी की प्रसिद्धि करता है।) नीत्शे के मनस्तत्व के सिद्धान्त स इसस अधिक कुछ आशा नही की जा सकती उनके लिए विशुद्ध विवक की कोई भी ऐसी स्वतन्त्र विचार-सरणि नही जिसका हमारे भावनात्मक जीवन स पथक कोई प्रदशन योग्य अस्तित्व हो। उन्होने लिखा है विचार हमारी सवेदनाओ का परस्पर सम्बन्ध मात्र हैं। हमारी भावनाओ के सघषण से जो *निरन्तर एक दूसर पर बलाधिकार प्राप्त करना चाहते हैं एक साधन के रूप म दशन का जन्म होता है।* इस तरह वे इस निष्कष पर पहुचते हैं कि कोई भी तक अथवा कोई भी प्रकृतिसम्बन्धी सामान्य नियम दोषपूण होन के लिए बाध्य है। यह एक ऐसा रूप है जिस हमे वस्तुओ पर आरोपित कर देते हैं। वस्तुए अपन आप म इस प्रकार के किसी भी रूप को प्रदर्शित नही करती।

---

1 द्रष्टव्य, **दि फिलासफी आव एज इफ** नामक दशन ग्रथ जो 1877 तक जाकर पूण हुआ लकिन 1911 तक प्रकाशित न हो सका 1924 म हुए अग्रजी अनुवाद म लिखित *लेखक का आमुख देखिए।*

किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि दर्शन के बिना ही काम चल जायगा। उनके अनुसार गलत से गलत धारणाएँ भी हमारे लिए इसलिए अत्याज्य हैं क्योंकि उनकी गलती को अनदेखा करके हम जीवन के सत्य का इन्कार करते हैं।

यदि तत्व दर्शन सम्बन्धी कोई सत्य निर्धारित करना दर्शन का काम नहीं है तो भी एक दार्शनिक के लिए क्या करणीय है? नीत्शे के मत में निश्चय ही उसे अपने आपको एक ज्ञान मीमांसक बनाना आवश्यक नहीं है। दर्शन को ज्ञान के एक सिद्धान्त में बदल देना उसे अपनी मरणावस्था की दुखान्त दयनीय और करुण अवस्था में ले जाता है। उन्होंने ब्रितानी अनुभववाद पर यह अभियोग लगाया था कि वह पूर्णतः दार्शनिक आत्मा का दूषितीकरण है। एक दार्शनिक का इसमें भी बड़ा काम है और वह है एक संस्कृति के शरीर चिकित्सक के रूप में कार्य करना। वह एक मुक्त आत्मा है जो हमारे जीवन के दृष्टिकोण को निर्धारित मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि देकर रूपान्तरित करता है। ईसाइयत, समाजवाद परहित-वाद (आल्ट्रूइज्म) ये सब नीत्शे के अनुसार पतन के प्रतीक हैं और जीवन को हीन मानने के लक्षण हैं। इन प्रत्ययों की गरीबी और संकीर्णता को छोड़कर ही दार्शनिक एक शक्तिशाली दर्शन के विकास में सहायता कर सकता है।[1]

नीत्शे के दर्शन में एक दार्शनिक की यह व्याख्या कि वह मानव जीवन के तौर तरीकों का व्याख्याता है—वर्तमान योरपीय दर्शन में व्यापक रूप से स्वीकृत हुई और इसका सर्वाधिक प्रभाव वहीं पड़ा।

इंगलैण्ड में यह बुद्धि प्रतियोगी भाव चाहे कम विशद रूप में ही क्यों न हो पर प्रवर्तन में अवश्य था और इसे विशेषकर दो प्रसिद्ध दार्शनिकों ने जो अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे—अपनाया। इनमें से पहले विचारक कार्डिनल

---

1 नीत्शे पर लिखा गया साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। 1934 से लेकर 1945 के मध्य ही लगभग उन पर 400 पुस्तकें और कुछ निबंध प्रकाशित हुए हैं। अंग्रेजी में नीत्शे साहित्य बहुत कम मात्रा में है। द्रष्टव्य डी० हलेवी कृत द लाइफ आव फ्रेडरिक नीत्शे (1909) डब्लू ए काफमन कृत नीत्शे (1950) एच सी बपजस्टन कृत फ्रेडरिक नीत्शे (1942)। किन्तु नीत्शे पर स्तरीय कार्य फ्रांस में ही हुआ है। द्रष्टव्य सी एण्डलर कृत नीत्शे सा वीए ऐट सा पेनसी (छ भाग, 1920-30)। आधुनिकतम जर्मन-व्याख्या के लिए देखिए कार्ल यास्पर्स कृत नीत्शे (1936)। 1922 में प्रकाशित नीत्शे व वेग्नर का पत्र-व्यवहार (अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है) भी देखिए।

जे० एच० न्यूमेन हैं जिन्होने इस 1870 म प्रकाशित अपनी पुस्तक एन ऐसे[1] **इन एण्ड आफ ग्रामर ऑन एसेन्ट** म प्रवर्तित किया। जीवन कार्यानुगामी है यही सिद्धान्त उन्होने इस पुस्तक म प्रवर्तित किया। 'धम को प्रदर्शन योग्य तर्क द्वारा समझना ऐसा ही है जसा एक रसायन शास्त्री से हमारे लिए भोजन बनाने की आशा करना है तथा खनिजनो से चिनाइ का काम।' हम हमारी विवेकशील चेतना ही न कि कोई सिद्ध प्रमाण ईश्वर की ओर ले जाने म सहायक होती है। न्यूमैन की यह पुस्तक धम के नाम पर विस्फोट के इस सिद्धान्त की प्रबल आलोचना थी जिसम उन्होने यह कहा था कि हमे उसी बात पर विश्वास करना चाहिए जिसे हम सिद्ध कर सकते हैं।

ऐ० जे० बल्फोर जसे राजनयिक दार्शनिको की बहुचर्चित रचनाओ म भी इसी प्रकार का दष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। उनके विषय म यह कहा जाता हैं कि राजनयज्ञ उन्ह दशन के लिए पसन्द करते थ और दार्शनिक उन्हे राजनीति के लिए। लेकिन ब्रेडले जसे दाशनिक क लिए जो मृत और अमृत किसी वस्तु का महत्व देना नही चाहते थ व भी आदर क पात्र थे और जेम्स ने अपने लेटस म उनकी प्रशसा म ही कुछ शब्द लिखे हैं। 1879 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक म (**ए डिफेन्स आव फिलोसोफिक डाउट बींग एन ऐसे आन द फाउण्डेशन आव बिलीफ**) बाल्फोर ने इस प्रकार का मन्तव्य यक्त किया है कि उन्नीसवी शती का प्रकृतवाद प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर आधारित है और ऐस सिद्धान्तो को प्रदर्शित नही किया जा सकता। यह। नकारात्मक निष्कष **द फाउन्डेशन आव बिलीफ** का मूल स्रोत है। प्रकृतवाद हमारी नतिक धारणाओ और सौंदय-दृष्टि के प्रतिकूल पडता है जबकि अध्यात्म उन्हे सतुष्ट करता है। यदि प्रकृतवाद प्रदशन योग्य हो जाए तो *अपनी सभी अरुचिकारक अवस्थाओ के सहित यह अध्यात्म की अपेक्षा* स्वीकाय है किन्तु चू कि ऐसा नही है इसलिए हमारी भावनाओ को अवसर मिलना ही चाहिए। वे इसका खण्डन करते हैं कि इस प्रकार भावनाओ क प्रति समर्पित होने से कोई हीनता निहित है। हमारे विश्वास अधिकाशत बुद्धि के जरिए निर्धारित नही होते।

---

1 सी० एफ० हेरल्ड की भूमिका सहित सस्करण द्रष्टव्य। एम० सी० डार्की **द नेचर आव बिलीफ** (1931) एल० स्टीफन **अन ऐग्नास्टिक्स अपोलोजी** (1893) सी० बोनजेंट **ल थियेर द ला सर्तित्यूज दा यूमैन** (1920)। यह घटना 1879 क बाद की है कि पेपल पादरियो ने रोमन कथोलिक धर्मावलम्बियो को अपने जीवन दशन को जानने के लिए एक्विनास जसे दाशनिको की ओर मुखातिब किया। न्यूमेन के लेखो मे—स्कूलमेन का प्रभाव बहुत कम है। उसके मुख्य आदर्श ता हैं लाक और बकले।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बेल्फोर और न्यूमैन के दर्शन में विश्वास की प्रकृति पर चर्चा को ही मूल कथ्य माना गया है क्योंकि यह एक ऐसा विषय था जिस पर ब्रितानी अनुभववादी मनोविज्ञान कभी कोई सतोषप्रद उत्तर न दे सका केवल विश्वास एक सीधे साद विचार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। तो भी परम्परागत मनोविज्ञान में विश्वास के इस प क्ष पर विचार ही नहीं किया गया है। जे० एस०मिल ने अपने पिता द्वारा अपूर्ण छोड़े गए विश्वास के सिद्धा त की समीक्षा की है और ए० बेन ने भी जो परम्परागत मनोविज्ञान की व्याख्या से उतने ही असतुष्ट थे इसके दूसरे विकल्प पर चर्चा की है। उन्होंने विश्वास की व्याख्या यह की है कि यह वह अवस्था है जिस पर कोई मनुष्य कार्य करने को सहज प्रवृत्त हो जाता है। सी० एस० पीयर्स के अनुसार अर्थक्रियावाद इस परिभाषा के काफी निकट पड़ता है। इस तरह ब्रितानी अनुभववाद एवं जर्मन स्वच्छन्दतावाद जिस पर ब्रितानी दार्शनिकों का प्रभाव रहा था दोनों ही एक दिशा में प्रवाहित हो रहे थे। वे यह मानने लगे थे कि कार्य के लिए हमारी तत्परता ही हमारे विश्वास का आधार है।

चार्ल्स रेनोवियर की[1] विचारधारा में जर्मन और ब्रितानी अनुमानों का मिश्रण दिखाई दे सकता है। चार्ल्स रिनोवियर जो कि फ्रांस की नवकाण्टवादी विचारधारा के नेता थे लॅग की ही भांति काण्ट के आधार पर ही ब्रितानी अनुभववाद का संस्करण कर रहे थे। उन्होंने ऐसेज इन जनरल क्रिटीक (1954–64) में लिखा है कि वस्तुएँ ज्ञान की प्रक्रिया में केवल सघटन मात्र है। और सगठन ही वस्तु है। किन्तु फिर भी वे बर्कले की भांति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते कि वस्तुएँ अपने अस्तित्व के लिए 'मुझ' पर आधारित हैं जिसमें मुझ पर कहता हूँ वह स्थिति स्वयं प्रतिनिधि स्थितियों का समन्वय मात्र है। जिस किसी भी भांति इसी प्रकार के अन्य समन्वयों पर जैसे उसे अथवा मुझ से बाहरी किसी अवस्था' पर कोई वरिष्ठता प्राप्त नहीं है।

---

1 उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के फ्रांसीसी दर्शन में रिनोवियर एक प्रभाव स्तम्भ के रूप में रहे हैं। 1890 में स्थापित प्रसिद्ध पत्रिका, ले एनी फिलोसोफी के सम्पादक एफ० पिलोन थे, जो रिनोविय के शिष्य थे। उनके दूसरे शिष्य एल प्रेट 1937 में प्रकाशित चार्ल्स रिनोवियै फिलोसोफे के लेखक थे। रिनोवियर सबधी फ्रांसीसी साहित्य में जी० सी० प्लेस कृत ला फिलोसोफी दे चार्ल्स रिनोवियर 1905, आर० वेर्नियो कृत रिनोविया डिसाइपेल दे काण्ट (1945) द्रष्टव्य। एम० जे० होगसन कृत मिस्टर रिनोवियस फिलोसोफी (माइण्ड 1881) जे० ए० गन कृत रिनोवियर (1932 का फिलोसोफीकल जर्नल) सदृश लोगों द्वारा ब्रितानी अनुभववाद की एक कठिन परम्परा का निर्वाह किया गया है।

यह नानमीमासा उन्हे जम्स क बहुत करीब ल आती है। लकिन जम्स मिल क दशन म इसी प्रकार हा रहे विकास क निकटतम द्रष्टा थ इसलिए अनुभववाद उनक लिए कोई इन सबस बडी बात नही थी।[1] फिर भी व किसी ऐस दशन म सतुष्ट नही हो सकते कि जिसका आधार अनुभव न हा। रिनोवियर म जा बात उन्हे रुची वह यह थी कि उन्होन उनक अनुभववाद का इच्छाशक्ति क साथ पूण क्षमता स जोड दिया था। अनुभववादिया की यह परम्परा नियतवादी थी।

लकिन जेम्स की स्वय की स्थिति उनक इस निष्कष क कारण दयनीय हा गई कि हम भौतिक नियमा से पूणत अनुकलित है—हमारी इच्छा का कोई भी अश भौतिक नियमो क परिणाम क अतिरिक्त और कुछ नही है। उनका यह निष्कष उनक अनुभववाद के अध्ययन और जीव विकास विनान म आस्था के आवश्यक परिणाम थ। इस सिद्धा त क प्रतिकूल उनकी स्वय की प्रकृति न विद्राह किया था और वह एक ऐसी गफलत की स्थिति म आगए थ जिसस व आजीवन मुक्त न हा सके।[2]

इस तरह 1859 म रिनोविया द्वारा किया गया **एसेज इन जनरल क्रिटिसिज्म** म इच्छा शक्ति का समथन जेम्स क लिए मुक्ति का सदेश सिद्ध हुआ। इस स्वीकार करते हुए उन्हान मरणोपरा त प्रकाशित हुई अपनी पुस्तक **सम प्रोबलम्स आव फिलोसोफी** (1911) के आमुख म लिखा कि मैं जिस एकेश्वरवादी ग्रथ विश्वास म चला गया था उससे मुझ यहाँ मुक्ति मिली है। यद्यपि व रिनोविया की बाद की रचनाओ की तत्वमीमासक दृष्टि स सहमत नही थ फिर भी उनके प्रति जेम्स के आदर म कोई कमी नही आई। रिनोविया की इस बात से व आश्वस्त हो गए थ कि अनुभववाद और स्थितिवाद के बीच कोई मध्यस्थिति कायम भी की

---

1 मिल के एक हावड मित्र चासी राइट द्वारा ब्रितानी अनुभववाद का एक कट्टर सस्करण प्रस्तुत गया था। द्रष्टव्य, डब्लू जेम्स कृत **चान्सा राइट** (कलक्टड ऐसज एण्ड रिव्यूज, 1920) जी० कनडी कृत द प्रेग्मटिक नेचुरलिज्म आव चासी राइट' (**कोलम्बिसा स्टडीज इन द हिस्टी आव आइडियाज** ग्र क 3 1935) और ई० एच० मडन द्वारा द चाल्स पर लिखित लेखा की एक श्रृखला जो विभिन्न पत्रिकाओ म प्रकाशित हुई है। इनकी सूची के लिए उनका आखिरी लेख देखें (आर० एम० 1956) राइट के निबधा का सग्रह **फिलोसोफिकल डिस्कशस** (1877) म लख।

2 द्रष्टव्य उनक लेटस (सपादक हेनरी जम्स जूनियर 1920) और (1925 ई० आर० ऐम० एम०) मे पुन मुद्रित रेनोविया क साथ उनका पत्रव्यवहार। मिल अपनी **आटोबायोग्राफी**, मे कहते है कि उन्हे इसी प्रकार अनुभव हुआ था।

जा सकती है और जेम्स की विचारधारा का प्रमुख उद्देश्य यह मध्य स्थिति कायम करना ही था।[2]

1895 म प्रकाशित उनके निबंध द विलटू बिलीव की यही पृष्ठभूमि है। एग्लो-सक्सन देशो म योरपीय दर्शन की विकासमान धाराओ के प्रति जो अज्ञान फला था वह सम्पूर्ण इस निबंध की प्रतिक्रिया के रूप म देखा जा सकता था। जेम्स का मूल कथ्य सरल शब्दो मे यह है कि मनुष्य प्रमाण स बाहर जान स अपन को रोक नही सकता। उन्होने अपन लेख द सेन्टीमेंट आफ रेशनलिटी (1879) म यह लिखा था कि किसी भी मानसिक प्रक्रिया द्वारा शाब्दिक तौर पर किय गय प्रमाणो के आधार पर तथा सम्भावना का सतर्क अनुमान लगा कर किया गया वेहूदा अमूर्तीकरण और वह भी एसे वहूद विभाजन द्वारा जिसम अनुमानकर्त्ता और अनुमान मात्र ही अवस्थित रहत है वास्तव म अनावश्यक ह और असभव भी। दूसर शब्दो म यह क्लिफोर्ड का ही अनुकरण मात्र है।

यह तय करन म कि प्रयोगशालाओ म किए गए परीक्षणो अथवा एक रहस्यवादी की स्वीकारोक्तियो मे स किस बात का प्रमाण माना जाए, जेम्स क

---

2 चरित्रकथा क लिए द्रष्टव्य सी० एच० ग्रेटन कृत द थ्री जेमसेज (1932) यह परी के प्रशसनीय एव विशाल ग्रथ थाट एड केरेक्टर आफ विलियम जेम्स क अतिरिक्त देखने योग्य है। उन लोगो के लिए जो केवल विलियम जेम्स के सबंध म सूचना ही प्राप्त नही करना चाहते हैं, उनके द्वारा १९१३ म प्रकाशित कृतिया ए स्माल बाय एड अदस और 1914 म प्रकाशित नोटस आफ ए सन एण्ड ब्रदर। देखें, 1908 म प्रकाशित एसेस फिलासोफीकल एण्ड साइक्लोजिकल इन आनर आव विलियम जेम्स। 1942 म प्रकाशित इन कमेमोरेशन आव विलियम जेम्स, ई वाउट्राउ कृत विलियम जेम्स (1911) अग्रेजी अनुवाद 1912 टी फ्लोरवोय कृत द फिलोसफी आफ विलियम जेम्स (1911) अग्रेजी अनुवाद (1997) टी ब्लाक कृत विल्यिम जम्स स थौरी डे ला कोनाइ सेंस एट ला बेरी टे (1933), जी सेन्टयाना कृत केरेक्टर एड ओपिनियन इन युनाइटड स्टेटस (1820), जे० रायस कृत विलियम इन द जम्स एण्ड अदर एसेज आन द फिलासफी आफ लाइफ (1912) जान ड्यूई कृत केरेक्टर एण्ड ईवेन्टस (1992)। एफ० सी० एम० शिलर कृत विलियम जेम्स ए ड ए पिरिसिज्म (जे० पी० 1928), आर० पी० परी कृत आन द स्प्रिट आफ विलियम जेम्स (1932) एव द फिलासफी आफ विल्यिम जेम्स (पी० आर० 1911)। परिशिष्ट के रूप म रीसेन्ट फिलासफीकल टेन्डन्सीज। विशेषत आस्था मूलक इच्छाशक्ति के लिए द्रष्टव्य डी० एम० मिलर कृत जेम्सेज डोक्ट्रिन आव द राइट टू बिलीव (पी० आर० 1972) एल० टी० हॉवहाउस कृत फेथ एण्ड द विल टू बिलीव (पी० ए० एस 1903)

अनुसार स्वय हम इस निष्कष पर ग्राना पडता है कि हम पूणत प्रमाण के ग्राधार पर चल नही सकने। और न प्रमाण क पक्ष म लिया गया यह एकल निणय पर्याप्त ही है। अपने ग्रापको यह कहना असभव है कि मैं केवल प्रशिक्षित वनानिको क अनुभव और पयवक्षणो के अतिरिक्त किसी भी वस्तु को प्रमाण नही मानूँगा। और नब मे भ्राग बढूंगा। क्योकि हम चाहे अथवा न चाहे हमारे लिए निश्चय ही कुछ ऐसे मामले है जिनम हम मात्र प्रमाण स बाहर की अवस्था का स्वीकारना पडता है क्योकि वहा प्रमाण पर्याप्त नही होते।

यहा ग्राकर जेम्स नवकान्टवादियो के ग्रनीश्वरवाद का स्वीकार कर लेते हैं। तत्वदशन की मूलभूत चर्चा म तो प्रमाण का उसके अनुसार प्रश्न ही नही उठता। विशुद्ध धार्मिक अनुभव म निहित सत्य को बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा समझाया जा सकने का प्रयास पूणत निराशाजनक है यह बात उन्होने 902 म प्रकाशित **द वराइटीज ग्राव रिलीजस एक्स्पीरिएन्स** नामक पुस्तक म लिखी है। लेकिन इमस यह निष्कष निकालना कि हम ईश्वर पर किसी प्रकार की ग्रास्था को अपनी स्वीकृति नही देनी हैं, जेम्स के अनुसार इस प्रकार यवहार करने का निश्चय करना है मानो ईश्वर नामक कोई सत्ता अस्तित्व म नही है। लेकिन इस निष्कष का भी तो कोई प्रमाण नही है। इस प्रकार की अनिश्चयात्मक अवस्थाओ मे स हो एक का चुनाव करने का अवसर रहता है और वही हमारी ग्रास्था का अधिकृत रूप है। हमारी भावनात्मक प्रकति न केवल निश्चयात्मक रूप स दो प्रस्तुत अवस्थाओ म स एक का चुनाव कर सकती है बलिक उस की प्रकति ही कुछ ऐसी है कि वह उनम से एक का तो वरण करेगी ही। और हमारा यह वरण कब और कसे साथक होगा इस बात का निणय बौद्धिक धरातल पर नही किया जा सकता क्योकि इस प्रकार की परिस्थिति मे यह कहना कि कोई निणय मत लो' और प्रश्न को खुला छोड दो, स्वय अपने ग्राप म एक भावनात्मक निणय ही है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या स्वतत्र इच्छाशक्ति अथवा नियतिवाद के लिए प्रस्तुत बौद्धिक जिज्ञासाओं के समय कोई ऐसा सही विकल्प रहता है जिसे निणयात्मक कहा जा सके ? जेम्स क लिए इस प्रकार की कोई सृष्टि रहने योग्य नही है जिसम विविधता और नवीनता अपने मौलिक रूप म विद्यमान नहा। यही कारण था कि वे स्पेन्सर की उबा देने वाली स्थितिया और परमात्मवादियो की ठोस सृष्टि की धारणा क बजाय रूमानी स्वत स्फूतता को महत्व देते थे। वह इस बात को स्वीकार करने को तयार थे कि उनकी व्यक्तिगत अभिरुचियाँ प्रस्तुत स्थिति का कोई हल नही निकाल सकती। किन्तु फिर भी उनके लिए कम स कम इस बात का कोई अ तिम जवाब नही दिया गया है। रिनोवियै ने भी उन्हे अनुभववाद और इच्छाशक्ति दोनो का एक साथ बचाव कर सकने की सम्भावना का सुझाव

दिया था। लेकिन जेम्स का विचार था कि रिनोवियर की बजाय सी० एस० पीयस द्वारा नवीनता के बचाव मे लिखे गये लेखो से कही अधिक तात्त्विक मान्यताएँ ग्रहण की जा सकती थी।

पीयस ने जेम्स से अपनी विचारधारा को श्रेष्ठ बताते हुए लिखा है कि वह इतना जीवन्त और ठोस है कि मैं जो सूक्ष्म हू और दुविधा म पडा हुआ हू उसके समक्ष केवल विषयो की एक तालिका मात्र रह जाता हूँ।[1] अन्य स्थानो पर उनके ध्य क उपकरण टूटते हुए स नजर आते हैं जब वे जेम्स के द्वारा प्रयुक्त अटपटी प्रणाली पर विचार करते हैं। परशानी के इन क्षणो म उस समय और भी असाधारण उत्तेजना आ जाती है जब जम्स चुपचाप अपने आपको पीयस की शिष्य परम्परा मे सम्मिलित होता हुआ दखते है। इसक बावजूद भी जा तथ्य शेष रह जाता है वह यह है कि पीयस की विचारधारा म कुछ ऐसे अ श भी हैं जिनकी यदि जेम्स की भी मौलिक व्याख्या की जाय तो बहुत अच्छे ढग से वे जम्स के उद्देश्यो की पूर्ति करते हुए ही लगत हैं।

पीयस का भाग्यवाद (टाइकिज्म) यहाँ चर्चा का विषय बन सकता है। जेम्स की ही भाति पीयस ने प्राकृतिक नियमो के यन्त्रीकृत विचार का खण्डन किया है– इस विचारधारा के अनुसार कोई भी नियम एक क्रूर तथ्य है। यह पूछना कि एक नियम दूसर क मुकाबले म क्यो किसी परिस्थिति म अपेक्षाकृत अधिक लागू होता है एक ऐसे प्रकार का प्रश्न खडा करना है जिसका इस प्रकार की प्रणाली म कोई भी उत्तर सम्भव नही हैं। इसलिए पीयस के करीब कोई नियम एक ऐसा

---

1 पीयस के बहुविध लख भाषण और दापपूर्ण प्रारम्भ सभी 1939 म हाटशोन और वीस द्वारा सम्पादित कलक्टेड पेपस में सग्रहीत हैं। एम० आर कोहिन द्वारा 1932 मे प्रकाशित चांस लव एण्ड लौजिक म इस सम्ब ध म किया गया चयन अच्छा है। जे० बूचलर कत फिलासफी आफ पियस म भी पीयस क सम्बन्ध म काफी प्रकाश डाला गया है। द्रष्टव्य स्मृति अ क (जे० पी० 1916) जे० बूलचर कत चालस पीयर्सेस एम्पीरिसिज्म (1939) टी० ए० गाउज कत द थौट आफ सी० एस० पीयस (1950) सम्पादक पी० पी० वानर एण्ड एफ० एच० यग, स्टडीज इन द फिलासफी आफ सी० एस० पीयस (1951), डब्लू बी० गली कृत पीयस एण्ड प्रेग्मेटिज्म (1951) ई० नजल कत चाल्स सी० एस पीयस, पायनीयर आव मोडन एम्पीरिसिज्म (1949) (पी० एस० सी), आर० बी० प्रेयवट कृत माइन्ड 1934 के अ क म कलक्टेड पेपस का रिव्यू, जे० एच० मूरहैड कत द प्लेटोनिक ट्रेडीशन [1931]। पीयस क द्वारा जम्स को लिखे गये पत्रों क लिए ग्रेपरी कत थॉट एण्ड करेक्टर।

अभ्यास है जो भौतिक पदार्थों द्वारा शन शन ग्रहण कर लिया जाता है। और काई भी स्थिति इन नियमो के आधार पर पूर्णत वर्णित की जा सके ऐसी नही है। किसी भी समय एक सयोग अचानक शेष रह सकता है और इस प्रकार के सयोग उस समय तक शप ही रहग जब तक कि समस्त सृष्टि एक पूर्ण, विवकपूर्ण और एक ऐसी नियोजित व्यवस्था म नही बदल जाती जिसम सुदूरतम भविष्य की अनन्त कल्पना का मस्तिष्क म पारदर्शी अवस्था तक स्पष्ट कर धारण न कर लिया हो।

भाग्यवाद (टाइकिज्म) की तीन अवस्थाय हैं-(1) तत्वमीमासा जिसके अनुसार यह ससार स्पेसर की भाषा म एक निर्वैयक्तिक ऊहापोह की भावना से एक विवकशील और व्यवस्थित प्रणाली की ओर विकसित हो रहा है (2) विज्ञान दशन जिसके अनुसार प्राकृतिक नियम अपेक्षित नियमितताए हैं और उनके अतिरिक्त कुछ नही है। (3) व्याख्यात्मक सिद्धान्त जिसके अनुसार उन सब वस्तुओ के लिए जिनम विवेक की आवश्यकता रहती है नियम ही परम सत्ता है। यह उस सामान्य धारणा के विपरीत है जिसम व्याख्या को किसी नियम से जुडा हुआ ही माना गया है। जेम्स के दशन म दूसरी ओर भाग्यवाद एक ऐसी युक्ति का काम करता है जिसम बुद्धि की माग को महत्व नही दिया गया है। और अनिय मितताओ को एक अकथनीय क्रूर तथ्यो के रूप म प्रस्तुत किया गया है। यह एक एसा प्रस्ताव था जिसे स्वीकार करना पीयस के लिए उतना ही कष्टप्रद था जितना यह सिद्धान्त कि नियमितताए केवल घटित हो जाती हैं। वास्तव म जेम्स यह मानने लगे थे कि पहले उन्होने तारतम्य को आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया था। कम स कम उस उस अवस्था तक तो पुन परिभाषित किया जाना आवश्यक था जिस समय तक वह परिपूर्ण न हो। दर असल प्रकृति म कोई वास्तविक उछाल नही है। एक बार फिर वे पीयस म इस मामले म अपील करते हैं और विशेष कर उनके पूर्णाशवाद (साइनसिज्म) के सम्बध म उन्होने 1903 म बाल्डविन द्वारा तयार की गई डिक्शनरी आफ फिलासफी एण्ड साइकालोजी मे लिखा कि वह एक एसी दाशनिक वृत्ति है जो निरतरता के सिद्धान्त को प्रमुख स्थान देती है। और विशेषकर वास्तविक निरतरता के प्रमेय के रूप में होने की आवश्यकता पर भी बल देती हैं। पीयस ने रेखाकित शब्दो पर विशेष बल दिया है। वह इस प्रकार भी मा यता को हटा देना चाहते है कि कही पर भी पूर्ण अकथनीयता विद्यमान रह सकती है। प्रत्येक वज्ञानिक कथन उनके अनुसार एक प्रकार की निरन्तरता को ही व्यक्त करता है। यह एक ऐसी अवस्था की ओर सकेत करता है जिसम और विशेष ताए खोजी जा सकती हैं और कुछ ऐसे मामले अभी भी शेष रह गय हैं जिनका स्पष्टीकरण किया जाना बाकी है। उदाहरण के लिए पूर्ण निरन्तरता-रहित परमाणुओ के अस्तित्व के लिए प्रमेय बनना विज्ञान की आत्मा के विरुद्ध एक पाप

है क्योंकि परमाणुओं को यदि निरन्तरता हीन मान लिया जाय तो फिर वे ग्राग की वैज्ञानिक जाँच पड़ताल के विषय नहीं बन सकते।

जेम्स का भाग्यवाद इससे बिल्कुल भिन्न था। उन्होंने अपने निबन्ध ग्रान द नेचर ग्राव रियलिटी एण्ड चेंजिंग जिसे उन्होंने ए प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स नामक 1909 में प्रकाशित ग्रन्थ के परिशिष्ट में दिया लिखा था कि नवीनताओं को स्वीकार करने में जो सामान्य आपत्ति है वह यह कि एक साथ शून्य में उछाल लेने के कारण ये नवीनतावादी संसार की प्राकृतिक निरन्तरता को छिन्नविच्छिन्न कर देते हैं। पीयर्स इस आपत्ति का निवारण भाग्यवाद और पूर्णाशवाद अथवा निरन्तरता के सिद्धान्त को एक साथ मिलाकर कर देते हैं। उनका कथन है कि नवीनता जिसे हम अनुभव द्वारा प्राप्त करते हैं, उछल कूद से सिद्ध नहीं की जा सकती। यह तो हमारी अब तक की अनभिज्ञता में से ही निकलकर आ जाती है। इस प्रकार जेम्स का पूर्णाशवाद यह आशय व्यक्त करता है कि परिवर्तन निरन्तर विद्यमान है नवीनताएं पुरानी स्थितियों में से ही विकसित होती हैं उनमें वैसी ही विद्यमान नहीं होतीं। इस बात को प्रत्ययवादियों (रेशनलिस्टस) ने गलत मान लिया था।

एक परम्परा कायम करने की चाह के कारण जेम्स ने पीयर्स के पूर्णाशवाद को हेनरी बर्गसां व डिवनीर रील के सिद्धान्त से मिलाया था उससे पीयर्स सन्तुष्ट नहीं हुए थे। 1909 में उन्होंने जेम्स को लिखा था कि दर्शन के क्षेत्र में से जो एक मात्र कार्य करने का प्रयास कर रहा हूं वह यह है कि मैं बिखरे हुए विचारों को अधिक यथातथ्य विश्लेषण कर सकूं। बर्गसां के साथ मुझे एक श्रेणी में रखना मेरी भावनाओं को इसलिए सन्तुष्ट नहीं कर सकता कि वह सभी प्रकार की विशेषताओं को एक साथ मिला देने का सुन्दरतम प्रयास करना चाहते थे। पीयर्स के लिए या तो दर्शन एक विज्ञान था अथवा कुछ भी नहीं और उनकी यही बात उन्हें बर्गसां और जेम्स दोनों से एक साथ अलग करती है। इच्छाशक्ति में आस्था के सिद्धान्त ने उन्हें धक्का पहुंचाया था और उनके मतानुसार जेम्स-बर्गसां की पद्धति का पूर्णाशवाद दर्शन के लिए आत्महनन करना था। (जेम्स)[1] और बर्गसां दोनों ही एक आश्चर्यजनक अंश तक विज्ञान की प्रकृति और सीमाओं के सम्बन्ध में एक ही प्रकार के निष्कर्ष पर पहुंचे थे।

---

1 एच डब्लू कार कृत हेनरी बर्गसां द फिलासफी ग्राव चेंज (1911) ग्रार० टी फ्लुएलिंग कृत बर्गसां एण्ड पर्सनल रीयलिज्म (1020), जे० ए० गन कृत बर्गसां एण्ड हिज फिलासफी (1920), ए० डी० लिन्डसे कृत द फिलासफी ग्राव बर्गसां (1911) जे० मकेस्टीवट कृत ए क्रिटीकल एक्सपोजीशन ग्राफ बर्गसां फिलासफी (1911), एच० एम० केलन कृत विलियम जेम्स एण्ड हेनरी बर्गसां

जेम्स के लिए बगसाँ का यह महत्व था कि उन्होने बुद्धिवाद के विरुद्ध सघष करने मे उन्ह बल प्रदान किया था। जेम्स हमेशा यह विचार करते रहे और उन्होंने उस अपनी पुस्तक ए प्लूरलिस्टिक युनिवस म भी बताया है कि बौद्धिक कठिनाइया का उत्तर भी बौद्धिक होना चाहिए। उन्होने बगसाँ के इन विचारो का उत्तर देने के लिए कि हमारे आस पास बिखर हुए जगत की विविधता, बहुलता और नवीनता का मात्र माया के अतिरिक्त दिखाया जा सकना असमव सा है एक नयी तक प्रणाली की खोज की थी। बगसाँ ने उन्ह इस बात पर आश्वस्त कर दिया था कि उनकी यह खोज व्यथ थी जबकि सचाई तो यह है कि तकशास्त्र का सामान्य धारणाओ पर ही काम चलता है।

ए प्लूरलिस्टिक यूनिवस नामक अपनी पुस्तक मे जेम्स सदा इस धारणा स आक्रान्त रहे है कि बुद्धिजीवियो की कठिनाइयो का उत्तर भी बुद्धिसम्मत होना आवश्यक है। अपने चारो ओर जगत म व्याप्त विविधता, बहुलता और नवीनता के लिखे जिन्ह ब्रेडले माया स अधिक कुछ नही मानते थ जेम्स ने एक नई तक प्रणाली की खोज करके ब्रेडले की धारणा की असमा यता की ओर सकेत देने की कोशिश की है। बगसाँ न उन्हे यह विश्वास दिला दिया था कि उनकी खाज निरथक है—क्योकि वास्तविकता ता यह है कि तकशास्त्र जिसका सम्बन्ध एक सामान्य विचार की खोज करना है जीवन का सही निरूपण करने के लिए उपयुक्त माध्यम नही है और न ही वह सत्य को अपने सम्पूण रूप मे देख पाता है। जब विचारवाद जीवन को स्वय एक विचारवादी औचित्य देने का प्रयत्न करता है ता वह ता एक ऐसी चुनौती की भाति है जो अपने ही काय म न्यस्त किसी व्यक्ति को विदेशी भाषा म दी गई है।

बगसो का दशन—जिसका समारम उन्होन अपनी पुस्तक टाइम एण्ड फ्री विल (1910) म किया था समय के विश्लेषण से प्रारभ होता है। व समय को दो तरह से बाटते हैं—(1) पहला जसा हम उस विषय म सोचते है तथा (2) समय

(1914) बगसा फ्रासीसी अध्यात्मवादी दाशनिको के मत के मानने वाल है और अपना प्रभाव मैनेडीबिरा से ग्रहण करते हैं। द्रष्टव्य, एच० गाहिय कृत मैनेडी, बिरॉ एट बगसा (लेस एटयूडिस बगसोनिएनस अक एक 1948) और उन्नीसवी शताब्दी के उत्तराध मे जिसका प्रतिनिधित्व एफ रेवसन जे लसेलियर एव ई बाउट्राउ जसे दाशनिको द्वारा किया गया जिन्होने नवकाटवाद के साथ फ्रासीसी परम्परा जोडी थी। द्रष्टव्य ए० लवजाय द्वारा माइण्ड 1613 मे लिखित सम एन्टीसीडन्टस आव द फिलासफी आव बगसा नामक लख। रवीसन के लिय दख, बगसा लाइफ एण्ड वकस आव रेवीसन (1904), त्रिएटिव माइन्ड (1946) म पुन प्रकाशित। लेशलियर के लिय देखें ए राबिन्सन द्वारा लिखित शोकलेख (माइन्ड

जसा हम उसे अनुभव करते हैं। वचारिक दृष्टि स समय वरिमा (स्पस) म मिला हुआ है-और उस एक एसी सरल रेखा की भाति वर्णित किया गया है-जिसम क्षण बिन्दुओ के रूप म उसकी पूर्ति कर रहे हैं जबकि अनुभूत समय अवधि का व्यक्त करता है-और वह क्षणो का अनुसरण नही है। वह एक अविभक्त निरन्तरता मे प्रवाहित रहता है। प्रवाह हमारे सम्पूर्ण अनुभवो की ही मूलभूत प्रकृति है। हमारे अनुभव चेतनावस्था के स्पष्टत रेखांकित आकलन नही है। हमारे अनुभव की अवस्थाए एक दूसरे म पिघलकर एक हो जाती हैं और एक सावयव पूर्णक (आर्गेनिक होल) का निर्माण करती है।

हम क्यो सामान्य तौर पर इससे उलटा सोचते हैं हम क्यो वस्तुओ को विभिन्न और विशिष्ट रूप म दखते है-समय को क्षणो म रचित एव वरिमा को बिन्दुओ से निर्मित दखते हैं यह सब बगसो के अनुसार इसलिए है कि हमारा मन अपनी व्यावहारिक सुविधा के लिए इस निरन्तर प्रवाहित समय को इस वास्तविक होते रहने की प्रक्रिया को खण्ड २ देख लेना चाहता है और उन्ह स्पष्टत परिमाप णीय, सरलता म ग्राह्य एव विचारसत्ताओ म निरूपित कर लेना चाहता है।

बगसा का मत है कि इस प्रकार के विभागीकरण स उस समय तक कोई हानि नही है जब तक कि उपयुक्त विचार सृष्टि को स्वय सत्य ही न मान लिया जाय। क्योकि ऐसा भ्रम सरलता स उत्पन्न हो सकता हैं, हमारी भाषा अपनी पूव परिभाषित सामाओ के शब्दा का प्रयोग करती है। यही आकर हम शब्दो और अनुभवो को एक करके उनके द्वारा अनुभवो के ससार को प्रतीक रूप म व्यक्त होता हुआ स्वीकार कर लेते है।

1919), टी० ग्रीनवुड द लाजिक आव ज्यूल्स लशलियर (पी० ए० एस० 1934) ई० जी० बलाड जूल्स लशलियस आइडियलिज्म (आर० एस० 1964)। बाउट्राउ की बहुत सी कृतिया अग्रेजी म अनूदित हो चुकी हैं। इनम सर्वोत्तम है द कन्टिजेन्सी आव द लॉज आव नेचर (1874 अग्रेजी अनु० 1916)। 'स्पष्ट एव सुभिन्न सनिकर्षों' की कार्टेजियन परपरा के, जिसे बगसा ने खडित करना चाहा था समथको की कमी नही थी। दखिये जे० बेन्डा बेल्फगोर (1918 अग्रेजी अनु० 1929) तथा द ट्रेजनआव द इन्टेलेक्चुअल्स (1928)। फ्रांसीसी साहित्य पर विशेष कर प्रूस्ट पर बगसा का काफी प्रभाव रहा है। उदाहरणाथ देख, एफ० दलात्र बगसा एत प्रूस्त एकाडम ऐन डिमोने सेज ले एत्यूदिस बगसानियनिस 1948)। यह अवश्य ही स्मरणीय है कि गाइड ने अपने जनल्स (भाग 4) म यह टिप्पणी की थी कि भावी इतिहासकार बगसा के प्रभाव को बढ़ा कर रख सकते हैं केवल इसलिय कि उन्होने युग-चेतना का बहुत बडी मात्रा म प्रतिनिधित्व किया है।

यहा तक तो बगसा का मत असाधारण तौर पर जम्स क द्वारा निधारित अनुभव के वृत्तात स मिलता है। जम्स न 1890 म प्रकाशित अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी म अनुभव का आत्मचतन-प्रवाह की सना दकर कुछ इसी प्रकार की धारणा कायम की है। यहा जम्स न इस बात की ओर भी ध्यान आकर्पित करने का प्रयास किया है कि परम्परागत अनुभववाद का मूलभूत दोप इस बात म था कि उन्होन अनुभव का पृथक सवेदनाओ[1] और प्रभावो के रूप म ही परिभापित किया है। चतना कभी भी खण्ड खण्ड प्रकट होती हुई नही लगती। यह जुडी हुई नही है—यह तो सतत प्रवहमान है। प्रारभ स ही हमारे अनुभव-जेम्स के अनुसार-सम्बन्धमूलक होने लग जात हैं। और यह एसा तथ्य है जो हमार ध्यान स इसलिए उतर जाता है कि हमारी व्यावहारिक सुविधा क लिए हमारी वाणी केवल अपने अनुभव के साथक अ शो को ही ग्रहण करती है और प्रवहमान अवस्था का उसके लिए अस्वीकार करती चलती हैं—यही बात बगसो ने भी कहा है। लकिन बगसो तादात्म्य के तक-सिद्धात को बडी आसानी से खण्डित करने म सफल हुए है जो उनके ही अनुसार जेम्स द्वारा प्रयास करने पर भी सभव न हो सका था।

---

1 1880 मे एरिस्टोटेलियन सोसाइटी की स्थापना करने वाले 19 वी शती के एक अद्वितीय व्यक्ति शेडवथ होगसन की विचारधारा के जेम्स काफी ऋणी है। प्रारभ म रुचिवान नौसिखियो के एक दल न जिसका नाम एरिस्टाटलियन सोसाइटी रखा गया था लन्दन दशन का आधार बनाया और आक्सफोड म प्रत्ययवाद के विरुद्ध अनुभववाद के नजदीक दशन को ल जाने का श्रेय प्राप्त किया। ब्रितानी दाशनिका क सस्थान क रूप म यह सर्वाधिक नात सस्थान है और एरिस्टोटेलियन सोसाइटी के प्रोसीडिंग्स अपने आप म ब्रितानी दशन के क्रमबद्ध इतिहास हो गए हैं। होगसन, एक सीमा तक उन सभी वादा के पक्षपाती रह जस भौतिकवाद, नियतिवाद और अफ्लातूनवाद-जिन्ह जेम्स द्वारा पर्याप्त घृणा मिली थी लकिन *1878 म प्रकाशित द फिलोसोफी आव रिफ्लेक्शन एव 1898 म* प्रकाशित द मेटाफिजिक्स आव एक्सपीरिएन्स म किए गए नानमीमासा सबधी विश्लेपण पर जेम्स की बहुत सी धारणाओ का असर दिखाई दता है। यह बात जेम्स न स्वय मानी है। द्रष्टव्य एच० डबलू० कार द्वारा माइन्ड 1912 म तथा पी० ए० एस० 1911 म प्रकाशित मरणोपरान्त अभिनन्दन (ओबीचुएरी) जी० एफ० स्टाउट की समालोचनात्मक कृति द फिलोशोफी आफ मिस्टर शेडवथ होगसन (पी० ए० एस 1892) एव परी कृत थोट ऐण्ड केरेक्टर आव विलियम जेम्स।

ब्रेडल का विचारधारा का अध्ययन नियतिवाद पर की गई उनकी समालोचना के जरिए किया जा सकता है।[1]

नियतिवादियों के अनुसार एक ही प्रकार के उद्देश्य की बात एक ही प्रकार के व्यक्तियों पर यदि लागू हो तो उनकी परिणति भी एक ही प्रकार से की होगी। यह रूढ विचार निरर्थक है, क्योंकि बर्गसाँ के अनुसार उद्देश्य व्यक्ति और प्रभाव कभी एक से नहीं होते। केवल विचार-सृष्टियों में इस प्रकार की एक जैसी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है जबकि वास्तव में सारे अनुभव प्रवहमान हैं।

तादात्म्य के तर्क से स्वतन्त्रता पर प्रहार करना और हर जगह एकरूपता की बात करना जीवन के प्रतिरोध में हथियार लेकर खड़ा हो जाना है। जबकि वास्तव में इस सिद्धान्त को हम मात्र एक मानवी अनुभवों की व्याख्या कर सकने वाला सुविधाजनक उपकरण ही मानना चाहिए। जीवन पहले है और तर्क उसके किसी भी एक संस्करण से ज़्यादा मूल्यवान नहीं है।

बर्गसाँ की धारणा है कि यदि हम वास्तव में 'जीवन' को समझना चाहें तो हम तर्कशास्त्र द्वारा किए गए स्पष्ट विभाजनों का विस्तृत करना होगा। हम जीवन के उतार चढ़ाव को अन्तःसाक्ष्य से परखना होगा। और हम उसे बुद्धि के हाथों कट्टर व संकीर्ण विभागों में बटकर व्यभिचरित होने से बचाना होगा। जेम्स ने उनकी बातों की व्याख्या इन शब्दों में की," बर्गसाँ कहते हैं यदि आप सत्य को जानना चाहते हैं तो वह इस विश्वास के कारण ही संभव है कि केवल परिवर्तन ही श्रेष्ठ है यद्यपि अफलातूनवाद अपरिवर्तनीयता को ही श्रेष्ठ मानता है। अपना ध्यान जरा देर के लिए संवेदन की ओर ले जाए वह संवेदन जो दैनिक क्रिया है और जिसकी प्रत्ययवाद ने काफी बुराई की है।

प्रगतिशील अनुभववादी जिनकी ओर अन्ततः जेम्स प्रवृत्त हो गए थे बर्गसाँ के इस सुझाव पर गंभीरता से मनन करने का प्रयास करते हैं कि जीवन के प्रवाह में गोता लगा जाओ। अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स में उन्होंने यह अनुभव किया है कि वे पर्याप्त मात्रा में वहाँ पर प्रगतिशील नहीं हो सकते हैं क्योंकि उस समय तक भी वे वस्तु और विचार के द्वैत के बीच संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि विचार निरन्तर क्रियमाण है।

इसके बावजूद भी यह संभव था कि वस्तुओं को जो स्वयं तथ्य हो थी प्रवाहहीन और एक दूसरे से अविच्छिन्न माना जाय। यह एक ऐसी स्थिति थी

---

1 सदर्भ डी बलसिली कृत प्रोफसर बर्गसाँ ऑन टाइम एण्ड फ्री विल (पाइण्ड 1911)

जिसे कोई भी सामान्य बौद्धिक भी सहज रूप से स्वीकार कर सकता था। किन्तु जैसे ही जेम्स ने प्रगतिशील अनुभववाद को स्वीकार किया वैसे ही विचार और वस्तु का भेद उनके दिमाग से गायब हो गया। अब अनुभव का केवल एक ही जगत था—विचार और वस्तुएं केवल मात्र विभिन्न मन स्थितियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे। सामान्य तौर पर अब यह विश्वास किया जाने लगा था कि ज्ञान के क्षेत्र में विचारक और विचारणीय अवस्था में भेद किया जाना सम्भव है। इस बात का जेम्स ने खण्डन किया। मरणोपरान्त 1912 में प्रकाशित अपने एक निबंध ऐसे इन रेडिकल एम्पिरिसिज्म में उन्होंने लिखा मेरी मान्यता तो यह है कि यदि हम इस धारणा को स्वीकार करें कि संसार में केवल मात्र मूलभूत पदार्थ एक ही है जिससे सभी चीजें बनी हैं और हम उस पदार्थ को विशुद्ध अनुभव ही कहें तो ज्ञान सरलता से एक विशेष प्रकार का अपने अनुभव के उपकरणों के बीच विद्यमान पारस्परिक सम्बन्ध के जरिये सरलता से समझाया जा सकता है। हमको न तो वस्तुओं और न चेतना के विषय में ही यह कल्पना करने की आवश्यकता है कि वे ज्ञान का ब्योरा देने के लिए तत्वों के रूप में प्रस्तुत होती हैं।[1]

यदि हम केवल मस्तिष्क में विद्यमान कुछ अनुभवों को अलग करें और शेष को सत्य या वास्तविक मानें तो यह जेम्स के मतानुसार इसलिए है क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों का हमारे अन्य अनुभवों से जोड़ते हैं। वे लिखते कि मानसिक अग्नि वास्तविक लकड़ियों को जला नहीं सकती। मानसिक चाकू तीक्ष्ण तो हो सकते हैं किन्तु वे वास्तविक लकड़ी को नहीं काटेंगे।

वास्तविक पदार्थों में इसके विपरीत सदैव परिणाम भी होते हैं और इस प्रकार वास्तविक अनुभव केवल मानसिक अनुभवों से अलग हो जाते हैं। वस्तुएं हमारे उनके सम्बन्ध विचारों से भिन्न हो जाती हैं जो चाहे सत्य हों अथवा काल्पनिक और इस तरह हमारे अनुभवों के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड[2] के एक स्थायी अंग बनकर वे एक

---

1 यह सिद्धान्त सबसे पहले स्पष्टतः जेम्स ने अपने निबन्ध डज कांशसनेस एक्जिस्ट में प्रतिपादित किया था (जे० पी० 1904) इस सम्बन्ध के पहले निबन्ध ऐसेज इन रेडिकल एम्पिरिसिज्म के रूप में पुनर्मुद्रित हुए। द्रष्टव्य जोन डेवी कृत द वनिशिंग सबजेक्ट इन द साइकोलोजी आव जेम्स (जे० पी० 1940) प्रावलम्स आव मन 1946 में पुनर्मुद्रित।

2 इसी प्रकार का दृष्टिकोण, यदि मिल के संघटनात्मकवाद की बात न भी करें तो, ई० बच द्वारा ऐनालिसिस आव सेंसशन में (1886) व्यक्त किया गया है

भौतिक जगत के नाम से सिद्धि पाता है। इस प्रकार द्वैत के चंगुल से मुक्त होकर यह धारणा बनाने योग्य स्थिति हुई कि जो कुछ भी अनुभव के लिए सत्य है वह वास्तविकता के लिए भी सच होगा। और इस तरह जेम्स बहुलवाद की अधिक विश्वास के साथ रक्षा कर सकते हैं। और इसके साथ ही ब्रेडले के परमात्म के विरुद्ध नवीनता की सम्भावना को प्रगट कर सके। उनके अनुसार परमात्म को ध्वस्त करना ही था क्योंकि उससे मानवी कर्म का अनादर होता था और सृष्टि को सुन्दरतर बनाने का अवसर उस में नहीं रहता था। इससे बुराई की एक दुर्गम समस्या निर्मित हो जाती है क्योंकि बुराई की कल्पना उसी समय की जा सकती है जब एक सगुण ईश्वर की स्थापना हो और उसे एक ऐसी शिव शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाय जो प्रतिवादी बहुलता के विरुद्ध कार्यशील रहे। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा उस वास्तविक जगत का भी खण्डन हो जाता है जिसे हम वस्तुतः अनुभव करते हैं। भौतिकवाद से किसी भी प्रकार कम इसके द्वारा निर्मित जड़ जगत सृष्टि नहीं है, जिसमें न तो निरन्तरता है न नवीनता और न विविधता। इस प्रकार जेम्स द्वारा प्रतिपादित बहुलवाद जो उनके मानवी आस्था के अधिकार के बचाव के सिद्धान्त की तरह है इस धारणा के प्रति उनके विरोध में निःसृत लगता है जिसमें मनुष्य को विवश होकर कार्य करता हुआ, विश्वास करता हुआ और वस्तुओं की व्यवस्था में से एक प्रस्तुत योजना को चुनता हुआ सा बताया गया है। जेम्स के अनुसार मूल

आर० एवेनेरियस कृत क्रिटीक आव प्योर एक्सपीरियेंस (1888–90) पीयर्सन कृत द ग्रामर आव साइंस (1892)। मन और पदार्थ दोनों ही एक तत्व के बने हुए माने गये हैं जो अपने आप में न तो मानसिक है न भौतिक। यही उनके सिद्धान्त का सारतत्व है। ये सभी लोग एक ऐसा मत तैयार करने के प्रयत्न में हैं जो द्वैत की कठिनाइयों को बिना प्रत्ययवादी या भौतिकवादी हुए हटा सकें। किन्तु ये सारे के सारे लेखक जेम्स के विपरीत वस्तुस्थितिवादी भी थे। एन० के० स्मिथ को 1908 में लिखे पत्र में जेम्स ने एवेनेरियस की धात्विक रूक्षता और कृत्रिम शब्दावली के विषय में लिखा है। जेम्स एक प्रकार के सभी का सार निकालने वाली ज्यूसियर) विचारधारा के लिए प्रयत्नशील थे। इसके विपरीत और वह मच के बड़े प्रशंसक हैं। उनसे उन्होंने बहुत कुछ सीखा भी था। द्रष्टव्य एक कार्स्टेन्जन द्वारा लिखित रिचार्ड एवेनेरियस (माइण्ड 1897) एन के स्मिथ द्वारा लिखित एवनेरियस फिलासफी आव प्योर एक्सपीरियेंस (माइण्ड 1906) डब्लू० टी० बुश द्वारा लिखित एवेनेरियस एण्ड द स्टैंडपॉइंट आव प्योर एक्सपीरियेंस (आरकाइव्ज आव फिलासफी एण्ड साइंटीफिक मेथड्स (प्र० क० दो 1905), सी० बी० वीयनवगट्टत मचेस ऐम्पीरिकोप्रमैटिज्म इन फिजिक्स साइंस (1935), पी० फ्रैंक कृत माडर्न साइंस ऐण्ड इट्स फिलासफी (1949)

चर्चा का विषय यह है कि क्या सापेक्षता समझे जाने योग्य है ? जेम्स[2] के अनुसार ब्रेडले ने भी बहुलतावाद का इस आधार पर खण्डन किया था कि उसमें बाहरी सापेक्षताओं की सत्ता की स्वीकृति दी गई थी और यह भी माना था कि एक ही वस्तु विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को बिना अपना स्वरूप खोये कायम रख सकती है और यह ब्रेडल के अनुसार हमें विरोधाभास की ओर ले जाता है क्योंकि यदि एक वस्तु अ ब से सम्बन्धित है तो यह भिन्न होनी चाहिए उसे मात्र ब से सम्बन्धित माना गया है। किसी भी ऐसे अ की जो वास्तव में स से जुड़ा हुआ हो तो वह वही अ नहीं हो सकता जो कि ब से भी जुड़ा हुआ है और स से भी।

बुद्धिवादी तर्कशास्त्र हमें जिस प्रकार की बेहूदगियों की ओर ले जाता है उसका जेम्स की दृष्टि में इससे अच्छा उदाहरण और कहीं नहीं मिल सकता है। जेम्स स्वयं मानते हैं कि निश्चय ही जो अ केवल ब में जुड़ा है वह उस अ से भिन्न है जो स से जुड़ा है, किन्तु ब्रेडल के इस निष्कर्ष को वे स्वीकृति नहीं देते कि इस स्थिति में अ अपने दोनों रूपों में भिन्न होना चाहिए। विचार अपनी प्रकृति से ही अलग और प्रवाहहीन होते हैं। यदि किसी भी तरह हम अनुभव की ओर हमारा अपना ध्यान ले जायें तो हमें तत्काल ही मालूम होगा कि वह एक साथ प्रवहमान भी हैं और प्रवाहहीन भी। और अपने अन्दर कुछ ऐसी स्थितियों लिये हुए हैं जो बाह्य तौर पर उससे सम्बन्धित है अथवा सम्पृक्त है एक दूसरे में। जेम्स का कथन है अब मुझे यह तर्क आवश्यक रूप से देना पड़ेगा कि जिस कागज पर मैं लिख रहा हूँ वह अपने दो सतहों के कारण मेरे पेन के नीचे भी है और उस टेबिल के ऊपर भी है जिस पर मैं लिख रहा हूँ। इससे यह माँग करना कि यह एक के बजाय दो कागज हैं बिल्कुल निरर्थक तर्क है। इसके बावजूद भी मुझे परमात्मवादियों की ईमानदारी पर संदेह है। यह संसार जैसा कि जेम्स उसे देखते हैं एक ऐसा आकलन मात्र है जिसके कुछ हिस्से तो जुड़े हुए हैं और कुछ विभक्त। यह एक सिलसिलेवार एकता में निबद्ध है। बजाय इसके कि वह कोई एक ही तरह की विशिष्ट सत्ता हो जिसका प्रायः एकेश्वरवादी स्थापित करते हैं। यदि प्रत्ययवादी इसे अन्य प्रकार से देखते हैं तो यह इसलिए है कि वे अपने जटिल बुद्धिवाद के कारण अंधे हो गये हैं जो उन्हें यह निष्कर्ष निकालने की ओर प्रेरित करता है कि जुड़ाव और बिखराव दो भिन्न परिकल्पनायें हैं। क्योंकि एक ही प्रकार के अनुभव का जुड़ा हुआ और बिखरा हुआ होना

---

2 संदर्भ ब्रेडल कृत ऐसेज ऑन ट्रुथ एण्ड रियलिटी परिशिष्ट, तृतीय अध्याय-5 ऑन प्रोफेसर जेम्सस रेडीकल एम्पेरिसिज्म)। ब्रेडले इस बात पर आपत्ति करते हैं कि उनके लिए वस्तुएं भी उतनी ही असत्य हैं जितने सम्बन्ध। जेम्स की विचार धारा को पूर्णतः 1905 में प्रकाशित द थिंग एण्ड इट्स रिलेशन्स में देखा जा सकता है। एसेज इन रेडीकल ऐम्पीरिसिज्म नाम से पुनर्मुद्रित।

असंभव है। एक बार जब हम इस प्रकार के बुद्धिवादी तर्क को भली प्रकार देख लेते हैं तब हमारे लिए यह स्पष्ट हो जायगा कि बहुलवादियों की सिलसिलेवार एकता वास्तव में वही एकता है जिसे दैनिक अनुभव हमारे समक्ष प्रकट करता है। तो भी जेम्स यह कहना नहीं चाहते कि सम्पूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया छलपूर्ण है। परिकल्पनाएं उनके अनुसार दुर्व्यवहृत की जा सकती हैं। लेकिन साथ ही उनका सही उपयोग भी हो सकता है। बुद्धि कभी कभी धोखा देती है तो कभी कभी निर्देशित भी करती है। तब फिर कल्पनाओं का सही उपयोग क्या है ? यही वह प्रश्न है जिसका जेम्स द्वारा प्रतिपादित अर्थक्रियावाद में जवाब दिया गया है।

1907 में प्रकाशित पुस्तक प्रेगमेटिज्म, जिसमें जेम्स ने अपने अर्थक्रियावादी सिद्धांतों को पूर्ण विस्तार से व्यक्त किया है को एक उप-शीर्षक भी दिया गया है। वह है पुरानी विचार धारा का नया नामकरण। और उसे जान स्टुअर्ट मिल की स्मृति को समर्पित किया गया है जिनसे मैंने सर्वप्रथम मुक्त हृदय के अर्थक्रियावादी सिद्धांत को सीखा'। जेम्स यहां पर ब्रितानी अनुभववादी परम्परा से अर्थक्रियावाद का सही तारतम्य बठाने की कोशिश करते हैं। एक अर्थक्रियावादी सर्व-प्रथम जिस बात को कहना चाहता है वह परम्परावादी अनुभववाद की मात्र ऐसी पुनर्व्याख्या है जिसमें कहा गया है कि किसी परिकल्पना के उपयोगी होने का प्रमाण यही है कि उसे अनुभव पर आधारित होना चाहिए।[1] 1867 तक जेम्स ने चूंकि अनुभववाद के अलावा अन्य दर्शनों का अध्ययन कम किया था इसलिए उन्होंने अपनी मां को दिये गये पत्र में तत्वदर्शन के विषय में यह लिखा, ये माथी लोग इतनी शीघ्रता से प्रत्यक्ष और आन्तरिकता इत्यादि में बठ जाते हैं कि प्रत्येक वस्तु की व्याख्या का भार अपने ऊपर ले लेते है। तथ्य प्रकट होने पर जिसका भेद स्पष्टत खुल जाता है। यह सब इस प्रकार की तर्कवादिता है जो निराशाजनक और हताश करने वाली है और भविष्य में एक इंच भी आगे जाने के योग्य नहीं है। यहां पर पहले से ही परम्परागत तत्वदर्शन की सार रूप में अर्थक्रियावादी आलोचना रूप ग्रहण करती हुई दिखाई देती है। जेम्स ने इसके बावजूद

1 अर्थक्रियावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए पी० वियनर कृत इवोल्यूशन एण्ड दी फाउण्डर्स आफ प्रेगमेटिज्म (1949) एम० बोम द्वारा लिखित द डवलपमेंट आफ जेम्सज प्रेगमेटिज्म नम्बर टू (1879) (जे० पी० 1933) ए० एफ० ब्लोशार द्वारा लिखित लोजज इन्फ्लूएन्स आन द प्रेगमेटिज्म आफ विलियम जेम्स (ज० एच० आई० 1940) सी० एस० पीयर्स के ऐतिहासिक नोट (कलेक्टेड पेपर्स 5 11) जो काण्ट से उनके सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालता है, ज० डेवी कृत फिलोसफी एण्ड सिविलाइजेशन, 1931।

सी० एस० पीयस क प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है जिनसे ही उ हान प्रेगमेटिज्म' नामक शब्द लिया था और पीयस के सार्थकता क सिद्धात का भी उपयोग किया था। (इन लोगो के परस्पर रहे विशेष प्रकार क सम्ब धो क कारण ही शीघ्र ही अपन सिद्धात को प्रेगमेटिज्म (अर्थक्रियावाद) का नाम दिया था जो नकल करने वाला स बचाव की दृष्टि से काफी सुरक्षित है। पीयस क दशन म अर्थ क्रियावाद सार्थकता नियत करन की एक प्रणाली है और इस प्रणाली का सबस पहल इन्होंने 1878 म **पोपूलर साइन्स म थली**[1] म लिखे एक निबन्ध **हाऊ टू मेक अवर आइडियाज क्लीयर** मे व्यक्त किया है। इस समय इस प्रणाली का साराश उ होन इस प्रकार दिया था व्यावहारिक धरातल पर हम अपन विचार मे पदार्थो के लिए कौनसे परिणामो की कल्पना करत है इसके सम्बन्ध म जरा विचार कर तब हम दखग कि इन परिणामो से सम्बन्धित हमार विचार ही किसी वस्तु के सम्बन्ध म पूर्ण विचार होते हैं। प्रकटत यह सोच विचार कर दी गयी एक परिभाषा है, क्योंकि सचाई यह है कि इसे सरलता से समझा नही जा सकता। बाद म भी पीयस न अपन अर्थक्रियावादी सिद्धात का वस्तुत अपने को ही सन्तुष्ट करने के लिए समझाने के बहुत से प्रयास किय और यह कोशिश की कि दाशनिक जाच पडताल म आने वाली बाधाओ और निरथकताओ स किस प्रकार बचा जा सके।

पीयस का विचार था कि जेम्स न अर्थक्रियावादी प्रणाली को इतनी अतिवादी सीमा तक धकेल दिया था कि हम कुछ ठहर कर विचार करन की आवश्यकता है ताकि हम अर्थहीनता को स्वीकार करन की दिशा म कही न चल जाय। इसके साथ ही एक दूसरा खतरा यह भी था कि कही इसका अस्तित्व ही अर्थहीनता और केवल मात्र गणित की एक शाखा के रूप मे शेष रहकर समाप्त न हो जाय। 1905 म मोनिस्ट मे लिख एक निबन्ध मे इन खतरा स बचन के प्रयास म उन्होंने अर्थक्रिया वादी विचारधारा की पुनर्व्याख्या इस प्रकार की है।

---

1 अर्थक्रियावाद वज्ञानिक प्रणाली क सतक विश्लपण से ही उद्भूत हुआ ह। रूगीरो ने जसा इसे समझा है वह वसा कतई नही है—उनके अनुसार यह व्यापारियो का दशन है। निश्चय ही जसा कि रोयस न 1908 म द फिलोसफी आव लायल्टी म लिखा है जेम्स जानबूझ कर रूपको के प्रयोग को पसन्द करते हैं (उदारणाथ केश वल्यू) जो केवल व्यापारिक जगत म ही प्रवतन मे है किन्तु जेम्स परमात्मवादियो की सूक्ष्मताओ पर भी अपनी फिलिस्तीन जसी प्रवुद्ध दिखायी दने वाली जबान का भी प्रयोग करने से नही चूकते। उनके प्रौफिट (लाभ) एव एक्सपीडिए सी (शुभ) नामक पद व्यापारी लोगो की भाषा से बिल्कुल भिन्न है।

किसी भी प्रतीक की समग्र बौद्धिक इयत्ता विवेकशील व्यवहार की सामान्य अवस्थाओं के भाग पर निर्भर रहती है, जिन्हें यदि संभावित एवं विभिन्न परिस्थितियों और इच्छाओं के संसर्ग में रखा जाये तो वे इस प्रतीक के स्वीकरण का ही काम करेंगी, यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस बार अब बल परिकल्पना से हटकर अधिक सामान्य अवस्था की ओर चला गया है, जिन्हें पीयर्स चिन्हों की सत्ता देते हैं। पीयर्स के दर्शन का अधिकांश दरअसल प्रतीकवाद के सिद्धान्त की एक सन्तोषप्रद व्याख्या मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक स्थितियाँ प्रायः विवेकशील व्यवहार में रूपान्तरित हो गई हैं। पीयर्स इस बात से आतंकित थे कि उन्हें विज्ञान का सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध करने जैसी संकीर्ण अवस्था तक गलत समझा गया है। किसी प्रतीक का अर्थ उनके अनुसार वह विवेकशील व्यवहार है जो उसी से उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्य खनिज पदार्थों से लीथियम को अलग करने की दिशा में जो कदम उठाये जाते हैं उनसे हम परिचित हों तो हम लीथियम को अच्छी तरह समझ सकते हैं। कोई भी चिन्ह भ्रामक है यदि वह उन से परम्परागत तत्व दर्शन के चिन्हों की भाँति वह हमें विवेकपूर्ण व्यवहार की एक मौलिक अवस्था की ओर न ले जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि हम वास्तव में इस बात का तो निर्णय कर सकते हैं कि कौनसा व्यवहार विवेकपूर्ण है। पीयर्स इस निर्णय को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि व्यवहार के प्रतिमान जाँच पड़ताल के लिये तो आवश्यक हैं ही। पीयर्स की परिभाषा का जो एक और परिणाम निकलता है वह यह है कि उनके लिए किसी भी बात का अर्थ सामाजिक ही है। उनके लिए एक प्रतीक का अर्थ केवल इस बात में ही नहीं है कि वह हमारे मस्तिष्क में प्रत्ययों के पुनः प्रेषण करता है जैसा कि बहुधा मान लिया गया है। किसी प्रतीक को समझने के लिए हमें केवल यह देखना है कि किसी विवेकशील मनुष्य में वह किस प्रकार के व्यवहार करने की भावना का उदय करता है।

जेम्स के दर्शन में यह बात सिद्ध की गयी है कि अर्थक्रियावादी सार्थकता के सिद्धान्त का एक सन्तोषप्रद सृजन करने के लिए पीयर्स ने जितना संघर्ष किया उसका कोई सानी नहीं है। इसके विपरीत जब ए० ओ० लावजाय ने अपने जे०पी० 1908 में प्रकाशित एक निबन्ध दी थर्टीन प्रेगमेटिज्म में यह बताया कि अर्थक्रियावादी स्वयं अर्थक्रियावाद की ही कोई स्थायी और एक परिभाषा देने में असफल रहे हैं तो जेम्स ने उनकी इस बात का स्वागत करते हुए कहा कि यह तो बहुत अच्छा है इससे तो यही सिद्ध होता है कि अर्थक्रियावाद का सिद्धान्त कितना मुक्त है और यह एक ऐसा दृष्टिकोण भी है जो पीयर्स की दोषान्वेषी एवं आत्मशोधी वृत्ति से कितना भिन्न है।

जेम्स अथक्रियावाद क साथकता क सिद्धा त म मूलत इसलिए रुचि ल रह थे क्योंकि यह उनक अनुसार ऐसी प्रणाली तो थी जा तत्वदशन क इन झगडा का, जो अ यथा अन त थ, निपटारा करती थी। उदाहरण क लिए आत्मवाद एव भौतिक वाद के बीच चल रहे झगडे का लिया जा सकता है। उनके अनुसार अथक्रियावादी *प्रणाली इस प्रकार के प्रत्यक तत्वदशनसम्ब धी सिद्धा तो के विकल्प की व्याख्या* क्रमश उनके द्वारा हा रह परिणामो स करती है। जेम्स सवप्रथम यह दर्शाना चाहते थ कि यदि हम तत्वदशन सम्ब धी प्राक्कल्पनाओ का परीक्षण उसी प्रकार कर जिस प्रकार वज्ञानिक प्राकल्पनाओ का करना चाहिए मूलत इस बात का ध्यान रखत हुए कि यदि हमारे प्राकल्प सही होते गय ता उनस किसी विशिष्ट घटना पर क्या असर पडेगा तो हम पूणत *उन दोनो म कोई भी भेद नहीं दिखाई देगा। कोई भी ऐसी* अवस्था नही है जिसक बार म हम यह कह सके कि जब तक कि ससार आत्मपरक अथवा ईश्वर द्वारा रचित अथवा एस मनुष्यो द्वारा निवासित नही हो जो अमर आत्मा के धनी है अथवा मुक्त इच्छाशक्ति के धारी हैं तो यह घटना घटित नही हा सकती है। इस तरह किसी भी तत्वदशन सम्ब धी वकल्पिक सिद्धा त की सम्भावना को अनदखा नही किया जा सकता लकिन हम वस्तु स्थितिवादियो की तरह यह निष्कष भी नही निकालते कि तत्वदशन खोखला और घातक है। जम्स इसका स्पष्टीकरण करत हुए कहते हैं कि तत्वदशन सम्ब धी विकल्पो का यदि भूतलक्षी रूप म अध्ययन किया जाय तो उस समय वे हम कितने तटस्थ दिखायी दते हैं उतने ही यदि हम उ हे सलक्ष रूप म ल तो वे हमारे अनुभवो का पूणत दूसरे ही दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं।

वे अपन मत को भौतिकवाद एव धमदशन के भेद से धृत करते हैं। वे कहते है कि भौतिकवाद चल सृष्टि की एक भीषण रूप स अचल तस्वीर खीचकर भविष्य के लिए किसी प्रकार की गु जाइश नही रखता।[1] यह धमदशन द्वारा प्रदत्त आशावादी आस्था का विनाश कर देना है। इसी प्रकार इच्छाशक्ति के सिद्धा त को ही ले जिसम जेम्स बडी रुचि लेते थे तो अथक्रियावादी ढग स इसका अथ ससार म नवीनता की सृष्टि करना है। *यह हमे इस बात का सकेत देता है कि* कम से कम वतमान स्थिति म सुधार सभव है। यदि हम ससार केपुनर्निर्माण म सहायक

---

1 *यहा पर नाइटमेयर आफ एन्ट्रोपी का स दभ दिया गया है जिसने 19 वी* शताब्दी क युगमानस को काफी परशान किया था। एण्ट्रोपी नामक श द क्लासियम नामक भौतिक शास्त्री द्वारा प्रचलित किया गया था और उनका निर्देश इस तथ्य की ओर था कि प्रत्यक ऊष्मा युक्त परिवतन वतमान ऊर्जा म किसी न किसी प्रकार का क्षरण प्रस्तुत करता है। यह भौतिकी सिद्धा त अत्य त सजीव ढग म यह कहकर पुन प्रस्तुत किया गया था कि ब्रह्माण्ड शन शन क्षरित होता जा रहा है और यह एक एसी स्थिति है जिसने विभिन्न क्षेत्रो म तो काफी चका चौध उत्पन्न की ह।

हो तो हम यह शाति का आश्वासन देता है । हमारे कार्यों के प्रति इसी प्रकार का उत्साह प्रकट करना ही इस वाद का उद्देश्य है । हमे मुक्त इच्छाशक्ति म विश्वास करन का अधिकार देना ही द विल टू बिलीव का मूल म त्र था । तार्किक दृष्टि से भी असभव कहकर इम हम छोड नही सक्ते । यही उनकी दृष्टि मे भाग्यवाद का भी महत्व है । जहा तक विश्वास का सम्बन्ध है अर्थक्रियावादियो का कहना है कि यही सर्वोत्कृष्ट ग्रहण करने योग्य विश्वास है ।

जेम्स ग्रथ से अधिक सत्य मे आस्था रखते थे और एफ० सी० एस० शिलर के मानववाद तथा जान डीवी के उपकरणवाद स उत्साह प्राप्त करके यथाशीघ्र अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करना चाहते थे ।[2] सामान्य धारणा के अनुसार सत्य वास्तविकता के साथ सहमति म निहित होता है । इस परिभाषा का सामान्य अर्थ यही लगाया जाता है कि सत्य वास्तविकता की अनुकृति करता है । इस प्रकार का अर्थ निकालना जेम्स द्वारा लिखित ह्यूमनिज्म एण्ड ट्रुथ (माइण्ड 1904) नामक निबन्ध की दृष्टि से सत्य को अर्थहीन बना देता है एक अपूर्ण द्वितीय सस्करण कहकर तथा एक दुबल एव बिन्दुहीन प्रतिकृति मानकर ।

कभी कभी वे यह स्वीकारते है कि वास्तविकता का चित्र भी हमारे लिए सहायक हो सकता है । उदाहरण के लिए भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ कहना यद्यपि इस परिस्थिति म भी एक प्रतीकवादी सूत्र अनुकृति स कही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है-किन्तु जब कोई चित्र उपयोगी होता है तो वह केवल इसीलिए उपयोगी नही होता कि वह एक अनुकृति है दर असल होता यह है कि ऐसी विशेष परिस्थितिया मे अनुकृति ही हमे अपने अनुभव के सबध म कुछ अधिक सगतिमय ढग स कह सकने योग्य बनाती है । यह तो वास्तविकता के साथ सहमति का सिद्धान्त ही है

प्रत्ययवादी आलोचना के लिए द्रष्टव्य ब्रेडले कृत एसेज आन ट्रुथ एण्ड रियलिटी, मेक्टेगट द्वारा प्रस्तुत प्रेगमेटिज्म नामक पुस्तक का रिव्यू (माइण्ड 1905) आर० एफ० ए० हानली द्वारा लिखित निबन्ध प्रेगमेटिज्म वसस एब्सोल्यूटिज्म (माइण्ड 1905) ए० ट० टेलर द्वारा लिखित ट्रुथ एण्ड प्रेक्टिस पी० आर० 1908) यथार्थवादी दृष्टिकोण क लिये द्रष्टव्य, जी० ई० मूर की (पी० ए० एम० 1907) म प्रकाशित प्रोफेसर जेम्स प्रेगमेटिज्म की समालोचना जो फिलोसोफीकल स्टडीज म पुनमुद्रित हुई । डब्लू० पी० माण्ट्यू द्वारा लिखित एव जे० पी० 1909 म प्रकाशित ए रियलिस्ट बि ए प्रेगमेटिस्ट आर० बी० परी कृत प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेन्सीज, बर्ट्रेण्ड रसेल कृत फिलोसोफीकल ऐसेज 1903 स लेकर 1909 इ० दी जनल आफ फिलोसोफी नामक पत्र म जेम्स और उसके सहयोगियो द्वारा लिखे बहुत स निबन्ध देखे जा सकत हैं ।

जेम्स अथक्रियावाद क साथक्ता के सिद्धा त म मूलत इसलिए रुचि ले रहे थे क्योंकि यह उनके अनुसार एसी प्रणाली तो थी जा तत्वदशन क इन झगडो का, जा अ यथा अन त थे, निपटारा करती थी । उदाहरण के लिए आत्मवाद एव भौतिक वाद क बीच चल रह झगडे को लिया जा सक्ता है । उनके अनुसार अथक्रियावादी प्रणाली इस प्रकार क प्रत्यक तत्वदशनसम्ब धी सिद्धान्तो के विकल्प की व्याख्या क्रमश उनके द्वारा हा रहे परिणामो स करती है। जेम्स सवप्रथम यह दर्शाना चाहते थ कि यदि हम तत्वदशन सम्ब धी प्राकल्पनाओ का परीक्षण उसी प्रकार कर जिस प्रकार वनानिक प्राकल्पनाओ का करना चाहिए मूलत इस बात का ध्यान रखत हुए कि यदि हमार प्राकल्प सही होते गय ता उनस किसी विशिष्ट घटना पर क्या असर पडेगा ता हम पूणत उन दोनो मे काई भी भेद नही दिखाई दगा । कोई भी एसी अवस्था नही है जिसक बारे म हम यह कह सक कि जब तक कि ससार आत्मपरक अथवा ईश्वर द्वारा रचित अथवा ऐसे मनुष्यो द्वारा निवासित नही हो जो अमर आत्मा के धनी है अथवा मुक्त इच्छाशक्ति के धारी है तो यह घटना घटित नही हो सक्ती है । इस तरह किसी भी तत्वदशन सम्ब धी वकल्पिक सिद्धा त की सम्भावना को अनदखा नही किया जा सक्ता लक्नि हम वस्तु स्थितिवादिया की तरह यह निष्कष भी नहा निकालते कि तत्वदशन खोखला और घातक है। जेम्स इसका स्पष्टीकरण करत हुए कहते हैं कि तत्वदशन सम्ब धी विकल्पो का यदि भूतलक्षी रूप म अध्ययन किया जाय ता उस समय वे हम कितने तटस्थ दिखायी देते हैं उतने ही यदि हम उ हे सलक्ष रूप म ले तो वे हमारे अनुभवा को पूणत दूसरे ही दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं ।

वे अपने मत का भौतिकवाद एव धमदशन के भेद स धृत करत हैं । वे कहते हैं कि भौतिकवाद चल सृष्टि की एक भीषण रूप से अचल तस्वीर खीचकर भविष्य क लिए किसी प्रकार की गु जाइश नही रखता ।[1] यह धमदशन द्वारा प्रदत्त आशावादी आत्मा का विनाश कर दना है । इसी प्रकार इच्छाशक्ति के सिद्धान्त को ही लें जिसम जेम्स बडी रुचि लेते थ ता अथक्रियावादी ढग स इसका अथ ससार मे नवीनता की सृष्टि करना है । यह हम इस बात का सकेत दता ह कि कम से कम वतमान स्थिति म सुधार सभव है । यदि हम ससार केपुनर्निर्माण म सहायक

1 यहा पर नाइटमेयर आफ एन्ट्रोपी का स न्भ दिया गया है जिसने 19 वी शताब्दी के युगमानस को काफी परशान किया था । एण्ट्रोपी नामक श द क्लासियस नामक भौतिक शास्त्री द्वारा प्रचलित किया गया था और उनका निर्देश इस तथ्य की ओर था कि प्रत्यक ऊष्मा युक्त परिवतन वतमान ऊर्जा म किसी न किसी प्रकार का क्षरण प्रस्तुत करता है । यह भौतिकी सिद्धा त अत्यन्त सजीव ढग मे यह कहकर पुन प्रस्तुत किया गया था कि ब्रह्माण्ड शन शन क्षरित हाता जा रहा है और यह एक एसी स्थिति है जिसन विभिन्न क्षेत्रो म तो काफी चका चौंध उत्पन्न की ह ।

हों तो हम यह शान्ति का आश्वासन देता है। हमारे कार्यों के प्रति इसी प्रकार का उत्साह प्रकट करना ही इस वाद का उद्देश्य है। हम मुक्त इच्छाशक्ति में विश्वास करने का अधिकार देना ही द विल टू बिलीव का मूल मन्त्र था। तात्विक दृष्टि से भी असमर्थ कहकर इसे हम छोड़ नहीं सकते। यही उनकी दृष्टि में मान्यवाद का भी महत्व है। जहां तक विश्वास का सम्बन्ध है अर्थक्रियावादियों का कहना है कि यही सर्वोत्कृष्ट ग्रहण करने योग्य विश्वास है।

जेम्स अर्थ से अधिक सत्य में आस्था रखते थे और एफ० सी० एस० शिलर के मानववाद तथा जान डीवी के उपकरणवाद से उत्साह प्राप्त करके यथा शीघ्र अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करना चाहते थे।[3] सामान्य धारणा के अनुसार सत्य वास्तविकता के साथ सहमति में निहित होता है। इस परिभाषा का सामान्य अर्थ यही लगाया जाता है कि सत्य वास्तविकता की अनुकृति करता है। इस प्रकार का अर्थ निकालना जेम्स द्वारा लिखित ह्यूमनिज्म एण्ड ट्रुथ (माइण्ड 1904) नामक निबन्ध की दृष्टि से सत्य को अर्थहीन बना देता है एवं अपूर्ण द्वितीय संस्करण कहकर तथा एक दुखद एवं बिन्दुहीन प्रतिकृति मानकर।

कभी कभी वे यह स्वीकारते हैं कि वास्तविकता का चित्र भी हमारे लिए सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कहना यद्यपि इस परिस्थिति में भी एक प्रतीकवादी सूत्र अनुकृति से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होता है–किन्तु जब कोई चित्र उपयोगी होता है तो वह केवल इसीलिए उपयोगी नहीं होता कि वह एक अनुकृति है–दर असल होता यह है कि ऐसी विशेष परिस्थितियों में अनुकृति ही हमें अपने अनुभव के सबंध में कुछ अधिक संगतिमय ढंग से कह सकने योग्य बनाती है। यह तो वास्तविकता के साथ सहमति का सिद्धान्त ही है

प्रत्ययवादी आलोचना के लिए द्रष्टव्य ब्रेडले कृत एसेज आन ट्रुथ एण्ड रियलिटी, मेक्टेगट द्वारा प्रस्तुत प्रेगमेटिज्म नामक पुस्तक का रिव्यू (माइण्ड 1905) आर० एफ० ए० हानली द्वारा लिखित निबन्ध प्रेगमेटिज्म वसस एब्सोल्यूटिज्म (माइण्ड 1905) ए० ई० टेलर द्वारा लिखित ट्रुथ एण्ड प्रेक्टिस पी० आर० 1908) यथार्थवादी दृष्टिकोण के लिये द्रष्टव्य, जी० ई० मूर की (पी० ए० एस० 1907) में प्रकाशित प्रोफेसर जेम्स प्रेगमेटिज्म की समालोचना जो फिलोसोफीकल स्टडीज में पुनमुद्रित हुई। डब्लू० पी० माण्ट्यू द्वारा लिखित एवं जे० पी० 1909 में प्रकाशित ए रियलिस्ट वि ए प्रेगमेटिस्ट आर० बी० परी कृत प्रजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेन्सीज, बर्ट्रेण्ड रसल कृत फिलोसोफीकल ऐसेज 1903 से लेकर 1909 ई० की जनरल आफ फिलोसोफी नामक पत्र में जेम्स और उनके सहयोगियों द्वारा लिखे बहुत से निबन्ध देखे जा सकते हैं।

जिसमें से कुछ कहने योग्य बातें हैं। व्यापक तौर पर वास्तविकता के साथ सहमत होने का अर्थ है कि सीधा सत्य की दिशा में निर्देशित होना या फिर उसके करीब पहुंच जाना अथवा स्वयं ही एक ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाना जो उसके जीवन स्पर्श से युक्त है अथवा फिर उससे संबंधित किसी स्थिति से जुड़ने का अवसर प्राप्त करना है जो निश्चय ही सत्य से असहमत होने की अवस्था से कहीं बेहतर है। हां यह तो बौद्धिक रूप से अथवा फिर व्यावहारिक रूप से दोनों में से किसी एक अवस्था में तो वह निश्चय ही बेहतर है। इस प्रकार जेम्स की दृष्टि में सत्य विचार वही हैं जिसे हम यह मानकर स्वीकारें कि वे हमारे लिए आगे जाकर श्रेष्ठतम सिद्ध होंगे। इस प्रकार सत्य शिव की ही एक उप प्रजाति बन जाती है।[1]

जैसा कि जेम्स के विरोधी उस पर अभियोग लगाते हुए कहते हैं और जिसे जेम्स स्वयं नहीं मानते वह यह है कि प्रत्येक ऐसा विचार जिसकी हम कल्पना करते हैं वह सत्य है। किसी वस्तु में निहित 'शिवत्व' अथवा 'सत्य' की परख के लिए हमें उसकी उपयोगिता देखनी होगी। उदाहरण के लिए जेम्स उपयोगितावादी ढंग से ही यह कहते हैं कि किसी कार्य में निहित भलाई को उसके परिणामों से हमें जांचना होगा। तब प्रत्यय का मापदण्ड भी वास्तविकता की तराजू पर रखकर करना होगा। वास्तविकता जेम्स के अनुसार उन संवेदनाओं को पूर्वग्रहों को और हमारी विभिन्न धारणाओं के बीच विद्यमान सूक्ष्म संबंधों को अपने में समेटती है जो गणित के विषय वस्तु का निर्धारण करते हैं। जब तक कोई स्थिति अधिक अच्छे ढंग से वास्तविकता के साथ हमारा संबंध कायम न कर सके जेम्स हमें उसे झूठा मानकर छोड़ देने की सलाह देंगे चूंकि वास्तविकता स्थिर नहीं है इसलिए जेम्स के अनुसार सत्य भी होने की प्रक्रिया में ही होगा। यह तो मात्र वह अवस्था है जो किसी प्रत्यय को अपनी परिणति प्राप्त करते समय उपलब्ध हो जाती है। स्पष्टतः सत्य भी अंशानुगामी होना चाहिए। जेम्स के अनुसार परमात्मवादियों में भी सत्य का कुछ अंश विद्यमान था। यह बात जब सहिष्णुतापूर्वक जेम्स ने कही थी तो भी उनके

---

1 सदंभ जी० टी० फेक्नर कृत जेण्ड ऐवस्टा (1851) 'मैं सोचता हूं कि कोई ऐसी वस्तु कभी सत्य नहीं हो सकती जिस पर विश्वास करना अच्छा न हो। और जो सर्वाधिक सत्य है वही श्रेष्ठतम भी है। जेम्स फेकनर के गहनविचारशील सर्वमनस्तत्ववाद से काफी प्रभावित थे। द्रष्टव्य, उनके द्वारा लिखी प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स एवं डब्ल्यू टी० बुश कृत विलियम जेम्स एण्ड पेनसाइकिज्म (कोलम्बिया स्टडीज इन द हिस्ट्री आव आइडियाज अंक 2 1925)। जेम्स के मित्र सी० ए० स्ट्रांग द्वारा भी सर्वमनस्तत्ववाद की वकालत की गई। (द्रष्टव्य—ह्वाई द माइण्ड हेज ए बोडी 1903) लेकिन जेम्स उनसे पूरी तरह संतुष्ट न हो सकते थे।

प्रत्ययवादी विरोधी उनसे बहुत बहुत तंग हो गये थे। जहाँ वे हम यह सिखाते हैं कि यह समष्टि किसी अच्छे हाथों में है वहाँ वह हम बहुत सी नैतिक छूट भी देते हैं– संसार को बेहतर बनाने की अटूट परिश्रमशीलता के बावजूद भी और हो सकता है कभी कभी इस प्रकार की छुट्टियाँ मनाना हमारी प्रकृति के अनुकूल ही है।

इंग्लैंड में जेम्स के दर्शन ने बहुत से लोगों का समर्थन प्राप्त किया जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध एफ० सी० एस० शिलर थे।[1] 1891 में प्रकाशित पुस्तक द रिडल्स आव स्फिंक्स में शिलर ने यह माना है कि वे बिना किसी बौद्धिक छंद के उसमें अर्थक्रियावादी हो गए हैं। और निश्चय ही, यद्यपि यह कृति अपने अधिकांश में विकासवादी तत्वदर्शन की ही एक साफ सुथरी प्रजाति थी, तो भी शिलर तो इससे पूर्व ही यह घोषणा कर चुके थे कि विज्ञान भूयमान (बिकमिंग) का ग्रहण करने में अक्षम है। जो वस्तुएं दरअसल है ही वे सत्य को मूल्य एवं ईश्वर को न्याय के पक्ष में खड़ी अनंत प्रवृत्ति और जो बुराई का उत्तरदायी विधाता नहीं है– ये तमाम जेम्स के विशिष्ट सिद्धांत ही है।

किन्तु इस तथ्य ने कि जेम्स तो एक जीवशास्त्री अनुभववादी मनोवैज्ञानिक थे और शिलर ने एक तत्वदर्शनसंबंधी विचारक के रूप में अपना जीवन प्रारंभ किया था उनके दर्शन के आकार प्रकार में काफी भेद प्रकटाया है। शिलर के लिए केन्द्रबिंदु मानवतावाद था। यही 1903 में प्रकाशित उनकी पुस्तक का शीर्षक भी था। वास्तविकता और सत्य दोनों ही मानव निर्मित हैं। प्रोटेगोरस की यह मान्यता सही थी कि मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मान है। 1902 में पर्सनल आइडियलिज्म में प्रकाशित एक निबंध 'एक्सियम्स एण्ड पोस्चुलेटस' जिसमें पहले पहल उन्होंने अपने आपको एक अर्थ क्रियावादी माना है वे इस बात का खंडन करते हैं कि हम से परे कोई ऐसा वस्तुजगत है जो स्वयं का परिज्ञान देने के लिए हमारे मनों पर जोर देता रहता है। जेम्स इतनी दूर तक जाना नहीं चाहते थे। शिलर ने उन पर नवयथार्थवादियों

---

1 द्रष्टव्य आर एबल कृत द प्रेग्मेटिक ह्यूमेनिज्म आव एफ सी० एस० शिलर। आर मरट फर्डिनेंड कैनिंग स्काट शिलर पी०बी०ए० 1938। जे०आई० मकी, डा० एफ सी एस शिलर माइण्ड 1938। आर० टी० फ्लवलिंग व एल० ज० होपकिन्स पर्सनलिस्ट 1938, अर्थक्रियावाद का अन्य ब्रितानी रूप एच० वी० नोक्स की रचना द फिलोसोफी आव विलियम जेम्स (1914) में देखा जा सकता है। 1930 में लिखी ट्रू थ एण्ड अदर ऐसेज नामक पुस्तक में भी देखने योग्य है, ऑक्सफोर्ड में निम्न स्नातकों में बड़े शिलर के प्रभाव के लिये काम्पटेन मैकेंजी का उपन्यास सिनिस्टर स्ट्रीट 1913) दर्शन योग्य है।

के प्रति बहुत उदार होने का अभियाग लगाया था। और यथार्थवादी उनको इसलिए बुरा भला कहते थे कि उनके अनुसार उनमें आत्मपरक प्रत्ययवाद का रंग चढा हुआ था। जबकि तथ्य यह है कि जेम्स इन दोनों ही विचारधाराओं से स्वयं खुश नहीं थे।[1]

शिलर का मूल काय अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त का बचाव करना था। एक ऑक्सफोर्ड परम्परा के ही एक व्यक्ति होने के कारण अपने ही अन्दर विद्यमान रूढियो एवं अनुदारता के प्रति वे विद्रोहशील थे। और ऑक्सफोर्ड में उनकी इस वृत्ति को काफी प्रोत्साहन भी मिला उनकी शैली स्वयं ही एक प्रतिरोध है। उनकी व्यवहार की तर्रारी और उनके विवादास्पद विषयो की प्रबलता के कारण स्वयं जेम्स को उन्हें यह राय देनी पडी की वे अपना ध्यान शास्त्रीय पक्ष की ओर अधिक दें। ब्रेडले उनके एक योग्य प्रतिरोधी थे। शिलर ने उनके विषय में लिखा व्यंग्यात्मक फुटनोट एवं बेलिहाज उक्तियो के बाहुल्य के कारण ब्रेडले ने दशन के क्षेत्र में एक आतंकपूर्ण शासन की स्थापना की है।

ब्रेडले की निरन्तर यही धारणा बनी रही कि अर्थक्रियावाद अस्पष्ट पहेलियो से भरपूर है और इन्हीं पहेलियो पर इसका चमत्कार निहित है। इसकी व्याख्या करें, तो कभी तो यह एक सामान्य विचारधारा सी लगती है और कभी अर्थहीन बेहूदगी से युक्त। इस प्रकार एक साथ ही दोनो प्रकार की व्याख्याओ को प्रकट कर सकने के कारण अर्थक्रियावादी यह दर्शाने की कोशिश कर रहे थे कि वह संसार में एक नया संदेश सुनाने के लिये आया है जो संसार को प्रकाशित कर देगा। इसी के लिए उन्होंने आगे लिखा है यह एक ऐसा संदेश है। जो सामान्य जीवन के पुराने उपदेशो मे बहुतायत में मिलता है और जिसे इन्कार करना कोई मूर्ख ही चाहेगा।' शिलर का ब्रेडले को इस सम्बन्ध में दिया गया उत्तर भी समझौता प्रस्तुत करता हुआ नहीं लगता। उन्होंने लिखा मिस्टर ब्रेडले बडी बहादुरी से इस बात की शपथ लेते हुए आगे बढते है कि उन्हें इस नयी विचारधारा का ज्ञान नहीं है। इसी के आधार पर इस संबंध में आगे कुछ कहना ब्रेडले जैसी क्षमता वाले समालोचक के लिए शोभित नहीं होता। मैंने भी इसका अध्ययन नहीं किया था—मैं भी ब्रेडले की बात से ही सहमत था।' (द्रष्टव्य ट्रूथ एण्ड मिस्टर ब्रेडले माइण्ड 1904 जो 1907 में स्टडीज इन ह्यूमेनिज्म के रूप में पुनर्मुद्रित हुआ।) शिलर के अनुसार ब्रेडले ने अर्थक्रियावाद को बौद्धिकता के मैले चश्मे से देखने की कोशिश

1 माइण्ड में 1913 15 तक चला शिलर और परी के बीच संवाद द्रष्टव्य है। परिशिष्ट 10 (परी कृत थोट एण्ड करेक्टर) शिलर के ह्यूमेनिज्म (माइण्ड 1904) का जेम्स द्वारा किया गया रिव्यू।

की है। सत्य उनके लिए स्थिर है–उसका निर्धारण केवल एक बार होता है–और वास्तविकता की वह एक अनुकृति मात्र है। ब्रेडले ने शिक्षण की धारणा का ही यथार्थ की अनुकृति कहकर इसका जवाब दिया है। उन्होंने तो हमेशा यही माना है कि यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है कि सत्य एक प्रत्युत्तर है। वे कहना यही चाहते हैं कि सत्य को अपनी चरमावस्था में किसी का समवायी होना चाहिए।

सत्य का यह विशिष्ट सिद्धान्त जिसे उन्होंने एपीयरेंस एण्ड रीएलिटी में प्रस्तुत किया है–इसी बीच प्रत्ययवादी तर्कशास्त्री एच० जे० जाकिम द्वारा 1906 में प्रकाशित द नेचर आफ ट्रूथ नामक पुस्तक में आगे बढ़ाया गया है। जोकिम ने यह संकेत किया है कि पूर्ण रूप से कोई वस्तु सत्य हो ही नहीं सकती। समवायी सत्य का सिद्धान्त जो स्वयं मनुष्य द्वारा निर्मित है वह भी आंशिक रूप में ही सत्य हो सकता है। इस तरह शिलर अन्त में यही निष्कर्ष निकालते हैं कि अब तो प्रत्ययवादी भी मानवी सत्य की प्रभुता को स्वीकार कर ही लेते हैं। ईश्वर अथवा कोई परमात्म वस्तुओं का मानदण्ड न होकर मनुष्य ही होना चाहिए। क्योंकि ये सब हमारी ग्राह्य शक्ति से बाहर चले जाते हैं। ब्रेडले ने भी यह बात स्वीकार की थी कि हम सत्य की खोज हमारी ही बुद्धि के संतोष के लिए करते हैं। शिलर कहते हैं कि क्या ब्रेडले अभी' और अब' सम्बन्धी लिए गए निर्णयों में, जो दृश्यमान सत्ताएं हैं, अर्थक्रियावादी प्रणाली का सहारा नहीं लेते? और यह करीब करीब वही स्थिति है जिसकी हम सिद्धि करना चाहते हैं। ब्रेडले द्वारा उन पर जो कठोर टिप्पणियाँ की गई है उनका उत्तर देने में जेम्स ने काफी बेरुखी बरती है। यह बात शिलर ने अपने निबंध द न्यू डेवेलपमेण्ट आव मिस्टर ब्रेडलेज फिलोसोफी (माइण्ड 1905) में सुझाई है और कहा है कि इसका कारण यह था कि ब्रेडले पर ही वस्तु एवं तथ्य सम्बन्धी उलझाव की बात छोड़ दी जाए तो अच्छा है क्योंकि इससे अन्त में उनकी जो परिणति होगी वह आश्चर्यजनक रूप से अर्थक्रियावाद की ही तरह से होगी।

यद्यपि शिलर पर ब्रेडले निरन्तर छींटाकशी करते रहे फिर भी उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि उनमें जेम्स से कुछ साम्य ता है। और वह साम्य न केवल तात्कालिक अनुभव'[1] तक ही सीमित है अपितु प्रत्यक्ष सम्बन्धी धारणाओं में भी दोनों में कुछ साम्य है। हाँ 'वास्तविक 'सत्य' धारणाओं में उनका और जेम्स का मत नहीं मिलता।

जॉन ड्यूई ने अपने सम्पूर्ण दार्शनिक जीवन से यह स्थापित करने की कोशिश की है और वे अभी भी इसका समर्थन करते हैं कि अर्थक्रियावाद एवं

---

1 इसके लिए द्रष्टव्य डब्लू जेम्स कृत ब्रेडले या बर्गसाँ? (कलेक्टेड ऐसेज एण्ड रिव्यूज, 1920)।

परमात्मवाद में केवल बनावटी साम्य ही नहीं है अर्थात् उनमें काफी समानता है।[1]

हक्सले की शरीरविज्ञान-सम्बन्धी रचनाओं ने सर्वप्रथम उनमें दार्शनिक रुचि उत्पन्न की। उन रचनाओं ने उनके समक्ष वस्तुओं के अन्तर्ग्रथित हो जाने से सम्बन्धित एक ऐसा नमूना रखा था जिसकी ओर किसी भी पदार्थ का आवश्यक रूप से जाना पड़ता था। तब हीगल का प्रादुर्भाव हुआ, जो अपने साथ मुक्ति की बड़ी भारी धारणा लाए[2] क्योंकि हीगल ने आत्म व जगत के बीच के व्यवधान को तोड़ डाला आत्मा व शरीर के बीच का भेद मिटा दिया, एवं ईश्वर एवं प्रकृति के बीच की खाई को पाट दिया ये ही वे व्यवधान थे जिन्होंने मानवी आत्मा को शेष जगत से काट कर अलग कर दिया था। ड्यूई का दर्शन प्रकृतवाद के सहारे हीगल द्वारा सुझाई नवीन प्रकार की एकता का पुनः निर्धारण करता है। इस प्रकार के पुनः निर्धारण की प्रेरणा उन्हें जेम्स से प्राप्त हुई। मूलतः प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी में विद्यमान जीवशास्त्रीय विकासवृत्ति के आधार पर जेम्स के लिए मानव सजीव है। वे उनको ऐनाटोमी के नमूने के रूप में नहीं मानते। ड्यूई के दर्शन का विषय भी यही मनुष्य है। अन्तर इतना है कि यहां आकर वह एक सामाजिक प्राणी हो गया है। ड्यूई की इस मान्यता पर निश्चय ही हीगल की विचारधारा का प्रभाव था।

ड्यूई ने अपने शिक्षण के सम्बन्ध में फ्रोम एब्सोल्यूटिज्म टू एक्सपेरीमेण्टलिज्म (कण्टेम्पारेरी अमेरिकन फिलासाफी वाल्यूम 2 1930) में विवरण दिया है।

1 पी० ए० शिल्प के विभिन्न निबन्ध दख–द फिलासोफी आव जान ड्यूई (1937) में एवं विशेषतः 1939 में एस हुक की कृति जॉन ड्यूई एन इन्टेलेक्चुअल पोर्टेट में स्वयं ड्यूई द्वारा दिये गए उत्तर दर्शन योग्य। जी सन्तयाना कृत ओबीटर स्क्रिप्टा (1936)। एम० जी० व्हाइट कृत द ओरीजिन आव ड्यूईज इन्स्ट्रूमेण्टलिज्म (1943) एस० एस० व्हाइट कृत ए कम्पेरीजन आव द फिलोसोफीज आव एफ० सी० एस० शिलर एण्ड जॉन ड्यूई (1940) जे० लेण्टर द्वारा आकलित और स्वयं की लम्बी भूमिका सहित इण्टेलिजेन्स इन मोडर्न वर्ल्ड (1939)। रशेल हिस्ट्री आव वेस्टर्न फिलोसोफी (1946) एवं एन इनक्वायरी इनटू मीनिंग एण्ड ट्रूथ (1940)। दा गोप्ठिया जान ड्यूई मैन एण्ड हिज फिलोसोफी (1930) एवं दि फिलोसोफर आफ द कोमन मैन (1940) जे० पी० 1939 में एवं पी० आर० 1940 में प्रकाशित अनेक निबन्ध।

2 ड्यूई में हीगलवाद का प्रभाव जी० एम० मौरिस के जरिए आया। मौरिस का गतिमान प्रत्ययवाद (डायनेमिक आइडियलिज्म) अपने आप में ही हीगल के दर्शन का जीवशास्त्रीय एवं प्रयोगवादी तरीके से संस्करण मात्र है। द्रष्टव्य फिलोसोफी एण्ड क्रिश्चिएनिटी (1883) एवं आर० एम० मनले कृत द लाइफ एण्ड वर्क्स आव जी० एस० मौरिस (1917)।

शिकागो सहयोगी ग्रक द्वारा प्रकाशित स्टडीज इन लोजीकल थ्योरी (1903) में ड्यूई की मौलिक शली सवप्रथम प्रकाश म आई जिसे उन्होने 1616 में ऐसेज इन एक्स्पेरीमेन्टल लोजिक म पुन मुद्रित करवाया। उनका उद्देश्य एक तरह से प्रत्ययवादी तकप्रणाली को किसी प्रकार ठास बनाना था। वे ब्रेडले ग्रौर बोसाके की ही भाति यह मानते है कि तक निणय करने का सिद्धान्त है। लकिन कोई निणय सदव इस बात की ओर सकेत दता है कि कोई कुछ निणय कर रहा है। ड्यूई उन प्रक्रियाग्रो पर विचार करते है जिनके जरिए कोई जाच पडताल करने वाला किन्ही निष्कर्षों पर पहुचता है—वे उसे या तो निणय मानते हैं अथवा ज्ञान।

ड्यूई के वणनानुसार ज्ञान किसी स्थिति का चिंतन–प्रधान अथवा बौद्धिक रूप स ग्रहण करने की क्रिया है, जो अनुभव से विकसित ता होती है लकिन तब फिर वसी की वसी नहीं रहती। अनुभव उनके अनुसार किसी स्थिति को दखने का चितनरहित तरीका है। जसे खाना खाना किसी पाचन सस्थान का अध्ययन करने से भिन्न है। एक ऐसा अनुभव है। और उसी प्रकार किसी चित्र को पसन्द करना अपने मित्रो से बात करना–एक गरेज बनाना और प्रेम करना भी सब अनुभव हैं। दार्शनिकों की जो एक ही प्रकार की भूल है वह यह कि अनुभव से परे किए गए उनके चिंतन अपने आप म अनुभव ही है।

नील रग क प्रति सवदना कम स कम वही नीला रग ता नही है जिसे हम अनुभव करते समय देखते हैं। हमारे अनुभव वस्तुओ के किन्ही स्थितियो म हाने की बाबत होते हैं। नीले रग की सवेदना अनुभव पर हुए चिंतन क परिणाम स्वरूप हाती है। वे परम्परागत अनुभववाद का इस आधार पर खण्डन करते हैं कि उनक लिए हमारा तात्कालिक अनुभव इसी प्रकार की सवदनाओ क परिणामस्वरूप निर्मित है। इस प्रकार अनुभववाद पूणत अनुभव की मूल स्थिति को बौद्धिक क्रिया द्वारा व्यभिचरित कर डालता है।

यह कहना महान् भूल है कि सचल वस्तु का ठास अनुभव हो सकता है। यदि किसी वस्तु को ठीक ढग स समझा जाए ता वह स्वय म एक सत्ता है स्थिति है और कारण है। और किसी राजनीतिक आन्दोलन जसा कुछ है या फिर पक किये हुए टमाटरो के अतिरिक्त भण्डार से मुक्ति पाने जसा है, या फिर स्कूल जाने जसा अथवा किसी युवती की ओर ध्यान स दखने जसा है। सक्षेप म यही है कि वे स्थितिया हैं जिनसे हम अनुभव की चिंतन रहित व्याख्या कर सकत हैं। इस ग्रथ म ही वे वस्तुए हैं, पदाथ नही जो हमारे अनुभवो का निरन्तर निर्माण करती रहती हैं। ड्यूई अनुभव का प्रारम स वणन करते हुए कहत हैं कि यह एक घटित हाने की स्थिति है–वस्तुओ की सचल अनुभूति है और तब उनक बन चुकने की स्थिति है।

और अपनी इस विविधता के कारण अनुभव म सघषण और तनाव की स्थिति विद्यमान रहती है। इसी तरह के सघष से कोइ समस्या खडी होती है इसलिए अनुभव को सुधार करके देखना समस्या का हल खोजना ही है। इसलिए एकसी जाच पडताल का पहला कदम समस्या का विश्लेषण करना है और तब उसके समाधान के लिए साधन (प्राक्कल्प) जुटाना है। यह विश्लषणात्मक प्रक्रिया अपन आप म ज्ञान नही हो सकती। य तो व साधन है जिनसे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमे ज्ञान उसी समय हा सकता है जब हमने स्थिति को उसे सगठित कर लिया है कि हम तब उस माग मे प्रस्तुत हो जान वाली मुश्किलो पर विजय प्राप्त कर सकते है। और इसी क्रिया के द्वारा हमार अनुभव समृद्ध हाते है। यहा आकर वह स्थिति जिसस हमने प्रारम्भ किया था अब बहुत व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। और उसम अब कुछ ऐसी सभावनाए निहित हो गयी हैं जिनके विषय म हम पहले से सचेत नही होत। यही वह बिन्दु है जहाँ से ड्यूई अपनी जाच पडताल के सिद्धा त स आग आकर आनुभविक नीतिशास्त्र एव सौन्दयशास्त्र पर चर्चा करने लग जात है। विचित्र रूप स सौन्दय एव बुद्धिसम्बन्धी आनन्द अनुभवो स ही प्राप्त किए जा सकत है किसी परानुभवी अथवा व्यवहारेतर जगत के विचार स नही।[1]

यही कारण है कि ड्यूई ज्ञान को सफलीभूत अभ्यास कहते हैं और इस तरह व्यवहार के सिद्धान्त का भेद करना दोना ही स्थितियो के लिए घातक है। इसके बावजूद भी वे इस कथन को स्वीकार नही करते कि विचार काय के लिय ही है। विचार स्वय एक क्रिया है जो किसी वस्तु का पता लगान अथवा प्रयोग करने को प्रकट करती है।

ड्यूई का सत्यसम्बन्धी यह सिद्धान्त जाच पडताल की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप प्रकटा है। वह अपन निष्कर्षा म जेम्स के बजाय पीयस क अधिक करीब है।

---

1 इस प्रकार ड्यूई की शिक्षा पद्धति पर प्रस्तुत की गई प्रभावशाली रचनाओ के कारण यह दृष्टिकोण निमूल हो जाता है कि उदार शिक्षा एव व्याव सायिक शिक्षा एक दूसरे की विरोधी है। शिक्षा तो बुद्धि म प्रवीणता प्राप्त करत जाने का नाम है। प्रशिक्षण का अथ है वह क्षमता विकसित करना जिसके कारण प्रस्तुत किसी स्थिति का कोई ऐसा परिवतन करना है जो बेहतर हो। यह एक एसी शिक्षाप्रणाली की आवश्यकता पर बल देता है जो एक साथ व्यावहारिक भी है—क्योकि इसके आधार पर हमार लिए यह जानना जरूरी है कि इस ससार का कसे बेहतर बनाया जाय और उदार इसलिए कि यह उत्तमता किस बात म निहित है। लकिन यह भी विचार मात्र स प्राप्त नही हो सकती। इसके लिए प्रयोग की आवश्यकता रहेगी।

पीयस और ड्यूई दोनो इस कथन से असतुष्ट थे कि सत्य वही है जो सतोपप्रद हो। और जेम्स के द्वारा समय समय पर प्रस्तुत किय गये अन्य सव प्रक्षिप्तांशो का भी व अपर्याप्त मानते है। क्योकि य धारणाएँ अन्धविश्वास एा काल्पनिकता का प्रश्रय देने वाली हैं। उनकी धारणा के अनुसार सत्य वही है जिससे वनानिक सतुष्ट हो सक। इसके लिए यह पर्याप्त नही है कि अमुक व्यक्ति उससे सतुष्ट हो गया है। सत्य का यह सिद्धान्त, पीयस के सामान्य दोष के सिद्धान्त द्वारा और भी जटिल वना दिया गया और जिसे ड्यूई न स्वीकार भी कर लिया।

समान्य दोष के सिद्धान्त का अथ पीयस क अनुसार किसी वनानिक का यह अभिमान है कि वह गलत भी हो सकता है क्योकि व सव धारणाएँ जिन्हे वह स्थापित सत्यो के रूप मे स्वीकार कर चुका है उसक लिए उसी समय तक ही स्थापित है जब तक कि वह उनके विपय म आगे जाच पडताल करन की आवश्यकता अनुभव न करे। व इस रूप मे सत्य नही है कि व सवथा दोपमुक्त है। वनानिक सत्य के रूप म उनम भी यह भाव निहित है कि कुछ अ शो म दोप-पूर्ण हैं। सत्य, इस तरह हमारी निधारित सीमा म किसी अमूर्तीकृत सिद्धान्त वा वस्तु स्थिति से मेल खाने का नाम है जिस, वनानिक विश्वास प्रदान करने के लिए अनन्त प्रयास करने होग। यह बात पीयस ने वाल्डविन द्वारा सम्पादित डिक्शनरी म सत्य की व्याख्या करते हुए लिखी थी। यह परिभाषा ड्यूई न भी स्वीकार की।

जाँच के दौरान सत्य सम्बन्धी प्रश्न दो अवस्थाओ पर उपस्थित होता है—सवप्रथम तो उस समय जब हम किसी समस्या को डाइग्नोज (आवयविक जाच) करते हैं और दूसरे जब हम उस हल कर लते हैं। लेकिन ड्यूई तो आवयविक जाच क दौरान आने वाली किसी भी स्थिति को पूणत सही अथवा गलत नही मानत। क्योंकि व जाँच पडताल के मात्र उपकरण क रूप म प्रयुक्त हो रही हैं। व, कारगर और वेकार, उपयुक्त अनुपयुक्त, व्यथ और साथक सभी हो सकती है, सही और गलत नही। कवल इन धारणाओ स निकलने वाल निणय ही उन्ह सत्य अथवा गलत बना सकत हैं। यहा पर भी हम उस सत्य न कह कर खतर स युक्त स्वीकृतियाँ मानना चाहिए। निणय सत्य है यह स्वीकार करन म हम सतक रहना है। क्योकि वनानिक विधि स उनका निर्धारण उस आदश सीमा म हुआ है जा सब विनाना की विवशता है।

एक्स्पीरिएन्स एण्ड नेचर (1935) एव द क्वेस्ट फोर सरटेनटी (1929) इन दो पुस्तको म सामान्य जाच पडताल के इस सिद्धान्त का व दार्शनिक समस्याओ क हल के लिए भी प्रस्तुत करते हैं। य दोनो पुस्तकें एतिहासिक उद्धरण-दक्र दृश्यमान नान क सिद्धान्त पर प्रहार करती हैं–यह सिद्धान्त प्लेटोवादियो क लिए

भी उतन ही महत्व का था जितना यथार्थवादियों के लिए और जिसके अनुसार ज्ञान को अनन्त सत्य के लिए एव निष्क्रिय विचार माना गया था।

ड्यूई इन दोनों बातों का खण्डन करते हुए कहते है कि न तो एसा कोई स्थायी सत्य ही है और न ज्ञाता अपने को केवल दर्शक मानकर-ही सतुष्ट हो सकता है। जिन वस्तुओं की अनुभूति हम करते है व प्रश्नवाचक है। वे हमारे सामने समस्याए रखती है, और हम चुनौती देती हैं। हम उनके साथ ही उनका अनुसरण करते हुए प्रकृति का पुर्ननिर्माण करते हैं। केवल उस पर विचार नही करते। दर्शकवादी सिद्धान्त एक ऐसे समाज का कल्प प्रस्तुत करता है जिसमे मनुष्य वास्तव मे शक्तिहीन है, और केवल दूसरे जगत का ही स्वप्न ले सकता है। एक एसे जगत का जो सब परिवर्तन से मुक्त है-क्योकि यही वह सुरक्षित स्थिति है जिसकी वे कामना करते रहते है। लेकिन आधुनिक मानव, ड्यूई सगर्व घोषणा करते हैं अब अशक्त नही है उसने प्रकृति का रूपान्तर करना सीख लिया है और इसी आधार पर वह सीमित अवस्था मे एक सही एव सुरक्षित स्थिति अपने लिए खोज सकता है। प्रयोगात्मक विधि के उपयोग से वे यह सभव मानते हैं कि जो अब तक अनिश्चित एव अवश स्थितियां थी उन्हें निश्चित एव वशीभूत किया जा सकता है। सदेहास्पद एव जटिल स्थितियों को सरल एव व्यवस्थित किया जा सकता है।

ड्यूई विशेषत इस बात के लिए चिंतित हैं कि किस प्रकार प्रकृतिसबधी अनुभवो पर सदेह करने वाले इस विश्व मे दर्शन अपना आदरपूर्ण स्थान बनाए। यहा यह बात ध्यान देने की है कि सदेह स्वय प्रकृति मे भी विद्यमान है केवल हमी मे नही। वे दर्शन को मात्र विश्लेषण तक ही सीमित नही रखना चाहते। न वे यही चाहते हैं कि दार्शनिक एक छोटा मसीहा ही हो जाए। ड्यूई के अनुसार दार्शनिक सस्कृति का डाक्टर है [नीत्शे के मुहावरे को यदि काम मे लें तो] और एक तर्कशास्त्री भी। दर्शन बुद्धिप्रवीणता का अपनी प्रवृत्ति एव प्रणाली से साक्षात्कार कर लेने का नाम है। *क्योंकि हम आज चेतना प्राप्त है इसलिए हमारी* यह चेतना कला विज्ञान एव शिल्प के बीच मध्यस्थता का काय कर सकती है। दार्शनिक वैज्ञानिक के काय को सरल बनाने मे उसकी सहायता कर सकता है क्योंकि बुद्धिप्रयोग सम्बन्धी प्रणालियो की जानकारी उसे वैज्ञानिक से कहीं ज्यादा प्राप्त है। और चूकि वैज्ञानिक की रुचि किसी अनुभव के सीमित होने से होती है इसलिए एक दार्शनिक उसकी सकीर्णता मे सुधार कर सकता है। इस प्रकार दार्शनिक आलोचना की आलोचना मे निहित अनबूझ स्थिति का स्पष्टीकरण करने वाला है तो भी यह एक दृष्टि है जो अपने आपको विशाल व उदार प्राक्कल्पो मे अभिव्यक्त करता है। जिसके जरिये मनुष्य यह ज्ञान प्राप्त करता है कि मूल्य निर्धारण की सम्पूर्ण प्रणाली का किस प्रकार उपयोग एव विकास किया जाना चाहिए।

अमरीका क बहुत स दूसरे दाशनिको[1] ने भी अर्थक्रियावाद क प्रभाव म रचनाए की है और योरोप महाद्वीप मे भी उसका कम प्रभाव नही रहा । इटली म तो जी० पपीनी के सहयोगियो के एक वग न तथा लियोनार्डो नामक पत्र ने 1903–1907 तक) जेम्स क इस अर्थक्रियावाद को मानव कम सम्बन्धी एक सदेश माना है । और मुसोलिनी ने भी जेम्स को अपना गुरु होने का सदहास्पद स्थान दिया था ।[2] फ्रास म इससे भी अधिक अर्थक्रियावाद म लोगो की रुचि हुई । इसका कारण जेम्स का फ्रासीसी दशन स परिचित होना था । अर्थक्रियावाद न बहुत सी समालोचनाओ को जन्म दिया और जोर्जेस सोरल जसे प्रतिभावान दाशनिक का समथन प्राप्त किया ।

सोरल इससे पूव बगसा के प्रभाव मे आ चुके[3] थ । 1908 म लिखे उनक रिफ्लेक्शन्स आन वॉयोलेंस सामाजिक क्रिया क सम्बन्ध म विनाशवादी

---

1 उदाहरणाथ द्रष्टव्य 1917 म प्रकाशित ड्यूई एव अन्य विचारको द्वारा लिखित सहयोगी ग्रन्थ क्रिएटिव इण्टेलीजेन्स । बाद के अर्थक्रियावादियो म कदाचित् जी० एच० मीड सवम महत्वपूण है । 1938 मे उनक मरणोपरान्त प्रकाशित द फिलसोफी आव द एक्ट नामक ग्रन्थ क्रिया का विस्तार से विश्लेषण करता है और उसकी पृष्ठभूमि म ड्यूई का जाच पडताल का सिद्धान्त क्रियामाण है । द्रष्टव्य, सी० डबलू मोरिस कृत पीयस–मीड एण्ड प्रेग्मेटिज्म (पी० आर० 1938) ए० ई० मर्फी कान्सनिंग मीड्स द फिलोसोफी आव द एक्ट (जे० पी० 1939) अन्य अर्थक्रियावादी रचनाओ म उदाहरण के लिए द्रष्टव्य, एस० हुक्स कृत मेटाफिजिक्स आव प्रेग्मेटिज्म (1927) । ए० एफ० बण्टले कृत बिहेवियर, नोलेज, फक्ट । (1935) ए० डबलू मूर कृत प्रेग्मेटिज्म एण्ड इट्स क्रिटिक्स (1910) । सी० डबलू० मोरिस कृत सिक्स थियरीज आव माइन्ड (1932)

2 द्रष्टव्य परी कृत थोट एण्ड केरेक्टर जी० मेगारो, मुसोलिनी इन द मेकिंग (1938) । निश्चय ही जेम्स का टाटेलिटेरिएनिज्म (एकदलवाद) के प्रति कोई सहानुभूति नही थी जिसके लिए जी० जेण्टाइल जसे प्रत्ययवादियो ने बौद्धिक छटाई का काय किया था–लेकिन फासिज्म अपनी आरम्भिक अवस्था म काय क लिए अपनी पुकार और उत्साहित होने के प्रति उसकी अपील सहित बिना बहुदगी के जेम्स को अपने समथकों म सम्मिलित मान सकता है । द्रष्टव्य मकिन पर लिखा जेम्स का निबन्ध जो पपीनी एण्ड द प्रेग्मेटिस्ट मूवमेण्ट इन इटेली जे० पी० 1909)

3 जेम्स पर लिखी गई इन रचनाओ के अलावा द्रष्टव्य, ज० ए० वाहल कृत प्लूरलिस्ट फिलोसोफीज आव इगलण्ड एण्ड अमरीका (1920 अग्रेजी अनुवाद 1925 ई लिराऊ कृत ल प्रग्मातिज्म अमरीकेन एत एग्लस (1922) । सोरल के लिये देख, आर० हम्फ्रे जार्जिस सारेल प्रोफेट विदाउट आनर (1951)

प्रणाली से सोचने तथा केवल वचारिक आधार पर कुछ कहने के विरोध म उनका यह प्रहार है । 1921 म प्रकाशित **यूनिट आव प्रॅग्मेटिज्म** मे सोरल न जेम्स का स्वागत विज्ञानीकरण के विरुद्ध सघष करन म अपने सहयोगी के रूप म किया है। योरोप मे उनके अनुसार चूकि जेम्स का पक्ष नही लिया गया इसलिए उनके दशन को अतलातिक चेत्र म उपजी काल्पनिकता की सज्ञा भी दी गई है । सुवाद के समय एक उपकरण के रूप मे उपयोग करने के लिए सोरल न अथक्रियावाद का प्रयोग उपयुक्त माना है। यहा फिर अथक्रियावाद सामाजिक दशन से भी ऊपर उठ जाता है–जबकि आज के समाजशास्त्री सिद्धातिको द्वारा यह वाद सर्वाधिक सदभयाग्य माना जा रहा है।

अध्याय 6

तर्कशास्त्र के क्षेत्र में नये विकास[1]

ब्रितानी अनुभववादी आकारी तर्कशास्त्र को हेय मानने में एकमत थे। वे यह मानते थे कि यदि इसका कोई भी उपयोग है तो वह उसे विचारकला मानकर चलने में ही उनकी धारणा थी कि विचार की किसी कला की आवश्यकता नहीं और यदि उसका विकास स्वाभाविक तौर पर हो तभी वह श्रेष्ठतम रूप में क्रियमाण रहता है। उस आकारी तर्कशास्त्र के नियमों के पालन की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में आकारी तर्कशास्त्र ने ग्रेट ब्रिटेन के सक्रिय दार्शनिक जीवन में शायद ही कोई योग दिया हो। हां ऑक्सफोर्ड की जो मध्ययुगीन विचारधारा का आखिरी पोषक शेष रह गयी थी, उपस्नातकों में अभी भी आकारी तर्कशास्त्र के प्रति कुछ रुचि थी। जावट के अनुसार तर्कशास्त्र न तो विज्ञान ही है और कला ही–यह तो एक खुराक सी है। अभी तक पढ़ाये जाने वाले अथवा तोते की तरह रटा दिये जाने वाले तर्कशास्त्र का यह एक सीमा तक सही मूल्यांकन है। ए० एडरिच कृत आर्टिस लोजीकीए कम्पेण्डियम (1691) जो तकनीकी पदों का ऊटपटांग आकलन था उपस्नातकों की स्मरण शक्ति में बढ़ाने के लिए उन्हें पद्यात्मक रूप में बड़े सतर्क ढंग से रखा गया था– और 1831 तक तो तर्कशास्त्र ऑक्सफोर्ड के उपस्नातकों के लिए एक अनिवार्य विषय था।

---

1 यह एक ऐसा विषय है जिसे बड़े नाजुक एवं समुचित ढंग से अध्ययन किया जाना चाहिए। इससे हमारी समझ के लिए विस्तार से अध्ययन किये जाने वाले तकनीकों से भी छूटने नहीं पाएंगे। मैंने तो मात्र संकेत के लिए उन बातों की चर्चा की है जिनकी आधुनिक तर्कशास्त्रियों द्वारा अत्यंत सामान्य तौर पर चर्चा की गई है। अधिक संतोषप्रद सामग्री के लिए देखें सी० आई० लेविस कृत ए सर्वे ऑव सिम्बोलिक लॉजिक (1915) जे० जारजेनसन कृत ए ट्रीटीज ऑव फार्मल लॉजिक (1931), एल० लियार्ड कृत लॅ लोजीसीएंस एंगलाइस कण्टेम्पोराइन्स 1907-मस्करण), ए० टी० शीयरमन कृत द डवलपमेण्ट ऑफ सिम्बोलिक लॉजिक (1906), पी० ई० बी० जोरडेन कृत डवलपमेण्ट ऑव द थ्योरीज ऑव मैथेमेटिकल लॉजिक एण्ड मैथेमेटिक्स (क्वाटरली जरनल, प्योर एण्ड एप्लाइड मैथ्स (1910–12)। 1936 के द जरनल ऑव सिम्बोलिक लॉजिक (ए० चर्च कृत) में उत्तम पुस्तकसूची देखें। 1938 के संस्करण में उन्हें परिष्कृत एवं परिवर्धित किया गया है और साथ ही परवर्ती वर्षों में प्रकाशित पुस्तकों की एक सूची भी है।

1826 म प्रकाशित आर० व्हाटल की पुस्तक एलीमेण्टस आव लोजिक उपयु क्त पुस्तक की ऊटपटाग प्रणाली क विपरीत एक सुनियोजित कृति थी। व्हाटन परपरागत तकशास्त्र की पुन सिद्धि तथा उसका बचाव करन के पक्ष म थ। लकिन व्हाटल द्वारा किया गया पुन स्थापन एडरिच की चमकारोक्तिया स कही अधिक समीचीन और जीवन्त था। अनुभववादियो द्वारा तकशास्त्र का खण्डन उनके द्वारा उसकी प्रकृति और उद्देश्यो को न समभन क कारण हुआ है और परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने सामा य बुद्धि की शक्तियो को अनावश्यक महत्व दे दिया है। व अपनी लाजिक नामक पुस्तक क बाद क सस्करण म इसलिए बडे न्यायोचित ढग से यह घोषणा कर सके कि उनकी रचनाओ ने तकशास्त्रीय अध्ययन सम्बन्धी पुन उत्पन्न हुई रुचि क लिए महत्वपूण योगदान दिया है।

सर विलियम हैमिल्टन ने भी अपना अविस्मरणीय प्रभाव उसी दिशा म डाला। आज का तकशास्त्र का इतिहास-लेखक हैमिल्टन को अत्य त अरुचि से सदर्भित करता हुआ उन्हे एक चमत्कारी स्काटवासी बहादुर की सना से अभिहित करता है जब कि उनक समसामयिक उन्ह निश्चय ही अपन समय का सवश्रेष्ठ दाशनिक एव विद्वान मानत थ। बूले ने जि ह असहानुभूतिपूण आलोचक कहा जा सकता है 1847 म लिखा कि सर विलियम हैमिल्टन क विषय म कुछ अन्यथा कहे उसस पूव यह जरूरी है कि हम उनकी विद्वत्ता और प्रतिभा के प्रति वह आदर दिखाए जो व हमसे स्वत प्राप्त कर लते हैं। जन हैमिल्टन ने न कवल यह सुझाया कि तकशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है अपितु यह भी घोषणा की कि तकशास्त्र सम्बन्धी नय अन्वषणो का युग प्रादुर्भू त होने वाला है तो उनके पाठको म इसका बडा प्रभाव पडा। उ होने अरस्तू क अनुसरण म चलने वाल बहुत स तकशास्त्रिया को सतक किया कि व उनके निष्क्रिय अनुक्रमण (पसिव सीक्वेसिटी) के सिद्धा त का अ धानुकरण करना छोड द। उ होने इस तथ्य की ओर उसका ध्यान खींचा कि अब तो बहुत स सामा य प्रचलन क नियम एव तक-नात्मकता के लिए वध मान लिए गए है और कुछ सम्ब ध (रिलेश स) जो अभी तक अज्ञात थ अब प्रकाश म आने शुरू हो गय हैं।[1] यह काण्ट की उस मा यता से

---

1 हैमिल्टन न तकशास्त्र क अ श समय समय पर प्रकाशित करवाये थ। इनके एडिनबरा रिव्यू 1833 म प्रकाशित एव डिस्कश स आन फिलोसोफी एण्ड लिटरेचर नाम से पुन मुद्रित इनका लोजिक द रीसेण्ट इगलिश टीटीजेज आन द सबजेक्ट नामक लेख काफी महत्वपूण था। उनक तकशास्त्र पर दिए गए भाषणो का सग्रह लेक्चस आन लोजिक, जिसम बाद के तकशास्त्रियो की तक प्रणाली का उद्धरणो से समझाया गया है 1861 म उनक मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। 1850 म प्रकाशित एन ऐसे आन द यू एनालिटिक आव लोजिकल फाम्स

अलग भी कोई बात थी कि तकशास्त्र ने अपनी पूणता प्राप्त कर ली है। या फिर ~हाटे ने की ~स धारणा को निमूल करना था कि तकपदी ही वध तकप्रणाली का आधार है। अब एसा लगता था कि तकशास्त्र की पुन सिद्धि की आवश्यकता नहीं थी अपितु उसके नये ज म की भूमिका बन चुकी थी।

हेमिल्टन के जिन तकनीकी नवो मेषणो ने अपने समसामयिक विद्वानो की प्रशसा प्राप्त की उनम बहुविदित था विधेय-परिमाणन (क्वाटिफिकेशन आव द प्रेडिकेट) का सिद्धात जो यद्यपि उनके स्वय के लिए मौलिक नही था[1] और न ही तकशास्त्र म हुए बाद के विकास म अधिक सहायक ही रहा लकिन अत्य त आकषक रूप से ~सने उस दिशा की ओर सकेत किया था जिसकी ओर तकशास्त्र भविष्य म जान वाला था।

नामक ग्र थ म परिशिष्ट म टी० एम० वइ~स द्वारा हैमिल्टन के विभिन्न लखो को सगृहीत कर लिया गया है। 1842 म डब्लू टोमसन द्वारा प्रकाशित लाज आव थोट नामक पुस्तक म हैमिल्टन के प्रभावान्तगत लिखी गई अत्यन्त महत्वपूण रच- नाओ का सग्रह है। उसमे सयोजित मारणिको के लक्ष्याथ को उ होने नये ढग स परम्परागत तकशास्त्र के तात्कालिक लक्ष्यार्थों की समता म खडा कर दिया।

1 यदि महाद्वीपीय लखको की चर्चा कर तो जोज बे थम ने 1827 म आउटलाइन आव ए न्यू सिस्टम आव लोजिक लिखकर हेमिल्टन की तकशास्त्र-सबधी धारणाओं का पूर्वानुमान सा दिया था। यह रचना उ होने अपने चाचा जर्मी ब थम की अवशिष्ट हस्तलिपियो म से तयार की थी। यह कभी कभी कहा जाता है (उदाहरण के लिए जोर्जे सन द्वारा) कि हमिल्टन बन्थम क विचारो स परिचित नही थ लेकिन वास्तव म हमिल्टन न एडिनबरा रिव्यू म उनकी उपयु क्त पुस्तक का रिव्यू लिखा था।

डी मोगन के साथ चल लम्ब मुवाद म जहा उ हाने परिमाणक रूप म अपनी पूववर्तिता प्रायारिटी सिद्ध की है उ होन यह बात मानी है कि उस पत्र म छप अपने निबध के समय मे ही उ हाने तत्सबधी शोध-काय प्रारम कर दिया था। आज भी इतिहास के लिए यह एक जिज्ञासा का विषय बना है। लकिन ईमानदारी स बेन की इस दृष्टि का स्वीकार लना चाहिए कि हमिल्टन ही परिणाम के सिद्धात का विस्तृत रूप से प्रयोग करने वाल सवप्रथम तकशास्त्री थ। हमिल्टन भी इससे अधिक किसी स्थिति का दावा भी नहीं करते। द्रष्टव्य हेमिल्टन कृत डिस्कशन्स एव डी० मोगन कृत फोरमल लोजिक जिसमें यह मुवाद विस्तृत विवेचित है।

परम्परागत तर्कशास्त्रानुसार सभी कथनो को चार रूपो मे व्यक्त किया जा सकता है : सब क–ख हैं कोई क–ख नहीं हैं कुछ क–ख है–कुछ क–ख नही है। इन सबमे विधेय मे किसी परिमाण का सकेत नही मिलता। इसके विपरीत हेमिल्टन के तर्कशास्त्र मे विधेय को परिमाणित किया गया है। उदाहरण के लिए सब क–सब ख है इसका उद्देश्य हेमिल्टन के लिए सभी तर्क वाक्यो को समानार्थक पदो का रूप देना था। उन्होने लिखा–एक तर्क वाक्य मे सदैव ही कर्ता और उसके विधेय के बीच समानार्थक सभावना देखी जाती है। परम्परागत तर्कशास्त्र मे कोई भी तर्कवाक्य अपने कर्ता को सदैव ही गुणो से युक्त करता है।– नवीन विश्लेषण के अनुसार तर्कवाक्य द्वारा दोनो स्थितियो अथवा श्रेणियो मे तादात्म्य खोजा जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि हेमिल्टन के द्वारा निरन्तर गणित के प्रति किये गये प्रहार के बावजूद भी उनका विधेय परिमाणन का सिद्धात यही सिद्ध करता है कि उनके तर्कशास्त्र का आधार समीकरण का सिद्धात ही रहा। इसके अतिरिक्त भी अपनी समीकरण अभिवृत्तियो के साथ उन्होने तर्कशास्त्रीय कलन (लौजिकल कलकुलस) के सिद्धात को भी जोड दिया और उसे तर्कशास्त्रीय शब्दाकन (नोटेशन) का रूप भी दे दिया। तर्कवाक्यीय एव तर्कपदीय दोनो ही प्रकार की तर्कप्रणालियो के नये एव पुराने प्रयोगो को यात्रिक सरलता से व्यक्त करने की अपनी क्षमता का परिचय भी उन्होने दिया। हेमिल्टन की प्रतिभा उनकी महत्वाकाक्षा के अनुकूल नही थी लेकिन सभावनाओ का प्रकटाना ही अपने आपमे एक ऐतिहासिक महत्व की वस्तु तो है ही।

ए० डी० मोरगन कृत फोरमल लौजिक (1849) के प्रकाशन के साथ ही तर्कशास्त्र मे क्राति का सूत्रपात हो गया था।[1] डी० मोरगन आजकल अधिक चर्चित नही है। उनके द्वारा किये गये नवोन्मेषण तर्कशास्त्रीय परम्परा के साथ घुलमिल गये है। उनकी यह उपेक्षा अशत इस तथ्य के कारण है कि उनकी क्रातिकारी रचना ट्राजेक्शस आव द केम्ब्रिज फिलोसोफीकल सोसाइटी (1849–64) अभी तक छिपी पडी रही–। हा, सिलेबस आव ए प्रोपोज्ड सिस्टम आव लौजिक (1860 नामक ग्रन्थ मे उसके कुछ सक्षिप्त अश अवश्य प्रकाशित हुए थे। उनकी फोरमल लौजिक

---

1 द्रष्टव्य जी० बी० हाल्स्टड का डी० मारगन एज लोजिशियन जनरल स्पेकुलेटिव फिलोसोफी (1884) एस० ई० डी० मोरगन कृत मेमोयर आव आगस्त डी० मोरगन (1882) सी० आई लीविस ने उपयुक्त रचना मे डी० मोरगन के तर्कशास्त्र का पूर्ण विवरण दिया है। ए० डी मोरगन का 1860 के द इगलिश साइक्लोपीडिया के पाचवे अक मे तर्कशास्त्र पर लिखा निबध और उनके द्वारा उसके समसामयिक तर्कशास्त्र पर की गई टिप्पणी द्रष्टव्य है।

नामक पुस्तक आज क तकशास्त्रियो के लिए अधिक उपयोग की नही है। उसम अभी भी अरस्तू का प्रभाव देखा जा सकता है। बस इसम अरस्तू के तकशास्त्र को नय दृष्टिकोण से देखा गया है।

बाद के कोर्टेजियन दाशनिको की सामा य धारणा यह थी कि तक का काय प्रत्ययो को सयोजित करता है। डॉ० मोरगन न हा॰स का इस अपधमिता का पुनरुद्धार किया कि तक नामो अथवा शब्दो से सबधित है। होब्स ने यह भी कहा था कि तकशास्त्र कलनात्मकता का ही एक प्रकार है। य दोनो सिद्धान्त स्वाभाविक तौर पर परस्पर जुडे हैं। एक प्रत्यय अपन आप म एक अथ का व्यक्त करता है जबकि श दो को बिना अथ के इधर उधर प्रयुक्त किया जा सकता है बीजगणितीय कलन क आधार पर यह आसानी से समझा जा सकता है कि किस प्रकार तकशास्त्र कभी नाम के सिद्धा त की प्रणाली रही होगी।

लकिन अभी तक ता यह माना गया था कि बीजगणितीय प्रतीक सदव ही परिमाण है और उनके फलन को व्यक्त करते हैं—जसे जोड। लेकिन परिमाण क सहारे तकशास्त्र और बीजगणित की क्षमता बताये जाना बहुत दूर तक सम्भव नही है। उन्नीसवी शती के प्रारभ क अ ग्रेज बीजगणित शास्त्री अपनी बीजगणित सबधी पुरानी धारणाओ का महत्वपूण तरीके से दो तरह का प्रयोग कर रह थ। उ होने सवप्रथम इस बात का खडन किया कि बीजगणित के इस नियम म

अ+ब=ब+अ

अ और ब दोना परिमाणसूचक हैं। उ होन ता यहा तक माना कि जा कोई मूल्य अ और ब दाना की तरह का है वह इस नियम की सिद्धि करगा ही। और इस कथन का कि कवल परिमाण ही यदि इस नियम को सिद्ध करता है क्याकि परिमाण ही जोडा जा सकता है यह उत्तर दिया गया कि ता फिर धन का चि ह जोड क लिए प्रयुक्त नही हाना चाहिए। वह ता एक एसी अवस्था का व्यक्त करता है जिस यदि किसी विशिष्ट समान अवस्था म रूपा तरित किया गया तो वह उसके लिए उपयागी सिद्ध हागी। डॉ० मोरगन का उदाहरण लें तो धन क चि ह का अथ है बध जाना और यदि अ ब स बधा है तब स्वत ही ब अ स बधा हागा इस तरह अ+ब अभी भी ब+अ के बराबर हात है।

डॉ० मोरगन न इस नवीन दृष्टिकोण द्वारा 'है' नामक क्रिया का स−ध है।' जसे परम्परागत तकवाक्य क उदाहरण से नई व्याख्या की। स एव प उन सामा य प्रतीकों के रूप म सदा म ही अध्ययन किए जात रहे हैं जि हें किसी पद द्वारा बदला जा सकता है। लकिन यह मानना कि है का एक निश्चित अथ है, इस पर

है, ज्ञान और विश्वास दोनों को एक फलाव किया जा सकता है।' इसी कारण स्वयं मोरगन के समक्ष संभावना (प्रोबेबिलिटी) का विवरण देने में भी प्रत्यक्ष मुश्किल आई। विशेष रूप से मनोविज्ञान और गणित शास्त्र के बीच कोई समत्व स्थापित करने में। वे य कहना चाहते थे कि संभावना कभी भी वस्तुपरक नहीं होती। वह तो हमारे मन की अवस्था पर निर्भर करती है।

किसी विशेष प्रकार के तथ्य से उसका कोई तादात्म्य नहीं और न उसी आधार पर कोई विश्वास संभाव्य हो सकता है। लेकिन इसी के साथ डी मोरगन यह स्वीकारते है कि किसी विश्वास की संभाव्यता उन व्यक्तियों की विश्वसनीयता के साथ मेल नहीं खा सकती जिस अंश मे वे उसे स्वीकारते है। किसी विश्वास की संभाव्यता में हमारी आस्था का होना, यदि हम विवेकशील हैं तो अनिवार्य है। यह एक ऐसी छूट थी जिससे उनके अनुयायियों को मनोवैज्ञानिक एवं आत्मपरक संभाव्यता के सिद्धान्त को छोड देने मे बल प्राप्त हो सका। डी मोरगन के समय से ही संभाव्यता के सिद्धान्त का एक अधिक संतोषप्रद ढाचा खडा करने और उसे गणितीय एवं प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के समानान्तर स्थापित करने के प्रयास प्रारंभ हो चुके थे।

आधुनिक पाठकों के लिए अधिक परिचित रूप में तर्कशास्त्र अपना आकार ग्रहण करने लगा था और इस आकार को मूर्त रूप देने वालों में जार्ज बूले[1] का नाम लिया जा सकता है। बूल के समय में आधुनिक तर्कशास्त्र का एक निरन्तर

---

1 द्रष्टव्य आर० हारले द्वारा ब्रिटिश क्वाटरली रिव्यू (1866) में लिखा गया स्मरणांश, जिसे स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटी (आर० रीज द्वारा संपादित सम्करण 1952) में पुनर्मुद्रित किया है। उसी अंक मे सम्पादकीय टिप्पणी भी देखें। माइण्ड 1876 में प्रकाशित जेवेन कृत बूलेज लाजिकल सिस्टम एवं 1881 में प्रकाशित सिम्बोलिक लोजिक। डब्लू एस० जेवन्स का एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका 1870 मे बूले पर लिखा अंश पी० ए० एस० 1901 मे प्रकाशित एस० ब्रायण्ट कृत लेख द रिलेशन्स आव मैथेमेटिक्स टू जनरल फोमल लोजिक। डब्लू नील कृत (माइण्ड 1948) बूले एण्ड रिहाइवल आव लोजिक। ए० एन० प्रायर (ए० जे० डी० 1949) केटेगोरिकल्स एण्ड हाइपोथेटिकल्स इन जॉर्ज बूले एण्ड हिज सक्सेसस। बूल का अपने समय के गणित से जो संबंध रहा उसके लिए देखें ई० नजेल द्वारा लिखित इम्पोसिबल नम्बर्स (कोलम्बिया स्टडीज इन द हिस्ट्री आव आइडियाज तृतीय 1935) ई० टी० बेल कृत मैन आव मैथेमेटिक्स (1937) एवं द डवलपमेण्ट आव मैथेमेटिक्स 1940) ए० मेकफारलेन कृत लेक्चर्स आन टेन ब्रिटिश मैथेमेटिशियन्स (1916)

इतिहास हैं। डी० मोरगन की भाति बूले भी एक गणितज्ञ थे और उन्होंने तक शास्त्र को बीजगणितीय दृष्टि से देखा था। यह बात विशेषकर उनकी 1847 मे प्रकाशित कृति द मैथेमेटिकल एनालिसिस आव लोजिक बीग एन ऐसे टुवड स ए केलकुलस आव डिडक्टिव रीजनिंग तकशास्त्र को यहा पर बीजगणित की प्रजाति के रूप म एक अपरिमाण मूल बीजगणित के रूप म प्रस्तुत किया गया है।

सवप्रथम तो यह वर्गों का बीजगणित है—जिन्हें सामान्य नामो के रूप म वस्तुओ स जोड दिया गया है। उसम उन प्रक्रियाओ का भी जिक्र है जिनके जरिए वग चुना जाता है और जुड जाता है और इन्हें ही बूले न तकशास्त्रीय अनुमान का मूलाधार माना है। यदि हम इन प्रक्रियाओ की जाच करें तो हमे शीघ्र ही यह मालुम पड जायगा कि उनम स बहुतो का तो बीजगणितीय नियमो मे ढाला जा सकता है।

उदाहरण के लिए, यह बात बेमानी है कि पहले हम किसी एक वग म उन वस्तुओ को चुनते हैं जो क्ष हैं और तब निष्कर्षो मुख वग से सभी य चुन लते हैं अथवा पहले य चुनकर हम तब उनम से क्ष अलग निकालते हैं। क्ष चुनन की प्रक्रिया का क्ष के प्रतीक से प्रतिनिधित्व करते हुए बूले यह इस तथ्य को मूत रूप दते हैं कि हमारे चुनन का क्रम समीकरण क लिए बेमानी है।

क्ष य=य क्ष

स्तनधारी प्राणिया के वग जो चौपाये हैं उस चौपाय वग स तादात्म्य रखता है जो स्तनधारी है।

इसी तरह हमारे द्वारा क्ष का एक विशष वग से चुन लिया जाना अथवा वग क भी और उपवर्गों से उसका चुन लिया जाना हमारे लिए बेमानी है। ससार मे व्याप्त चौपाय जानवरो का वग दक्षिणी गोलार्द्ध म रहन वाले चौपायो म मल खाते हुए हैं ही और निश्चय ही व उत्तरी गोलार्द्ध के चौपायो स भी भिन्न नही हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे बूले इस प्रकार क बीजगणितीय सूत्र म रखता है।

क्ष (म+न)=क्षम+क्षन

अभी तक तो य नियम केवल परिमाण मूलक तकशास्त्र क क्ष य म और न द्वारा मानी गई सख्या एव तकशास्त्रीय बीजगणित के वर्गों का प्रतिनिधित्व करन वाले प्रतीको के रूप म प्रयुक्त होते थे। लेकिन बूले के तकशास्त्रीय बीजगणित से सबधित दूसरे नियम भी है जो साधारणत परिमाणमूलक बीजगणित क क्षेत्र म बाहर चले जाते हैं। मान लो कि हम पहले—चौपायो म से सब स्तनधारी प्राणिया को चुन लें और तब हम अपने द्वारा इस चुन हुए वग म स चौपायो को चुनें तो

यहाँ यह तो स्पष्ट है कि पहले से बडा तो कोई चौपायो का वग अब हमारे सामने नही है, लेकिन चौपायो का वही वग ता है। इसी तथ्य को बूले इस प्रकार स मूत रूप दते हैं—

क्ष × क्ष = क्ष

और अधिक सामा य रूप स

$क्ष^{न} = क्ष$

अब यह निश्चय ही यह नियम नही है जिस हम स्कूल के बीजगणित म कही पढ सकें। लेकिन इस प्रकार के अद्भुत सिद्धान्तो के उद्‌भव ने बूले को अपन बीज गणितीय अध्ययन स तनिक भी विचलित नही किया क्योंकि उनके पूववर्त्तिया क सामने भी एसी विचित्रताए प्रस्तुत हुई थी और उनके माग मे बाधक बनी थी। बीजगणितीय नियमा स सबधित यह सघटना, जो केवल जीवित रूप म प्रयुक्त की जा सकती है 'क्वाटरनियन सिद्धा त म पहले स ही 'यक्त कर दी गई थी जिस 1843 के आसपास ही आइरिश गणितशास्त्री सर हेमिल्टन द्वारा प्रयुक्त किया गया था। इसके अतिरिक्त ही बूले ने कहा था कि

$क्ष^{न} = क्ष$

की परिमाणमूलक 'याख्या भी की जा सकती है यदि हम यह बात मानलें कि क्ष का मूल्य 1 अथवा 0 है। बूले ने अपने महत्वपूण समीकरणों स यह सिद्ध किया था कि विचार के नियम द्विधात्मक बीजगणित के नियमो स मेल खात है।

इस तादात्म्य की खोज बूले क मतानुसार केवल मात्र गणितीय जिज्ञासा ही नही थी। इसस एक ऐसी प्रणाली के लिए माग प्रशस्त हो गया जिससे प्रतिदिन के कथनो क आशया का परीक्षण एव तार्किक विश्लेषण किया जा सकता है। इस प्रकार क कथनो को निश्चय ही पहले समीकरण मे रूपा तरित करना होगा। परम्परागत तकशास्त्र के चार प्रकारा का जि ह बूल कथनो क महत्वपूण प्रकार मानते हैं इस प्रकार पुन प्रस्तुत करते हैं—

सब क्ष य हैं क्ष (1−य) = 0

कोई भी क्ष य नही है क्षय = 0

कुछ क्ष य हैं क्षय = ब

कुछ क्ष य नही है क्ष (1−य) = ब

यहा पर 1 समष्टि का[1] प्रतिनिधित्व करता है एव 1–य उस समष्टि म स म निकाल लिये जाने के बाद बन हुए अ श का। व की व्याख्या की जानी अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। बूले इसकी परिभाषा किसी वग के कुछ, किन्तु अनिश्चित सख्या वाले सदस्या के प्रतीक के रूप मे करते हैं। इस प्रकार

क्ष य=व

का अथ यह है कि बहुत स सदस्यो सहित एक ऐसा वग है जो क्ष और य दोनो को अपने म समाहित किय है। बूले व क प्रतीक को कलन प्रणाली के लिए इसलिए उपयोगी मानते हैं क्योकि इस एक हा प्रणाली क द्वारा क्ष और य दोनो अवस्थाओं का उपयोग किया जा सकता है। उन्होने इस प्रणाली का वद्ध मान स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है और उ होने तो 'सब क्ष य–हैं को इस रूप म भी व्यक्त कर लिया है।

क्ष=व य

जिसका यह अनुमान भी लगाया जा सकता ह कि क्ष य के किसी अनिश्चित अ श के साथ तादात्म्य रखता ह बजाय इस समीकरण क जो अधिक विशद है—

क्ष (1-य)=0

उनके अनुयायी इसके विपरीत व को नापसन्द करते थे क्योकि वह एक भद्दी और बहूदी तथा एक एसी अभिव्यक्ति की ओर ल जाता था जिसकी व्याख्या नही का जा सकती हा। समानताओ और असमानताओं का उपयोग करके उन्होने इस पक्ष का

कुछ क्ष य नहीं हैं यो लिखना पसन्द किया।

क्ष (1–य)=0

वे इसे एमे लिखना पसन्द नही करते —

क्ष(1–य)=व

---

1 बाद म बले ने डी मोरगन के प्रवचन प्रसग क सिद्धान्त को अपना लिया था। इसके अनुसार किसी कथन की सीमा उसके प्रसग से निर्धारित हो जाती है। हेमलेट फाल्स्टाफ की अपेक्षा कम समाहत ह" इस नियम के अनुसार औपन्यासिक जगत के सन्दभ को प्रस्तुत करता ह जबकि 'ग्लेडस्टन डिजराइले की अपक्षा कम माननीय ह औपन्यासिक जगत के प्रसग को न उठा कर वास्तविक-जगत के इतिहास को प्रस्तुत करता है। प्रत्यक कथन इसी प्रकार की समष्टि की ओर इ गित करता ह जिसम ही वह सही अथवा गलत है। बूले ने अपनी बाद की रचनाओ म 1 का उपयोग प्रवचन प्रसग को व्यक्त करन के लिए ही किया है न कि समष्टि को व्यक्त करन क लिए।

यह प्रत्यक्ष तकनीकी बिन्दु बूल की विधि को समझने के लिए कुछ महत्व का है। द्विधात्मक बीजगणित म एक प्रकार के कथनों को समीकरण मानकर उनस कुछ सिद्धिया करना तथा उन्हें सीमित अवस्थाओं म बीजगणितीय प्रक्रियाओं के साथ जोडना और तब उनके परिणामों की तकभाषा म पुनर्व्याख्या करना ही बूल की प्रणाली थी। वे इस बात स तनिक भी विचलित नहीं होते थे कि इस सिद्धता के विश्लेषण म आई विभिन्न अवस्थाओं से उपज समीकरण उन्हें तार्किक पदावली की ओर ले जा रहे हैं अथवा नहीं। दूसरे शब्दों मे, उन्होंने तकशास्त्र को विशुद्ध बीज गणित के रूप म देखा था, जिसका उनके कोई भी अनुयायी अनुकरण करना नहीं चाहते थे।

एक ऐसे बीजगणित से प्रारम्भ करके जहा पर अक्षर, प्रतीक-वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे बूल ने अपने बीजगणित की एक वकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत करने की सम्भावना बहुत शीघ्र ही देख ली थी। सबसे पहले वे इस कथन का कि 'यदि अ ब है तो स द है' इस तरह संक्षिप्तीकरण करते है यदि क्ष सत्य है तब य भी सत्य है'–। यहा पर क्ष और य दोनों किसी वग का प्रतिनिधित्व करने वाली पदावली नहीं हैं। तब वे अपने बीजगणित म प्रयुक्त 1 0 और क्ष की पुनर्व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 1 सब परीक्षणयोग्य अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है और क्ष उन अवस्थाओं का जब क्ष सत्य है। य उन अवस्थाओं का जब य सत्य है। इस प्रकार व यह प्रतिमान बनाते हैं कि यदि क्ष सत्य है तो य भी सत्य है[1] और उस बीजगणित की भाषा म ऐसे लिखते है—

$$क्ष\ (1-य) = 0$$

इसका यह मतलब हुआ कि ऐसी कोई अवस्था नहीं है जब क्ष सत्य है और य असत्य। इसी के समानान्तर बूल के मतानुसार सयोजक पदावलिया को भी समीकृत रूप म व्यक्त एव बीजगणितीय रूप मे विकसित किया जा सकता है। यह पता लगाने वाले

---

1 बूल यह विचारने लगे थ कि ऐसी अवस्थाओं पर विचार करना कि क्ष सत्य है मुश्किलों स भरा हुआ है। क्योंकि कोई भी कथन या तो सही है अथवा गलत। वह कुछ मामलों म तो सही और कुछ मामलों म गलत नहीं हो सकता है। यह कथन कि 'अ ब है' यदि इस रूप म प्रयुक्त किया जाय कि 'यदि अ ब है' तो व मदव ही एक विशेष समय की ओर सकेत करते हैं। और तब क्ष का अर्थ यह लगाना चाहिए कि 'वही समय जिसमे क्ष सत्य है।' केवल 1 अनन्तता का व्यक्त करता है। यहा पर ऐसा लगता है कि वह हैमिल्टन के अन्दर के दार्शनिक स प्रभावित न होकर उनके अन्दर के गणितज्ञ स प्रभावित हो गये थे। हैमिल्टन ने बीजगणित की व्याख्या समय बताने वाली अवस्थाओं के सिद्धात के रूप म की थी।

वे पहल ही व्यक्ति थ कि तक–कथनो के एव वर्गो क लिए एक ही प्रकार के तार्किक विश्लेषण से काम चलाया जा सकता है ।

बूले ने अपने जीवनकाल म हो अपन प्रथम प्रकाशन का इस प्रकार वर्णन किया कि वह दुर्भाग्यवश बुरे रास्ते पर निर्मित हुआ है । स्पष्टत उन्होंने अपन आप पर भी गणितीय प्रत्ययो के अत्यधिक प्रभाव म रहन का अभियोग लगा लिया । यह एक ऐसा प्रभाव था जिसे उन्होंने एन इन्वेस्टीगेशन आव द लाज आव थॉट (1854) म सुधार लिया था और 1847–62 के दौरान लिख गय बहुत से निबन्धो म जिन्हे स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटीज (1952) म सकलित कर लिया था उन्होंने प्रभावशाली ढग से यह सुधार किया था । उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि तकशास्त्र बीजगणित की ही एक शाखा थी फिर भी उन्होंने उम विचारसबधी नियमो को प्रकटाने वाली पद्धति ही माना था, और जो, उनक अनुसार, अपन स्वभाव से ही गणितीय कलन से कही श्रेष्ठ था । वे इस सम्बन्ध म प्रस्तुत हुई मुश्किलो पर विजय पाने म सतोषजनक रूप से सफल न हो सके । बूल की पुस्तक द लॉज आव थाट के तत्वदर्शन सम्बन्धी अंश उनके बीजगणित क साथ सावयविक रूप म जुडे होने के बजाय धुसपैठिए हो अधिक लगते हैं– जिसे व तर्कशास्त्र सम्बन्धी अपने भविष्य म किये जाने वाले योगदानो के रूप म कभी भी पूरा नही कर सके ।

बूले के बाद के निबन्धो तथा द लोज आव थोट म एक महत्व पूर्ण तकनीकी विकास दिखायी देता है । सभाव्यताओ के प्राक्कलन म प्रतीकात्मक तक को प्रयुक्त करन का प्रयास विशेषकर निम्नाकारी समस्याओ के समाधान क लिए —मान लो कि किसी घटना क्ष की सम्भाव्यता प है और य की फ है तो किसी घटना भ की सम्भाव्यता का पता लगाने के लिए क्ष और य से उसके सम्बन्धो का काम म लाया जायगा । बूले यहा यह मत व्यक्त नही कर रहे हैं कि इस प्रकार की समस्यायें बिना परिमाण मूलक गणित की सहायता से विशुद्ध तर्कशास्त्र द्वारा तय की जा सकती हैं । वे तो इन घटनाओ के तक सम्बन्धो क नियत किय जाने वाल महत्व पर बल देते हैं ताकि परिमाण मूलक मापो म उसका कोई हल खोजन का अपरिपक्व प्रयास न हो । बूल न लाप्लास और डी मोरगन द्वारा प्रस्थापित सम्भावृयता सम्बन्धी गणितोय सिद्धान्तो म रही भारी कमियो की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए तर्कशास्त्रीय मामलो म मात्र उनके उपयोग किय जाने म ही सताप व्यक्त किया है ।[1]

---

1 द्रष्टव्य, लोविस कृत उपर्युक्त कृति म बूल के सिद्धात की व्याख्या और स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटीज म लिख गय अध्याय ओन द थियरी आव प्रोबेबिलिटीज (1959) । बूल के आधुनिक साख्यिकी परिगणन के लिए द्रष्टव्य आर० ए० फिशर कृत स्टटिस्टोकल मथडस एण्ड साइन्टिफिक इन्फरेंस (1956)

एक अन्य बिन्दु जो बूल के सम्भाव्यता के सिद्धांत में प्रकट हुआ है, ऐतिहासिक महत्व का है। सम्भाव्यता का यह सिद्धांत सर्वप्रथम जुए सम्बन्धी अनिश्चितता का पता लगाने के लिए प्रयोग में लाया गया था। उस अवस्था में इसका उपयोग आसानी से विश्वसनीय समस्याओं तक भी किया जा सकता है। और डी मोरगन विशेष रूप से इसी बात में रुचि रखते थे। बूले का क्षेत्र इससे अधिक व्यापक था। वे क्वेतलेत के सामाजिक सांख्यिकी के आकलन से काफी प्रभावित थे। उनकी रुचि का जो मूल बिन्दु था वह सम्भाव्यता के सिद्धान्त की सांख्यिकी के उस प्रयोग में था जिससे समाज-शास्त्री सफल सामाजिक भविष्यवाणियां कर सकता है। यह तथ्य कि लाप्लास का सिद्धांत विभिन्न अवस्थाओं में कार्य करती हुई ऐसी स्थितियों के साथ मेल नहीं खाता था जो परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं और जो जुए विशिष्ट समस्याओं से भिन्न है जहां पर गोलियां अथवा पत्ता को स्वायत्त और स्वतन्त्र स्थितियों के रूप में स्वीकार किया जाता है— यही वह बात थी जिसने बूल को एक अधिक व्यापक सामान्य सिद्धांत बनाने की ओर प्रेरित किया। उन्होंने लिखा था कि अधिक व्यापक सामान्य सिद्धांत बनाने की आवश्यकता परिस्थितियों के कारण ही उत्पन्न हुई है। विशेष कर सामाजिक सघटनाओं के परिवीक्षण के बाद जो किसी भी प्रकार सरल घटनाओं की सम्भावनाओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत नहीं करती और उन्हें एक विशेष सयोग में सम्बन्ध ही जोड़े रखती है चाहे वह सम्बन्ध कार्य-कारण का हो अथवा सयोग से उत्पन्न। यहां हम बाद में विकसित हुए सम्भाव्यता के सामान्य सिद्धांत की मूल प्रेरणाओं को कार्यशील देखते हैं विशेषकर अर्थशास्त्रीय तार्किक जे० एम० कीन्स की रचनाओं में। इंग्लैण्ड में बूल की रचनाओं को बहुत से तर्कशास्त्रियों ने विभाजक रेखा के रूप में स्वीकार कर लिया है। इनमें सर्वविदित डब्लू० एस० जवन्स[1] और जे० वन है। जवन्स ने एक तर्कशास्त्री एवं रीतिविधायक के रूप में काफी ख्याति अर्जित की थी। उनकी प्रारम्भिक रचनायें कई बार पुनर्मुद्रित हुईं और पाठ्यपुस्तकों के रूप में उपयोग में लाई गई। उन्होंने ही मोरगन से गणित की शिक्षा प्राप्त की लेकिन उनका मानसिक विधान गणितीय नहीं था। उन्होंने प्योर लौजिक (1864) में यह संकेत किया है कि उनका उद्देश्य बूले की तर्कशास्त्रीय प्रणाली को उसके नग्न रूप में प्रस्तुत करना था जिसे उन्होंने गणित की ऐसी पोशाक पहन कर प्रस्तुत किया जो उसे फबती नहीं थी (जो उसको लिए आवश्यक नहीं थी)। उनकी दृष्टि में बूले

1 एक अर्थशास्त्री थे। बाद के वर्षों में इंग्लैण्ड में तर्कशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का गहन सम्बन्ध रहा। रेमज और कीन्स आदि सभी दार्शनिक अर्थशास्त्री थे। द्रष्टव्य जवन्स कृत लेटर्स एण्ड जरनल (सम्पादक एच० ए० जवन्स 1886) जो सी० रोबर्टसन द्वारा लिखित मिस्टर जवन्स एण्ड लोजिक (माइण्ड 1876) डब्लू० मेज तथा डी० पी० हेनरी जेवन्स एण्ड लोजिक (माइण्ड 1653)

की प्रणाली तर्कशास्त्र के प्रतिबिम्ब, एक प्रेत, की छाया है। जब से तो उसके नग्न शरीर की खोज में ही निकले थे[1]। उनका तर्कशास्त्र बूल के तर्कशास्त्र से अधिक उपयोगी है उसमें प्रत्येक प्रक्रिया स्वयसिद्ध है और व्याख्या न किये जा सकने वाले और असगत परिणाम प्रस्तुत नही करती है, और उनसे यान्त्रिक सरलता की भाति अनुमान लगाये जा सकते हैं। ये सारे दावे उचित हैं यदि हम उनमें प्रावधान रख दें कि यद्यपि एक तरह से वे अपेक्षाकृत अधिक सरल है, तो भी अनुमान की जो प्रक्रियाएँ वे हमारे समक्ष रखते हैं, जटिल एव परिश्रम साध्य हैं। लेकिन जेवन्स की चतुराई ने यह कठिनाई भी पार कर ली है। उन्होंने एक ऐसी कलन मशीन का आविष्कार किया जो आवश्यक यान्त्रिक प्रक्रिया की खोज लेती थी और जिसे सहज ही हमारे समय के विख्यात सचालित विचार यन्त्र का अग्रगामी माना जा सकता है।[2]

जेवन्स के कलन के बहुत प्रशसक नही रहे। क्योंकि जिस बीज गणितीय अवस्था को उन्होंने बूल के तर्कशास्त्र में दोषपूर्ण माना था वह धीरे धीरे उपयोगी होने लगी। यद्यपि जेवन्स का यान्त्रिक परीक्षण का विचार सर्वथा भिन्न रूप में सत्य सारणी के रूप में बाद के तर्कशास्त्र में पुनः प्रकट हो गया था। फिर भी उनके द्वारा किये गये कुछ नवा वेषण आकारी तर्कशास्त्र के विकास में स्थायी प्रभाव डालने वाले रहे हैं।[3] उन्होंने तो गणितशास्त्र में अप्रशिक्षित दार्शनिकों के शिक्षण के लिए अर्थहीन बूल को ही प्रस्तुत किया था। यह जेवन्स का ही तर्कशास्त्र था जो अपने अधिकांश रूप में 19 वी शती के उत्तरार्ध की पाठ्य पुस्तकों में गणितीय प्रतीकात्मक एव समीकृत तर्कशास्त्र के रूप में प्रचलित था।

सामान्य तौर पर गणितमूलक तर्कशास्त्र के कुछ सिद्धान्त वास्तव में उनकी विचारधारा में निहित थे चाहे गलती से उन्होंने उन्हें उसके आवश्यक तत्व मान

---

1 बूल से रहे उनके सम्बन्धो के लिये द्रष्टव्य *रिमार्क्स आन बूलेस सिस्टम* अध्याय 15, प्योर लोजिक। उनके द्वारा बूल को लिखे गये पत्र जो जोर्डन कृत उपयुक्त कृति में पुनः मुद्रित हुए हैं। जी० बी० हालस्टेड द्वारा लिखित जेवन्स क्रिटीसिज्म आव बूलेज लोजिक (माइण्ड 1875)। जोर्डेन और जारज सन की उपयुक्त कृति में जेवन्स सम्बन्धी पूर्ण वृतात मिलता है।

2 रोयल सोसायटी में 1870 में पढ़े गये एव आर० एडम्सन के सम्पादन में 1990 में प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वर्क्स नाम से पुनर्मुद्रित उनकी कृति आन द मकेनिकल परफोरमेंस आव लोजिकल इन्फरेंस देखें। मर्ज और हेनरी द्वारा लिखित रचनाएं और उनके सम्बन्ध में दिये गये सदर्भ देखें।

3 द्रष्टव्य, लोविस कृत उपयुक्त रचना उनकी सर्वविदित 'प या फ' की 'या तो प अथवा फ अथवा दोनों' के रूप में की गई व्याख्या की बूले की इस व्याख्या से तुलना की गई है कि 'या तो प अथवा फ अथवा दोनों नहीं'। इस नवान्वेषण ने तार्किक कलन के निर्माण में काफी योग दिया है।

लिया था। यह विशेष रूप स जवन्स की इस धारणा को सिद्ध करता है कि प्रत्येक तकवाक्य एक समीकरण अथवा तादात्म्य बनाने वाली प्रजाति है जब कि डी मोरगन की यह मान्यता थी कि हमिल्टन द्वारा सुझाया गया यह पद कि सब क्ष सब य हैं' दो तकवाक्यो के होन का सकेत देता है, सब क्ष य ह और सब य क्ष ह। जवन्स ने इसे एक ही तकवाक्य माना जिसका अथ था क्ष=य' यद्यपि बाद म उन्होने घूम फिरकर यह स्वीकार कर लिया था कि उनके कननयन्त्र म भी इसकी द्विधात्मकता अंकित होती है। 1869 म प्रकाशित अपनी पुस्तक द सब्स्टीट्यूशन आफ सिमिलस, द ट्रू प्रिंसिपल आव रीजनिंग म उन्होने परम्परागत तकवाक्यो के आकार पर अत्यन्त प्रबल प्रहार किया हैं। उन्होने लिखा कि सब स प ह जसा तकवाक्य निर्मित करके अरस्तू ने विनान के इतिहास म एक महानतम एव पश्चाताप करने योग्य भूल की है। और उसी ने सब तरह के तकवाक्यो क लिए सही मानकर अपने तकसिद्धान्त की स्थापना की है। जवन्स क लिए सही प्रकार का तकवाक्य समीकरण ही है और सही प्रकार का अनुमान समानार्थको का परस्पर एवजी होना है जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु म जिस किसी प्रकार के सम्बन्ध से जुडी है उसी सम्बन्ध से वह उसी के अनुसार और समानार्थों किसी दूसरी वस्तु से भी जुडी रहेगी। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो तकपदी का उद्धरण प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु यह उदाहरण उस तक से अधिक स्पष्ट नही है जिसम कहा गया है- यदि अ ब से बडा ह और ब स के बराबर ह तो अ ब से बडा होगा। समीकृत तक इसी प्रकार का था जिसे ब्रडल और बासाके जसे लेखको ने तक शास्त्रीय बीजगणित का मूलतत्व माना [1] था। जवन्स की रचनाओ का दूसरा पक्ष जिसम उन्होने मिल पर कडा प्रहार किया था, प्रत्ययवादियो द्वारा स्वागत योग्य माना गया। जवन्स ने लिखा [2] था कि मैं मिल के द्वारा प्रस्तुत किये बुरे दशन एव

1 स्पष्टत इस प्रकार तकशास्त्र हैमिल्टन से उनक निकटतम मेल को दर्शाता है। चू कि जवन्स ने बूले की पुन र्व्याख्या करना स्वीकार किया था, उसन एक ऐसा आख्यान खडा कर दिया था जो हमेशा के लिए विश्वकोशो म स्थायी रूप से स्थापित हो गया था कि बूले का प्रमुख उद्देश्य हैमिल्टन के सिद्धान्त का बीज गणितीय रूप देना था।

2 1877 से लकर 1879 के दौरान प्रकाशित कराये गये कंटेम्पोररी रिव्यू नामक पत्रिका म उनके उन प्रहारात्मक निबन्धो को जिनका 1890 म प्योर लोजिक नाम स पुन मुद्रण हुआ देखा जा सकता है। 1878 के माइण्ड म जवन्स द्वारा किय गय विद्रोह का रूप देखा जा सकता है जिसके कारण एक साथ बहुत स स्वनाम धन्य दार्शनिक मिल के बचाव को दौड पडे थे। टी० फाऊलर कृत द एलीमेंटस आव इंडक्टिव लाजिक के तृतीय सस्करण का प्राक्कथन भी देख जिसम जवन्स की कटु आलोचना की गई है।

चुरे तर्कशास्त्र के खुटन से श ति स अठला स्वीकार नहीं कर सकना। व स्तव म प्रदर्शनयोग्य सम्पूर्ण आगमात्मक प्रणालियाँ पर जव स ने प्रगर किय थे। प्रिंसि पल्स ग्राफ साइंस (1874) म, जो एक बहु संस्करण वाली पुस्तक थी–उन्होंने वैज्ञा- निक प्रणाली का एक वकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। जव स का कथन था कि मिल की प्रमुख भूल उनके कारण खोजने की समावनाओं मे विश्वास रखना था और व उन्हें आवश्यक और पर्याप्त दशा मानते थे। इस प्रकार का प्रारूप हम सृष्टि कर्त्ता की इच्छा का व्यक्त करते हुए अस्तित्वों मे रहस्य की खोजों की दिशा म हमारी क्षमताओं से भी परे ले जाता है। इस सबध म तथ्य यही है कि विज्ञान कभी निश्चित प्राकल्पों से परे जान का प्रयास नही करता क्योंकि वे प्राक्कल्प भी ज्यादा या कम मामलों म सम्भाव्य ही होते हैं।

सम्भाव्यता के सद्धान्तिकों का एक प्रचलित उदाहरण लेकर और उसे अपने उद्देश्यों म साथ जोड़कर जैवन्स वैज्ञानिक की तुलना एक ऐसे व्यक्ति स करते हैं जिसके समक्ष बहुत सी गेंदों से भरा हुआ एक बड़ा प्याला रखा है। स्वयं म प्रत्येक गेंद निकालते समय (यहाँ पर गेंद एक तथ्य को व्यक्त करती है) वैज्ञानिक कुछ नियमितताएँ देखता है। यदि उसने दस गेंदें निकाली हैं तो उनम स तीन सफेद और सात काली हैं।

उसका दूसरा काय ऐसे बहुत स प्रमेय बताना है जो नियमितता के अनुकूल हो। तब उसे इस प्रकार के प्रत्येक प्रमेयों के आधार पर क्रम से अपना रूप ग्रहण करती हुई स्थितियों की समाव्यता की तुलना करनी होती है। उदाहरण के लिए वह इस समावना की कि जो तीन गेंद उसन प्याले म से निकाली हैं केवल व ही सफेद गेंदें प्याले म हैं तुलना उस समावना स करता है जब प्रारम्भ म उसने प्याले मे आधी गेंदों को सफद और आधी को काला माना था, और अब इस समावना से भी, कि उनम से तीन दहाई गेंदें सफेद है और सात दहाई काली इसके पश्चात् ही वह उनम से उस प्रमय को ही स्वीकार करें जिसमे सर्वाधिक समावना विहित हो। स्पष्टत कई बार सर्वाधिक समाव्य प्रमेय भी गलत सिद्ध हो सकता है। लेकिन जव स क अनुसार इसका यह अर्थ नहीं है कि हम जब तक निश्चितता प्राप्त न करें तब तक प्रतीक्षा करें। वह कभी प्राप्त नहीं होती क्योंकि या तो हम सभाव्यताओं क अनुकूल ही काय म जुट सकते है अथवा हम केवल अनिश्चित अवस्था मे काय करते हैं इसलिए इन दोनो म पहली स्थिति अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है।

बूल द्वारा की गई लाप्लास की आलोचना को जैवन्स कभी गंभीरता स नहीं स्वीकारते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका सिद्धान्त लाप्लास के सभाव्यता क विश्लेषण से प्रभावित हो गया है। कई बार तो जव स डी मोरगन की प्रमय-निर्माण

लिया था। यह विशेष रूप से जवन्स की इस धारणा को सिद्ध करता है कि प्रत्येक तकवाक्य एक समीकरण अथवा तादात्म्य बनाने वाली प्रजाति है जब कि डी मोरगन की यह मान्यता थी कि हमिल्टन द्वारा सुझाया गया यह पद वि सब क्ष सब य हैं' दो तक्वाक्यो के होने का सकेत देता है, सब क्ष य ह और सब य क्ष ह। जवन्स ने इसे एक ही तक्वाक्य माना जिसका अथ था क्ष=य', यद्यपि बाद में उन्होंने घूम फिरकर यह स्वीकार कर लिया था कि उनके कलनयन्त्र म भी इसकी द्विधात्मकता अंकित होती है। 1869 म प्रकाशित अपनी पुस्तक द सब्स्टीट्यूशन आफ सिमिलर्स, द ट्र्यू प्रिंसिपल आव रीजनिंग म उन्होंने परम्परागत तकवाक्यों के आकार पर अत्यन्त प्रबल प्रहार किया हैं। उन्होंने लिखा कि सब स प ह जसा तक्वाक्य निर्मित करके अरस्तू ने विज्ञान के इतिहास म एक महानतम एव पश्चाताप करने योग्य भूल की है। और उसी ने सब तरह के तक्वाक्यों के लिए सही मानकर अपने तर्कसिद्धान्त की स्थापना की है। जवन्स के लिए सही प्रकार का तकवाक्य सभी करण ही है और सही प्रकार का अनुमान समानाथको का परस्पर एवजी होना है जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु स जिस किसी प्रकार के सम्बन्ध स जुडी है उसी सम्बन्ध से वह उसी के अनुसार और समानार्थों किसी दूसरी वस्तु से भी जुडी रहेगी। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो तक्पनी का उद्धरण प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु यह उदाहरण उस तक से अधिक स्पष्ट नहीं है जिसमे कहा गया है- यदि अ ब से बडा ह और ब स के बराबर ह तो अ ब से बडा होगा। समीकृत तक इसी प्रकार का था जिसे ब्रेडले और बोसांके जसे लेखको ने तक शास्त्रीय बीजगणित का मूलतत्व माना [1] था। जवन्स की रचनाओं का दूसरा पक्ष जिसमे उन्होने मिल पर कडा प्रहार किया था, प्रत्ययवादियों द्वारा स्वागत योग्य माना गया। जवन्स ने लिखा [2] था कि मैं मिल के द्वारा प्रस्तुत किये बुरे दशन एव

---

1 स्पष्टत इस प्रकार तर्कशास्त्र हैमिल्टन से उनके निकटतम मेल का दर्शाना है। चूंकि जवन्स ने बूले की पुन व्याख्या करना स्वीकार किया था, उसने एक ऐसा आख्यान खडा कर दिया था जो हमेशा के लिए विश्वकोशो म स्थायी रूप से स्थापित हो गया था कि बूले का प्रमुख उद्देश्य हैमिल्टन के सिद्धान्त का बीज गणितीय रूप देना था।

2 1877 से लेकर 1879 के दौरान प्रकाशित कराये गये कन्टेम्पोररी रिव्यू नामक पत्रिका म उनके उन प्रहारात्मक निबन्धो को जिनका 1890 म प्योर लोजिक नाम से पुन मुद्रण हुआ देखा जा सकता है। 1878 के माइण्ड म जवन्स द्वारा किये गये विद्रोह का रूप देखा जा सकता है जिसके कारण एक साथ बहुत से स्वनाम धन्य दार्शनिक मिल के बचाव को दौड पडे थे। टी० फाउलर कृत द एलीमेंट्स आव इन्डक्टिव लोजिक के तृतीय संस्करण का प्राक्कथन भी देखें जिसम जवन्स की कटु आलोचना की गई है।

कुरे तर्कशास्त्र के खंडन में शक्ति से बढ़ना स्वीकार नहीं कर सकता। वास्तव में प्रदर्शनयोग्य सम्पूर्ण आगमनात्मक प्रणालियां पर जब मेंने प्रहार किए थे। प्रिंसिपल्स आफ साइंस (1874) में जो एक बहु संस्करण वाली पुस्तक थी—उन्होंने वैज्ञानिक प्रणाली का एक वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। जेवन्स का कथन था कि मिल की प्रमुख भूल उनके कारण खोजने की सम्भावनाओं में विश्वास रखना था और वे उन्हें आवश्यक और पर्याप्त दशा मानते थे। इस प्रकार का प्रारूप हम सृष्टि कर्त्ता की इच्छा को व्यक्त करते हुए अस्तित्वों में रहस्य की खोजों की दिशा में हमारी क्षमताओं से भी परे ले जाता है। इस सम्बन्ध में तथ्य यही है कि विज्ञान कभी निश्चित प्राकल्पों से परे जाने का प्रयास नहीं करता, क्योंकि वे प्राकल्प भी ज्यादा या कम मामलों में सम्भाव्य ही होते हैं।

सम्भाव्यता के सैद्धान्तिकों का एक प्रचलित उदाहरण लेकर और उसे अपने उद्देश्यों में साथ जोड़कर जेवन्स वैज्ञानिक की तुलना एक ऐसे व्यक्ति से करते हैं जिसके समक्ष बहुत सी गेंदों से भरा हुआ एक बड़ा प्याला रखा है। उसमें से प्रत्येक गेंद निकालते समय (यहां पर गेंद एक तथ्य को व्यक्त करती है) वैज्ञानिक कुछ नियमितताएँ देखता है। यदि उसने दस गेंदें निकाली हैं तो उनमें से तीन सफेद और सात काली हैं।

उसका दूसरा कार्य ऐसे बहुत से प्रमेय बताना है जो नियमितता के अनुकूल हो। तब उसे इस प्रकार के प्रत्येक प्रमेयों के आधार पर क्रम से अपना रूप ग्रहण करती हुई स्थितियों की सम्भावना की तुलना करनी होती है। उदाहरण के लिए वह इस सम्भावना की कि जो तीन गेंदें उसने प्याले में से निकाली हैं केवल वे ही सफेद गेंद प्याले में हैं तुलना उस सम्भावना से करता है जब प्रारम्भ में उसने प्याले में आधी गेंदों को सफेद और आधी को काला माना था, और अब इस सम्भावना से भी, कि उनमें से तीन दहाई गेंदें सफेद हैं और सात दहाई काली, इसके पश्चात् ही वह उनमें से उस प्रमेय का ही स्वीकार करें जिसमें सर्वाधिक सम्भावना विहित हो। स्पष्टतः कई बार सर्वाधिक सम्भाव्य प्रमेय भी गलत सिद्ध हो सकता है। लेकिन जेवन्स के अनुसार इसका यह अर्थ नहीं है कि हम जब तक निश्चितता प्राप्त न करें तब तक प्रतीक्षा करें। वह कभी प्राप्त नहीं होती, क्योंकि या तो हम सम्भाव्यताओं के अनुकूल ही कार्य में जुट सकते हैं अथवा हम केवल अनिश्चित अवस्था में कार्य करते हैं, इसलिए इन दोनों में पहली स्थिति अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है।

बूल द्वारा की गई लाप्लास की आलोचना को जेवन्स कभी गंभीरता से नहीं स्वीकारते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका सिद्धान्त लाप्लास के सम्भाव्यता के विश्लेषण से प्रभावित हो गया है। कई बार तो जेवन्स डी मोरगन की प्रमेय-निर्माण

सम्बन्धी इस धारणा को ही पुन सिद्ध करते हुए लगते हैं कि यह एक काल्पनिक उछाल की ही क्रिया है–कोई विशेष प्रकार का अनुमान नही । इसके अतिरिक्त आगमन ही सभाव्यता का सिद्धान्त है। किन्तु जव स द्वारा स्वीकृत प्रमेय–सम्बन्धी यही रचना जिसम उन्होने वज्ञानिक प्रणाली स विश्लेषण किया था मिल क लिए स्तरीय विकल्प सिद्ध हुई।

जवन्स के विपरीत वेन[1] एक गणितशास्त्री थे । उनकी पहली पुस्तक **द लॉजिक आव चान्स** (1866) समाव्यता के सिद्धान्त के इतिहास मे एक महत्व पूर्ण स्थान रखती है।

उन्होने सबस पहले[2] सुव्यवस्थित रूप से समाव्यता की आवृत्ति के सिद्धान्त का विकसित किया। इसक अनुसार किसी घटना की विशेष अवस्थाओ की समाव्यता यदि उन्ह घटना का ही उपकरण माना जाये और द्रष्टा के अनुभव से भिन्न माना जाये तो इस तथ्य पर आश्रित होगी कि उनके एक निश्चित प्रतिशत म वही तत्व निहित हैं। उदाहरण के लिए किसी सिक्के के उछलकर गिरन की समावना $\frac{1}{2}$ है, इसका अथ यही है कि यदि उस सिक्के को निरन्तर अन्त तक उछाला जाय तो उसम आधे सिरे वाल हिस्स होगे।

समाव्यना के विश्लेषण म प्राप्त आवृत्ति के सिद्धान्त का उस समय तक समथन नही किया जा सका जब तक कि वतमान शता नी की दूसरी दशाब्दी न आगयी और अभी भी इस सिद्धान्त म स न्हो का घटाटोप एव प्रतिबन्धन है। लकिन वन पर इसका यह तात्कालिक प्रभाव पडा कि उन्होने सभाव्यता के आगणन म आगमनात्मक अनुमान ही काम मे लाया जाय इस बात का खडन किया क्योकि इस प्रकार का कोई भी आगणन उनकी व्याख्या के अनुसार स्वय एकरूपता को व्यक्त करता है और इस बात पर जोर दता है कि उछालो के समूह मे एक निश्चित प्रतिशत सिर होंगे। यह कथन अपने आगमनात्मक औचित्य को कमोबेश रूप म इस कथन स कही भी अच्छे ढग स सिद्ध नही करता कि सब मनुष्य मरते हैं। इस प्रकार वेन क रीति विधान म समान्यता अपना बहुत न्यून महत्व रखती है। यह बात उन्होन अपनी

---

1 द्रष्टव्य जोर्जेसन की पूर्वोक्त रचना।

2 यहाँ लसली ऐलिस क सुझावो को दखना होगा । 'मैथेमेटिकल एण्ड अदर हार्ईडिग्स' शीषक म 1863 ई मे प्रकाशित ऐलिस द्वारा लिखे गये 1842 और 1854 के निबन्ध देख। वन द्वारा की गयी ब्रेयस और अनुक्रम के नियम की आलोचना का ऐतिहासिक महत्व हो गया है । द्रष्टव्य फिशर कृत स्टेटिस्टिकल मैथड्स।

पुस्तक द प्रिंसिपल्स ग्राव एम्पिरीक्ल ग्रौर इण्डक्टिव लौजिक में (1889) जो मिल की सिस्टम ग्राव लौजिक के प्रभाव में लिखी गयी है सिद्ध की है।

वन की ऐम्पिरीकल लौजिक का महत्वपूर्ण पक्ष यह दिखाने में है कि मिल की ग्रागमन विधि इस मान्यता पर ग्राधारित है कि हम अपनी जाच पडताल के दौरान कार्यों के कारणों से पूर्व-परिचित होते ही हैं। उन्होंने व्यग्य करते हुए लिखा है कि इस प्रकार की घोषणा करने वालों की सख्या भी सीमित होगी और उनको ऐसी घोषणा करने से पूर्व अपने नाम हमें लिखा देने चाहिए ताकि हमारे समक्ष केवल उनके क्रमिक गुणों की छटनी का काम ही शेष रह जाय। वैन का कथन है कि इससे यह सिद्ध नहीं हो सकेगा कि अमुक अमुक लोग ही घोषक हैं और न यह हो कि हमने कम योग्य व्यक्तियों की छटनी कर दी है। जब से की ही भांति वैन इस बात पर जोर देते हैं कि ऐसे मामलों में सदैव गलती हो जाने का खतरा हमारे साथ बना रहता है। उनकी इस विचारधारा के कारण उनको एक सन्देहवादी का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है।

वन कृत सिम्बोलिक लौजिक (1881) आकारी तर्कशास्त्र के क्षेत्र में एक उच्चस्तरीय मौलिक ग्रागमन नहीं है, किन्तु इसमें उनके द्वारा जो आरेखण विधि काम में लाई गयी है वह वन के आरेखण के रूप में प्रसिद्ध हो गयी है। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के समसामयिक विकास का एक सम्यक सर्वेक्षण है।

इस बार सबसे पहले अपने महाद्वीपीय पूर्ववर्तियों एवं अमरीकन तथा जर्मन अनुसर्ताओं से, जिनकी अब तक काफी उपेक्षा की जा चुकी थी, बूले की रचनाओं का सम्बन्ध जोड़ा गया। इस प्रकार वैन ने प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की रचना करने वालों में एक ऐसी प्रवृत्ति का समसामयिक दार्शनिकों से सर्वथा भिन्न प्रवर्तन किया जो आगे जाकर अपना अन्तर्राष्ट्रीय रूप बना सके।

तर्कशास्त्र के प्रति अपनी सामान्य अभिधारणा में वे बूल का अनुकरण करते हैं और वे यह देखने का परिश्रम भी करते हैं कि बूल ने क्या क्या स्थापनाएं की थीं। जेवन्स ने बूले की स्थापनाओं से परिचित न होते हुए भी उनके सम्बन्ध में उनके बारे में अपनी राय जाहिर की थी। उन्होंने लिखा है कि जेवन्स द्वारा तर्कशास्त्र में किए गये व्यक्तिगत सुधार मूलतः इस बात पर आधारित हैं कि उन्होंने बूले की तर्कप्रणाली में जहां कहीं भी आकारगत अस्पष्टता, जटिलता रहस्य और अन्धाधुन्धी देखी है वहां उन्होंने उन पर अपनी कलम चलाई है। यह बात उन्होंने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से लिखी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बूले की प्रणाली में से उन्होंने उस प्रत्येक बात को छोड़ दिया है जो महत्वपूर्ण और आवश्यक है। वैन तर्कशास्त्र में हैमिल्टन द्वारा किए गए नगण्य सुधारों, और डूर द्वारा अपनाई

पूणत नयी प्रणाली म एक बहुत बडा भेद करते हैं। वे स्पष्टत यह बताते हैं कि बूले के लिए बीजगणित का क्या महत्व था और उनके सिद्धान्त म परिमाणत्व कितनी न्यून मात्रा मे है। वास्तव मे तो वन न ही सवप्रथम बूल द्वारा प्रयुक्त बीजगणित की साथकता को सिद्ध किया है। उन्होंने जिस रूप म बूले का प्रस्तुत किया है उनम से उन्होने गणितीय जटिलता को निकाल दिया है। फिर भी बूल की मूल भूमि स वे दूर नही हट हैं।

वन के तकशास्त्र म एक आकषक नवीनता उनकी परम्परावादिता थी जिसके कारण बाद मे उनके बहुत से समथक हुए। जवन्स की भाति वन अरस्तू और परम्परागत तकशास्त्र की भूल चूको की ओर ध्यान आकर्षित नही करते रहे। परम्परागत तकशास्त्र शिक्षा का एक अमूल्य माध्यम है। इसलिए नही कि प्रतीकात्मक तकशास्त्र की अपेक्षा वह दनिक जीवन से अधिक करीब है, अपितु इसलिए कि प्रतीकात्मक तकशास्त्र का क्षेत्र अनिवायत सीमित है। वन की परम्परावादिता उनकी अस्तित्व-मूलक धारणाओ के जरिए देखी जा सकती है। प्रतीकात्मक तकशास्त्र की ओर यदि ध्यान द तो यह दिखाई देगा कि उसमे समष्टिव्यापी तकवाक्य अपने कर्ता क अस्तित्व क बार म कुछ नही कहता है, जबकि एक विशिष्ट तकवाक्य ऐसा कह देता है। जब तक इस वाक्य का कि सब क्ष य हैं, अथ यह न निकाला जाय कि वह श्रेणी जो क्ष को व्यक्त करती ह लेकिन य को नहीं उसक कोई भी सदस्य नही है, और कुछ क्ष य हैं, का यह अथ लिया जाए कि क्ष और य दोनो सदस्य हैं, प्रतीकात्मक तकशास्त्र की एकानुरूपता को, जिस पर उसका सामान्यीकरण की शक्ति आधारित है, पूणत भग कर देता है। वे यह नही कहते कि एक समष्टि-व्यापी तर्कवाक्य का कोई अन्य अथ निकाला ही नही जा सकता। उनक अनुसार परम्परागत तर्कशास्त्रियो की यह मान्यता कि यदि सब क्ष य हैं को सत्य माना जाए तो निश्चय ही एक क्ष तो ऐसा होना चाहिए जिसका सामान्य जीवन स निकट का सबंध है आज सुविधा का प्रश्न है। इसका मतलब है कि प्रतीकात्मक तक शास्त्र को ही एक मात्र सभव तकशास्त्र मानकर नही चलना चाहिए। यह तो कुछ ऐसे उद्देश्यो की पूर्ति करने की एक नई तार्किक प्रणाली है जिनको परम्परागत तकशास्त्र पूरा नही कर पाता। इस युग के युवाद म उनके द्वारा सुझाई गई यह नई बातें है।

उन्नीसवीं सदी के बाद के वर्षो मे इंगलैण्ड एव अमरीका म बहुत से तकशास्त्री इसी दिशा मे कायरत थे। केम्ब्रिज मे वेन क ही एक अनुज सहयोगी

1 लुइस कैरोल उफ डाजसन ने सिंबोलिक लोजिक (1896) लिखा वेन क समान अच्छा खासा खेल तयार किया (1887) तथा कुछ पहेलियां भी बनाई

जे० एम० कीन्स का मौलिकता एव चतुराई का गलत अदाज लगा लना बहुत आसान है।[1] तकशास्त्री के रूप म उनकी प्रसिद्धि पर उनक ही कम्ब्रिज साथी डबलू० जा`सन का साया पड गया जि`होंने की स द्वारा किए गए परम्परागत तकशास्त्र के रूपान्तर को एक दार्शनिक तकशास्त्री क रूप म स्थापित किया। जा`सन की प्रमुख रचना लाजिक 1921 तक प्रकाश म न आ सकी और इसीलिए उसका वाद की रचनाओ के साथ मूल्याकन किया जाना चाहिए। किन्तु 1842 क माइण्ड म प्रकाशित उनके प्रारम्भिक निबध द लोजीकल केलकुलस उस कम्ब्रिज दशन क आरम्भिक सूत्र मान

माइ ड (1894 5), जिन पर अब तक विवाद चल जाता है। उदाहरणाथ द्रष्टव्य ए० डब्लू० बक्स तथा आई० एम० कोपी (माइण्ड 1950)। जान हापकि`स यूनिवर्सिटी के सदस्यो द्वारा की गई स्टडीज इन लोजिक (1883) तकपदी की वधता को परखने क लिए एटीलोजिस्म के रूप म सी० एम० फ्रैंकलिन न एक पद्धति प्रस्तावित की (माइण्ड 1928 म तथा बाल्डविन की डिक्शनरी म सिबालिक लाजिक)। प्रो० एच० माइके न एक बुद्धिमानी-पूण तथा विस्तृत तकशास्त्र बीजगणित को ज म दिया। एच० मेकाल ने अपने धारावाहिक लेखा म (माइ ड 1880-1906 तक) जो बाद म सिबालिक लोजिक एण्ड इटस एप्लिकेश`स नाम से सकलित हुए, एक ऐसे तकशास्त्र का पद्धतिबद्ध किया जिसमे कथनो को मूल आधारशिला माना गया था, वर्गों को नही। मेकोल अपन आप विचार करके कुछ निणयो तक पहु चा था जिनके लिए अब अ य कई तकशास्त्रियो को श्रेय दे दिया जाता है। उस पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसन तकशास्त्र और मनोविज्ञान का मिश्रित कर दिया, क्योकि उसने कथनो को असभव और अथहीन बताया है, सत्य एव मिथ्या तथा और कई तरह स वर्णित किया है। उसक शुद्ध तक क सिद्धात का अनुपालन न करने स हम यह अ`दाजा लगा सकत है कि उस उपक्षित क्या किया गया। देख रसल द्वारा माइ ड 1906 मे प्रकाशित समीक्षा तथा 1907 म मकाल का उत्तर। जे० एम० की`स ने अपनी पुस्तक स्टडीज एण्ड एक्सरसाइजेज इन फोरमल लोजिक म बूल तथा वन के नवा`वेषणो को परम्परागत तकशास्त्र के आकार मे ढालने का प्रयास किया था। इसी प्रक्रिया मे उन्होने वेन द्वारा प्रस्तुत की गई अस्तित्वमूलक शास्त्र सबधी उठाई गयी कठिनाई को हल करने का प्रयास भी किया है। उनके द्वारा की गई चर्चा और दिए गए इन उद्धरणो स कि समष्टि व्यापी तकवाक्य अपने कर्त्ताओ के अस्तित्व के बारे म कुछ नही कहते, बाद म खडे हुए सुवाद का प्रारम्भिक बि`दु था।

1 जो`सन की प्रारम्भिक रचनाओ के लिए द्रष्टव्य ए० एन० प्रायर का लेख कटेगोरिकल्स ऐ ड हाइपोथीटिकल्स इन जाज बूले एण्ड हिज सक्सेसस (ए० जे० पी० 1949) तथा अध्याय 15 (इस पुस्तक का भी)।

जाने चाहिए जिनका श्रेय मूर और रसेल जैसे दार्शनिकों को प्राप्त मिला। कलन पर भी यदि फिलहाल विचार न करें तो भी जोनसन की रचनाओं का समसामयिक तार्किक समस्याओं को गणितीय प्रणाली से हल करने का जेवन्स और वेन के बाद दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। किन्तु जॉन्सन मुख्य रूप से किसी धारणा की सिद्धि करने के लिए काम में लाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कलन बनाना चाहते थे कि उनमें से किसी का भी आवश्यकतानुसार सुविधापूर्वक प्रयोग किया जा सके। जॉनसन के लिए स्वयं तकनीकी चातुर्य का प्राथमिक महत्त्व नहीं था।

हम किसी कलन को काम में लाते समय प्रयुक्त चातुर्य की मात्रा का निम्नानुमान सहज ही लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए जेवन्स ने यह सोचा था कि समानार्थकों के एवजी जैसे एक ही सिद्धांत को यदि एक बार वैध करार दे दिया जाए तो कलन के लिए चातुर्यपूर्ण विचार की आवश्यकता नहीं रह जाती। किन्तु जानसन के अनुसार जेवन्स का कलन धारणाओं के एक जटिल रूप को ही व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए उनकी ये धारणाएँ कि प्रत्येक प्रतीक का एक अबूझ रूप होता है कि बहुत से प्रतीक एक ही वस्तु का संदर्भ दे सकते हैं कि ऐसे प्रतीक जो एक ही वस्तु का संदर्भ देते हैं एक दूसरे की एवज में प्रयुक्त हो सकते हैं। अस्पष्ट धारणाओं को धराशायी करना ही केम्ब्रिज के तार्किक विश्लेषण का प्रमुख अंग रहा है।

जानसन का यह कथन भी कि तर्क का कार्य विश्लेषण ही है, केम्ब्रिजवादी ही है। अर्थात् किसी प्रणाली को उसके आधारभूत भागों में खण्ड खण्ड करके देखना। (यहाँ आक्सफोर्ड के प्रत्ययवादियों की यह मान्यता उल्लेखनीय है कि तर्क एक ऐसी प्रणाली की खोज है जिसमें निर्णय किए जा सकते हैं।) वे यह तो मानते हैं कि प्रत्येक वास्तविक तर्कवाक्य जटिल होता है। उनका कहना है कि फिर भी पारमाणविकी तर्कवाक्य के विचार को आदर्श के रूप में ग्रहण किया जा सकता है जिसे रसेल ने बाद में आणविकी तर्कवाक्य की संज्ञा से अभिहित किया है। इन तर्कवाक्यों का और आगे विश्लेषण नहीं किया जा सकता सिवाय उनके पदों में विभाजित करने के। उसी प्रकार जिस प्रकार एक परमाणु का खंडन अणुओं के विचार से ही हो सकता है। प्रत्येक तर्कवाक्य जानसन की दृष्टि में उसी प्रकार के पारमाणविक तर्कवाक्यों का सेट है जिन्हें मौलिक तार्किक सम्बन्धसूचना में संयोजित किया जाता है ये संबंध और अथवा नहीं से प्रकटते हैं। आकारी तर्कशास्त्र तर्कवाक्यों के समन्वय के दौरान जो कर सकता है वह 'और' एवं 'नहीं' को नियमित करने वाले व्याकरण के नियमों में मिल सकता है।

एक बार यह तथ्य ज्ञात हो जाए तो हम ऐसे ही गंभीर दिखने वाली समस्या का हल पा लेते हैं। हमें यह मालूम पड़ सकता है कि कैसे कोई तथ्य आकल्पिक एवं

सयाजक तकवाक्यो क ही अनुकूल हाता है। य तकवाक्य सत्य हात है लकिन फिर भी प्रकृति एसी किसी स्थिति की समान अवस्था नही रखती जा 'यदि' व 'या की स्थिति को स्पष्ट करती हो। लकिन यह तभी होगा जब हम यदि प तो फ की व्याख्या स प और प नहीं' म निहित सत्य को अस्वीकृत करे। तथा प अथवा फ' को न तो प न फ' स विपरीत मानें। ये कठिनाइया पूणत विलीन हा सकती है, क्योकि 'और तथा 'नहीं' तथ्यात्मक सम्बन्ध सूचक है—'नहीं स हम यह सूचना मिलती है कि कोई वस्तु वाक्य म दिखाई गई अवस्थाओ के अतिरिक्त किसी भी अवस्था का अपन म समाहित किए है और वस्तुत उस अवस्था का नाम लेन की आवश्यकता नही है।

जान्सन के विश्लेषण म परम्परागत तकशास्त्र स एक उल्लेखनीय अलगाव है – वहाँ पर ' यदि है ता एक मौलिक तार्किक अभिव्यक्ति है। अनुमान का तकशास्त्र के लिय अलगाव का एक साधारण बिन्दु माना जा सकता ह। जानसन यह जानत थे कि उनकी आलोचना इस आधार पर की जायगी कि हमारा मानसिक दृष्टिकोण उस समय, जब हम यह सिद्ध करते ह कि यदि प ह तो फ' हमारे उस मानसिक दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न ह जब हम, प न कि फ' के सत्य को अस्वीकृत करते हैं।

इस प्रकार अविमफडवादी भाषा म य निणय भिन्न सिद्ध हा जाते है। जॉनसन का कहना है कि आकारी तकशास्त्र से हमारे मानसिक दृष्टिकोण का कोई ताल्लुक नही है। तकशास्त्र तकवाक्यो का सिद्धान्त है और उसकी परिभाषा किसी अवस्था का सत्य अथवा दोष बतान वाली अभियुक्ति के रूप म की गई है। किसी निणय के सम्बन्ध म जा मानसिक दृष्टिकोण व्यक्त करते है वह निणय नही दता। केम्ब्रिज तकशास्त्रियो द्वारा दिया गया तकवाक्यो पर मत विशेष रूप स उनका परिचायक है

इसी बीच अमरीका म सी० एस० पीयस की रचनाओ म तक एक मौलिक एव उल्लखनीय रूप ग्रहण कर रहा था।[1] उनकी तार्किक रचनाओ की भिन्नता

---

1 पियस के तक के लिय द्रष्टव्य, सी आई लीविस, पूर्वोक्त कृति जिसन सबस पहले पियस को तकशास्त्री के रूप म रचनात्मक सिद्ध किया था। जी० डी० बेरी के **स्टडीज इन द फिलोसोफी आफ सी० एस० पियस (वाइनर)** तथा यग द्वारा 1952 म सपादित म उसकी तकशास्त्र को देन पर लिखा है। पाल वीस न **डिक्शनरी आव अमेरिकन बायोग्राफी** म उस पर लिखा है। **कलेक्टेड पेपस** म पियस के लेख सकलित है। (भाग 2, 3, व 4 पीयस का मध्यकालीन कृतियो का अध्ययन विशाल था। तक के क्षेत्र म आधुनिक विचारो पर मध्यकाल का प्रभाव है। स्कूलवाले तकशास्त्रियो की सूक्ष्म दक्षता की जहा पियस ने प्रशसा की है वहाँ उनकी 'पशुवत् छिछलपन' तथा सामान्याकरण करने वाली बुद्धि के अभाव की निन्दा भी की है।

ही उनकी व्याख्या को कठिन बना देती है। इसके अतिरिक्त उनके विश्लेपण प्राय इतने गूढ हैं कि आसानी से समझ म नही आते। वह एक गणितशास्त्री के पुत्र और स्वय एक गणितज्ञ थ। उनके लिए गणितीय प्रतीको स स्पष्ट और कोई चीज नही है। उनका कथन है कि जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसे गणित समझ म नही आती उसका यही अथ है कि उसे स्वय-सिद्ध सत्य समझ मे नही आता। क्या इससे यह सिद्ध नही होता कि सारा माग ही अवरुद्ध हो गया है ? व तो कई बार केवल अपन निष्कर्षों को ही व्यक्त करना पर्याप्त मानते हैं जबकि उनका पाठक उनसे उद्धरणो की चाहना करता है। उनकी रचनाओ क 1931–5 तक प्रकाशित न हो पाने का एक कारण यह भी था। उनकी रचनाओ की व्याख्या का काय अन्य लोगो के लिए रह गया। यह काय चाह उन्होने दर से किया किन्तु उसे अधिक बुद्धिगम्य बना कर किया। इसका यह अथ नही कि समसामयिक प्रतीकात्मक तकशास्त्रियो ने उनकी अवज्ञा की। इसके विपरीत सभी विद्वान् लोग उनकी योग्यता के कायल थे जबकि अन्य क्षत्रो मे वे जरा भी प्रसिद्ध नही थे। लेकिन उनके गवेषणो की पूरी जानकारी समसामयिक विद्वानो को भी नही थी।

उनकी तक रचनाओ को सामान्यत इस तरह समझा जा सकता हैं। पीयस ने बूले कृत तार्किक बीजगणित म कई तरह से सुधार किया और उनके बीजगणित को भी कायम रक्खा। किन्तु उनके विशुद्ध तार्किक रूपो को उन्होने गणितीय प्रतीको म बदल दिया और तब उन्होने यह मत व्यक्त किया कि डी० मोरगन के तार्किक सबधसूचको का सुथरा सस्करण एक कलन म निर्मित किया जा सकता है। इस प्रकार पहली बार वे बूले एव मोरगन के तकशास्त्र को एक तार्किक आकार दने म सफल हो जाते हैं।

किन्तु बात को यो प्रस्तुत करने से लगता है कि पीयस एक मतक निर्मायक से अधिक और कुछ नही थे। यह बात सत्य से काफी दूर है। पीयस की रचनाओ का मूल तत्व है उनम निहित दोषहीन मौलिकता। कभी कभी व विचित्र और गुथी हुई हैं—लेकिन वे कवल शान्त चमत्कारी ही नही है। उनके द्वारा किए गए गवेषण मे वे महत्वपूर्ण हैं, और उल्लेखनीय भी क्योकि अन्तत उन्हे दाशनिक विश्लेषण के क्षेत्र म भी प्रवेश मिल गया है। चाहे उन्हे यह प्रवश अन्य छोटे लोगो क अप्रत्यक्ष प्रभाव द्वारा ही मिला हो।

सवप्रथम है विधेय को तीन भागो म बाटना जिसे उन्होन (मोनिस्ट 1897) क्रमश एककिक (मोनेडिक) द्वयिक (डायेडिक) एव अनकिक (पोलिएडिक) कहा है। एककिक विधेय किसी कथन के इस आकार मे देखा जा सकता है।—

एक मनुष्य है,' जिसकी पूर्ति रिक्त स्थान मे एक शब्द भरने स होती है। का प्रेमी है' म ऐसे दो रिक्त स्थान हैं। इसलिए वह द्वमिक सबध को प्रकट करता है। श्रौर' ने' 'को' 'दिया' मे तीन रिक्त स्थान है श्रौर यह श्रनकिक सबधो का सूचक है।

सबधसूचको का सवप्रथम प्रादुर्भाव कराने वाले डी० मोरगन ने तकशास्त्र को एक शाखा को काफी प्रभावित किया था श्रौर श्रनकिक मबधसूचको स यह बात श्रौर भी स्पष्ट हो सकी। उनके कथनानुसार इससे पहले की उन श्रबूझ दार्शनिक समस्याश्रो का भी हल समव हो सका। विशेषकर साधक पदान्वय सवधी सतोषप्रद विश्लेषण करने म श्रनकिक सबधसूचको का श्रावतन काफी सहायक श्रौर महत्त्व का सिद्ध हुश्रा है। हीगेल की भांति श्रपनी ही इस श्राविष्कृति से पीयस भी सम्मोहित होते हुए कहते हैं कि इस त्रैत से प्रथमत्व, द्वितीयत्व एव तृतीयत्व के बीच का भेद बहुत स्पष्टत समझ म श्रा सकता है श्रौर दशनसबधी उनके तत्वमीमासा विषयक उद्देश्यो की पूर्ति करता है। विधेय का यह त्रिमुखी विभाजन श्राधिभौतिकी श्रथवा तत्वदशनसबधी वर्गीकरण को साफ साफ व्यक्त करता है। वे यह बताने म भी सलग्न थे कि श्रनकिक सबधसूचक सदव त्रयिक सबधसूचको को ही व्यक्त करता है।[1]

पीयस का दूसरा महत्वपूर्ण नवान्वयण एक दूसरी ही तरह का था। वे केवल एक व्यापक सामान्यीकरण की खोज मे थे, न कि किसी नई सिद्धि की। व परम्परा गत तकशास्त्र से श्राए पदो तकवाक्यो एव श्रनुमानो का वगसबध-सूचको विधेया एव श्रभिप्रायो के पारस्परिक सबधो की व्याख्या को, नय तक के लिए श्रसमीचीन मानकर छोड दते हैं। परम्परागत दृष्टिकोण स जब हम पद से श्रनुमान की श्रोर जाते हैं तो जटिलता मे भी वृद्धि होती है। एक पद किसी तकवाक्य का श्रश है श्रौर एक तकवाक्य किसी श्रनुमान का।

---

1 तुलना कीजिये, प्रथमता द्वितीयता व तृतीयता पर श्राई० स्टन्स के विचारो म (वीनर व यग द्वारा सपादित स्टडीज इन फिलोसफी श्राव चार्ल्स सडस पीयस मे। रसल, जिसने पीयस द्वारा बताय गये मोनेडिक, डायेडिक तथा पोलीएडिक सबधो मे सत्य के सिद्धात म) भेद का पूण उपयोग किया है रोयस का हवाला दता है पीयस का नही। उसने ट्रायेडिक सबधो पर रायस द्वारा दिय गये बल का भी मज़ाक उडाया है। पीयस की तत्वमीमासा के सन्दभ म यह बल देना निराधार नही है।

इसके विपरीत पीयस यह कहते हैं कि हमारे द्वारा किय गये साधारण भो की वैधता उतनी ही है जितना हम उन्ही मूल अ शा से निर्मित एक परिचित तार्किक आकार के विभिन्न रूपो का अपनी सुविधानुसार उपयोग करते हो।

हम इस धारणा से भ्रमित हो गए हैं कि अ ग्रेजी या किसी भी योरोपीय भाषा मे जातिवाचक सनाए हैं। बहुत से अ ग्रजी वाक्यो म ये सनाए, नियाओ सबधबोधको स जुडी होने के कारण बडी स्पष्ट लगती हैं। भाषा क इस आकस्मिक रूप से ही पद और तकवाक्य मे भेद दिखाई देने लगता है। पदो को सामान्यत पारिवाचक सनाए माना गया है और तकवाक्यो को उन सनाओ द्वारा प्रस्तुत किया गया विचार या तक। किन्तु दरअसल प्रत्यक सना मौलिक रूप स अपनी सिद्धि भी करती है। यह बात मिल की पद की इस परिभाषा म आई है, जहा उन्होने कहा है कि पद कुछ अवस्थाओ को अभिहित करता है और उस स्थिति की ओर सकेत करता है जो इन अवस्थाओ को धारण करती है। किसी त्रिकोण के विषय म सोचने का अथ हमारे मस्तिष्क क सम्मुख वस्तु का एक आकार प्रस्तुत करना है। इस सबध मे एक ऐस ज्यामितिक आकार की कल्पना करना हैं जिसकी तीन भुजाए है। इस तरह जो कुछ हमारे मन के सामने है वह उस पूणत परिणाम बताने वाले तकवाक्य– 'सब मनुष्य मरणशील है' की तुलना म कही अधिक मौलिक है। किन्तु यह भेद मात्र अ शो का ही है–प्रकार का नही।

उतनी ही प्रबलता स वे यह मानते हैं कि तकवाक्य एक मौलिक अनुमान ही है। एक अनुमान म एव तकवाक्य मे यही भेद है कि किसी सामान्य तक म तो हम ऊपरी तौर पर कुछ धारणा कायम करते हैं—जबकि तकवाक्य मे हम कवल तार्किक सम्बन्धों का पता लगा कर सतुष्ट हो जाते हैं। इस तरह यह उदाहरण कि– ईनोक एक आदमी था इसलिए मरणशील था इसी बात को सिद्ध करता है कि ईनोक वास्तव म मरण शील था। यह तकवाक्य कि यदि ईनोक एक आदमी था तो वह मरणशील था ईनोक की मरणशीलता को व्यक्त नही करता।

तो भी तकवाक्य एव अनुमान एक ही प्रकार के तार्किक सम्ब धसूचकों की ही व्यजना करते हैं। इस तरह यदि सम्बन्धसूचको की अवस्थाओ को ध्यान म रख तो तक की दष्टि से अनुमान एव तकवाक्य एक ही आकार को व्यक्त करते हैं। और सभी तकवाक्यो को यदि है, तो है वाले आकार म व्यक्त किया जा सकता है। 'अ ब है इसका यही अथ है कि अ म जो गुण है वही ब म भी हैं। और इसका दूसरा आशय यह भी है कि यदि कोई वस्तु अ है तो वही वस्तु ब भी है। तब यह दिखाना कि 'यदि है तो है आकार क तकवाक्य मौलिक अनुमान

हैं, यह सिद्ध करते हैं कि तकवाक्य मौलिक अनुमान है उनके समेत, जिन्हे पद होने के कारण हम मौलिक अनुमान कहते है।

तब मूलभूत तार्किक अभिधारणा यदि है ता है" के आकार से अथवा 'इसलिए " स व्यक्त किय जाने वाले 'इलेटिव सम्बन्धसूचक' ही हैं 1896 म मोनिस्ट म प्रकाशित एक निबन्ध, द रीजनरेटेड लोजिक म उन्होने लिखा कि '1867 से ही मेरी यह मान्यता रही है कि प्राथमिक और मूलभूत तार्किक सम्बन्धसूचक आकार एक ही है, और वह है इललशन। एक तकवाक्य मेरे लिए केवल मात्र एक युक्ति है जो अपन प्रेमियो एव निष्कर्षों से बिल्कुल अलग है। यह प्रत्येक तकवाक्य को मूलत एक दशानुकूलित तकवाक्य म बदल देता है। इसी प्रकार एक पद या वगनाम मेरे लिए एक ऐसा तकवाक्य है जो कर्ता स अथवा आधारभूत तत्व स रहित हो अथवा कोई अनिश्चित धारणा हो। यह सिद्धान्त इस तरह तकशास्त्र को एक श्लाघनीय एकरूपता प्रदान करता है।

यही 'इलेटिव सम्बन्धसूचक' वाद म भौतिक अभिप्रेत (मटीरियल इम्प्लिकेशन) के नाम स जाना गया। क्योकि यदि प, फ—' इसमे अधिक कुछ अर्थ नही रखता कि—'इसका यह अर्थ नही कि प ता सही ह और फ गलत'। इस तरह स व्याख्यायित करने से यदि है तो है क आकार का मल वग सदस्यता सम्बन्ध सूचक से भी बठाया जा सकता है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि प के सत्य हाने को व्यक्त करने वाले जितने भी मामले हैं—वे फ के सत्य होन क वस मामलो को भी अपने अन्दर समाहित किय है लकिन अ य लागो की भाति पीयस यह कतई नही चाहते थे कि तकवाक्यो के सम्बन्ध सूचको का वग सम्ब घ सूचको म रूपान्तरित किया जा सकता है। उनके विचार की दिशा तो बिल्कुल इसस उलटी थी। उन्हाने लिखा है इस प्रकार 'कोपूला मे व्यक्त किए गए सम्बन्ध का इलेशन के साथ मिला देन स हम तकवाक्य को अनुमान के साथ मिला दते हैं और पद का तकवाक्य से तादात्म्य बठा दते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य' नामक पद का अर्थ है कि मेरे समक्ष अब एक ऐसी वस्तु है जिसमे क्ष तत्व मौजूद ह और इसका यही अर्थ है कि ये दोनों अवस्थाए कि कहीं मेर समक्ष कोई वस्तु ह और उस वस्तु में क्ष तत्व मौजूद नहीं ह एक साथ सही नही हा सकती—तब इसका यह मतलब हुआ कि यदि मरे सामन कुछ अभी ह तो वह क्ष ही ह तकशास्त्र इसी प्रकार इलेशन अथवा भौतिक अभिप्रेत के आसपास सयोजित हो गया है।

पीयस ने इसे दख तो लिया था लेकिन वे भौतिक अभिप्राय म उत्पन्न हो जान वाल विरोधाभास स बिल्कुल विचलित नही हुए। उदाहरण क लिए यह तथ्य कि यदि प 'फ' की सिद्धि करता है, उस समय भी जब यह स्थिति न हो कि 'प'

सत्य है और फ असत्य तब प का असत्य किसी भी ऐसे तर्कवाक्य के सत्य की सिद्धि करेगा जिसे हम उस सदर्भ म व्यक्त करेंगे। इस प्रकार पीयस के इस उदाहरण से यदि कोई दानव सयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति चुन लिया गया तो वह अमरीका के आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा" यही निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ ऐसा चुनाव कभी नही होगा। इस प्रकार के निष्कर्षों स बिचकने की बजाय पीयस उनका उपयोग अपने तर्कशास्त्र म करते हैं—उदाहरणाथ नकारात्मकता को अभिप्राय के रूप म परिभाषित करने के अपने प्रयास म उन्होने इस सूत्र का ऐसा उपयोग किया कि प नहीं=सब फ, यदि प तो फ।' उन्होने कहा कि हमे तार्किक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए यदि तो का विशेष रीति से प्रयोग करना चाहिए। यदि यह बात हमे ध्यान म रहेगी तो कोई उलझन नही होगी।

पीयस का आकारी तर्कशास्त्र के लिए योगदान तर्कशास्त्र की इस सर्वसामान्य प्रकृति के सिद्धात के विरुद्ध ही हुआ है कि तर्कशास्त्र प्रतीकों का सिद्धात है।[1] तर्कशास्त्र की यह परिभाषा निश्चय ही कोई नयी बात नहा कहती। लाक ने भी पहले तर्कशास्त्र को प्रतीको का सिद्धात कहा ही था। उनके अनुसार तर्कशास्त्र का काय उन प्रतीको पर विचार करना है जिन्हे वस्तुओ को समझते समय मन निर्मित करता है अथवा उस समय, जब वह उन्हे दूसरो तक सम्प्रेषित करना चाहता है।' लेकिन पीयस इस पर यह आपत्ति करते हैं कि उनके पूर्ववर्तियो ने इन प्रतीको का पर्याप्त सूक्ष्मता से परिश्रम सहित विश्लेषण नही किया है। निश्चय ही पीयस की रचनाओ के लिए इस सबध म तो कोई शिकायत कर ही नही सकता। उन्ह इन विशिष्टताओ की गुत्थियो के जरिए समझने के बजाए हम उनके मूल उद्देश्यो की झलक तो प्राप्त कर ही सकते है।

उनके अनुसार, तर्कशास्त्र आमतौर पर प्रतीको के सामान्य नियमो का विज्ञान है जबकि विशेष रूप से प्रतिमानो का विज्ञान कहा जा सकता है। इसकी तीन शाखाए हैं (एक बार फिर उनमे त्रयी के प्रति मोह झलकता है) जो एक दूसरे से भिन्न हैं। इस बात को 1897 म लिखे अपने किसी लेखाश म उन्होने सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। सबसे पहले विशुद्ध व्याकरण है जो यह विचार करता है कि किसी प्रतीक के सबध मे ऐसी कौनसी स्थिति सत्य है जिसे वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा भी प्रयोग म लाया जा सकता है। पीयस के अनुसार यह स्थिति ऐसी है जिसे प्रत्येक अवस्था म सार्थक रूप से काय म लाया जा सकता है। तब मूल तर्क

---

1 द्रष्टव्य डब्लू बी० गली कृत पीयस एण्ड प्रैग्मैटिज्म नामक पुस्तक मे पीयस थ्योरी आफ नोलेज' शीर्षक अध्याय।

शास्त्र का स्थान है । उसे 'सटीक तकशास्त्र' भी कह सकते हैं । यह तकशास्त्र वस्तु सबधी अनुभव म खडे हो जान वाले सभी प्रतीकों का वणन करता है और अन्तत विशुद्ध शास्त्रीयता प्योर रेटरिक) या रीतिविधान (मेथडोलोजी) हैं-जो एसे नियमो का निर्धारण करता ह जिसके जरिए एक प्रतीक दूसरे प्रतीक को ज म देता है और विशेषत एक विचार दूसरे विचार को ।

यह त्रिमुखी विभाजन पीयस द्वारा की गई प्रतीक की इस परिभाषा पर आधारित है कि प्रतीक वह है जो किसी क लिए किसी अवस्था या क्षमता म किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व कर सकता हो । अर्थात् उसे अपनी परिभाषा मे भी आवश्यकरूप मे अनक्कि सबधसूचको[1] की ओर जाना होता है । पीयस उसे जसा समझना चाहत हैं उसी रूप म प्रतीक का आभास हम हो जाना चाहिए । कोई प्रतीक आवश्यक रूप से एक शब्द नही है । यह एक विचार भी हो सकता है, काय हो सकता है और ऐसी प्रत्येक अवस्था हो सकता है जिसकी व्याख्या हो सके । दूसरे शब्दो म जो आग जाकर नये प्रतीकों को ज म दे सकने की क्षमता रखता हो । इस तरह बादल एक प्रतीक है क्योकि इसका अथ वर्षा है । यह एक क्रियाशीलता की ओर इ गित करता है । य काय स्वत फिर प्रतीको के रूप मे प्रयुक्त हो सकते हैं, क्योकि उनका अथ भी उन लागो के लिए वर्षा ही होगा जि होने किसी न किसी कारण से बादल नही देखे हो और ब द खिडकियो से वषा को सुना हो ।

पूरी तौर पर पीयस इन प्रतीका को छिहत्तर प्रकारो म बाटते है । यह विभाजन वे विभाजन सबधी विभिन्न नियमो के जरिय करते है । इस प्रकार यदि एक उदाहरण लें तो–एक प्रतिमा इस प्रकार का प्रतीक है जो उसे ही व्यक्त करती है जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है, ठीक उसी तरह जसे एक फोटो किसी व्यक्ति का प्रतीक होता है । कोई सूचक (इ डेक्स) उन परिणामो को व्यक्त करता है जो कोई वस्तु अपने ऊपरी तौर पर ग्रहण कर लेती है । जैसे कोई छाया सूय के किसी कोण का प्रतीक इ डेक्स)होती है। कोई प्रतिमान वस्तुओ के साथ केवल परम्परा से ही जुडता है–और अधिकाश शब्द इसी प्रकार के होते हैं । इनका और अ य सभी विशुद्ध भेदो का क्या मूल बि दु है? क्या यह विभाजन क्वल विभाजन के लिए है?

---

1 वास्तव मे प्रतीको म रुचि होने के कारण ई० पीयस ने अनकिक सबध सूचको की चर्चा की है जिसे मूल रूप उ होने 'प्रतिनिधि सबधसूचक' कहा है । लेकिन बाद म उनके दिमाग म यह बात साफ हो गई कि इनका व्यापक प्रयोग भी किया जा सकता है ।

हम काफी मात्रा मे तथ्यो को इकटठा कर लें तो वहा जितने प्रतिशत म उन मामलों के विषय म कोई बात सही होगी उतनी मात्रा मे उसका प्रतिनिधित्व करने वाले वग के लिए भी सही होगी। आगमन का सावलौकिक (टिपीकल) उदाहरण इस तरह का होगा —

हमारा प्राक्ल्प यही है कि नीग्रो जाति म लडकिया के ज न्म लेने का प्रतिशत लडको के ज मने के प्रतिशत से कही अधिक है। हम इस प्राकल्प का परीक्षण सयुक्त राज्य अमरीका के परिगणना विभाग के आकडो स करते हैं। यदि हमारा यह अनुमान उन आकडों से मेल खाता है तो हम विश्वास–पूवक यह स्वीकार कर लेते है कि हमारा प्राकल्प सही है।

पीयस यह बात स्वीकारते हैं कि यह विधि उन मामलो म मुश्किल से ही काम मे लाई जा सकती है जहा प्राकल्प यही सिद्ध करते हैं कि अमुक वस्तु का स्वरूप अमुक अमुक है। जसा कि अमुक आदमी एक कथोलिक पादरी है। इस प्रकार के उदाहरणो मे हमारा आगमनात्मक अनुमान अ दाज पर आधारित होगा क्योंकि कथोलिक पादरी का स्वरूप कि ही इकाइयो मे बधा हुआ नही है। और इसी कारण से उसका साख्यिकीय चुनाव नही हो सकता। पीयस इसके बावजूद भी *उस समय सवाधिक सतुष्ट होते हैं जब वे किसी बात की सिद्धि साख्यिकी उदाहरणो* के जरिए कर सके हो और वहा उत्पन्न हो जाने वाली कठिनाइयो का उनके द्वारा किये गये सतक विश्लेषण मे) जसे मान लो उन्हें अच्छे नमूने की परिभाषा देनी हो, तो इस दौरान) वे उन सब समस्याओ को भी देख लते हैं जो बाद म उसी क्षेत्र मे उपस्थित हो सकती हैं।

यह स्पष्ट है कि पीयस का आगमनसम्ब धी वणन उ हें सभा यता के सिद्धान्त के बहुत करीब खीच लाता हैं। उ होन लिखा भी है कि सभा यता का सिद्धान्त केवल मात्र तकशास्त्र को परिमाणात्मक रूप से देखने का विनान है। वह विनान जो यह अनुमान लगाता है कि अमुक अमुक उपायो के जरिए अमुक अमुक निष्कप आने की कितनी सभावना हो गई है।

पीयस के सामने प्रमुख समस्या यही है कि वे सभाव्यता के इस विचार को वन से उद्धृत किय गये सभा यता के बारबारी विश्लेषण के अनुकूल देखना चाहत हैं। उनका हल इस प्रकार है, किसी निष्कप को सभव मानना यह कहना है कि वह एक ऐसी तकशृ खला से निकला है जो *बहुत ज्यादा मामलो मे एक सही निष्कप की ओर ले जाती है।* इस हल के *दौरान* उपस्थिति हो जाने वाली बहुत सी कठिनाइयो का स्पष्टीकरण दशन के क्षेत्र म किये गये उनके किसी भी योगदान से कम नहा है।

पीयस द्वारा बूले के बीजगणित म किया गया सशोधन तत्काल ही महत्वपूर्ण मानकर स्वीकार कर लिया गया है—इस सशोधन म प्रमुखत जमन तकशास्त्री ई० श्रादर का ध्यान श्राकर्षित किया है श्रौर बाद म 'बूले श्रोदर-बीजगणितीय तकशास्त्र' के रूप मे प्रसिद्ध धारणा के निर्माण म भी वह काफी सहायक रहा। द्रष्टव्य, लक्चस श्रान द एलजेब्रा श्राव लोजिक 1890 1905) । लेकिन श्रादर की रचनाश्रो न दशन के क्षेत्र म कोई नय विचार प्रस्तुत नही किए। पीयस व्यग्य से इस बात को कहते हैं कि डी० मोरगन व सम्बन्ध-सूचक सिद्धान्तो का प्रभाव परोक्षत एक अ-तकशास्त्री" (विलियम जेम्स) की रचनाश्रो म श्रा गया है।

प्रिंसिपल्स श्राव साइकोलोजी न श्रपन प्रसिद्ध श्रन्तिम श्रध्याय म विलियम जेम्स इस धारणा का खडन करते हैं, जिसका मिल न भी पक्ष लिया, कि 'अनुभववादियो का तार्किक एव गणितीय सिद्धान्तो की व्याख्या श्रनुभवो क सामान्यीकरण के श्राधार पर करनी चाहिए। लाक एव ह्यूम का दृष्टान्त सामन रखते हुए विलियम जेम्स कहत हैं कि तकशास्त्र एव गणित प्रत्ययो के सम्बन्धो का श्रपने विषय वस्तुश्रो के रूप म स्वीकार करते है। य सम्बन्ध अनुभव-निरपेक्ष हैं यद्यपि प्रत्यय स्वय अनुभवो की ही उपज ह। जेम्स के श्रनुसार मूलभूत तार्किक एव गणितीय सम्बन्ध एक तुलना ह। प्रमाण की सही विधि तक ह श्रौर गणित तो मध्यबिन्दुश्रो को पार करन का काय करता है। जब गणितज्ञ यह निष्कष निकालते हैं कि यदि श्र ब के समान है श्रौर ब स के तो श्र स के समान है तो इसमे यह निष्कष ब को पार करक ही ल लिया गया है। केवल यह तथ्य कि इस प्रकार से पार करना बहुधा सभव नही, (श्रौर यहाँ जम्स विशेषत डी० मारगन का दृष्टान्त दते हैं) क्योकि यही बात इस क्रम म नही कि श्र ब को प्रेम करता है श्रौर ब स को तो इसका यह श्रथ कदापि नही हुश्रा कि श्र स को प्रेम करता है य उदाहरण हम यह भी सकेत देते हैं कि य सम्बन्ध हमारे द्वारा प्रयास स बचाए हुए नही है। श्रौर न हमारे ही करने मे मध्यबिन्दुए पार की जा सकती हैं। यह निष्कष उन्नीसवी शती के उत्तराध का मनस्तत्वविज्ञान की श्रालोचना के दौरान विशेषत प्रकट हुश्रा है।

इस श्रालोचना के श्रपने श्रन्य श्राधार भी हैं। एक बार फिर गणित का विकास तकशास्त्र के लिए काफी महत्व का हो गया था। चाहे इस समय इसके रूप म भिन्नता ही थी। बूले ने तकशास्त्र मे नए प्रकार के बीजगणित की उद्धरण क्षमता देखी थी। हमारे समय गणित ने इसका ध्यान प्रतीकात्मक तकशास्त्र की श्रोर कर दिया, क्योकि वे श्रपने इस काय मे बीच मे पडने वाले गणित के व्यवधानो को भी पूरित करना चाहते थे श्रौर उसके लिए उन्हें किसी सहायक की श्रावश्यकता थी। इस बिन्दु पर श्राकर श्रन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र म विचित्र प्रकार के श्रादान प्रदान हुए।

बूले डी० मोरगन का तक्शास्त्र इग्लण्ड म प्रादुभूत हुआ था, लकिन अपना शास्त्रीय रूप उस जमनी के श्रादर के हाथो म मिला। गणितीय तक्शास्त्र महाद्वीपीय रचना थी जिसे रसल और व्हाइटहैड की सब प्रसिद्ध कृति प्रिंसिपिया मथेमेटिका म अपना शास्त्रीय स्वरूप मिल सका।

अनेक तरह स उन्नीसवी शती के गणितज्ञो ने गणित और अनुभव के मध्य रही स्पष्ट कडी को तोड ही दिया था। बीज गणित अब परिमाणात्मक नही रह गया था। ज्यामिति भी आयामो सबधी सीमाओ के आग अपने सामान्यीकरण कर रही थी। गणित म ईजाद हुए नए पारसीम (ट्रासफाइनाइट) अक स्पष्टत ही असामान्य प्रकार की धातु बताने वाले थे। उदाहरणाथ पारसीम वग म यह बात आवश्यक रूप से सत्य नही मानी जा रही थी कि पूण अश से बडा है। प्राकृतिक अको की अनन्त शृखला सम अको की अनन्त शृखला से बडी नही हैं।[1]

इन नवान्वेपणो क परिणाम स्वरूप गणित के वाक्य अधिकत तक के वाक्यो जसे होते जा रहे हैं। अब यही कहा जाने लगा था कि गणित कवल मात्र क्रम का विज्ञान है।'वरिमा एव परिमापा के सवध म वे सार सदभ जो उसे तक स भिन्न करते हैं उसके वास्तविक रूप म जोड दिए गए कुछ सदभहीन प्रक्षेप हैं। इस आधार पर लिखा गया यह निष्कप इस दिशा मे एक नन्हा सा कदम ही माना जाना चाहिए कि शुद्ध गणित को तार्किक नियमो से परिचलित प्रदर्शित किया जाना सभव मान लिया गया था।

नव गणित उसक प्रमुख प्रवतको की दृष्टि मे केवल अभिधारणाओ का विश्लेपण मात्र है सत्यों का कोई प्रदशन योग्य सिद्धात नही। प्लेटो के समय स ही सामान्य धारणा तो यह थी कि गणित वस्तुओ की आदश अवस्था क सवध मे

---

1 एन लोबाचेवस्की की अयूक्लिडियन ज्यामिति 1855 म प्रकट हुई थी। के वीयरस्ट्रास ने अठारहवी शती की छठी दशाब्दी म ठोस गणितीय प्रमाणो के विचार का प्रवतन किया। सही अनन्त (रियल इफिनिट) के पारसीम अको का यह सिद्धात भी आर डेडेकाइ ड की रचनाओ म अठारहवी शती की नवीं दशाब्दी के दौरान देखा जा सकता है और उन्नीसवी शती की अतिम अवधि म जी० केण्टर की रचनाओ म भी इसी प्रकार की ध्वनि है। द्रष्टव्य, ई टी बल कृत द डेवलपमेण्ट आव मथेमेटिक्स, बी रसेल द्वारा मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक म लिखा गया मैथेमेटिक्स एण्ड द मटाफिजिक्स' शीपक निबध (1921) यह 1901 के इटरनेशनल म थली नामक पत्र से उक्त पुस्तक मे पुन मुद्रित किया गया।

निर्धारण किये जाने वाले सत्या का एक आकलन मात्र है। जैसे सम्पूर्ण वस्तु। उसी प्रकार के अन्य आकार और इन आदर्शों तथा प्रतिदिन अनुभवों को उजागर करने वाले तथ्यों के बीच वास्तविक सबंधों के विषय में हुए दार्शनिक मुवाद उल्लेखनीय हैं। किन्तु अब यह धारणा बन रही थी कि गणित सत्यों के विषय में कुछ नहीं कहता। इसका प्रमुख उद्देश्य यही खोज करना है कि अमुक स्थितियों में क्या परिणाम निकलते हैं। इस संबंध का एक कुख्यात उदाहरण लें तो विभिन्न प्रकार की ज्यामितियों को विभिन्न आधारभूमियों के बावजूद भी साथ साथ रखा जा सकता है। गणितज्ञों के अनुसार यह प्रश्न ही नहीं उठता है कि उनमें कौन सी ज्यामिति सही है जब तक कि इनमें कोई विरोधाभास नहीं है इनमें प्रत्येक का वध विचार किया जाना सही है-यद्यपि कुछ ज्यामितियां विशिष्ट उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गणित का यह नया विचार अपने साथ प्रमाण की एक महती माग लेकर प्रस्तुत हुआ था। गणितज्ञों ने हमेशा ही प्रबल और उपयोगी प्रमाणों की खोज की थी किन्तु उन्होंने यह नहीं माना था कि यही उनका एक मात्र उद्देश्य था-। अब तो वे यह भी मानने लगे हैं। इस प्रकार वे गणित के सिद्धांतों को तार्किक आकार देने के प्रयास में थे जिससे उनका तार्किक आकार तत्काल ही स्पष्ट हो जाय और उस आकार में निहित बाधा शीघ्र दूर की जा सके। परम्परागत तर्कशास्त्र सरलता पूर्वक गणित की युक्ति का प्रतीकात्मक रूप न दे सका था। बूले का तर्कशास्त्र अधिक आशाजनक लगता है और उसका भी नये उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक तौर पर पुनर्निर्माण किया जाना बाकी था।

इस विकास के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने तर्कशास्त्रियों को एक विषयवस्तु प्रदान की थी। पीयर्स ने यह खतरा भी लिया कि तर्कशास्त्र इस प्रकार शीघ्र एक गणितीय मनोरंजन बन कर रह जाएगा। वेन जैसे तर्कशास्त्रियों ने पुराने आकारों तर्कशास्त्र की तुलना में नये तर्कशास्त्र में अधिक सुविधा पूर्वक हल की जा सकने वाली समस्याओं को सबके सम्मुख रखा। किन्तु कीन्स ने यह बताया कि वे समस्याएं पुराने तर्कशास्त्र द्वारा हल न की जा सकती हों यह गलत है। वास्तव में तो समस्याएं बनावटी ही हैं और इनका किसी वास्तविक जांच पड़ताल से कोई ताल्लुक नहीं है। प्रतिदिन की बात-चीत में उभरने वाले तथ्यों को परम्परागत तर्कशास्त्र द्वारा अधिक सुविधापूर्वक समझा जा सकता था। यह बात वेन ने भी स्वीकार की है। तब बूले व उनके अनुयायियों द्वारा अन्वेषित प्रणालियों की क्या उपादेयता थी? इन प्रणालियों की यही उपयोगिता थी कि इनसे गणितीय युक्ति का विश्लेषण संभव हुआ।

जी० पीयानो के नेतृत्व में इटली के तर्कशास्त्रियों के एक समुदाय ने तर्कशास्त्र के गणितज्ञों के लिए उपयोग व प्रयोग किये जा सकने की संभावना पर विचार

बूले डी० मारगन का तर्कशास्त्र इंग्लण्ड में प्रादुर्भूत हुआ था लेकिन अपना शास्त्रीय रूप उसे जर्मनी के श्रादर के हाथो में मिला। गणितीय तर्कशास्त्र महाद्वीपीय रचना थी जिसे रसल और व्हाइटहैड की सब प्रसिद्ध कृति 'प्रिंसिपिया मथेमटिका' में अपना शास्त्रीय स्वरूप मिल सका।

अनेक तरह से उन्नीसवी शती के गणितज्ञो ने गणित और अनुभव के मध्य रही स्पष्ट कडी का तोड ही दिया था। बीज गणित अब परिमाणात्मक नहीं रह गया था। ज्यामिति भी आयामो सबधी सीमाओं के आगे अपने सामान्यीकरण कर रही थी। गणित में ईजाद हुए नए पारसीम (ट्रान्सफाइनाइट) अंक स्पष्टत ही अन्य मान्य प्रकार की धातु बताने वाले थे। उदाहरणार्थ पारसीम वर्ग में यह बात आवश्यक रूप से सत्य नही मानी जा रही थी कि पूर्ण अंश से बडा है। प्राकृतिक अंकों की अनन्त शृंखला सम अंको की अनन्त शृंखला से बडी नहीं है।[1]

इन नवान्वेषणों के परिणाम स्वरूप गणित के वाक्य अधिकतर तर्क के वाक्यो जसे होते जा रहे हैं। अब यही कहा जाने लगा था कि गणित केवल मात्र क्रम का विज्ञान है।' वरिमा एव परिमापा के सबध में व सार संदर्भ जो उसे तर्क से भिन्न करते हैं उसके वास्तविक रूप में जोड दिए गए कुछ सदर्महीन प्रक्षेप हैं। इस आधार पर लिखा गया यह निष्कर्ष इस दिशा में एक नन्हा सा कदम ही माना जाना चाहिए कि शुद्ध गणित को तार्किक नियमो से परिचलित प्रदर्शित किया जाना संभव मान लिया गया था।

नव गणित उसके प्रमुख प्रवर्तको की दृष्टि मे केवल अभिधारणाओं का विश्लेषण मात्र है सत्यो का कोई प्रदर्शन योग्य सिद्धात नही। प्लेटो के समय से ही सामान्य धारणा तो यह थी कि गणित वस्तुओ की आदर्श अवस्था के सबध में

---

1 एन लोबाचेवस्की की अयूक्लिडियन ज्यामिति 1855 मे प्रकट हुई थी। के वीयरस्ट्रास ने अठारहवीं शती की उन्नीसवी दशाब्दी में ठोस गणितीय प्रमाणों के विचार का प्रवतन किया। सही अनन्त (रियल इनफिनिट) के पारसीम अंको का यह सिद्धात भी आर डेडेकाइंड की रचनाओ मे अठारहवी शती की नवी दशाब्दी के दौरान देखा जा सकता है और उन्नीसवी शती की अतिम अवधि में जी० केण्टर की रचनाओ में भी इसी प्रकार की ध्वनि है। द्रष्टव्य, ई टी बेल कृत द डेवलपमण्ट आव मथेमेटिक्स बी रसल द्वारा मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक मे लिखा गया 'मैथेमेटिक्स एण्ड द मेटाफिजिक्स' शीर्षक निबंध (1921) यह 1901 के इण्टरनेशनल मंथली नामक पत्र से उक्त पुस्तक में पुन मुद्रित किया गया।

निर्धारित किये जाने वाले सत्यों का एक संकलन मात्र है। जैसे सम्पूर्ण वस्तु। उसी प्रकार के अन्य आकार और इन आदर्शों तथा प्रतिदिन अनुभवों को उजागर करने वाले तथ्यों के बीच वास्तविक सबंधों के विषय में हुए दार्शनिक सुवाद उल्लेखनीय हैं। किन्तु अब यह धारणा बन रही थी कि गणित सत्यों के विषय में कुछ नहीं कहता। इसका प्रमुख उद्देश्य यही खोज करना है कि अमुक स्थितियों से क्या परिणाम निकलते हैं। इस सबंध का एक कुख्यात उदाहरण में तो विभिन्न प्रकार की ज्यामितियों को विभिन्न आधारभूमियों के बावजूद भी साथ साथ रखा जा सकता है। गणितज्ञों के अनुसार यह प्रश्न ही नहीं उठता है कि उनमें कौन सी ज्यामिति सही है, जब तक कि इनमें कोई विरोधाभास नहीं है, इनमें प्रत्येक का वैध विचार किया जाना सही है-यद्यपि कुछ ज्यामितियां विशिष्ट उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गणित का यह नया विचार अपने साथ प्रमाण की एक महती माग लेकर प्रस्तुत हुआ था। गणितज्ञ ने हमेशा ही प्रबल और उपयोगी प्रमाणों की खोज की थी किन्तु उन्होंने यह नहीं माना था कि यही उनका एक मात्र उद्देश्य था—। अब तो वे यह भी मानने लगे हैं। इस प्रकार वे गणित के सिद्धांतों को तार्किक आकार देने के प्रयास में थे जिसमें उनका तार्किक आकार तत्काल ही स्पष्ट हो जाय और उस आकार में निहित बाधा शीघ्र दूर की जा सके। परम्परागत तर्कशास्त्र सरलता पूर्वक गणित की युक्ति का प्रतीकात्मक रूप न दे सका था। बूले का तर्कशास्त्र अधिक आशाजनक लगता है और उसका भी नये उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक तौर पर पुनः निर्माण किया जाना बाकी था।

इस विकास के सबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने तर्कशास्त्रियों को एक विषयवस्तु प्रदान की थी। पीयर्स ने यह खतरा भी लिया कि तर्कशास्त्र इस प्रकार शीघ्र एक गणितीय मनोरंजन बन कर रह जाएगा। वन जैसे तर्कशास्त्रियों ने पुराने आकारी तर्कशास्त्र की तुलना में नये तर्कशास्त्र में अधिक सुविधा पूर्वक हल की जा सकने वाली समस्याओं को सबके सम्मुख रखा। किन्तु कीन्स ने यह बताया कि ये समस्याएं पुराने तर्कशास्त्र द्वारा हल न की जा सकती हों यह गलत है। वास्तव में ये समस्याएं बनावटी ही हैं और इनका किसी वास्तविक जाच पड़ताल से कोई ताल्लुक नहीं है। प्रतिदिन की बात-चीत में उभरने वाले तथ्यों को परम्परागत तर्कशास्त्र द्वारा अधिक सुविधापूर्वक समझा जा सकता था। यह बात वन ने भी स्वीकार की है। तब बूले व उनके अनुयायियों द्वारा अन्वेषित प्रणालियों की क्या उपादेयता थी? इन प्रणालियों की यही उपयोगिता थी कि इनमें गणितीय युक्ति का विश्लेषण संभव हुआ।

जी० पीयानो के नेतृत्व में इटली के तर्कशास्त्रियों के एक समुदाय ने तर्कशास्त्र के गणितज्ञों के लिए उपयोग व प्रयोग किए जा सकने की संभावना पर विचार

किया । 1895-1908 म प्रकाशित उनकी कृति फोरमूलयरे डी मथमटिक्स म पीयानो और उसक सहयोगियो न यह बतान का प्रयास किया था कि बीजगणित और गणित को कुछ सामान्य तार्किक सिद्धातो के आधार पर समझाया जा सकता है । जसे वग, वग सदस्यता, वग-मिश्रण, भौतिक अभिप्रेत एव वर्गों स विस्तृत आशय, तीन आदि गणितीय प्रत्यय, (शून्य, अक, और एक अक क आगे का दूसरा अक) और छ प्रारंभिक वाक्य आदि आदि । कार्टेजियन प्रत्यय जिसमे गणित कुछ सामान्य ध रणाओ पर आधारित माना गया है-अब करीब करीब अपनी सिद्धि की ओर जाता हुआ लगन लगता है । इस निगमन को और सुविधाजनक बनाने के लिय पीयानो ने एक तार्किक प्रगतिवाद का आविष्कार किया जो पहल उपयोग म लाई गयी किसी भी प्रणाली स बेहतर था और यही वह प्रतीकवाद था जिसे रसेल और व्हाइटहैड ने अपनी रचनाओ म प्रयुक्त किया ।

पीयानो की रचनाओ म समस्याओ को या की यो साफ रख दिया गया था । व्यापक तार्किक मामले की उन्होन व्याख्या नही की थी और महत्वपूण विभागो को अनदेखा कर दिया था । जी०[1] फ्रेग की रचनाओ म ही सवप्रथम तार्किक गणित की समस्याओ का निदान किया गया । 1884 मे प्रकाशित द फाउण्डशन्स आव अरिथमटिक तथा फडामेन्टल ला आव अरियमैटिक (1893-1903) म फ्रेग ने तक क नियमो का आधार लेकर गणित को सुरक्षित करने का प्रयास किया है । उनका दशन उन्ही समस्याओ से उपजा है जो उनक प्रयत्न के दौरान प्रगटी हैं । उनकी समस्याए तकनीकी है । उसी रूप म जिस रूप म आज का दशन तकनीकी है । उनकी उलझन को समझन के लिए प्रयास मात्र ही दशन के क्षेत्र मे हुए विकास को काफी हद तक समझ जाना है । यह प्रक्रिया करीब करीब

1 बी० रसल द्वारा लिखित द लोजीकल एण्ड अरियमेटिकल डोक्टरिन्स आव फ्रेगे नामक निवध उनकी 1903 म प्रकाशित पुस्तक द प्रिंसिपल्स आव मेथेमेटिक्स म देखा जा सकता है । ई० ई० सी० जोन्स द्वारा लिखित मिस्टर रसेल्स आब्जेक्शन्स टू फ्रेगेज एनालिसिस आव प्रोपोजीशन (माइण्ड 1910) । एच० आर० स्काट फ्रेगज लोजिक (पी० आर० 1940) । उसके साथ ही जे० एस० एल० 1945 मे प्रकाशित ए० चच का रिव्यू भी दख । आर० एस० वल्स कृत फ्रगज ओण्टोलोजी (आर० एम० 1950) पी० डी० वियनपाल फ्रेगेज सिन अण्ड वडेउटुग (माइण्ड 1950) डबलू० मारशल फ्रेगेज थ्योरी आव फकशन्स एण्ड ओबजक्टस (पी० आर० 1953) एव एम० डयूमेट द्वारा दिया गया उसका जवाब (पी० आर० 1955) और इसी के क्रम मे आगे लिखा उनका एक नोट तथा मारशल द्वारा उसका जवाब (पी० आर० 1956) । जारडेन एव जोरजेन्सन द्वारा विस्तार से लिखित फ्रेग के प्रतीकवाद पर निवध ।

उसी प्रकार की है जिस प्रकार मवटगट के दर्शन की स्थिति है क्योंकि उनकी विचार धारा को समझने के लिए उनकी युक्ति को समझना मानो ही जरा कठिन है।

अपने तकनीकी रूप के कारण, फ्रेग का दर्शन शीघ्रता से लोगों का ध्यान आकर्षित न कर सका। उनकी शिकायत थी कि दार्शनिक प्रतीकवाद के चक्कर में उलझ गए थे और गणितज्ञ सैद्धान्तिक विवादों में। बर्ट्रेण्ड रसल ने प्रिंसिपल्स आव मथेमेटिक्स के परिशिष्ट में उनकी विचारधारा के कुछ अंशों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। लेकिन इस प्रकार के प्रोत्साहन के बावजूद भी फ्रेग को वर्तमान शती की दूसरी पचीसी तक बहुत कम पढ़ा गया। जबकि तथ्य यह है कि उनके दर्शन की विषयवस्तु में ही अपेक्षाकृत नये दर्शन की प्राकछवि मौजूद थी।[1]

फ्रेग अपने समय में प्रचलित गणित के दर्शन की आलोचना से ही प्रारंभ करते हैं। वे ऐसी तीन प्रचलित विचारधाराओं के नाम गिनाते हैं, कंकड़ और बिस्कुटों का सिद्धांत मनस्तत्ववाद एवं आकारवाद। मिल का विचार था कि अंक सचल वस्तुओं के समूहीकृत अनुभव का सामान्यीकरण मात्र है। यह कंकड़ और बिस्कुट का सिद्धांत है। मनस्तत्ववाद व्याख्या के प्रति हुए उत्साह की लहर में बहुत से दार्शनिकों ने अंकों की ऐसी व्याख्या की है जिससे वे हमारी मन प्रक्रिया के साथ तादात्म्य रखते हुए से लगें। यही मनस्तत्ववाद है। दूसरे जिन्होंने मिल और मनस्तत्ववाद की खामियों को हटा लेने का प्रयास किया, और ऐसा करते समय जिन्होंने प्लेटो के आइडियाज (प्रत्ययों) को पुनः स्थापित करने का विचार भी नहीं किया उन्होंने वहां यही कहा है कि अंक प्रतीकों से अधिक कुछ नहीं है, और गणित इन प्रतीकों से खेला जाने वाला खेल है, उसी प्रकार जिस प्रकार शतरंज मोहरों का खेल है। यही आकारवाद है। इन दोनों में से कोई भी सिद्धांत फ्रेगे के अनुसार गणित की सारी संभावनाओं को प्रकटाने योग्य नहीं हैं। आकारवाद अनुभवजन्य स्थितियों के लिए कहीं भी प्रयुक्त नहीं हो सकता, न मनस्तत्ववाद अपनी मुक्तता एवं वस्तुपरकता के लिए। मिल के अनुभववाद का प्रयोग भी निश्चित एवं सामान्य धरातल पर नहीं हो सकता। (फ्रेग पूछते हैं कि 0 या —1 कंकड़ों के समूह की ओर किस प्रकार इंगित कर सकता है?)

इसी प्रकार के असंतोषजनक सिद्धांतों की ओर विवश होकर बहुत से दार्शनिक बह गए हैं क्योंकि सभी ने गलती से यह सोचा था कि ऐसी प्रत्येक वस्तु जब

---

1 पी० टी० गीच द्वारा माइण्ड, 1950 में लिखा सबजक्ट एण्ड प्रेडीकेट इस का उल्लेखनीय उदाहरण है जिसे कोई भी देखकर कह सकता है कि यह फ्रेगे की विषयवस्तु का ही एक रूपान्तर मात्र है।

म ही प्रकाशित इसी सम्बन्ध म उनका एक और निबन्ध है-ग्रान सेन्स एण्ड रेफरेंस।

व कायफलन (फक्शन) एव युक्ति (ग्रारग्यूमट) म दिखाये गय बीजगणितीय भेद का सामान्यीकरण कर देते हैं। इस प्रकार की बीजगणितीय ग्रभिव्यक्ति म जैसे २ क्ष^3 + क्ष म कायफलन वही है जो ग्रक्षर क्ष क ऊपर लिखकर व्यक्त किया गया है। इसको सम्यक रूप से यो लिखा जा सकता है २ (   )^3+ (   ), यहाँ युक्ति के लिए क्ष रिक्त कोष्ठको म भरा जा सकता है। काय फलन का एक महत्वपूण पहलू यह है कि वह ग्रपन ग्राकार पर उसी तरह स खडा नही रह सकता है जिस तरह क्ष रह सकता है। तब कायफलन फ्रेगे के ग्रनुसार ग्रसतृप्त है। इसकी पूर्ति क लिए किसी युक्ति का सदम होना ग्रावश्यक है ताकि कोई कथन ग्रभिव्यक्ति योग्य हो सके। ग्रपने निष्कष मे व कहत हैं कि यह प्रश्न कि काय-फलन किस मूलभूत तत्व की ग्रोर इ गित करता है निरथक है, क्योकि कायफलन किसी मूलभूत तत्व की ग्रार इ गित नही करता। तो भी काय-फलन की कोई साथकता तो है उसका कोई भाव ता है, विशेष रूप से बीजगणितीय वाक्य के सदम म तो ग्रवश्य ही।

फ्रेगे के ग्रनुसार प्रतिदिन के कथनो म एक विधेयात्मक ग्रभिव्यक्ति ही काय फलन का काय कर देती है। यह ग्रभिव्यक्ति कि   ने गाल पर विजय प्राप्त करली उसी समय साथक है जब इसम जो रिक्त स्थान है, उसम एक व्यक्तिवाचक सना को   ग्रभिव्यक्ति का एवजी बनाया जाए। उसी प्रकार यह ग्रभिव्यक्ति "(   ) २" उसी समय साथक है, जब कोई युक्ति कोष्ठको क बीच भर दी जाए। इस तरह   न गाल पर विजय प्राप्त की" एक ग्रसतृप्त ग्रभिव्यक्ति है फिर भी यह एक काय-फलन का ग्रोर तो इ गित कर ही देती है, चाहे यह किसी वस्तु का सदम न भी दे। हम शायद उस समय उलभन म पड जायगे जब हम यह खोज करें कि किस प्रकार इस तरह का प्रत्येक ग्रधपूरित वाक्य साथक हो सकता है ग्रौर यह साथकता उस वाक्य से भिन्न है जिसमे उस प्रयुक्त किया जाता है। फ्रेग, इस प्रकार की उलभन स हम बचाने क लिए यह सिद्धात ग्रगीकार करते हैं कि कभी किसी शब्द का ग्रलग से ग्रथ न पूछो। केवल किसी वाक्य मे ही उसका सदम ढूढो।

साथकता के सिद्धान्त म जिसका विकास व ग्रपनी विचारधारा म करते हैं विधेयात्मक ग्रभिव्यक्तिया शन शन न्यून होती जाती हैं। बल केवल ग्रब व्यक्तिवाचक सनाग्रो पर दिया जा रहा है। व्यक्तिवाचक सनाग्रो का व्यापक काय म यहाँ प्रयोग हुग्रा है। जितने भी ग्रागू मेट हैं वे सब व्यक्तिवाची सनाए हैं। जो प्रमुख बात इन दोनों के बीच भेद करने की है वह है उनके भाव ग्रौर सदम को देखना।

यह बात तो फिर भी सत्य है कि दो अभिव्यक्तिया अपने सदभ म मेल खाती हुई भी हो सकती हैं—क्योकि उनकी साथकता एक ही लक्ष्य का प्रदशन है। लेकिन तो भी उनके भाव मे वे भिन्न होती ही हैं इस अभिव्यक्ति के 2+2 एव 4 दृष्टा त हैं। यदि ये एक ही प्रकार के लक्ष्य का सदभ नही देते तो गणित क समीकरण मे उनका एक दूसरे की एवजी म रखा जा सकना असभव हो जाएगा लेकिन फिर भी यदि वे अपन आप म भि न नही है तो 2+2=4 कहने का कोई अथ ही नही होगा।

इसी प्रकार का विचार साँझ का तारा' एव भोर का तारा' नामक अभिव्यक्तियो से भी प्रकट होता है। दानो ही अभिव्यक्तिया एक ही लक्ष्य की ओर इ गित करती हैं लेकिन फिर भी खगोलशास्त्र क क्षेत्र की यह महत्वपूण खोज थी कि भोर का तारा और साझ का तारा दोनो एक ही हैं। इस तथ्य का सम वय कि दोना अभिव्यक्तिया एक ही वस्तु का सदभ दे रही हैं, इस तथ्य से करना कि साझ के तार स सबधित काई कथन भोर के तारे से भी सबधित है सूचनात्मक है। जबकि यह कहना कि साझ का तारा साझ के तारे म मेल खाता है कोई सूचना नही देता। हम यह पहिचानना होगा कि ये दोनो अभिव्यक्तियाँ अपने भाव मे भिन्न हैं चाहे वे एक ही वस्तु का सदभ प्रस्तुत कर रही हैं। तब भाव और सदभ म यह भेद किए विना यह हमारे लिए असभव हो जाएगा कि किसी वस्तु की विभि न अभिव्यक्तियो का उपयोग हम कस कर सकते हैं।

इसी प्रकार हमे किसी वाक्य के सम्पूण अथ म भी भाव और सदभ का यह अन्तर स्वीकारना होगा। प्रत्येक वाक्य किसी विचार को व्यक्त करता है। यह बात उस समय स्पष्ट सामने आती है जब हमे भाषा अनुवाद करते समय किसी वाक्य के भाव को सुरक्षित करने की आवश्यकता महसूस होती है।[1] क्या यही विचार उस वाक्य का भाव अथवा सदभ है? यह मान लना सरल है कि यह तो सदभ है जिसका अथ है कि किसी वाक्य म निहित व्यक्तिवाचा सज्ञा क लिए किसी विचार का वहन करना आवश्यक है। लकिन फ्रेगे का कहना है जब हम किसी वाक्य का रूपान्तर उसम स कोई शब्द या वाक्यांश बदल कर करते हैं और सदभ वही रखते हैं केवल भाव बदल दते है ता उसम निहित विचार भी बदल जायगा।'

भोर का तारा एक एसा ग्रह है जा सूय द्वारा प्रकाशित है' यह उस वाक्य स एक दूसरा ही विचार है जिसम कहा गया है साझ का तारा एक ऐसा ग्रह है जा

---

1 द्रष्टव्य द थाट ए लाजिकल एन्क्वायरी' (1918) माइड 1956 में अनूदित।

सूर्य द्वारा प्रकाशित है'। लेकिन तो भी दोनों वाक्यों का सदर्भ परिवर्तित नहीं हुआ है। इस प्रकार वे यह निष्कर्ष निकालते हैं, विचार किसी वाक्य का सदर्भ नहीं हो सकता, वह तो उसका भाव है।"

तो क्या हम यह निष्कर्ष निकालें कि किसी वाक्य में कोई सदर्भ ही नहीं होता? यदि किसी कलात्मक रचना में वाक्य उसके उपकरण के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो फ्रेगे के मतानुसार उनका सदर्भ अमहत्वपूर्ण हो जाएगा। 'ओडीसियस गहरी निद्रा की अवस्था में इथाका के तट पर फेंक दिया गया' में स्पष्ट ही कोई भाव है, और यहां इस बात का कोई महत्व नहीं है कि ओडीसियस का कोई सदर्भ भी है या नहीं। किन्तु जैसे ही हम प्रस्तुत वाक्य की सचाई और दोषपूर्णता में रुचि लेने लग जाते हैं तो स्थिति बदल जाती है। उसी समय हम सदर्भ की माग करते हैं।

इस तरह फ्रेगे के अनुसार किसी वाक्य की प्रामाणिकता (ट्रूथ वेल्यू) उसके सदर्भ द्वारा निर्मित होती है। क्योंकि इसका सदर्भ या तो सही अथवा गलत होता है। फ्रेगे का कहना है कि ऐसी घोषणा करने वाला प्रत्येक वाक्य जिसका सदर्भ अपने शब्दों से जुड़ा हो, एक व्यक्तिवाची सज्ञा माना जाना चाहिए और उसके सदर्भ को, यदि उसमें कोई सदर्भ हो तो सही अथवा गलत माना जाना चाहिए। इससे यह बात तो साफ ही है कि प्रत्येक सत्य वाक्य में इसी तरह का सदर्भ होता है और दोषपूर्ण वाक्यों की भी ऐसी स्थिति है। पृथक से किसी वाक्य का केवल सदर्भ मात्र ही जान लेना असम्भव है क्योंकि हम पहले से अपने रूप में सत्य क्या है इसका पता नहीं होता। हमारे सामने तो सत्य का सदर्भ करने वाला वाक्य ही होता है। इसी तरह हम केवल मात्र उसका भाव ही मालूम नहीं कर सकते, क्योंकि हम उस सबध में सत्य क्या है, इससे कुछ परिचित तो होते ही हैं।

भाव एव सदर्भ का यह अन्तर फ्रेगे के तर्कशास्त्र और उनकी युक्ति का मूलाधार है इसके अतिरिक्त उनके द्वारा किया गया धारणाओं एव वस्तुओं सबधी भेद है जिस पर फ्रेगे के गणित पर विचार करते हुए हमने पहले ही काफी प्रकाश डाल दिया है, लेकिन इस सबध में कुछ और भी कहा जाना आवश्यक है। जैसा हमने पहले कहा है कि उनका यह वर्गीकरण परम्परागत तर्कशास्त्र के कर्ता और विधेय के भेद से काफी मेल खाता हुआ है। फ्रेगे का कथन है कि धारणा विधेयात्मक होती है। दूसरी ओर किसी वस्तु का नाम व्यक्तिवाचक नाम, व्याकरण के विधेय के रूप में प्रयुक्त किया जाना असभव है।

इस मत में काफी कठिनाइयां है। और फ्रेगे द्वारा उन कठिनाइयों के सबध में किया गया विचार अनुवर्ती चर्चाओं को उभारने में बडी मात्रा में उत्तरदायी है।

कठिनाइया मूलत यो उपस्थित होती हैं कि हमारे द्वारा कहे गए किसी कथन का वक्ता बहुधा किसी धारणा की ओर इशारा करता हुआ लगता है और व्यक्तिवाची सनाए व्याकरण की दृष्टि से विधय का काय करती हैं। इस प्रकार की सारी उक्तिया बड तरतीब स हमे भ्रम म डालती हैं।

मानलो कि हम यह कहते हैं कि 'भोर का तारा वीनस है।' तब निश्चय ही इससे यह लगता है कि यह भोर का तारा एक ग्रह है' कथन के समानान्तर है, जिसम ग्रह निश्चय ही विधेयात्मक है[1]। किन्तु केवल व्याकरणीय दृष्टि से अलग तार्किक विश्लेषण यह बताएगा कि पहल कथन का 'है' तादात्म्य व्यक्त करता है, यह विधेयीकरण वाला 'है' नहीं है। 'भोर का तारा वीनस है' को यदि ठीक स समझा जाए तो वह यह ध्वनित करता है कि 'भोर का तारा और वीनस नामक अभिव्यक्तिया' एक ही वस्तु का सदभ दे रही है। इस तरह ऐसा आभास होने पर भी वीनस का यहा विधयात्मक ढग से प्रयोग नहीं किया गया है।

इसी प्रकार वे यह भी सुझाते हैं कि 'सभी स्तनधारी प्राणियों का रक्त लाल होता है' इसम स्तनधारियो के विषय म विचार की दिशा म कोई सदम प्रस्तुत नहीं होता क्योकि यह कथन केवल यह बतलाता है कि जो कोई भी स्तनधारी हैं वे सभी लाल रक्तीय प्राणी है' अर्थात् कुछ अनाम वस्त 'स्तनधारी' और लाल रक्तीय' प्राणियो की श्रेणी म आती हैं। इस प्रकार इस वाक्य म स्तनधारी विधेयात्मक है किन्तु अपनी आभास क्षमता क बावजूद भी वह कर्ता नहीं हो सकता।

वास्तव म इससे एक अधिक गम्भीर कठिनाई उपस्थित हो जाता है कि धारणाओ सम्बन्धी कथन ऐसे भी होते हैं जिनम धारणाओ का वणन द्वितीय श्रेणी की धारणाओ के रूप म किया गया है। यह सब कहना तो बहुत अच्छा है कि 'सभी स्तनधारी लाल-रक्तीय है' स्तनधारियो क विचार को व्यक्त न करके उस विचार का विस्तार करता है-अर्थात् उन्हीं वस्तुओ का वणन करता है जो वास्तव मे स्तनधारी हैं। इस सम्बन्ध म इस सभावना को भी अदेखा नहीं किया जा सकता कि यहा विचार का लालरक्तीय नहीं माना गया है। लकिन तब इस कथन का क्या होगा, गोल चौकार का विचार शून्य है'? इस सम्बन्ध म यह तक करना असभव है कि हम वास्तव म किसी वस्तु के वग के विषय म कुछ कह रहे हैं जिन्हे गोल चौकोर द्वारा सदर्भित किया गया है। क्योकि हमारी चर्चा का मूल बिन्दु यही है कि

---

1 फ्रेग कर्ता, कोपुला व विधेय म भेद करत हैं। व मानत हैं कि भोर का तारा ग्रह है' म है विधय है, पीयस ग्रह ह का विधेय मानता ह। वह कहता ह, विधेय क्रियापद ही होता ह, सना नहीं। फ्रेगे पीयस के अनुसार चलते तो अधिक सरल रहते।

हम इस प्रकार की वस्तु की समावना म भी विश्वास नही करत। इसके अतिरिक्त फ्रेग ने अपने गणित के सिद्धात म यह कहा है कि अ क धारणाओ को दिए जाते हैं, वस्तुओ को नही। उ होने यह सिद्ध करन का काफी प्रयास भी किया कि अ क फिर भी वस्तुए ही हैं, धारणाए नही। समस्या अब भी वतमान है कि इस कसे दिखाया जाय ? विशेष कर उन कथनो म जिनम हम धारणाओ को अ क प्रदान करत हैं। हम धारणाओ को यह कह कर थोडी देर के लिए हटा भी सकते हैं कि व हमारे कथन के कर्ता हैं।

यहाँ आकर फ्रेगे को समझना अत्य त कठिन है। वह इस बात स इन्कार करत हुए प्रारभ करते हैं कि हमारी इस अभि यक्ति म घोडा सबधी धारणा' स्वय ही किसी धारणा को नाम दना ही हुआ। उनके अनुसार ऐसे कथन मे कि 'घोडा सबधी धारणा एक सुपरिचित विचार है,' कर्ता किसी धारणा का नाम नही है कि तु किसी पदाथ का नाम है और यह पदाथ है धारणा रूप म घोडा इसकी सत्यता फ्रेगे के अनुसार इसलिए प्रकट होती है कि घोडा सम्ब धी धारणा के आगे सदव ही डेफिनेट आर्टिकल द (द हास) लगा हुआ रहता है जबकि मात्र धारणाओ का सदभ ऐसे वाक्याश के जरिए हुआ करता है जिनमे अनिश्चित आर्टिकल ए' लगता है। हम सदव ही ए मैमल (एक स्तनधारी) ए ह्वेल (एक ह्वेल मछली) ए मैन (एक आदमी) कहते हैं। और किसी धारणा का सदभ देने के लिए 'द इवनिंग स्टार' (साँझ का तारा) द कपिटल आव आस्ट्रेलिया (आस्ट्रेलिया की राजधानी) का प्रयोग हम विधेयात्मक रूप म करते हैं। इसी प्रकार द कसेप्ट होस' घोडा सबधी धारणा) किसी न किसी पदाथ का नाम होना चाहिए किसी धारणा का नही।

यह स्पष्टत ही इस विरोधाभासी (पराडाक्सिकल) परिणाम की ओर ल जाता है कि घोडे सम्ब धी धारणा कोई धारणा नही हैं', जबकि बर्लिन का शहर' वास्तव मे शहर तो है ही और विस्यूवियस का ज्वालामुखी एक ज्वालामुखी है। लकिन, एक बार फिर फ्रेगे कहते हैं कि यह समानान्तर दृष्टा त वस्तुत सही नही है, क्योकि यह गलती उस समय प्रकट हो जाती है जब हम घोडे जस शब्दो को अधोरेखित या उद्धरणचिन्हित लिखकर उ ह स्पष्टकर अपनी बात कह देते हैं। यह आवश्यकता हम बर्लिन के लिए शहर लिखते समय महसूस नही करते। किसी धारणा पर बात चीत प्रारम्भ करन का अथ है कि उसका किसी विधेय से प्रतिनिधित्व कराना है। यह उस समय पूण हो जाता है।जब हम द कसप्ट एक्स (क्ष)" जसी पदावली का प्रयोग करके उस धारणा को माषा म अभि यक्त करते हैं।

क्ष की धारणा (द कसेप्ट एक्स) और क्ष म तार्किक भेद (जबकि क्ष एक धारणा का सदभ देता है इस तथ्य म प्रकट होता है कि व वाक्यो मे अलग अलग तरह स काय करते हैं। कोई ऐसा वाक्य जिसम क्ष का प्रयोग करने से वह साथक हो जाता है, और क्ष उस वाक्य मे उसके एक अङ्ग के रूप मे प्रयुक्त हुआ है तब क्ष

को क्ष की धारणा के एवज में प्रयुक्त करना बिल्कुल निरर्थक है। उदाहरण के लिए यह वाक्य लें '4 का कम से कम एक तो वर्गमूल है।' अब यदि इसमें 4 का वर्गमूल के स्थान पर 4 की वर्गमूल धारणा का प्रयोग करें तो इससे प्रकटने वाला वाक्य न तो सही है न गलत है, बल्कि निरर्थक ही है। फ्रेगे के मत में हम यदि प्रति साधारण तौर से किसी व्यक्तिवाची संज्ञा का प्रयोग करें, किसी युक्ति को विधेयात्मक रूप से नाम दें—और वह भी इस तरह से कि वह धारणा के उपयुक्त ठहरे— तो भी उससे प्रकटाने वाला वाक्य निरर्थक ही होगा।

यह तथ्य हमसे इसलिए छिपा रह सकता है कि हमारी अपूर्ण भाषा में एक ही वाक्यांश विभिन्न वस्तुओं के लिए कभी तो विधेय के और कभी धारणा के लिए प्रयुक्त हो सकता है। कोई व्यक्ति, जो समुचित ढंग से सोचना चाहता हो और भारी दार्शनिक भूलों से बचना चाहता हो तो उसे या तो उद्धरण चिन्हों का उपयोग करके या कोई ऐसा चिन्ह सतर्कता से प्रयुक्त करके यह स्पष्ट करना होगा कि वह धारणा के बारे में कह रहा है या धारणा बता रहा है। दूसरे शब्दों में वह धारणा को विधेयात्मक रूप में रख रहा है अथवा धारणा की चर्चा कर रहा है (किसी वस्तु से उसका प्रतिनिधित्व करके) तभी वह स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकेगा। फ्रेगे के द्वारा इस बात पर दिया गया बल वर्तमान दर्शन के प्रवर्तन के लिए किए गए उनके अवदान का सुन्दर उदाहरण है। कहाँ उद्धरण चिन्हों का प्रयोग हो, इस सम्बन्ध में मतभेद माइण्ड में हुए वर्तमान सुवादों का प्रेरक रहा। फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि बहुत कम आधुनिक दार्शनिक बिना गलती किये उद्धरण चिन्हों का प्रयोग कर सकते[1] हैं।

फ्रेगे के अनुयायी उनके द्वारा भाव एवं संप्रत्यय में किए गए भेद से संतुष्ट न हो सके। विशेष कर उनके द्वारा वाक्यों में किए गए उपयोग से न उन्होंने फ्रेगे का धारणा और वस्तु सम्बन्धी भेद ही उसी रूप में स्वीकारा जैसा फ्रेगे ने सुझाया। लेकिन फ्रेगे ने फिर भी समस्या को उठाने का एक ऐसा ढांचा खड़ा कर दिया था जिसके सहारे दार्शनिक समस्याओं पर विचार करना बाद के दार्शनिकों के लिए सुविधाजनक साबित हुआ और यह कहना कि भाषा के कारण ही हम भटक जाते हैं और इसीलिए दोषहीन भाषा का निर्माण करना चाहिए जिसमें प्रयुक्त अभिव्यक्ति सीमित और निश्चित होगी फ्रेगे अपने समय के सभी दार्शनिकों से भिन्न बीसवीं शती में आने वाले वस्तुस्थितिवाद के पूर्ववक्ता कहे जा सकते थे।

---

1 उदाहरण के लिये देखें, पी० टी० गीच द्वारा लिखित आन नेम्स आव इन्प्रशंस (माइण्ड 1950)

अध्याय 7

आकारी तर्कशास्त्र के कुछ समालोचक

इस शती के आरम्भिक कुछ वर्ष ऐसे रहे हैं जिनमें दर्शन के क्षेत्र में नवीन तर्कशास्त्र' के मुहावरे का निरन्तर बार बार प्रयोग हुआ है। बूले और डी मोरगन के ताजे उदाहरणों से कोई यह कल्पना कर सकता है कि यह सब उनके नवान्वेषणों का परिणाम ही था कि इसकी इतनी चर्चा हो रही थी। किन्तु यह गंभीर रूप से दोषपूर्ण व्याख्या होगी। नव तार्किकों की दृष्टि में बूल और मोरगन ने केवल इस सुपरिचित भूल का निवारण किया था–कि तर्कशास्त्र अनुमानों के वैध आकारों का प्रदर्शन और वर्णन करता है। नवीन तर्कशास्त्र तो वास्तव में आकारी वैधता के विचार का ही खण्डन करता है–चाहे यह प्रकार प्रत्ययवादी रूप ले अथवा अर्थक्रियावादी। किन्तु वे सब अपने इस खण्डन के प्रश्न पर एकमत हैं। इस दृष्टि से कोई भी आकारी तर्कशास्त्र चाहे वह परम्परावादी हो अथवा गणितीय असह्य रूप से अमूर्त है और इस अमूर्तता के प्रतिबद्ध होने के कारण छोटी मोटी गलतियों का शिकार हमेशा रहा है। इसलिए कहा गया कि सच्चा तर्कशास्त्र वही है जो विचार-प्रक्रिया की दिशा में अपरिचित आकार का आवर्तन न कराकर, दार्शनिक हो अपनी प्रणाली एवं अपने आधार में आकारी न हो।

इस प्रकार के दार्शनिक तर्कशास्त्र का विचार मैन्सल की प्रालेगोमेना लोजिका (1851)[1] में देखा जा सकता है। अपनी अन्य कृतियों में मैन्सल हेमिल्टन का पूर्ण अनुसरण करते हैं। बस यही आकार हेमिल्टन द्वारा सफेद के संबंध में लिखे गए नोटस में दिए गए विचार और प्रक्रिया के वर्णन को अपनाता हैं। किन्तु वे लौटकर दार्शनिकों की ओर चले जाते हैं और वहां अपने प्रमाव-सूत्र काण्ट एवं कजिन से ग्रहण करते हैं।

---

1 यह उल्लेखनीय बात है कि यह एक ऐसी रचना थी जिसे बूले बहुत पसन्द करते थे। हमने यह तो देखा ही है कि बूले किसी भी ऐसे तर्कशास्त्र से संतुष्ट नहीं थे जिसमें अन्ततः विचार के नियमों का विवरण न हो अर्थात् जो केवल मात्र आकारी ही न हो। इसके विपरीत पीयर्स का मत था कि मैन्सल ने प्रोलेगोमेना टू लोजिक लिखकर तर्कशास्त्र को तह से छुआ है। इससे अधिक इसको हेय मानने का कोई कारण नहीं हैं।

प्रोलेगोमेना का लक्ष्य तर्कशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण करना था। एक ऐसे तर्कशास्त्र का, जो छलपूर्ण उपयोगितावाद के नास्तिक ऐश्वर्य से न तो अभिभूत हो और न बिना लाभ के ही अजर आकारवाद की भूमि में दफना दिए जाने को स्वीकार करता हो। इस मामले को यदि रूपक न दें, तो कहना होगा कि मॅसल मिल के विरुद्ध कह रहे हैं कि अनुभव-विज्ञान से सबंधित जाच पड़ताल के लिए काम में ली जाने वाली प्रणालियों का तर्कशास्त्र से कोई सरोकार नहीं है और न ही नव आकारवादियों के विरुद्ध यह कहना ही कोई अर्थ रखता है कि आकारी तर्कशास्त्र, अपने आप में क्षुद्र एवं खोखला है।

मॅन्सल कृत प्रोलेगोमेना अपना रूप, ज्ञान मात्र धारणा निर्णय एवं युक्ति आदि की प्रकृति पर विचार करते हुए ग्रहण करता है और तर्कशास्त्र मनोविज्ञान एवं ज्ञान-मीमांसा का मिला जुला रूप प्रस्तुत करता है। इन सबका वर्णन करने का उनका तरीका ब्रितानी परम्परा के अनुकूल ही है। लेकिन इस परम्परा का सुधार उन्होंने अपने महाद्वीपीय शक्ति के ज्ञान के सहारे किया है। वे इस क्षेत्र में ब्रेडले और बोसांके के पूर्ववर्ती के रूप में आते हैं और कहते हैं कि निर्णय, जो मात्र एक इन्द्रिय ज्ञान हो नहीं है विचार की इकाई भी है। धारणाओं के द्वारा किसी वस्तु को जानना और उस पर निर्णय लेना ही विचार है। दूसरे शब्दों में सोचने का अर्थ किसी वस्तु का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है किन्तु यह निर्णय करना है कि, अमुक वस्तु किस धारणा के अन्तर्गत आती है।

यद्यपि मॅसल को 19 वीं शताब्दी के इंगलैण्ड में प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र प्रवर्तित करने के आन्दोलन का श्रेय मिलना चाहिए तो भी तथ्य यह है कि उनकी रचनाओं में विद्यमान, हेमिल्टन के प्रभाव के कारण ब्रेडले और बोसांके उनका सदभ देना भी पसन्द नहीं करते।[1] वे अपने प्रभाव-ग्रहण के लिए सीधे जर्मनी की ओर जाते हैं और वे केवल काण्ट एवं हीगल को ही नहीं, अपितु हर्बर्ट, लाज सिगवर्ट एवं यूबरवेग[2] को भी पसन्द

---

1 ग्रीन अपने निबंध आन फोरमल लॉजीशियन्स में उन पर हेमिल्टनवादी होने का आरोप लगाते हैं।

2 एफ यूबरवेग (1862-66) द्वारा लिखी अपनी पुस्तक ग्रुन्ड्रिस आव द हिस्ट्री आव फिलोसोफी के कारण पहले ही काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे किन्तु उनकी 1857 में लिखी पुस्तक सिस्टम ऑव लोजिक एण्ड हिस्ट्री ऑव लोजीकल डोक्ट्रिन्स जर्मनी और इंग्लैण्ड में बड़े पैमाने पर पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तक के

करते हैं। वास्तव म बोसाक तो इ ग्लण्ड म जमन प्रभाव लाने मे इतन मौलिक नही थे जितने ब्रेडले[1] अपनी रूढिहीनता के कारण थे।

उनके अनुसार, तकशास्त्र का प्रारम निर्णय से होता है। क्योकि वे इस ब्रितानी रूढि से हटकर उक्त बात कह रहे थे कि व स्तविक तकशास्त्र का प्रारम्भिक बिन्दु तो प्रत्यय है। उ ह अपनी बात की द प्रिंसिपल्स ग्राव लोजिक (1883) मे विस्तारपूवक चर्चा करनी पडी। वहा उ होन यह भी बताया था कि किस प्रकार प्रत्यय और निर्णय एक दूसरे से सबधित हैं। निर्णय की परिभाषा वे एक ऐसी त्रिया स दते हैं जो सत्य क उस किया से भिन्न एक आदश रूप का सदभ प्रस्तुत करती है।

इस तरह तकशास्त्र का आरभिक बिन्दु कोई ऐसा प्रत्यय न होकर जा मर मस्तिष्क मे उपजता हो– मानसिक धातु स निर्मित कि तु कोई एसा प्रत्यय है जिसका कोई अथ निकलता हो और जो सत्य की ओर इशारा करता हो। इसी बिन्दु पर प्रस्तुत की गई उलझनें ही ब्रितानी तकशास्त्र की कमजोरी रही हैं। इसी आधार पर मनोविज्ञान एव तकशास्त्र का घोलमेल हो गया। ब्रेडले यह अनुभव करने लगे थे

रूप मे प्रसिद्ध रही। सी० सिगवट कृत लोजिक (1873) जिसका 1895 मे बासाके ने अनुवाद किया, अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कृति है। यहा तकशास्त्र की पुन रचना रीति विधान (मेथडोलाजी) क आधार पर की गई है। उसमे एक ऐसे प्रत्ययवादी विचार की स्थापना की है जिसके सहारे जाच पडताल समव हो सके। एसे दाशनिक तकशास्त्र के रूप म यह कृति एक ऐसे आकार की स्थापना करती है जिसे ब्रेडले और बोसाक अपनाते हैं और विस्तृत विवरण की सुविधा के लिए वे उनके कृतज्ञ है। लाज के विषय मे जो इनमे सर्वाधिक प्रभावशाली था देखें आर० एडेम्सन लौजेज लोजिक (मान्ड 1885) ए शाट हिस्ट्री ग्राव लोजिक 1912 के रूप म पुन मुद्रित। लाज न 1843 म भी लोजिक नामक पुस्तक लिख दी थी किन्तु सिस्टम (1874) का पहला भाग तकशास्त्र क क्षेत्र म एक महत्वपूर्ण योग दान था।

1 ब्रेडल क तत्वदशन और तकशास्त्र से उसके सबध पर द्रष्टव्य इसी पुस्तक का तृतीय अध्याय। आर० केग कृत द ग्रोथ ग्राव एफ० एच० ब्रेडलेज लोजिक 1931 जी० एफ० स्टाउट मिस्टर ब्रेडलेज थ्योरी ग्राव जजमण्ट (पी० एस० स्टडीज मे पुनमु द्रित। जी० राइले की भूमिका एव ग्रार ए वोलहीम का निबध एफ० ए० ब्रेडले द रिवोलूशन इन फिलोसोफी (1956) नामक पुस्तक म। राइल ब्रडले और फ्रेगे के बीच रहे साम्य को बडी स्पष्टता मे बताते हैं।

कि उनके द्वारा की गई निर्णय सबधी चर्चा उन्हे लोक परम्परा के काफी करीब ले आती है क्योकि उन्होने प्रत्यय को अपने आप मे पूर्ण और स्वायत्त माना है किन्तु यहा भी तकशास्त्र से अलग हो जाने का अवसर नही है। उनका अधिक परिपक्व दृष्टिकोण जो उनकी पुस्तक ऐसेज आन ट्रूथ एण्ड रीएलिटी मे प्रकट हुआ है, यह है कि प्रत्यय कभी प्रवाहित नही होते तो भी वे अपने आपमे कभी पूर्ण नही हैं लेकिन किसी न किसी तरह वे उस सत्य से सम्पृक्त से लगते हैं जिनके वे विशेषण हैं और निर्णय म मूल तत्व के रूप मे प्रकट होते हुए भी लगते हैं। प्रत्यय बिना अथ के कोई अस्तित्व ही नही रखता, जिसकी कल्पना इस सबध म हम कर सकते हैं कम से कम वह एक ऐसा निर्णय है जिसम कोई प्रत्यय पहले म ही किसी न किसी सत्य स स दर्मित होता है।

ब्रेडले तब इस परम्परागत दृष्टिकोण का खण्डन करते हैं कि निर्णय एक प्रत्यय विधेय) से दूसरे प्रत्यय (कर्ता) की ओर जाने का नाम है। सवप्रथम तो किसी निर्णय म आइडियल कटेंट' (प्रत्ययित धातु) केवल एक ही है। यह वह एक ही धातु है जिसे सत्य पर विचार करते समय हम एक ही मानकर चलते हैं। परम्परागत दृष्टिकोण से जब हम यह कहते हैं कि भेडिया मेमने को खा गया' तो भेडिय और ममना इन दो प्रत्यया को हम वाक्याथ रूपी एक निर्णय म जोडत है। ब्रेडल पूछते हैं कि हम भेडिया प्रत्यय का अलग क्यो मानें ? एक कप्लक्स क्यो नही ? केवल एक प्रत्यक कही होता नही कम्प्लेक्स प्रत्यय' भी एक प्रत्यय ही है। कोई भी धातु जिस मन पूणत ग्रहण करता हो चाहे वह कितनी ही विशाल या लघु हो, कितनी ही सरल या जटिल हो एक ही प्रत्यय है और इसके बहुत स सबध-सूचक उसी एक्य स जुडे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त, कि प्रत्यक निर्णय दो प्रत्ययो को जोडता है कर्ता और विधेय को) प्रस्तुत उदाहरण म प्रयुक्त नही हो सकता —

ब अ से नि सृत है अ और ब समान है एक साप है। तथा यहाँ कुछ नहीं है" इन सबम यह निर्णय लेना कि अमुक कर्ता है स्वतर स खाली नहीं है। यह उदाहरण उनके अनुसार बहुत स्पष्ट तौर म यह बताता है कि निर्णय एक ही धातु से निर्मित है, किन्हीं जुडे हुए पदो अथवा प्रत्यया का आंकलन नही। सक्षेप मे ब्रेडल उतने ही तीव्र आलोचक हैं जितने 'प्रतीकात्मक तकशास्त्री थ।

भेद यही है कि ब्रेडले का पुराने तकाकारो को रूप देने का कोई भी उद्देश्य नही है। जवन्स का समीकरण इसका उदाहरण है। ब्रेडल यह दर्शाना चाहते हैं कि यदि जवन्स के विश्लेषण को गम्भीरता पूवक लें तो हम इस तकवाक्य की कि सभी नीग्रो मनुष्य हैं समीकृत व्याख्या करने को विवश हो जाते हैं गोया यह इससे अधिक कुछ भी नहीं करता कि नीग्रो=मनुष्य नीग्रो मनुष्य। तब हम निर्णय के जरिए सार

सारतत्वो का एकमेक कर लते हैं और इसका एक खोखला ढाचा बना दत हैं-निर्णय छीजता जाता है इस तरह और तब धीरे धीर वह गायब हो जाता है।

ब्रेडल यह मानते है कि परम्परागत और समीकृत दानो ही प्रकार के निर्णय सबधी विश्लेषण म सत्य का अ श मौजूद है। परम्परागत दृष्टि इस बात पर बल देती है कि प्रत्यक निर्णय अपने साथ एक विविधता लिए हुए है। लकिन ब्रेडल यह बताना चाहते हैं कि निर्णय की पहचान उसक पदो क पारस्परिक सबधो स नही होती यह तो इस तथ्य म निहित होती है कि निर्णय प्रत्ययात्मक धातु को सत्य की एक ही प्रणाली का रूप बता जाता है, चाहे इसम प्रयुक्त विधेय मार्गान्तरित हो। सब नीग्रो मनुष्य हैं इस बात स इस सत्य का आभास होता है कि मनुष्य नामक विधेय म नीग्रो एक इकाई ह। इस प्रकार का निर्णय प्रत्ययित धातु को सत्य की एक ही प्रणाली की ओर ल जाता है चाहे इसम प्रयुक्त विधेय मार्गा तरित हो। कोई अन्य प्रकार का निर्णय एकता म अनेकता का समन्वय नही कर सकता। इसस यह निष्कष निकला कि तकवाक्यो म आकारी भेद कृत्रिम है, अमहत्वपूर्ण है। अन्तत तकवाक्य एक ही आकार के होते हैं वे सब सत्य का एक प्रत्ययात्मक विचार (Ideal Content) की ओर सकेत करते हैं।

इस दष्टिकोण पर स्पष्ट ही एक आपत्ति है-जिसे इण्ट्रोडक्शन टू फिलोसोफी (1813) म ह्वट ने पहले स ही बता दिया था। उनके अनुसार हमारे बहुत स निर्णय सत्यो क बारे मे नही होते, किन्तु समावनाओ क बारे म होते है और कभी तो असमावनाओ क लिए भी। यह निर्णय लें कि चतुष्कोणीय वृत्त एक असमव स्थिति है। ह्वट के अनुसार स्पष्ट ही किसी वास्तविक चतुष्कोणीय वृत्त के लिए यह तकवाक्य सही नही है। ब्रेडले क मत से यह निर्णय गलत ढग स अभिव्यक्त किया गया है। हम तो उस क्रियात्मक सूत्र द्वारा दिग्भ्रमित किया जा रहा है और उसी म से हमे चुनन क लिए बहुत कुछ सौंप दिया गया है। उस वाक्याश का पुनगठन करके दखें तो हमे मालूम होगा कि वरिमा का स्वभाव ही वृत्त और चौकोर दोनो क समन्वय को स्वीकार नही करता-और इसलिए असत्य स्थितियो का सदम ही चर्चा से गायब हो जाना चाहिए। तो भी हमने इस सबध म मौलिक रूप स किसी कथन की स्वीकृति के लिए बहुत कुछ कह दिया। फ्रेग की भाति ब्रेडले इस बात पर बल दते हैं कि वाक्य का व्याकरणसम्मत आकार बिल्कुल भ्रामक भी हो सकता है और उस तार्किक आकार के लिए निदशन मानने म खतरा ही है।

कुछ अन्य मत जि ह ह्वट प्रस्तुत करते है ब्रेडल की राय म अधिक गभीर हैं। ब्रेडल को किसी न किसी भाति ह्वट की युक्ति का खण्डन करना है-निर्णयो के सबध म कोई अपरिवतनशील धारणा बना लना यही जानकर कि वे सत्य का दिखावा तो प्रस्तुत कर ही रह है-एक भ्रम होगा। क्योकि निर्णय चाहे जो भी हो अपने स्वभाव के कारण प्राकल्पिक होता है।

ह्वट का कहना है कि प्रत्यय अपनी प्रकृति से सामान्य होते हैं और निर्णय करना इन प्रत्ययों को संबंधित करना है। इसलिए दो सामान्य और समष्टिगत स्थितियों को मिला देना है। यह कहना कि सभी ह्वेल मछलियां स्तनधारी है–यह निर्णय लेना है कि प्रत्येक ह्वेल समुदाय स्तनधारी समुदायों में से ही है। यह निर्णय ऐसा कोई सदभ प्रस्तुत नहीं करता जिसे हम कह कि हम विशिष्ट स्तनधारियों की बात कर रहे हैं अथवा विशिष्ट ह्वेल मछलियों की। जबकि तथ्य वास्तव में विशिष्ट ही होते हैं।

इस तरह ह्वट यह निष्कर्ष लेते हैं कि निर्णय और सत्य के बीच एक खाई है। और निर्णय जो किसी वस्तु से संबंधित सत्य को स्वीकारता है, इस बात की केवल एक प्राकल्पिक स्वीकृति हो सकता है कि यदि किसी वस्तु को ह्वेल समुदाय का माना गया है तो वह निश्चय ही स्तनधारी समुदाय की भी मानी जानी चाहिए। इसके विपरीत एक तथ्य है जो केवल प्राकल्पात्मक नहीं होता, दो विशिष्ट अस्तित्वमान वस्तुओं के बीच का वास्तविक संबंध होता है।

ह्वट यह मानकर चलते हैं कि निर्णय प्रत्ययों को जोड़ देता है। यह मान भी लें तो ब्रैडले के अनुसार यह स्थिति अनुत्तरित ही रह जाएगी। निःसंदेह अनुभववादी उत्तर के लिए प्रयास करेंगे। उस समय व यही कहेंगे मिल की भांति, कि एक समष्टिगत निर्णय सत्य के प्रति परोक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। किसी एकात्मक निर्णय के लिए यह बात सही नहीं है, उदाहरण के लिए यदि मैं कहूं, मुझे दात का दद हो रहा है तो यह विशिष्ट तथ्य का एक सीधा रिकार्ड है चाहे सब ह्वेल स्तनधारी है से यही सिद्ध होता है कि उसमें समष्टिगत सत्यों का ही संबंध है। ब्रैडले, सामान्य और विशिष्ट तर्कवाक्यों के इस भेद का खण्डन करते हैं। मैं और 'दात का दद होना ही सामान्य प्रत्ययों का सदभ प्रस्तुत करते हैं। और इस एकात्मक निर्णय कि मुझे दान का दद हो रहा है का यही अथ है कि मुझ जैसे समझी जानेवाली सभी वस्तुओं को दात का दद होना चाहिए। यह सामान्यता हटाई भी नहीं जा सकती यदि 'सम मैं की एवज में जोन्स जसी व्यक्तिवाची सज्ञा का भी प्रयोग कर दिया जाए। व मिल की इस धारणा का भी खण्डन करते हैं कि व्यक्तिवाची सज्ञाओं का कोई भी कोनोटेशन (आशय) नहीं होता। जोन्स को दात का दद है जसे वाक्य में जोन्स का कोई न कोई अथ होना ही चाहिए जो इस प्रस्तुत घटना के बाहर की ओर इंगित करता हो। यदि हम लाज के इस निष्कर्ष को हटाना है कि ऐसे वाक्य केवल तादात्म्य ही प्रस्तुत करते हैं जसे दात के दद में पीडित जोन्स ही दात के दद से पीडित जोन्स है जोन्स किसी एक निरन्तर गुणों से युक्त अवस्था का परिचायक है जिसे एक निश्चित अवधि तक ही पहचाना जा सकता है और ये निरन्तर रूप गुण ही जोन्स को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार प्लेटो कृत सोफिस्ट का अनुसरण

करें तो ब्रेडले कहते है, कि 'यहा और अब' नामक श द निरथक हैं जब तक कि उनका सामान्य महत्व न हो।

इस प्रकार कोई समष्टिगत तत्त्वावय, असत्य के दोप स युक्त है, तो एकात्मक तत्त्ववाक्य भी इसी दोप से युक्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जसा कि अनुभववादी मानत हैं ब्रेडल क मत म कभी भी किसी स्थिति का तथ्य रिकाड नही होता। उदाहरण के लिय हम कह कि यहा भेडिया है, तो यह निणय हम जो देख रह हैं उसकी अपेक्षा एक दुबल अमूर्तीकरण (पुअर एब्स्ट्रक्शन) है। जब उस अवस्था का वणन करते हैं, जिसे हम देखते हैं कि एक भेडिया हैं, बजाय इसक कि कोई दातो वाला जानवर है तो निश्चय ही हमने पूण तत्व क एक अ श को सुविधा के लिए चुन लिया है। इसलिए इसी को पूण सत्य मान लना सत्य को भूठ करने के अतिरिक्त कुछ नही है। इन तत्त्ववाक्यो की सुरक्षा हम फिर भी यो कर सकते हैं यदि हम इन्हे एक परिस्थिति म अमुक अमुक अ ग बतान वाला सामान्य सयोग मानें और तब उसे भेडिय म जोडें। तब हम फिर अमूर्तीकरण नही कर रहे होंगे। हम भेडिये को एक ठोस रूप म प्रस्तुत करते हैं जसा हम उस दखते हैं। हम तब हमारे निणयो की सचाई का बचाव नही कर सकते उस रूप म जिसम अनुभववादी करना चाहते हैं और कहत हैं कि समष्टिगत निणय परोक्षित सत्य की सिद्धि करते हैं जबकि एकात्मक निणय, तथ्य को रिकाड करते हैं। यदि हबट की अपत्तियो का जवाब दें तो अधिक प्रगतिशील कदम उठाने की आवश्यकता शेष रह जाती है। ब्रेडल कहते है कि हमारे निणयो की सचाई को कायम रखा जा सकता है यदि हम परम्परागत निणयो के सिद्धात का दो तरह से खण्डन करें। एक इसका कि निणय प्रत्यया को सयोजित करते हैं और इसका कि आपातत दिखने वाला कर्ता ही उसका वास्तविक कर्ता होता है। यदि सब क्ष य हैं वास्तव म केवल क्ष के लिए ही कहा गया होता तो यह केवल इतना ही बताता है कि यदि कोइ वस्तु क्ष है तो वह य भी है। और तब भी हबट का पक्ष अनुत्तरित रह जाता है। लेकिन यदि इसमे यह कहा जा रहा है कि जो सत्य क्ष के लिए विधेयित है, वही य के लिए भी है-यदि उसका वास्तवक कर्ता अपने आप म एक ऐसा सत्य है, जिसे अधिक पूणता से प्रकट नही किया गया है लेकिन हमारे कथन का उद्देश्य यही है। तो हमारे निणय की अपरिवतनशील प्रवृति स हम बच जाएग।

ब्रेडले को अब भी एक बिल्कुल ही भिन्न क्षेत्र की आपत्ति का सामना करना था कि यद्यपि सब क्ष य है जसे निणय प्राकल्पिक तौर पर क्ष का य पना ही सिद्ध करते हैं तो भी व निश्चित शब्दो मे यह अस्वीकार भी करते हैं कि क्ष य भिन्न हैं। इससे यह अथ भी निकल सकता है कि यह अपने आकार के कारण क्ष के सबध म एक कथन के रूप म एक नियत और अपरिवतनीय अथ भी रख सकता है और हो

सकता है, उस अपन म निहित सत्य बताने की अपेक्षा न भी पडे। उदाहरणाथ वन न अपनी रचना सिम्बोलिक लोजिक म यह सुझाव दिया था कि उस स्थिति म जिसम इस तरह क तकवाक्य (समष्टिगत स्वीकारात्मक तकवाक्य) कुछ सिद्ध करत हैं, इस अवस्था का मात्र दशायित (कन्डीशनल) ही माना जाएगा—लकिन जहा वह कुछ अस्वीकार करता है, ता उसे परिपूण माना जायगा। ब्रैडल इसक विपरीत यह बतात हैं कि नकारात्मक निणय कभी भी परिपूण नही होते, क्योकि य सदव ही अनकही दशाओ पर आधारित रहत हैं। यह कहना कि क्ष य नही है, उनक अनुसार यह मानना है, कि क्ष म कोई ऐसी कमी है जिसके कारण वह 'य न हो सका है यद्यपि हम यह मालुम अब भी नही है कि वह कौनसा अभाव है। इस तरह जब हम 'क्ष य नही है' कहत हैं तो हम यह जानत हैं कि हम क्या नकार रहे हैं—क्योकि इसके विपरीत यह स्थिति क्ष, य है एक निश्चित स्वीकार है। लकिन यहा भी स्पष्टत हम यह मालूम नही कि क्ष के स्वीकार के साथ उसके किन गुणो को स्वीकार कर रहे हैं। ब्रैडले क लिए स्वीकारात्मकता, प्राथमिक है और नकार उसका उलटा हुआ रूप। प्रत्ययवादी और बूलेवादी तकशास्त्र म यह एक महत्वपूण भेद है।

ब्रैडले निणय से अनुमान की व्याख्या की ओर आत हैं। यहा एक बार फिर व परम्परागत तकशास्त्र के बडे आलोचक के रूप म प्रकट होते हैं। व अविवादास्पद 'अनुमानो की एक सूची से प्रारभ करते हैं, और मानते हैं कि अनुमान सबधी सारे सिद्धातो को कम से कम इनका तो सहारा लना ही पडता है। इनम बहुत स तो सबधसूचक अनुमान है तथा कुछ अन्य प्रकार के अनुमान भी है जिन्ह परम्परागत तकशास्त्र ने उपक्षित कर दिया था। इन उदाहरणो क आधार पर इस शास्त्रीय सिद्धात को कि प्रत्येक अनुमान एक समष्टिगत प्रमय पर आधारित होता है, वे अन्धविश्वास मानकर त्याज्य घोषित कर देते हैं। एक पौराणिक तत्ववादी भूल से उत्पन्न हुए और दष्टान्तो के अनुभवहीन चुनाव क कारण और तकशास्त्रियो की मूखतापूण रूढ़िवादिता से पोषित और नवोत्साही दाशनिको की अपरिपक्वता के कारण सुरक्षित महसूस करत हुए यह भ्रम अपेक्षा स अधिक समय तक टिका रह गया है। बस एक बार इस आवरण का भेद मालुम हो जाय, तो तकपदी की अन्य तकप्रणालियो के ऊपर रही वरिष्ठता अधिक टिक नही सकती। तकपदी अनुमान का एक प्रकार है—केवल एक प्रकार का अनुमान मात्र ही।

तब अनुमान क्या है? ब्रैडल क अनुसार इस का अस्तित्व सबधसूचको की खोज पर अवलम्बित है—यह बहुत स बिन्दुओ म स एक ऐसा बिन्दु था जिस पर ब्रैडले और जम्स एकमत थ।[1] हम अ से ब का सबध जोडत हैं और अ स स का

1 पहले पहल जब ब्रैडल का ग्रन्थ द प्रिंसिपल्स ऑव लोजिक प्रकाशित हुआ तो जम्स ने उस ऐतिहासिक महत्व का माना और कहा कि यह एक ऐसा ग्रन्थ है

तब हम एक प्रत्यय समूह (श्राइडियल ग्रूप) बनाते हैं जो अ-ब स तीनों को किसी एक सिद्धांत म जोड़ता है। उदाहरण के लिए हम कहते हैं-अ ब-स तब हम अ-ब-स का एक पूणक बनाते हैं जा परिमाणात्मक तादात्म्य स निर्मित हुआ है। ऐसा करने स अ और स क सबध का भी अनुमान हो जाता है। इस प्रक्रिया को निर्मित करने के कोई नियम नही हैं और न कोई एस प्रतिमान ही हैं जिनकी अनुकृति की जा सक। अपन प्रमयो म से मानव ही अपनी बुद्धि क अनुमार इस सगठन के सूत्रों को ढूढता है। जाच की प्रक्रिया क लिए फिर भी पनी दष्टि की आवश्यकता ता है ही क्योंकि एसे कोई नियम नही हैं जिनस पता चल सक कि अमुक वात दखी जाय और अमुक नहीं। अधिक स अधिक एक तकशास्त्र बहुत ही सामान्य दिखने वाल सिद्धांतो की ओर हमारा ध्यान खीच सकता है। उदाहरण के लिए इस तथ्य की ओर कि यदि अ व स सामयिक सीमाओ क कारण सबधित है और ब स से, तो अ और स के बीच भी यह सामयिक सीमा रहेगा ही। लकिन यह बतान के लिए कि यह सीमा क्या है हम अपनी समन्वयकारिणी बुद्धि का उपयोग करना पडेगा।

अनुमान के प्रात्ययिक समन्वय' के रूप म यह प्रारंभिक विवरण जो अपने चारों ओर कम से कम दो पदो से बना एक अनुमान का केन्द्र सगठित करता चलता है, द प्रिंसिपल्स आव लोजिक नामक ग्रन्थ के दूसरे सस्करण म बडी पनी दष्टि स पुन परीक्षित किया गया है। आरंभ म ब्रेडले न इसी ग्रन्थ म लिखा है कि कुछ एसे अनुमान और भी शेष रह गए हैं जिनम केन्द्रोन्मुखता नहीं होने से और न उनको क मिलाने वाली कडी न होने से इस ग्रथ म नहीं लिखा जा सका है। केवल तात्कालिक अनुमान ही इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य रहा है और इसी तरह जोड या बाकी के विचारों की व्याख्या भी। लकिन यह विवादास्पद है कि इन्हे अनुमान माना जाए अथवा नहीं। इस तरह ब्रेडले के समक्ष फिर यह प्रश्न खडा हो जाता है कि आखिर क्या अनुमान किसी चीज म निहित है?

वे कहत हैं-अनुमान करना ही तक करना है। और हम तक उसी समय करत हैं जब हम यह दखते हैं कि सत्य वही होना चाहिए जिस हमारे निर्णय सिद्ध करते हैं-बजाए इसक कि हम यह देखना चाहते हैं कि वस्तुओ की पद्धति किस तरह की है? तक करना, उनके अनुसार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसम दत्त सामग्री (डेटम) पर विचार क्रिया (एक दी हुई चीज पर वयारिक प्रयोग) की जाती है। तक करने वाला इस प्रयोग क्रिया द्वारा एक परिणाम पर पहुँचता है और यह कह सकने की स्थिति म आ जाता है कि

जो समूची परम्परा की नीव का खण्डन करता है-द्रष्टव्य द प्रिंसिपल्स ऑव साइकोलोजी नामक उन्ही के ग्रन्थ का अंतिम अध्याय।

यहाँ उस दत्त सामग्री का परिणाम है। उदाहरण के लिए वह एक सत्य से शुरू कर सकता है जो 'अ का ब के दाहिनी ओर होना' और 'ब का स के दाहिनी ओर होना' के द्वैत संबंधों को बताता है। इस तर्काधार पर खड़े होकर वे एक समन्वय की ओर पहुंचते हैं-जिसे वे एक वैचारिक पूरक (आइडियल होल) की संज्ञा देते हैं। इसमें से संबंध तत्व के रूप में प्रकट हुए हैं और तब वह इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में निहित सत्य को स-व-अ के संबंध का नाम देते हैं। युक्ति करने का साराश सत्य के विधेयों में निहित परस्पर व्यवस्थित संबंधों की खोज करना है, दो पदों को तीसरे पद से मिला देना तो कतई नहीं।

अनुमान को एक आदर्श परीक्षण बता कर वे इसमें यह बताना चाहते थे कि अनुमान पूर्णत हमारे द्वारा ही निर्मित है। उन्होंने यह भी बताया कि हमारे निष्कर्ष हमारी किसी ऐसी क्रिया के परिणाम हैं, जिसे हमने जानबूझ कर प्रयुक्त की है। ब्रेडले के मत में हमने यहां पर आवश्यकता को अनदेखा छोड़ दिया है जो अनुमान के साथ भली प्रकार से जुड़ी है। इस आवश्यकता को औचित्य देने के लिए हमें यह बल देने की आवश्यकता पड़ती है कि ऐसे आदर्श परीक्षण में प्रस्तुत दत्त सामग्री (डेटम) को इस प्रकार छोड़ देना चाहिए कि उसके स्वत विकास की गुजाइश रह सके। अनुमान की ओर बढ़ने वाला प्रत्येक ऐसा कदम जिस पर खास तौर पर हमारा रंग हो और जो मात्र हमारी ही सुविधा की अभिव्यंजना करता हो, वह सब तर्क से विराग ही होगा, और इस तरह ब्रेडले का अनुमान की परिभाषा एक बार फिर से करनी पड़ी, विशेषतया अपने प्रथम टर्मिनल ऐसे नामक निबंध में। वहां उन्होंने उसे किसी वस्तुसंबंधी विचारविमर्श में प्रकट अपने आप हुआ वैचारिक विकास' माना है। महत्वपूर्ण बात यह देखना है कि कोई वस्तु क्या सिद्ध करती है, स्वयं हम उसमें से अपनी तरफ से कुछ अनुमान लगाए यह नहीं चलेगा। ब्रेडले के अनुसार यह स्वविकसन कभी भी पूर्ण नहीं होता। यहीं आकर ब्रेडल का तर्कशास्त्र हमे 'नकारात्मक तत्वदर्शन' की ओर ले जाता है और दिखावट एवं सचाई के बीच उलझा लेता है। कुछ सीमा तक हम अनिवार्य रूप में अमूर्तीकरण और गलत अनुमान भी लगा लेना पड़ता है। किन्तु यह तत्ववादी सीमा, तर्कशास्त्री को प्रभावित नहीं करे यह वाञ्छनीय है। एक विशिष्ट वैज्ञानिक की भांति उसे अपनी विषय वस्तु का वह मूल्यांकन करवाने का अधिकार तो है ही, जितना उसका मूल्य है, बिना यह प्रश्न उठाए कि अन्त में वह हमें कहां सतुष्ट करती है।

यह अत्यन्त स्पष्ट हो गया है कि ब्रेडले का तर्कशास्त्र अन्य सभी प्रकार के परम्परागत आकारी, एवं गणितीय तर्कशास्त्रों से वास्तव में काफी भिन्न है। एक ऐसे तर्कशास्त्र की संभावना के विरुद्ध जिसमें सिद्धीकृत स्थितियां (इम्प्लीकेशन्स) को सामान्य दृढ आकारों की तुष्टि करता हुआ माना गया हो। प्रिंसिपल्स

नामक पुस्तक मे प्रतिपादित ब्रेडल का तकशास्त्र निरतर एक प्रतिवाद क रूप म माना जायगा। लेकिन इसक साथ ही मिल के मनोवज्ञानिक तकशास्त्र का खण्डन भी कम कडे शब्दो म नही किया गया है। ब्रेडल के मत मे परम्परागत तकशास्त्र की कम स कम यह तो विशपता थी ही कि उसम समष्टियो की सत्यता को स्वीकृति प्रदान की गई है जिसके विपरीत मिल का यह सिद्धान्त कि तक केवल मात्र प्रत्ययो क सहचरण से आगे बढता है उन्ह कम रुचा था। साहचयवाद अपना उपयुक्तता के लिए जिन तथ्यो पर विश्वास करता है, उन्ह रेडिण्टीग्रशन के नियम म समाहित किया जा सकता है। यह नाम उन्होने हेमिल्टन से ग्रहण किया था जिसमे यह कहा गया था कि हम एसी कोई भी उपलब्धि नही होती जिस पर ठोस निर्माण किया जा सके। उस नियम के सबध म व सक्षेप म लिखते हैं कि यह एक एमा नियम है जिसम कोई तत्व दूसरे कुछ ऐसे तत्वो को जन्म देता है जिनका भली प्रकार अध्ययन किया गया है और जिसके साथ इसका मानसिक तादात्म्य रखा गया है।' इस तरह ब्रेडल क लिए साहचय केवल पुन स्थापन मे निहित है एक ऐस मनस्तत्व के द्वारा जो एक बहुत प्रणाली का स्वय एक मात्र है। (टावर ब्रिज का चित्र देख कर हम लदन का स्मरण होता है क्योकि टावर ब्रिज लदन का एक हिस्सा है)।

वे लिखत हैं मनस्तत्वो के बीच म साहचय की बात करना बकवास प्रस्तुत करना है। मन के ये विशेष तत्व पहले पहल तो कोई स्थय लिए नही हैं–उनका होना क्षणभगुर है–कोई ऐसा नारकीय स्थल भी नही है जहाँ उन्ह उस समय तक बुरी तरह कष्ट म रहना पडे जब तक कि सहचरण उनकी नरकमुक्ति का सन्देश लकर न आ जाय। एक पावन आख्यान की य हृदयस्पर्शी घटनाए एक असामान्य मनोविज्ञान म चाहे विचारयोग्य मानी जाए अथवा रूढिवादी तत्वदशन म अपना स्थान बना लें, किन्तु दशन को उनका पजीकरण करके एक आह भर लनी चाहिए तथा खेद के साथ उसे देखा अनदेखा कर देना चाहिए।'

मिल द्वारा प्रस्तुत प्रत्ययो क सहचरण के सिद्धान्त को एक बार त्याग दिया जाए तो उनके तकशास्त्र की सम्पूण बुनावट छिन-विच्छिन्न हो जाएगी। ब्रेडले के मनम मिल को उनके द्वारा तकपदी प्रणाली म रह दोषों का पता लगान क लिए कुछ आदर मिलना ही चाहिए। लेकिन उनकी यह धारणा कि तकपदी का विकल्प विशेष अवस्थाओ म अनुमान की ओर माना ही है–बिल्कुल गलत थी। यह दखकर हम इस निष्कष पर पहुच सकते हैं कि अनुमान विशेष अवस्थाओ क आधार पर ही लगाया जाता है। मिल का कहना था कि यह जल गया और वह जल गया के आधार पर यह तक करना कि तीसरी वस्तु भी जल जाएगी स्पष्ट ही एकदोष पूण धारणा खडी करनी है। किन्तु इसके बजाय यह कहन स, कि

'इससे मिलती जुलती यह वस्तु जल जाएगी," से कम से कम तादात्म्य का सिद्धान्त तो बनता है। इस तरह ब्रेडले मिल द्वारा छोड़ी गई समष्टियों के कारण उनके बारे में बड़ी आपत्ति करते हैं।

मिल की आगमनात्मक प्रणाली की आलोचना भी ब्रेडले द्वारा इतनी ही प्रबलता से की गई है। ये प्रणालियाँ, प्रारम्भ में ही यह मानकर चलती हैं, कि हमारा अनुभव, मूलत समष्टियों के पारस्परिक सबधों पर अवलम्बित होता है। इनके सबध में मिल द्वारा सोची गई यह धारणा कि वे विशुद्ध रूप से विशिष्ट' तथ्यों पर आधारित हैं बिल्कुल ही भ्रामक है। मिल की तरह ही यह कहना कि हमारे सामने ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जो केवल एक ही परिस्थिति में भिन्न होती हैं, यह सिद्ध करना है कि इन स्थितियों की बहुत सी सामान्य धातुएं हैं अर्थात् ये विशुद्ध रूप से विशिष्ट नहीं हैं। और तब ये यथाकथित प्रणालियाँ, उपयुक्त उस एक या अधिक परिस्थितियों को अपने सिद्धान्त से बहिष्कृत कर देती हैं और उस कारण को भी अनुपयुक्त मान लेती हैं जिसके लिए खोज करते समय उसका पता हम लगा है। तब हर समय हम समष्टियों के बारे में ही विचार कर रहे होते हैं और व्यष्टियों से कोई नियमन नहीं करते। इस तरह आगमनात्मक तर्कशास्त्र एक भ्रमजाल है। आज की समसामयिकता में ही ब्रेडले ने तर्कशास्त्र लिखा। उस समय तो वे अन्तरिम सत्य और विचार के बीच एक सीमारेखा खींचने के पक्ष में थे और इसको तत्वदर्शन की, और दूसरे को तर्कशास्त्र की विषय वस्तु मानते थे। इस प्रकार उनका तर्कशास्त्र विशेषत उनके ग्रन्थ प्रिंसिपल्स का प्रथम अंक, उनके स्वयं के परमात्मवादी तत्वदर्शन के प्रभाव से काफी अंशों में मुक्त है। इस ग्रन्थ ने ऐसे बहुत से दार्शनिकों का ध्यान भी आकर्षित किया है, जो उनके विशाल ग्रन्थ एपीयरेन्स एण्ड रीएलिटी से परेशान एवं उकता जाते थे। अपनी पुस्तक नॉलेज ऐण्ड रिएलिटी में बनर्ड बोसांके ने हीगलवादी परम्परा का खण्डन करते हुए ब्रेडले को विचार और सत्य का यह भेद कर देने पर काफी बुरा भला कहा है। प्रिंसिपल्स के दूसरे व बाद के संस्करणों में अपनी ही इस धारणा के प्रति कहीं कहीं पछतावा भी प्रकट होता है और वे अनेक बार इस सबंध से सही दृष्टि के लिए बोसांके के लोजिक पढ़ने का सुझाव भी देते हैं। प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र के लिए जो ब्रेडले की विचित्रताओं से मुक्त हो हमें बोसांके का अध्ययन करना ही चाहिए।

1888 में प्रकाशित उनकी पुस्तक लोजिक का उपशीर्षक है द मोरफोलोजी आव नॉलेज। यहाँ इसकी विषय वस्तु का संक्षिप्त परिचय मिल जाता है। तर्कशास्त्र, हीगल और लाजे की प्रणाली की ही भाँति एक प्रकार है जिसके जरिए वे अवस्थाएं व्यक्त की जा सकती हैं जहां विचार अपने सरलतम रूप से (जैसे, यह लाल

है कठिनतम जटिल तकवाक्यो की ओर जाता है, और जिनसे सीधा समष्टि भाव व्यक्त होता है। वह समष्टि भाव, जो अपने भागो के साथ एक व्यवस्था स जुड़ा है।

यह बात उल्लखनीय है कि ब्रेडले के विपरीत बोसाके मिल का सदभ गौरव से देते हैं। यहा बोसाके क द्वारा सभी म अच्छाई दख लने की सामान्य वृत्ति से कुछ अधिक महत्व की बात है विशेषकर उनक द्वारा खोजे गए सत्य और प्रशसा तो हैं ही)। ब्रेडल से विपरीत (क्योकि व सभी की बुराइया दखते थ और उनकी ऊपरी गलतिया निकाला करते थे) बोसाके की अपनी नापसन्दगी भी थी सिफ फक उनम इतना ही था कि वह ब्रेडल की भाति पनी होकर प्रस्तुत नही हुई थी और आकारी तकशास्त्र तो उनकी आलोचना का शिकार हुआ भी नही था। इस देश म तक पद्धति म सुधार स्टुअट मिल की रचनाओ से ही प्रारभ होता है ' यह बोसाके का सामान्य मत था। और मिल अपनी प्रतिभा के कारण ही अरस्तू-परम्परावादियो की विगतिमुखता स सदव ऊपर रह सके चाहे उनके दाशनिक चितन म कुछ खामिया अवश्य रह गई हो। मिल के पक्ष म जो बडी बात है वह यह कि तकशास्त्र उनके लिए सव प्रथम जाच पड़ताल का एक सिद्धात था। लकिन जहा मिल ने तकशास्त्र को सगति का तकशास्त्र कहा है वही आगमनात्मक तकशास्त्र को सत्य का तकशास्त्र भी कहा है। बोसाके के लिए तमाम तकशास्त्र सत्य की ही जाच पडताल करते है। चाहे सत्य तब फिर व्यवस्थित सगति की प्रगति म निहित हो गया हो अथवा समवायित' की। अरस्तू के विगतिमुख अनुयायियो को सगति के ऐसे छोटे बिल मे घुसने न दिया जाना चाहिए जहा जाकर वे बोसाके के क्रोध से छिप सकें।

बोसाके के तकशास्त्र को विस्तार से समझते जाना (1895 म उन्होने इसेन्शियल्स आव लोजिक की सक्षिप्त टीका निकाली थी, जिसका बार बार मुद्रण भी हुआ) अधिक उपयोगी नही होगा। यह तो प्रत्ययवाद के परिचित तत्वदशन की एक तरह से पुन व्याख्या है और उसका काफी अ श लाजे अथवा ब्रेडले के सिद्धातो को व्याख्या मात्र है। किन्तु अध आकारी तौर के कुछ दष्टिकोण उसम ऐसे हैं जिनके कारण बोसाके एक प्रतिनिधि तकशास्त्री माना जाने लगा था।[1]

इस तरह बोसाके न, सशत कथनात्मक निणयो की सुनिश्चित स्थापना की ओर विशेष बल दिया और 'यदि तो' के उस आकार का जिसे पीयस ने स्थापित किया और रसेल ने जिसे मूल रूप दिया था, विरोध किया। सशत कथनात्मक स्वीकृति

---

1 द्रष्टव्य एल जे रसेल कृत द बेसिस ऑव बोसाकेज लोजिक (माइण्ड 1918 और उस पर बासाके का उत्तर (1919)

बोसांके के अनुसार तो अपने आप ही पदों में निहित विरोधाभास है और वैसा ही कथनात्मक अनुमान है। किसी निश्चित अर्थ से विलग इसकी समूची प्रक्रिया केवल अन्धविश्वास मात्र है। वह अपनी धारणा का उद्धरण इस उदाहरण से देते हैं 'यदि एक गधा प्लेटो है, तो वह एक महान दार्शनिक है' यह कोई कथन नहीं हो सकता, क्योंकि यह अपनी अन्तर्निहित एकता को हवा में उछाल कर बिखेर देता है। कोई गधा' प्लेटो हो सकता है यह सत्य हो पूर्णतः असंगत है और इसलिए कोई सत्य ही नहीं है। कोई भी बाधगम्य प्राकल्प, एक ऐसी स्वीकारोक्ति होगी, जो सत्य की प्रणाली में वास्तविक एवं निश्चित रूप से सही बैठ सकेगी। "यदि हृदय रुक जाता है तो शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा' यह इस कथन की आवयविक रचनाप्रणाली के मध्य रहे दो विशेषणों का संबंध व्यक्त करता है एक रुकता हुआ हृदय और मृत्यु को प्राप्त होता हुआ शरीर" | सशर्त कथनों के प्रति रहा बोसांके का दृष्टिकोण, उनके आकारी तर्कशास्त्र के विरोधी होने का प्रमाण है। कोई भी सम्वादशील सिद्ध तर्कशास्त्र स्थायी तार्किक शर्तों से अपना संबंध रखेगा। लाजे से सहमति रखते हुए वे कहते हैं कि यह निर्णयों की सिद्धि करता है और इसके विभिन्न अंग एक प्रणाली से आवश्यक रूप से जुड़े होते हैं। आकारी तर्कशास्त्र, इसके विपरीत, पदों एवं तर्कवाक्यों का उपयोग करता है और वह भी इस रूप में मानो वे अपने आपके विशिष्ट तत्व हों जिनका कोई भी तर्कशास्त्री अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार बोसांके, तर्कपदी की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि यह प्रमेयों एवं निष्कर्षों को जोड़ देती है और प्रमुख (मेजर) मध्य (मिडिल) के एवं अल्प पदों (माइनर टर्म्स) का तो बिल्कुल बाहरी तौर से उपयोग करती है।

बोसांके के लिए प्रश्न यह नहीं है, कि किस प्रकार सुकरात मरणशीलता से जुड़ा है लेकिन एक विशेष प्रकार की कथनात्मकता से है, जैसे 'सुकरात की मानवी तरह की मरणशीलता' का भली भांति सत्य का रूप दिया जा सकता है। यह प्रश्न तर्कपदी जिसका बल विशेष की ओर होता है, द्वारा उठाया जाना अथवा तय किया जाना संभव नहीं है।

बोसांके तर्कशास्त्र में विशेष रूप से कुख्यात स्थिति, उनके द्वारा पारस्परिकता (रेसीप्रासिटी) पर दिया गया बल है।[1] यह उनके द्वारा सशर्त कथनों की व्याख्या किए जाने समय बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। इस संबंध में निश्चित प्रकार का

---

1 जर्मन तर्कशास्त्रियों के कुछ अप्रामाणिक समूहों में सशर्त कथनों की विलामता यदि प फ है अन्य दूसरी असंगतियों की तरह ही बनाए रखी गई है लेकिन सभी अप्रामाणिक मतावलम्बी इसका खण्डन करते हैं और पीयर्स के अनुसार प्रामाणिक तर्कशास्त्र तो इस अवस्था का पूर्ण खण्डन करता है।

सशत कथन इस स्वीकारोक्ति म है कि यदि ग्र ब ह तो ग्र स है। उनका कहना है कि कोई न कोई एसी प्रणाली है, जिसम ग्र ब स समान रूप से है, ग्रर्थात् वह तीनो की समवायी स्थिति है ग्रौर चू कि यह समवायिता व्यवस्थित है इसका यही ग्रथ हुग्रा कि ग्र का स होना ग्र को ग्रावश्यक रूप से ब भी बनाता है। यह निष्कष सीधे इस परम्परागत दृष्टिकोण पर प्रहार करता है कि सशत कथन उलट नही जा सकते। किन्तु ये, स्वभावत ही सत्य समवायिता क सिद्धात एव लौजे की इस धारणा स जुडे हैं, कि प्रत्येक तकवाक्य, एक तादात्म्य को व्यक्त करता है। बोसाके यह स्वीकारते हैं कि "यदि वह डूब गया है तो वह मर गया है प्रकटत कदाचित् उलटा ग्रौर पारस्परिक भाव सिद्ध नही करे किन्तु वे इस रूप मे भी कहना नही चाहते कि यदि वह मर गया है तो मर गया है।" यद्यपि यहा यह बात उल्लेखनीय है कि व उक्त कथन के इस ग्राशय के प्रति ग्रास्थालु थे ही। उनका विचार है कि वे ऐस कथनो का वभिन्न्य उनके तादात्म्य को स्वीकार करके भी बनाए रख सकते हैं जिसका मतलब यह हुग्रा कि "यदि वह डूब गया है तो वह पानी म घुटकर मर जायगा।' कवल इसी प्रकार की सतक व्याख्याग्रो द्वारा ही हम तकशास्त्र की समवाय सबधी माग को ग्रौचित्य द सकते हैं। कोई भी तक पेश करना पारस्परिकता ही है क्योंकि ये उद्धरण या य तक जिनका सबध दनिक जीवन से है प्राय ग्रसम्बद्ध स्थितियो के बोझ से भारी रहते हैं ग्रथवा सीमित समय म काय कारण भाव मे उलझ जात हैं। ग्रपनी प्रकृति मे सशत कथन, बासाके के ग्रनुसार भी विपययी (रिवर्सिबल) नही है।[1]

इस दृष्टिकोण का बोसाके ने पालन किया। उनका तक सबधी ग्र तिम ग्रन्थ **इम्प्लीकेशन्स एण्ड लीनियर इन्फरेन्स** (1920) था। इसमे इ होने बताया है कि ग्रागमन एव निगमन करने वाले दोनो तरह के तकशास्त्री एक ही तरह की भूल करते हैं। व दोनो समझते हैं कि ग्रनुमान एक रेखीय (लीनियर) हैं। यह एक ऐसी ग्रवस्था है जिसक जरिए एक प्रकार से दूसरे प्रकार के निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है। जिन बातो मे व मतभेद रखते है उनसे ग्रधिक महत्वपूण उनका एक ही प्रकार की यह भूल करना है। भली भाति समझे तो ग्रनुमान तो निणय पर पहुचने की ग्रावश्यकता महसूस करने मे ही विद्यमान होता है यह दखने मे कि या तो यह ग्रमुक ग्रमुक है ग्रथवा कुछ भी नहीं है ग्रौर ऐसा नान उसी समय सभव है जब हम यह पहचानें। बोसाके के लिए ग्रनुमान का ग्रथ किसी निणय की परिस्थितियो को देखना है। वह भी इस ग्रथ म नही कि यह ग्रथवा वह निणय इससे प्राप्त हुग्रा है। किन्तु ग्राधिक सशक्त ढग स वे ग्रपनी इस बात को कहना चाहते हैं कि ग्रनुमान

---

1 सदभ काज एण्ड ग्राउण्ड (जे० पी० 1910)

करने का अर्थ इस संबंध में विश्वस्त होना है कि यदि वह निर्णय सत्य नहीं है तो वह सम्पूर्ण विचार प्रणाली जिसका वह अंग है और उसके साथ वह सत्य भी जिसकी ओर संकेत है, ध्वस्त हो जाएगा। अनुमान के विषय में यह दृष्टिकोण रसल प्रभृति विचारकों की इस धारणा से, कि प्रत्येक प्रकार की जांच पड़ताल तर्क की विषय वस्तु है से सर्वथा भिन्न है। किसी निर्णय के बारे में माना हुआ कोई सत्य चाहे कितना अनौपचारिक ही क्यों न हो एक तार्किक प्रक्रिया हो जाता है, एक ऐसी प्रणाली जो विचार की स्थापना करती है।

सभी प्रत्ययवादी इस बात पर सहमत नहीं हैं कि दर्शनसम्मत तर्कशास्त्र का निराकारी होना जरूरी है। इस विषय में रोयस ब्रेडले[1] एवं बोसांके से अपनी गणित संबंधी रुचि के कारण बिल्कुल भिन्न थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि वे प्रत्ययवादी नहीं थे। उनका तर्कशास्त्र, प्रत्ययवादी दर्शन एवं एक गणितज्ञ के तर्कशास्त्र का समन्वित रूप माना जा सकता है। पीयर्स एवं रसल, जो रोयस से काफी प्रभावित थे की रचनाओं में यह प्रभाव देखा जा सकता है।[2] अंग्रेजी अनुवाद 1915 एनसाइक्लोपेडिया आव द फिलोसोफीकल साइंसेज में लाजिक (तर्कशास्त्र) संबंधी संक्षिप्त टिप्पणी में उन्होंने 1905 में अमरीकन मैथेमैटिकल सोसाइटी में द रिलेशन आव द प्रिंसिपल्स आव लोजिक टू द फाउण्डेशन आव ज्योमेट्री के संबंध में विकसित की हुई अपनी नयी धारणाओं का सारांश दिया है और वहां वे तर्कशास्त्र को 'क्रम का विज्ञान' मानते हैं। यह क्रम या तो आकारी पदों के द्वारा वर्णित किया जा सकता है अथवा विचार की आवश्यकता कहकर उसकी दार्शनिक व्याख्या की जा सकती है। इस पर पहले दृष्टिकोण से विचार करना पीयर्स और रसेल की विचारधारा का अनुकरण करना है और दूसरे ढंग से विचार करना ब्रेडले और बोसांके को समझना है और रोयस इस बात पर किसी की पर्वाह नहीं करते थे कि वे एक साथ दोनों को अपनाते हैं। इस तरह रोयस सामान्यतः एक प्रत्ययवादी ही है।

---

1 द्रष्टव्य, रोयस के तर्कशास्त्र संबंधी निबंध (सम्पादक डी० एम० राबिन्सन 1951) सी० आई० लेविस कृत सर्वे आव सिम्बोलिक लोजिक

2 वे ए० बी० केम्पे द्वारा लिखे गए निबंध द थ्योरी आव मैथेमैटिकल फार्म (फिल ट्रांस रोयल सोसाइटी 1886) से बहुत प्रभावित थे। ए० बी० केम्पे का ही एक अन्य निबंध आन रिलेशन बिटवीन द लोजीकल थ्योरी आव क्लासेज एण्ड द जोमेट्रिकल थ्योरी आव पोइंटस (प्रोसीडिंग्स लंदन, मैथेमटिकल सोसाइटी 1890)। उन्होंने केम्पे के विषय में लिखा है कि उनका दृष्टिकोण प्रायः अनदेखा ही रहा। केवल पीयर्स ने उसका ध्यान से अध्ययन किया है।

किन्तु युवक अमरीकी तकशास्त्रियो मे से गणितीय तकशास्त्र म रुचि कगन वाली व प्रथम कडी मी थे।

इस दौरान कुछ ऐसे तकशास्त्री हुए जो इसमे स किसी भी पक्ष के नही थे। ये उपकरणवादी (इन्स्ट्रूमेण्टलिस्टस) थे। इग्लण्ड म अलफ्रेड सिगविक द्वारा बडे ही अध्यवसायी रूप से तकशास्त्र का एक रुचिहीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जा रहा था। उन्होंने इस सबध म बहुत सी किताबें लिखी जिनमे पहली **फलेसीज ए व्यू आव लोजिक फ्रॉम द प्रेक्टिकल साइड (1883)** थी।

सिगविक के लिए तक दोषयुक्त पदा के निवारण करने का विनान है। तकशास्त्रियो का दाप कहा से शुरू होता है इस बात की खाज और जाच करना चाहिए और यह उनका ही एक ऐसा विषय है जिसकी क्षमा याचना सहित व अध्ययन किया जाना आवश्यक मानते है। सामा य तार्किक नियम दोषो के निवारण करन के लिए पर्याप्त नही है क्योकि व ऐसे समय प्रस्तुत हो जान वाली दुविधा की पर्वाह ही नही करते। उदाहरण के लिए सभी मॉडल सुगठित हैं यह एक माडल है इसलिए यह भी सुगठित है। इस तकपदी मे पहल और तीसरे वाक्य म माडल का क्या एक ही अथ है? सामान्यतया तकशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि उनके प्रारंभिक सूत्र या तो किसी प्रकार की दुविधा स रहित तक वाक्य हैं अथवा वसे ही निणय हैं, जबकि वास्तव म वे एस कथनो से प्रारभ करते है जिनकी व्याख्या करते ही दुविधा उत्पन्न हो जाती है अनिश्चितता और हिचक साफ झलकने लगती है।

किसी ऐसे कोई तकशास्त्र को जिसकी न्यूनतम भी उपयोगिता है किसी ऐसे तकशास्त्र का जो केवल खेल नही हो उसे तक वाक्यो मे रहे आकार की दृष्टि स वध सम्बन्ध दखने का प्रयास छोड दना चाहिए। इस ता उस विस्तृत कम से लग जाना चाहिए जिसक जरिए यह पता लग कि वास्तव म किसी एक मामले म लोग क्या कह रहे हैं या उनके विमश का बिन्दु क्या है।

सिगविक के विचार की दिशा एफ० एस० सी० शिलर द्वारा अपनायी और विकसित की गई। एक के बाद एक प्रकाशित पुस्तको की शृ खला म और अपने बहुत से निबधो म ता वे आकारी तकशास्त्र का सहार करने पर तुल गए थ। और उन्होन 1920 म **लोजिक फोर यूज** लिखकर 'स्वेच्छाचारी' विकल्प वोलटरिस्ट आल्टरनटिव) प्रस्तुत भी किया ह। प्रत्ययवादियो की भाँति शिलर निणय से प्रारभ करते हैं लेकिन ड्यूई का अनुमरण करत हुए वे ब्रेडले को इस आधार पर नापसन्द करते है कि उन्हाने निणय को तकवाक्य जस श्रेणी मे रखकर उसका मल्य कम कर दिया ह। दूसरे शब्दो म उन्होने निणय पर इस प्रकार अपन विचार व्यक्त

किए है, माना यह बिल्कुल निर्वैयक्तिक कोई चीज हो और उसकी सत्ता को निर्णायक की आशाओं एव रुचियो से स्वतन्त्र माना है। निर्णय" सदैव ही निर्णय करना तो है ही, यह एक व्यक्तिगत कर्म है जो एक विशेष मशा से प्रस्तुत किया जाता है और यही मशा उसकी सार्थकता सिद्ध करती है। किसी निर्णय की सार्थकता जिस सदर्भ मे वह प्रयुक्त हुआ है, उतनी ही है क्योकि जो बात हम दर असल कहना चाहते हैं वह कभी भी शब्दो अथवा सकेतो द्वारा पूरी तरह से व्यक्त नही हो सकती। इस तरह यदि हम यह कहना हो कि एक वर्गाकार गोल है तो आकारी तर्कशास्त्री इसे अपने आप मे विरोधाभास कहकर इसका खण्डन करेंगे। निस्सदेह यह उस वक्त विरोधाभास ही होगा जब हम इन शब्दो से एक ज्यामितिक आकृति खीचना चाहे-फिर भी जो बात रह जाती है वह यही है कि यदि हम किसी लदन की चौपड का वर्णन कर रहे हैं, तो हम जो कुछ कहते हैं वह सही होगा। किन्तु दूसरे सदर्भो मे, हो सकता है यह एक मखौल हो जाय अथवा इस आशा का कथन हो जाय कि किसी ने बुरी तरह से यह वर्ग खीचा है। हम क्या कह रहे है उसके प्रति निश्चित धारणा बनाने के लिए एक तर्कशास्त्री को सदर्भ मालुम करना पडेगा तब आकारी नियम निरर्थक हो जाएगे।

शिलर आगे कहते है कि ऐसे कोई आकारी नियम नही है जो हम यह बता सकें कि अमुक निर्णय क्या सिद्ध करता है और क्या नही? यदि एक तर्कशास्त्री के दैनिक जीवन के वास्तविक अनुमानो का विश्लेषण करना पडे, उसे मालूम होगा कि वैधता और तार्किक सत्य के सारे सिद्धान्त तक उसे ताक मे रखने होगे। यहाँ शिलर सिजविक से भी आगे चल जाते है। वे वैधता के साथ ही 'स्वेप कथनो' का भी खण्डन करते हैं। ठीक से समझें तो हमें यह मालुम होगा कि शिलर और बोसाके दोनो के लिए एक सीमा तक, तर्कशास्त्र जाच पडताल का एक सिद्धान्त है और जाच पडताल स्वय अपने आप मे एक ठोस मानवी कृत्य है। यह दृष्टि हम यह देखने मे मदद करेगी कि मनुष्य कैसे गलती करता है? और तब इस प्रकार के तर्कशास्त्र का कार्य उन विभिन्न प्रक्रियाओ का विश्लेषण करना होगा जो सत्य की खोज के लिए काम मे लाए जाते हैं, इससे भी हमारी जाच पडताल सुरक्षित हो जायगी यह जरूरी नही। शिलर की मशा तर्कपदी को त्याग देने की कतई नही है और वह भी पीछे लौट कर, कार्टेजियनवादियो के निर्विकल्प अन्त साक्ष्य (डाइरेक्ट इन्ट्यूशन) को स्वीकार करके या मिल के आगमनात्मक तर्कशास्त्र का लोहा मानकर। शिलर का कथन है कि ऐसी आपत्तिया जिन्हे पहले से न देखा गया है ऐसी दशाएँ और अज्ञात सभावनाओ के विरुद्ध कोई भी वैज्ञानिक प्रमाण और परीक्षण के दौरान की जा रही कैसी भी सतर्कता हमारी रक्षा कर सकने मे असमर्थ हो जाती है। ऐसे समय मे जो कार्य हम कर सकते हैं वह यही है कि हम

ऐसी अवस्था का निर्माण करें जिनमे हमारे प्राक्कल के साथ सभावनाओ का पलडा बहुत भारी हो।

तर्कशास्त्र को इस तरह जाच पडताल का एक सिद्धान्त मानना, पहले भी जान ड्यूई द्वारा एसेज इन एक्सपेरीमेण्टल लोजिक (1916) मे सुझाया जा चुका है और बाद मे विस्तार से उस पर उन्होने काय भी किया है। (लाजिक, द थ्योरी आव एनक्वायरी 1938) मे ड्यूई ने यह बताने का प्रयास किया है कि आकारी भेद जांच पडताल के दौरान मे ही प्रकट होते जाते हैं और उनका जाच पडताल के दौरान मे रहे उस तारतम्य के अतिरिक्त कोई अलग से महत्व भी नही होता। तार्किक सिद्धान्त उनकी दृष्टि से शाश्वत सत्य नहीं होते जिन्हें एक बार और अन्तिम बार निर्धारित कर दिया गया हो—और जिनके द्वारा सभी सभावित जाच पडतालो के लिए तत्काल उत्तर दिया जा सकता हो। इसके विपरीत, ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हे वज्ञानिक जांच के दौरान या विशेषत उसके विकसित होते समय सफलता प्राप्त करने की क्रिया मे सहायक देखा गया है और जब विज्ञान ही जाच-पडताल की नई विधियां विकसित कर रहा है, तब तर्कशास्त्र का भी सुधार किया जाना आवश्यक है।

ड्यूई का कथन है कि परम्परागत तर्कशास्त्र, प्लेटो की वज्ञानिक विचार धारा के अनुरूप है जिसमे सारतत्वो के बीच रहे सम्बन्धो की खोज की गई है। तर्कपदी जाच पडताल की उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जिसमे प्रणालियो के सामान्य लक्षण खोज निकाले गए हैं।

तर्कपदी जाच पडताल की उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जिसमे प्रजातियो को एक सामान्य अवस्था की ओर जाते हुए देखा जाता है। आधुनिक विज्ञान परिमाणो की ही चर्चा करता है सारतत्वो की नही और जिन सम्बन्धो की ओर वह सकेत करता है उसका विश्लेषण नही किया जा सकता है। ड्यूई हमेशा से उस आकारी स्वरूप पर विचार करते रहे हैं, जो प्रजाति निर्माण के वर्गीकरण के अनुकूल है। उनका मत है कि समसामयिक आकारी तर्कशास्त्र आशिक रूप से उस ध्येय के प्रति सचेत है जो परम्परागत तर्कशास्त्र मे है। समसामयिक तर्कशास्त्र ने

---

1 ऊपर देखें अध्याय 5—एच० एस० थयर कृत द लजिक ऑव प्रेगमेटिज्म, एन एग्जामिनेशन आव जान ड्यूईज लोजिक (1952) एम० आर० लोहेन जान ड्यूई ए प्रिफेस टू लोजिक 1944 मे जान ड्यूई कृत लोजिक पर गोष्ठी के लिए देखे द थ्योरी ऑन इन्क्वायरी (जे० पी० 1939), डी० ए० पिएट एव बर्ट्रेण्ड रसल द फिलासोफी ऑव जॉन ड्यूई (सम्पादित पी० ए० शिल्प 1939)

उनमे सबधसूचको तथा अनुमानो का कर्ता एव विधेय बताने वाले तर्कवाक्यो एव तर्कपरक अनुमानो आदि सभी को विचारणीय माना है किन्तु ड्यूई के अनुसार इसने बात को अधिक स्पष्ट करने के बजाय उलझा दिया है, इसने नए आकार जोड़ दिए हैं, जबकि उसे पुराने आकारो का ही नवीनीकरण करना चाहिए था। आधुनिक तकशास्त्रियो ने जाच पडताल को सदर्भ देकर तार्किक रूपाकारो का अमूर्तीकरण कर दिया है और उन्हें केवल मात्र आकारी कहा है जबकि ड्यूई के अनुसार, आवश्यकता इस बात की थी कि जाच पडताल की एक नई तक प्रणाली विकसित की जाती जिसमे आकारी और भौतिक वाक्यो के बीच का भेद उसी प्रकार दूर हो जाता, जिस प्रकार यूनानी तकशास्त्र मे हो गया है। अरस्तू का तकशास्त्र, यूनानी लोगो द्वारा धारण की गई ज्ञान-सम्बन्धी मान्यताओ का सतोषप्रद विश्लेषण है। नवीन तकशास्त्र को भी आधुनिक वैज्ञानिको द्वारा की गई ज्ञान की व्याख्या का भी उतना ही सतोषप्रद विश्लेषण करना चाहिए।

ड्यूई द्वारा किए गए आकारो सम्बन्धो का विश्लेषण एव उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। परम्परागत विरोधमुखता उपविरोधमुखता एव विरोधी भाव के सम्बन्धो को सभी क्ष' य हैं कोई क्ष य नहीं है' के माध्यम से उसी समय बताया जा सकता है जब हम अपनी जाच पडताल मे सीमा निर्धारित करें। अपने आप मे ही 'विरोधमुखी तकवाक्य" दोष हैं, यह बात इस तथ्य मे प्रकट हुई है कि दोनो विरोधमुखी कथन अवध हो सकने हैं लेकिन फिर भी वे जाच पडताल के उस क्षेत्र को माप लेने मे हमारी सहायता करते हैं जिसमे हमारी समस्या का समावित हल विद्यमान है। उस क्षेत्र मे कही न कही जब क्ष' को विभिन्न रूप से य माना गया है तो दूसरी ओर उसे कभी य' होने के लिए असमर्थ। बस उस क्षेत्र मे से एक समावित हल निकाल लेने की ही बात है और यही विरोधमुखता के सबध मे महत्वपूर्ण बिन्दु है। उप विरोधमुखी कथन कुछ क्ष य हैं और कुछ क्ष य नहीं है हल की ओर हम आगे ले जाता है। ड्यूई के लिए उनका महत्व इसी मे है कि वे एक निश्चित समस्या को मूर्त्त रूप तो देते ही हैं। समस्या यही है कि ऐसी कौनसी स्थिति है जिसके कारण सम्पूर्ण भेद प्रस्तुत हुआ है, भेद उन क्ष ओ के और उन 'क्ष ओ के बीच जो 'य' हैं और य नहीं है। यहा केवल आकारी तथ्य मात्र का प्रश्न नही है कि दोनो ही स्थितिया एक साथ दोषपूर्ण नही हो सकती किन्तु यह भौतिक तथ्य कि वे हमारे लिए एक समस्या निश्चित करते हैं और यही उप विरोधमुखता (सब कान्ट्रेरीटी) के सिद्धात का तार्किक महत्व सिद्ध करता है।

ड्यूई के मत मे महत्वपूर्ण और सूक्ष्म स्थिति तो विरोधी भाव के विश्लेषण मे है। आकारी तकशास्त्र तो इस स्वीकारोक्ति से ही सतुष्ट है कि सभी क्ष य हैं और कुछ क्ष य नहीं हैं, दोनो एक दूसरे की काट करते हैं। किन्तु यही ठहर जाना

विरोधी भाव को प्रकृति को ही गलत समभ लना होगा। वनानिक, मात्र विरोधी भाव प्रकट हो जाने भर से ही उसे मात्र आकारी सम्बन्धों का नाम दकर अपनी नाक भों नही सिकोडन लगता। उसके लिए विरोधी भाव, जाच पडताल क लिए एक प्रेरणास्पद स्थिति है। एक ऐसे प्रकार का नव-सामान्यीकरण प्रस्तुत करना है जिसम भौतिक सामान्यीकरण, कि सभी क्ष य हैं का इस ढग से गढ लिया जाता है कि उसम विरोधी भाव बताने वाले मामलो का भी वणन हो जाए जसे यह क्ष य नहीं है जो ड्यूई के अनुसार सब क्ष य है का सच्चा विरोधी भाव है।

हीगल के तकशास्त्र एव ड्यूई के उपकरणवादी तकशास्त्र के बीच की कडी बडी स्पष्ट है। और यदि हम और अधिक ध्यानपूवक आकारी तकशास्त्र की ड्यूई द्वारा की गई आलोचना को समझें तो हमे यह जानकर निरन्तर एक धक्का लगेगा, कि वे ब्र डले एव बासाके जसे उत्तरहीगलवादी तकशास्त्रियो से समता रखते हैं। उदाहरण क लिए व कहते हैं कि एक वास्तविक समष्टि न्यायीनिणय को निश्चित रूप से आवश्यक जुडाव की ओर इ गित करना चाहिए एव हमार लिए इतना ही पर्याप्त होना चाहिए कि कोई सशत कथन सबधी निणय उस समय तार्किक दृष्टि स सतोषप्रद' है यदि वे उलटे जा सकते हैं (रिवर्सिबल हैं।)। और जाच पडताल के सम्पूण सिद्धात के उस दृष्टिकोण के विरुद्ध उनका स्वर है जो यह मानता है कि तकवाक्यो का किसी एक प्रणाली का अ ग होने के अलावा अपना कोई स्थान है। उनके ग्र थ लाजिक' मे महत्वपूण बात यह है कि स्थिर सत्य के विचार को व्यवस्थित जाच पडताल के विचार स्थानान्तरित कर देते हैं। अपने इस प्रयास मे वे हीगल की 'आत्मा" (स्पिरिट) के प्रति ब्रेडन के परम (एब्सोल्यूट) से अधिक सहानुभूतिपूण हैं। आकारी तकशास्त्र पर की गई उनकी आलोचना, उन लोगो को कुछ नवीन लगे जो तकशास्त्र को हीगल और उनके बाद विकसित हुई प्रत्ययवादी परम्परा के द्वारा दखना चाहते हैं। यहा महत्वपूण बात जाच-पडताल का वही ठोस सिद्धात है जिसने पाचवें अध्याय म हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

जाच पडताल के सिद्धात के द्वारा आकारी तकशास्त्र को खपा जाना ही लोजे स लकर ड्यूई तक के विचार आन्दोलन का मूल तत्व रहा है। निश्चय ही यह दृष्टि नई नही है। यह तो कोर्टेजियन की दृष्टि है और उस लॉक द्वारा डेकार्टे से लिया गया था, लेकिन जब इसने 19 वीं० सदी का अनुभव किया तो उस समय आकारी तकशास्त्र की पुन व्याख्या करना आवश्यक हो गया था। मूलभूत प्रश्न यही है कि तक का सम्बन्ध अनुभव से है अथवा सिद्धिकरण से ? अनुमान करने की मानवीय क्रिया स है अथवा आकारी

सम्बन्धो के सिद्धिकरण से ? यदि हम कहे कि ग्रनुभव ही इसका तथ्य है, तो हम यह निष्कप निकालन के लिए बाध्य हो जात हैं कि ग्राकारी सम्बन्धो का ग्रध्ययन, ग्रपेक्षाकृत ग्रधिक महत्वपूण नही है। यदि हम इस सिद्धिकरण मानें तब जाच पड ताल की प्रक्रिया के सम्बन्ध म उस मनस्तत्त्ववाद का खडन हम करना पडेगा ग्रौर ग्रनुमान एव सिद्धिकरण-सम्बन्धी यह विभेद, हमारे निणय के बीच जाच-पडताल किये जा रहे क्षेत्र के विशिष्ट भाग पर हमारा क्षणिक ध्यान खीचता है ग्रौर तक वाक्य जिसे एक स्वत पूण इयत्ता माना गया है, एक एसी प्रणाली को बताता है जो किसी भी सदभ से मुक्त है। क्या वास्तव में तकवाक्य हाते हैं ग्रौर क्या कोई ग्राकारी सिद्धिकरण होता है, ये ही विचार के मूल बिन्दु थे।

अध्याय 8

वस्तुपरकता की ओर

उन्नीसवीं शती की विचारधारा की प्रमुख वत्ति यह निष्कर्ष लने म रही, कि वस्तु तथा वस्तुसबधी तथ्य अपने अस्तित्व एव प्रकृति के लिए किसी एक मन की क्रिया पर आश्रित हैं। मिल यह बताने निकले थे कि व कस साहचय की यान्त्रिका क्रिया से बनते हैं एव सवदनाओ द्वारा पोषित हो रह हैं। ग्रीन का विचार था कि व 'विचार' से निर्मित होती हैं। ब्रेडल के अनुसार य सत्य की ससीम छायाएँ हैं। जेम्स का विचार था कि वस्तु एव वस्तु सबधी तथ्य मन द्वारा निर्मित उपकरण हैं, जिनम अनुभव के साथ चलने की प्रभावशाली क्षमता है। सभी इस बात पर सहमत है कि यदि मन न होता तो तथ्य भी नही होत। मतभेद उनम केवल इसी बात का था कि अनुभव पारमात्मिक हैं सवेदना जन्य हैं अथवा चेतना का प्रवाह मात्र।

लकिन हमने पहले ही इस सबध म हुई विकलता के चिह्नो का पता लगा लिया है। मिल की अनन्त सभावनाओ ने इस पर काफी प्रकाश डाल दिया था। जेम्स यहाँ पर जरा से विचलित हो गय थ। तथ्य हमारे द्वारा निर्मित होते हैं फिर भी वे हमारे कार्यों म बाधा डालते हैं। बोसाके के प्रत्ययवाद म प्रकृति काफी हद तक स्वतत्र है। मच के सघटनवाद मे सवेदनाए तत्वो द्वारा रूपान्तरित हो गई हैं ताकि यह न सोचा जा सके कि तथ्य मन द्वारा निर्मित है। और एवेनेरियस ने ह्वट द्वारा दिये गय सुझावो का विकसित करते हुए इण्ट्रोजेक्शन [1] के विश्लेषण स हलचल उत्पन्न कर दी थी। इस एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक तन्त्र माना गया है जो हम यह विश्वास करने को गलत दिशा म भटका देता है कि जो हम प्रत्यक्ष या सीधे तौर पर अनुभव करते है वह सदव ही एक प्रतिमान (इमेज) है अथवा प्रतिनिधित्व है और कभी भी स्वतत्र रूप से अस्तित्वमान पदार्थ नही है।

तो भी इनमे से कोई भी लेखक चाहे वे इस बिन्दु के कितने ही समीप क्यो न आ जाएँ इसके लिए सगत रूप स तयार थे कि तथ्य मन द्वारा केवल पहचाने जाते हैं उसके द्वारा निर्मित नही और यह न मान कर व जाव विज्ञान मनोविज्ञान

---

1 द्रष्टव्य जी० अफ० स्टाउट द्वारा बाल्डविन की डिक्शनरी आव फिलोसोफी एण्ड साइकोलोजी म अन्तर्निवेश (इण्ट्रोजेक्शन) शीर्षक से लिखा गया निबध।

एव नृतत्त्व विनान (एन्थ्रोपोलोजी) जस सृजन विनानो से भी दूसरी श्रेणी म रख दिए गए, क्योकि उन्नीसवी शती मे इनका जितना जोर था, इतना कभी नही था।

इन विनानों का प्रादुर्भाव वास्तव म उन्नीसवी शती का सबसे महत्वपूर्ण सस्कृति के विकास का युग है। सृजन सबधी जाच पडताल क प्रति नवोत्साह होन से प्रश्नो पर विचार करने का एक नया तरीका विकसित हुआ, और अन्तत हीगल का अनुकरण भी सिवाय उनके तत्वदशन को छोडकर।

ईश्वर के प्रति हमारी आस्था के सम्मुख खडे होकर या वाह्य जगत के प्रति हमारे विश्वास के आधार पर या फिर जीवन म कुछ गणितीय या तर्कीय सिद्धान्तो को स्वत सिद्ध मानकर दाशनिक अपन आप स यह प्रश्न पूछन के अभ्यस्त हो गये थे 'क्या यह विश्वास सत्य है?' उत्तर–काण्टवादी अनीश्वरवाद ने अवश्य ही इस धारणा को हेय दृष्टि से दखा था कि यह एक सार्थक प्रश्न है जिसका सिद्धान्तत जवाब दिया जा सकता है चाहे व्यवहार मे वह कितनी ही बाधाए क्या न प्रस्तुत करे। सृजनविनानी इस प्रकार खडे किए गए शून्य की ओर झपट पडे और यह कहा गया, कि मुख्य प्रश्न तो ऐतिहासिक हैं–कि ऐस विश्वास कहाँ स और कसे जन्म लेते रहे हैं। यह पूछना कि वे सत्य हैं प्रतिक्रियावादी हैं तत्त्वादी पृष्ठभूमि तयार करना है। किन्तु यह पूछना, कि वे कसे उत्पन्न हुए इसके विपरीत एक समस्या को प्रस्तुत करना हुआ–एक अथवाद, हल करन योग्य समस्या–जिस अनुभव के जरिए एव सृजनप्रणाली के आधार पर भी समझा जा सकता है।

दशन म भी यह बात काफी सामान्य रही थी। उदाहरण के लिए मिल ने एक मनोवनानिक सिद्धान्त की रचना की, जिससे हम वाहरी जगत म विश्वास कर सकें। भौतिक पदार्थों म आस्था रख सकें। और हम प्राथमिक एव दूसरे प्रकार की गुणावस्थाओ का भेद कर सकें। और वह सब भी स्पष्टत बाहरी जगत के प्रति हमारी सामान्य भावना का हटाकर हो अथवा यह मानकर कि वस्तुओ की य अमुक अमुक धातुए हैं। वे कहते हैं कि मैं यह विश्वास नही करता कि किसी भी वस्तु की वास्तविक बाह्यता को मन से अलग करक हम किसी भी प्रकार सिद्ध कर सकते हैं। इसी प्रकार स्पेन्सर न एक सुलझा हुआ सिद्धान्त विकसित किया था। वह सिद्धान्त विकासवाद पर आधारित था और इसम हमार इस विश्वास की उत्पत्ति पर चर्चा की गई थी, कि कुछ गणितीय, एव तार्कीय कथन आवश्यक हात हैं। उनकी आवश्यकता उनक प्रकट होने क सदभ म ही दखी और समझी जा सकती है उनकी प्रकृति का विश्लेषण करने स नही।[1]

---

1 द्रष्टव्य जे० कुक विलसन द्वारा लिखित आँन द ईवोल्यशनिस्ट थयोरी आँव एग्जियम्स, उद्घाटन भाषण 1889।

स्वाभाविक तौर पर अब तो सृजन–वनानिक भी प्रजननप्रणाली-सबधी अपने दावो क प्रति काफी उत्साह प्रदर्शित करने लगे थ। दशन से अपना स्वतन्त्र स्थान कायम करन की चिता म उन्होने ऐस सिद्धान्त की खोज की जो न कवल दशन से स्वतन्त्र था अपितु उसस वस्तुत श्रेष्ठ था। कुछ अभी भी विवाद अवश्य था। कई बार तो न सुलझता हुआ लगने वाला। वह यह कि विज्ञानो की रानी की उपाधि से किसे विभूषित किया जाए? मनोविज्ञान को जीव-विज्ञान को अथवा नतत्व–विज्ञान को? किन्तु इस समय कोई भी तत्वदशन जो इस पद की कामना करता था उसका मखौल 'पुराना इतराने वाला' कहकर उडाया जाता था।

तो भी अजीब तरह से एक नया आन्दोलन, इस बात पर अडा था कि प्रत्येक मामला वस्तुपरक है। और सदव मूलभूत प्रश्न यही है कि 'क्या यह सत्य है अथवा असत्य'। इस प्रश्न ने एक मनोवज्ञानिक की रचनाओ म अपना प्रभाव डालना प्रारभ कर दिया था। ये एक ऐसे मनोवज्ञानिक थ जो ब्रितानी दशन की मनोवज्ञानिकीकरण की वत्ति के प्रशसक थे, खास तौर पर मिल के, और इस बात के प्रबल समथक थे कि मनोविज्ञान ही मूलभूत विज्ञान है। किन्तु फ्रेंज ब्रेण्टानो अरस्तूवादी भी थे एक शास्त्रीय पद्धति स प्रशिक्षित पादरी और साथ ही साथ ह्यूज के 'ट्रीटाइज' को आगे विकसित करने वाले। 1874 मे लिखी उनकी कृति **साइकोलोजी फ्राम एन एम्पिरिकल स्टेण्डपोइण्ट**[1] मे अरस्तू की वस्तुपरकता को पुन स्थापित किया गया है और उनम कुछ मध्यकालीन दार्शनिको के महत्व को भी स्वीकारा गया है।

---

1 देखें मरणोपरान्त सस्करण (सम्पादक प्रो० क्राउस 1924–8), इसी के एम० डी० गन्डीलेक द्वारा 1945 म किये गये फ्रेंच अनुवाद मे कुछ अतिरिक्त निबन्ध भी हैं –प्रो० क्राउस की 1919 मे जमनी भाषा म प्रकाशित **फ्रेन्ज ब्रेन्टानो**। ए केसिल कृत **दी फिलोसोफी फ्रेंज ब्रेण्टानोस** 1951। एच० ओ० ईटन कृत **दी आस्ट्रीयन फिलोसोफी आव वेल्यूज** (1930)। एल० गिलसन कृत 1955 म प्रकाशित दो पुस्तकें *मेथोडे एट मेटाफिजीक सेलो फ्रेन्ज ब्रेन्टानो* एवम् *ला सायकोलोजी डिस्क्रप्टिव सेलो फ्रेन्स ब्रेण्टानो*। ब्रेंटानो की एक मात्र रचना जो 1902 म अग्रेजी म अनुवादित हुई **दी ओरीजिन आव द नालेज राइट एण्ड रोंग** (1889) है। यद्यपि यह रचना मूलत नतिक है, फिर भी उसमे दिए गये विस्तृत नोट जो कि मूल पाठ्य क्रम के साथ जुडे हैं ब्रेन्टानों की व्यापक रुचियों और साइकोलोजी के बाद विकसित हुई विचारधारा की दिशा की ओर सकेत करते हैं। इसके परिशिष्ट मे, ब्रेन्टानो के निबन्ध ऑन सबजेक्टलेस प्रोपोजीशस' क साथ अनुवादक द्वारा उनकी जीवनी से सबधित टिप्पणी भी है। जमन दशन पर ब्रेन्टानो का प्रभाव बहुत व्यापक

आधुनिक पाठक को शायद ब्रेण्टानो की पुस्तक का शीर्षक भ्रम में डाल सकता है क्योंकि 19 वी शती का सृजन विज्ञान एवं तत्ववादी दार्शनिकों के विरोध की वृत्ति, इन दोनों के सम्मिलित प्रयास के फलस्वरूप अनुभववादी' मनोविज्ञान का अर्थ सृजन मनोविज्ञान हो गया था, जिससे मानसिक अवस्थाओं के प्रादुर्भाव का पता लगता है और जो उन्हें शारीरिक प्रक्रिया मानकर ही इन सबकी चर्चा करता है। ब्रेण्टानो उस समय लिख रहे थे जिस समय जी० टी० फेचनर के एलीमेण्ट्स ग्राफ साइकोफिजिक्स (1860) ग्रंथ के प्रकाशन ने भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक मापों से संबंधित सनसनी उत्पन्न कर दी थी। ब्रेण्टानो ने भी इस कृति में अपनी रुचि प्रदर्शित की थी किन्तु वे यह मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि यह मनोविज्ञान के क्षेत्र को भी आत्मसात कर लेता है। इस प्रकार वे वर्णनात्मक मनोविज्ञान को जो कि विशुद्ध रूप से अशारीरिक मनोविज्ञान है सृजन मनोविज्ञान से अपने शारीरिक तत्वों सहित अलग करके देखने की ओर प्रवृत्त हुए[1]। वह यह अनुभव करने लगे थे कि उन्होंने अपनी पुस्तक सायकोलोजी में यह भेद स्पष्टता से प्रकट नहीं किया था। कदाचित् यही कारण है कि उन्होंने अपनी इस पुस्तक को कभी पूरा नहीं किया और केवल उसे संशोधित और पुनः प्रकाशित करके ही संतोष कर लिया। 1911 में प्रकाशित इस पुस्तक का नाम

रहा यदि कुछ थोड़े बहुत नाम ही गिनाये जायं तो उनके प्रभाव में मीनोंग, हुसल, एहरेन-फेल्स स्टफ, मेसरिक आदि प्रसिद्ध हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि फ्रायड ने भी तीन सालों तक उनके भाषणों को सुना है। किन्तु वे एक असम्पृक्त दार्शनिक थे और रोमन केथोलिक अधिकारियों के साथ पोपों की दोषवृत्तियों पर हुई झड़पों के कारण दर्शन की ओर से उनका ध्यान हट गया था। उनके पत्र और हस्तलिखित कृतियां आज भी संकलित और प्रकाशित की जा रही हैं।

ब्रेंटानो द्वारा की गई शास्त्रीय व्याख्या के लिए देखें ई० गिल्सन द्वारा लिखित फ्रेंज ब्रेंटानोस इन्टरप्रेटेशन ऑव मेडाइवल फिलोसाफी" (मेडाइवल स्टडीज 1939)। ब्रेंटानो का अपने पूर्व-वर्त्तियों के प्रति रहा दृष्टिकोण उनके 1892 में प्रकाशित डीवियर फेजन डर फिलोसोफी नामक रचना में देखा जा सकता है। उनकी दृष्टि में काण्ट और हीगल ने आधुनिक दर्शन में गतिरोध उत्पन्न किया है। ब्रिटानी दर्शन के प्रति उनकी रुचि जर्मन आत्मा के संरक्षकों द्वारा संदेह की दृष्टि से देखी गई।

1 मदम ई० बी० टिचनर द्वारा लिखित 'ब्रेंटानो एण्ड वुन्ड इम्पीरिकल एण्ड एक्स्परिमेन्टल सायकोलोजी' (अमरीकन जरनल आव साइकोलोजी, 1922)।

उ होने **ग्रॉन द क्लासीफिकशन ग्राव साइकिकल फिनोमीना रखा** । यह पुस्तक उनकी पहल वाली पुस्तक का एक ग्र श ही है क्योंकि इसम उ होने बहुत गहराई स वरणनात्मक मनोविज्ञान क ग्रपने ग्राशय को प्रस्तुत किया है । 1866 म लिख ग्रपन डाक्टरेट के शोधप्रबध म उ होने मिल क इस कथन स सहमति प्रकट की है कि मनोविज्ञान की प्रणाली प्रकृति विज्ञान की ही प्रणाली है।" किन्तु एक ग्रोर व निरन्तर यह कहते रहे कि उनका मनोविज्ञान ग्रनुभववादी है तो दूसरी ग्रोर साधारण प्रकृति विज्ञान से भी वह कम से कम मल खाता है।

ब्रेण्टानो का ग्रनुभववादी मनोविज्ञान पर यह विवाद था कि व मूलत पयवक्षण (ग्राब्जरवेशन) को ग्रपने ग्रनुभववाद का ग्राकार नही मानते । कोम्ते का ग्रनुसरण करते हुए ब्रेण्टानो ने भी ग्र तरीक्षण (इण्ट्रोस्पेक्शन) की सभावना का खण्डन किया है ग्रौर उस हमारी मानसिक प्रक्रियाग्रो को पयवक्षण (ग्राब्जरवशन माना है। हमारे द्वारा ग्रपने क्रोध का ईक्षण ग्रथवा उस पर हमारा ध्यान केंद्रित करना तत्काल ही उस भाव को विनष्ट कर देता है। कोम्ते न यह निष्कष निकाला था कि मनोविज्ञान ग्रसभव है ग्रौर उसे समाजशास्त्र द्वारा स्थाना तरित कर दिया जाना चाहिए। ब्रेण्टानो इस निष्कष को नही मानते । मनोवज्ञानिक के पास पयवेक्षण की ग्रनेक विधिया है । वह ग्रपनी मानसिक प्रक्रियाग्रो का स्मरण कर सकता है, वह पागल लोगो का ग्रध्ययन कर सकता है जीवन के सरलतर प्रकारो को दख सकता है एवम् ग्रन्य लोगो क व्यवहार का ग्रध्ययन कर सकता है। किन्तु फिर भी, यह दृष्टि ही स्वत एक मनोवज्ञानिक को बहुत गहराई तक नही ले जायगी । उनकी कृति **ग्रान द क्लासिफिकेशन ग्राव साइकिकल फिनोमेना** म उपयु क्त सभी तकनीको को पृष्ठभूमि म धकेल दिया जाता है।

मनोविज्ञान का ग्राधार यही है कि हम हमारी मानसिक क्रियाग्रो को देख सकत हैं, चाहे हम उनका पयवेक्षण न कर सक । यह ग्र तर समझने के लिए हम इस कार्टेजियन धारणा स प्रारभ करना चाहिए जो ब्रेण्टानो के ग्रनुसार इस विषय म निर्विवाद है कि किसी प्रतिनिधित्व के प्रति सचेत होने का मतलब है उसके साथ ही उस क्रिया क प्रति की जागरूक होना जो हम उसक प्रति सजग बनाती है। उदाहरण के लिए हम उस समय तक कोई ध्वनि नही सुन सकते जब तक कि हम न केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत हो अपितु सुनने की क्रिया से भी परिचित हो। य दो विभिन्न प्रकार की सचेतन क्रियाए सही हैं केवल एक ही क्रिया के दो विषेय हैं । ध्वनि (पहला विधेय) ग्रौर क्रिया (दूसरा जो इस तरह एक ग्र या वर्तित विधेय हो जाता है यदि किसी तरह से दो विधय होते तो कार्टेजियन धारणा हम ग्रन त मानसिक क्रियाग्रो के गुणन की ग्रोर ही प्रेरित करती । इसका

अथ यही है कि ध्वनि के प्रति सचेत होना उसकी चेतनता के प्रति भी सचेत होना होगा और उसी प्रकार ध्वनि की चेतना के प्रति सचेतन होना, उस सचेतनता के प्रति भी सचेत होना है। इस तरह यह क्रम अनन्त रूप से चलता रहेगा। इस अविश्वसनीय गुणन से बाहर निकलने का एक ही तरीका है और वह यह, कि हम इस बात का खण्डन करें कि इस ध्वनि की चेतना के प्रति सचेत होने की हमारी क्रिया ध्वनि के प्रति सचेत होने की क्रिया से भिन्न है। किसी मानसिक क्रिया का पर्यवेक्षण करने का प्रयत्न, दूसरी क्रिया का पहला विधेय बनाना है। जब हम पर्यवेक्षण की बात करते हैं, तो हम पर्यवेक्षक एवं पर्यवेक्षित दोनों के बीच में एक भेद करते हैं और ब्रेण्टानो, कोम्ते के साथ यह मानने में सहमत हैं, कि यह असम्भव है।

यही आकर मनोविज्ञान एवं अन्य अनुभववादी जाँच पड़तालों में एक महत्वपूर्ण भेद प्रकट हुआ है। ब्रेण्टानो शब्द को विशेष महत्व देते हुए कहते हैं कि मनोविज्ञान में हम दृष्टि रखते हैं जबकि अन्य विज्ञानों में हम पर्यवेक्षण करते हैं। इससे लगता है जैसे अन्य विज्ञान मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक स्थिति में हैं। किन्तु ब्रेण्टानो इस बात का जोरदार खण्डन करते हैं। लाक के साथ सहमति प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि प्राकृतिक वैज्ञानिक की प्राकृतिक पदार्थों की ओर सीधी पहुँच नहीं है, जिन्हें वर्णन करने का वह प्रयास करता है। उनकी वास्तविक प्रकृति के विषय में वह जो कुछ भी कहता है, वह मात्र अनुमान है। यह अनुमान वस्तु के ऊपरी दिखावे पर प्राप्त उसके अनुभव पर आधारित रहता है, वह ध्वनि रंग और ऐसी ही अन्य वस्तुओं का पर्यवेक्षण कर सकता है किन्तु वह कभी भी भौतिक पदार्थ को नहीं देख सकता। वह कभी भी सीधे और तात्कालिक रूप से उनके प्रति सचेत नहीं हो सकता। इसके बिल्कुल विपरीत एक मनोवैज्ञानिक अपनी विषयवस्तु के साथ का तात्कालिक एवं सीधा अनुभव करता है। प्रत्येक मानसिक क्रिया सीधे तौर पर अपने होने को एक दूसरी अवस्था करके भी देखती है वह केवल रूप–दर्शन नहीं है और न ऐसी ही कुछ है जिसमें से मानसिक क्रिया के मूल स्वरूप का अनुमान लगाया जा सके किन्तु वह अपने मानसिक क्रिया जैसी है वह भी वैसा ही है। इसीलिए ब्रेण्टानो के लिए ह्यूम की ही तरह मनोविज्ञान का स्थान विज्ञानों में सर्वप्रथम है। दोनों इस कार्टेजियन सिद्धान्त को मानते हैं कि मानसिक तत्व का हमारा ज्ञान अन्य सब वस्तुओं की अपेक्षा विचित्र रूप से सीधा और निश्चित है।

लेकिन ब्रेण्टानो ने अपने को डेकार्ट लाक की परम्परा से अलग कर लिया, और वस्तुपरकता की ओर बढ़ने की दिशा में अपना प्रभाव डाला। यह कार्य उन्होंने 'मानसिक' तत्व को पुनः परिभाषित करके किया था। लॉक ने जिस मूलभूत मानसिक संघटन की बात सोची थी वह था 'प्रत्यय' और इस प्रकार के प्रत्ययों के

कारण हमारा अनुभव निश्चय ही सीमित हो जाता है। इस प्रकार यदि पक्के अनुभववादियों की तरह मानें कि अनुभव के बिना कोई भी ज्ञान सम्भव नहीं है उससे यह अर्थ निकलेगा कि जो कुछ हम जानते हैं उसका मानसिक होना आवश्यक है। मानसिक एवं अमानसिक दोनों के बीच के भेद का विशेषतया उसकी आवश्यकता से जुड़ी हुई स्थिति का ब्रेण्टानो पूर्णत खण्डन करना चाहते थे। अनुभववादी दृष्टिकोण के किसी पक्के अनुयायी के विश्वास से कम से कम ऐसा तो लग ही सकता है।

ब्रेण्टानो ने इस प्रकार की अनुभववादी युक्ति का उच्छेदन करने का प्रयास किया मूलत यह बात अस्वीकार करके, कि मानसिक होने का अर्थ प्रत्यय मे बदल जाना है। मानस संघटन का मूलभूत रूप यही है कि वह किसी वस्तु की ओर संकेत करता है अथवा किसी विषय वस्तु की ओर संकेत करता है अथवा किसी विषय वस्तु का संदर्भ प्रकट करता है। इन दोनों वाक्यांशों को वे पर्याय मानते हैं। मानसिक तत्व तब तक एक क्रिया है एवं अमानसिक इसके विपरीत किसी वस्तु की ओर संकेत करने अथवा किसी विषय वस्तु के भाव को प्रकटाने मे असमर्थ होता है।

ब्रेण्टानो द्वारा क्रिया पर दिए गये बल के कारण भ्रम पैदा हो गया। उसी तरह उनके द्वारा क्रिया के उपकरणों की व्याख्या के कारण भी ऐसी ही गलतफहमी पैदा हुई और उसे प्रयोजनात्मक अनस्तित्व (इन्टेन्शनल इनएग्जिस्टेंस) की संज्ञा दी गई है। क्रिया एवं प्रयोजनात्मक जैसे शब्दों की पसन्द के कारण ही उन्हें शोपेनहॉवर के अनुयायियों मे एक अंशीय मनःवैज्ञानिक के रूप मे माना गया। इन लोगों के लिए पदार्थ उद्देश्य ध्येय एवं क्रियाएं, ऐसी संवेदनाएं हैं जो हम निश्चित लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। इस प्रकार की गलत व्याख्याओं से बचने के लिए ब्रेण्टानो ने प्रयोजन से सम्बन्धित अपनी भाषा को त्याग दिया था। एक मानसिक क्रिया मात्र वह विधि है जिसके कारण हमारा मन किसी वस्तु से जुड़ जाता है औ वस्तु वही है जिसे मन अपने समक्ष अपनी क्रिया के उपकरण के रूप मे देखता है।[1]

---

1 'ट्रीटीज" के परिशिष्ट मे जब ह्यूम यह कहते है कि विश्वास और गल्प मे उनके सोचे जा सकने के कारण ही अन्तर होता है तो वे जैसे ब्रेण्टानो के मानसिक क्रिया के सिद्धान्त का ही एक पूर्व कल्प दे रहे होते हैं। इसके विपरीत ह्यूम द्वारा विश्वास की यह व्याख्या कि वह एक 'विशद प्रत्यय है" ब्रेण्टानो को स्वीकार नहीं थी क्योंकि वे इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि इसमे विश्वास की क्रिया का उसके उपकरण प्रत्यय के साथ घोलमेल कर दिया गया है।

ब्रेण्टानो के लिए सवसाधारण मानसिक क्रिया वह है जिस व प्रतिनिधिकरण का नाम दते हैं इसम वस्तु क्वल मन के समक्ष रहती है। प्रतिनिधिकरण के आधार पर ही सब मानसिक त्रियाए टिकी है क्योंकि यह स्थिति हा शेष मानसिक त्रियाओं को वस्तु के विषय म कुछ समझने का अवसर प्रदान करती है जो बाद में जाकर उन्हीं का एक अ श बन जाती हैं। स्पष्टत प्रतिनिधि करण का यह व्याख्या लाक की अनुभव की व्याख्या से काफी मल खाती है लकिन लाक क दशन म यद्यपि अनुभव हमारी निणयात्मिका बुद्धि का सरल प्रत्ययों के रूप म कच्चा माल प्रदान करता है, तो भी वहाँ हमार निणय का वास्तविक उपकरण हमार अनुभव के उपकरण स बिल्कुल ही भिन्न है। वह प्रत्यय नही है बल्कि स मति और असहमति क सबधो के कारण जुडे, बहुत स प्रत्ययों का एक मिला जुला रूप है। इन सबस ही अलग, ब्रेण्टानो, ह्यूम की भांति इस बात का खण्डन करते हैं कि हमारे निणय के लिए प्रस्तुत कोई वस्तु प्रतिनिधीकरण की किसी वस्तु स कही मिली है।

वे ह्यूम का उदाहरण दते हैं-एक अस्तित्वमूलक निणय' जसे कि, यह निणय कि क्ष अमुक अमुक रूप म अस्तित्वमान है" केवल एक ही प्रत्यय की ओर सकेत देता है। और वह एक प्रत्यय है "क्ष'। इसम क्ष और अस्तित्व किसी सबध के कारण दो अलग अलग उपकरणों के रूप म नही जुडे हैं। इसका यही अथ हुआ, कि कभी कभी किसी निणय म एक ही प्रत्यय हो सकता है, और उसम निहित वस्तुओं की बहुलता निणय को परिभाषित करने का मूलाधार नही बन सकती। किन्तु ब्रेण्टाना ह्यूम स भी आग चल जात हैं। व कहते हैं कि प्रत्येक सरल [1] निणय को अस्तित्व वादी रूप दिया जा सकता है। कुछ वृक्ष हर हैं' यह कथन न तो इस बात का खण्डन करता है कि हरे वृक्ष होत हैं और न 'कोई वृक्ष हरा नही है' यही कथन हरे वृक्षों के न होने को सिद्ध करता है। इसी तरह सभी वक्ष हर हैं इस बात का खण्डन नही हैं। और न कुछ वक्ष हर नही है, यही

---

1 सरल' और जटिल' निणयों के अ तर क लिए दखें द ओरीजिन आव द नोलेज आव राइट एण्ड रोग के नोटस। ब्रेण्टानो का अस्तित्व-सबधी सिद्धात वन द्वारा स्थापित प्रतीकात्मक तकशास्त्र क काफी अनुकूल था। दखें अध्याय 6 ब्रेण्टानो द्वारा तकशास्त्र सबधी किए गए नवा वणनों का ब्योरा अ ग्रेजी पाठक क लिए डी० पी० एन लण्ड के 1876 म माइ ड म लिखे गए लख म मिल सकता है। यह नोट बाद की तार्किक चर्चाओं को भी प्रभावहीन सिद्ध करन म काफी सहायक रहा है। इसम ब्रेण्टानो क विराध म लण्ड का कथन है कि यद्यपि समष्टि व्यापी तकवाक्य अपने कर्ता क अस्तित्व को सिद्ध नही करत, तो भी व उसके अस्तित्व की कल्पना तो करते ही हैं।

इस बात का स्वीकरण है कि ऐसे पेड़ भी है जो हरे नहीं है। इन निर्णयों की विषय वस्तु वे ही हरे वृक्ष हैं जिन्हें हम अपने लिए एक प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता हुआ मान सकते हैं। इसी तरह निर्णय एवं प्रतिनिधिकरण में यही अन्तर वस्तु में निहित नहीं है, किन्तु उस विधि में निहित है जिसके जरिए हम उसका विचार करते हैं। *निर्णय करना एक वस्तु को स्वीकार या अस्वीकार करना है,* उसका प्रतिनिधित्व केवल मात्र वस्तु का हमारे सामने होना है।

स्पष्टतः यह सिद्धांत, कुछ कठिनाइयां लिए है। उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण *यह है कि किस प्रकार वस्तुओं एवं मानसिक क्रियाओं से उनके संबंधों का* कोई संतोषप्रद विवरण दिया जाय। वस्तु किसी न किसी तरह क्रिया की विषयवस्तु है। यह ऐसी स्थिति है, जो एक निर्णय की क्रिया को दूसरे निर्णय की क्रिया से अलग करती है। उदाहरणार्थ, हम इस बात का खण्डन करते हैं कि गोल वर्गाकार *होते हैं। हमारे खण्डन की यह क्रिया सही है। किन्तु इससे उसकी विषय वस्तु के* रूप में गोल वर्गाकारों का होना कैसे सिद्ध हुआ जब कि इस क्रिया का सम्पूर्ण उद्देश्य गोल वर्गाकारों का न होना ही सिद्ध करना है। संक्षेप में इसका अर्थ यही है, किस प्रकार एक वास्तविक क्रिया की विषय वस्तु अवास्तविक हो सकती है? *परम्परागत सिद्धांत के अनुसार इसमें कोई मुश्किल नहीं है। उनके लिए गोल* वर्गाकार के प्रत्यय की बात को स्वीकार कर लिया गया है, वह वास्तविक प्रत्ययात्मक प्रत्यय है चाहे यह अपने से भिन्न किसी वस्तु की ओर संकेत करने में अक्षम हो। डेकार्ट के मतानुसार इसमें वस्तु-परकता है चाहे उसमें आकारी सत्य नहीं हैं। किन्तु *एक बार हम इस प्रत्यय को किसी ऐसी क्रिया की विषयवस्तु बना लें जो* आकारी सत्य को व्यक्त करती है तो उसके साथ ही वे सारी समस्याएं तत्काल ही खड़ी हो जाती है जिनका उत्तर देने का प्रयास ब्रेण्टानो के प्रशंसकों ने किया है।

विशेषतः मीनोंग का वस्तु सिद्धांत उनसे हुए इस अलगाव को व्यक्त करता है। मीनांग ने वीएना में ब्रेण्टानो के संरक्षण में कार्य किया और इसीलिए उन्होंने अपने दार्शनिक जीवन का आरम्भ एक मनोवैज्ञानिक के रूप में किया। किन्तु यहां *यह बात महत्वपूर्ण है कि उनकी पहली एवं प्रमुख रचना दो अंकों में ह्यूम* स्टडीज (1877-82) नाम से प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने ह्यूम के प्रत्ययों के सिद्धांतों को समझने और उन्हीं के द्वारा किए गए संबंध सूचकों के विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया है। वे उसी रूप में मनोवैज्ञानिक थे जिस रूप में ह्यूम को एक *मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है।* उन्होंने ब्रितानी अनुभववादियों के इस मत को स्वीकार कर लिया था कि संबंध सूचक एवं समष्टि कथन मन की ही रचनाएं

है। इससे यह लगता है जैसे साथकता सर्वथा सत्यों एवं निर्णयों के सिद्धांत सभी का वास्तविक क्षेत्र मनोविज्ञान ही [1] है।

मीनोंग की प्रणाली भी ब्रेण्टानो सदृश ही थी। दर्शनसंबंधी विशेष समस्याओं का उनके द्वारा किया गया श्रमसाध्य विश्लेषण जो कालान्तर में बीसवीं शती के ब्रितानी दर्शन का मूलभूत तत्व रहा और जो जर्मन प्रदेश में चल रहे परम्परागत दर्शन से आस्ट्रिया के दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक भिन्न था। ब्रेण्टानो एवं उनके अनुयायियों के लिए दर्शन मात्र विज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनमें लग के समान यह धारणा बना लेने का ध्येय नहीं था कि दर्शन एक प्रकार का काव्य है एक व्यापक तौर पर रची गयी काल्पनिक सृष्टि है। इनका विचार था कि दार्शनिक को स्पष्ट रूप से परिभाषा की जाने योग्य समस्या का चुनाव करना चाहिए और तब अपनी सम्पूर्ण क्षमता से उसके सुलझाने में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। दरअसल, अनेक प्रकार से तो उनकी धारणा परम्परागत दर्शनशास्त्रियों के विशद विश्लेषण या प्रवृत्ति का स्मरण दिलाने लगती है। जबकि डेकार्टे के समय से ही दार्शनिक लोग दर्शन के शास्त्रीय भेदों का उन्मूलन करने में लग गये थे और उन्होंने उन स्थलों में रहे विवादों को एक बार उपसार कर दिया था, जिन्हें इन पूर्ववर्ती दार्शनिकों ने समानरूप से अविवादास्पद मान लिया था।

---

1 इसी के साथ मीनोंग, दार्शनिक मनोविज्ञान की समस्याओं पर विचार करने की ओर भी प्रवृत्त हो गए थे देखें, जे० एन० फिण्डले कृत 'इमोशनल प्रेजेण्टेशन' (ए जे पी 1935) एवं रिकमेण्डेशन्स रिगार्डिंग द लम्वेज आव इण्ट्रोस्पेक्शन (पी० पी० आर० 1948,। इनमें मीनोंग के समक्ष प्रस्तुत हुई मनोवैज्ञानिक समस्याओं का ब्यौरा दिया गया है। मीनोंग के संबंध में अधिकृत जानकारी फिण्डले कृत मीनोंग्स थ्योरी आव आबजेक्टस (1935) में देखें। आर० जेक्सन का रिव्यू भी देखें (माइण्ड 1934)। 1904 में माइण्ड में ही प्रकाशित बर्ट्रेण्ड रसेल का लेख 'मीनोंग्स थ्योरी ऑव कोम्प्लेक्सेज एण्ड एजम्पशन्स (1904)। मीनोंग की रचनाओं के रिव्यू (माइण्ड 1899 1905 1907) रसेल एवं मीनोंग दोनों के दर्शन पर काफी प्रकाश डालते हैं। जी० डास ह्विस द फिलोसोफिकल रिसर्चेज आव मीनोंग' (माइण्ड 1922 पुनः मुद्रित 1938 क्रिटिकल रियलिज्म)। ए० माइकनिस कृत द कन्सेप्शन आव पासीबिलिटी इन मीनोंग्स जीजेण्ड स्टेण्डस थ्योरी (पी० पी० आर० 1941)। जे० एन० फिण्डले का एलेक्सियस मीनोंग गेडेंकश्रिफ्ट में प्रकाशित 'द इन्फ्लूएंस ऑव मीनोंग इन एंग्लोसेक्सन कण्ट्रीज' 1952 शीर्षक निबंध। मीनोंग की कोई भी रचना अंग्रेजी में अनूदित नहीं हुई है।

1904 ई० तक जब उन्होंने **इन्वेस्टीगेशन्स इन्ट थ्योरी ग्राव ग्राब्जेक्ट्स एण्ड साइकोलोजी** नामक ग्रन्थ लिखा मीनोंग के समक्ष यह बात स्पष्ट हो गई थी कि वे जो रचना कर रहे थे, उसके लिए यद्यपि मनोविज्ञान साधक था तो भी वह रचना अपनी मूल प्रवृत्ति में मनोवैज्ञानिक नहीं थी यहां तक कि अपनी लचरतम व्याख्या में भी वे उसे ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं थे। इसके विपरीत निष्कर्ष निकालने लगा जैसा कि ब्रेन्टानो ने किया है, उनकी दृष्टि में विषय-वस्तु एवं वस्तु को ग्रोर उन्मुख माना है। विषय वस्तु एवं पदार्थ या वस्तु सम्बन्धी भेद का निर्धारण करने में मीनोंग ने पोलैण्ड के दार्शनिक के ट्वारडोव्स्की की सहायता ली। ट्वारडोव्स्की ने अपनी पुस्तक **टूवार्ड्स ए थ्योरी ग्राव द कन्टेन्ट एण्ड ग्रावजेक्ट ग्राव प्रेजेण्टेशन्स** (1894) में मानस-घटन में तीन विभिन्न संयोजक तत्वों का भेद बताया है मानसिक क्रिया, उसकी विषयवस्तु एवं इन दोनों का आधार वस्तु। विषय वस्तु एवं पदार्थ का तादात्म्य करा देने का प्रभाव यह होता है कि उससे मन के समक्ष प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व भी ऐसा लगने लगता है मानो वह भी मन की समझने की प्रक्रिया का ही एक अंश है। किन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा असमीचीन है। क्योंकि जो वस्तु मन के सामने है वह बहुधा एक भौतिक पदार्थ भी होती है जो ठोस, और फैली हुई है। ऐसा पदार्थ किसी प्रकार मानसिक क्रिया द्वारा उत्पन्न किया जाना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त भी यदि हम किसी एक तरह से अनस्तित्वशील पदार्थ का भी विचार कर रहे हों, तो भी[1] विचार करने की मानसिक क्रिया तो अस्तित्व में रहती ही है। और जो भी उसकी विषयवस्तु का अंश होता है वह भी अस्तित्वमान होना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि गोल वर्गाकार मानसिक क्रिया की विषय-वस्तु नहीं हो सकता यद्यपि स्पष्टतः वह मानसिक क्रिया में प्रकट हो सकता है। इसके साथ ही मीनोंग की यह भी धारणा थी कि उस क्रिया के दौरान ऐसा कुछ तो होना ही चाहिए तो इस तथ्य का आभास देता है कि वह बहुत से पदार्थों की अपेक्षा एक पदार्थ की ओर निर्देशित हो रही है। यही कुछ उस क्रिया की विषय वस्तु होती है। लाक के प्रत्ययों की भांति यह विषयवस्तु पूरी अथवा अधूरी सी कोई तस्वीर नहीं है न यह किसी प्रकार की संवेदना ही है। क्योंकि ऐसी कोई भी तस्वीर अथवा संवेदना तब एक अन्य पदार्थ हो जाएगा।

---

1 पदार्थ की परिभाषा— यह वह अवस्था है जिसकी ओर मानसिक क्रिया गतिमान होती है।' इस प्रकार किसी पदार्थ का वस्तु होना आवश्यक नहीं है। जनपरिया यूनीकार्न एवं दो का 'वर्गमूल' ये सभी पदार्थ हैं—क्योंकि हम इनके सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं। मीनोंग के गेजेंस्ट ड का अनुवाद कई बार एक्यूजेटिव के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

हम फिर स्पष्ट करना पड़ेगा कि मानसिक क्रिया, एक संवेदना, अथवा एक तसवीर की ही ओर क्यों गतिशील है दूसरे पदार्थों की ओर क्यों नहीं ? विषयवस्तु की इससे अधिक स्पष्ट परिभाषा कदाचित् न हो सके कि वह मानसिक क्रिया की एक ऐसी विशेषावस्था है जो उस अमुक अमुक पदार्थ की ओर संकेत करने में सहायता देती है। मीनोंग का मत है कि ऐसी विषयवस्तु का पता लगा लेना टेढ़ी खीर है। लेकिन फिर भी बहुत प्रयास करने पर वह संभव हो सकता है। मुश्किल हमारे सामने उसी समय आती है, जब हमारा ध्यान मानसिक क्रिया की ओर न हो कर पदार्थ की ओर हो जाता है, और कुछ इसलिए भी कि हम सदैव ही ऐसे समय किसी विशिष्ट वस्तु की खोज में लग जाते हैं जैसे विषय वस्तु यह पहचाने बिना ही कि विषयवस्तु तो मानसिक क्रिया के दौरान प्रकटी एक विशेष अवस्था है।

मीनोंग के लिए इस धारणा का महत्व यही था कि इसने पूर्णत नवीन दार्शनिक चिंतन की एक दिशा खोल दी थी। और यह दिशा थी पदार्थ सिद्धान्त' जिसे किसी भी प्रकृति विज्ञान के अन्दर समाहित नहीं किया जा सकता—तो भी वह किसी भी तरह में अनुभव शून्य और तत्त्ववादी नहीं है। एक नए दार्शनिक चिंतन की खोज निकालने का प्रयास जिनमें पदार्थ सिद्धान्त' संघटनवाद 'विश्लेषण' तार्किक भाषा शब्दार्थ विज्ञान (सेमैन्टिक्स) आदि हैं बीसवीं शती के दर्शन के मूल भूत अंग रहे हैं। इसका कारण ढूंढ लेना मुश्किल नहीं है। सामाजिक विज्ञानों के स्वतन्त्र रूप से विकसित हो जाने के फलस्वरूप अब दार्शनिक न तो मनोविज्ञान, और न राजनीति सिद्धान्त अथवा समाजशास्त्र पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर सकते थे और अपने निष्कर्षों को दार्शनिक कह कर विभूषित कर सकते थे। दूसरी ओर बहुत कम दार्शनिक, मेक्टेगट के ज्वलंत अपवाद को छोड़कर यह स्वीकार करने को तैयार थे कि एक अनुभवतर तत्वदर्शन की रचना करना ही उनका मुख्य कर्म था। अब तो लगने लगा था, कि दर्शन' का लोप होने वाला है। जैसा कि अधिकाधिक दार्शनिक यह विश्वास करने लग थे कि सारा ज्ञान अनुभवजन्य है और तब क्या इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का विभाजन विभिन्न प्रकार के प्रकृतिविज्ञानों को सौंपकर कर दिया जाना चाहिए। इस तरह दार्शनिक प्रतिभाओं के संरक्षण की समस्या खड़ी हो गई और उनके लिए एक ऐसा क्षेत्र खोजा जाने लगा जो अनुभववादी हो ताकि तत्त्ववादियों के विरोधियों में भी अपना स्थान वे प्राप्त कर सकें और दूसरी ओर उनके उस चिंतनात्मक तकनीक की रक्षा हो सके जो दर्शन का मूल आधार रहा है और उन्हें प्रयोगशाला के तकनीक अपनाने की आवश्यकता न पड़े। पदार्थ सिद्धान्त इस नई माँग को संतुष्ट करने का प्रयास था। आखिरकार मनोविज्ञान की विवरणात्मक शाखा तो दर्शन शास्त्र नहीं था। इसकी खोज का अपना एक अलग क्षेत्र था- पदार्थ सिद्धान्त'।

मीनोग का कथन है कि कुछ पदाथ ही-केवल कुछ ही पदाथ-ग्रस्तित्ववान हैं। उदाहरणाथ हरी पत्ती इस तरह ग्रस्तित्वमान हैं। कुछ पदाथ ग्रस्तित्व म न होते हुए भी सत्य है-उदाहरणाथ लाल और हरे का भेद ऐसा ही वास्तविक' भेद है किन्तु यह उस रूप म ग्रस्तित्वशील नहीं है जिस रूप म एक लाल पुस्तक" एव 'लाल पत्ती का भेद ग्रस्तित्व म है। कोई भी ऐसे पदाथ जिनका ग्रपने ग्रस्तित्वो के कारण पारस्परिक सबध है और जो ग्रधिक सूक्ष्म है वे ग्रस्तित्ववन हैं, ऐसा कहना बहुत कठिन है और न नो का ग्र क ही ग्रस्तित्व मे है यद्यपि वह सत्य ता है ही। इस तरह के वास्तविक पदाथ जो ग्रस्तित्व की परिभाषा क ग्र तगत नही लिए जा सकते कवल मात्र हैं (सबसिस्टिंग) यहा कहा जाना चाहिए।

ग्रस्तित्वशील एव भावशील (सबसिस्टेंट) के जरिए पदाथ के इस विभाजन मात्र से *पदाथसबधी व्याख्या की समावनाएँ टूट नही जाती हैं क्योकि कुछ पदाथ* उदाहरण क लिए गोल वर्गाकार, न तो ग्रस्तित्वशील है और न भावशील। व होने के बाहर के क्षेत्र म हैं-[1] किन्तु वे पदाथ तो हैं ही यह तो वास्तविक के पक्ष म हमारा पूर्वाग्रह है, जो हम गलत रूप से यह सोचने को प्रेरित करता है कि

---

1 इन पदार्थों के स्तर का वणन करने का मीनोग का तरीका समय समय पर बदलता रहा। (बकौल फिडल की पूर्वोक्त कृति के) इस पर ब्रेन्टानो की टिप्पणी के लिए द्रष्टव्य **वानदर क्लासिफिकेशन** के परिशिष्ट तथा द ग्राब्जेक्टस ग्राव थाटस" का मरणोपरा त प्रकाशित पूरक लेख। य दोनो साइकोलोजी के 1924-8 के सस्करण में सकलित हैं। ब्रेन्टानो क ग्रनुसार हमारे मस्तिष्क के सामने एसा कोई पदाथ नही रहता जिसमे ग्रनस्तित्व का गुण हो। जब हम एक गोलाकार वग' के बारे म सोचते हैं तो कोई पदाथ हमारे चिंतन म नही ग्राता, ऐसी स्थिति म केवल चिंतनशील मस्तिष्क हा वहा है पदाथ नही। इस प्रकार वे ग्रपना यह पुराना दष्टिकोण यो परिवर्तित करने को बाध्य हो जाते हैं जिसके ग्रनुसार वे मानते थे कि चिंतन का क्रिया सदा किसी पदाथ क सम्ब घ को बतानी है। यह परिवतन इसलिए जरूरी हुग्रा कि ग्रन्यथा इसका ग्रथ यह होता कि वहा कोई न कोई पदाथ ग्रवश्य होना चाहिए। ग्रब वे यह कहते हैं कि पदाथ का मस्तिष्क के साथ एक ग्रधूरा सम्बन्ध होता है। इसस वे यह बतलाना चाहते हैं कि कुछ मामलों म सिवाय मस्तिष्क के और कुछ मौजूद नहीं रहता। परन्तु ब्रेन्टानो क ग्रालोचक कहते हैं कि उन्होंने ग्रधूरा सम्बन्ध इसलिए गढा है कि व दोनो विश्वो को इसम ले ग्रायें, यह मान भी लें और न भी मानें कि मस्तिष्क और उसके पदार्थों म कोई भेद है। इसके द्वारा कार्टेजियन भ्रमसिद्धात कि जिस पदाथ की स्वतन्त्र सत्ता है, और जो केवल मस्तिष्क म ही विद्यमान हैं, य दोनो ग्रलग ग्रलग हैं भी सिद्ध हो जाता है जिसे ग्राधुनिक वस्तुनिष्ठावाद टालना चाहता है।

सभी पदाथ उसी तरह वास्तविक होने चाहिए जिस तरह हरी पत्ती वास्तविक है। एक बार हम अपना यह पूर्वाग्रह दाशनिक मन के अनुपयुक्त मानकर त्याग दें तो जाच पडताल का एक विस्तृत क्षेत्र जिसम पदार्थों के स्वरूप और उनकी विभिन्न वत्तियो को जानन का माग हमार समक्ष चिरप्रतीक्षित भूमि की भाति खुला हो जाएगा।

पदार्थों म याप्त भेदो म स एक भेद विशेष महत्व का है। यह भेद उन पदार्थों को व्यक्त करता है जो या तो वस्तुमूलक (आब्जेक्टिव) है या अवस्तुमूलक सुविधा के लिए ऐसे पदार्थों को जिनका कोई आधार नही है, हम पदाथ मात्र' की सज्ञा देते हैं। किन्तु एक पदाथ मात्र जसे एक सुनहरा पहाड' अस्तित्वशील हो भी सकता है और नही भी किन्तु इसके सबध म यह कहना निरी बकवास होगी कि आया वह स्थिति या एक तथ्य' है, अथवा नही। इसके विपरीत एक वस्तुमूलक पदाथ जस 'सुनहरे पहाडो का अस्तित्व' का, अनुभूति के जरिए होना सिद्ध नही किया जा सकता, यद्यपि एक सूक्ष्म पदाथ होने के कारण वह भावशील तो है ही। किन्तु तब भी वह या तो एक तथ्य है अथवा नही।

किसी 'वस्तु मूलक' की प्रकृति उस समय बडी सरलता से देखी जा सकती है जब हम उस पर किसी वाक्य के अथ के रूप म विचार करें न कि केवल उसके अभिधाय रूप म ही और न उस मानसिक क्रिया के रूप म जिसम से वह प्रकटा है बल्कि यह देखकर भी कि वह क्या अथ व्यक्त करता है। यदि अब हम पूछें 'एक सुनहरा पहाड अस्तित्वशील नही है' यह वाक्य किस विषय के बारे म है? तो समवतया इसका सब सुलभ उत्तर सुनहरा पवत' ही होगा और मीनोग के मतानुसार, यह उत्तर समझ मे आने योग्य तो है ही। और चू कि यह बोधगम्य है, हम यह निष्कष निकाल सकते हैं, कि पदाथ मात्र भी होते हैं। और वे यही हैं, जिन्हे वाक्यो अथवा शब्दो द्वारा मूत रूप मिल रहा है। लेकिन इस तरह यह तथ्य प्रकट नही होगा कि सुनहरा पहाड' और सुनहरा पहाड अस्तित्वशील नही है,' म क्या अन्तर है? यह भेद मालुम करने के लिए हम यह मानने के लिए विवश होना पडेगा कि हमारा उपयुक्त वाक्य सुनहरे पहाडो' के न होने के विषय म ही है, केवल उनके होने के विषय म ही नही है। और इस तरह हमे वस्तुमूलको से पदाथ मात्र का अन्तर करने के लिए विवश होना पडेगा।

यही बात दूसरे ढग से भी कही जा सकती है—कि वस्तुमूलक हमारे निणय के उपकरण हैं, किन्तु बात पूणत खरी (एक्यूरेट) नही है। क्योकि हम बिना निणय के ही एक वस्तुमूलक के विषय मे सोच सकते हैं। हम उसकी कल्पना कर सकते हैं। उसे अस्तित्वशील मानकर उस पर विचार कर सकते हैं—बिना उसे स्वीकृति या अस्वीकृति दिए। जबकि निणय करते समय ऐसा करना सम्भव नहीं।

मैं यह मान सकता हू कि हिटलर अभी तक भी जीवित है। उसके जीवित होने के सम्बन्ध मे विचार कर सकता हू बिना यह स्वीकार, या अस्वीकार किये, कि वह वास्तव म जीवित है या नही। एक जीवित हिटलर के अस्तित्व का वस्तुमूलक उसी प्रकार होगा, जसा उस समय होता जब मैं हिटलर के जीवित होने के बारे म कोई निर्णय देता! किन्तु यहा मानसिक क्रिया केवल इस बात को मान लेने से प्रारम हुई है। यह कोई निर्णय' नही है। एक मान्यता (दे १६०२ म प्रकाशित निबध प्रॉन सपोजल्स) निर्णय और बोधगम्यता के बीच की स्थिति है। एक प्रतिनिधिकरण की भांति यह न तो कुछ स्वीकार करता है और न कुछ अस्वीकार और निर्णय की तरह यह एक वस्तुमूलक की ओर गतिशील है।

वस्तुमूलक को इस प्रकार वर्णित करके हम बहुत तरह के प्रश्न पूछ सकते है। मीनोंग की दृष्टि मे मूल प्रश्न यह है कि यह तथ्य है अथवा नही। हम सबसे ऊपर जिस बात का ज्ञान हासिल करना चाहते है, वह यही है कि क्या यह एक तथ्य है कि हिटलर जीवित है? किन्तु इसके अतिरिक्त हम इसके साथ ही यह भी तो पूछ सकते हैं कि यह अवस्था आवश्यक सम्भाव्य या सभव भी है अथवा नही? ये ही वस्तुमूलक के अग है, उस मानसिक क्रिया के नही—जो उस सम्बन्ध म लागू हुई है। यह कहना कि जीवित हिटलर का अस्तित्व एक सभावना है उस वस्तुमूलक के ही किसी अग की ओर सकेत करना है। उदाहरण के लिए इसका केवल यही अर्थ नही है कि हम उसके मर जाने' के प्रति सदेह है। वस्तुमूलक भी या तो सत्य अथवा दोषपूर्ण होते है।

सत्य मीनोंग की दृष्टि मे तथ्यात्मकता स दूसरे दर्जे पर है। सत्य म दो तरह के सदर्भ होते है—पहला वस्तु मूलक को तथ्यात्मकता का दूसरा उसम यह तथ्य है, कि किसी न किसी ने प्रस्तुत वस्तु मूलक के तथ्यात्मक होने का प्रमाणीकृत कर दिया है। एक वस्तुमूलक या तो तथ्यात्मक अथवा अतथ्यात्मक होता है और जब तक उसे वसा सिद्ध नही कर दिया जाए तब तक उसका सत्य होना भी सिद्ध नही होता। यह एक तथ्य भी हो सकता है और नही भी कि हिटलर जीवित है। और इसका उस प्रश्न स कोई सरोकार नही, कि किसी न हिटलर के जीवित होने को सिद्ध किया है या नही। किन्तु यह कहना कि उसका जीवित होना सत्य है यह सिद्ध करेगा कि किसी न किसी न अवश्य ही हिटलर को जीवित देखा है क्योंकि सत्य उतने ही समय तक रहेगे जिस समय तक मानव जाति जीवित रहेगी जबकि तथ्य इस प्रकार मानवजाति के आधार के मुह जोही नही है। ऐसी बहुत सी बातें जिन्हे दार्शनिको ने शाश्वत सत्य मानकर कही हैं वे सब तथ्यो के विषय मे कही हुई बातें ही है।

तब हम किस प्रकार एक वस्तु मूलक की तथ्यात्मकता की पहचान करेगे? मीनोंग का उत्तर है कि हमारे कुछ निर्णय एक विचित्र प्रकार के होते हैं और ये

गवाह अथवा साक्षी" प्रस्तुत करते हैं। ये निर्णय उन वस्तु मूलकों की ओर निर्देशित कर दिए जाते हैं, जो तथ्यात्मक होते हैं। गवाह निर्णय का मूलभूत अंग है। डेकार्ट के विशदता एवं एकपरकता (डिस्टिंक्टनेस) के सिद्धान्त से वे काफी मेल खाते हैं। मीनोंग यह नहीं कहना चाहते कि वस्तु-मूलक उसी समय तथ्यात्मक होते हैं, जब सामान्यतया उनके गवाह हमारे पास हों। एम गवाह, किन्हीं अन्य तथ्यों की ओर इंगित करेंगे और फिर यह प्रश्न बना रहेगा कि हमने यह कैसे जाना कि वे तथ्य हैं। यह बाधा उस समय हटाई जा सकती, जब हमारे कुछ निर्णय अपने आप ही साक्षी भी प्रस्तुत करें।

मीनोंग के दृष्टिकोण के विषय में, इस संबंध में तो काफी कहा जा चुका है कि किस प्रकार उनकी विचारधारा ने ब्रितानी दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया चाहे यहां उनकी सूक्ष्मता एवं अन्तरंग दृष्टि के प्रति हम न्याय न कर सके हों। पहले स्थान पर उनके द्वारा तथ्यों, वस्तुओं, अंगों समष्टियों, संबंधसूचकों, भाव भेदों आदि की वस्तु मूलकता बड़े ही अच्छे ढंग से मीनोंग द्वारा चर्चित हुई है। इनमें से किसी को भी मन का अंग नहीं माना गया है, जो इनका विचार करता है और उन्हें स्वीकृति देता है। लेकिन दूसरे स्थान पर ही यह वस्तुपरकता बड़ी कीमत देकर कायम रखी गई है। ऐसा लगता है यह ब्रह्माण्ड विभिन्न निर्मायिका शक्तियों द्वारा बना है और उनमें विचित्रतम धातुएं हैं। उदाहरण के लिए यह इस तथ्य को अपने में समाहित करता है, कि 'सुनहरे पहाड़" सुनहरे होते हैं। और इसके साथ ही यह तथ्य कि वे अनस्तित्वशील हैं उसी तथ्य के समान कि मनुष्य मरणशील हैं। इसके कुछ मूलभूत तो अस्तित्वशील है किन्तु वे बिना अस्तित्व के ही सत्य हैं और कुछ अन्य ऐसे हैं जो न अस्तित्वशील ही हैं और न सत्य ही। दार्शनिक लोग यह पूछते हैं कि क्या यह संभव था कि आत्मपरकता को इन विचित्र और अविश्वसनीय परिणामों पर पहुंचने के पूर्व ही खण्डित किया जा सके ?

जिसे हम निर्णय का सामान्य सिद्धान्त कह सकते हैं उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे निर्णय आते हैं, जिन्हें वैयक्तिक मन के इतिहास की घटना समझी जाती है। ऐसे शब्द भी हैं जिनसे अभिव्यक्ति मिलती है और ऐसा एक संसार भी है जिसमें निर्णय या तो विचार उत्पन्न करते हैं या बाधा डालते हैं अथवा उन्हें एक साथ बांध देते हैं। इसी अंतिम बिन्दु पर प्रमुख विवाद खड़ा हुआ है किन्तु यह एक वस्तु मूलक मानसिक क्रिया ही है। न शब्दों का सम्मिलित रूप है और न आवश्यक रूप से एक तथ्य ही है। यदि एक ही उदाहरण लें जेम्स ने जिसके विरोध में तत्काल आवाज उठाई थी निश्चय ही सत्य किसी तीसरे जगत में निवास नहीं करता जो वास्तविकता, वचनों और विश्वासों से अलग कहीं हो।' (उन्होंने अपने एक साथी को लिखे पत्र में यह व्यक्त किया था) मैं चाहता हूं कि तुम इस प्रकार की मान्यता (सपोजल) के अर्द्ध नारों को भूल जाओ जिन्हें तुम्हारे ऊपर मुफ

मीनांग ने तथा उसके अंग्रेजी अनुयायियो ने डाल रखा है। मीनांग के अंग्रेजी अनुयायी इस प्रकार कहेंगे कि कम से कम मीनोंग ने तो महत्वपूर्ण और अवहेलना-प्राप्त तथ्यों को प्रबल रूप में स्थापित किया है। हमारा विश्वास कोई मानसिक घटना नहीं है और चूंकि यह सही अथवा गलत होसकता है यह एक सत्य नहीं है। लेकिन इसके साथ ही जेम्स द्वारा प्रस्तुत तीसरे जगत के विचार से वे भी बतरतीब ढंग से नाराज हुए थे।

एडमण्ड हुसल[1] के संघटनवाद में भी ब्रेण्टानो का प्रभाव देखा जा सकता है। किन्तु इस संबंध में कि उन पर वह प्रभाव किस तरह का रहा है आज भी लोगों में परस्पर मतभेद है। अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान जब वे मैसारिक और ब्रेण्टानो के संरक्षण में काम कर रहे थे उस समय भी उनका आवासस्थान जर्मनी था, आस्ट्रिया नहीं। और हम देखेंगे कि धीरे धीरे वे जर्मन प्रत्ययवादी परम्परा की ओर किस प्रकार लौटने लगे थे। उन पर आरंभ में कुछ दिनों तक ब्रितानी अनुभववाद का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा था। हुसल की आरंभिक रचनाओं में ब्रेण्टानो का वह प्रभाव काफी स्पष्ट है।

मीनोंग की ही भांति हुसल भी ब्रेण्टानो द्वारा की गई मनोविज्ञान की इस मोहयुक्त व्याख्या से असहमत थे कि वह सर्वोच्च विज्ञान है। १८६१ में प्रकाशित उनकी पहली महत्वपूर्ण कृति फिलोसोफी आव अरिथमेटिक में उन्होंने गणित के सूत्रों का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के जरिए उपयोग किए जा सकने की संभावना बताई है और उन्होंने उसका संबंध, तर्कशास्त्र में तो समुचित ढंग से जोड़ ही दिया है। लेकिन उन्होंने यह प्रोजेक्ट शीघ्र ही त्याग दिया। 1900-1901 में प्रकाशित

1 एम० फारबर कृत द फाउण्डेशंस आव फिनोमेनोलोजी एडमण्ड हुसल एण्ड द क्वेस्ट फोर ए रिगरस फिलोसोफी (1943) एवं 1940 में संकलित फिलोसोफीकल ऐसेज इन मेमोरी आव एडमण्ड हुसल आर०आई०पी० का हुसल विशेषांक (1939) और उसमें प्रस्तुत पुस्तक सूची जरनल आव फिलोसोफी में प्रकाशित निबंध (1939), बासार्के द्वारा प्रस्तुत आइडीन का माइण्ड में प्रकाशित रिव्यू (1914), जी० रा ल एच० होजज एच० एवटन द्वारा पी० ए० एस० एस 1932 में प्रकाशित फिनोमेनोलोजी, डब्लू आर पी गिबसन कृत द प्रोबलेम आव रीयल एण्ड आइडियल इन फिनोमेनोलोजी आव हुसल मा ण्ड 1915) जे० मेक स्टीवर्ट कृत हुसलस फिनोमेनालोजी ए० जे० पी० 1933-4, ए० चण्डलर कृत प्रोफसर हुसलस प्रोग्राम आव फिलोसोफीकल रिफोर्म (पी० आर० 1917), सी वी सलमन कृत द स्टार्टिंग पोइण्ट आव हुसल्स फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1929), पी० पी० आर० में 940 में प्रकाशित निबंध ई० पी० वल्स कृत द फिलोसोफी आफ एडमण्ड हुसल (1939), एटयूडस फिलोसोफीक्स नामक पत्रिका का हुसल विशेषांक (1954)

उनकी कृति लोजीकल इन्वस्टीगेशन्स के प्रथम भाग में विद्यमान प्रोलेगोमेना टू प्योर लोजिक विशेष रूप से मनस्तत्ववाद के विरोध में एक सुनियोजित कृति है। उनकी इस कृति में तार्किक और गणित संबंधी निष्कर्षों को मनोवैज्ञानिक प्रमेयों पर खड़ा किया गया है।[1]

अब विशेषतः मिल को इस विघटन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। यह सब उनके द्वारा तर्कशास्त्र के लिए अपनायी गई मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही थी, जिस पर हुसर्ल अब प्रहार करते हैं–[2] अपनी पुस्तक सर विलियम हेमिल्टन्स फिलोसोफी

---

1 जहां तक गणित का ताल्लुक है, इस प्रतिक्रिया में ज्वाइतश्रिफ्ट फ्यूर फिलोसाफी उन्द फिलोक्रिटिक (1894) में निकले फ्रेग के उन समीक्षण का भी हाथ था। फावर ने माना है कि हुसर्ल ने अपने आपको मनस्तत्ववाद से मुक्त करने में विलियम जेम्स से भी सहायता प्राप्त की। शायद जेम्स द्वारा द प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी में लिखे गए अध्याय 'नेससरी ट्रूथ्स' की ओर संकेत है, जिसमें मिल और स्पेन्सर के विपरीत जेम्स मानते हैं कि 'तर्कशास्त्र और गणित की मुख्य विषय-वस्तु है हमारे विचार के विषयों के बीच आदर्श एवम् आन्तरिक सम्बन्ध।' हुसर्ल ने अक्सर मनस्तत्ववाद की नेटाप कृत आलोचना का हवाला भी दिया है, जो नेटाप के द आब्जेक्टिव एण्ड सब्जेक्टिव फाउन्डेशन्स आव नालेज शीर्षक लेख में (फिलोसोफीश मोनातशेफ्ट 1887 में प्रकाशित) मिलती है। नेटाप और हुसर्ल में समानता के लिए द्रष्टव्य, फावर की उपयुक्त कृति।

2 जर्मनी में मनस्तत्ववाद के स्थापन का श्रेय जे एफ फ्राइज को दिया जाता है जिन्होंने न्यू क्रिटीक दर वर्नुफ्ट (1807) जैसी कृतियों में नवकान्तवाद की एक नई किस्म को जन्म दिया। इनमें 'क्रिटिक' पद्धति अनुभववादी मनोविज्ञान की ही प्रणाली मानी जाती है। यह प्रणाली इसकी जांच करती है कि कौन से कथन आवश्यक हैं। (इस आवश्यकता का औचित्य सिद्ध करने की जरूरत नहीं है, ऐसा फ्राइज मानते हैं।) लियोनार्ड नेलसन के नेतृत्व में नव फ्राइजियन दल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में फ्राइज का पुनरुत्थान किया। (नेलसन की कृतियों के आंशिक अंग्रेजी अनुवाद सोक्रेटिक मेथड एण्ड क्रिटिकल फिलोसोफी 1909 नाम से छपे हैं।) नेलसन ने अपने ग्रन्थ आन द सो काल्ड प्राब्लेम आव नोलेज में मनस्तत्ववाद पर हुसर्ल के आक्रमण का जवाब दिया। उनका तर्क है कि मनस्तत्ववाद के कथनों से हम आवश्यक कथनों को नहीं छांट सकते किन्तु मनस्तत्ववादी जांच द्वारा उन्हें जांच अवश्य सकते हैं क्योंकि उनमें से बहुत से संज्ञान (काग्नीशन) के रूप में छिपे रहते हैं। मनस्तत्ववाद के विरुद्ध हुसर्ल के तर्कों से ब्रेन्टानो भी सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने कहा है— 'ज्योंही कोई दार्शनिक यह नाम सुनता है वह राम राम जपने लगता है गोया यह बात कोई भूत–बाधा हो। यदि मनस्तत्ववाद का अर्थ "व्यक्तिनिष्ठावाद" (सब्जक्टिविज्म) है तो इस भूतबाधा मानने को ब्रेन्टानो तैयार हैं, किन्तु वे मानते हैं कि ज्ञान एक निर्णय है और निर्णय मस्तिष्क के क्षेत्र की चीज है।' (मनस्तत्ववाद पर उनका निबन्ध उनकी कृति साइकोलोजी, 1911, के ग्यारहवें परिशिष्ट में देखें।)

मे मिल ने तर्कशास्त्र के विषय मे यह लिखा है कि जहा तक तर्कशास्त्र का एक विज्ञान होने का प्रश्न है निश्चय ही उसके लिए उसे सैद्धान्तिक आधार, मनोविज्ञान मे उधार लेने होंगे। हुसल इस बात पर आपत्ति करते हैं कि मनोवैज्ञानिक नियम आगमनात्मक सामान्यीकरण से अधिक कुछ नही है। यही बात काण्ट ने क्रिटीक आव प्योर रीज़न मे पहले से ही अपने समय के मन-तर्कवाद की आलोचना करते समय लिख दी थी और इसी कारण, आगामी अनुभवो से सुधार लिए जाने की सभावना लिए रहते हैं जबकि तार्किक और गणित सबधी सिद्धान्त 'आवश्यक' हैं। उनका 'सत्य' होना आवश्यक है, और इसी कारण उन्हे आगमन द्वारा प्राप्त प्रमेयो पर आधारित नही माना जा सकता। हुसल का नियतिवाद और उसके द्वारा तर्कशास्त्र के नियमो तथा गणित के मूलभूत सिद्धान्तो की सुरक्षा के उत्तरदायित्व ने उन्हे एक विशुद्ध तर्कशास्त्र की रचना करने की ओर प्रेरित किया, जो एक मात्र अनुभव सिद्ध अवस्था एव मनोवैज्ञानिक प्रमेयो से मुक्त था और इस तरह दोषयुक्त होने के सभी खतरो से सुरक्षित था।

इस तरह की योजना इससे पूर्व प्रतीकवादी तर्कशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की जा चुकी है। अपनी शिक्षा से हुसल एक गणित-शास्त्री थे और सभवत ऐसी आशा भी की जा सकती थी कि वे उनसे सहयोग करेंगे किन्तु वास्तव मे वे नवीन तर्कशास्त्र के बडे आलोचक थे–और वह भी उस तर्कशास्त्र के जो आदर्श की रचनाओं मे प्रदर्शित हुआ है। इस प्रकार का तर्कशास्त्र ऐसी धारणाओं से काम चला लेता है, जिन्हे कभी भी परीक्षित नही किया गया है। काण्ट के मतानुसार तो इस प्रकार का दृष्टिकोण कोई सन्तोषप्रद आलोचना ही प्रस्तुत करने मे अनुपयुक्त है। यह अपनी ही कार्य प्रणाली के आधारभूत तत्वो की जाच भी नही करता। अधिक से अधिक यह हमे एक विशिष्ट आगणक उपलब्ध करवा सकता है–जो हम एक विशिष्ट प्रकार की समस्या के विशिष्ट प्रकार के समाधान दे सके। किन्तु विशुद्ध तर्कशास्त्र को इससे भी आगे जाना आवश्यक है। यह तो प्रत्येक सामान्य आगमन को तथा प्रत्येक प्रकार की तार्किक युक्तियो को अपने मे समेट लेने वाला एक सिद्धान्त होना चाहिए। इस तरह यदि हुसल मिल के मनोविज्ञान मे ही तर्कशास्त्र का आधार खोजने की बात का विरोध करते हैं तो वह यह निष्कर्ष लेने के लिए कतई तैयार नही है कि तर्कशास्त्र एक स्वय पर्याप्त प्रणाली है जिसकी आधार भूमि उसकी अन्तरिम सगति ही है।

लौत्ज़े द्वारा प्रतिपादित तर्कशास्त्र का सिद्धान्त उनकी विचारधारा एव रुचि के अनुकूल था। लोज का विचार था कि तर्कशास्त्र, विचार सम्बन्धी एक आदर्श प्रस्तुत करता है और इस आदर्श मे प्रत्येक प्रकार की जाच पडताल किसी न किसी रूप मे लागू हो सकती है। इसी प्रकार हुसल विशुद्ध तर्कशास्त्र की परिभाषा आदर्श सिद्धान्तो की एक ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली कहकर देते हैं जो विशुद्ध रूप

म उन मौलिक धारणाओ पर आधारित है, जो प्रत्यक विज्ञान का अ ग बन गई हैं। य ही व धारणाए है जिनके कारण ही समान्य रूप से आज विज्ञान को विज्ञान मानन की सुविधा हो सकी है। य प्रत्यक प्रकार के तक म निहित हैं। इस तरह तकशास्त्र का न तो आगमन स ही उस प्रकार का तादात्म्य है जिस प्रकार प्रतीक वादी तकशास्त्र का है और न अनुभववादी विज्ञान की उस विवरणात्मक विधि स ही उसका कोई सबध है, जिस स आगमनात्मक *तकशास्त्रियो का सबध* रहा है।

प्रतीकवादी एव आगमनात्मक तकशास्त्र का मूल्य अपन ही क्षत्र म हो सकता है और उसी प्रकार विचार की प्रक्रिया म मनोवज्ञानिक अध्ययन का भी महत्व हो सकता है लेकिन व मुख्यत तकशास्त्र क क्षेत्र स नही आते क्योकि हुसल के अनुसार उसम अपक्षित निश्चयावस्था एव सामान्यीकरण की स्थितियो का अभाव है।

एक विशुद्ध तकशास्त्र, सघटनात्मक विधि क उपयोग की माग करता है। कई बार तो हुसल न सघटनवाद को, विवरणात्मक मनोविज्ञान का सज्ञा दी है और उनका यह प्रयास कि वे इनक उपयुक्त कोई पद ढूढ निकालेंगे हुसल और ब्रेण्टानो के बीच एक ऐतिहासिक कडी जोडन का काम करता है। लेकिन फिर भी उन दोनो म एक *बहुत बड़ा अ तर है। अपन एव ब्रेण्टानो के बीच के अ तर को वे एक* विवरणात्मक मनोविज्ञान का भेद मानते है। ब्रेण्टानो के लिए विवरणात्मक मनो विज्ञान, कवल आनुभविक जाच पडताल है। इसक विपरीत, हुसल का सघटनवाद न तो प्रकृतिविज्ञान का आधार ही ग्रहण करता है और न वह यह विधि ही अपनाता है, क्योकि उनके अनुसार न तो इस प्रकार की विधि से और न *वज्ञानिक दृष्टि स ही, विशुद्ध तकशास्त्र तक पहुचना सभव है। क्योकि ये* अनुभव तथ्यो के अतिरिक्त किसी स्वतत्र सिद्धान्त की सभावना को व्यक्त नही करते।

निश्चय ही इस प्रकार के विशुद्ध एव अनुभव-निरपेक्ष (नान इम्पीरीकल) तकशास्त्र की सभावना अपने आप म ही चुनौती का विषय है। इस सिद्धान्त का खण्डन, उन ऐतिहासिकता म विश्वास करन वाले महानुभावो द्वारा हो चुका था जिनका कहना था कि कोई सत्य एक विशिष्ट कालावधि म मनुष्य द्वारा विश्वास के लिए *स्वीकृत अवस्था क अतिरिक्त* और कोई स्थिति है ही नहीं और हुसल द्वारा लिखित प्रोलेगोमेना टू लोजिक म इसीलिए ऐतिहासिकता अथवा सास्कृतिक तारतम्य (कल्चरल रिलेटिविज्म) है। थियेटटस म प्लेटो की भाति हुसल यह कहते हैं कि इन तारताम्यवादियो के खण्डन का तरीका ही कुछ ऐसा है जिसमे पहले से ही अतिम सत्यो के स्वीकार करने की ध्वनि आती है। यदि उनके ही सिद्धान्त को सामने रखा

जाए तो इन तारतम्यवादियो को इसे अन्तिम सत्य मानना ही पडेगा ।[1]

इसके दूसरी ओर, अनुभववादी भी विशुद्ध तकशास्त्र क विचार का खण्डन करते है और उनको दिया गया हुसल का उत्तर हमे उनके सिद्धान्त के मूल म ले जाता है। परम्परागत अनुभववाद की दृष्टि से हम सीधे रूप म केवल विशिष्ट अस्तित्वो से ही परिचित हो पाते हैं। इसलिए कोई भी सामान्य सिद्धान्त उन्हीं अनुभवो के आधार पर निर्मित होना चाहिए यदि उसे किसी भी भाति अनुभव द्वारा दिए गए तथ्यो से कोई सबध रखना है। एक अनुभव निरपेक्ष सिद्धान्त इस तरह कवल वचारिक बुनावट के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता। हुसर्ल कवल मात्र इस मा यता का खण्डन करते हुए कहते है कि हम सीधे रूप स केवल विशिष्ट अस्तित्वो स ही परिचित हो पाते हैं। १९१३ म प्रकाशित अपनी पुस्तक आइडियाज फोर अ प्योर फिनोमेनोलोजी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल फिलोसोफी म उन्होंने अपने दृष्टिकोण का साराश बताते हुए कहा है कि सत्य ता यह है कि प्रत्यक आदमी प्रत्ययो अथवा सारतत्वो (एसे सेज) को देखने लग जाता है और निरतर उन्ह देखता रहता है। ये प्रत्यय या सारतत्व उस समय भी उनके साथ लग रहत हैं जब वह विचार कर रहा होता है और इस तरह ये लोग बिना सोचे समझे इन्ही के आधार पर निणयो पर पहुच जाते हैं। कि तु सद्धातिक दृष्टि स लोग ऐसी व्यवस्था से बचने की ही कोशिश करते हैं।

वे अपनी इस बात को ह्यूम की पुस्तक ट्रीटीज का उदाहरण दकर प्रस्तुत करते हैं। जब ह्यूम मानसिक क्रियाओ का श्रेणीकरण कर रह होत हैं और उसके अ तगत प्रत्यक्षीकरण, स्मरण करने एव कल्पना करने की क्रियाओ की चर्चा करते हैं तो उस समय वे प्राकृतिक पदार्थों की अस्तित्वशील एव अनस्तित्वशील अवस्था का सदभ ही नही देते कवल उसे उदाहरण के रूप में ही प्रस्तुत कर देते हैं। प्रत्यक्षीकरण क्रिया का विवरण वे प्रभाव ग्रहण करन जसे पर्यायो से दते हैं 'भौतिक पदार्थों के अमुक अमुक गुणो का अनुभव" यह विवरण नही दना चाहते। इस तरह ह्यूम इस बात का सकेत दे देत हैं कि प्रत्यक प्रकृतिविज्ञान क निष्कर्षों से बचकर भी किस प्रकार सिद्धान्त बनाया जा सकता है। व केवल दखने की क्रिया की

---

1 सदभ जॉन वाइल्ड कत निबन्ध हुसल क्रिटीक आव साइकोलाजिज्म इट्स हिस्टोरिक रूटस एण्ड कण्टेम्पोरेरी रेलेवेन्स (फिलोसोफीकल ऐसेज इन मेमोरी आव एडमण्ड हुसल सम्पादक एम फोयर)। हुसल के इन तर्कों का, जो सूक्ष्म एव गहन है विस्तृत अध्ययन करने के लिए भी वह पुस्तक देखें। इसी से उनकी तुलना प्लटो से की गई है। वाइल्ड समसामयिक अमरीकी यथार्थवादी विचारधारा के एक समुदाय के नेता हैं जो सारतत्वों एव समष्टियो की व्याख्या म हुसल का अनुसरण करते हैं। द्रष्टव्य द रिटन टू रीजन (1953–सम्पादक–वाइल्ड)

मूल प्रकृति अथवा उसके सारतत्वो (एसे सेज) की ओर ही हमारा ध्यान खीच पाने मे सफल होते हैं। इस सम्बन्ध म कोई भी परीक्षण और न कोई भौतिक दृष्टि ही उनकी इस विधि से कोई सगति रखती है जिसके जरिए सभवत इसे सिद्ध अथवा खण्डित किया जा सके। ह्यूम इसका कदाचित यह जवाब दें कि वे एक भौतिक विज्ञानशास्त्री नही होकर मनोवैज्ञानिक हैं। लकिन हुसल का कथन है कि यदि हम उनके द्वारा अपनायी गई विधि पर गौर करें, तो हम पाएगे व किसी भी अनुभववादी मनोवैज्ञानिक की हो भाति न तो केस हिस्ट्री की ही जाच करते हैं और न तुलनात्मक पर्यवेक्षणो का सदर्भ ही प्रस्तुत करते हैं, न ह्यूम अन्तर्दर्शन (इन्ट्रोस्पक्शन) मे ही कभी उस तरह निरत होते हैं, जसे एक अनुभववादी मनोवैज्ञानिक हुआ करता है। क्योकि जब ह्यूम अपने ही मन की जाच करते है तो वे किसी साक्षी की खोज नही करते जिससे अनुभवजन्य सामान्यीकरण की जाच की जा सके और न यह उनका उद्देश्य ही है कि व मानसिक क्रिया का एक विशिष्ट नमूना प्रस्तुत करें। उनका उद्देश्य तो प्रत्यक्षीकरण की क्रिया के सारतत्व का यथावत् ग्रहण करना है, न इससे कुछ ज्यादा, न कम। हुसल यह भी स्वीकार करते हैं कि यह करने के लिए ह्यूम को कुछ विशिष्ट प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओ पर विचार करना पडा था, किन्तु उस क्रिया स सबधित विशिष्टता का कोई मेल उनकी चेतना से नही था। उनका ध्यान तो मूलत उस क्रिया के दौरान प्रदर्शित हो जाने वाले सारतत्व म ही लगा रहा।[1]

इस पर भी यदि ह्यूम की इस तत्त्व सबधी धारणा को सही मान लिया जाय कि हमारे सारे अनुभव विशिष्ट अवस्थाओ को लेकर हो होते हैं जसे कि उन्होंने अपने ग्रथ ट्रीटीज म स्थापित भी की है तो भी हुसल के अनुसार उनकी प्रणाली दुर्बोध ही रहेगी। ह्यूम अपनी ही मान्यताओ के कारण इतने दृष्टिकोणहीन हो गए हैं कि वे जो कुछ करन जा रहे हैं, उसके फल को देख नही पाते। वे इस भ्रम के शिकार हो जाते हैं, कि वे एक अनुभववादी मनोवैज्ञानिक हैं, जबकि वास्तव मे वे विशुद्ध रूप से मन क सघटनात्मक विश्लेषण म ही निरत रहते हैं और विभिन्न मानसिक क्रियाओ के सारतत्वो का सीधा प्रत्त साक्ष्य करते हाते हैं। इसी तरह स्वय ओढी हुई दृष्टिहीनता ही दार्शनिको को यह ज्ञान करने से वचित रख देती है, कि जितनी बार भी वे अकों का परीक्षण करते हैं, वे उन्ह सामान्य धारणाए मानकर चलते हैं अनुभव से जानकर सामान्यीकृत करने की बात स्वीकार करके

---

1 तुलना के लिए देखें, जी राईल द्वारा प्रस्तुत अपनी रचनाओ का विवरण, द कन्सेप्ट आव माइण्ड (1949)। इसे धारणाओ की तार्किक भूमि निर्धारित करने का श्रेय दिया गया है। देखें, जी बजर द्वारा लिखित हुसल एट ह्यूम (आर० आई० पी० 1939) एव सी० वी० सेलमन कृत द सेन्ट्रल प्रोब्लेम आव डविड ह्यूम्स फिलोसोफी (1929)

नही और इसके अतिरिक्त भी दनन्दिन जीवन का यह सामान्य अनुभव था, कि ये वस्तु लाल है—इस तरह की सामान्य गुणात्मकता के प्रति अन्त साक्ष्य का भाव रखता है जो उसका सारतत्व' होती है। प्रत्येक उल्लखनीय दशन को तत्ववादी मान्यताओ से अपने को अलग कर लेना चाहिए। उस तो सामने प्रस्तुत हुई स्थिति की ही जाच पडताल करनी चाहिय और किसी भी भाति सीधे रूप स प्राप्त हो सकने वाल सारतत्व सबधी अनुभवो स उस तत्ववादी कल्पना म पडकर मार्गान्तरित नही होना चाहिए। 'सघटनवादी" होने की यही पहली शत है कि उपयुक्त मनकता वरती जाए।[1]

हसल की कृति लोजीकल इन्वस्टीगेशन्स की रचना इस तरह पूव धारणाओ से रहित पूव वज्ञानिक एव सघटनवादी दृष्टि स हल निकाल लेने का प्रयास है। और चू कि उपयुक्त कृति, विशुद्ध रूप से तार्किक है इसलिए उसका प्रकृति विज्ञानों से पूव होना तथा उनका अनुसरण न करना जरूरी हो जाता है। ब्रेण्टानो के सिद्धान्त की भाति उनकी ये जाच पडताल भी काफी जटिल है और सूक्ष्म भी, विशदीकरण स भरपूर है। अपनी दाशनिक शली, विषय चुनने की क्रिया एव सिद्धान्त-प्रकटन की क्षमता के कारण उन्होने बीसवी शताब्दी म प्रकटने वाली ब्रितानी विचारधारा का जसे एक प्रारूप दे दिया था। इसलिए उनकी विचारधारा के मूल बिन्दुओ का सार प्रस्तुत करना असमव है।

हसल की रुचियो एव उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए हमे प्रारम स उनकी इन रचनाओ का अध्ययन करना होगा। एक्सपेरिएन्स एण्ड मीनिंग यूनिवसल्स एण्ड एब्सट्रैक्शन, द अनालिसिस आव होल एण्ड पाट, द आइडिया आव ए प्योर ग्रामर[2] एव एक्सपीरिएन्स एण्ड कण्टेण्ट आदि।

हमेशा की भाति उनका मूल उद्देश्य यह प्रकट करना था कि अनुभववाद असमीचीन है। वे कथन के दो रूपो का इस प्रकार विभाजन करते हैं-किसी व्यक्ति विशष के जीवन घटना से सबधित कथन तथा वह आशय जो कोई व्यक्ति किसी कथन क माध्यम से व्यक्त करना चाहता है, इस पर भी यह समावना तो रहती ही है कि दो व्यक्ति एक ही आशय का कथन व्यक्त करें-उस समय उनम फक कवल शब्दो पर दिए गए बल उच्चारण की उसकी विधि और आवाज के भारीपन

---

1 सवप्रथम उनका प्रकाशन 1901 म हुआ था। लकिन हसल ने आशिक रूप से 1913 म उसे दुबारा लिखा था, त कि उनकी बाद की विचारधारा से भी वे मल खा सक। इस पुस्तक क पश्चात् उनकी धारणाओ म और भी विकास होता रहा है।

2 इस बात का विटिगस्टीन पर शायद कुछ प्रभाव पडा हो कम से कम तार्किक व्याकरण का विचार तो इसम प्रचलित ही था।

आदि से संबंधित हो सकता है। यहां आकर हुसल पूछते हैं कि क्या अनुभववादी इस बात का स्पष्टीकरण दे सकते हैं कि किस प्रकार दो कथन अपने आशय में एक ही भाव प्रस्तुत कर सकते हैं? अपने सामान्य नामकरण के सिद्धांत पर कदाचित् अनुभववादी को यह कहना पड़े कि आशयों का तादात्म्य कदाचित् इसके कारण प्रस्तुत हुआ है कि दोनों कथन कुछ अंशों में एक जैसे ही हैं, लेकिन हुसल आपत्ति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यदि हम समानताएं ढूंढने लगें तो इन प्रस्तुत कथनों में केवल स्वराघातों में ही समानता मिलेगी और यह समानता दो कथनों के बीच रही विशेष घटना के कारण ही संभव है। हम किसी भी प्रकार तार्किक रूप से एक सूत्र के बाद दूसरे सूत्र के जरिए कभी भी इन दो कथनों की तुलना से प्राप्त समान आशयों तक पहुंच पाने में असमर्थ हो जाएंगे। बस केवल उनके कहे जाने की समानता के अतिरिक्त हम और क्या पाएंगे?

हुसल का कहना है कि किसी कथन का अर्थ समझने के लिए सीधी अंतर्दृष्टि होनी चाहिए और इससे यही अर्थ निकलता है कि अर्थ अथवा आशय' एक ऐसी अवस्था है, जिसके विषय में विशेष अनुभवों से उत्पन्न ज्ञान को ही मूल आधार मानने वाले अनुभववादी कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सकते। तो भी विज्ञान के लिए सार्थकता का होना आवश्यक है। इसलिए एक महत्वपूर्ण बिंदु पर आकर अनुभववाद ढह जाता है। (यह एक निष्कर्ष था जिसके विरुद्ध बहुत से हुसल के अनुयायी भी विवाद करते रहे थे। "तार्किक वस्तुस्थितिवादी" विचारकों ने तो इस प्रकार के निष्कर्ष के विरोध का बीड़ा उठा लिया था और उसका उत्तर उन्होंने अनुभववादी आशय के सिद्धांत का विकास करके दिया।)

आशय' के अपने विश्लेषण से हुसल यह निष्कर्ष निकालते हैं, जिसे वे बाद तक कायम रखना चाहते रहे कि तर्क अंतर्दृष्टि पर आधारित है मनस्तत्ववादियों की तरह अनुभवजन्य सामान्यीकरण पर नहीं। क्योंकि तर्क का संबंध कथनों के आशय से अधिक है। केवल मात्र व्यक्तिगत रूप से कहे दिये गये निरर्थक कथनों में नहीं। दूसरे शब्दों में बोलजानो[1] के अनुसार यह तर्ककथनों (प्रोपोजीशन्स) का

1 बी० बोलजानो एक पादरी थे और प्रेग में धर्मदर्शन के व्याख्याता थे। 1819 में उन्हें राजनीतिक कारणों से वहां से पदच्युत कर दिया गया किंतु इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य तर्कशास्त्र एवं गणित दर्शन पर हुआ है। इंग्लैण्ड में वे अपनी कृति द पराडोक्सेज आव इनफिनिट (1851 में मरणोपरांत प्रकाशित) के कारण काफी विख्यात रहे। रसेल ने भी कई बार द प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स में इसका सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। किन्तु 1837 में प्रकाशित उनकी कृति विसेन्स चेफ्टलहर में तर्कशास्त्र सम्बन्धी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है, और हुसल ने भी इसी कारण उन्हें सर्वश्रेष्ठ तर्कशास्त्रियों में से एक माना है। इस पुस्तक में बोलजानो ने, हुसल की ही भांति विशुद्ध तर्कशास्त्र की स्थापना करने का प्रयास किया है

सिद्धान्त है और उन विभिन्न कथनों एवं निर्णयों को परस्पर जोड़ देता है, जिन्हें हम 'समानार्थक' मानते हैं। हम इस समय हुसल से पूछ सकते हैं कि यह 'तर्क, कथन' (प्रोपोज़ीशन) कहां विद्यमान है? उनका उत्तर है कि यह प्रश्न निरर्थक है उसी प्रकार, जिस प्रकार कोई पूछे कि 'लालिमा' कहां है? तर्क-कथन और समष्टियां कोई भावतत्व नहीं हैं जो वस्तुओं की भांति यहां वहां विद्यमान रहें। वे तो भावतत्वों के संगुम्फन मात्र हैं और सारतत्वों का संगृहीत रूप हैं। वे तो लाल वस्तुओं की ललाई हैं, और कथनों में से तर्ककथन है। इस विषय के तथ्य यही हैं कि हमें इनका सीधा अनुभव होता है। एक ऐसा अनुभव जो शेष अनुभवों की अपेक्षा एक विचित्र रूप से स्वतः प्रमाण है।[1] इस प्रकार के सारतत्वों से सम्बन्धित अंतःसाक्ष्य के समय हम एक ऐसे निश्चय पर पहुंच जाते हैं, जिसे प्राप्त करना अपने दोषपूर्ण सामान्यीकरणों द्वारा किसी भी अनुभववादी के लिए सम्भव नहीं है। इस

और उसे मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रहों से भी मुक्त माना है। तर्कशास्त्र उनके अनुसार तर्ककथनों का सिद्धांत है और तर्ककथन की परिभाषा ऐसे कथन से की गई है जो यह बताए कि अमुक वस्तु है या नहीं चाहे वह सत्य हो अथवा असत्य और इसी रूप में किसी विचार अथवा मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाए।

इस प्रकार एक तर्ककथन न तो शब्दों का समूह है और न एक विचार ही। और तर्कशास्त्र तो बिल्कुल ही उस परम्परागत परिभाषा से निकल चुका था जिसने उसे विचारों का विज्ञान कहा है। तर्ककथन इस तरह सामान्य कथनों से स्वतंत्र है लेकिन फिर भी वे कथनों के आशय को व्यक्त करते हैं। मीनोंग के वस्तुमूलकों (आब्जेक्टिव्स) से उनका नजदीक का साम्य दिखता है। पेराडोक्सेज आव द इनफिनिट के अंग्रेजी अनुवाद की एतिहासिक भूमिका देखने योग्य है। (19ˢ0। पी० आर० 1944 में प्रकाशित एच० आर० स्माट कृत बोल्जानो ज लोजिक द्रष्टव्य है। वाई बारहिलल कृत बोल्जानो ज प्रोपोजीशनल लोजिक आक० फर० मथेमेटीकल लोजिक 1952) एवं बोल्जानो ज डफीनीशन आव एनालिटिकल प्रोपोजीशन्स (मैथेडोस 19ₒ0)। हुसल और बोल्जानो के लिए देखें कारबर की उपयुक्त कृति एवं एच० फेल्स कृत बोल्जानो एण्ड हुसल (फलोस जेहर वुच डेर गोर्म्सजसेल स्चेफ 1926)

1 विशिष्ट टिप्पणियों एवं ग्रंथियों के लिए देखें स्पीगेलबर्ग कृत फिनोमिनोलोजी आव डाइरेक्ट ऐवीडेंस (पी० पी० आर० 1941) तुलनीय, मीनोंग द्वारा प्रस्तुत ऐवीडेन्स (साक्ष्य) एवं ब्रेन्टानो द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्षीकरण (परसेप्शन) के सिद्धान्त। प्लेटो एवं कार्टेजियन परम्परा में चर्चित हुए अस्तित्व एवं सारतत्वों में हुए अन्तर की बात भी उल्लेखनीय है। अभी हाल ही में लोजे ने अपनी कृति लाजिक में तात्कालिक निश्चिति के विचार को जिसे चाहे अंतःसाक्ष्य कहें अथवा और कुछ अस्तित्व में अवश्य ही है।

तरह विशुद्ध तर्क शास्त्र की आवश्यकता को हम महसूस कर सकते हैं, जिसका काम जाच पडताल के लिए आवश्यक आधारभूत सारतत्वो की परिपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करना है।

उनके द्वारा लिखित लोजिकल इन्वेस्टीगेशन्स एव विशेषकर प्रोलेगोमेना ट लोजिक न ही बहुत स एग्लो सेक्सन दार्शनिको के लिए हुसल का सही प्रतिनिधित्व किया है। अपेक्षाकृत बहुत कम ब्रितानी दार्शनिक आगे आने वाले अन्धकार युक्त माग म हुसल का अनुसरण करने को तयार थ, यद्यपि जमनी सयुक्त राज्य अमरीका एव दक्षिणी अमरीका म उनकी विचारधारा का काफी प्रभाव पडा था।

इसके बावजूद भी हुसल का विचार था, कि लोजीकल इन्वेस्टीगेशन्स मे प्रस्तुत विचारधारा अपने आप म अस्थायी थी। जब सवप्रथम इसका प्रकाशन हुआ था, तो नवकाण्टवादी विचारक नेटाप न उस पर यह टिप्पणी की थी (काण्ट स्टडीयन 1901) कि हुसल न साधारण जगत की स्थिति को बिल्कुल अन्धकार म रख दिया है और सारतत्वो स उसका क्या सबध था यह भी स्पष्ट नहीं किया है। और यदि वह उनका स्पष्टीकरण करेंगे तो निश्चय ही उन्ह काण्ट-सदृश तत्त्वदशन अपनाना पडेगा। हुसल इस टिप्पणी से सहमत थ किन्तु तत्त्वदशन की एवज मे व पारवर्ती सघटनवाद (ट्रान्सन्डेन्टल फिनामनोलाजी) और एक एस समष्टि दर्शन को अपनाना चाहते हैं जो सभी विज्ञानो को अपनी विधि म सुधार करने के लिए मसाला तयार करके द सके। यह बात उन्होंने एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका (चौदहवा सस्करण, 1929) म लिखे सघटनवाद पर अपन निबन्ध म व्यक्त की है।

हुसल की रुचि के प्रतिकूल लोजिकल इन्वेस्टीगेशन्स की आवश्यकता स अधिक अनुभववादी रचना हो गई थी। व अभी भी एक विशुद्ध दशन की स्थापना क सबध म सतुष्ट नहीं हो पाए थे। अब तक अपन द्वारा अपनायी गयी ह्यूमवादी प्रणाली क आगे जाना अब परमावश्यक हो गया था। यद्यपि उन्होंन पहले ही ह्यूम के इस सिद्धान्त को त्याग दिया था, कि यूनिवसल अथवा सारतत्व, अनुभवो से प्राप्त सामान्यीकरण ही हैं। उनका दशन फिर भी अनुभववादी ही था, क्योंकि वे अनुभव को उसके यथावत् रूप म स्वीकृति देना चाहत थ और उसी के आधार पर उन अनुभवो म निहित तार्किक आकार की खोज करत थे। उनकी इच्छा यही थी कि वे, अपन द्वारा अपनायी गई प्रणाली का औचित्य यह दिखाकर प्रस्तुत करें कि वस्तुओं को उसी रूप से स्वीकार करना, जसी वे हमारी चेतना मे प्रस्तुत होती हैं, उन्ह अपन वास्तविक रूप म देखना ही है।

जमनी प्रत्ययवादी परम्परा म व एक परमात्मा की खोज करना चाहते थे, जो सभी आलोचना से परे हो और जिस पर हमारा सम्पूर्ण ज्ञान आधारित रह सके।

इसके लिए उन्होंने डेकार्ट की विचारधारा से सहायता प्राप्त करनी चाही और विशेष रूप से कोर्टेजियन 'सन्देह की प्रणाली' को स्वीकृति दी।[1] मेडीटेशन्स मे डेकार्ट ने बाह्य जगत की उन सभी अवस्थाओं पर सन्देह व्यक्त किया है, जिन पर सन्देह किया जा सकता है और अन्त मे वे एक ऐसे सन्देहहीन स्थल पर पहुचना चाहते थे, जो सन्देहातीत हो। 1913 मे आइडियाज मे प्रवर्तित की गयी हुसल की 'कोष्ठ विधि' (मेथड ग्राव ब्रकेटिंग मे) इसी पेटन का अनुसरण किया है। वे इस वास्तविक जगत को कोष्ठक मे डालकर विचार प्रारम्भ करते हैं। वे वास्तव में उस पर सन्देह नहीं करते, केवल कार्टेजियन तरीके से अपने निणय का स्थगन कर देते हैं। यह कदम उठाकर वे प्राकृतिक पदार्थों का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक विज्ञानको, भौतिकी एव रसायनशास्त्र को तो स्वत ही स्थगित कर देते हैं। साथ ही साथ वे मनोविज्ञान एव समाजशास्त्र को भी इसलिए स्थगित कर देते हैं क्योंकि ये मनुष्य को एक प्राकृतिक पदाथ ही मानते हैं।

इतने व्यापक रूप से कोष्ठकीकरण करना, जिससे कोई वस्तु मुक्त न रहे आपत्ति का कारण बन सकता है। यदि ऐसा ही होता, तो प्रकृति विज्ञान ही अन्तिम होते। इनके मिथ्यात्व पर विचार करना ही असभव होता और इसीलिए इनके सिद्धान्तो को किसी अधिक निश्चयात्मक आधार या सहायता की अपेक्षा नहीं होती। किन्तु वास्तव मे हुसल का मत यह है कि चेतना का अपना एक स्वत्व (बीग) होता है जो अपनी परम विचित्रता के कारण सघटनवादी सबधो मे असम्पृक्त है। डेकार्ट की भाति वे यह विचार लेते हैं कि चेतना नाम की कोई वस्तु जब अन्य कुछ न रहे तो भी अस्तित्वमान हो सकती है और जो प्राकृतिक पदार्थों की श्रेणी मे नही आती। क्योंकि किसी अनुभववादी विज्ञान की विषयवस्तु वह हो नही सकती। बहुत मे समसामयिक ब्रितानी दाशनिक इस प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाने के लिए तयार नही थे और उनकी दृष्टि मे तो पारवर्ती सघटनवाद को त्याग दने का यही पर्याप्त कारण भी हो सकता है।

हुसल आगे कहते हैं कि चेतना का अस्तित्व उस समय भी असपृक्त रहता है जब हम तर्कविज्ञानो एव गणित तथा आगमनात्मक भौतिकविज्ञानो से सबधित अपने निष्कर्षों का स्थगन ही क्यों न कर दें। यदि गणित और तकशास्त्र न भी रह, तो भी चेतना तो रहेगी ही। अब हमने चेतना के प्रत्यक पारवर्ती क्रिया-सबधी हमारे निणयो का स्थगन कर दिया है। अर्थात् एक ऐसी क्रिया का जिसका अपने से परे कोई और भाव हो तो भी इसके बावजूद, हमारे सामने उन अन्तर्जात क्रियाओं (इम्मेनेन्ट एक्ट) की चर्चा करना शेष रह ही जाता है जो अपने विधेय को अपने

1 द्रष्टव्य जे० एफ० पुल्टन द्वारा लिखित द कार्टेजियनिज्म आव फिनोमनोलोजी (पी० आर० 1940

मे ही समाहित किए है। ऐसा मान लेना भी कार्टेजियन पद्धति का स्मरण कराना है कि चेतना की कुछ ऐसी क्रियाएं हैं, जो अपने विधेय के रूप मे ऐसी वस्तुओ का स्मरण कराती हैं जो चेतना की ही किसी दूसरी अवस्था को उजागर करती हैं। इसलिए ऐसी क्रियाओ का अनुमान लगाना तकसगत है जो सभी पदार्थों के अस्तित्व पोछ दिए जाने पर भी उस समय तक विद्यमान रहती हैं, जब तक स्वय चेतना विलीन न हो जाय।

और ऐसी क्रियाओ का अस्तित्व ही हमारा प्राथमिक निश्चय-भाव है। बिना विरोधाभास के हम अपनी ही चेतना को नकार नही सकते, जब कि किसी अन्य पदाथ को जो विचार क्रिया का अग नही, विचार द्वारा नकार सकते हैं। हुसल की भाषा मे हम गणित सबधी सत्य के निणय का स्थगन कर सकते हैं, *लेकिन हम अपने निणय का स्थगन नही कर सकते यह जानकर भी, कि हम उस निणय क योग्य हैं अथवा नही।*

कोष्ठकीकरण की प्रक्रिया हमे चेतना के अस्तित्व की ओर ही अभिमुख करती है और हम यह आभास देती है कि यही "परमात्म" भाव है, एक ऐसी वस्तु का भाव, जिसका अस्तित्व अनिवाय है, उस विचार द्वारा नकारना सभव नही है। उस परमात्म स हम पुन नये सिरे से भौतिक जगत के पदार्थों की ओर लौटकर आ सकते हैं। अब हम उन पर पारवर्ती सघटनवाद के माध्यम से विचार करते हैं और उन्हे वही दर्जा देते हैं जस व हमारी चेतना-क्रम मे आकर घटित होते हैं। हम इस तरह प्रकति विज्ञान क निष्कर्षों को मा यता देने की आवश्यकता भी महसूस नही करते जिनके समक्ष पदाथ पूणत चेतना से भिन्न हैं। इस तरह हम अपनी उपयु क्त बात मानकर अर्थात् पदार्थों को चेतना पर आश्रित मानकर, अपनी जाच पडताल की निश्चिति एव शुद्धता की रक्षा कर सकते हैं। हम तब बिना पूर्वाग्रहो क आगे बढ़ते है और उसी पर विचार करते हैं जिसके विषय मे न सोचना सम्भव नही।

इस तरह उदाहरण के लिए समय सबधी सघटनवाद समय के उस रूप स ही सम्बद्ध है जिस रूप मे वह हमारी चेतना मे प्रवाहित दिखाई देता है। यह वाद अपने आपको जो कुछ प्रदत्त है उसी की व्याख्या में सीमित कर लेता है, और ये प्रदत्त स्थितियां नकारी न जा सकने वाल तथ्य होती हैं जस स्वरावली चेतना म एक स्वर के बाद दूसरे स्वर के रूप मे उभरती हैं और किसी भी रूप में वह अपने लिए किसी भी अस्थायी रहने वाले वैज्ञानिक निणय की मुह जोही नहीं रहती। इस प्रकार सघटनवाद, समय के ढाचे का वणन करता है, जो वास्तव मे चेतना में वसा ही प्रकटता है। इससे यह भी पता लगता है कि समय किन उपकरणों से बना है और कौन सी अवस्थाएं, समय को बताने वाली कही जाती

चाहिए । विधि के *नियमों* की भांति यह इस सत्य का उद्घाटन करता है कि *सामयिक सबध* अनियोजित हैं, प्रत्येक समय सबधी अनुभव को वर्णन करने वाली उसकी सामा य अवस्था का विस्तृत विवेचन करता है । सक्षेप म समाज का सघटनवाद किसी भी सामाजिक अनुभव के समावित ढाचे का विश्लेषण करने का प्रयास होगा । काण्ट द्वारा प्रस्तुत अनुभव की अवस्थाओ एव पारवर्ती सघटनवाद के *बीच उल्लेखनीय साम्य* दिखाई देता है । हसल फिर भी काण्ट की भांति केवल प्रकृति विज्ञान के आकार से ही सबद्ध नही हैं, किन्तु व किसी भी प्रकार चेतना म प्रस्तुत स्थिति का विश्लेषण करने स अवश्य ही सम्बद्ध थे ।

आइडियाज के अ तिम अ शो म तथा अपनी बाद की रचनाओ म पारवर्ती सघटनवाद की प्रवृत्ति के विषय म वे अधिक विस्तार स व्याख्या प्रस्तुत करत हैं । व उस पर हुई आलोचनाओ का भी उत्तर देते है और धीरे धीरे सघटनाओ के विश्लेषण का प्रणाली निर्माण करने की दिशा मे प्रवृत्त दिखाई देते हैं । उनके चरण चिन्हो पर बहुत स शिष्य चले । सवप्रथम यह दौर जमनी म चला और **एनुअल श्रोनीकल आव फिलोसोफी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल रिसच (भरबूक)** तथा अमरीकन दर्शन पर उनका प्रभाव **फिलोसोफी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल रिसच** (1940)[1] म देखा जा सकता है । जहा तक किसी विषय की शरीररचना का प्रश्न है, वहा तक तो उसके विश्लेषण म इन लोगो ने हसल का अनुसरण किया जसे मन के मूलभूत ढाचे के विषय म समाज के विषय म, धम एव प्रकृति के विषय मे । लेकिन बहुत स आलोचको स जो उनकी आरमिक कृतियो के प्रशसक भी थे यह शिकायत की है, कि अपनी बाद की रचनाओ म हुसर्ल प्रत्ययवाद की ओर मुड गए है और उन्होने पूर्णत वस्तुपरकता पर बल देना भी छोड दिया है जिसे उन्होने प्रबल रूप स **लोजीकल इन्वस्टीगेशन्स** म प्रस्तुत किया था ।

मेडीटेशन्स कोर्टेसिएनिस (1952) म हुसर्ल ने अपने विरोध म लगाए गए एकात्मवाद (सोलीपसिज्म) के अभियोग से अपना बचाव किया है । उनका प्रारंभिक बिन्दु सामान्य चेतना है किसी विशेष व्यक्ति की चेतना नही । लकिन वे जमन वस्तु-

---

1 हुसल के प्रभाव म लिखे गए बहुत से ग्रथो म है एम शेलर कृत **डर फोर्मेलिस्मस इन डेर एथिक** (1913–16) एव एफ काफमैन की **द मैथेडोलोजी आव द सोशल साइन्सेज** (1936) । अ ग्रेजी अनुवाद 1944, । फ्रास मे सघटनवाद के प्रभाव के लिए जे० हेरिंग द्वारा लिखित निबध देखें **फिलोसोफीकल थोट इन फ्रास एण्ड यूनाइटेड स्टेटस** म 1950 सपादक एम फारबर । अमरीका म हुए प्रभाव के लिए फारबर द्वारा उसी ग्र थ म लिखा हुआ निबध **डस्क्रिप्टिव फिलोसाफी एण्ड ह्यूमन एक्जिस्टेन्स** ।

परक प्रत्ययवाद की परम्परा से साम्य रखने की बात को स्वीकारते हैं और प्रत्यय वाद को सवप्रथम वनानिक आधार दे सकने में सफल हुए हैं।

ब्रेण्टानो द्वारा पदाथ' पर दिए गए बल ने, जमनी मे दो विभिन्न प्रकार की विचार रेखाओं का विकास किया। मीनोंग ने वस्तुपरकता का दामन पकड लिया और एक वस्तुपरक ब्रह्माण्ड की रचना से अपने दशन का समापन भी किया चाहे उनका यह जगत् अपने आपमे कितना ही विचित्र क्या न हो। जबकि हुसल इस प्रयास म, कि एक वास्तविक पूर्वाग्रह मुक्त वस्तुपरक तकशास्त्र की स्थापना की जाय, अपनी दिशा पुन प्रत्ययवाद की ओर मोड देते हैं।

इसी बीच मे ब्रेण्टानो के प्रभाव को इंग्लण्ड मे सवप्रथम प्रकटानेवालो मे जी० एफ० स्टाउट का नाम लिया जा सकता है[1] स्टाउट केम्ब्रिज के व्यक्ति थ और हेनरी सिगविक के तथा जेम्स वाड क शिष्य थे। सिगविक,[2] जो एक प्रभावशाली शिक्षक थे, पर नीति एव राजनीति दशन पर लिखी गई अपनी पुस्तकों के कारण बहुत विख्यात हुए। विशुद्ध रूप से दशन पर उन्होंने बहुत कम लिखा था।

फिलोसोफी पर लिखा गया उनकी रचनाओं का जो भाग उनके मरणोप रान्त प्रकाशित हुआ, वह था फिलोसोफी इटस स्कोप एण्ड रिलेशन्स (1902) एव लेक्चस आन द फिलोसोफी आव काण्ट एण्ड अदर फिलोसोफीकल लेक्चस एण्ड ऐसेज (1905)। य दोना ही ग्रन्थ प्रथम कोटि के नही हैं फिर भी इनम से कुछ बातें अच्छी हैं। 'इतिहासवाद' पर प्रस्तुत उनकी जीवन्त समालोचना और सामान्य बुद्धि का उनक द्वारा किया गया बचाव, इन दो के कारण ही उन्नसवी शती के प्रत्ययवाद के विरुद्ध मजबूती से खडे रहने म व सफल रहे थे। स्टाउट, जिनकी चर्चा हम बाद मे करेंगे, प्रत्ययवाद की ओर अधिक प्रवृत्त थ। इनका प्रत्ययवाद, सामान्य बुद्धि के आधार पर खडा था। केम्ब्रिज परम्परा म सामान्य बुद्धि के प्रति वह अपील,

1 देखें सी ए मेस के स्मरणाश (पो बी, ए 1945) सी डी ब्राड (माइण्ड 1945), आर० नाइट (ब्रि० जनल० एड० साइकोलोजी 1946), जे० पासमूर (स्टाउटस गोड एण्ड नेचर 1952)।

2 देखें ए० एस० एव ई० एम० एस० के स्मरणांश (1906) ज० ब्राइस हेनरी सिगविक, स्टडीज इन कन्टेम्पोरेरी बायोग्राफी म (1903) एल० स्टीफेन कृत हेनरी सिगविक माइड 1901) और डी० एन० बी० म भी, सिगविक पर उनका लेख है। सी० डी० ब्रोड कृत एथिक्स एण्ड द हिस्ट्री आव फिलोसोफी (1952) म हेनरी सिगविक पर लिखा लेख।

उस विचारधारा का उसी तरह एक उल्लेखनीय अग बन गई थी, जिस तरह वह स्काटलण्ड के दाशनिको मे प्रचलित है। ब्रेण्टाना के दशन का यही ग्र श था जिसने स्टाउट को प्रभावित किया था।

ब्रेण्टानो के साथ रहे अपने सबधो की चर्चा वे अपनी पुस्तक एनालिटीकल साइकोलोजी (1896 मे करते है। वहा वे ब्रेण्टानो द्वारा चेतना के दृष्टिकोण की परिभाषा को स्वीकार भी करते हैं। मानसिक क्रिया' नामक मुहावरे पर स्टा उट का विश्वास नही था और उन्होने इस बात को स्वीकारने से साफ इ कार कर दिया, कि स्पष्टत 'जानने की कोई विशिष्ट क्रिया होती है' और वह चेतना द्वारा प्रदत्त पदाथ के सदम से कही भि न होती है। किन्तु फिर भी वे यह भेद स्वीकारने मे नही हिचके।

ट्वार्डोस्की द्वारा बाद मे किए गए विषयवस्तु एव पदाथ के भेद का जस इ ह पूर्वाभास हो गया था।[1] चेतना वृत्ति के विचार सदभ जो उनके अनु सार वयक्तिक चेतना का कोई वतमान रूप नही हैं, और चेतना के अभिवर्धित रूप जिसे वे प्रतिनिधिकरण कहते हैं के बीच के भेद को उन्होने पहले से ही विचार लिया था और यह भी कहा था कि ये ही अवस्थाए एक पदाथ की ओर प्रश्न हो जाने वाले विचार की दिशा एव परिभाषा बनाते है।

विचार के पदाथ एव चेतना द्वारा सदर्भित स्थिति के बीच रहा भेद और जिस प्रति नधिकरण के जरिए, चेतना इसका सदभ देती है स्टाउट की रुचि का उनके दशन मे आजीवन स्रोत बने रहे। फिर भी उनम बहुत से परिवतन भी आए थ। इनम स कुछ परिवतन तो पदो का बदल दने के सम्बन्ध मे थे। चेतना मे तात्कालिक रूह से विद्यमान प्रभाव के लिए न तो विषय वस्तु न प्रत्यय और न प्रतिनिधिकरण ही उन्ह सही पर्याय याग्य लगे। इसके अतिरिक्त हुए परि वतना का महत्वपूण परिणाम निकला। न केवल नाम अपितु प्रतिनिधिकरण के भाव ने हो उन्ह परेशान कर दिया था।

---

1 द्रष्टव्य सम फण्डामेटल पाइन्टस इन दि थियरी आव नालेज (1911) यही ग्र थ स्टडीज इन फिलासफी एण्ड साइकालोजी (1930) नाम से पुनमु द्रित हुआ है और इसी म उन्होंने अपन दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। यद्यपि 1894 म टवार्डो वस्की के निबन्ध के प्रकाशन से पूव उन्होने इसे प्रकाशित नहीं करवाया था। मीनोंग्स थ्योरी आव आब्जेक्टस लिखकर फिण्डले ने मीनोग और स्टाउट के बीच रहे महत्व पूण मतभेदो और खासकर विषय-वस्तु की प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आक र्षित किया है।

सबसे पहले तो स्टाउट का प्रतिनिधिकरण,' लाक के 'प्रत्यय' से मेल खाता था जबकि मीनोंग की 'विषय वस्तु' उससे बिल्कुल नहीं मिलती थी। स्पष्टत इसका यही अर्थ था, कि स्टाउट प्रतिनिधिकरण से सबद्ध सिद्धात के दौरान प्रस्तुत हो जाने वाली शास्त्रीय कठिनाइयो का हल निकाल लेना चाहते थे। उन्हे यह दिखाने की आवश्यकता रही कि जो कुछ भी तात्कालिक रूप से हमारी चेतना के समक्ष प्रस्तुत होता है क्या वह सदैव ही प्रतिनिधिकरण है ? हम कभी प्रतिनिधिकरण के सिद्धान्त से ही उनके आगे जा सकते हैं यह मानकर कि जिस वस्तु का प्रतिनिधित्व हो रहा है, वह निश्चय ही उससे भिन्न है। यही भेद स्टाउट करना चाहते थे। यद्यपि उन्होने प्रतिनिधिकरण के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया था तो भी उन्होने यह कभी नही कहा था कि वे प्रत्यक्षीकरण का एक प्रतिनिधिकरण का सिद्धान्त कायम करना चाहते हैं। क्योंकि विचार के दौरान ही हम स्वत ही वस्तु की पकड करते चले जाते हैं चाहे यह पकड बाद मे प्रतिनिधिकरण द्वारा ही समझाई जा सके। 1905 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक 'थिंग्स एण्ड सेन्सेशन्स' मे उन्होने लिखा कि प्रारम्भ से ही हमारे तात्कालिक अनुभव मे कुछ ऐसे तत्व प्रकटने लग जाते हैं जो अपनी वास्तविक सत्ता के लिए अपनी प्रस्तुत स्थिति से इतर का निरन्तर संकेत देते रहते हैं। वह सकेत हमारे किसी भी प्रकार के तात्कालिक अनुभव से अथवा हमारे द्वारा प्राप्त अनुभव से भिन्न होता है। इस सबध मे प्रस्तुत यह तथ्य अविवादास्पद हो है। स्मृति ऐसा ही एक प्रसग है, जिसका इस सदर्भ मे व उल्लेख करना चाहते थे। जब हम किसी वस्तु का स्मरण करते हैं तो हमारा वह स्मरण, किसी बीती हुई वस्तु के विषय मे ही होता है, किन्तु फिर भी हमारा स्मरण वर्तमान मे चलता है और वर्तमान प्रतिनिधिकरण की ही माग करता है। यह प्रतिनिधिकरण इस तरह वह नही होता जो हम याद करते हैं क्योंकि यह वर्तमान है। इसी तरह विगत वस्तु नहीं हो सकता, जो अभी हमारे सम्मुख है। इसलिए स्मरण का कोई भी विवरण देने के लिए हम प्रतिनिधिकरण एव पदार्थ दोनों का सदर्भ देना होगा।

इसी तरह इन्द्रिय प्रत्ययीकरण मे प्रस्तुत छोटी चादी की तस्तरी का मन में प्रस्तुत हुआ तात्कालिक अनुभव उसे किसी भी भाति चन्द्रमा नही बना देता। वह न छोटा है न चान्दी का है और न ही एक तस्तरी है। लेकिन फिर भी ऐसे प्रतिनिधिकरण के कारण चन्द्रमा ही एक वस्तु के रूप मे प्रस्तुत होता है। कठिनाई इस बात मे नही है कि हम प्रतिनिधिकरण एव पदार्थों मे भेद नही कर सकते, किन्तु यह प्रतिनिधिकरण के क्षेत्र का वर्णन करने मे है। उनका ससार मे क्या स्थान है यह बताने की कठिनाई और ठीक ढग से यह बताने की भी कठिनाई, कि वे किस रूप मे पदार्थों की ओर इंगित करते हैं।

मूलत स्टाउट ने परम्परावादी उत्तर कार्टेजियन दृष्टिकोण को स्वीकार किया है जिसके अनुसार प्रतिनिधिकरण चेतना का सशोधित रूप है। हम यदि इसकी शिथिल परिभाषा दें तो, इसे मन का ही एक अ श कहेंगे। स्पष्टत यहा पर अनेको भारी कठिनाइया है। बकले ने इसी की ओर इशारा करते हुए कहा था, कि इस प्रकार की चेतना का सशोधित रूप किसी ऐसे अस्तित्व की ओर सकेत कर सकता है जो स्वय चेतना सशोधित रूप नही है। अर्थात् जो अपनी प्रकृति मे चेतना से बिल्कुल भिन्न है और वह है एक भौतिक पदार्थ। स्टाउट का अनुमान था, कि यह कठिनाई लेबनीय और लोपा जसे लेखको की विचारधाराओ के माध्यम से पार कर लेंगे। उनके शिक्षक वाड ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, कि मन और पदार्थ मे कोई बडा भेद नही है, क्योकि जिन्हे हम भौतिक पदार्थ कहते हैं, वे छद्म वेश मे मन की अवस्थायें ही है। इस प्रकार प्रकृति की विविधता, जो प्रतिनिधिकरण एव पदार्थ की व्याख्या के समय प्रस्तुत होती है, शनै शनै विलीन हो जाती है। किन्तु स्टाउट लबनीय के इस तत्ववाद का खण्डन करते हैं और तब प्रतिनिधिकरण के विवरण को चेतना का सशोधन मात्र भी नही मानते। उनका कहना है कि प्रतिनिधिकरण जो हमारी इन्द्रियानुभूति का परिष्कार है पार्थिव है, चाहे भौतिक न हो। इससे उनका यह आशय था कि यद्यपि ये मानसिक तो नही है तो भी ये भौतिक शास्त्र की विषय वस्तु की भाति पदार्थ के रूप मे व्यक्त किये भौतिक पदार्थों की तरह नही है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर हम इन्द्रियो द्वारा ग्रहण किये गये भौतिक पदार्थों के अस्तित्व की व्याख्या कर सकते हैं और उसमे हम स्वय भौतिक पदार्थ होने की आवश्यकता नही पडती। इन्द्रियानुभूति और भौतिक पदार्थ दोनो एक ही अवयव के अश हैं और इस रूप मे वे दोनो ही भौतिक है। हमे अब यह सोचने की अधिक आवश्यकता नही कि मानसिक रूप से हुए परिष्कार अपने स्वभाव के कारण बिल्कुल अलग रूप मे अपना स्थान रख सकते हैं।

अब प्रश्न यह शेष रहता है कि यदि हमारी इन्द्रिया स्वभाव मे भिन्न नही है तो वह किस प्रकार एक ऐसी वस्तु का सकेत दे सकती हैं जो उनसे परे हो? स्टाउट द्वारा दिया गया इसका उत्तर उन्हे विभिन्न प्रकार से एक प्रत्ययवादी तत्व दर्शन निर्माण करने की ओर प्रेरित करता है जिसे हम बाद के अध्यायो मे चर्चित करेंगे। यहा एक सुझाव किसी न किसी रूप मे वे देते ही हैं कि हमारा इन्द्रिय बोध अपने स्वभाव मे ही आशिक एव अपूर्ण है। इसलिए इसे एक व्यापक सत्ता का भ ग मानने के लिए हम विवश हैं, यदि हम इसे पूरी तरह समझना चाहे तो हमारा इन्द्रिय बोध ही हमारे सम्मुख कुछ ऐसे प्रश्न खडे करता है जो इसका उत्तर प्रस्तुत नही कर सकता है। इसका उत्तर देने के लिए हम इसके विषय मे भौतिक पदार्थों मे रहे इसके सम्बन्धो के जरिये विचार करना पडेगा। इस स्थिति

को उन्होने अपनी कृति गोड एण्ड नेचर (मरणोपरान्त 1952 म प्रकाशित) मे भली-भांति लिखा है। और 1947 मे ए० जी० पी० नामक पत्रिका मे इसी बात को उन्होंने अपने एक लेख डिस्ट्रीब्यूटव यूनिटी एज ए केटेगरी मे व्यक्त किया है। अन्य स्थलो मे जैसे उदाहरण के लिए माइण्ड एण्ड मेटर म उनका झुकाव अर्थ-क्रियावाद की ओर हो गया है। उनके अनुसार हम केवल इन्द्रिय बोध क द्वारा ही अपनी जिन्दगियो का सचालन नही कर सकते, हमारे अनुभवो की व्यावहारिक ढलन प्रेक्टिकल एडजस्टमट) के लिए हमे इन्द्रिय बोध को वस्तुओ की ओर उन्मुख होता हुआ देखना पड़ेगा। किन्तु ये तो विस्तार की बातें हैं। मूलत उनका बल इस बात पर था कि इन्द्रिया जिन वस्तुओ की ओर सकेत करती हैं, व इन्द्रियो से ही पूर्णत भिन्न न होकर उनके साथ ही निरन्तर होने का भाव प्रस्तुत करती हैं।

इन्द्रिय एव पदार्थ का सम्बन्ध बताने के लिए वे एक 'जटिल' एव 'विभक्त' एकता का सिद्धान्त प्रवर्तित करते हैं। धारणा उनके तत्व दर्शन के निर्माण मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उदाहरण क लिए, एक पीले पदार्थ के प्रत्यक्षीकरण को ही लें। एक फण्डामेटल क्वाइटस इन द थियरी आव नॉलेज नामक निबन्ध म स्टाउट ने कहा है कि यह मानना बिल्कुल निरर्थक है, कि प्रस्तुत स्थिति मे दो पीली स्थितिया हैं। एक वह, जो वस्तु को पीले रूप म प्रस्तुत कर रही है और एक वह जो वस्तु का पीलापन है। किन्तु यह प्रस्तु पीलापन, वस्तु के पीलेपन के साथ तादात्म्य नही रख सकता, क्योकि विभिन्न प्रकार की पीली वस्तुओ के विभिन्न समयो म विभिन्न व्यक्तियो द्वारा किये गय अनुभव किसी भी भाति पदार्थ के पीलेपन तक ही सीमित नही हैं। स्टाउट के अनुसार, सम्भावना यही है, कि इन बहुमुखी प्रस्तुतीकरणो के भिन्न भिन्न पीलपन मिलकर एक भाव प्रस्तुत करते हैं जिसके शेष सब अ ग वह जा सकते हैं जसे अमुक अमुक अवस्थाओ म निहित यह पीलापन, इस तरह इन विभिन्न प्रस्तुतीकरणो की जटिल एकता ही पदार्थ का पीलापन है। इस प्रकार, स्टाउट प्रतिनिधिकरण और पदार्थों अथवा इन्द्रियो के भेद को बनाए रखते हैं और प्रत्यक्षीकरण क प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त सम्बधी कठिनाई म पडने से बच जाते हैं। प्रस्तुतीकरणो के सम्बध मे उनके दृष्टिकोणो म जिस तरह बाद म विकास हुआ उसी प्रकार प्रस्तुतीकरण सबधी वस्तुपरकता क उनके दृष्टिकोण मे भी विकास देखा जा सकता है और इसके साथ ही सामान्यत मन म पदार्थों की वस्तुपरकता की बात भी विकसित होती है। सवप्रथम वे यह मानने क लिए बिल्कुल तयार थे, कि विचार के लिए किसी वस्तु के अस्तित्व का होना आवश्यक है। एरर शीर्षक मे व्यक्तिगत प्रत्ययवाद पर पढा गया उनका एक निबन्ध उनकी प्रारम्भिक स्थिति का मौलिक परिचायक है। वहा व यह घोषणा करते हैं, कि दोष सदव ही किसी वस्तु के विषय मे होता है और इसीलिए वह किसी न किसी सत्य का मदम ही प्रस्तुत करता है। लेकिन

सकता है। किन्तु यदि कोई सम्भव स्थिति, वास्तविक स्थिति पर आश्रित रहती है, तो वास्तविक भी किसी सम्भव स्थिति पर आश्रित रह सकता है। वास्तविक होने का अथ सभी प्रकार से सम्भव होना है। अर्थात् वास्तविक एक मूर्तिमान सम्भावना है। इसी दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन स्टाउट द्वारा प्रस्तुत समष्टियो के सिद्धान्त से जुडा है जिसे हम बाद के अध्यायो मे बतलायगे। अभी तो जो महत्वपूण बात है, वह यह, कि प्रारम्भ से ही स्टाउट की रचना, ब्रेन्टानो एव मीनोग द्वारा उन दाशनिक प्रश्नो का जवाब देने मे लग गई थी, जो उन्होने दाशनिको के समक्ष प्रस्तुत किये थे। उन्ही की भाति वे भी वस्तुपरकता के विचार का परीक्षण, और बचाव करने म लगे थे। हमे स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय वे एनेलिटिक साइकोलोजी लिख रहे थे, मूर और रसेल दानो को उन्होने पढाया था। कई अर्थों मे तो इन दोनो का दशन स्टाउट के दशन को आगे बढाता है।

अध्याय ९

मूर एव रसेल

'मूर एव रसेल" नाम का यह सयोजक, अपरिहार्य है। यह मात्र एक इतिहासज्ञ के द्वारा बताई जाने वाली एक रूपता के कारण ही नही है। उस समय रसेल अपने स्नातकत्व पाठ्यक्रम समाप्त करके चुके ही थे और इसके साथ ही उन्होंने अपने युवा विचारक साथी मूर का ध्यान साहित्य की ओर से हटा कर दर्शन की ओर खीचना प्रारम्भ कर दिया। मूर अपने इस नवप्रभाव को प्रत्ययवाद के विरोध मे ग्रहण करने के लिए तैयार हो गए, विशेषकर ब्रेडले के प्रत्ययवाद के विरोध म, जिसके कारण ही दार्शनिको के रूप म मूर और रसेल की सर्वप्रथम ख्याति फैली थी। रसेल के विषय म मूर ने लिखा है 'मुझे ऐसा ध्यान भी नही आता कि रसल ने मुझसे सिवाय गलतियो के अतिरिक्त कुछ ग्रहण किया हो, जबकि मैंने उससे बहुत कुछ ऐसा ग्रहण किया था जिसे गलती नही कहा जा सकता, और जो मेरी दृष्टि म काफी महत्वपूर्ण था।' रसेल अपने पारस्परिक सबधो का अधिक उपयुक्त और भिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं। विद्रोहात्मकता मे उसने मुझसे बाजी मारली और मैं उसका अनुसरण एक गौरव भाव से करता रहा।[1]

तो भी य दोनो व्यक्ति काफी भिन्न प्रकृति के थ। अपनी ऑटोबायोग्राफी मे मूर एक ऐसी स्वीकारोक्ति करते हैं, जो उनकी शिक्षा सबधी धारणाओ एव उन पर हुए प्रभावो का बहुत स्पष्ट ब्यौरा देती है।" मैं नही सोचता, कि इस ससार द्वारा या विज्ञान द्वारा कभी भी मुझे दार्शनिक समस्याओ पर विचार करने का सुझाव मिल सकता था। मेरे सामने जो समस्याए आई हैं, वे मूलत दार्शनिको द्वारा समय-समय पर वस्तु–जगत् एव प्रकृति विज्ञान पर सुझाई गई समस्याए हैं।' विभिन्न प्रकार से लॉक बकले एव ह्यूम भी, अपने दर्शन का समारम्भ न्यूटन की विचारधारा का सदर्भ देकर करते हैं। ग्रीन ब्रेडले बोसाके एव स्पेन्सर जैसे दार्शनिको की पृष्ठभूमि म डार्विन था। मूर का दर्शन अपने समय के महत्वपूर्ण दार्शनिक सुवादो से काफी दूर था। न तो फ्रायड, न मार्क्स और

---

1 देखें रसेल की आत्म कथा जो द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल मे प्रकाशित हुई है। मूर की आत्म कथा उस रूप म द फिलोसोफी आव जी० ई० मूर नामक ग्रन्थ म प्रकाशित हुई है। वे दोनो ग्रन्थ पी० ए० शिल्प द्वारा सम्पादित किए गए हैं। इसी सबध म देखें ए० आर० व्हाइट कृत जी० ई० मूर 1958 और फिलोसोफी नामक पत्रिका का 1958 का मूर विशेषांक।

न आइन्स्टीन ने कभी उनकी विचारधारा पर प्रभाव डाला यदि कभी कोई इस स्थिति की कल्पना कर सके तो वह तो दार्शनिको के दार्शनिक थ ।[1]

इसक दूसरी ओर रसेल की विचारधारा विनान के घने प्रभाव मे प्रवाहित रहती है। 1896 म उ होने अपनी पहली पुस्तक जमन सोशल डेमोक्रेसी लिखी थी। दूसरी पुस्तक का शीपक था एन ऐसे आन द फाउण्डेशन आव ज्योमेटी (1897)। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक भौतिक एव गणितीय जाच पडताल क साथ हो साथ दशन स्वत विकसित होता रहता है। जब वे तकनीकी हो जाते हैं, जसा कि उ ह द प्रिंसिपिया मैथेमेटिका (1903) म देखा जा सकता है तब उनका गणित क प्रतीको का मुक्त प्रयोग साधारण पाठक के मन म यही भाव उत्पन्न करता है, कि यदि वहा व कुछ अबूझ हैं, तो वह भी किसी आसानी स समझ म अपने वाल कारणो के लिए ही हैं। मूर तो इस रूप मे लगभग कही भी तकनीकी नही हैं। कदाचित् किसी भी अल्प लखक ने इतनी अधिक विशदता एव सरलता क लिए कभी प्रयास नहीं किया होता। हा ऐसी ही विशदता एव स्पष्टता के लिए गटरूडस्टीन का नाम तो फिर भी लिया जा सकता है। ता भी मूर क सामा य बुद्धि के समथक होने पर भी उनका दशन एव मा यताए सामा य पढे लिख पाठको के लिए सुबोध नहा हैं। डब्लू० बी० यीटस ने टी० एस० मूर को लिखा[2] मुझ आपके भाई म काफी दुरूहता मिलती है। यह तो एक साहित्यिक व्यक्ति की मूर के सबध म प्रतिक्रिया है जो एक दाशनिक से व्यापक पमाने पर

---

1 प्रिंसिपिया ऐथिका मे लिखे गये द आइडियल पर एक अध्याय ने हमारी शती के सास्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है और ब्लमबरी स्कूल पर उनका प्रभाव बहुत स्पष्ट है जिसके कारण ही इस प्रभाव का विस्तार हा सका। इस स्कूल मे रोजर फ्राई जे० एम० की म वर्जीनिया वुल्फ ई० एम० फोस्टर आदि प्रमुख हैं। द्रष्ट य जे० एम० की म कृत टू मेमोइस (1949)। आर० एफ० हेरड कृत द लाइफ आव जे० एम० की स (1951) ज० के० जो सटन कृत द ब्लूम्सबरी (1954), ई० एम० फास्टर द्वारा लिखित द लोगेस्ट जर्नी (1907) का पहला अध्याय, इस शती के आरम्भ से केम्ब्रिज मे रहे ज्ञान मीमासा सबधी सुवादो का अच्छा ब्यौरा प्रस्तुत करता है।

2 यह कवि मूर के भाई थे। देख, डब्लू बी यीट्स एण्ड टी० एस० मूर देयर कोरेसपोडेंस (सम्पादक बी० ब्रिज 1953) इसमे यीटस द्वारा मूर की विचार धारा को समझने का प्रयास दिखाई देता है और टी० एस० मूर द्वारा यीटस की बहुत सी बातो को स्पष्ट किया गया है। साथ ही जी० ई० मूर के प्रशसा भरे शब्द भी हैं।

महत्तर प्रश्नों की चर्चा की अपेक्षा रखता है। जान विजडम ने भी कहा है—वैज्ञानिक भी इस सम्बन्ध में अब मुक्त नहीं माना जाएगा। मूर तो तर्क शास्त्र का एक सूत्र बनाकर प्रस्तुत करते हैं और वह इतना विचित्र कि उसमें सामान्यबुद्धि तक के समझने वाले एवं गणितज्ञों के लिए भी वह पर्याप्त संतोष का विषय नहीं माना जा सकता। इनकी प्रणाली में प्रमाण संबंधी कोई ठोस प्रयास किया हुआ ढूंढ लेना भी संभव नहीं है, और उसके साथ ऐसी एवं तर्कशृंखला का समापन (क्यू ई डी) भी नहीं है जिसमें निजी खोज पर विजय प्राप्त करली गई हो।[1] लेकिन इसके बावजूद भी, मूर के पास उन लोगों के लिए बहुत कुछ था, जिन्होंने उनकी ईमानदारी से अपने कार्य में लगे रहने की अपेक्षा की थी और उन्होंने अपने दर्शन में यह ईमानदारी उन लोगों के संतोष के लिए कहां तक निभाई यह बात बताना जरा मुश्किल है।

जब उन्होंने दर्शन में अपने योगदानों को 1922 में फिलोसोफीकल स्टडीज नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया तो उन्होंने माइण्ड में प्रकाशित अपने प्रारम्भिक निबंधों को उसमें शामिल नहीं किया था और न ही प्रोसीडिंग्स आव द एरिस्टोटेलियन सोसाइटी के निबंधों को ही और न बालविन की डिक्शनरी आव फिलोसोफी में लिखे अपने संक्षिप्त निबन्ध को ही उन्होंने इस पुस्तक में ले लेने का प्रयास किया। डिक्शनरी के इस निबन्ध को उन्होंने अपनी आत्मकथा में असाधारण रूप से दुरूह भी कहा है। लेकिन इसके साथ ही वे यह सूचना देते हैं कि इन प्रारम्भिक निबन्धों को लिखने में उन्हें बहुत मेहनत करनी पड़ी थी और जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन इनमें किया गया है यदि बाद में उन्हें किन्हीं कारणों से परिवर्तित करना पड़ा हो तो भी अंग्रेजी दर्शन में उसका प्रभाव तो पड़ा ही है विशेषकर, रसेल द्वारा उन्हें अब भी स्वीकार किए जाने से। बहुत से महत्त्वपूर्ण मामलों में तो इन रचनाओं की यही सार्थकता है कि इनके कारण उन दार्शनिक मसलों से सम्बन्धित वे समस्याएं तथा प्रश्न स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ सके, जिनकी खोज बहुत से दार्शनिक काफी समय से करते रहे थे।

माइण्ड (1899) में प्रकाशित द नेचर आव जजमेण्ट उनके प्रारम्भिक निबन्धों में से है। इस लेख के लिए जाने का कारण ब्रेडले कृत प्रिंसिपल्स आव लाजिक है। मूर का विचार था कि ब्रेडले लाक के प्रत्ययों, के सिद्धान्त के विषय में अनावश्यक रूप से कठोर हो गए थे। यद्यपि स्वयं उन्होंने कई बार निर्णयों के विषयों में यही मत दिया है कि वे प्रायः उन उन प्रत्ययों से निकले अर्थ के विषय में ही होते हैं। दूसरे अवसर पर उनके लेखन से ऐसा ध्वनित होता है मानो एक मानसिक

1 मूर की शैली के लिए देखें द फिलोसोफी आव जी० ई० मूर।

घटना के रूप म प्रत्यय भी हमारे निर्णयो का अ श होकर प्रकटते हो हैं। अपनी पहली धारणा के विषय म मूर का उत्तर यह है कि यह एक समीचीन दृष्टिकोण है। निणय 'प्रत्यय' के बारे मे ही होते हैं लेकिन ये प्रत्यय किन अवस्थाओं की ओर सकेत करते हैं यह तय नहीं है। ब्रेडले का कथन है कि वे समाष्टिव्यापी अथ प्रकटाते हैं, और मूर का कहना है वे केवल एक धारणा व्यक्त करते हैं।

मूर का कहना है कि धारणा न तो मानसिक तथ्य का कोई अ श है। फिर भी असदिग्ध रूप से हमारे विचार के दौरान उभरने वाला कोई विधेय है ही। कि तु यदि इसे हमारी विचारधारा से अलग नही माने तो हमारे लिए सोचने का कोई उपकरण शेष नही रह जाता एक प्लेटो जसे तक आकार की तरह जिसस इनकी प्रणाली का काफी साम्य भी है। धारणा शाश्वत है, और स्थिर है। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार के निणयो के समय यह एक जैसे तत्व के रूप मे प्रकटती है, और इह तक की शृ खला से जोड देती है।

मीनाग और ब्रेण्टानो की भाति ही यह निबध लिखकर मूर का उद्देश्य भी वस्तु परकता एव विचार की विषय वस्तु से उसे स्वतत्र रखने का था। इस बात पर ध्यान केद्रित करना, यहा आवश्यक है कि फिर उनकी विचार धारा की शुरूआत ब्रेडले क ग्र थ प्रिंसिपल्स आव लोजिक स होती है। यह एक अमनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति थी जिसे उत्तराधिकारी के रूप में मूर ने ग्रहण किया था। ब्रितानी अनुभववाद से तुडाव के चिह मूर के आरम्भिक दशन में स्पष्ट रूप स नही मिलते। अनुभववादी परम्परा में धारणा को ऐसा अमूर्तीकरण माना गया है जिसे मन प्रत्यक्षीकरण के कच्चे माल द्वारा तयार करता है। मूर का इसके विपरीत यह कहना था कि धारणा को मूलत वस्तुओ का या प्रत्ययो का अमूर्तीकरण मानना उचित नही है। क्योकि दोनो ही का निर्माण यदि किसी वास्तविक आधार पर हुआ है तो वह आधार धारणा ही है। इस दृष्टिकोण से एक वस्तु धारणाओ का मेल है। उदाहरण के लिए कागज सफेदी चिकनाई एव अ य धारणाओ का मेल ही है।

तो भी धारणो के बीच का सम्बध बताने वाला तक वाक्य ही हो सकता है। वे इस अपरिहाय निष्कष का मानने के लिए तयार हैं कि एक वस्तु एक जटिल रचना' एव 'एक तकवाक्य' एक ही इयत्ता के विभिन्न नाम हैं। इस आधार पर ही वे अपने सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करते हैं। परम्परागत दष्टि से तकवाक्य उसी समय सही है जब वह किसी सत्य को उजागर करता है या सत्य से उसकी प्रत्यभिमुखता है। यहा एक सत्य तकवाक्य मे और उसके द्वारा सचाई व्यक्त की गई अवस्था म अन्तर आ जाता है क्योकि दोनो ही समानरूप से प्रत्ययो' अथवा

शब्दो के समूह तो माने हो जा सकते हैं। इसलिए मूर सत्य एव सही तक-वाक्य का तादात्म्य स्वीकार कर लेते हैं। एक बार यह बात निश्चित रूप से जान लो जाय, कि तकवाक्य किसी विश्वास की ओर सकेत नही करता है (मनोवैज्ञानिक अर्थ में) और न शब्दो के आकार को व्यक्त करता है-केवल विश्वास क उपकरण का आभास देता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि उस सत्य से किसी भी अथ में भिन्न नही है जिसस वह तादात्म्य रख रहा है। यह सत्य कि 'मैं अस्तित्वशील हू' इसक साथ तादात्म्य रखन वाले तथ्य, 'मरा अस्तित्व' स किसी भी तरह भिन्न नही है।

इस प्रकार यदि एक गलत एव सही तक वाक्य के अन्तर को बताने वाला मूल भूत आधार, वह 'सत्य के अनुसार चलने वाला' भाव न हो तो फिर किस अन्य तरीके स यह भेद प्रकट होगा? मूर का उत्तर ह कि सत्य एक सरल अविश्लेष्य एव अन्त साक्ष्यी अवस्था ह और कुछ तक वाक्यो में तो यह प्रकट हो जाती ह, कुछ म नहीं। यह एक एसी धारणा थी जिसकी रसेल ने मीनोग (माइण्ड 1904) पर लिखे अपन निबध म वकालत की थी। उन्होन लिखा था, कुछ तक वाक्य सही और कुछ गलत होते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कुछ गुलाब लाल और कुछ सफेद होते हैं।'

इसके अतिरिक्त कोई दष्टिकोण यही सकेत दे सकता है कि किसी तरह हम धारणाओ मे निहित सत्यो के पारस्परिक सबधो से ऊपर उठ सकते हैं, किन्तु सद्धान्तिक रूप से यह बात मानना असमव है। 'जानना' किसी तकवाक्य के प्रति सचेत होने का ही दूसरा नाम है। अर्थात् इनके जरिए धारणाओ के विभिन्न उपकरणो का सबध हम जोड लेते हैं। इस तरह समवत हम ऐसी किसी वस्तु को नही जानत, जो धारणाओ से परे हो। यह बात प्रत्यक्षीकरण के समय ज्ञान के लिए भी सत्य है। प्रत्यक्षीकरण केवल मात्र अस्तित्वशील तक वाक्यो से पहचान होने का नाम है। उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि यह कागज अस्तित्वशील है, मर के अनुसार यह तकवाक्य भी धारणो के सबधो को व्यक्त करता है। इससे यही अर्थ निकलता है, कि जो धारणाए इस कागज की निर्णायक रही हैं वे उसके अस्तित्व से भी सबधित हैं जबकि ब्रेण्टानो का इस सबध म यह मत था, कि सभी तकवाक्य अपने आकार म अस्तित्ववादी होते हैं। मूर इन्ह धारणाओ के पारस्परिक सबधो के जरिए स्वीकार करत हैं।

इस तरह सत्य एव यथाथ के सिद्धान्त की व्याख्या को स्वीकार करके मूर एव रसेल दशन के क्षेत्र म प्रविष्ट हुए। किन्तु बाद मे इसी धारणा के प्रति कुछ अ शा म प्रबल रूप स अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वालों म भी य ही लोग थे। यह

ससार शाश्वत एव अपरिवतनशील धारणाओ स बना है। तकवाक्य इन धारणाओ को एक दूसरे से मिलान का काय करते हैं। एक सही तकवाक्य इस प्रकार की विभिन्न धारणाओ म से एक को इसका विधेय बना देता है और इस तरह वह या तो तथ्य' है या 'यथाथ। हमारे निणय की प्रकृति के विषय म एक और महत्वपूण बात यह है, कि मूर सदव ही तक' पर बल देते रहे हैं और उसे ही स्वीकृति प्रदान करते रहे हैं जो इस तक प्रणाली द्वारा ही उन्ह किसी दिशा की ओर ले जा सके। अपने अस्तित्ववादी सिद्धान्त के विषय म उन्होने लिखा—'मैं पूरी तरह स इस मामले मे सचत हूँ कि किस प्रकार मैं अपने सिद्धान्त को विरोधाभास्पद (परेडोक्सिकल) बना रहा हू, लेकिन मुझे यही लगता है कि इस ओर पूव स्वीकृत प्रमेयो पर ही मैं आगे बढ रहा हू और इसका प्रतिकार म केवल किसी ताकिक असगति के कारण ही कर सकूगा। मैंने यथासम्भव तक के नियमो को बरकरार रखने का प्रयास किया है यदि कोई इन्ह खण्डित करता है तो मुझे उसके तर्कों स डरने की कोई चिन्ता नही है। तथ्यो पर अपील प्रस्तुत करना निरथक है।" इस पराग्राफ मे व्यक्त किए गए भावनात्मक स्थल को मूर बहुत आगे तक खीच ले गए हैं।

अपनी आत्मकथा (ओटोबायोग्राफी) मे रसेल ने इसका स्पष्टीकरण किया है कि मूर क आरम्भिक सिद्धान्त उनके और मूर के लिए किस महत्व क थ। सबस महत्वपूण बात तो यह थी कि उनके जरिए ब्रेडले क परमात्व और उनके द्वारा की गई प्रत्ययवाद की वकालत से मुक्ति की सास लेने का अवसर आता है। परमात्व के जगत से निकल कर हम इन आरम्भिक सिद्धान्तो के जरिये प्रतिदिन के रूप जगत में आकर रहने लग जाते हैं। ऐसा लगता है कि हम एक जेल से निकलकर भागए हो। रसेल ने लिखा कि हमने अपने आपको यह स्वीकार लने दिया कि घास हरी है, कि सूय और तारे उसी तरह विद्यमान रहेंगे यदि उनके प्रति कोई सचेत न भी रहा तो भी। और यह भी मानकर हम चलें कि प्लेटो द्वारा सुझाए गए प्रत्ययो की समयातीत बहुलता स बना यह जगत है। इस तरह पहले जो जगत क्षीण एव ताकिक था अचानक सम्पन्न विविधता से युक्त एव ठास हो गया।

रसेल का स्वय का जगत शन शन सूक्ष्म और तक मूलक होता जाता है। लेकिन मूर ने अपने इस रहस्य एव मुक्ति के भाव को भी नही छोडा और हमेशा ही दनिक जीवन के सत्यों' से अपने को जोडे रखा। व मुश्किल स प्राप्त इस स्वग से बाहर आने के लिए कृत सकल्प थे।

उनके सिद्धान्तो के युवक आलोचको की भाति जिन्होने कभी भी प्रत्ययवाद के प्रति आकषण प्राप्त नही किया है या उन लोगों के जिनके, निकट यह सब एक जीवन्त विकल्प नही है, वे सब मूर के दशन को समझने म कठिनाई अनुभव

करेंगे ही। वे उसे एक वकील (डिफेन्डर) मानने लग जाते हैं। अपने ही ढग से तथा विटगिं सटीन के शब्दों का सहारा लेकर उन पर साधारण मान्यताओं (आर्डिनरी यूसेज) के वकील होने का आरोप लगाते हैं। लेकिन यह तो साधारण विश्वास है, रोजमर्रा के प्रयोग नहीं, जिसका बचाव मूर करना चाहते हैं। अपनी आलोचना के बावजूद भी उनका विचार है कि उन्हें अपने बचाव की आवश्यकता है। उन्होंने मेक्टेगट को यह कहते हुए सुना है, कि समय असत्य है और पदार्थों की गलत वही स्थिति है जो दत्या एवं काल्पनिक जीवों की है। उन्हें इस बात पर कभी विश्वास नहीं हो पाया कि मेक्टेगट हमारी सामान्य भाषा सबंधी आदतों में परिवर्तन की कामना कर रहे थे[1]।

इसके साथ ही इनके इस स्वग म कुछ शतानी सप भी थे और जल्दी ही उन्हें उनकी उपस्थिति का भान होने लगा। 1910-11 के बीच दिए गए भाषणों की एक शृंखला म—यद्यपि ये भाषण 1953[2] तक प्रकाशित न हो पाए थे कि क्यों सभी सुविधाएं होने के बावजूद उन्होंने तथ्यों के सही तक कथनों से रहे तादात्म्य के सिद्धान्त को उन्होंने त्याग दिया था। उदाहरणार्थ जब हम यह कहते हैं, कि शेर वास्तव म होते हैं,' हम प्रस्तुत स्थिति से, जिस पर हम विश्वास करते हैं कुछ अधिक ही कह जाते हैं और हमारे इस कथन म कुछ अविश्लेष्य सत्य भी शेष रह जाते हैं। एक तथ्य का मूल (स०ष्ट म) यदि उसकी शिथिल व्याख्या करें तो किसी तक वाक्य म निहित सत्य मात्र म ही निहित नहीं है। इसके अलावा इस सम्बध मे जो दूसरी महत्वपूर्ण आपत्ति है वह यह है कि ऐसा कोई भी तकवाक्य नहीं होता जो मन म विकसित हुए सिद्धान्त के बिलकुल अनुकूल पड़े।[3]

---

1 दख रिप्लाई टू माई क्रिटिक्स—द फिलासोफी आव जी ई मूर नामक ग्रन्थ म।

2 जान विजडन द्वारा उत्तेजित किये जाने पर जो चर्चाएं हुई उन्हें सम मेन-प्रोबलम्स आव फिलोसोफी म देखें।

3 यह वतमान दशन का सुवादास्पद बिन्दु रहा है। द्रष्टव्य एच० जोकिम कृत द नेचर आव ट्रूथ (1906), जी० ई० मूर कृत मिस्टर जोकिम्स नेचर आव ट्रूथ एव जोकिम का उत्तर (माइण्ड 1907), बी० रसेल आन प्रोपोजीसन्स व्हाट दे आर एण्ड दे मीन (पी ए एस 1919), एफ पी रेम्से तथा जी ई मूर फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स (पी ए एस एम 1927) जी राइल आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी ए एस 1929) । इस पर बाद मे आर रोबिन्स के साथ विमश हुआ (माइण्ड 1931), एम श्लिक फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स तथा सी जी हैम्पल सम रिमार्क्स ओन फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स (ऐनालीसिस 1935), सी ए बलिस फक्टस प्रोपोजीशन्स, एक्जम्प्लीफिकेशन एण्ड ट्रूथ (माइण्ड 1948), ए

दोषपूर्ण विश्वासो के मामले ने मूर का इस निष्कर्ष पर पहुचा दिया था। तर्कवाक्यीय सिद्धान्त के अनुसार हमारे लिए गलत ढग से विश्वास करने के लिए भी एक तर्कवाक्य तो होना ही चाहिए। चाहे यह तर्कवाक्य दोषपूर्णता का तत्व अपने मे समाहित किए हुए ही क्यो न हो। दरअसल, मूर यह कहना चाहते हैं कि दोषपूर्ण विश्वास का सार ही यही है कि हम उस चीज मे विश्वास करते हैं 'जो नही है।' 1912 मे प्रोब्लेम आव फिलोसोफी म रसेल ने इसी बात की चर्चा छेडी है। जब ओथेलो गलती स यह विश्वास करता है कि डस्डीमोनो केसियो से प्रेम करती है तो उसका विश्वास दोषपूर्ण है। क्योकि वास्तव म ऐसी कोई स्थिति नही है कि डस्डीमोना केसियो से प्रेम करती है। यदि ऐसी स्थिति होती जसा कि तर्कवाक्य सिद्धान्त मे होना जरूरी है, तो ओथलो का विश्वास सही होता, गलत नही। एक बार यदि हम यह जानलें कि एक दोषपूर्ण विश्वास तर्क वाक्य म प्रकट विश्वास नहीं होता, तो स्वभावत इस बात का खण्डन किया किया जा सकता है (इसे रसेल एव० मूर दोनो ने माना था) कि एक साथ विश्वास का आधार तर्क वाक्य ही हो सकता है। मूर सक्षेप मे कहते हैं 'कि विश्वास किसी तर्कवाक्य एव हममे रहे सबधो को व्यक्त नही करता क्योकि तर्क वाक्य मूलत अस्तित्व म नही होते।'

मूर यह मानते हैं कि व इस बारे म तो बिल्कुल आश्वस्त हो गए हैं कि मैं प में विश्वास करता हू ' विश्वास की किसी क्रिया एव तर्क वाक्य के बीच किसी प्रकार के सबधो की सूचना नहा देता। किन्तु वे कोई ऐसा वैकल्पिक विश्लेषण नही खोज पाए हैं, जिसकी कडी आलोचना की जानी सभव न हो। तो भी वे इस बात को तो जानते हैं कि, सभावनाओ के किस स्थल पर किसी समस्या का हल खोज निकाललेना सभव है। यह तो निर्विवाद है कि प की सचाई उसकी तथ्य से प्रत्यभिमुखता म ही निहित है। और इस तरह प मे विश्वास करना यह विश्वास करना है कि प अमुक अमुक तरह से प्रत्यभिमुख हुआ है। दार्शनिक समस्या इस प्रत्यभिमुखता की सीधी व सरल व्याख्या करन म ही है। हम किसी भी दार्शनिक विवाद के जरिए अपने आपको यह स्वीकार लेने की स्थिति म नहीं खीच लेना है कि प्रत्यभिमुखता जसी चीज दरअसल है ही नही। हम जानते है कि वह तो है हा, यद्यपि हमारे लिये यह समस्या रह जाती है, कि किस प्रकार उसकी प्रकृति का वर्णन करें। इस प्रकार मूर की विचारधारा का सामान्य प्रवाह उत्तर देने के बजाय समस्याए खडी करने की ओर हैं। मैज ने उनका वर्णन एक अच्छे प्रश्नकर्ता एव एक बुरे उत्तरदाता के रूप म किया है। और

कप्लन तथा आई कपिलोविश मस्ट देयर बी प्रोपोजीशन्स ? (माइण्ड 1939), ए चर्च आन कान्प्स एनेलिसिस आफ स्टेटमेन्टस आफ एसशन एण्ड बिलीफ (एनेलिसिस 1950)।

मूर स्वयं इस भ्रमियाग के दोषी अपने आपको मानते हैं। किन्तु कम से कम उन्हें इस बात का सतोष है कि मूल समस्या क्या है इसका पता उन्हें हो जाता है। और यह बात कम महत्व की नहीं है। 1901 में प्रिंसिपिया एथिका में उन्होंने लिखा–नीतिशास्त्र में अन्य दर्शनविषयक अध्ययनों की भाति कठिनाइयां एवं असहमतियों की भरमार है और इन सब कठिनाइयों का एक बहुत ही सरल कारण यह है, इसमें भी बिना यह जाने कि कौन सा ऐसा प्रश्न है जिसका हम उत्तर दे रहे हैं बहुधा उन प्रश्नों का जवाब दे दिया जाता है।" यदि मूर एक प्रश्नकर्ता रहे तो वे इस बात के लिए कृतसंकल्प रहे कि उन्हें एक अच्छा प्रश्नकर्ता होना है और यह काम सरल कार्य नहीं है।

बाह्य जगत् सम्बन्धी शास्त्रीय समस्या के प्रति रहे मूर के दृष्टिकोण में उनके सत्य-संबंधी सिद्धांत की भांति समय समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। इस संबंध में भी उन्होंने तक दृष्टि से ही शुरुआत की है। रिलेटिव एण्ड एब्सोल्यूट (बाल्डविन डिक्शनरी) नामक निबंध में उन्होंने लिखा है कि यह कहना कि एक वस्तु सापेक्ष है अपने आपका विरोध ही करना होगा। इसमें ब्रेडले की भांति वे यह नहीं कहना चाहते, कि सम्बन्धों का होना अपने आप में ही स्वविरोधी है। इसके विपरीत मूर तो सापेक्षिक अस्तित्व' सम्बन्धी ब्रेडले की विचारधारा का खंडन कर रहे हैं। यह कहना कि कोई वस्तु बिना संबंधों के निरर्थक हो जाती है या फिर वह नहीं रहेगी, यदि उसमें से संबंध सूचकों को निकाल दिया जायगा। मूर के अनुसार ये बातें सम्बन्धों से वस्तु को अलग करने के लिए ही हैं। अमुक अमुक भेद अमुक वस्तु में संभव है, इस बात में इंकार किसी न किसी रूप में उसे स्वीकारने जैसा ही है। मूर यहां पर ब्रितानी प्रत्ययवादियों द्वारा स्थापित संबंधों के सिद्धान्त के विरुद्ध बाह्य संबंधों के सिद्धान्त का पक्ष ग्रहण करते हैं।[1]

---

1 इसी समस्या पर बाद में हुई चर्चाओं के लिए देखें पी० ए० एस० 1919 में प्रकाशित तथा स्टडीज में पुनर्मुद्रित मूर का निबंध एक्स्टरनल एण्ड इण्टरनल रिलेशन्स फिलोसोफी आव जी० ई० मूर नामक ग्रंथ में एक अंश में स्टेबिंग ने लिखा है मूर ने बाद में अपने आपको इस बात के अयोग्य स्वीकार किया है कि आरम्भ में सजित अपनी विचारधारा को संभवतः उसी शक्ति के साथ साथ वे आगे भी खींच सकते और इसलिए वे इस बात पर आश्वस्त हो गए थे कि वे धारणाएं गलत थीं। देखें ब्रेडले एवं जेम्स पर लिखे गए अध्याय इनमें इसी प्रकार का अन्तर व्यक्त किया गया है। द्रष्टव्य ए० सी० एविंग्स कृत आइडियलिज्म (1634) जो सम्पूर्ण सुवादों के दौरान प्रकटी बहुत सी दुविधाओं का उल्लेख करता है। देखें रसल द्वारा फिलोसोफीकल एसेज 1910 में लिखित निबंध द मोनिस्टिक थ्योरी आव ट्रूथ।

मूर का विश्वास है, हीगल से प्रभावित लेखको की यह धारणा है कि कोई भी सबध विशुद्ध रूप से 'बाह्य' नहीं है। सार रूप मे इन सम्बधित वस्तुओ को जोड सकने मे ये लोग असफल रहे हैं। यह सबध जितना–जितना बाह्य है, उतना उतना ही वस्तुओ मे निहित सत्य विलीन होता जाता है। इसके विपरीत मूर का कथन है कि सार रूप में एक वस्तु सदा ही अपने सबधो से भिन्न होती है। इसलिए कोई भी वस्तु अपने मे निहित प्रणाली की प्रकृति से निर्मित नही होती। ब्रेडले के एकेश्वर वाद के विरुद्ध उठाया गया, मूर और रसेल द्वारा प्रस्तुत यह प्रमुख स्वर था। होने का मतलब ही स्वतन्त्र होना है। प्रिंसिपिया एथिका के आरभिक पृष्ठ पर बटलर की यह उक्ति मूर ने उद्धृत की है," एक वस्तु जो है वही है और अन्य कुछ भी नही"–यह ऐसा उद्धरण है जो एकेश्वरवाद के प्रति उनकी असहमति को प्रकट करता है।

यह मूर के द्वारा प्रत्ययवाद के खण्डन की शास्त्रीय पृष्ठभूमि है। (माइण्ड 1903 स्टडीज म पुन मुद्रित)।[1] यथार्थवादी आन्दोलन के लिए रहे इस निबन्ध के महत्व को नजर दाज नही किया जा सकता है। मूर जैसे तीव्र आलोचक ने भी 1922 म लिखा कि अब यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह विचार काफी उलझा हुआ है–और इसम बहुत सी भीषण गलतिया भी है। यह बात अब दूसरी दृष्टि स ऐतिहासिक महत्व की हो गई है। सूक्ष्मतम दाशनिक प्रणाली का यह प्रथम उदाहरण है। इसम बहुत ही सतकतापूवक विभिन्न पहलुओ का अन्तर किया गया है। इसके द्वारा सुझाई गइ यह बात कि इस प्रश्न की अपेक्षा वह प्रश्न अधिक साथक है–यह' और वह नामक शब्द अन्य विचार प्रणालिया म एक ही समस्या के वकल्पिक रूपा म ही अब तक प्रस्तुत किए जात रह थ। मूर की इस विशिष्ट दाशनिक शली का उल्लेखनीय प्रभाव उनके कम्ब्रिज के अनुयायियों मे काफी रहा।

इस प्रकार वे इस बात को स्पष्ट करते हुए अपनी विचारधारा का समारभ करते हैं कि वे रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म के जरिए क्या उपल ध करने की आशा करते हैं ? वे प्रत्ययवादी इस मूल धारणा का कि सत्य आध्यात्मिक है विरोध नही करते। *उनका उद्देश्य तो अपेक्षाकृत सीमित है। उनका विचार है कि तक* वाक्य ऐसा कुछ अवश्य है जो सभी प्रकार की प्रत्ययवादी युक्तियो को मूलत अभिव्यक्त कर सकता है। फिर भी इस कारण प्रत्ययवादी निष्कर्षों की स्थापना कर

---

1 द्रष्टव्य सी॰ ए॰ स्ट्रोग कृत हैज मिस्टर मूर रिफ्यूटेड आइडियलिज्म ? (माइण्ड 1905), ए॰ के रोजस द्वारा लिखित मिस्टर मूज रेफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म (द फिलोसोफा आव जी॰ ई॰ मूर) बी॰ बोसाके कृत द मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कन्टेम्पोरेरी फिलोसोफी (1921)

देना पर्याप्त नही होगा। प्रत्ययवादी निष्कष का सकेत देने वाले तक वाक्यो की आलोचना करना ही उनका प्राथमिक उद्देश्य था यदि वे यह प्रदर्शित कर सक, कि निष्कष गलत है, तो चाहे प्रत्ययवादी विचारधारा कितनी ही सही क्या न हो, उसका सही सिद्ध होना असमव हो जायगा।

'होने का अथ प्रत्यक्ष म होना है" इस प्रत्ययवादी धारणा को दोषपूर्ण बताने के लिए रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म लिखा गया है। लेकिन इस सम्बध म और अधिक अन्तर स्पष्ट किए जाने आवश्यक हैं। प्रत्ययवादी प्रणाली मूर की दष्टि म अत्यन्त दुविधाजनक है। मूर प्रत्ययवाद के उन स्थलो पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जिन्हें दाशनिक दष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। इस व्याख्या के अनुसार इस प्रणाली म यह कहा गया है कि यदि क्ष नामक किसी वस्तु के अस्तित्व म होने का ज्ञान हमे हो गया है तो इससे यही तात्कालिक निष्कष निकलता है कि उसका प्रत्यक्षीकरण भी कर लिया गया है। इस तरह जाने जाने का पर्याय ही प्रत्यक्षीकृत होना सिद्ध होता है, तो इन दोनो म तादात्म्य नही हो सकता। प्रत्ययवादियो ने प्रस्तुत अवस्था पर इस ढग से विचार नही किया है। यद्यपि जब व यह कहते हैं, कि होने का अथ ही प्रत्यक्षीकृत होना है, तो उसका अथ यही हुआ कि होना और प्रत्यक्षीकृत होना दोनो मे तादात्म्य है। इस तरह आधारभूत प्रत्ययवादी धारणा के लिए प्रमाण की आवश्यकता नही रह जाती और इसका यह अथ हुआ कि व पीला होने एव पीला होने स सम्बन्धित सवेदनाओ के बीच का भेद देख नही पाए ह।

मूर यह मानने का तयार हैं कि कुछ प्रत्ययवादियो ने स्पष्टत यह कहा भी ह कि उपयुक्त भेद विद्यमान हैं लेकिन इस क साथ ही साथ उनका मत है कि अमुक भेद वास्तविक नही है। पीला और पीला होने से सबधित अनुभव को आवयविक एकता के कारण एक सूत्र म बधा हुआ मान लेना 'एक तकसगत अमूर्तीकरण' नहीं कहा जा सकता और अपनी भिन्न भिन्न सघटनात्मक प्रकटावस्था के होते हुए भी एसा मान लेना तो मूर के अनुसार सत्य से आख मूद लेना होगा। मूर इस प्रकार की सुविधात्मक स्थिति को कभी स्वीकार नही करना चाहते। आवयविक एकता के सिद्धान्त का यही उपयोग रहा ह कि दो विरोधास्पद तकवाक्यो को सुविधानुसार कायम किए रहने का अवसर इसम मिल जाता ह। एसे मामलों म तथा कुछ और भी अन्य अवसरो पर हीगल के दशन का प्रमुख योग दान यही था। जो बात दाशनिको एव विचारको को दोषपूर्ण दिखाई देती थी, उसके विषय मे भी उन्होने एक सिद्धान्त निर्माण कर दिया। आश्चय नही है कि उनके काफी प्रशसक एव अनुयायी हैं। केम्ब्रिज क्षेत्र म मूर के नतृत्व म हीगल और हीगल स उपजी विसगतियो के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने क लिए आन्दोलन हुआ। इस

ग्रादोलन की सम्भावना का बल भी इसलिए मिला कि उस वक्त वह विश्वविद्यालय मक्टेगट के प्रभाव में था। मूर यह प्रश्न करते हैं कि हीगलवादी प्रणाली के विरुद्ध क्या प्रस्तुत स्थिति है अथवा नही ?

मूर यह मानते हैं कि पीले का पीले की सवदनाम्रो के साथ मिला दने के भी कुछ कारण हो सकते है। जब हम अपनी अधिक नान की क्रियाम्रो का परीक्षण करते हैं, और यह देखते हैं कि अमुक अमुक सवेदनाम्रो के कारण नीले रग से सम्बधित मानसिक क्रिया हमारे अनुभवो से फिसल रही है तो हम एक पारदर्शी मुहावरे' का प्रयोग करत हुए यही कहते है कि कोशिश करन पर नीले क अतिरिक्त कुछ भी देख नही पाते। इस प्रकार की पारदर्शिता के कारण मूर को यह विश्वास हो गया है कि क्रिया एवम् पदाथ के बीच का भेद निश्चय ही कही विद्यमान है। नीले की सवेदनाए लाल की सवेदनाम्रो के साथ अवश्य ही कुछ साम्य रखती हैं। इन दोनो अवस्थाम्रो के बीच चेतना की समानता है किन्तु इससे यह गलत धारणा नही बना लेनी चाहिए कि नीला और लाल चेतना के उपकरण है।

सही विश्लेषण से यह बात प्रकट होगी कि एक सवेदना अथवा प्रत्यय का मतलब किसी वस्तु को जानने, उसके प्रति सचेत होने अथवा उसका अनुभव करन से है। यह कहना कि हम लाल रग की सवेदना हो रही है हमारी चेतना को लाल कह देना नही है। और न ही इससे किसी विशिष्ट मानसिक प्रतिरूप का सकेत मिलता है। लाल रग की सवेदना होन का अथ यही है कि हम किसी लाल वस्तु के प्रति सचेत हो रहे हैं।

परम्परागत नानमीमासा के लिए सदव ही यह समस्या रही, कि हम किस प्रकार हमारे प्रत्ययो अथवा सवेदनाम्रो की परिधि के बाहर निकल सकते हैं। मूर की दृष्टि मे यह कोई समस्या ही नही है। एक सवदना प्राप्त करन का मतलब ही यह है कि आप पहल से ही उस वृत्त से बाहर आगए हैं। किसी ऐसी वस्तु का नान प्राप्त करना जो मेरे अनुभव का अश कभी नही रही–निश्चय ही किसी वस्तु को जानना ही हुआ। हम कभी भी इस सबध मे हमारी सचेतना क प्रति ही सचेत नही होते हैं। इस तथ्य से अपरिचित रहन क कारण केवल यहा एक विशिष्ट प्रकार की सचेतना ही रहेगी।

प्रश्न अब भी रहता है कि यह कुछ' क्या है जिसके प्रति मैं सचत हुआ हू ? रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म नामक ग्रथ के अनुसार यह एक भौतिक पदाथ हो सकता है किन्तु 1905 म पी ए एस मे तथा स्टडीज मे प्रकाशित निबध द नेचर

जब हम यह कहत हैं कि हम 'शल्फ' पर दो किताबें दख रह है तो मूर के मनुसार जो कुछ हम वास्तव म देखते हैं वह तो एक साथ रखे हुए बहुत स रगो क कई धब्ब मात्र हैं। य ही व मनुभव हैं जिन्हें बाद म उन्होने ऐन्द्रिय उपकरण (से स डाटा) कहा है। सम प्रोबलेम्स प्राव नॉलेज म व इस बात का स्पष्टीकरण दत हैं कि क्योकि सवदनाए कहने के बजाय वे एसे मनुभव को ऐन्द्रिय उपकरण कहना मधिक पसन्द करत हैं। सवदनाए कहना इसलिए भी भ्रामक लगता है, कि इसस मरे द्वारा किए गए किसी मनुभव का मथ भी निकल जाता है। उदाहरण के लिए रग क धब्ब प्रथवा स्वय रग क टुकडे के रूप म भी इस प्रयुक्त किया जा मकता है। मूर मनुभोक्ता को मनुभूत स बिल्कुल मलग कर दना चाहते है क्योकि उन्होंने प्रब भी रिफ्यूटेशन प्राव प्राइडियलिज्म नामक प्रमुख सिद्धान्त को छोडा नही था। यह दख जा सकन के लिए यह ऐन्द्रियोपकरण प्राधार नही है। क्योकि कम से कम यह तो विश्वास किया ही जा सकता है कि मर न दखने क बावजूद भी रग का धब्बा या कोई पदार्थ प्रस्तित्व म ता हो ही सकता है। मेरा प्रब उस रग क धब्ब को दखना इस बात की पहचान है कि रग क धब्ब सबधी मरा मनुभव भी समाप्त हो गया है।'

इस मथ म मूर का ऐन्द्रियोपकरण लोक के प्रत्यय स काफी भिन्न[1] है। यह हमार मन म विद्यमान नही है। मूर को प्रभी भी उन प्रापत्तियो का उत्तर दना था जो बर्कले न लोक क विरुद्ध उठाई थी। यदि जो कुछ हम देखते हैं, वह तमाम एक रगीन धब्बा है तो इस बात को हमार पास क्या प्रमाण है कि तीन मायामो की वस्तुए भी इस दुनिया म विद्यमान हैं।

मूर का उत्तर है कि यह बतान क लिए कि भौतिक पदार्थ है हम किसी प्रमाण की प्रावश्यकता नही हैं। क्योकि यह कुछ एसा है, जिसे हम पहल से ही जानते हैं। द नेचर एण्ड रीएलिटी प्राव द प्राबजेक्ट प्राव परसेप्शन म उन्होने पहल स ही टामस रीड की प्रशसा म कुछ लिखा है। प्रपन बाद के निबधो म तो उन्होने

---

1 मूर तथा स्टाउट (जो मूर के प्रध्यापक भी रह थ) मे परस्पर समानताए तथा विभेद उल्लखनीय हैं। द्रष्टव्य द स्टेटस प्राव सेन्स डटा' (पी ए एस 1913) पर स्टाउट और मूर म हुम्रा विचारमन्थन। साथ ही इन पर लिख विभिन्न निबध, द फिलोसोफी प्राव जो ई मूर म ज बी प्रट का निबन्ध मिस्टर मूस रिएलिज्म (जे पी 1923), एम सी स्वाबी मि जी ई मूस डिस्कशन प्राव सेन्स डटा' (मोनिस्ट 1924), ए ई मर्फी द्व वर्शन्स प्राव क्रिटिकल फिलोसोफी' (पी ए एस 1936, टी पी नन का सन्स डटा एण्ड फिजिकल प्राब्जेक्ट्स' (पी ए एस 1915)

स्पष्टत रीड का बाना ही पहन लिया है। यह बात विशेष रूप से कण्टेम्पोरेरी ब्रिटिश फिलोसोफी म लिखे निबध ए डिफेंस ग्राव कामनसेंस तथा ब्रिटिश ग्रकेडेमी भाषण माला म व प्रूफ ग्राव एक्स्टरनल वल्ड पर दिए गए उनके भाषण (पी० बी० ए० 1939) से परिलक्षित होता है।

वे इस बात को निश्चयपूर्वक जानते हैं कि सामान्य बुद्धि से प्राप्त जगत् के प्रति हमारा दृष्टिकोण जिसको उन्होंने विश्वास से वर्णन किया है, ही सही है। उदाहरणाथ वे यह जानते हैं कि एस जीवित प्राणी इस ससार म हैं जिन से व बातचीत कर सकते हैं। जो दार्शनिक इस बात से इन्कार करता है, कि उसके अलावा ग्रौर कोई है ही नही, उसके द्वारा उक्त व्यक्ति के न होने से सबधित चर्चा का उठाया जाना उस व्यक्ति के बारे म ही सकेत देना होगा। वास्तव म यदि थोडा हिचकपूर्वक भी स्वीकार करे तो सामान्य बुद्धि के दृष्टिकोण से इसके सत्य की ही सिद्धि की गई है। 'सामान्य बुद्धि के दृष्टिकोण नामक मुहावरे का कोई ग्रथ नही होगा यदि ऐसे व्यक्ति दुनियां म न हो जिनके विचार मिलते हो अर्थात् जब तक कि 'सामान्य बुद्धि दृष्टिकोण सही न हो तब तक ऐसा समव भी नही है।

प्रूफ ग्राव एन एक्सटरनल वल्ड म मूर का दृष्टिकोण बहुत साफ है। इतना साफ कि वह एक चर्चा का विषय बन गया। वह तथ्यों को उजागर करता है। ऐसे तथ्यों को जिन्ह उन्होंने ग्रपनी ग्रारम्भिक रचनाग्रो मे दर्शन के लिए ग्रनुपयुक्त कहकर त्याज्य माना था। किन्तु उनकी तर्क प्रणाली पर शीघ्र ही लगभग 1910-11 के ग्रपने ही भाषणो के दौरान किसी का साया पडना प्रारम हो गया था। उस समय ह्यूम की ग्रालोचना करते हुए उन्होंने यह लिखा था– यदि ह्यूम के सिद्धान्त सही हैं तो मैं यह कभी नही जान पाऊगा कि कैसे एक पसिल भी ग्रस्तित्वमान हो सकती है। लेकिन उसके ज्ञान के विषय मे मुझे कोई सदेह नही रहता।' ऐसी स्थिति म ह्यूम की विचारधारा को सही माना नहीं जा सकता। यह सब तो मात्र एक टालना है ग्रौर जानबूझ कर एक शका प्रस्तुत करता है। किन्तु जहा तक ह्यूम की तर्कशक्ति का प्रश्न है वह पूर्णत ग्रच्छी एव सीधे निष्कर्ष की ग्रोर ले जाने वाली है। बजाय यह प्रश्न हल करने के कि ह्यूम के सिद्धान्त सही हैं ग्रथवा गलत हम इसी बात का विश्वास है कि जो वस्तु हमारे सम्मुख है वह तो है ही। ग्रौर इस प्रकार सम्मुख प्रस्तुत हुई वस्तुग्रो को तथ्य के रूप म देखकर हम उसे ह्यूम की विचारधारा का खण्डन करने के उपयोग मे ला सकते है। इसी भांति प्रूफ ग्राव एन एक्स्टरनल वल्ड मे मूर यह कहते हैं कि बाह्य जगत् की वस्तुग्रो के होने को मैं भी सिद्ध कर सकता हू। उदाहरण के लिए मैं यह सिद्ध कर सकता हू कि मनुष्य के दो हाथ होते है। कोई पूछे कैसे ? तो मैं ग्रपने एक हाथ मे दूसरा पकड कर कहूगा–यह एक हाथ रहा। फिर ग्रपने हाव भाव को बदल कर दूसरे का पहले हाथ से पकडकर कहूगा, यह रहा दूसरा हाथ।

यदि इसी भाति भौतिक वस्तुश्रो का प्रदर्शन किया जाना सभव हो तो यह प्रश्न रह ही जाता है कि जिन स्थितियो के जरिए हम उन्हे देखते हैं, उनसे इन वस्तुश्रो का क्या सबध है? हम उन्हे अनुभव करते हैं सू घते हैं या चखते हैं? दो बातें उन्हे स्टाउट की भाति स्पष्ट रूप से समझ में आ गई थी। हमारे प्रत्यक्षीकरण की तात्कालिक वस्तुए तो हमारे ऐन्द्रिय उपकरण ही होती हैं। और हम इससे केवल मात्र यह जानते हैं कि भौतिक पदार्थ हैं। उनकी समस्या यही पता लगाना थी, कि जो हम प्रत्यक्ष देखते हैं वह उससे किस भाति सबधित है जिसके जरिए हम उसके विषय में एक दम जान लेते हैं। उदाहरणार्थ, यह वाक्य ले—इसका प्रत्यक्ष अनुभव मैं कर रहा हूँ—यह मेरे हाथ की सतह का एक हिस्सा है। मूर को यह विश्वास है, कि इस वाक्य में कुछ तो ऐसा है ही जिसमें प्रत्यक्षीकरण हम तत्काल ही करते हैं। उन्हे विश्वास है, कि हाथ तो है ही और यह भी कि हाथ की सतह भी है। लेकिन वे यह कहने में कठिनाई अनुभव करते हैं, कि जिसका प्रत्यक्षीकरण हमने तात्कालिक रूप से किया है वह हाथ की सतह ही है—अथवा वह उस हिस्से का आभासमात्र है। मिल की भाषा में कहे तो वह सतह हम वास्तविक, एव सभावित ऐन्द्रिय चेतना की नाम रूप ग्रहण करती हुई अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नही। विभिन्न प्रकार के लोग उसी सतह के विषय में एक ही समय में ऐसी ऐन्द्रियानुभूति प्राप्त करते हैं, जो पूर्णत हाथ की सतह हो ही नही सकती। कुछ लोग तो वहा चिकना प्रश देखते हैं, कुछ खुरदरा, लेकिन सतह चिकनी और खुरदरी एक साथ नही हो सकती। ऐन्द्रिय उपकरणों में से किसी एक उपकरण का ही सतत मान लेने का कोई कारण नही है। तो भी ऐन्द्रियोपकरण को आभास मान लेना प्रतिनिधि प्रत्यक्षीकरण की उन्ही परिचित समस्याओ को दुबारा उठाना ही हुआ। मिल का हल भी अधिक अच्छा नही है। उसने उसे असभव रूप से जटिल एव विस्तृत कर दिया है। इसके अतिरिक्त इस हल की खामी यह है कि वह हमारी इस प्रबल आस्था पर सदेह करता है कि हमारे हाथ बिना प्रत्यक्षीकरण के भी विद्यमान रह सकते हैं। सत्य तो यह है कि इस विषय में सही उत्तर क्या है, इस सबध 'मैं भी परेशान हूं।' [सम जजमेण्ट्स आव परसेप्शन (पी० ए० एस० 1918, पुनर्मुद्रित स्टडीज में)]

तो भी सत्य और विश्वास के मसले की तरह दार्शनिको के भ्रमण का कारण जितना कुछ वे जानते हैं उसके विषय में, नही बनते-ऐन्द्रिय उपकरण हैं, और भौतिक पदार्थ भी, एक बार फिर वे अपने अनिश्चय का यह कहकर दुहराते हैं यद्यपि वे यह बात भली भाति जानते हैं यह हाथ की सतह है' एक सत्य कथन है किन्तु वे यह नही जानते कि इसके सत्य का सही विश्लेषण किन तत्वो द्वारा होना चाहिए। मूर के अनुयायियो का विचार था कि सही तर्कवाक्यो एव उनके विश्लेषण के इस भेद

को प्रकट करने के प्रयास म ही वे दशन की प्रकृति से सबधित एक सिद्धान्त का खोज निकाल सकते हैं। इस प्रकार जोन विज़डम ने मूर क विषय म यह लिखा, जिस पर मर का ग्राक्रोश भी हुग्रा था कि मर के लिए दशन विश्लपण मात्र ह ग्रौर यह दखना कठिन नही है कि विज़डम इस निष्कष पर क्यो पहुच।

मूर न कवल निरन्तर एक विश्लेषणात्मक प्रणाली ग्रपनात हैं ग्रौर न केवल व यह सुझाव देते हैं कि बहुत से वचारिक ममलो म तो, मूल समस्या केवल यह है कि विश्लपण की एक प्रणाली किस प्रकार निकाली जाय बल्कि ग्रपने लेख द नेचर एण्ड द रीएलिटी ग्राव द ग्राबजक्टस ग्राव परसेप्शन' म व यह स्पष्ट प्रतिपादित करना चाहते है कि विश्लेषण प्रणाली के वयक्तिक ग्रन्तर ही वस्तुत वे मौलिक ग्रन्तर हैं जो एक दाशनिक को दूसरे दाशनिक से भिन्न करते हैं। सारे दाशनिक इस बात पर सहमत ह कि मुर्गिया ग्रण्डे देती हैं। फिर भी कुछ लोग इस बात पर सहमत होगे ग्रौर कुछ ग्रसहमत कि ऐसे तकवाक्यो का विश्लेषण परस्पर कुछ विशेष प्रकार का सबध बताने वाले कथनो क जरिए भी हो सकता है।' तो भी मूर प्रबल रूप से इस बात का खण्डन करते ह कि उन्होने दशन एव विश्लेषण का तादात्म्य कर दिया ह। स्पष्टत सामान्य बुद्धि का ग्रन्तर उदाहरणाथ ग्रपने ग्राप म विश्लेषण नही हैं। सचाई यह है मूर द्वारा किए गए विश्लेषणात्मक प्रणाली के प्रयोग से केम्ब्रिज दाशनिक शली के निर्धारण म दाशनिको की पीढी को काफी सहायता मिली है। मूर का विश्लेषण से क्या ग्रभिप्राय है इसका उत्तर सरलता से नही दिया जा सकता। कदाचित् इसकी सबस ग्रच्छी व्याख्या सी० एच० लगफोड द्वारा प्रस्तुत उनकी ग्रालोचना पर दिए गए मूर क जवाब मे मिल सकती है। फिलोसोफी ग्राव जी० ई० मूर नामक ग्रन्थ म उन्होन यह निबध मूस नोशन ग्राव एनालिसिस' शीषक से लिखा था।

इसी धारणा का विश्लपण करन के लिए मूर यह सुझाव देते हैं यह ग्रावश्यक है कि एक ऐसी दूसरी धारणा खाज निकाली जाए जा विश्लेष्य धारणा के समान तो हो ही किन्तु जिसे उन धारणाग्रो का स्पष्ट करते हुए दूसरे ढग म प्रस्तुत किया जा सकता हो जिन्ह मौलिक धारणा म प्रयुक्त ग्रभिव्यक्तियों म व्यक्त न किया गया हो।[1] उदाहरण क लिए यह बात स्पष्ट हो सकती है कि परिवार

1 1934 के एनालिसिस म द जस्टीफिकेशन ग्राव ग्रनालिसिस नामक लख दखें। इस पत्रिका की स्थापना विश्लेषण प्रणाली पर ग्राधारित सक्षिप्त लखो के प्रकाशन के लिए हुई थी। ग्रौर विश्लेषण पर सामग्री एव निबध प्राप्त करने के लिए इस पत्रिका को देखा जाना चाहिए। विश्लेषण के लिए सामान्यत इसी पुस्तक का पन्द्रहवा ग्रध्याय देखें। जे० ग्रो० ग्रम्सन कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस (1956)

के सदस्य नामक मुहावरे से 'भाई' का सही विश्लेषण हो सकता है। ये दोनों धारणाए मेल खाती हुई हैं। तो भी परिवार के नर सदस्य नामक अभिव्यक्ति म जो धारणाए व्यक्त की गई है वे 'भाई' मे व्यक्त नही हुई हैं। मूर अपने उन अनुयायियो से सहमत नही हैं, जिनके लिए विश्लेषण प्रस्तुत करने का मतलब एक विशेष अभिव्यक्ति को प्रयुक्त करना ही है। मूर का विचार है कि जिनका विश्लेषण किया जाता है व धारणाए ही हैं, अभिव्यक्ति नही हैं। और धारणाओ से ही विश्लेषण किया जा सकता है। यदि शाब्दिक अभिव्यक्तियो का विभिन्न अवस्थाए बताने के लिए प्रयोग न किया गया होता तो विश्लेषण किया जाना कदाचित् असम्भव होता। मूर यह स्वीकार करते हैं कि दो धारणाओ के तादात्म्य का सकेत देकर हम एक के सबध म किस प्रकार कोई सूचना दे सकते हैं। इसका स्पष्ट उत्तर उनके पास नही है। न वे जो कुछ खण्डित कर रहे है उसका अ तर ही बता सकते है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु का बारह कोणीय होना इस बात का सकेत नही है कि वह एक घन (क्यूब) है। इन मसलो पर मूर की अनिश्चितता स उत्पन्न असतोष के फलस्वरूप उनके अनुयायियो को सतक भाषायी विश्लेषण की ओर ही प्रवृत्त होना पडा।

थोडे स भिन्न स्रोतो से उपजा रसल[1] के प्रति उनका असतोष भी कुछ-कुछ

भी देखें। पी० ए० एस० एस० 1934 म प्रकाशित यह निबध इज एनालिसिस ए यूजफुल मेथड इन फिलोसोफी ? जिसे एम० ब्लक, जान विजडम, तथा एम० कोनफोथ ने लिखा है, देखें। द्रष्टव्य ए० ई० डन्कन जो स एव ए० जे० एयर कृत, इज फिलोसोफी एनालाइज कामनसेन्स ? (पी ए एस एस 1937), एल०एस० स्टेबिग कृत दी मेथड आव एनालिसिस इन मैटाफिजिक्स (पी० ए० एस० 1932) एव सम पजल्स अबाउट एनालिसिस (पी० ए० एस० 1938), एम० ब्लक कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस (1932 पी० ए० एस०), दी पेराडोक्स आव एनालिसिस (माइण्ड 1944,1945), हाउ केन एनालिसिस बी इनफारमेटिव ? (पी पी आर 1945), एव 1950 में फिलोसाफीकल एनालिसिसस नामक ग्रन्थ मे उनके द्वारा लिखित भूमिका, ए० सी० एविंग द्वारा लिखित टू काइण्डस आव एनालिसिस (एनालिसिस 1935 एव 1948 म फिलोसोफी स्टेडीज) एसज इन मेमोरी आव एल० मूसान, स्टेविंग म फिलोसोफीकल एनालिसिस नामक अध्याय, सी० लवी कृत सम रिमाकस आन एनालिसिस (एनालिसिस 1937), एम० मेकडोनाल्ड द्वारा फिलोसोफी एण्ड एनालिसिस 1954 नामक ग्रन्थ की भूमिका।

1 विशेषत द्रष्टव्य दि फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल (सम्पादक शिल्प 1944) इसी ग्रथ मे एनालिसिस एण्ड दी यूनिटी आव रसल्स फिलोसोफी। रसेल के दशन के सामान्य स्वभाव को बताने के लिए एम० वज कृत निबन्ध द्रष्टव्य हैं। सी० ए०

वसा ही था। रसल और मूर जसे दाशनिक रूप म आगे बढे, वसे वसे वे अलग होत गए। रसेल कत **हिस्ट्री आव वेस्टन फिलोसोफी** अथवा **ह्यूमन नोलेज इटस स्कोप एण्ड लिमिटस** (1948) के वहद् बरावत्त मूर की सतक सक्षिप्त रचनाओ से बहुत भिन्न हैं। इस मामले म बहुत मे युवक विचारको की सहानुभूति मूर के साथ रहती है। अपनी अधिक मुखर आलोचना[1] सहित रसल दशन की उस परम्परा के अग रहे हैं जो उसे विज्ञानो का विज्ञान मानते हैं। अपने समय के युवक चिंतकों की अकलुषित विचार धारा के अनुसार इस प्रकार मुखर होकर अपनी अनुमानात्मक महत्वाकाक्षा को प्रकटाना अशिष्ट ही है। वे रसेल के आरम्भिक स्वरूप के महत्व को स्वीकार करते है किन्तु उनकी बाद की रचनाओ को वे अनदेखा ही रख देते हैं।

लेकिन तो भी रसेल क दाशनिक दृष्टिकोण म कोई महत्वपूण परिवतन लक्षित नही होता। 1600 मे लिखी **ए क्रिटिकल एक्सपोजीशन आव द फिलोसोफी आव लेबनीज** नामक अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे ही उन्होंने वे चिह्न प्रकटाने प्रारम्भ कर दिए जो इस समय लोगो के लिए विषाद और चिंता का कारण बन रहे थे। उदाहरणाथ वे लेबनीज की भौतिकी म एसा कुछ पाते हैं जो दशन से कटा हुआ न होकर उसस तारतम्य रखता है। यह बहुत स्पष्ट है कि रसेल ऊपरी तौर से भिन्न दिखने वाली घटनाओ को एक सामान्य सिद्धान्त म पिरो लेना चाहते

फिर **बर्टेण्डर रसेल्स कन्स्ट्रक्शन आव दी एक्स्टनल वल्ड** (1953) इसम उपयुक्त शीपक से अधिक जटिलता स विषय वर्णित किया गया है। जी० सन्टयाना कत **विण्ड्स आव डाक्ट्रीन** (1193) म **फिलोसोफी आव बटेण्ड रसेल** नामक अध्याय देखें। **हिस्ट्री आव वेस्टन फिलोसोफी** 1945 मे **द फिलोसोफी आव लोजिकल एनालिसिस** वाला अध्याय देखे। पी० ई० जोर्डायन कत **फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल** 1918) **रिविस्ताक्रितिकारो दी स्तोरिया डेला फिलोसोफिया** नामक पत्रिका का रसेल विशेपाक 1953, ए० डोवड कत **बर्ट्रेण्ड रसेल** (1950) एव रसेल द्वारा लिखित **माई फिलोसोफीकल डवलपमेट** (1958)।

1 **अवर नोलेज ऑव द एक्सटरनल वल्ड एज ए फील्ड फोर साइण्टिफिक मेथड इन फिलोसोफी** (1914) म इसे उल्लेखनीय ढग स प्रस्तुत किया गया है। दशन की नयी आत्मा विशाल अपरीक्षित सामान्य स्थितियो के स्थान पर छोटी छोटी विस्तृत एव परीक्षण योग्य स्थितियो को रख देने म हैं जो हमारी कल्पना म किसी सामान्य प्रभाव से प्रस्तुत हो जाती हैं। यह उनके समसामयिक लोगो के दृष्टिकोण को समेटता हुआ एक प्रशसायोग्य कथन है। किन्तु स्वय रसेल का दशन छोटी छोटी स्थितियो के परिणाम से नि सृत नहीं है। हो सकता है यह विशाल अपरीक्षित सामान्य स्थितियो से ही निर्मित हो।

हैं। ऐसा करते समय उन्हें सदैव ही यूरोप में 17 वीं शती से हो रही विकसित वैज्ञानिक परम्परा का ध्यान रहता ही है और जो उनके अनुसार शास्त्रीयकरण को अलग अलग करके देखने की वृत्ति में काफी विपरीत है। उन्होंने इसी वृत्ति के विरोध में प्रबल प्रतिक्रिया व्यक्त की है और यहां आकर कम से कम दर्शन के क्षेत्र में एक मोड़ आता हुआ लगता ही है। रसेल को आधुनिक डेकार्ट कह देना अत्युक्ति नहीं होगी जबकि मूर के लिए इस प्रकार का विशेषण लगाना अच्छे अथवा बुरे किसी भी अर्थ में उपयुक्त नहीं है।

रसेल कृत लेबनीज की एक दूसरी विशेषता है महाद्वीपीय शास्त्रीय पद्धति एवं अनुमान की उसके द्वारा की गई असाधारण प्रशंसा। रसेल में कहीं भी संकुचित विचारों अथवा हठधर्मिता के चिह्न नहीं मिलते। वे सदैव ही यह स्वीकार करने को तैयार हैं, जो कई बार अत्युक्ति सी ही लगती है कि उन पर सभी पूर्ववर्तियों का काफी प्रभाव है। उनकी रचनाओं में अपने सहयोगियों से कुछ भी ग्रहण करने की अद्वितीय क्षमता विद्यमान है। कई बार तो वे विदेशी प्रभाव भी ग्रहण कर लेते हैं। यह एक ऐसी क्षमता है, जो उनकी मस्तिष्कीय शक्ति को लांछित करने वाली जैसी लगती रही और इतिहासकार के लिए एक जटिल कार्य छोड़ गयी।

तीसरे, रसेल प्रारम्भ से ही दर्शन के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण रखते थे जो उन्हें तर्कशास्त्र और गणित से नजदीक में जोड़ देता है। उनका कहना है कि सभी गंभीर दर्शन तर्कवाक्यों के विश्लेषण से प्रारम्भ होने चाहिए—क्योंकि यह एक सत्य है जिसके स्वीकार करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार जहां उनके पहले के टिप्पणीकारों की दृष्टि में लेबनीज एक ऐसे विश्वव्यापी दृष्टिकोण का निर्माण करना चाहते थे जो विज्ञान और धर्म का समन्वय कर दे, वहां रसेल की दृष्टि में लेबनीज के दर्शन का मूलभूत बिन्दु अपने उच्चवर्गीय पत्रलेखकों को झूठे संतोष के लिए उन्होंने जो काल्पनिक जगत् निर्मित किया था, उससे परे—उनकी इस आस्था में निहित है कि सभी तर्कवाक्यों का उद्देश्य विधेय आकार में बदला जा सकता है, अर्थात् उनकी दृष्टि में उन तर्कवाक्यों में निहित संबंधों के पद निर्णायक कुछ ऐसे अंशों में विभक्त किया जा सकता है जिनके परस्पर संबंध हों। एक बार यह कदम हम उठालें तो लेबनीज का तत्ववादी निष्कर्ष हमें मानना पड़ता है, या फिर परमात्मिक प्रत्ययवाद ही एक मात्र विकल्प रह जाता है। यदि किसी तर्कवाक्य में क्ष य से सम्बन्धित है, तो क्ष का य से संबंध, किसी गुण को व्यक्त करता है। रसेल इस क्ष का विधेय (प्रडीकेट) मानते हैं। इससे तत्काल यह निष्कर्ष निकलता है कि क्ष और य वास्तव में भिन्न नहीं हैं। दूसरे शब्दों में क्ष की विभिन्न स्थितियां क्ष के ही अंश हैं। यही बात लेबनीज ने सिद्ध की है। परम प्रत्ययवादियों ने इसी सिद्धान्त को यह सिद्ध करने के लिए भी प्रयुक्त किया

है कि क्ष भी एक गुणवाची स्थिति है और एक व्यापक सत्ता का अ श है। रसल की दृष्टि मे लबनीज की महत्ता एक तत्त्वावय के तात्विक विश्लेपण के दौरान तत्ववादी अवस्थाओ पर विस्तार से चर्चा करने म निहित है।

'साइण्टिफिक मेथड इन फिलोसोफी'-(1914) नामक अपनी कृति जो मिस्टीसिज्म एण्ड लाजिक नाम स 1917 म पुन मुद्रित हुई म उन्होने यह कहा है कि दार्शनिक को नतिक रूप से तटस्थ तथा वैज्ञानिक रूप से निष्पक्ष होना चाहिए। इसके अलावा सभी दर्शनो को वे पूव-कार्टेनिक दर्शन की सज्ञा देते हुए कहते हैं कि वे सब यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य ही अपने विशेष नतिक दायित्वो सहित समष्टि को समझने का एक मात्र सूत्र रह गया है। इस तरह रसेल 'तथ्यो का समक्ष *समपण'* किए जाने का समर्थन करते हैं। क्लिफोर्ट द्वारा सिद्धान्त का खण्डन तथा जेम्स द्वारा उसका यह कह कर खण्डन किया जा चुका था कि ऐसा न तो समव है न वाछनीय।

यद्यपि द फिलोसोफी आव लेबनीज म भी सतक पाठक का ध्यान खीच लेने के लिए काफी सामग्री है, तो भी 1903 मे प्रकाशित द प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स से ही यह बात स्पष्ट हुई, कि ब्रितानी दर्शन मे एक नई धारा का प्रवतन हुआ है। दार्शनिक प्रत्ययो का तार्किक गणितीय परीक्षण किया जाना दर्शन के क्षेत्र मे एक नई मौलिक आधारभूमि की स्थापना करना था। और चू कि इस पुस्तक म सवत्र बौद्धिक वातावरण विद्यमान था इसलिए प्रथम श्रेणी की उपलब्धि के रूप म इसकी छाप सभी पर पडी।

एक बार फिर रसेल महाद्वीपीय विचारधारा से मूलत अपना प्रभाव ग्रहण करते हैं। उनका कहना है कि ज्यामिति की भूमिका लिखते समय उन्हे इस बात स परशानी हुई कि यूक्लिड न स्वय सिद्धो स ही प्रारभ किया। और इन स्वयसिद्धो को बिना प्रमाण के मानना पडता है। इसलिए प्रारम से ही एक ऐसे गणित के विचार ने जिसम कोई कमी न हो और पूर्णत निश्चित हो रसेल की विचार धारा को आकर्षित करना शुरू कर दिया था। वीयरस्ट्रेस जसे गणितज्ञो ने उन्हे इस बात का सकेत दे दिया था कि गणित की क्या गरिमा थी। पीयनो न उन्हे एक गणित की निगमनात्मक प्रणाली ईजाद करने के प्रति जागरूक कर दिया था—और यह सभावना प्रकटा दी थी कि किस प्रकार न्यूनतम परिभाषाओ और आदि तत्त्वाक्यो पर सारा ढाचा खडा किया जा सकता है। लेकिन फ्रेग के उदाहरण से रसेल उपयुक्त लोगो की धारणा स ही सतुष्ट नही हुए क्योकि जब तक कोई निष्कप पूर्णत तार्किक पदो द्वारा प्रस्थापित न हो तब तक उसे मानना फ्रेगे से उन्होने सीखा था।

प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स मे यह बताया गया है कि यह सब कसे हो सकता है। रसेल वहा यही बताने का प्रयत्न कर रहे हैं कि यह—किस प्रकार ऐस तार्किक

सिद्धान्तो का निर्माण हो जो किसी गणित सबधी रचना म भी लागू हो सके। अरस्तू क समय स ही सामान्य रूप से विश्वविद्यालयो मे पढाए जाने वाले तर्क-शास्त्र पर गणित का इतना प्रभाव कभी नही रहा। अपने गणित क अध्यापक ए० एन० व्हाइटहैड के सहयोग से तब रसेल तर्कशास्त्र से *गणित के सिद्धान्तो के निर्माण म* लग जाते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रिंसिपिया मैथेमेटिका नामक ग्रथ 1910–13[1] मे लिखा जा सका है। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के लिए एक शास्त्रीय योगदान है जिसकी जटिलता के कारण बहुत से दार्शनिको ने तो यह धारणा बना ली थी कि उस ग्रन्थ मे प्रस्तुत तर्कशास्त्र उनके लिए नही है।[2]

हुसल की ही भांति रसल तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान मे काफी अन्तर मानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि जब हम एक तर्कवाक्य से दूसरे तर्कवाक्य का अनुमान लगाते हैं तो हम यह इसलिए कर पाते हैं कि उनम प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप स कोई न कोई सबध रहता है। यह सबध, जो

2 रसेल पर फ्रासीसी तार्किक गणितज्ञ एल० काउतुरेत का भी प्रभाव रहा था। प्रिंसिपिया मैथमिटिका मे कौन सा अश रसेल का है और कौनसा व्हाइटहैड का, यह भेद करना कठिन है। सिवाय उसकी भूमिका एव उसके द्वितीय सस्करण (1925) के परिशिष्टो के, जिनके विषय म व्हाइटहैड ने अपने को बिल्कुल उत्तरदायी नही माना है। माइण्ड 1948 म प्रकाशित रसेल का निबध व्हाइटहैड एण्ड प्रिंसिपिया मैथेमेटिका देखें। डबलू वी० आ० क्वाइन व्हाइटहैड एण्ड राइज आँव मोडन लोजिक (फिलोसोफी आव ए० एन व्हाइटहैड सम्पादक शिल्प 1944) एच० राइकनबक बर्टेण्ड रसेल्स लोजिक (फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल), एस वाटर्स सम फिलोसोफीकल इम्प्लीकेशन्स आव मिस्टर बर्टेण्ड रसेल्स लोजीकल थ्योरी आव मैथेमटिक्स, (पी० ए० एस 1909) पी० ई० बी० जोरडेन मिस्टर बर्टेण्ड रसल्स फस्ट वक आन द प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स (मोनिस्ट 1912) एफ० पी रेमस द फाउण्डशन्स आव मैथेमेटिक्स एण्ड अदर लोजीकल ऐसेज (1931) एफ० वसमैन इण्टोडक्शन टू मैथेमेटिकल थिंकिंग (1936), ज जोरजेन्सन ए ट्रीटीज आव फोरमल लौजिक (1931) ई० ज० नेलसन व्हाइटहैड एण्ड रसेल्स थ्योरी आव डिडक्शन (बुलेटिन अमेरिकन मैथेमेटिक सोसाइटी 1934)

2 रसल उनके साथ सहमत हैं। व ह्यूमन नोलेज (1948) के आमुख म कहते हैं कि तर्कशास्त्र दशन का अग नही है। इसका यह अथ नही कि वे अपने इस कथन का खण्डन करते है कि तर्कशास्त्र दशन का निचोड है। ह्यूमन नोलेज म तर्कशास्त्र का अथ एक निगमनात्मक प्रणाली की रचना करने से ही है। तर्कशास्त्र जो दशन का निचोड है, यह बताने का प्रयास है कि दुनिया म कितने प्रकार के तथ्य

स्वय एक अभिप्रेत अथ व्यक्त करता है और जिस मानवी अनुमान की आवश्यकता नही है-ही तकशास्त्र का मूल विषय है। रसेल के तकशास्त्र एव प्रत्ययवादी ज्ञान रचना के सिद्धान्त मे यहा से एक मौलिक अन्तर प्रारभ हो जाता है। ड्यूई की तकशास्त्रीय जाच पद्धति से भी रसेल अलग धरातल पर खडे दिखाई देते हैं। वे तो मात्र इस तथ्य को पजीकृत करते हैं कि अभिप्रेत विद्यमान होता है। इसके विपरीत ब्रेडले और ड्यूई के लिए अनुमान एक ऐसी रचना है जो जाच-पडताल करने के दौरान प्रस्तुत विषय सदभ से प्रस्तुत हो जाने वाला एक अवस्था है। किन्तु ब्रेडले के दशन का विकास भी अनुमान की वस्तुपरकता पर निरन्तर ध्यान रखने के कारण हुआ था-और रसेल तो उसी वस्तुपरकता का गहरा आभास करा रहे थे।

द प्रिंसिपल्स ऑव मैथमेटिक्स नामक पुस्तक असाधारण रूप से स्पष्ट इस वाक्य से प्रारभ होती है। शुद्ध गणित तकवाक्यो की एक ऐसी श्रेणी निर्धारित करता है जिनका रूप प फ को व्यक्त करता है' जैसे वाक्यो से बना है और यहा प और फ ऐसे तकवाक्य हैं जिनमे एक या एक से ज्यादा चर (वरियबल्स) विद्यमान हैं और इन दोनो ही तकवाक्यो मे सभी चर समान हैं और न तो प और न ही फ तार्किक स्थिराक के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के स्थिराक अपने मे समाहित किए हुए हैं। एक स्थिराक की परिभाषा एक ऐसी पूर्णत निश्चित वस्तु से की गई है जिसके विषय मे कोई दुविधा शेष न रह गई हो। इस तरह 'सुकरात एक मनुष्य है म सुकरात एक स्थिराक है, ठीक उस स्थिति के विपरीत जहा यदि क्ष मनुष्य है तो क्ष मरणशील है' जैसे कथनो मे क्ष की अनिश्चित स्थिति है। क्ष यहा इसलिए अस्थिर है क्योकि यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की ओर सकेत नही करता है। रसेल यह स्वीकारते हैं कि चर का यथावत् वणन कर सकना बहुत मुश्किल है। यही बात तार्किक स्थिराक के लिए भी सही है क्योकि यह एक विशेष प्रकार का स्थिराक होता है जो केवल विशुद्ध गणित सबधी कथनो मे ही मिलता है।[1] उनकी दृष्टि को सामान्यत ऐसे प्रस्तुत कर सकते हैं कि जिस वस्तु का एक नामा य आकार है उसके अलावा उसका कुछ अन्य आकार भी होना चाहिए। वे इस' अथवा उस' विशिष्ट तत्व का सदभ प्रस्तुत नहीं करते। बाद मे वे कहते हैं– विशिष्ट नामो का गणित मे कोई महत्व नही है। यह उस प्लेटो–कार्टेजियन सिद्धान्त का रसेलीय सस्करण है जिसमे गणित को सारतत्व व्यक्त करने वाला विज्ञान कहा है–अस्तित्व मूलक नही।

यदि तार्किक स्थिराक इतने मौलिक हैं कि इन्हे परिभाषित भी नही किया जा सके तो कम से कम उनकी गणना तो हो ही सकती है।

---

1 द्रष्टव्य जे० ए० चेडविक लोजीक्ल कौंस्टेन्टस (माइण्ड 1927)

एक विशेष तकनीकी ग्रंथ भी
ग का होगा। इस तरह रसेल
परिभाषा गोल मोल है, क्योंकि
त वर्ग के अन्य सदस्यों का एक
ग की या एक ही अंक वाले वर्ग
ी अंका से व्यक्त नहीं की जाएगी
जाय तो उनका अंक भी एक ही
रने के लिए ही 1 की सख्या की
र य से ऐस सबंध के कारण जुड़ा
तथा य 1 समान हुगे। उदाहरण
ातियों एव वध पत्नियों के बीच
तब हुआ कि यदि क्ष य का वैध
एक ही हैं। इसी तरह यदि क्ष, य
हुगे। रसेल इस तरह यह सिद्ध
ी परिभाषा देने के कारण उनका

ी दार्शनिक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु
कहते हैं। और इसे कम भ्रामक
सिद्धान्त कहें तो बहतर होगा।
जरिए प्राप्त की जाती है और वह
न्य अंकीय अवस्थाएं विद्यमान
रते हैं कि हमारे द्वारा चुनी गई
म बताने का कोई तरीका उपलब्ध
याग कुछ विशेष आकारा को पूर्ण
च जाता है। यह ऐसे वर्ग का
भी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता
है (उदाहरण के लिए 1 1 का
को रद्द नहीं करती कि इन वर्गों
किन इसके लिए यह आवश्यक
यम यह स्थिति प्रकटती है, जो
बनी। वस्तु की अवग ग्रो एव

इण्टरनल रिलेश स मे मूर ने रसेल द्वारा मौतिक रूप से अभिप्रेत है का 'अमुक अवस्था स निगमित है' स तादात्म्य स्वीकार किये जाने को एक दोषपूण बकवास की भी सना दी है। प एव फ मे निहित सबध का सदम देने के लिए उ्होने 'लपेट (एन्टेल्स) नामक शब्द का प्रवतन किया जिसे आजकल के सभी दाशनिक सामान्य रूप काम म लेते हैं। यह सबध अब हम फ के विषय म सही कहने का अधिकार देता है कि यदि प सही है तो फ भी सही है।

मीनाग पर निबध लिखते समय स्वय रसेल म बेचनी के चि ह प्रकट होते है। विशेषतया उस निष्कप पर कि कि ही दो सही तकवाक्यो मे परस्पर सिद्धसाधक भाव है। उनका कथन है कि यह बात मानी जानी चाहिए कि एक पक्षीय अनुमान तो *व्यावहारिक तौर पर भी बहुत स मामलो म लगाया जा सकता है* और इस तरह अतत प्रतीकात्मक तकशास्त्र द्वारा सुझाय गय विचारो से भिन्न हमारे अनुमान म हमारे अनजान ही विद्यमान रहना चाहिए। लकिन उनका विचार है, अभिप्रेतो पर हुई चर्चाओ स निकल गलत निष्कर्षों का ज्ञानमीमासा की देहरी पर ही छोड दिया जाना चाहिए ताकि प्रतीकात्मक तकशास्त्र को निर्बाध एव मुक्त रूप स जीने का अवसर मिल सक।

सबध सूचको के विषय मे रसल पीयस से अधिक कुछ न कह सके सिवाय बात को अधिक स्पष्ट शब्दों म कह दन के।[1] किन्तु निश्चय ही यह रसेल द्वारा इन पर दिए गए बल क कारण ही है कि आज दाशनिको म इसका प्रचलन हो गया है। वग एव वग सदस्यता विषयक उनका सिद्धान्त आरम्भ मे तो अपने तत्कालीन पूव वर्तियो के पदचिन्हो का अनुसरण करता हुआ दिखाई देता है। प्राकृतिक अको का व वगविभाजन की दृष्टि से ही वणन करना चाहते हैं और इस परिभापा क जरिए गणित के मौलिक सूत्रा का भी। पीयानो जसे गणितज्ञो न यह पहले ही बता दिया था कि गणित क अतिरिक्त सारे अक भी गणित क अको की तरह परिभाषित किए जा सकते हैं। यदि रसल प्राकृतिक अको को वग के वचार से परिभाषित कर सक्ते हैं तो गणित को अको की आवश्यकता ही नही रह जाएगी। और उसे तार्किक स्थिराको स भिन्न देखने की आवश्यकता भी नही होगी। गण सख्या की परिभाषा, रसेल यह कहकर दते हैं कि वह सन्व हो एक वग का अक ' । जसे कि सभी वर्गों का एक वग किसी प्रस्तुत वग के समान ही होगा। एक वग के छह सदस्य हैं। यदि यह एक ऐसे सामा य वग का हो एक उपवग है जो

1 आवर नालेज आफ एक्स्टनल वल्ड (1914) म दिय गए दूसरे भाषण का साराश देखें।

समान रूप से उस वर्ग के सदस्य हैं। यहा इसका एक विशेष तकनीकी अर्थ भी है, कि उसका भी वही अंक है जो अमुक अमुक वर्ग का होगा। इस तरह रसेल को इस आपत्ति का सामना करना पडा कि उनकी परिभाषा गोल माल है, क्योंकि वे एक वर्ग के अंक की परिभाषा समान रूप से उस वर्ग के अन्य सदस्यों को एक मानकर दे रहे हैं। उनका उत्तर है कि हम समानता की या एक ही अंक वाले वर्ग होने की परिभाषा दे सकते हैं—और वह परिभाषा भी अंकों से व्यक्त नहीं की जाएगी जब जब दो वर्गों का 1 1 के अनुपात से जोडा जाय, तो उनका अंक भी एक ही होगा। न ही हम 1 1 के अनुपात का व्यक्त करने के लिए ही 1 की संख्या की आवश्यकता पडेगी। एक संबंध 1 1 है, यदि क्ष य म ऐसे संबंध के कारण जुडा हैं और यदि वह उसी भांति य 1 से जुडा है तो य तथा य 1 समान होंगे। उदाहरण के लिए यह कहना कि क्रिश्चियन समाज में वैध पतियों एवं वैध पत्नियों के बीच 1 1 का आनुपातिक संबंध है तो उसका यही मतलब हुआ कि यदि क्ष य का वैध पति और क्ष1 य का वैध पति है तो क्ष तथा क्ष1 एक ही हैं। इसी तरह यदि क्ष, य और य1 का वैध पति है ता य तथा य1 एक ही होंगे। रसेल इस तरह यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि एक वर्गीय अंकों की परिभाषा देने के कारण उनका सिद्धान्त गोल मोल नहीं है।

अंक संबंधी इस परिभाषा में ही रसेल की दार्शनिक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु निहित है जिसे वे अमूर्तीकरण का सिद्धान्त भी कहते हैं। और इसे कम भ्रामक रूप से अमूर्तीकरणों से किनारा कर जाने वाला सिद्धान्त कहें तो बेहतर होगा। सामान्य दृष्टिकोण से एक संख्या अमूर्तीकरण के जरिए प्राप्त की जाती है और वह भी उन समूहों की इकाइयों के जरिए, जिनमें सामान्य अंकीय अवस्थाएं विद्यमान हों। किन्तु रसेल इस बात पर स्वयं ही आपत्ति करते हैं कि हमारे द्वारा चुनी गई एक अवस्था कैसे विद्यमान होती है इसके विषय में बताने का कोई तरीका उपलब्ध नहीं है।[1] 'अमूर्तीकरण का सिद्धान्त' जिसका उपयोग कुछ विशेष आकारों की पूर्ण करके ही किया जा सकता है—इन कठिनाइयों से बच जाता है। यह उसे वर्ग का सदस्य देकर अपनी परिभाषा आरंभ करता है जो सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है—और परस्पर के एक अद्वितीय संबंध को प्रकटाता है (उदाहरण के लिए 1 1 का प्रत्युत्तर)। इस प्रकार की परिभाषा इस संभावना को रद्द नहीं करती कि इन वर्गों के सभी सदस्यों में एक सामान्य अवस्था भी है। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा मानकर ही चलें। यहीं पर सर्वप्रथम यह स्थिति प्रकटती है, जो बाद में जाकर रसेल के दर्शन का मुख्य प्रेरक स्रोत बनी। वस्तु की अवस्थाओं एवं

1 द्रष्टव्य अध्याय 26 (प्रिंसिपिया मैथेमेटिका)।

इयत्ताओं की सख्या का अमूर्तीकरण करन क लिए उन्हे अपन को न्यूनतम करके देखना–ताकि थोडे स थोडे प्रतीको द्वारा ससार का पूरा चित्रण किया जा सके।

यदि वर्गों के पदा क रूप म अका की परिभाषा अपने आप मे विरोधास्पद न भी हो तो भी इससे विरोधास्पद स्थितिया के जम ले लने का खतरा तो है ही। मुख्यत यह कठिनाई वर्गों के वग बनाते समय सम्मुख आती ही है। यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसा करके भी एक वग ही बनेगा इसलिए यह भी सिद्ध हुआ कि यह भी वर्गों के वग का ही एक सदस्य होगा। अथात् यह भी अपन आपको सदस्य के रूप म उस सामान्य वग से जाड देता है और यह बात अपने आप म अद्वितीय नहीं है। वस्तुआ का ऐसा वग जो मनुष्य नही है वह अपने आप म कोई अमानवी अवस्था तो है ही। इसक दूसरी आर कुछ ऐसे वग भी हैं, जा अपनी जाति का सम्मिलित नहीं करते। वस्तुओ का वह वग जो मनुष्यो स बना ह अपने आप म एक आदमी नहीं ह। इससे लगता ह कि वग दो प्रकार के होते हैं व जो अपने वग के सदस्य हैं और वे जा अपन वग के सदस्य नहीं हैं। अब उदाहरण के लिए हम यह मानें कि एक एसा वग भी है जिसमें वसे सारे वग निहित हैं जो अपने ही वग के सदस्य नहीं हैं, तो क्या यह वग अपन वग का सदस्य नही है? फिर भी अपन वग का सदस्य होने के लिए उसे उक्त वर्गों म स एक वग तो हाना ही चाहिए। इस तरह यहा स्पष्टत एक विरोधाभास प्रकट हो जाता है। लेकिन फिर भी यदि वह अपन सामान्य वग का सदस्य नही है ता वह उन वर्गों म स एक नहीं है जो अपन वग क सदस्य नही हैं। इस तरह फिर एक विरोधाभास प्रकट हुआ। इस प्रकार हम स्वत ही एक विपरीतावस्था की ओर चले जात हैं। दोनो प्रकार क विकल्प ही विरोधाभास प्रकट करते हैं।

अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति एक वैज्ञानिक लेखक के सम्मुख कभी आई हो कि उसके द्वारा निर्मित एक विशाल इमारत की नींव को इस प्रकार हिलता हुआ कोई बता दे। यह बात उन्होंने फण्डामेण्टल्स ऑव लाज ऑव अरिथमेटिक के परिशिष्ट में लिखी है। रसेल द्वारा सुझाए विरोधाभास निश्चय ही उनकी नींव को हिलाने वाले थे। मुश्किल यही है कि यदि गणित की तार्किक रचना को बनाए रखना है तो हम पहले से समुचित रूप से निर्मित एक धारणा से प्रारम्भ करके ही आगे बढ़ना चाहिए ताकि वर्तमान स्थिति तक आते आते हम बिना विरोधाभास के इस प्रकार सुनिर्मित वर्गों के वर्ग के सदस्यों के विषय में जो अपने सामान्य वर्ग के सदस्य नहीं हैं अपने मतव्य को व्यक्त कर सकें। किन्तु यही तो वह स्थिति है जिसे रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभास के जरिए हटाने का प्रयास किया गया है। फ्रेगे ने इस कठिनाई के हल के लिए प्रयत्न किया—और उन्होंने समानधर्मी विस्तरण (इक्वल एक्सटेंशन्स) के संबंध में अपनी पहले की धारणा में संशोधन भी कर लिया और उसमें उस धारणा को भी सम्मिलित कर लिया जो वर्गों को व्यक्त करने वाले पदार्थों को व्यक्त करती थी। इस तरह अब यह बात स्वीकृति नहीं पा सकी कि वस्तुओं का वह वर्ग *जो मनुष्य नहीं है 'मनुष्य नहीं'* के विचार का विस्तार या फिर वर्गों का वह वर्ग जो अपने सामान्य वर्ग का सदस्य नहीं है अपने वर्ग का सदस्य है, इनके विषय में अब विचार करना आवश्यक नहीं था। सामान्यतः वे यह विश्वास करते थे कि यदि वे सीमित दशाओं के प्रमाण प्रस्तुत कर देंगे तो रसल द्वारा सुझाए गए विरोधाभासों को वे हटा सकेंगे।

रसल द्वारा दिया गया हल इस संबंध में अधिक अच्छा है। यह है प्रकारों के एक सिद्धान्त' का[1] प्रस्तुतीकरण। इससे यह नहीं जानना चाहिए कि वे कभी भी इससे पूर्ण संतुष्ट हुए हैं। वे स्वयं ही इसे ऊहापोहमय एवं अपूर्ण मानते हैं, किन्तु फिर भी समसामयिक दर्शन के विकास में इसका काफी महत्वपूर्ण प्रभाव रहा।

---

1 यह बात पहले प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स के परिशिष्ट 'ब' में तथा बाद में मैथेमेटिकल लॉजिक बेस्ड आन द थ्योरी ऑव टाइप्स (अमेरिकन जरनल ऑव मैथेमेटिक्स 1908) नामक निबंध में लिखी। आर०एम०एम० 1910 में ला थ्योरी देस टाइप्स लोजीकल में भी इस संबंध में सामग्री है। लेकिन प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में पूर्ण रूप से इसकी चर्चा की गई है। द फिलोसोफी ऑव लोजिकल एटोमिज्म टू जुलाई 1919 (मोनिस्ट 1918–19) नामक निबंध में रसल की अपेक्षाकृत लोकप्रिय शैली में यह वृत्तान्त मिल सकता है। 1919 में प्रकाशित इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल फिलोसोफी नामक ग्रन्थ में उनकी हिचक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जब से प्रकारों के सिद्धान्त का रसल ने स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है, इसको सभी स्थानों में रसल की मौलिक आविष्कृति स्वीकार किया जाना चाहिए चाहे इसके निर्माण में व्हाइटहेड का प्रभाव उन पर रहा हो।

इयत्ताओ की सख्या का अमूर्तीकरण करन के लिए उन्ह अपन को न्यूनतम करके देखना–ताकि थोडे स थोडे प्रतीको द्वारा ससार का पूरा चित्रण किया जा सके।

यदि वर्गों के पदो क रूप म अको की परिभाषा अपने आप म विरोधास्पद न भी हो तो भी इससे विरोधास्पद स्थितियो के जन्म ले लेने का खतरा तो है ही। मुख्यत यह कठिनाई वर्गों के वग बनाते समय सम्मुख आती ही है। यह तो स्पष्ट *ही है कि ऐसा करके भी एक वग ही बनेगा इसलिए यह भी सिद्ध हुआ कि यह भी* वर्गों के वग का ही एक सदस्य होगा। अर्थात् यह भी अपन आपको सदस्य के रूप म उस सामान्य वग से जाड देता है और यह बात अपने आप म अद्वितीय नही है। वस्तुओ का ऐसा वग जो मनुष्य नही है वह अपने आप म कोई अमानवी अवस्था तो है ही। इसके दूसरी ओर कुछ ऐसे वग भी हैं, जो अपनी जाति को सम्मिलित नही करते। वस्तुओ का वह वग जो मनुष्यो से बना ह अपने आप म एक आदमी नही है। इससे लगता ह कि वग दो प्रकार के होते हैं व जो अपने वग के सदस्य हैं और वे जो अपने वग के सदस्य नही हैं। अब उदाहरण के लिए हम यह मान कि एक ऐसा वग भी है जिसमें वसे सारे वग निहित हैं जो अपने ही वग के सदस्य नही हैं, तो क्या यह वग अपने वग का सदस्य नही है? फिर भी अपने वग का सदस्य होने के लिए उसे उक्त वर्गों म से एक वग तो होना ही चाहिए। इस तरह यहा स्पष्टत एक विरोधाभास प्रकट हो जाता है। लकिन फिर भी यदि वह अपने सामान्य वग का सदस्य नही है तो वह उन वर्गों मे स एक नही है जो अपने वग के सदस्य नही हैं। इस तरह फिर एक विरोधाभास प्रकट हुआ। इस प्रकार हम स्वत ही एक विपरीतावस्था की ओर चले जात हैं। दोनो प्रकार के विकल्प ही विरोधाभास प्रकट करते हैं।

विरोधास्पद स्थितिया कोई नई खोज हो ऐसी बात नही। झूठ बोलन वाल की विरोधास्पद स्थिति, दशन की ही जितनी पुरानी है। रसल उसे इस प्रकार पुन प्रेषित करते हैं –

उदाहरण क लिए यह मान लें कि एक आदमी यह कहता है कि वह झूठ *बोल रहा है। अब उस यदि सत्य मान लें तो वह झूठ बोल रहा है अर्थात् वह जो* कुछ कह रहा है वह सत्य नहीं है और यदि वह जो कुछ कह रहा है वह सही नही है, तो भी वह झूठ बोल रहा है। अर्थात् वह जा कुछ कह रहा है वह सही है। इस तरह के परिचित विरोधाभासो को प्राय हम चतुराई से अनदेखा कर जाते हैं किन्तु सभी वर्गों क एक वग वाले विरोधाभास को इतनी आसानी से अनदखा नही किया जा सकता। और गणित तथा तकशास्त्र के विश्लेषण के दौरान उठ खडे हुए ऐसे ही बहुत से विरोधाभासो के लिए भी यही बात सत्य है।

फ्रेगे की रचनाओ मे निहित विरोधाभासो से परिचित होकर रसेल ने उनक ही कुछ उदाहरण उन्ह भेज। फ्रेगे इससे बडे विचलित हो गए। कदाचित् ही इसस

अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति एक वैज्ञानिक लेखक के सम्मुख क्या आई हो कि उसके द्वारा निर्मित एक विशाल इमारत की नीव को इस प्रकार हिलता हुआ कोई बता दे। यह बात उन्होंने फण्डामेण्टल्स ऑव लॉज ऑव अरिथमेटिक के परिशिष्ट में लिखी है। रसेल द्वारा सुझाए विरोधाभास निश्चय ही उनकी नीव को हिलाने वाले थे। मुश्किल यही है कि यदि गणित की तार्किक रचना को बनाए रखना है तो हम पहले से समुचित रूप से निर्मित एक धारणा से प्रारम्भ करके ही आगे बढ़ना चाहिए ताकि वर्तमान स्थिति तक आते आते हम बिना विरोधाभास के इस प्रकार सुनिर्मित वर्गों के वर्ग के सदस्यों के विषय में जो अपने सामान्य वर्ग के सदस्य नहीं हैं अपने मंतव्य को व्यक्त कर सकें। किन्तु यही तो वह स्थिति है जिसे रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभास के जरिए हटाने का प्रयास किया गया है। फ्रेगे ने इस कठिनाई के हल के लिए प्रयत्न किया–और उन्होंने समानधर्मी विस्तरण (इक्वल एक्सटेंशन्स) के संबंध में अपनी पहले की धारणा में संशोधन भी कर लिया और उसमें उस धारणा को भी सम्मिलित कर लिया जो वर्गों को व्यक्त करने वाले पदार्थों को व्यक्त करती थी। इस तरह अब यह बात स्वीकृति नहीं पा सकी कि वस्तुओं का वह वर्ग जो मनुष्य नहीं है मनुष्य नहीं' के विचार का विस्तार या फिर वर्गों का वह वर्ग जो अपने सामान्य वर्ग का सदस्य नहीं है अपने वर्ग का सदस्य है इनके विषय में अब विचार करना आवश्यक नहीं था। सामान्यतः वे यह विश्वास करते थे कि यदि वे सीमित दशाओं के प्रमाण प्रस्तुत कर देंगे तो रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभासों को वे हटा सकेंगे।

रसेल द्वारा दिया गया हल इस संबंध में अधिक अच्छा है। यह है प्रकारों के एक सिद्धान्त का[1] प्रस्तुतीकरण। उससे यह नहीं जानना चाहिए कि वे कभी भी इससे पूर्ण संतुष्ट हुए हैं। वे स्वयं ही इसे ऊहापोहमय एवं अपूर्ण मानते हैं, किन्तु फिर भी समसामयिक दर्शन के विकास में इसका काफी महत्वपूर्ण प्रभाव रहा।

---

1 यह बात पहले प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स के परिशिष्ट ब में तथा बाद में मैथेमेटिकल लोजिक बेस्ड ऑन द थ्योरी ऑव टाइप्स (अमेरिकन जनरल ऑव मैथेमेटिक्स 1908) नामक निबंध में लिखी। आर०एम०एम० 1910 में ला थ्योरी देस टाइप्स लोजीकल में भी इस संबंध में सामग्री है। लेकिन प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में पूर्ण रूप से इसकी चर्चा की गई है। वे फिलोसोफी ऑव लोजिकल एटोमिज्म टू जुलाई 1919 (मोनिस्ट 1918–19) नामक निबंध में रसेल की अपेक्षाकृत लोकप्रिय शैली में यह वृत्तान्त मिल सकता है। 1919 में प्रकाशित इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल फिलोसोफी नामक ग्रन्थ में उनको अधिक स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। जब से प्रकारों के सिद्धान्त का रसेल ने स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है, इसको सभी स्थानों में रसेल की मौलिक आविष्कृति स्वीकार किया जाना चाहिए, चाहे इसके निर्माण में व्हाइटहेड का प्रभाव उन पर रहा हो।

सारे विरोधाभास खास प्रकार के छलवृत्तो (वीशस सर्किल्स) के कारण प्रकटते हैं[1] जब कभी भी यह मान लिया जाता है कि पदार्थों का सग्रह करते ही सदस्यता का गुण उसम निहित हो जाता है। और तब इस सग्रह को इन सदस्यो के पूणक के रूप म परिमापित भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मानलो हम कहते हैं कि सभी तक-कथनों म क्ष नाम की एक अवस्था विद्यमान है। यदि देखें तो यह वाक्य भी अपने आप म एक तकवचन है। इसलिए तकवाक्यो का एक वग अपने सदस्यो के रूप म यदि इन तकवाक्यो को रखता है, तो एसा लगता है कि यह वग पूण हो गया है। क्योंकि यह सभी तकवाक्यो की बिना सदभ दिए ही चर्चा करता है। यह विरोधाभास कि वग एक साथ ही पूरा होना चाहिए और अपूण भी रहना चाहिए इस तथ्य को ही उजागर करता है कि ऐसा कोई वग है ही नही।[2] इस प्रकार हम कहना पडेगा, कि सभी तकवाक्यो से सबधित कथन निरथक है। तब हम तकवाक्या के सिद्धान्त का विकास कस करेंगे? सभी तक वाक्यो की भ्रामक पूणता के भाव को खण्डित करके रसल के सुझाव के अनुसार उन्हें विभिन्न तकवाक्यो को ऐसी इकाइया म विभाजित कर देना चाहिए जो अपने आप म विशुद्ध पूण ता का भाव समाहित करने योग्य हो जाए और बाद मे भी इस प्रत्यक इकाई का अलग से ग्रहण न किया जा सके। यह तोड देने का भाव ही प्रकारो के सिद्धात का उद्देश्य है-इसे तकवाक्यो के लिए प्रयुक्त करन क बजाय तकवाक्यीय काय के साथ प्रयुक्त किया जाता है। गणित क लिए इनका रसेल की दष्टि मे बहुत महत्व है।

प्रकारो के सिद्धान्त दो तरह के हैं-एक सरल तथा दूसरा शाखा-प्रशाखाम्रा वाला। सरल सिद्धान्त म साथकता की श्रृंखला होती है। रसल के अनुसार तक वाक्यीय कायमूलक म क्ष मरण शील है म से क्ष के स्थान पर एक स्थिराक रख देने से वह सही तकवाक्य हो जाता है। कुछ अन्य तरह के अक रख देने से वाक्य ही दोषपूण हो सकता है। किन्तु कुछ मामलों म तो इस तरह से प्राप्त किया हुआ तक वाक्य न तो सही होता है और न केवल अथहीन हो जाता है।[3] क्ष के स्थान पर

---

1 रसेल के छलवृत्तो (वीशस सर्किल्स) के सिद्धात पर प्रस्तुत की गई बाद की आलोचनाओं के लिए देखें गोडेल द्वारा फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल नामक ग्रन्थ मे लिखित अध्याय रसेल्स मैथेमेटिकल लोजिक।

2 यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि सत्य झूठ एव अथहीन तर्कवाक्यो की त्रिभगी मे कोई नवीनता नही थी। रसेल ने स्वय कहा है कि पौराणिक तकशास्त्र मे भी इसका विचार विद्यमान है। मिल की पुस्तक सिस्टम ऑव लोजिक म तो बहुत ही विशद रूप से इसकी चर्चा है और फ्रेगे के सबध मे उपयुक्त चर्चा में भी इसी के सम्बन्ध में काफी कहा जा चुका है।

रखे गए स्थिराक एक सार्थक तर्कवाक्य की रचना कर देते हैं। इन्हें ही सार्थकता की 'श्रृंखला' निर्माण करने वाला तत्व माना गया है या कभी कभी इसे फलन का प्रकार भी कहा जाता है। क्ष मरणशील है नामक कथन में सार्थकता की श्रृंखला, एक विशिष्ट इयत्ता में सीमित हो गई है। यह हमेशा उचित रहता है चाहे गलत भी हो, कि हम कहें कि यह विशेष वस्तु मरणशील है। किन्तु रसेल के लिए मनुष्यों के वर्ग को या मानवता को मरणशील मान लेना निरर्थक ही है। सामान्य सिद्धान्त यही है कि एक 'कार्यफलन' हमेशा ही अपने लिए प्रस्तुत तर्क से ऊँचा होना चाहिए। यही कारण है, मरणशील फलन सुकरात जैसे शब्द के लिए उचित ही तर्क लगता है। किन्तु यदि उसे मनुष्यों के वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाय तो निरर्थक हो जाएगा। और इसी तरह कोई वस्तु एक वर्ग की सदस्य तो हो सकती है किन्तु एक वर्ग का, कम से कम एक वर्गों के वर्ग का यदि उसे सार्थक होना है तो, सदस्य हुए बिना काम नहीं चल सकता। उसी तरह जैसे एक व्यक्ति किसी क्लब का सदस्य हो सकता है किन्तु एक क्लब किसी समुदाय या बड़े वर्ग का ही सदस्य हो सकता है। वर्ग के विरोधाभास में जिसे अपनी ही सदस्यता प्राप्त हो, इस नियम को अन-देखा रखा गया है। यह मान लिया गया कि सभी वर्ग एक ही प्रकार के हैं—और कोई भी वर्ग दूसरे वर्ग का सदस्य हो सकता है किन्तु यही मानना एक छलवृत्त को प्रकटाने जैसा ही है। सभी 'वर्गों का वर्ग' तब सभी वर्गों' से भिन्न एक ऐसा वर्ग होगा जो उन वर्गों का होते हुआ उनसे अतिरिक्त हो। किन्तु एक बार इन प्रकारों का भेद दृढ़ रूप में स्वीकार लिया जाए तो यह कहना निरर्थक होगा, कोई वर्ग अपने वर्ग का ही सदस्य है अथवा नहीं। इस तरह यह भीषण विपरीतता विलीन हो जाएगी।

रसेल का मत है कि हम अचेतन रूप में भी प्रकारों के भेद का ख्याल अपनी दैनिक बात चीत में रख ही लेते हैं। अचेतन रूप से इसलिये कि उदाहरण के लिए, यह कोई कहना नहीं चाहेगा कि मानवता मनुष्य नहीं है। किन्तु मानवता और एक मानव में जहां स्पष्ट अन्तर है, वहां तक वे मूलभूत विषय जैसे सत्य झूठ, कार्य-फलन अवस्था, वर्ग आदि का कोई निश्चित प्रकार नहीं है। हम केवल सत्यों के विषय में बातचीत करने के अभ्यासी हो गए हैं। इस समय चाहे हम पहले दर्जे के सत्यों का विचार कर रहें हों (जैसे क्ष–य है) अथवा दूसरे दर्जे के (क्ष य है यह सत्य है)। तब विरोधाभास प्रकट होना अनिवार्य है। हमें यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि सत्यों से सबंधित तर्कवाक्य उन्हीं की सिद्धि के लिए हैं। जबकि वास्तव में पहले दर्जे के सत्यों के लिए प्रयुक्त दूसरे दर्जे के सत्य मात्र होते हैं। और तब हम शीघ्र ही निरर्थकता के समुद्र में हाथ पैर मारने लग जाते हैं। इससे बाहर आने का एक मात्र तरीका पहले से साफ साफ बता देना है, कि कौन से दर्जे के सत्य

का वर्गों का या कायफलन आदि के विषय मे हम चर्चा करने जा रहे हैं।[1]

विरोधास्पद स्थितियो के सभी खतरो का निवारण करने के लिए प्रकारो का सरलीकृत सिद्धान्त पर्याप्त नही है। प्रकारो के बीच भेद करना अभी और आवश्यक हैं। इन दो तर्कवाक्यीय कायफलनो की तुलना करो-क्ष एक जनरल है एव क्ष मे महान जनरल होने के सभी गुण हैं। दोनो की सार्थकता की शृखला तो एक जसी है। नेपोलियन को अच्छी तरह से दोनो अवस्थाओ मे क्ष के स्थान पर रखा जा सकता है। किन्तु महान् जनरल के सभी गुण' नामका विधेय अपने आप मे एक अनुपयुक्त समग्रता है क्योंकि यह अपने आप ही एक ऐसा गुण रखता है। यह समग्रता उसी समय हटाई जा सकती है, जब प्रत्यक प्रकार के निहित क्रम के भेद को प्रकट किया जाय। तब महान् जनरल के सभी गुण हैं एक ऊचे क्रम की स्थिति होगी और अपने आप मे एक गुण नही। इस प्रकार का सिद्धान्त इस सदर्भ मे आवश्यक है यदि हम प्रत्येक प्रकार की तार्किक असगति को दूर करना है।

बहुशाखी सिद्धान्त के प्रवतन मे आजाने से मौलिक रूप से अवंचित प्रकारो का सिद्धान्त और भी जटिल हो गया, किन्तु इसमे भी बडी गलती यह थी कि बहुशाखी सिद्धान्त गणितीय विश्लेषण की कुछ विविधताओ को मिटा देता था क्योकि इस सिद्धान्त के अनुसार गणितीय विश्लेषण मे अवाछित समग्रताओ का प्रयोग होता था।[2] रसेल की धारणा थी कि व इस कठिनाई का हल यूनीकरण

---

1 रसेल ने प्रकारो के विषय मे भी बाद मे कुछ असतोष प्रकट किया था। क्या यह भी विभिन्न प्रकारो के लिए है ? किन्तु यह कहना कसे सम्भव है कि सुकरात और मनुष्यता अलग-अलग प्रकार हैं। जब तक कि प्रकारो के निर्धारण का कोई एक सामान्य आधार न हो ? क्या हम प्रकारो के सिद्धान्त के विरुद्ध पाप नही कर रहे होते हैं जब विभिन्न प्रकार के तर्कों के लिए यह भी कहते हैं कि वे विभिन्न प्रकार के हैं ? तो क्या हम एक अलग कायफलन इससे नही निकाल रहे हैं ? इसी कारण से रसेल ने प्रकारो के सिद्धान्त के लिए भाषाई व्याख्या का स्वागत किया था जिसे आर कारनप जसे विचारको ने प्रवर्तित किया। यह कहना कि कोई इयत्ता इस या उस प्रकार की है एक भूल होगी। प्रकारो की भिन्नता अभिव्यक्ति से आती है। और यह बात बिना विरोधाभास के कही जा सकती है एक दूसरे दर्जे की भाषा मे एक सुकरात' और मनुष्यता' नामक शब्द भिन्न अर्थ प्रकटाने वाले हैं। इस सबध मे रसल द्वारा अपने आलोचकों का उत्तर द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल नामक पुस्तक मे देखें। द्रष्टव्य ज० ज० स्मार्ट हाइटहेड एण्ड रसेल्स थ्योरी आव टाइप्स (एनालिसिस 1950) पी० वेस द थ्योरी आव टाइप्स माईण्ड 1928)

2 विशेषत व ; डडेकाइण्ड कट का सन्दर्भ-द्रष्टव्य गोडल की वही कृति एव जी० एच० हार्डी कृत ए कोर्स आव प्योर मैथेमेटिक्स (1908)

के स्वयमिद्ध' (एक्जियम ग्राव रिड्यूसिबिलिटी) की सहायता से कर सकते थ। इससे यही सिद्ध होता है कि क्ष म य के सभी गुण विद्यमान हैं' वाले ग्राकार के कथनों म एक ऐसा समाकारी कथन विद्यमान होता ही है जो सभी गुणों' के सदभ का ग्रपने म समाहित किए है। किन्तु उसके समाकारी होन की वजह से वह मूल कथन को केवल गणितीय तक के रूप म उसके स्थान पर प्रयोग कर सकता है। किन्तु इस स्वयसिद्ध का प्रिंसिपिया मैथेमटिका की निगमनात्मक प्रणाली म दुरुपयोग ही हुग्रा है ग्रौर इसमे उस स्वत सिद्धि का ग्रभाव भी था, जिसकी माग करने के गणितज्ञ ग्रभ्यस्त हो जाते हैं।

ग्राश्चय की बात नही है कि ग्रन्य तकशास्त्रियो ने इन विरोधास्पद स्थितियो के निवारण का प्रयास बिना बहुशास्त्री प्रकारो के सिद्धान्त के विषय म चिन्ता किए किया है।

इन प्रयासो म सवश्रेष्ठ एफ० पी० रमस कृत द फाउण्डेशन ग्राव मैथेमटिक्स नामक लेख कहा जा सकता है।[1] ग्रौर प्रिंसिपल्स ग्राव मैथेमेटिक्स के दूसरे सस्करण म रसेल, रेमसे के हल को स्वीकार लेते हैं। रेमसे के ग्रनुसार रसेल ने कुछ ऐसी विरोधास्पद स्थितियो को एक साथ मिला दिया है, जिनकी प्रवृत्ति भी भिन्न भिन्न है। उदाहरण के लिए, एक तो व स्थितिया जो वर्गों स सबधित विरोधाभासो से उपजती हैं, वह भी उस समय जब उनसे एक तार्किक प्रणाली रची जाने का प्रयास किया जाता है। दूसरी वे जो झूठे (लायर) की विरोधास्पद स्थिति के कारण ग्रपने मूल म भाषाई तथा उसके प्रयोग स सम्बन्धित हो जाती है। ग्रर्थात् वे उसी समय प्रकटती हैं जब हम प्रणाली के विषय का विश्लेषण करते हैं। पीग्रानो का ग्रनुकरण करते हुए रमसे कहते हैं कि प्रकारो का सरलीकृत सिद्धान्त पहले प्रकार के विरोधाभासो का हल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है ग्रौर ग्रपने इसी रूप म इसका एक तकशास्त्री स सबध भी होता है। दूसरे प्रकार की विरोधास्पद स्थितियो का निवारण दुविधाग्रो को हटाकर किया जा सकता है। व दैनिक व्यवहार के शब्दो स

1 देखें प्रोसीडिंग्स ग्राव लन्दन मैथेमेटिकल सोसाइटी जिसका पुनमुद्रण उनके मरणोपरान्त द फाउण्डेशन्स ग्राव मैथेमेटिक्स एण्ड ग्रदर लोजिकल ऐसेज नाम स हुग्रा। इसका सम्पादन ग्रार० बी० ब्रैथवेट ने सन् 1931 म किया। द्रष्टव्य ग्रार कारनप द्वारा प्रस्तुत द लोजीकल सिन्टेक्स ग्राव लैंग्वेज म विपरीतताग्रो पर चचा। (1934—ग्रग्रेजी सस्करण 1937)। द डिक्शनरी ग्राव फिलोसोफी म ए० चच द्वारा लिखित लोजिकल पराडोक्सेज नामक निबन्ध उसी म जोरजेन्सन का इसी सबध मे विस्तृत विवरण देखें। माइण्ड 1936 मे प्रकाशित डब्ल्यू० वी० ग्रा० क्वाइन कृत निबध ग्रान द एक्जियम ग्राव रिड्यूसिबिलिटी।

उत्पन्न हुई दुविधाओं के कारण उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे-'मतलब है' (मीन्स) नाम है' (नेम्स) परिभाषित करता है' (डिफाइन्स)। इस तरह प्रकारों का बहुशास्त्री सिद्धान्त किसी भी अवस्था में अनिवार्य नहीं है और बदनाम 'यूनीकरण के स्वय सिद्ध' को अस्वीकृत किया जा सकता है।[1]

तब रसल के प्रकारों के सिद्धान्त का प्रभाव यह है कि मूर की विश्लेषण की व्याख्या की भांति यह इस बात को बढ़ावा देता है कि मापाई जांच पड़ताल चाहे वह किसी भी तरह की हो एक दार्शनिक के लिए विशेष महत्व की होती है। रसेल के संकेत सिद्धान्त से ही ऐसा एक और प्रभाव प्रकटा। अब तार्किक स्थिराक' पर हुई चर्चा हम सीधे उनके दर्शन के केन्द्र की ओर ले जायगी।

हम पहले ही देख चुके हैं कि रसेल का प्रारंभिक तत्वदर्शन मूर से लिया गया है। उन्होंने द प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स में लिखा है कि दर्शन के मूल प्रश्नों पर अपनी प्रमुख अवस्थाओं में भी मेरी स्थिति जी० ई० मूर से प्रभावित रही है। मैंने उनसे तर्कवाक्यों की अनस्तित्वशील प्रकृति के विषय में जाना (सिवाय उन वाक्यों के जो स्वत: अस्तित्व की सिद्धि कर देते थे) और यह भी जाना कि वे किसी के जाने बिना भी विद्यमान रह सकते हैं। उनमें मैंने बहुलतावाद का सिद्धान्त

---

1 विरोधाभासों पर विचार करने के लिए अन्य प्रस्ताव भी थे। एल० जे० ब्रूवर एवं एच० बी० बील जैसे प्रख्यात अन्तःसाक्ष्यवादियों ने गणितीय विश्लेषण के उन अपरिपक्व सिद्धान्तों को छोड़ देने की राय दी थी जिनके कारण न सुझाये जा सकने वाले विरोधाभास प्रकटते हो। ई० जर्मलो ने इन्वेस्टीगेशन्स इन्टू द फाउण्डेशन ऑव द थ्योरी ऑव सेट्स (मैथेमेटिक एनालेन 1908) नामक कृति में इस समस्या पर इन विधियों के कारण हुए अन्तर की दृष्टि से विचार किया है-जिनका विस्तार किया जाना अथवा न किया जाना संभव नहीं है। डब्लू० क्वाइन ने अमेरिकन मैथेमेटिकल मन्थली 1937 में तथा बाद में मैथेमेटिकल लॉजिकल 1945 में 'न्यू फाउण्डेशन्स ऑव मैथेमेटिकल लॉजिक' लिखकर रसेल के प्रकारों के सिद्धान्त तथा जर्मलो की इकाइयों की व्याख्या को मिला देने का प्रयास किया है। संक्षिप्त वृत्तान्त के लिए 1950 में प्रकाशित क्वाइन का मैथड्स ऑव लॉजिक तथा मैथेमेटिकल लॉजिक देखें (1940)। इनमें जर्मलो की रचनाओं में हुए विकास का सदर्भ है। द्रष्टव्य के० ग्रलिंग कृत द लॉजीकल पराडोक्सेज (माइण्ड 1936) ए० फ्राइनकेल एवं वाई० बार हिलेल कृत ले प्रोब्लेमे देस एन्तीनोमीज एत लेस देवलेपमेन्तस रीसेन्तस (आर० एम० एस० 1939), क्वाइन और फ्रेगे के द्वारा प्रस्तुत किए गए हलों के परस्पर संबंधों के लिए देखें—डब्लू० वी० ओ० क्वाइन कृत आन फ्रेगेज वे आउट (माइण्ड 1955)।

वग (२) 'मरणशीलो का वग । किन्तु वास्तव म ता 'क्ष मरणशील है' की सकेत लिपिक सरचना है, क्योकि क्ष मरणशील है। यह तो क्ष मनुष्य है का कायफलन मात्र है। रसेल के अनुसार कोई ऐसी इयत्ता नही हैं, जिसे एक वग के रूप म जाना जा सके।

इसी प्रकार एक ओर जहा अपने आरम्भिक निबधो म स एक निबध इज पोजीशन इन टाइम ऑर स्पेस एब्सोल्यूट ऑर रिलेटिव ? (माइण्ड 1901) मे रसेल ने दिकीय बिन्दुओ एव समयघटको (टम्पारल इन्स्टन्टस) के साथ स्वतन्त्र रूप से खिलवाड किया है और इन्हें दिक तथा समय की अन्तरिम इकाई माता है। व्हाइटहैड ने उन्ह इस बात के लिए उकसाया कि व वाक्य जो स्पष्टत इन इयत्ताओ का सकेत देते हैं, बिना किसी निरथकता के ऐसे वाक्यो मे बदले जा सकते हैं, जिनस बिन्दुओ, घटनाओ, परमाणुओ अ को की नियति, वर्गों, वेवरले का लेखक तथा वतमान फ्रास का राजा आदि का सदभ प्रस्तुत कर सके।

अभी तक तो दनिक जीवन के उपकरणो को, जैस मज कुर्सी, हमारे तथा तथा दूसरों के मनस आदि के विषय मे कुछ भी नही कहा गया है किन्तु जिस प्रक्रिया के जरिए हमारी इन्द्रिय चेतना से इनका सबध बनाया गया है वही प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी (1912) नामक ग्रन्थ की भूमिका तयार करने के लिए पर्याप्त है। इस पुस्तक के आमुख मे रसेल, मूर के प्रति उनके उन मापणो क लिए कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। जो 1953 म सम मेन प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी नाम से प्रकाशित हो चुके थे। मूर के साथ वे इस मामले मे सहमत हो जाते है कि जिस वस्तु स हमारा तात्कालिक ससग होता है व ऐन्द्रिय उपकरण ही हैं, भौतिक पदाथ नही।

किन्तु फिर भी रसेल एव मूर की ज्ञानमीमासा म उल्लेखनीय अन्तर है। रसल के लिए भौतिक पदार्थों का अस्तित्व एक वज्ञानिक प्राकल्प है—भौतिकी के प्राकल्प का ही समानान्तर। इन्हे हम सत्य मानते हैं क्योकि अन्य किसी प्राकल्प की अपेक्षा ये हम हमारे ऐन्द्रिय उपकरणो के व्यवहार की सरलतम व्याख्या करने की सुविधा प्रदान करते हैं। य मूर के पदार्थों की भाति ऐसे पदाथ नहीं है जिन्हें हम तत्काल जान लेते हैं। रसेल का यह कहना, कि हम भौतिक पदार्थों का सीधा प्रत्यक्षीकरण नही करते, विज्ञान की उस धारणा से मेल खाता है जिसम हमारे प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या की गई है। मूर की सामान्यवुद्धि की व्याख्या से रसेल की यह स्थिति सवथा भिन्न है। इसके अतिरिक्त भी व प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी का पूरा वातावरण तक गणितीय है तथा कार्टेजियन शली की याद दिलाता है। रसेल अविवादास्पद स्थिति की खोज मे थ। कम स कम ऐसी स्थिति के, जिसके विषय म सदेह किया जाना असमव हो जाए और उसी आधार पर हमारी दनिक

आस्थाओं की वे आलोचना भी करते हैं–जिन्हें हम संस्कारों के कारण विश्वास-योग्य मानते है। ऐसी सामान्य बुद्धि को वे जरूर कुछ रियायत ता देते हैं किन्तु वे मूर के सामान्य बोध के बचाव स पूर्णत कभी भी सतुष्ट नही हो सके। वे जिसका बचाव करना चाहते हैं, वह सामान्यबोधी दृष्टिकोण न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही है–और उस समय बचाव का औचित्य दने के लिए भी विज्ञान का ही सहारा लेना होगा, ऐसी रसेल की मान्यता रही है।

अविवादास्पद की खोज के प्रयास म उन्होने द **प्रोब्लेम ग्राव फिलोसोफी** नामक ग्रन्थ की रचना की और ऐसे पदार्थों की सबसे पहले व्याख्या की जिनसे हम तत्काल 'परिचित होते हैं। रसेल, परिचय द्वारा ज्ञान तथा विवरण द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की *अलग अलग व्याख्या करते है। इस व्याख्या म वे जेम्स से प्रभाव* ग्रहण करते हैं। जेम्स ने यह प्रभाव ग्रोटे से ग्रहण किया था। इस तरह यह सिद्धान्त एक केम्ब्रिज के विद्वान् से बहुत से विद्वानो के समूह में प्रवर्तित हुआ है। यही वह स्थल है जहा रसेल द्वारा किया गया सकेतन का विश्लेषण उनके दशन की विवेचना का महत्वपूर्ण आधार बन जाता है।[1]

यदि हम प्रत्यक्षत किसी वस्तु का बोध प्राप्त करते हैं तो हमारा ज्ञान परिचय द्वारा प्राप्त ज्ञान की श्रेणी का होगा। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है हमारी ऐन्द्रिय चेतना–मैं प्रत्यक्षत यह जान सकता हू कि मुझे ऐन्द्रिय उपकरणो का अनुभव हो रहा है। और इससे यह निष्कर्ष निकला कि (वे यह बात जरा हिचकते हुए

---

1 यद्यपि रसेल जेम्स के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते है तो भी अन्तर करने की उनकी प्रणाली जेम्स से सवथा भिन्न है। **नोलेज बाई एक्वेन्टेन्स एण्ड नोलेज बाई डिस्क्रिप्शन** नामक रसल का निबंध सव प्रथम पी० ए० एस० 1910 म प्रकाशित हुआ। कोई से सशोधन के साथ **प्रोब्लेम्स ग्राव फिलोसोफी** म उसका पुन मुद्रण हुआ। **मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक** म भी उसे शामिल किया गया है। द्रष्टव्य जी० डी० हिक्स जी० डी० मूर तथा अन्य लेखकों द्वारा लिखित **इज देयर नोलेज बाई एक्वेंटेन्स** (पी० ए० एस० 1949) द्रष्टव्य रसेल का निबंध **ग्रान द नेचर ग्राव एक्वेंटेन्स** (मोनिस्ट 1914) **सम मेन प्रोब्लेम्स ग्राव फिलोसोफी** नामक ग्रन्थ म मूर ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष बोध का चर्चा की हैं। परिचय द्वारा ज्ञान' तथा विवरण द्वारा ज्ञान इसी का जस नव्य रूपान्तर है। किन्तु मूर ने एक नोट म परिचय द्वारा ज्ञान के सबध म लिखा है कि वह न तो ज्ञान ही है और न परिचय ही। जानने के विषय मे ऐसा कोई साधारण बोध नही है जिससे केवल मात्र इस तथ्य से कि मैं एक व्यक्ति को देख रहा हू *यह अन्दाजा लगाया सके कि उसी क्षण मैं उसे जान* भी रहा हू।

क,त है) मैं प्रत्यक्षत इस म का बोध प्राप्त कर रहा हू जो अनुभव प्राप्त कर रहा है और इन मानसिक अवस्थाओ म गुजर रहा है।

मानसिक अवस्थाएँ हमारा आत्म तथा एन्द्रिय उपकरण ही ऐसी वस्तुए है जिसके जरिए हम प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हो सकता है। लेकिन, इसके साथ ही हम समष्टियो स भी परिचित रहत हैं, जस सफदा, आग की स्थिति तथा विविधता आदि। जब हम एक इन्द्रिय उपकरण के जरिए एक स्थिति के दूसरी से पहले होने का अनुभव प्राप्त करते हैं तब हम एक समष्टि म परिचित होत है जो प्राग्भाव की सबधसूचक होती है।

हम भौतिक पदार्थो स परिचित नही है। हम किसी प दाथ को मज के रूप म वसा ही जानत है जसा कि एक विशष वणन क जरिए उसके विषय म कहा गया है। उदाहरण के लिए' पदाथ एक एसी वस्तु मानी जाती है जो इन्द्रिय उप करणा को सचष्ट करती है। और प्रत्यक्ष अनुभव क जरिए न जानकर केवल अनुमान स हम यह जानत है कि अमुक पदाथ विद्यमान है। न हम दूसरे मनुष्यो म से ही परिचित हो पाते हैं। उनस भी नही, जिनक साथ हम अपने व्यक्तिगत परिचय का दावा करते हैं। य मनुष्य भी उसी स्थिति म है जैस भौतिक पदाथ होते हैं। इन्द्रिय उपकरणा की चष्टा स उत्पन्न य अनुमान मात्र हैं–और उन लोगो स जिनस सामान्य–तथा हम प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त नही कर सकत जसे जूलियस सीजर ता हम स्पष्टत उन्ह विवरण के जरिए ही जान पाते हैं। उदाहरण के सीजर को जानने का हमारा एक दृष्टा त यह है कि यह आदमी है जिसने रूबीकन नदी पार की थी।

ऊपरी तौर पर यह अजीब सिद्धान्त नजर आता है। साधारणत जूलियस सीजर किसी एसी वस्तु का नाम नही है, जो विवरण योग्य हो और जूलियस सीजर न रूबीकन नदी पार की थी, जस कथनो म जूलियस सीजर किसी 'विवरण' की ओर सकेत नही दकर, इस बात का प्रकट करता है कि हमारे विवरण की दिशा क्या है। किन्तु रसेल यह आपत्ति करते है कि सभवतया हम किसी ऐसी वस्तु क विषय म चर्चा नही कर सकते, जो हमार परिचय क्षेत्र म नही आती। यह तर्कवाक्य इस तरह जूलियस सीजर के विषय म नही हो सकता चाहे व्याकरण की दृष्टि से, ठीक इसक विपरीत बात ही क्यो न प्रकट होती हो। रसेल क अनुसार प्रत्यक समझ म आने योग्य तर्ककथन पूणत उन तत्त्वो से बना होना चाहिए जिनसे हम परिचित रहते हैं। कोई तर्ककथन जो जूलियस सीजर क विषय म हो वास्तव मे किन्ही इन्द्रिय उपकरणों (चाहे हमने उनके विषय म सुना हो या पढ़ा हो) स सबद्ध होना चाहिए एव कुछ समष्टि भावो को भी उसे उजागर करना चाहिए। जिस प्रकार

ववरले का लखक वेवरल का लखक स्कोच है' नामक तकवाक्य का सही कत्ता नही हैं, उसी तरह रसल के कथनानुसार जूलियस सीजर ने रूबीकन नदी पार की—नामक तकवाक्य म जूलियस सीजर सही कर्त्ता नही हो सकता । यद्यपि इस सबध म विस्तृत वणन से ग्रौर भी जटिलता ग्राएगी तो भी ऐसे तककथनो की विवरण के सिद्धान्त के जरिए व्याख्या की जा सकती है । इस सिद्धान्त के ग्र धार पर ऐसे तककथनो म जूलियस सीजर को उपयुक्त सदभ मे न दिए जाने पर भी उसक मूलभाव मे कोई ग्रन्तर नही ग्राता ।

ग्रब समस्या यही शेष रहती है कि सामान्य सिद्धान्तो के ज्ञान की व्याख्या कसे की जाए ? क्या किसी सामान्य सिद्धान्त को वस्तुसबधी ऐस कथनो म बदला जा सकता है, जिनसे हम परिचित हैं ? रसेल की दष्टि म गणितीय तकवाक्यों के विषय म ऐसी कोई कठिनाई नही है । वे समष्टियो को व्यक्त करते हैं ग्रौर हम समष्टियो से परिचित होते ही हैं । कि तु ग्रागमनात्मक सिद्धा त उनकी दृष्टि म ग्रधिक जटिल होते हैं । ह्यूम की भाति ही वे सोचते हैं यदि इस सिद्धान्त का कोई ठोस ग्राधार नही है, तो हमारे लिए यह ग्रपेक्षा करने का कोई कारण नही है कि कल सूर्योदय होगा, या यही मानना कि रोटी पत्थर की ग्रपेक्षा ग्रधिक पौष्टिक होती है । वे यह भी समझ नहीं पाते, कि ग्रागमनात्मक सिद्धान्त किस भाति या तो समष्टियो के बीच विद्यमान किन्ही सबधो के सूचक हैं या ग्रनुभव जन्य ग्रनुमान हैं । इस तरह वे इस निष्कष पर पहुचने को बाध्य हो जाते हैं कि (चाहे ऐसे मानना कितना ही ऊहापोही क्या न हो) हमारा सम्पूण ज्ञान हमारे द्वारा प्राप्त ग्रनुभव पर ग्राश्रित है । यह मानना हमारे इस विश्वास पर ग्राधारित है, कि ग्रनुभव न तो किसी को सिद्ध ही कर सकता है न उसका खण्डन ही । तो भी ग्रनुभवज य तथ्यो के ही भाति उपयुक्त विश्वास की जड गहरी है । उनक दशन के शिथिल स्थलो म स यह भी एक स्थल था ।

इसकी क्षतिपूर्ति करने के उनके प्रयास म—प्रोब्लेम्स ग्रॉव फिलोसोफी स दूर जाकर ह्यूमन नोलेज इटस स्कोप एण्ड लिमिटस नामक ग्र थ की रचना हो सकी ।

उनक दशन का ग्रन्य शिथिल स्थल, भौतिक पदार्थों की व्याख्या थी । भौतिकी को एक ग्रनुभववादी विज्ञान माना जाता है । तो भी 1914 मे साइन्टिया नामक पुस्तक जिसका 1917 मे मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक नाम से पुन मुद्रण हुग्रा, के एक निबध द रिलेशन ग्रॉव सेन्स डेटा टू फिजिक्स मे उन्होने बताया है कि स्वय भौतिकी हम यह बताती है, कि जिस किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भौतिकी की विषयवस्तु स सवथा ग्रलग ग्रनुभव है । परमाणुग्रो का

भी जाना जिसके अनुसार ससार को जो स्वतन्त्र इयत्ताग्रा के अनन्त ग्रको स बना है ग्रौर इन सबम एसे सबध हैं जिन्हू उनके पदो के कारण कोई विशेषण नही दिया जा सकता ग्रौर न ही उस पूरण की व्याख्या ही की जा सकती है जा इनस बना है। य इयत्ताए तकवाक्यों मे पदो के रूप म रहती हैं।

इस ग्राटोनाजी से भाषा का सिद्धान्त सबद्ध है। उन्होने लिखा कि यह ग्रावश्यक है कि एक वाक्य म लिखा प्रत्येक शब्द सार्थक होना चाहिए ताकि हमार तकवाक्यो का दार्शनिक विश्लेषण सतकता से किया जा सके ग्रौर इसम प्रयुक्त प्रत्येक शब्द क महत्व की सिद्धि की जा सके। प्रत्येक शब्द 'ग्रथ' है, प्रत्येक ग्रथ एक इयत्ता य ही वे सिद्धान्त हैं जिन पर रसल न ग्रपनी ग्रारम्भिक रचनाए की थी।

फ्रेगे की भाति वे भी पहले से ही ग्रपने सकेतन' के विश्लेषण के दौरान यह मानते हैं कि तकवाक्य का व्याकरणीय ग्राकार भ्रामक भी हो सकता है। एक तकवाक्य मे कोई धारणा ऐसे भी प्रयुक्त की जा सकती है जा धारणा के विषय मे कुछ न कहकर धारणा से सबद्ध किसी पद क विषय म कुछ कहती हो। इस प्रकार, मैं एक ग्रादमी से मिला' का ग्रथ यही नहीं है कि मैं मनुष्य सबधी धारणा' स मिला। यहा ग्रादमी यही इगित करता है कि वह कोई विशिष्ट मानव है। इसी प्रकार 'मनुष्य मरणशील है भी किसी धारणा को व्यक्त नही करता। टाइम्स म रसल ने लिखा कि यह बात जानकर हमे ग्राश्चय होगा कि केमलोट मे ग्रपने निवास स्थान पर ग्लेडस्टन रोड के ऊपरी कमरे में 18 जून 19 का एक ग्रादमी जो मृत्यु ग्रौर पाप का सबसे बडा लडका था मर गया। यह घोषणा हमार लिए ग्राश्चयजनक नही यदि मनुष्य मरणशील है।

प्रिंसिपल्स ग्राव मथेमेटिक्स मे यह तकवाक्य कि इगलण्ड का राजा गजा है, किसी प्रकार के मौलिक परिवतना की ग्रपेक्षा नही रखता। इस तकवाक्य का रसेल के ग्रनुसार यह ग्रथ है कि इगलण्ड के राजा के नाम से जिस ग्रादमी की ग्रोर सकेन किया गया है वह गजा है। उनकी इसी व्याख्या का ही परिणाम था कि जिसस सकतन का नया सिद्धान्त प्रवत्त हुग्रा (रसेल कत ग्रान डिनोटिंग, माइण्ड 1905)।[1]

---

1 एल एस० स्टेबिंग कृत ए मोडन इट्रोडक्शन टू लोजिक द्वितीय सस्करण (1933) में द्रष्टव्य ग्रध्याय दूसरा तथा नवम, जे० डब्लू० रोज्ज द ग्रोरीजिन एण्ड कोसीक्वेंसेज ग्राव द थ्योरी ग्राव डिस्क्रिप्शन्स (पी० ए० एस० 1933) ग्रार० जे० बटलर कृत स्केफोल्डिग ग्राव रसल्स थ्योरी ग्राव डिस्क्रिप्शन्स (पी०ग्रार० 1954), जी० ई० मूर कत रसेल्स थ्योरी ग्राव डेस्क्रिप्शन्स, द फिलोसोफी ग्राव बट्रेण्ड रसेल

द प्रिंसिपल्स ग्राव मैथेमटिक्स एव ग्रान डिनोटिंग इन दो कृतियो की रचना के बीच रहे समय का उपयोग रसेल ने मीनोग का मध्ययन करन म बिताया। सबसे पहल व मूर के प्रति अपने दाशनिक नान क लिए कृतज्ञ थे-लेकिन शीघ्र ही सदेह उमरन लगे। मीनोग के लिए यह बात अच्छी थी कि वास्तविकता के पक्ष म की गई चर्चा के प्रति घृणा का भाव उन्होंने दर्शाया। इसी पूर्वाग्रह' ने वास्तविकता के प्रति एक नए स्वस्थ भाव को जन्म दिया और रसल की दृष्टि म प्रत्येक वनानिक दशन के लिए यही से प्रारम होना आवश्यक था। 'यथाथ का माव तकशास्त्र क लिए तत्व की वस्तु है और जो कोई भी इस पर यह कहकर विवाद करता है कि हैमलेट का यथाथ एक दूसरे प्रकार का यथाथ है वह विचार जगत् के लिए हानि का काम कर रहा है।' यह बात उन्होने इन्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल लॉजिक 1910 म लिखी। तो भी यथाथ के नाम पर इस प्रकार के कथनो पर क्या कहा जाय कि प्रजातान्त्रिक युग मे फ्रास का राजा गजा है? इसमे यह ग्रथ नही निकलता कि फ्रास का राजा का सकेत देने वाला जो मनुष्य' है वह 'गजा है। क्योकि इस मुहावरे म सकेत देने के लिए ग्रब कोई ऐसी स्थिति है ही नहीं। मीनोग ने कहा था कि यह एक ऐसे पदाथ की ओर सकेत करता है जो सत्ता के बाहर' विद्यमान है। यह एक ऐसा पदाथ है जिसके लिए विरोधाभास का सिद्धान्त लागू नही होता। क्योकि पूरे विश्वास के साथ कोई भी कह सकता है कि इसमे ऐसा उल्लेखनीय गुण है भी और नही भी है। फास के राजा के ग्रनस्तित्व के विषय म ग्रब हम अपनी कल्पना के अनुसार यह कहन के अधिकारी हैं कि वह गजा नही है। यही वह बिन्दु है, जिसके विरुद्ध रसेल द्वारा नव्य स्थापित यथाथ के माव ने विद्रोह किया। उनका विचार था कि इससे निकलने का कोई ग्रन्य तरीका होना चाहिए और यह एक ऐसा तरीका होना चाहिए जिसके अनुसार फास के राजा का कोई इयत्ता' मानना नही पडे। अपने द्वारा प्रस्तुत सकेतन के नए सिद्धान्त म उन्होंने इसी बात की खोज की थी जिसे बाद म उन्होने वरान के सिद्धान्त' की सज्ञा दी थी।

सकेतित मुहावरे' का ग्रथ उनके लिए निम्नाकित है। (यहा यह बात उल्लेखनीय है कि धारणाओ के स्थान पर मुहावरो का प्रयोग प्रारम हो गया है।। 'एक ग्रादमी कुछ ग्रादमी,' 'कोई ग्रादमी,' प्रत्येक ग्रादमी 'सभी ग्रादमी' फ्रास का

नामक पुस्तक म रसेल द्वारा किए गए नवान्वेषण की ई० ई० सी० जो स जस तक शास्त्री द्वारा ग्रालोचना की गई है। देखें माइण्ड 1910 11 के बहुत से निबध। रसेल ने मिस्टीसिज्म एण्ड लोजिक मे उनका जवाब भी दिया है। नई ग्रालोचना के लिए देखें। पी० टी० गीच कत रसेल्स थ्योरी ग्राव डिस्क्रिप्शन्स (एनालिसिस 1950) एम० लेजरोविच कत नोलज बाइ डिस्क्रिप्शन (पी० ग्रार० 1937), पी० एफ० स्ट्राउसन कत ग्रान रेफरिंग माइण्ड 1950)।

वतमान राजा' इग्लेण्ड का वतमान राजा, वतमान शती के प्रथम चरण म,' सौर मण्डल के आवपण का बिन्दु' पृथ्वी का सूय के चारो ओर घूमना' व इन मुहावरा की सामान्य प्रवृत्ति के विषय म कुछ नही कहते। किन्तु यह स्पष्ट है कि इनम मे एक भी विशिष्ट नाम नही ह ता भी व किसी भी वाक्य म व्याकरण की दृष्टि म कर्त्ता होन योग्य तो हैं ही।

रसेल के सकेतन के सिद्धान्त का मूलभूत भाव वास्तव म यही है कि मिल के खिलाफ ये सकेत दने वाले मुहावरे कि ही इयत्ताओ के नाम नही हैं, चाहे वाक्यो मे कर्त्ता के रूप मे इनका प्रयोग कई बार भ्रम उत्पन्न कर देता हो। उन्होन अपनी बात को सिद्ध करने के लिए ऐसे वाक्यो की रचना की, जिनम सकत दने वाले मुहावर थ। उन्होने मूल वाक्य म निहित अथ को किसी प्रकार सकेत दन वाले मुहावरे के माध्यम से व्यक्त करन का प्रयास नही किया है। यदि ऐसा समव हो जाय, जसा कि मान्यता है तो फिर यह आवश्यक नही रहेगा कि हम यह मानें कि एक सकेतक मुहावरा सदव ही किसी विशिष्ट स्थिति का नामाकन करता है। तब मीनोग के अयथाथ पदार्थों को भी त्यागा जा सकता है। 'ओकम क उस्तरे की धार' पर चढाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि इन इयत्ताओ की जब तक आवश्यकता न हो जाय, गुणन नही किया जाना चाहिए।

भाषा के आरंभिक रूप स हम रसल के सामान्य प्रक्रिया का उद्धरण द सकत हैं—सब कुछ (एव्री थिंग) कुछ नही (नथिंग) कुछ (सम थिंग)। 'सब कुछ स है जसे सब तकवाक्य इस बात की सिद्धि नही करते कि सब कुछ' जसी 'रहस्यमयी इयत्ता का अस्तित्व है और वास्तव म उसकी ही तुलना स से की जा रही है। इस प्रकार की इयत्ता क होने की कल्पना करने की आवश्यकता ही नही है। इस बात को इस तथ्य से प्रकट किया जा सकता है कि सब कुछ स है का विश्लेषण इस तरह किया जा सकता है कि क्ष के सभी मूल्यो के लिए क्ष, स है। यहा 'सब कुछ' का उद्धरण आवश्यक नही है। लकिन फिर भी पूणन मूल बात को कहने म यह व्याख्या समथ है।

इसस भी अधिक जटिल एव महत्वपूण बात रसल द्वारा प्रस्तुत निश्चित विवरण का सिद्धात है। ये ऐसे मुहावरे होते हैं जिनम दी का प्रयोग होता है।[1] अमुक नाम का मुहावरा निश्चय ही किसी इयत्ता की ओर इगित करता है। उदाहरणाथ, फ्रेगे ने विचार किया था कि दी किसी प्रस्तुत पदाथ को होने की

1 अनिश्चित विवरणो मे अलग, जिनम 'ए' नामक आर्टीकल लगा है। द्रष्टव्य रसल कृत इन्ट्रोडक्शन टू मथेमेटिकल फिलोसोफी।

श्रेष्ठतम अवस्था का सकेत है किन्तु इस तकवाक्य कि वेवरले का लेखक (प्राथर) स्कोच है।' यहा प्राय हम विधेय को कर्त्ता का गुण मान लेते हैं म वेवरले का लेखक' नामक मुहावरा वेवरले के लेखक के विषय मे कोई विवरण प्रस्तुत नही करता। इस तकवाक्य का रसल के अनुसार यही अथ है कि वह तीन तकवाक्यो का सयोजक है (अ) 'कम से कम एक व्यक्ति ने वेवरले लिखी' (ब) अधिक से अधिक एक व्यक्ति ने वेवरले लिखी (स) 'जिस किसी ने वेवरल लिखी वह स्कोच था।' या अधिक सद्धान्तिक ढग से रखें तो कहगे, एक ऐसा पद स है जिसके अनुसार(1)क्ष ने वेवरल लिखा' समानाथक है। क्ष के सभी मूल्यो के लिए क्ष स हैं। एव (२) 'स स्कोच है।'

यह पुन –रचना वेवरले के लेखक की चर्चा ही नही करती। इससे यही अथ निकला, कि हम कहने को तो कह सकते हैं कि 'वेवरले का लेखक स्कोच है' जबकि दरअसल वेवरले का कोई लेखक नही है। इस तरह हमारा कथन गलत हो जाएगा क्योकि तकवाक्य (अ) कम से कम एक व्यक्ति वेवरले का लेखक है' तकवाक्य ही गलत है, लेकिन तो भी यह निरथक नही हो सकता। अब हम यह समझ सकते हैं कि फ्रांस का राजा गजा है,' जसा कथन किस प्रकार अपना अथ प्रकटा सकता है—जबकि हम यह जानते हैं कि 'फ्रास के राजा' जसी कोई सत्ता अस्तित्व मे नहीं है। इस तरह मीनोग द्वारा आवश्यक माने गए पदाथ की ही यहा आवश्यकता महसूस नही होती।

रसेल के लिए अब अपनी दाशनिक साधना का माग खुल गया था। ओकम की भाति तर्कों के पने प्रयोग ने तलवार का काम किया था और तक तथा दशन से अनावश्यक एव अवाछित तत्वो को काटकर अलग कर दिया था। अ को को जो अब वर्गों के वग की श्रेणी म नही आते थे, सवप्रथम पलायन करना पडा किन्तु मीनोग के पदार्थों' के विचार पर विजय प्राप्त करना महत्वपूण कम था–और तब शीघ्र ही उन्हे सामान्य पराजितो की भाति नरक (हेदस) मे जाना पडा। अर्थात् घृणा का पात्र बनना पडा।

रसेल के कथनानुसार, निश्चित विवरण हमेशा अपूण प्रतीक होते हैं। इस फ्रेग न कायफलन मे प्रकट होने वाले 'नाम' कहा है और 'पूण प्रतीको से भिन्न माना है। किसी तक म प्रकट हुए नाम, विशिष्ट नाम ही पूण प्रतीक होते हैं। वाक्यो म उनका उपयोग तो है लेकिन वे किसी इयत्ता का प्रतिनिधित्व नही करते। यही बात वर्गों के लिए भी सही है। वग भी भाषा परम्परा के प्रतीकात्मक चिन्ह हैं, इनका तकवाक्यीय कायफलनो के काय फलन बताने के लिए उपयोग होता है। 'मनुष्य' वग सबधी कथन मरण शील वग मे समाहित हो जाता है–और ऐसा लगता है जसे यहां पर इयत्ताओ का परस्पर सबध बताया जा रहा है। (१) मनुष्य

कोई रग नही होता प्रणु कोई ध्वनि नही करत, विद्युदणुग्रो का कोई स्वाद नही होता जीवाणुग्रो की कोई गध नही होती, तो भी जिसे हम प्रत्यक्ष दखते हैं वह रगमय है ध्वनियुक्त है, गध ग्रौर स्वाद स सना है। तब किस प्रकार भौतिक पदार्थो का ऐद्रिय ससग से सही ज्ञान किया जा सकता है। किन्तु व बकल के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि ऐसा ग्रनुमान करना ग्रौर वह भी विशेषकर उन तत्वा के लिए जो हमारे ग्रनुभव से ग्रपनी प्रकृति म ही भिन्न हो सैद्धान्तिक रूप से ग्रसभव है। जब तक कि किसी भाति भौतिक पदार्थो को ऐद्रिय उपकरणो के रूप म बदला नही जा सकता तब तक भौतिकी उनकी दृष्टि म कवल एक कल्पना मात्र ही है।

इस प्रकार सार रूप म किसी को प्राप्त करने म जो कठिनाइ है–उससे मुक्ति पाना सभव नही है। ऐद्रिय उपकरणा की जो सामान्य परिभाषा की गई है उसके ग्रनुसार ऐद्रिय उपकरण (से स डेटा) ग्रात्मपरक हैं तथा विभक्त हैं। भौतिक पदाथ वस्तु परक हैं तथा निरन्तर हैं। भिन्न–भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न, एक से न दिखाई दन वाल, ऐद्रिय उपकरणा के ससग से ग्राते हैं। एक पनी (सिक्का) किस प्रकार ग्रापके लिए गोलाई का ऐद्रिय बोध देती है ग्रौर मेरे लिए चपटे होने का। रसेल का विचार था कि इग्लण्ड के नव यथार्थवादी टी० पी० नन एव एस० एलक्जण्डर तथा ग्रमरीका[1] के ई० बी० होल्ट के द्वारा दिए गए निर्देशो की सहायता स कदाचित् हम इन ग्रापत्तियो पर विजय प्राप्त कर ल।

इनकी प्रमुख धारणाए[2] य हैं कि ऐद्रिय उपकरण ग्रात्मपरक नही है।

---

1 दखें एस० एलक्जेण्डर कृत द बेसिस ग्राव रीएलिज्म (पी० बी० ए० 1914), टी० पी० नन कृत ग्रार सेकेण्डरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डेण्ट ग्राव परसेप्शन? (पी०ए०एस० 1909), द न्यू रियलिज्म (सम्पादक मारविन 1912) म ई० बी० होल्ट कृत द प्लेस ग्रॉव इल्यूजरी एक्सपीरिएन्स इन ए रीएलिस्टिक वल्ड। ग्रगला ११ वा ग्रध्याय भी देखें।

2 रसेल के उपकरणो के सिद्धान्त के लिए द्रष्टव्य जी० डी० हिक्स कृत द नेचर ग्राव सेन्स डेटा माइण्ड 1912। एव रसेल द्वारा उसका उत्तर (माइण्ड 1913), जे० ई० टरनर कृत मिस्टर रसेल ग्राव सेन्स डटा एण्ड नोलेज (माइण्ड 1914), एच० ए० प्रिचाड कृत मिस्टर बर्टेण्ड रसेल ग्रान द नोलज ग्रॉव द एक्सटरनल वल्ड (माइण्ड 1913) एव मिस्टर बर्ट्रेण्ड रसेल्स ग्राउटलाइन ग्राव फिलोसोफी (माइण्ड 1928), सी०ए० स्ट्राग कृत रसेल्स थ्योरी ग्राव एक्सटरनल वल्ड, माइण्ड (1922), जे० एच० वूडगर कृत मिस्टर रसेल्स थ्योरी ग्राव एक्सटरनल वल्ड, माइण्ड 1922), जे० एच० वूडगर कृत मिस्टर रसेल्स थ्योरी ग्राव परसेप्शन (मोनिस्ट 1930) एव सी० ए० फिज कृत पूर्वोक्त एव बहुत से ग्रन्य निबध जिन्हे पी० ए० शिल्प द्वारा द फिलोसोफी ग्राव बर्ट्रेण्ड रसेल म सम्पादित किया गया है।

यह न तो मानसिक अवस्था ही है और न ऐसी किसी अवस्था का अ श। दूसरी बात यह कि, एक बार यह ज्ञान हो जाए तो सद्धांतिक रूप से यह मान लेने मे कोई कठिनाई नही होगी कि इ द्रिया है। ऐसे पदार्थों के रूप मे, जो भी उसी प्रकार के भौतिक अथवा *तात्विक विश्लेषण किए जाने की क्षमता रखते हैं जिस प्रकार* इ द्रिय उपकरण, कि तु वास्तव म किसी के द्वारा उनका प्रत्यक्षीकरण नही हो रहा। तीसरे, ऐ द्रिय उपकरणो की मान ली गई असगति काल और दिक की सामा य धारणा पर आश्रित लगती है। चू कि ऐन्द्रिय उपकरण वस्तुपरक है भौतिक पदार्थों की परिभाषा भी तब ऐन्द्रिय उपकरणो की शृखला मात्र मानकर देनी होगी और ऐन्द्रिय ससग से इनका परस्पर जुडाव माना जायगा। और तब ये तथाकथित असगत ऐन्द्रिय उपकरण भिन्न एव निजी दिक म अलग अलग तरह के सदस्य माने जाए गे। इस तरह रसेल के अनुसार एक पनी (सिक्का) चपट ऐन्द्रिय उपकरणो से युक्त है जो आपके निजी दिक मे वसी घटित हो गयी है, किन्तु इसके साथ ही साथ अ यो के निजी दिको मे विभिन्न प्रकार के ऐन्द्रिय उपकरणो को घटित करती है-और मेरे लिए गोलाई का भाव लिए हुए ऐन्द्रिय उपकरणों को ज म देती है। ये भिन्न भिन्न रूप एक वस्तु की रचना करत हैं क्योकि य सभी भौतिकी के नियमो के अनुरूप व्यवहार उस घटित होन की शृखला, किसी एक वस्तु का आभास नही देती हो तो सामा यत उसका व्यवहार उस घटना से सबद्ध ही नही है। कम से कम भौतिकी के लिए वस्तु सबधी सत्य तो यही है। सामान्य बुद्धि *की वस्तुओ पर इतनी कम सतकता से विचार किया जाता है कि उनकी रचना का* कम सतोषजनक विवरण दिया जाना असभव है।

रसल का निष्कष है कि भौतिकी को ऐसी भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता नही है-जो एन्द्रिय उपकरणो से सवथा भिन्न प्रकृति की हो और यही सभी प्रकार के *वनानिक दाशनिकीकरण की सवश्रेष्ठ आधार भूमि है कि जहा कहीं भी समव* हो, तार्किक रचनाए अनुमानित इयत्ताओ के बदले म रखी जानी चाहिए।[1]

---

1 तुलना के लिए देखें जोन लेयड कृत द लॉ ऑव पारसीमोनी (मोनिस्ट 1919), जोन विजडम कृत लोजीकल कास्ट्रक्शन (माइ ड 1931-3) एल एस स्टेबिंग कृत कोंस्ट्रक्शस (पी० ए० एस० 1933) रसेल का विचार था कि गलत होने के खतरे से हम निश्चय ही उस समय बच जाएगे जब बिना स्वीकार किए हम आगे बढते जाए और न हम स्पष्टत इसका खण्डन ही करें कि एक इयत्ता अस्तित्व मान होती है। उन्होन (मोनिस्ट 1919 मे) लिखा कि प्रत्येक इयत्ता एव प्रमेय क घटा देने के साथ ही आप गलत होने की सभावना को भी घटा सकते हैं। यह एक गणितज्ञ तकशास्त्र की वाणी है। वे तक एव तत्वदशन दोनो मे ही एक ऐसी

इस तरह यदि भौतिक पदार्थों का ऐंद्रिय उपकरणों द्वारा रचित मान लिया जाए, तो एक वैज्ञानिक दार्शनिक का इस सिद्धान्त का ही परित्याग कर देना चाहिए। रसेल ने 'द प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी' में यही प्रतिपादित किया है कि इनके अस्तित्व का अनुमान एंद्रिय उपकरणों के अनुभव से हमारे द्वारा प्राप्त अनुमान की अपेक्षा अधिक सरल ढंग से किया जाना चाहिए।

रसेल के दर्शन में यहाँ आकर एक वैज्ञानिक दार्शनिक के लिए भी यह प्रत्यक्ष जगत् एंद्रिय उपकरणों, समष्टियों एवं मानसिक तथ्यों से ही निर्मित मान लिया गया है। रसेल ने अब इस दृष्टिकोण का परित्याग कर दिया है कि मानसिक तथ्यों से परे हम आत्मा का सीधा साक्षात्कार कर सकते हैं। तो भी वे यह मानते हैं, कि मानसिक तथ्य एंद्रिय उपकरणों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। जो कुछ भी अनुभव किया गया है, जिस किसी की भी इच्छा या चाहना की गई है, वह इसके विपरीत एंद्रिय उपकरणों को ही शृंखला है।

विश्वास की व्याख्या रसेल को उलझन में डालती रही थी। यह बात विशेषतः उस समय प्रकट हुई जब विट्जनस्टीन के प्रभाव में आकर उन्होंने तर्कसम्मत अनुवाद के दर्शन की रचना करने का प्रयास किया था।[1] तर्कसम्मत अनुवाद का दर्शन भिन्न भिन्न प्रकारों के तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास है-उसी प्रकार जिस प्रकार पशुविज्ञान विभिन्न प्रकार के पशुओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है। वे अभी भी मूर के इस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं कि दर्शन का काम

न्यूनतम कामचलाऊ स्थिति की खोज करते हैं, जिससे एक प्रणाली कायम की जा सके। कम से कम शब्द के जरिए ही एक आदर्श भाषा का निर्माण होगा। यही बात उन्होंने प्रिंसिपिया मैथेमेटिका की शब्दावली द्वारा व्यक्त की है।

1 इस शीर्षक के निबंध द मोनिस्ट 1918 एवं लोजीकल एटोमिज्म (सी० पी० बी० पाई०) में देखें। देखें जे० ओ० अमसन कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस डी० एफ० पीयर्स कृत लोजीकल एटोमिज्म (रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी 1956)। रसेल 1912 में कैम्ब्रिज में विटगिंस्टीन से मिले थे। द मोनिस्ट में लिखे अपने निबंधों के आमुख में इस आशय का मंतव्य प्रकट करते हैं कि उन्होंने उन्हें प्रकाशित करने का निश्चय इस बात से अनभिज्ञ रहकर ही किया था कि विटगिंस्टीन जीवित है या नहीं। किन्तु फिर भी किसी को उन पर हुए विटगिंस्टीन के प्रभाव को बढ़ा चढ़ा कर नहीं रखना चाहिए। इन निबंधों के कई स्थलों पर वे मूर एवं जेम्स से सीखे हुए बहुलतावाद को ही पुनः स्थापन करते हुए नजर आते हैं। इन्हें रसेल ने एकेश्वरवाद के प्रमुख आलोचक होने की सज्ञा दी थी। इसी पुस्तक के छठे अध्याय में डब्लू० ई० जानसन पर लिखी गई टिप्पणी भी पढ़ें।

समस्त ब्रह्माण्ड का एक सामा य विवरण प्रस्तुत करना है। रसेल सवप्रथम तथ्यो क मूल अश तकसम्मत अणुग्रो से अपनी यारया प्रारम्भ करते है। रसेल के अनुसार ये दो प्रकार के ह। एद्रिय उपकरण एव समष्टिया। एक आणविक तथ्य मे अश क रूप मे ये आधारभूत तत्व है। उदाहरणाथ जहा अ' तथा ब' दोना ऐद्रिय उप करण ह वहा 'अ' 'ब के पहल होगा अथात उसका पूववर्ती होगा।

तथ्य विशिष्ट हो सक्त है जसे यह सफेद है अथवा समष्टिगत जस सब मनुष्य मरणशील है सार ससार को विशिष्ट सत्यो से निर्मित माना जाना असभव है। रसेल का कथन है कि उपयु त दृष्टिकोण उस समय तथ्य को समाहित कर लेना कि आणविक तथ्य ही व तथ्य हैं जो विद्यमान है। और एक बार यह सामान्य तथ्य स्वीकृत हो गया-तो अन्यो को स्वीकार नही करने का कोई ठोस कारण नही दिखाई देता। एक तथ्य स्वीकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है। कुछ तथ्य तो सवथा सामान्य होते है व विशिष्ट इयत्ताओ का सदभ नही देते केवल कथन सबधी सामान्य आकारो के विषय म ही कुछ कहते हैं। ये उनके विचार म तक के तथ्य है। और तब तथ्यो के विषय मे तथ्य हैं आदि आदि।

फिर भी झूठे या सच्चे तथ्य कही नही होते। केवल एक तककथन ही सही अथवा गलत हो सकता है और रसेल क अनुसार, तककथन तथ्य न होकर एक प्रतीक है। उन्होने लिखा है यदि आप ससार के अन्वेषण म लगे हैं तो तक कथन प्रकट नही होग। उस समय, तथ्य विश्वास इच्छाए एषणाए सब प्रकट हो सकते हैं किन्तु तककथन प्रस्तुत नही होगे। यह तो कवल तककथनो के वर्गीकरण को ही बात हैं कि रसेल के लिए कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

रसेल के अनुसार तककथन के दो वग होत हैं आणविक तथा पारमाणविक सब परमाणविक तककथनो को आणविक तककथना क सत्यफलन क रूप मे व्यक्त किया जा सक्ता है अथात् इनकी स यता एव झुठाई आणविक तककथनो की सचाई एव झुठाई पर ही पूणत आश्रित हैं—और उन्ही मे इनकी रचना होती है। एक आणविक तककथन की सचाई उस तककथन म निहित तथ्य से बाहर झाक कर दखने स उपलब्ध हो सकेगी। इस तरह यदि सरलतम उदाहरण लें तो तो कहग कि परमाणविक तककथन प एव फ सत्य हैं। यदि आणविक तक कथन प फ दोनो सही हैं और यदि इनम मे प्रत्यक असत्य है तो व भी असत्य हैं। किन्तु प की अपनी सचाई प स इतर किसी अन्य अवस्था म ही निश्चित है।

रसल के सम्मुख अब समस्या यही है कि उन्ह इसी वर्गीकरण म मानसिक तथ्यो म सम्बन्धित तककथना को रूपायित करना है। मैं विश्वास करता हू कि

क्ष य है, क्या यह कथन आणविक है अथवा परमाणविक ? यह लगता तो आणविक कथन ही है, जिसम दो स वाश हैं। मैं विश्वास करता हू तथा क्ष य है किन्तु इस दृष्टिकोण को स्वीकारते ही जो कठिनाई प्रस्तुत होती है वह यही कि क्ष य है कि सत्यता एव भूठेपन स मैं विश्वास करता हू कि क्ष य है की सचाई अथवा भूठेपन का कोई ताल्लुक हा नही है। इसलिए क्ष य है 'मैं विश्वास करता हू कि क्ष य है का किसी भी भाति तथ्याश नहीं हो सकता। कम से कम इस रूप म ना नहीं जिस रूप म प प तथा फ का एक भाग है। इस चिड़िया-घर म विश्वास नामक चीज एक नई प्रजाति' के आने जसा है। तो इस निष्कष म कुछ अ श असतोषजनक तो हैं ही, मानसिक तथ्य तार्किक विचित्रताओ के कारण अनेक तथ्यो से छिटककर किसी भी भाति अलग नही किए जा सकते।

यदि दूसरी ओर मैं विश्वास करता हू कि क्ष य है की पुन रचना व्यव हार-वादियो की भाति की जाय, जसे जब जब भी मुझे क्ष स पाला पडता है—तो मैं अमुक अमुक तरह से प्रतिक्रिया व्यक्त करता हूँ। 'उदाहरण के लिए यदि मैं कहूँ कि मेरा विचार है कि साप खतरनाक होते हैं तो इसका यही अथ होगा कि जब कभी भी मैं साप को देखता हूँ मैं एक छडी उठा लता हूँ। एसी अवस्था म विश्वासा को तथा अ य मानसिक तथ्यो को अलग तार्किक प्रजाति मानने की आवश्यकता ही नही रह जायगी इस तरह यह कोई आश्चयजनक बात नही है। रसल इसी दिशा म अपने ग्र थ द एनालिसिस आव माइण्ड म आगे बढे हैं और इस तरह जे० बी० वाटसन एव टी० पी० नन जस यवहारवादियो स इस ग्र थ का प्रूफ पढवाना इस दृष्टि से साथक ही था।[1]

रसल अब अपने तथा मूरके द्वारा प्रस्थापित सिद्धान्तो म व्यक्त प्रत्ययो के सम्पूण रूपाकारो की प्रतिक्रिया म खडे हो जाते हैं। विशेषत ब्रेण्टानो की मन सघटन की परिभाषा का एकदम खण्डन कर देते हैं। वे अब यह नही मानते कि इन घटनाओ का साराश इसी म निहित है कि वे किसी पदाथ की ओर इगित करते हैं। वास्तव म इस धारणा को बनाए रखने म व कोई अथ नही दखते कि दुनिया मे या तो क्रियाए है या पदाथ। यह कहने क बजाए कि मैं सोचता हू वे मच के शब्दो म कहना चाहते है कि इसे या लिखना बेहतर है कि मुझम ऐसा सोचा जाता है। इससे भी अच्छे ढग से कह तो मुझ म एक विचार प्रकट है' आदि आदि। इस तरह मैं क्ष क विषय म सोचता हू का आकार तत्काल ही इस बात का सकेत देता है कि विचारने की एक क्रिया है और उस क्रिया का कम भी है। किन्तु वास्तव

1 द्रष्टव्य अध्याय 11 यहा पर रसेल पर हाल्ट एव परी का प्रभाव लक्षित होता है।

इंगित करता था जिनमें हम एक दम परिचित हो जाते थे तथा जिन्हें समष्टियों के जरिए वर्णित भी किया जा सकता था, किन्तु जैसे ही उनका संकेतन का सिद्धान्त विकसित हुआ वे सब विशिष्ट नाम होने से वंचित हो गए। इनमें से प्रत्येक अब छद्मवेश में एक विवरण योग्य मुहावरा हो गया केवल मात्र 'यह' इस कठिन परीक्षण में खरा उतर सका।

तर्क सम्मत आणविकता पर लिखे अपने निबंध में रसल ने संकेत दिया कि 'यह' का उनके दर्शन में वही स्थान है जो परम्परागत दर्शन में तत्व का है। इससे उन इयत्ताओं अर्थात् तर्कसम्मत व्यष्टियों का पता लगता है जो पूर्णत अकेली हैं एवं स्वयं पूर्ण हैं। किन्तु यह बात उन्हें धीरे धीरे समझ में आई कि यदि यह सत्य है तो तत्व के सम्बन्ध में की गई परम्परागत आपत्तियां इन तर्क सम्मत व्यष्टियों पर भी लागू हो सकती हैं। एक बार इस तथ्य से उनका साक्षात्कार हो गया फिर तो व्यष्टि और समष्टि के उनके सारे सिद्धान्त में आमूलचूल परिवर्तन आ गए।

उनका सामान्य दृष्टिकोण सदैव यही रहा है—और उसे उन्होंने ऑन द रिलेशन्स ऑव यूनिवर्सल्स एण्ड पर्टीकुलर्स (1912) नामक निबंध में भली भांति वर्णित भी किया है कि तर्क सम्मत व्यष्टियों एवं समष्टियों में तीव्र अन्तर किया जा सकता है। वे अनेक बार इस धारणा के प्रति आकृष्ट हुए थे कि समष्टिगत विशेषताओं को उसी प्रकार की दूसरी व्यष्टिगत इकाइयों में बदला जा सकता है। लेकिन फिर भी उन्होंने सदैव इसी बात पर ध्यान केन्द्रित रखा है कि इस अवस्था में भी कम से कम एक समष्टिभाव विद्यमान होता है और वह है दोनों का साम्य। इस तरह दूसरी अवस्थाओं के विषय में भी क्यों न विचार किया जाय?

किन्तु मीनिंग एण्ड ट्रूथ में वे निम्नांकित विचार व्यक्त करते हैं। मैं यह सुझाना चाहता हूं कि यह लाल है उद्देश्य कर्ता विधेयात्मक' तर्कवाक्य नहीं है किन्तु उसका आकार इस प्रकार का है लाली यहां है। लाल विधेय न होकर एक नाम है, जिसे हम सामान्यतया वस्तु की संज्ञा देते हैं। वह समवायी गुणों से उत्पन्न अवस्था जैसे लाली' कठोरता' आदि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। किसी भी दूसरे दृष्टिकोण के जरिए विश्लेषण करने पर यह नामक शब्द एक ऐसी अज्ञेय अवस्था बन जाता है, जिसमें विधेय समाहित हो किन्तु फिर भी वह अपने सभी विधेयात्मक गुणों के सम्मिलित रूप में कुछ और भी है।

यहां यह बात समझनी चाहिए कि रसेल प्रत्ययवादियों की भांति वस्तु की परिभाषा समष्टियों की मिलन बिन्दु कह कर नहीं देते। इसके विपरीत वे तो यह मानते हैं कि वस्तु के गुण अपने आप में व्यष्टियां होते हैं। एक लाल वस्तु

किसी स्थान म घटित हुई ऐसी अवस्था है जो अपने मे एक विशेष प्रकार के रग को समाहित किए है। निश्चय ही इसका विशेष नाम तो होना ही चाहिए। गुण इस प्रकार व्यष्टिया हो जात हैं और वस्तुए इन व्यष्टियों के आकलन मात्र हैं जो समय काल एव दिक् की विशिष्ट अवस्थाओ से घटित होती है। 'लाली यहा है' मे यहा' ऐसे गुणो की इकाई का सदम प्रस्तुत करती है जिनके द्वारा रग का प्रभाव हमारे चाक्षुष क्षेत्र मे रख दिया जाता है और वहा उसका स्थान चिर-स्थायी हो जाता है।[1] किन्तु यह दृष्टिकोण केवल कामचलाऊ ही है।

इसके आगे का प्रश्न, जिस उन्होने ह्यूमन नोलेज मे उठाया है विशेष महत्व का है कि विनान के सामा य तकवाक्यो का औचित्य कस दिया जा सकता है ?[2]

इसी के साथ एक दूसरी समस्या जुडी है, अनुभववाद से किस किस बिन्दु पर आकर अलग हो जिसे दार्शनिक भी स्वीकार कर सकें ? रसेल कभी ठोस रूप म अनुभववादी नहीं थ, यहा तक कि अपने ग्र थ द प्रोब्लम्स आव फिलोसोफी मे भी रसेल ने इस दृष्टिकाण का खण्डन किया है कि सभी प्रकार का नान अनुभव से प्राप्य है। गणितीय तक्वाक्य इस प्रकार अनुभव स प्राप्त नही किए जा सकते और न आगमनात्मक सिद्धान्त ही अनुभवज य होते हैं। तो भी इसके साथ ही रसल की चेतना समाकुल रहती है। लगता है जसे उनक धमपिता मिल, अपने आध्यात्मिक अधिकारो का उन पर उपयोग कर रहे हो, विशेषकर उस समय जब वे अनुभव से बाहर भाकने का प्रयास कर रहे हो। यदि अनुभववाद की सीमाए हैं, तो य सीमाए जरा सकोच के साथ पार की जानी चाहिए।

द एनालिसिस आव मैटर मे उनकी विचारधारा का निष्कष यही रहा—कि ठोस अनुभववाद क्षण का एकात्मकवाद ही रह जायगा। रसेल कभी भी यह शका नही उठाते कि ऐन्द्रिय सवेदन का ही हम अनुभव होता है। रसेल क लिए अब समस्या ऐसे उपकरणो (पोस्टयूलटम) के निर्धारण मात्र की रह जाती है ताकि यदि अनुभववाद को एक सतोषजनक दशन विनान की मना देनी है, तो अनुभववाद म इन उपकरणो का जोडना होगा। आगमनात्मक सिद्धान्त ऐसा एक उपकरण है। किन्तु रसल का विचार है कि इसके

1 द्रष्टव्य द फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल म एम० वेज द्वारा दिए गए योगदान पर उनकी टिप्पणी।

2 इम्नू हे कृत बर्टेण्ड रसेल आॅन द जस्टिफिकेशन आव इन्डक्शन (पी० एम० सी० 1950), एच० मेलवाम कत रसल्स ह्यूमन नालेज (पी० आर० 1950), एच० राइकेनबक कृत ए कन्वर्सेशन बिटवीन बर्ट्रेण्ड रसेल एण्ड डविड ह्यूम (जे० पी० 1946),

इंगित करता था जिनसे हम एक दम परिचित हो जाते थे तथा जिन्हें समष्टियों के जरिए वर्णित भी किया जा सकता था, किन्तु ज्यों ही उनका संवेदन का सिद्धान्त विकसित हुआ वे सब विशिष्ट नाम होने से वंचित हो गए। इनमें से प्रत्येक अब छद्मवेश में एक विवरण योग्य मुहावरा हो गया केवल मात्र 'यह' इस कठिन परीक्षण में खरा उतर सका।

तर्कसम्मत आणविकी पर लिखे अपने निबंध में रसेल ने संकेत दिया कि यह का उनके दर्शन में वही स्थान है जो परम्परागत दर्शन में तत्व का है। इससे उन इयत्ताओं अर्थात् तर्कसम्मत व्यष्टियों का पता लगता है जो पूर्णतः अकेली हैं एवं स्वयं पूर्ण हैं। किन्तु यह बात उन्हें धीरे धीरे समझ में आई कि यदि यह सत्य है तो तत्व के सम्बन्ध में की गई परम्परागत आपत्तियां इन तर्कसम्मत व्यष्टियों पर भी लागू हो सकती हैं। एक बार इस तथ्य से उनका साक्षात्कार हो गया फिर तो व्यष्टि और समष्टि के उनके सारे सिद्धान्त में आमूलचूल परिवर्तन आ गए।

उनका सामान्य दृष्टिकोण सदैव यही रहा है—और उसे उन्होंने ग्रान द रिलेशन्स ग्राव यूनिवर्सल्स एण्ड पर्टीकुलर्स (1912) नामक निबंध में भली भांति वर्णित भी किया है कि तर्कसम्मत व्यष्टियों एवं समष्टियों में तीव्र अन्तर किया जा सकता है। वे अनेक बार इस धारणा के प्रति आकृष्ट हुए थे कि समष्टिगत विशेषताओं को उसी प्रकार की दूसरी व्यष्टिगत इकाइयों में बदला जा सकता है। लेकिन फिर भी उन्होंने सदैव इसी बात पर ध्यान केन्द्रित रखा है कि इस अवस्था में भी कम से कम एक समष्टिभाव विद्यमान होता है और वह है दोनों का साम्य। इस तरह दूसरी अवस्थाओं के विषय में भी क्यों न विचार किया जाय ?

किन्तु मीनिंग एण्ड ट्रूथ में वे निम्नांकित विचार व्यक्त करते हैं। मैं यह सुझाना चाहता हूं कि यह लाल है उद्देश्य कर्ता विधेयात्मक' तर्कवाक्य नहीं है किन्तु उसका आकार इस प्रकार का है लाली यहां है। लाल विषय न होकर एक नाम है, जिसे हम सामान्यतया वस्तु की संज्ञा देते हैं। वह समवायी गुणों से उत्पन्न अवस्था जैसे लाली' कठोरता' आदि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। किसी भी दूसरे दृष्टिकोण के जरिए विश्लेषण करने पर यह नामक शब्द एक ऐसी अज्ञेय अवस्था बन जाता है जिसमें विधेय समाहित हो किन्तु फिर भी वह अपने सभी विधेयात्मक गुणों के सम्मिलित रूप में कुछ और भी है।

यहां यह बात समझनी चाहिए कि रसेल प्रत्ययवादियों की भांति वस्तु की परिभाषा समष्टियों की मिलन बिन्दु कह कर नहीं देते। इसके विपरीत वे तो यह मानते हैं कि वस्तु के गुण अपने आप में व्यष्टियां होते हैं। 'एक लाल वस्तु

किसी स्थान म घटित हुई एसी अवस्था है जो अपने मे एक विशेष प्रकार के रग को समाहित किए है। निश्चय ही इसका विशेष नाम तो होना ही चाहिए। गुण इस प्रकार व्यष्टिया हो जाते हैं और वस्तुए, इन व्यष्टियों के आकलन मात्र हैं जो समय काल एव दिक की विशिष्ट अवस्थाओ से घटित होती है। लाली यहा है' म 'यहा' ऐसे गुणो की इकाई का सदम प्रस्तुत करतो है जिनके द्वारा रग का प्रभाव हमारे चाक्षुप क्षेत्र मे रख दिया जाता है और वहा उसका स्थान चिर-स्थायी हो जाता है।[1] किन्तु यह दृष्टिकोण केवल कामचलाऊ ही है।

इसके आगे का प्रश्न, जिस उन्होने ह्यूमन नोलेज म उठाया है विशेष महत्व का है कि विज्ञान के सामान्य तकवाक्यो का औचित्य कसे दिया जा सकता है?[2]

इसी क साथ एक दूसरी समस्या जुडी है, अनुभववाद से किस किस बिन्दु पर आकर अलग हा जिसे दाशनिक भी स्वीकार कर सकें? रसेल कभी ठोस रूप मे अनुभववादी नही थ, यहा तक कि अपने ग्र थ द प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी मे भी रसेल ने इस दृष्टिकोण का खण्डन किया है कि सभी प्रकार का ज्ञान अनुभव से प्राप्य है। गणितीय तकवाक्य इस प्रकार अनुभव से प्राप्त नही किए जा सकते और न आगमनात्मक सिद्धान्त ही अनुभवजन्य होते हैं। तो भी इसके साथ हो रसेल की चेतना समाकुल रहती है। लगता है जसे उनके धमपिता मिल, अपने आध्यात्मिक अधिकारो का उन पर उपयोग कर रहे हो विशेषकर उस समय जब वे अनुभव स वाहर झाकन का प्रयास कर रहे हो। यदि अनुभव वाद की सीमाए हैं तो ये सीमाए जरा सकोच के साथ पार की जानी चाहिए।

द एनालिसिस आव मैटर म उनकी विचारधारा का निष्कर्ष यही रहा—कि ठोस अनुभववाद, क्षण का एकात्मकवाद ही रह जायगा। रसेल कभी भी यह शका नही उठाते कि ऐन्द्रिय सवेदन का ही हम अनुभव होता है। रसेल के लिए अब समस्या ऐसे उपकरणो (पोस्टयूलेटस) के निर्धारण मात्र को रह जाती है ताकि यदि अनुभववाद को एक सतोषजनक दशन विज्ञान की सज्ञा देनी है, तो अनुभववाद म इन उपकरणो का जोडना होगा। आगमनात्मक सिद्धान्त ऐसा एक उपकरण है। किन्तु रसेल का विचार है कि इसके

---

1 द्रष्टव्य द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल म एम० वेज द्वारा दिए गए योग-दान पर उनकी टिप्पणी।

2 डब्लू० ह वृत बर्टेण्ड रसेल आॅन द जस्टिफिकेशन आव इडक्शन (पी० एम० सी० 1950), एच० मैलकाम कत रसल्स ह्यूमन नालेज (पी० आर० 1950), एच० राइकेनबक कृत ए कन्वर्सेशन बिटवीन बर्ट्रेण्ड रसेल एण्ड डविड ह्यूम (जे० पी० 1946),

महत्व को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया है। यह तो केवल एक उपकरण है और वह भी इसका मूलभूत उपकरण नहीं। रसल यहां आकर अपने द्वारा संकलित सामग्री की पिटारी खोल देते हैं–वे कहते हैं कि इनकी सामान्य प्रकृति का उद्धरण उनके न्यून स्थायी–भाव वाले उपकरणों में मिल सकता है जिसका आशय यह है कि यदि कहीं एक घटना प्रस्तुत हो जाए तो बहुधा यह भी घटित होता है कि उस घटना के घटित होने के साथ साथ ही उस स्थान के समीप उससे साम्य रखने वाली कोई अन्य घटना भी घट जाए।

इस संसार में घटनाएं निरन्तर होती हैं–इस बात को कहने का उपयुक्त तरीका भी है। इसमें तत्ववादी विचारधारा का सहारा नहीं लिया गया है। रसल का मत है कि वस्तुओं के बिना भौतिकी की रचना नहीं हो सकती। उनके द्वारा निर्धारित सामान्य नियम यही है कि यदि हमें किन्हीं सिद्धान्तों की रचना करनी है तो हमें वैज्ञानिक अनुमान का सहारा लेना होगा–रसल के प्रतिपाद्य ह्यूम दर्शन में सामान्य नियमों से काफी मेल खाते हैं।

रसेल के अनुसार इन नियमों का अनुभव के जरिए अनुमान नहीं लगाया जा सकता–तो भी इनकी नींव अनुभव पर टिकी है। आदिम अनुमान (एनीमल इन्फरेंस) के जरिए भी इस पर विचार करें तो हमें इससे किसी वस्तु के संबंध में की जाने वाली अपेक्षा के लिए रहे हमारे अभ्यास का पता चलता है जो मानवीय शरीर धारण करने के कारण प्रकट होना आवश्यक सा होता है। ये अनुमान स्वतः ही इन अभ्यासों में निहित सिद्धान्तों का पता कर लेते हैं। और यदि इनका अस्तित्व मात्र ही इस बात को असमीचीन ठहराता है कि अनुभववाद ही एक ज्ञान का परिपूर्ण सिद्धान्त है तो इनके संबंध में हमारी खोज तो निश्चय ही अनुभववादी आत्मा से नि सृत मानी जानी चाहिए जिसके जरिये हमने यह पता लगाया है कि सम्पूर्ण मानवी ज्ञान अनिश्चित है अपूर्ण है तथा एकांगी है। द प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी में प्रदर्शित आशावाद से काफी दूर हटकर यह बात रसेल द्वारा कही गई है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है रसेल का दार्शनिक विकास डेकार्ट से ह्यूम तक हुए विकास के मार्ग का एक सार संक्षेप है।

अध्याय १०

कुक विलसन एवं आक्सफोर्ड दर्शन

आक्सफोर्ड मे प्रत्ययवाद की विभिन्न अवसरो पर हुई विजय के बावजूद भी यथार्थवाद के पक्ष मे आवाज बुलन्द करने का एक प्रतिवादी आन्दोलन भी जारी था। टोमस केस एक सशक्त मरस्तुवादी थे। वे 1899 मे 1910 तक तो आक्सफोर्ड मे तत्वदर्शन एवं आचारशास्त्र (मोरल्स) के प्राध्यापक रहे 1924 मे फिजीकल रीएलिज्म कालेज के अध्यक्ष रहे तथा उन्होंने 1888 से फिजीकल रीएलिज्म नामक ग्रन्थ प्रत्ययवादी युग की सफलता की चरमावस्था के दौरान प्रकाशित किया। तो भी नयी विचारधारा के प्रवर्तक केस न होकर उनके समसामयिक युवा दार्शनिक जॉन कुक विल्सन[1] थे जो 1899 से 1915 तक आक्सफोर्ड मे तर्कशास्त्र के प्राध्यापक थे तथा इन्होने ही प्रत्ययवाद के विरुद्ध आक्सफोर्ड मत मे परिवर्तन लाना प्रारम्भ किया था। दर्शन का इतिहास लिखने वालों के लिए कुक विल्सन महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्ध हो जाने के कारण सदैव ही दिवास्वप्न का कारण बने रहे। उनके शिष्य उनके विषय मे एक महान गुरु का सा ममत्व एवं आदर भाव रखते थे। लेकिन भाषण, हस्तलेखो आदि मे से जो कुछ भी महत्व का था वह उनके शिष्यों के ही अनुसार 1926 मे प्रकाशित उनके ग्रन्थ स्टेटमेंट एण्ड इनफरेन्स मे सकलित हो गया किन्तु वह भी जुडा तुडा एवं निष्कपहीन है। तो भी इस पुस्तक के आधार पर ही उन पर इतिहासज्ञों को अपना निर्णय देना ही चाहिए।

स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स नामक पुस्तक मे आन्तरिक सगति का न्यून अपेक्षित गुण भी नही है। उनके शिष्यो का कथन है, कि मरने के समय तक भी अपने को खोजने' वाले कुक विल्सन की प्रस्तुत अनिर्णीत स्थिति उचित ही थी। उनके द्वारा महत्वपूर्ण रूढिविरोधी बचाए उनके अन्तिम दिनो मे प्रस्तुत हुई या-और उन्हे भी स्वभावत वे बाद मे सगत रूप मे कायम न रख सके। वे

---

1 द्रष्टव्य स्टेटमेंट एण्ड इन्फरेन्स मे ए एस एल फारकुहसन द्वारा लिखित स्मरणांश, एच० ए० प्रिकार्ड एवं एच० डब्लू० बी० जासेफ द्वारा क्रमश (माइण्ड 1919) एवं (पी० बी० ए० 1915) मे लिखे स्मृतिलेख। आर० रोबिन्सन कृत द प्रोविन्स आव लोजिक एन इण्टरप्रिटेशन ऑव सरटेन पार्टस आव कुक विलसन्स स्टेटमेण्ट एण्ड इन्फरेन्स (1931), सी० आर० मौरिस कृत आइडियलिस्टिक लोजिक (1935) मे कुक विल्सन पर लिखा गया लेख, जोन ए डरसन कृत द साइन्स आव लोजिक (ए० जे० पी० 1933)।

सुविधानुसार अरस्तुवादी, नवकाण्टवादी अथवा लौजवादी तकप्रणाली को मात्र अभ्यास के लिए अपनी चर्चाओं म प्रकटाते रहते हैं।

कुक विलसन का मुख्य कथ्य तकशास्त्र है। किन्तु उनका यह तक आक्सफोड प्रणाली का ही प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात् वह कलन की रचना करन के स्थान पर विचारो की दिशा मे दाशनिक दष्टि स जाच करन की बात पर अधिक बल देगा। बूल–शाडर के तकशास्त्र को साधारण' तकशास्त्र सना देकर विलसन ने उनका खण्डन किया था और कहा था तकशास्त्र जो विचार प्रक्रिया क आकार खोजने' की क्रिया है अपक्षाकृत गभीर कम है। अपनी साधारण सीमाओ म भी *बूले का तकशास्त्र दोष युक्त है।*

अपनी उपयु क्त बात की सिद्धि के लिए कुछ ने उक्त पुस्तक के बहुत से उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है तकशास्त्र और कलन को वहा एक माने जाने के कारण तकसिद्धात के रूप मे उनकी स्थापनाए जटिल व उलझी हुई हैं। वह भ्रामक गणितीय रूपको का एक उपकरण बन गई हैं यदि कि ही विशेष मामलो म इनकी स्थापनाएँ सही उतरती हैं तो वह इसलिए हैं कि उनम अच्छे तकशास्त्र के कुछ अवशेष रह ही गय हैं। जसा इसके समथक सावते हैं यह न तो पूणत गणितीय ही है और न परम्परा विरोधी।

रसेल के तकशास्त्र पर बूले शोडर की भाति कुक विल्सन को बहुत कुछ नही कहना था और जो कुछ भी इस विषय मे उ होने कहा है वह घृणा भाव स ही कहा है। स तरह 'वर्गों के विरोधाभासो पर उ होने बोसाके को लिखा, 'मैं यह जानकर कृतन हू कि ऐसी वेहुदी और भ्रमपूण बातो को प्रकाशित करवा कर कोई आदमी किस प्रकार मृगछल मे रह सकता है। मेरे लिए तो यह सोचना ही दुविधा जनक है कि उ ह कसे एक प्रकाशक मिल गया (प्रकाशक के अ दर का पाठक उस वक्त कहा लुप्त हो गया था?) और मुश्किल तो यह है कि ऐसा घृणित कम भी आज परीक्षण का विषय बन गया है।"

इसके बावजूद भी वे प्रत्ययवादी तकशास्त्र से असतुष्ट थे। हा, इसके प्रति उनके असतोष की मात्रा कम थी। प्रत्ययवादी तकशास्त्र निणय' से प्रारम होता है। कुक विल्सन के मतानुसार प्रत्ययवादियो की भाषा का सहारा लें तो वास्तव म निणय' नाम की कोई स्थिति हम उपल ध नही होगी। प्रत्ययवादी विचारधारा मे गलती इस प्रकार प्रारम्भ होती है–परम्परागतया तकशास्त्र कथन को अपनी आरम्भिक चर्चा की इकाई मानता है जबकि प्रत्यवादी यह जा कर कि तकशास्त्र का शाब्दिक अभि यक्ति स इतना सबध नही है जितना विचार से है–कथन की एवज म निणय' को रख देते हैं और उसकी परिभाषा ऐसी मानसिक क्रिया के रूप मे

करत है जिसकी अभिव्यक्ति कथनो के जरिए होती है। किन्तु यह मानना एक भीषण गलती है कि एक ऐसी मानसिक क्रिया भी है जो प्रत्येक कथन म प्रकट होती है। कुछ कथन, ज्ञान को व्यक्त करते हैं, कुछ रायें कुछ मान्यताए और कुछ अनुमान। और य कुक विल्सन के मत म 'निर्णय' के विभिन्न प्रकार नही हैं। व विचार की अलग अलग क्रियाए हैं। प्रत्ययवादी निर्णय के सिद्धान्त की प्रमुख कमजोरी यही है कि वह इन विचारों की क्रियाओं को एक साथ या एक क्रम म नियमाण दखता है, जबकि इन्ह हर हालत म अलग अलग मानकर चलना चाहिए। ज्ञान को तथा ज्ञान के उपकरणो को, जिनम मत विश्वास तथा मान्यताए भी शामिल हैं किसी भाति एक दूसर म उलझाना नही चाहिए, चाह य उपकरण अन्तत ज्ञान पर ही आश्रित क्यो न हो और इनकी व्याख्या ज्ञान के उपकरण के रूप म ही क्यो न की जाती हो।

ज्ञान क्या है? कुक विल्सन के मत मे यदि कोई इस प्रश्न के जरिए ज्ञान की परिभाषा की माग करे तो यह प्रश्न उत्तरहीन है। ज्ञान सरल है, अनन्त है अपरिभाष्य है। इसकी परिभाषा दन का या इसका औचित्य देने का कोई भी प्रयास अथवा इसके सिद्धीकरण को सभव मानने की बात अपरिहार्य रूप से गोल-मोल होगी। अधिक स अधिक एक दार्शनिक इस उद्धरण से सिद्ध कर सकगा और कुक विल्सन की दृष्टि म इसका सवश्रेष्ठ उद्धरण गणित म मिल सकता है। गणित एक वस्तुपरक ज्ञान है। यह एक सरल तथ्य है-इसके लिए न तो प्रदशन और बचाव की आवश्यकता ही है। व ज्यामितिकार विशेषत कुक विल्सन के गुस्से के प्रमुख शिकार रहे हैं जिन्होने यह सुझाव दने का दुस्साहस किया कि एक से अधिक ज्यामिति की सभावना हो सकती है। अथवा यह कि अभी गणितीय प्रणाली की निश्चितता सभवत इस तथ्य म निहित है कि अभी तक इसमे कोई विरोधाभास खोजा नही जा सका है।[1]

इस प्रकार ज्ञान की प्रकृति के विषय म सीधे अन्त ज्ञान से व्वचित होने के बाद कुक विल्सन अब दूसरी स्थापना का स्पष्टीकरण करते हैं। सभी प्रकार के विचार म ज्ञान की आवश्यकता रहती है-जबकि ज्ञान को इनकी आवश्यकता नही होती। ज्ञान केवल मात्र विचार क विभिन्न उपकरणों को जोड देने का नाम नही है, यह तो विचार का मूलभूत आकार है-और इस पर ही किसी भी स्तर की विचार

1 द्रष्टव्य ई जे फरलोग कृत कुक विल्सन एण्ड द नॉन-यूक्लिडियन्स (माइण्ड 1941) ज्ञान क सबध में उनके द्वारा बाद म किए गए उद्धरणों के लिए जिस पर कुक विल्सन का प्रभाव है, देखें आर० आई० आरान कृत द नेचर आव नोइग (1930)

श्रृंखला प्रवलम्बित रहती है।[1] उदाहरणार्थ हम अपनी एक राय रख सकते हैं किन्तु यह तभी होगा जब हम यह जानें कि हमारे दृष्टिकोण के पक्ष में जो प्रमाण है वो उस के अन्य विकल्पों से अधिक शक्तिशाली हैं। हमें 'आश्चय' तभी होगा जब हम जानें कि हमारे आश्चय का आधार क्या है ? कुक विल्सन के विचार में, तर्कशास्त्र विस्तार से इस बात का संकेत देने के लिए है कि ज्ञान से अलग किस प्रकार मत-निर्धारण, विश्वास संचयन एवं आश्चय-प्रकाशन संभव है। ऐसे तर्कशास्त्र की रचना स्वयं उन्होंने कभी नहीं की किन्तु विचारों के विविध प्रकारों के विश्लेषण संबंधी उनकी रुचि को उनके शिष्यों ने ग्रहण कर लिया था। और तब उन शिष्यों के शिष्यों द्वारा जिसे स्वयं विल्सन ने तर्कशास्त्र की संज्ञा दी थी, उसे ज्ञानमीमांसा या फिर दार्शनिक मनोविज्ञान के रूप में स्थापित किया गया।

कुक विल्सन की रुचि का एक और पक्ष-व्याकरणीय एवं तर्कीय विश्लेषणों के अन्तर को तथा उनके पारस्परिक संबंध को प्रकटाना था। बोल-चाल के भाषा संबंधी प्रयोगों के प्रति उनकी बड़ी आस्था थी। यह स्थिति यथार्थवादी ही कही जाएगी। भाषा में प्रचलित भेदों को सरलता से उपेक्षित नहीं किया जा सकता। उन्होंने बासांके को अपने एक दूसरे पत्र में लिखा है कि तर्कशास्त्र के विद्यार्थी का यह कर्त्तव्य है, कि वह भाषा के एक मुहावरे के सामान्य प्रयोग या फिर भाषा के ढांचे में उसकी अभिव्यक्ति संबंधी स्थिति का निर्धारण करे। सभी बातें इसी पर आधारित हैं।

और कुक विल्सन ने जिस बात की शिक्षा दी उसे वे अभ्यास में भी लाए। स्टेटमेंट एण्ड इनफरेंस तर्क-भाषाई विश्लेषण से भरपूर है। इस प्रकार प्रत्ययवादी निर्णय के सिद्धान्त पर आंशिक रूप से की गई आलोचना के दौरान वे यह तर्क देते हैं कि यदि हम उस वाक्य पर विचार करें जिसमें कोई निर्णय हो तो हमें तत्काल ही मालूम होगा कि निर्णय एक प्रकार का अनुमान है। प्रत्ययवादियों की धारणा की भांति यह एक सरल स्वीकारोक्ति नहीं है। यह निर्णय करना कि जौन दौड़ जीत जायगा उपलब्ध प्रमाणों के जरिए यह अनुमान करना है कि जौन

---

1 यह कदाचित् कुक विल्सन के उपदेशों में से सर्वाधिक प्रभावशाली है। द्रष्टव्य जी० एफ० स्टाउट कृत इमीजिएसी, मीडिएसी एण्ड कोहेरेंस (माइण्ड 1908 एवं स्टडीज) जी० राइल कृत आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी० ए० एस० (1929) डब्लू० नीले कृत प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन (1949), आलोचना के लिए देख डी० आर० कजिन कृत सम डाउटस अबाउट नोलेज (पी० ए० एस० 1935) एवं लेयर्ड कृत नोलेज, बिलीफ एण्ड ओपीनियन (1930)।

विजेता होगा। इस तरह अपने निर्णय को प्रयुक्त करना हमारे निष्कर्ष निकालने की मानसिक क्षमता को उपयोग म लाना है। निर्णय' नामक शब्द का यहां सव-साधारण प्रयोग है। और स्पष्टत न तो ज्ञान ही और न हमारी मान्यताए ही निर्णय क किसी ऐसे प्रकार को व्यक्त करती हैं। इस तरह भाषा के प्रयोग (यूसेज) प्रत्ययवादी सिद्धान्त के विरोध म खडे हैं तथा उनमे हमे आस्था रखनी चाहिए।

प्रत्ययवादी तर्कशास्त्रियो ने जहां आकर रोजमर्रा की भाषा की मांगो को अस्वीकार किया है कुक विल्सन की दृष्टि म वह है उनक द्वारा समष्टियो को प्राकल्पात्मक आकार म बदलना। एक प्रत्ययवादी के अनुसार सब क्ष य हैं इस बात से अधिक कुछ व्यक्त नही करता कि यदि कोई भी वस्तु क्ष है तो वह य भी है। विल्सन इस विश्लेषण पर इस आधार पर आपत्ति प्रस्तुत करते हैं कि यदि तो' के आकार वाले कथन किसी शत कथन के सम्पूर्ण अर्थ को व्यक्त नही कर सकते। प्रश्न भाषा का है वसे इसका उत्तर किसी विशिष्ट भाषा के सामान्य प्रचलन के अनुसार क्ष य, है उसी समय कहाजायगा जब हम यह विश्वास करें कि वास्तव म क्ष नामकी कुछ वस्तुए हैं। यदि' 'तो आकार वाला कथन अपने साथ इस प्रकार की कोई स्वीकारोक्ति लेकर नही चलता। निश्चय ही यदि 'तो का मुहावरात्मक प्रयोग भी होता है जहा वह शतमय हो जाता है और सब क्ष य है का मुहावरात्मक प्रयोग जिसम मे अस्तित्व सबधी स्वीकारोक्ति विलुप्त है इस बात क विषय म प्रकाश डालता है। किन्तु तब भी सव-भामा य भाषा सबधी प्रयोग ही इसका मान-बिन्दु होगा। कुक विल्सन का स्वय का मत है कि सभी सच्चे तक कथन, शत कथन ही होते हैं। प्राकल्पिक कथन, केवल समस्या को सामने रखत हैं कोई स्वीकारोक्ति नही करते। उदाहरणाथ यह प्राकल्प कि यदि यह द्रव' तेजाब है तो लिटमस को लाल कर देगा इस बात की सिद्धि करता ह कि इस समस्या का हल कि यह द्रव तेजाब ह या नहीं, इस बात मे निहित ह कि यह लिटमस को लाल कर सकता है अथवा नही। एक प्राक्ल्प निश्चय ही सत्य कथनो पर आश्रित होता ह। यहा सत्य कथन यह ह कि सब प्रकार क तजाब लिटमस को लाल कर देते हैं, किन्तु यह अपने आप म एक कथन नही होता। यदि ऐसा होता तो यह निश्चय ही शतात्मक होता। कुक विल्सन का यह सिद्धा त निश्चय ही आकषक है किन्तु इसस भी ज्यादा ऐतिहासिक महत्व की बात ह उनक द्वारा सामान्य प्रचलन की भाषा के प्रयोग के प्रति समादृत दृष्टिकोण रखा जाना।

यदि कुक विल्सन दाशनिको से यह मांग करते हैं कि उन्हे व्याकरण पर गमीरता से विचार करना चाहिए तो वह इस बात पर भी जोर देते हैं कि व्याकरणीय एव तर्कीय कथनो म स्पष्ट अन्तर भी किया जाना चाहिए। मिल क सकेतन एव ध्वनि या अर्थछाया (कोनोटेशन) सिद्धान्त को व्याकरणीय विश्लेषण का एक अश

मानकर कुक विल्सन परित्यक्त कर दत है। नामो एव सनाम्रों के प्रयोग पर ही जहा विचार हुआ है, उस तकशास्त्र सबधी योगदान कस कहा जा सकता है ? इन उलझनो का उदय इस बात को न जान पाने के कारण होता है कि तक-शास्त्र, विचारो के आकर का मिद्धा त है। परम्परागत तकशास्त्री जान बूझकर अपने विषय का प्रवतन, शब्द रचना अथवा क्रिया पदो की रचना पर करते है और इस तरह उनक लिए व्याकरण और तकशास्त्र सबधी उलझनें बनी की बनी रह जाती हैं। घोषित रूप म प्रत्ययवादी निणय से प्रारम करते है। किन्तु चूकि निणय कही नही है उन्हे विवश होकर या तो भाषा सबधी कुछ सूत्र रखने पडत हैं अथवा फिर तक से परे तत्व दशन म प्रविष्ट होना पडता है। ऐसा करते समय उन्हे इस बात की सुधि भी नही रहती कि व क्या कर रहे हैं। इसलिए कुक के मतानुसार व्याकरण तकशास्त्र एल तत्व दशन आदि इन सभी को अलग अलग समझकर ही तार्किक मतवादो का स्पष्टीकरण हो सकता है, चाहे, तक सम्बन्धी मामलो पर प्रकाश डालने क लिए व्याकरणीय अथवा तात्विक दृष्टि का सहारा लेना असमीचीन नही हो।

यहा एक बात विशेष उल्लेखनीय है, और वह है कुक विल्सन द्वारा प्रस्तुत कर्त्ता विधेय तक' प्रणाली की आलोचना। सबसे पहले वे तार्किक कर्त्ता एव व्याकरणीय कर्त्ता के बीच म अन्तर करते हैं जिन्हे थोडे हेरफेर के बाद परम्परागत तक-शास्त्री एक ही मानत आए थे। उदाहरण के लिए यह वाक्य ले, काँच लचीला है। सामान्य विश्लेषण पर यही प्रकट होगा कि काच यहा कर्ता है और लचीला विधेय। किन्तु वास्तव मे मामला इतना आसानी स तय होने वाला नही दिखता। यह कथन कौनसे प्रश्न का उत्तर दे रहा है सब कुछ इसी बात पर निभर करता है। मानलो पूछा गया हो कि लचीलपन का उदाहरण क्या है ? इसके उत्तर म यहा पर प्रस्तुत लचीलापन तक का विषय हो जाएगा और काच लचीला है, हमारे उस विश्वास को व्यक्त करेगा कि उस लचीलपन के विधेय के रूप मे जो काच मे उधृदत किया गया है प्रस्तुत कथन को उपयोग मे लिया जा सकता है। यदि इसके अलावा यह प्रश्न होता कि काच इस्पात से किस तरह भिन्न है ? तो निश्चय ही काच लचीला है' मैं काच व्याकरणीय तथा तर्कीय कर्त्ता दोनो ही होता। सामान्य बोलचाल म हम कई तरह के प्रयोग काम मे लाते हैं जिनम स्वराघात सबस स्पष्ट है। उससे वास्तविक तर्कीय कर्ता का बोध भी हा जाता है। हम ऐसे भी कह सकते हैं काच लचीला है और ऐसे भी कि काच लचीला है। किन्तु स्वभ और स्वराघात की बात परम्परागत तकशास्त्रियो द्वारा अनदेखी कर दी गई है। इस तरह यह बेहूदी धारणा प्रकट हुई है कि मुख्य क्रिया सबधी किसी कथन म मुख्य क्रिया से सबद्ध नामवाची सना तार्किक कर्त्ता का सकेत देने को विवश है।

मामलो को ग्रौर ग्रधिक उलझाने के लिए यह व्याकरण सबधी विश्लेषण तात्विक ढग से चर्चित हो गया है-ग्रौर इसका उपयोग उन वस्तुग्रो पर भी होने लगा है जिनका उस कथन म सदर्भ प्रस्तुत है। तार्किक कर्त्ता एव तार्किक विधेय का भेद भी तर्कशास्त्र के ग्रन्य भेदों की ही भाति किया जाएगा ग्रौर उसे हमारी विचारशक्ति तक हो सीमित रखा जायगा। उनके विश्लेषणानुसार तार्किक कर्त्ता एक वैसी ही वस्तु है जसी हम उस कथन म निहित विधेय द्वारा कर्त्ता के विषय मे कुछ कहे जाने से पूर्व ग्रपनी तरफ से कोई धारणा बना लेते हैं। तार्किक विधेय' प्रदत्त कथन म एक ऐसी सत्ता है जो वस्तु से सम्बद्ध है किन्तु इसके विषय म हम पहले से कोई पदार्थ विषयक धारणा नही बनाते। इसस यही निष्कर्ष निकलता है कि कर्त्ता एव विधेय म रहा भेद हमारे ज्ञान के विकास के क्रम के ग्रनुपात मे विद्यमान होता है, किसी दिए हुए समय म हम जो जानते हैं उसी के ग्रनुसार घटित होता हुग्रा।

प्रत्ययवादी ढग से यह चर्चा करना कि एक वस्तु ग्रपनी ही प्रकृति म ग्रपना विधेय भी हो सकती है, तत्वदर्शन एव तर्कशास्त्र दोनो म बनाए जाने वाले भेदो को भूलकर मामले को ग्रौर ग्रधिक उलझा देना है। कुछ ऐसे तत्व भी होते हैं जो हमारे विचार-क्रम से बिल्कुल स्वतन्त्र है किन्तु फिर भी कोई भी वस्तु तात्विक दृष्टि से भी ग्रपनी प्रकृति म न तो ग्रपनी कर्त्ता ही होती है ग्रौर न ग्रपना विधेय ग्रौर न ही विधेयीकरण का सबध हमारे द्वारा विचारो के क्रम को जोडने के के ग्रतिरिक्त कहीं विद्यमान ही रहता है।[1] एक ग्रोर कर्त्ता विधेय तथा दूसरी ग्रोर एक तत्व, गुणो के बीच विद्यमान भ्रम ग्रौर भी बुरी ग्रवस्था को पहुच जाता है, जब तर्कीय एव व्याकरणीय विधेयो को चुपचाप एक ही मान लिया जाता है। दरग्रसल दार्शनिको न-ग्रौर यह विल्सन का उनके विरुद्ध प्रमुख ग्रभियोग है, कि तीन प्रकारो से एक कथन को व्यक्त किया जा सकता है,—उस गोलमाल कर दिया है। इनम पहला विचार के ग्राकार को व्यक्त करता है- यह तर्कशास्त्रियो स सबद्ध है, दूसरा-क्रियात्मक या शाब्दिक ढाचे को व्यक्त करता है (इसका सबध वैयाकरणो से है) तथा इस भूत जगत् के विषय म कुछ कहने वाले कथन, इनका सबध तत्ववादियो स है।) । विधेयीकरण का सामान्य सिद्धान्त इस प्रकार की घपलबाजी स निःसृत ग्रबध ग्राविष्करण ही है।

स्पष्टत कुक विल्सन द्वारा प्रस्तुत विचारो के ग्राकार' एव वस्तुग्रो के सबधो के बीच किया गया भेद ही इस बात का ग्राभास देता है कि उन्होंने प्रत्यय

---

1 द्रष्टव्य पी० ए० एस० 1936 म प्रकाशित इज एग्जिस्टेन्स ए प्रेडीकेट ? नामक विषय पर डब्ल्यू नील एव जी ई मूर के बीच हुई चर्चा, यह चर्चा मूर ग्रौर कुक विल्सन के समर्थको द्वारा गुणों पर रहे मतभेद को व्यक्त करती है।

वादी सिद्धान्त का खण्डन किया है। यह बात कि सवधसूचक' एव वस्तुए' दोनो ही विचार के आकार के अलावा और कुछ नही ग्रीन ने विशद रूप म कही है। यहा तक कि अतिवादी प्रत्ययवादी दष्टिकोण से भी देखें तो कुक विल्सन के मतानुसार यह पता लगेगा कि किसी पदाथ का उसके बोध से हमशा ही भेद करना आवश्यक रहेगा। अपनी ज्ञान मीमासा म उन्होने यह भेद अधिक तीव्रता स व्यक्त किया है। उनकी रचनाओ की दिशा यथाथवाद की ओर ही है।

उनके अनुसार ज्ञान रचना करने का एक प्रकार नही है यह बात तो ग्रीन ने बताने की कोशिश की है। उन्होंने उसे आरम्भिक भावनाओ का एक बृहद् बौद्धिक पूर्णक (होल) माना है, किन्तु किसी वस्तु का निर्माण करना एक वस्तु है किन्तु *यह जानना कि हमने क्या निर्मित किया है सवथा भिन्न* वस्तु है। ज्ञान की मूल प्रकृति से भी यह पता चलता है कि जो कुछ हम जानते हैं वह जाने जाने के के लिए प्रस्तुत तो होना ही चाहिए और वह हमारे ज्ञान से युक्त होना चाहिए। वह प्रश्न कि यह हमारे मस्तिष्क के सम्मुख कसे आया उसके बाद का प्रश्न है। मुख्य बात तो यह है कि इसका मस्तिष्क के सामने आना एक वस्तु है उसका जाना जाना दूसरी वस्तु। जहा तक चचा का विषय है सभावना तो यही रहती है कि जो कुछ हम जान पाते है वह सदव ही हमारे मन का सशोधित रूप ही है यद्यपि वह ज्ञान की क्रिया का सशोधन नही हो सकता, किन्तु कुक विल्सन का कहना है कि यदि हम इस दष्टिकोण क ऐतिहासिक पक्ष पर गौर करे कि हम मानसिक अवस्थाओ के अलावा कुछ नही जानत हमे एकदम आभास होता है कि यह सब उस प्रयास का प्रतिफल है जिसके जरिए हम यह जानना चाहते हैं कि ज्ञान किस प्रकार सभव है।' ज्ञान की सभावना के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ हम चाहते है वह हमारे मस्तिष्क मे होना चाहिए।

एक बार यदि हम यह मानलें सद्धान्तिक रूप म कि ज्ञान किस प्रकार सभव है इसे सिद्ध करने का कोई तरीका नही है, क्योकि ऐसे प्रत्येक प्रमाण के लिए यह मानना आवश्यक हो जायगा कि कुछ ऐसी वस्तुए हैं जिन्हे हम पहल स जानते हैं। और तब यह चर्चा भी खत्म हो जायगी और निश्चय यह मानना तो किसी भी हालत म उचित नही है कि हमारा ज्ञान मानसिक अवस्थाओ तक ही सीमित है।

कुक विल्सन अपने यथाथवादी निष्कष पर धीरे धीरे एव सदेही होकर पहुँचे थे। यथाथवाद म कम से कम बोध की क्रिया एव बोध की वस्तु के बीच भेद की बात स्वीकृत है। उन्हे डर था कि बोध की क्रिया नकारात्मकता मे विलीन हो जायगी यदि वस्तु के रूप म इसका कोई आधार नही रखा गया। सवधसूचकों का गहन विश्लेषण करने से उनकी सदेहवादी धारणा को सहलाव मिलता है।

उनका कथन है कि किसी दुर्योगी अवस्था पर विचार करें-तो यह तो स्पष्ट ही है कि जब तक परस्पर टकराने वाले दो पदार्थ नहीं होंगे, तब तक यह दुर्योग सम्भव नहीं है। तथ्य यह है कि दुर्योगी पदार्थों का इस दुर्योग से अलग भी विद्यमान रहना आवश्यक है यदि कभी उनका दुर्योग होना है तो। इसी प्रकार उनके विचार में बोध सम्भव नहीं है जब तक बोध की क्रिया में बोध की वस्तु की अलग सत्ता न हो।

इस प्रकार तर्क देकर कुक विलसन ब्रेडले के इस मत का खण्डन करने को विवश हो जाते है, कि सबंध सूचक परस्पर विरोधाभासी हैं। ब्रेडले की द्वन्द्वात्मक प्रणाली का महत्व अयथार्थ प्रश्न पूछने में ही है। ये ऐसे प्रश्न हैं जो विचारक मन द्वारा कभी नहीं उठाए जा सके। खास तौर पर इनका यह प्रश्न था कि एक सबंध सूचक का अपने पदों से क्या सबंध है, एस प्रश्न का उत्तर मांगना है जिसका कोई उत्तर सम्भव हो नहीं है। कुक विलसन उसे समानता के सबंध के जरिए समझाते हैं। मानलो अ और ब समान है। तब हमारा यह पूछना कि किस प्रकार एक सबंध सूचक द्वारा अ समानता से सबंधित है। इसका उत्तर यही है कि समानता ही एक ऐसा सबंध है जिसके जरिए अ ब से सम्बन्धित है और यदि और ठीक ढंग से कहें तो यह कहेंगे कि अ का अ की ब से समानता का सम्बन्ध यही है कि यह अ का ब के समान सिद्ध करता है।

हम इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकते सिवाय मूल सबंधों की पुनरावृत्ति करने के। अ और ब के सम्बन्ध में अन्य ऐसा कोई सम्बन्ध है ही नहीं जो हमारे लिए अनंत वही बात प्रकट करने का कोई जटिल भाव प्रस्तुत करे। ब्रेडले के विचार में ऐसा है और वह केवल इसलिए है कि वे निरन्तर निरर्थक प्रश्न पूछने के पीछे पड़े हुए थे।

कुक विलसन अपने तर्क की सामान्य धारणाओं को प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी क्वालिटीज (जिसे उन्होंने पी० ए० एस० 1913 में प्रकाशित हुए जी० एफ स्टाउट के निबंध की प्रतिक्रिया पर लिखा था) में प्रत्यक्षीकरण की समस्या पर एक लम्बा पत्र लिखा है। ज्ञानमीमासकों ने गलती से यह मान लिया है कि चूंकि सहज रूप से हम किसी वस्तु के दिखाई देने की बात कर सकते हैं तो निश्चय ही दिखाई देने वाली भी एक अवस्था होनी ही चाहिए जो केवल 'आत्मपरक' ही है। और यही वह है जिसे हम वास्तव में देखते हैं। जबकि तथ्य यह है कोई दिखावा एक पदार्थ के दिखाई देने से भिन्न कुछ नहीं है। वे तब यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पदार्थ की प्रकृति हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाती है न कि हमारी चेतना द्वारा प्रस्तुत उसके किसी रूप का हम समझ पाते हैं।

'पदाथ की यह ्याख्या उ्ह लॉक के समीप ले आती है (और वेस के करीब भी) किसी अ्य प्रकार की मात्र यथाथवादी धारणा के करीब नही। मूलत उनके इस सामीप्य को सतही गुणो की व्याख्या म तो स्पष्ट ही दखा जा सकता है। उष्णता को एक खास सतही गुण मानकर वह तक करते है कि ऊष्णता का अनुभव करते समय हम साधारणत हमारी ही सवदनाओ के अतिरिक्त अ य किसी अवस्था क प्रति सचेत नही होते। जब तक कि हम उस पदाथ का स्पश न करलें जिस हम उष्ण मान रहे हैं, तब ही हम उसके विस्तार का भी प्रत्यक्षीकरण हाता है तब यह अनुमान लगाते हैं, प्रत्यक्ष नही देखते कि किसी पदाथ म उष्णता उत्पन्न करने की क्षमता उसका सतही गुण है।

प्राथमिक गुण उनकी दृष्टि म दूसरी श्रेणी के हैं। ब्रेडल के दृष्टिसिद्धान्त ने कुछ ऐसा आभास दे दिया था कि इस सदभ म भी हम जिस अवस्था के विषय म सचेत हो रहे हैं मूलत जब एक उसके विशेष रूप स देखन की बात करते हैं या एक खास साइज दखते हैं, वह भी किसी न किसी प्रकार की स्पर्शीय या मासल सवेदना ही है जिसके आधार पर हम यह अनुमान लगाते हैं कि किसी भौतिक पदाथ म दिकीय गुण भी मौजूद है। कुक विल्सन इस अनुमान को सद्धा तिक रूप से असमव कहकर ठुकरा देते हैं। और वह भी उस आधार पर कि जिसे केस न पहल ही निवदित कर दिया है कि फन हुए भौतिक पदार्थों का अस्तित्व न फली हुई सवेदनाओ द्वारा कभी भी अनुमानित नही किया जा सकता।[1] तब हमे यह मानना चाहिए कि दिकीय गुणो का हमारे द्वारा किए गए प्रत्यक्षीकरण से जो चाह रग, स्वाद, गर्मी की सवेदनाओ म न प्रकटता हो हम सीधे अपदाथ की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस सीमा तक कुक विल्सन को उनका यथाथवाद खीच ले गया कि्तु उनके अनुयायियो ने उसे उस सीमा तक नही कायम रखा।

उनमे स जो कुक विल्सन के बहुत समीप रहे—कम से कम अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे—एच० ए० प्रिचाड एव एच० डब्लू० बी० जोसेफ प्रमुख थे।

---

1 बकले के दष्टि सिद्धा त की आलोचना 1842 म प्रकाशित एस बले की कृति ए रिव्यू आव बकलेज थ्योरी आव विजन मे की गई। टी० के० एबट ने भी साइट एण्ड टच (1864) नामक पुस्तक मे उनकी आलोचना की है। फिर भी किसी प्रकार उनकी क्षमता पर आच नही आ सकी और मनोवज्ञानिको मे तो बकले का दष्टिकोण ही मा य दष्टिकोण रहा। बले एव एबोट द्वारा बकले की आलोचना का एक सक्षिप्त विवरण 1953 मे बी० जे० पी० एस० मे प्रकाशित जे० ओ० विजडम के रिव्यू म मिलता है।

प्रिचाड[1] जो ग्रोक्सफोड म नीति दशन के व्याख्याता थ, एक प्रवल सुवादी थे, जिन्होने अपने सिद्धान्तो की स्थापना आलोचना निवध लिख लिख कर ही की। उनका केवल एक ही ग्र थ प्रकाशित हुआ। वह भी ज्ञान मीमासा के सम्बद्ध था। इसका नाम काण्टस थ्योरी ग्राव नोलेज (1909) है। उनक निवधो का एक सकलन उनके मरणोपरान्त नोलेज एण्ड परसेप्शन (1950) नाम से प्रकाशित हुआ था। काण्टस थ्योरी ग्राव नोलेज ही एक ऐसा ग्रन्थ था जिसके जरिए कुक विलसन का दशन ग्राक्सफोड क बाहर पाठको तक पहुच पाया। खास तौर पर ज्ञान एव यथाथ पर उसका एक ग्रध्याय कुक विलसन द्वारा प्रत्ययवाद की[2] की गई प्राणवान आलोचना का उदाहरण है। प्रिचाड का कहना है कि ज्ञान की मूलभूत प्रकृति म ही निर्विवाद रूप स यह दिखाई देता है कि जाना हुआ यथाथ उस यथाथ के ज्ञान से मुक्त अवस्था से भी अस्तित्वशील है। यह विचार करना ही असभव है कि कोई यथाथ अपनी स्थिति के लिए हमारे उसके विषय मे किए जान वाले ज्ञान पर आश्रित है। चाहे यह एक पत्थर हो अथवा दात का दद। इसके पूव कि वह ज्ञान के सम्बन्धों म आकर उलझ जाए उसके लिए किसी पदाथ का होना तो परमावश्यक है तब भी यह हो सकता है कि अपने अस्तित्व बोध क लिए वह हम पर आश्रित रहे–हो सकता है कि उसकी रचना एसे तत्वो स बनी हो जो मन के विलीन होने के साथ ही विलीन भी हो जाए किन्तु उसका अस्तित्व हमारे उसके सम्ब ध म किए ज्ञान पर आधारित नही हो सकता।

तब प्रत्ययवाद की मात्र एक सभावना यदि कोई है तो वह है ग्रात्म परक प्रत्ययवाद। यह कहना सभव है कि वस्तुत हम हमारी मानसिक अवस्थाओ के अलावा कुछ नही जानते, किन्तु वस्तुपरक प्रत्ययवादियो की भाति यह सुझाव देना समझ म नही आता कि जो कुछ हम जानते हैं वह मस्तिष्क के अस्तित्व पर आश्रित नही है। किन्तु उसका अस्तित्व हो मस्तिष्क द्वारा जाने जा सकने के कारण ही है। वे यहां कुक विलसन की इस बात को मानते हैं कि आत्मपरक प्रत्ययवाद भी उस समय ध्वस्त हो जाता है जब एक बार यह स्पष्ट हो जाय कि हम ज्ञान का औचित्य' देना है। तब यह विशेष जाच पड़ताल का

---

1 द्रष्टव्य ई० एफ० करिट कृत प्रोफेसर एच ए प्रिचाड पसनल रिकलेकशन्स माइण्ड (1848), पी० बी० ए० (1947) म एच० एच० प्राइस का स्मारक नोट भी दखे।

2 प्राय यह कहा जाता है कि प्रिचाड यहा कुक विल्सन से भी आगे निकल गए थे। निश्चय ही प्रिचाड के किसी प्रकाशन म इसका सकेत नही है। प्रिचाड द्वारा डेकाट पर नोलेज एण्ड परसेप्शन म की गई चर्चा भी देखने योग्य है–इस चर्चा म ही कुक विलसन की ज्ञान मीमासा व्यक्त हुई है।

विषय हो जायगा कि अमुक अमुक प्रकार के प्रत्यक्षीकरणो म स कौनसा प्रत्यक्षी करण अपने अस्तित्व क लिए हमारे मन पर आश्रित है। इस प्रकार का जाच पडताल प्रिचाड क मतानुसार हम कुक विल्सन के इस निष्कप का मानने को वाध्य कर देती है कि जहा स्वाद रग आदि प्रकार की सवेदनाए मन पर आधारित हैं, वहा दिकीय गुण उससे स्वतन्त्र है। इसी समस्या पर प्रिचाड के बाद के निष्कप उन्हे भिन्न एव कम परिचित धरातल पर ले आए। एक बार फिर उनकी दृष्टि शास्त्रीय होगई है। नोलेज एण्ड परसेप्शन म, जो निबध सकलित हुए हैं प्रमुखत रसल के ऐन्द्रिय उपकरणो के सिद्धान्त की आलोचना करने के लिए ही लिखे गए हैं या फिर उनमे परम्परागत अनुभववादी ज्ञान मीमासा का खडन किया गया। किन्तु प्रत्यक्षीकरण (परसेप्शन) पर पढ़े गए निबध म जिनका कही प्रकाशन भी नही हुआ उन्होंने अपने ठोस निष्कप भी दिए है। वे दो बातो पर अधिक बल देना चाहते हैं, पहला यही कि प्रत्यक्षीकरण ज्ञान नही है—और दूसरा देखने अनुभव करने एव स्पश करने की विशेष अवस्थाओ म जिन्हे हम सामान्यत प्रत्यक्षीकरण की सज्ञा देते हैं। हमारे द्वारा एक वस्तु को गलत रूप स किसी देखी या अनुभव की गई वस्तु मान लेना है। पहले आधार पर प्रिचाड, कुक के के प्रभाव से अलग हो रहे हैं क्योकि कुक विल्सन ने सकोच स ही क्यो नही पर कहा अवश्य था कि चाहे प्रत्यक्षीकरण की सभी विविधताए ज्ञान न हो किन्तु कुछ प्रत्यक्षीकरण तो ज्ञान की श्रेणी म लिये ही जा सकते हैं। और इसी बात पर प्रिचाड का उनसे दूसरा मतभेद होता है और व इस बात का खण्डन करते हैं कि हम सीध तौर पर भौतिक पदार्थों का देख सकते हैं। इन्द्रियो के द्वारा प्रस्तुत भ्रम का अस्तित्व मात्र ही यह बात दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि प्रत्यक्षीकरण कभी एक दम प्राप्त नही होता।

तब हम तात्कालिक रूप म किसे देखते है? इसके रूढिवादी उत्तर को ही अनेक रूपो म व्यक्त किया गया है—जिसके अनुसार हम दशनीय रूप ही देखते है। किन्तु प्रिचाड आपत्ति करते हुए कहते है कि रूप या प्रत्यय) हमेशा ही किसी पदाथ के धम हैं इस तरह इस शब्दावली का प्रयोग अनिवाय रूप स नही प्रकट करता है कि हम किसी भाति उस पदाथ को देख रहे है—जिसका रूप हमारे सामने प्रकट हो रहा है। जो इस बात को स्वीकारते है जसे जी० एफ० स्टाउट वे प्रिचाड की दृष्टि म प्रकट रूप म अपराधी है। व यह स्वीकारने और नकारने की अवस्थाओ के बीच आगे पीछे फिसलते रहते है कि हम भौतिक पदार्थो को सीधे रूप म देखते हैं। और तब रूप की दुविधा का सहारा लेते है। इसके अतिरिक्त जो कुछ हम देखते है उसे रूपाभास मात्र कहना किसी प्रकार वस्तु की प्रकृति के विषय म कुछ कहना नही हुआ। रूपाभास' का स्तर निश्चय ही भ्रामक है। प्रिचाड की अपनी राय यही है कि रूपाभास के झगडे म न पडकर हम दरअसल

फल हुए एवं उसके साथ ही साथ विशेष रूप में उससे जुड़े विभिन्न प्रकार के रंगों को देखते हैं।

तब हम स्वभावतः यही पूछते हैं यदि हम रंगमय फलाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखते तो यह कैसे संभव है कि हम उन्हें भौतिक पदार्थ जान लेते हैं? प्रिचार्ड इसका जवाब दो तरह से देते हैं। पहला तो यही कि यद्यपि हम केवल रंगमय फलाव ही देखते हैं–हम उन्हें जानते नहीं हैं। इन्द्रिय उपकरणों के सिद्धान्त के हिसाब में किसी से किसी वस्तु का सीधा प्रत्यक्षीकरण करना' हमारे द्वारा देखी गई उस वस्तु की प्रकृति जान लेना ही है। इन्द्रियों के संसर्ग में आए पदार्थ का तात्कालिक बोध ही दरअसल सम्पूर्ण ज्ञान की पहली सीढ़ी है। प्रिचार्ड इस बात का खण्डन करते हैं।

सामान्य रूप से जिसे हम तत्काल देखते हैं, उसके विषय में किसी तरह का ज्ञान नहीं होता। और तब चूंकि हम उन फैले रंगों को भी नहीं जानते जिन्हें वस्तुओं के बजाय हम देखते हैं, उस संबंध में यह निर्णय लेने अनुमान लगाने का तो प्रश्न ही नहीं रहता कि ये वस्तुएं रूप में हैं या किसी कारण से घटित हुए हैं या वे अमुक अमुक संघट को व्यक्त करती हुई सत्ता हैं। इस प्रकार का निर्णय केवल ज्ञान पर आधारित होगा और तब नए ज्ञान की संभावना ही नहीं होगी और तब ज्ञान नहीं होगा।

प्रिचार्ड का दृष्टिकोण इस तरह कुछ विरोधाभासी लगता है। वो हम बताते हैं कि हम वास्तव में केवल रंगमय फलाव देखते हैं। इसमें संदेह चाहे न हो कि हम सामान्य रूप से विश्वास करते हैं कि जो कुछ हम देखते हैं वे भौतिक पदार्थ ही हैं। *हम यह प्रश्न अपने आप से पूछते हैं कि यह विश्वास उस समय तक कैसे* उपज सकता है जब तक कि हम यह निर्णय नहीं करलें कि ये रंगमय फैलाव भौतिक पदार्थ ही हैं? इसी विरोधाभासी स्थिति को हटाने के लिए प्रिचार्ड एक अन्तर को प्रकटाते हैं। इसे कुक विल्सन ने भी स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स में सुझाया था। यह अन्तर इन दो अवस्थाओं का है–क्ष य है यह निर्णय लेना तथा यह आभासित होना कि क्ष य है। मानलो कि हम एक अजनबी को गली में देखते हैं और उसका *स्वागत एक परिचित की तरह करते हैं तब कुक विल्सन के अनुसार हम यह निर्णय* नहीं ले रहे हैं कि अजनबी एक परिचित व्यक्ति है। ऐसा कहने का अर्थ यही होगा कि हमने उसके परिचित होने का पूरा प्रमाण प्राप्त करने पर ही उसका स्वागत *किया है। जबकि वास्तव में ऐसा हुआ नहीं है।* इसके विपरीत *हुआ* यह है कि हमने एक व्यक्ति को देखा और बिना किसी विचार के उसको अपना मित्र मान लिया या कम से कम इस प्रभाव में रहे कि वह हमारा मित्र था। हमने इसके मित्र *होने का निर्णय नहीं लिया हमने इस घटना में उस गलती से मित्र मान लिया था।*

प्रिचाड का कथन है कि भौतिक पदार्थों के हमारे सभी प्रत्यक्षीकरणो म इसी प्रकार की घटना घटती है। हम दरग्रसल एक रगमय फलाव देखते हैं (या स्पर्शानुभूति प्राप्त करते हैं) कि तु हम उस ही गलती से भौतिक पदाथ मान लेते हैं। केवल बाद के विश्लेपण से ही हम इस बात का नान होता है कि हम दर ग्रसल क्या देख रहे थे। प्रतिदिन के प्रत्यक्षीकरण के ग्रविवेकी स्तर पर हम प्राय भौतिक वस्तुग्रो को देखने के प्रभाव मे ही रहते हैं।

कुछ इसी प्रकार के प्रत्यक्षीकरण के सिद्धा त को स्वीकार करके ही हम उन परम्परागत सुवादो का खातमा करन की स्थिति म होंगे जो उस समय तक ग्रपरिहाय रहगे जब तक हम यह मानते रहगे कि इ द्रिय चेतना से जिसका तत्काल प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं उस हम जान लेते हैं। क्योकि जिसकी इ द्रियानुभूति हम करें उसे यदि जान लें तो हम जिसकी ग्रनुभूति कर रहे हैं वह निश्चय ही उस क्रिया से भिन्न होना चाहिए जो किसी वस्तु को जान रही है। प्रिचाड, कुक विल्सन के मत का ही समथन करते है। यह धारणा ज्ञानमीमासको को सीधे यथाथवाद की ग्रोर ले जाती है कि तु मीमासकों को शीघ्र ही वापस लौटना पडता है, जब उनका सामना 'भ्रम ग्रौर दोप' के कठोर सत्यों से होना प्रारम्भ हो जाता है। बिना खरोच प्राप्त किए ग्रब उनका बचाव भी नही होता क्योकि तब वे ग्रपने ही हाथो मे विचित्र सत्ताग्रो को देखते हैं। प्रत्यय या इद्रिय उपकरण इनम से किसी म भी वे तत्व नही है–जिसे नेय पदाथ म हम ढू ढना चाहते हैं। तो भी यदि वह सत्य है तो उसका नान करना ग्रावश्यक हो जाता है। नान मीमासको की तरह यह मानना कि हम उसी का नान होता है जिसका प्रत्यक्षीकरण हम होता है–उचित नही है। प्रिचाड की दृष्टि मे इसके लिए एक ही रास्ता है सदा सवदा के लिए हम परम्परावादियो की नान मीमासा म प्रयुक्त यथाथवाद एव प्रतिनिधिवाद क बीच खडे ढकुल (सी साज) की जटिलता को ही ग्रमा य कर दें। दोनो विकल्पोकरण मे ग्रर्तानहित इस कल्पना का परित्याग हम करना होगा कि तात्कालिक प्रत्यक्षी नान का एक प्रकार है।

प्रिचाड की नान मीमासा से जुडा हुग्रा है ग्रनुभववादी मनोविनान पर किया गया उनका प्रहार जिससे उनका मतलब है खास तौर पर स्टाउट एव वाड जसे मनोवविनानिको पर पिछली ग्रद्ध शताब्दी के ग्रोक्सफोड न ग्रपने तई यह गौरव ग्रजित किया था कि वह प्रगतिशील मनोविनान की घोर विरोधी रहा। बहुधा प्रत्ययवादियो की प्रशसा या बुराई इसीलिए की गई है कि व ग्राक्सफोड क्षेत्र म मनोविनान की रचनाग्रा के प्रति जो भी विरोध पहल रहा मूल रूप से उसके कारण रहे किन्तु वास्तव मे ब्रे डल, जसा हम देख चुके हैं, सक्रिय

रूप मे जहा मनोवनानिको की रचनाग्रो के प्रति उदार थे व उस प्रकार की जाच पडताल के प्रति भी सहानुभूति रखत थ। हो सकता है कि दाशनिक विवादो को मनोविनान क तरीके से सुलभाने की ग्रार उनकी प्रवृत्ति कम रही हो। यह सब प्रिचाड ग्रौर जासफ के ही कारण था कि यहा पर नान की प्राथमिकता का मनोविनान के विरुद्ध मोर्चा खडा हो सका।

ग्रनुभववादी मनोविनान विचार की उस ग्रवस्था पर नान की रचना करता है जो नान से ग्रधिक प्राथमिक ग्रौर प्राग्मावी है।[1] यह एक एसा धरातल था जिस पर खडे होने के कारण किसी भी कुक विल्सनवादी के पर काप सकते थे। प्रिचाड के ग्रनुसार ग्रधिक से ग्रधिक मनोविनान ऊटपटाग ढग म जोडी गई जाच पडतालो का एक घोल मल है। यह मुख्यत विनान नही है। (ग्रभी ग्रभी राइल ने ग्रपनी पुस्तक द कासेप्ट ग्राव माइण्ड म इसी प्रकार का म तव्य प्रकट किया है)।

प्रिचाड के प्रहारो का समथन एच० डब्लू० वी० जासफ[2] न ग्रपने निब ध द साइकोलोजीकल एक्सप्लेनेशन ग्राव दि डेवलपमेन्ट ग्राव दि परसेप्शन ग्राव एक्सटरनल ग्राबजेक्टस (माइण्ड 1910-11) म स्टाउट की व्याख्या इस तरह करते हैं, मानो व मिल के ग्रनुयायी हो, मानो वह कह रहे हो कि भौतिक पदाथ के ग्रस्तित्व के सम्ब ध म हमारा विश्वास सवेदना से उत्पन्न हुई एव मनोवनानिक द्वारा वणन की जा सकने वाली प्रक्रिया से ही ज म लता है। यह एक एसी व्याख्या है जिसका विरोध स्टाउट माइण्ड 1911 मे रिप्लाई टू मिस्टर जोसेफ नामक नबध लिखकर करते हैं।

ग्रपनी बहुत सी चर्चाग्रा म जोसफ प्रिचाड द्वारा काण्टस थ्योरी ग्राव नोलेज मे सुझाए गए माग पर ही चलते रहते हैं, ता भी यथाथवादी तथ्यो को जसा वहा रक्खा गया है, उस रूप म उन्हे स्वीकारने म वे कठिनाई महसूस करत हैं। वे लिखते हैं कि मैं इस दृष्टिकोण पर तो सदेह करूगा ही कि मूल रूप से जिसका बोध कर रहे हैं वह 'मन म' है या 'मानसिक' है। मैं बहुत सी ऐसी कठिनाइयो को उसम स्पष्ट देखता हूँ जिसका ग्रभी मैं कोई हल नही दे सकता, विशेषत मैं इस मा यता पर खुश नही हूँ कि दिक चेतना से पूणत स्वतत्र है। मुझे यह पता नही कि ठोसपन का मेरे लिए क्या ग्रथ है, न उसका जो दिक को भरता है न किसी 'वस्तु के विस्तार

1 द्रष्टव्य विशेषत उनका निब ध ए क्रिटिसिज्म ग्राव द साइकोलोजिस्टस ट्रीटमेन्ट ग्राव नोलेज एव स्टाउट का उत्तर मिस्टर प्रिचाडस क्रिटिसिज्म ग्राव साइकोलोजी। दोनो ही निबध माइण्ड-1907 मे प्रकाशित हुए। द्रष्टव्य नोलेज एण्ड परसेप्शन मे प्रिचाड द्वारा वाड पर किया गया प्रहार।

2 द्रष्टव्य एच० ए० प्रिचाड द्वारा लिखित मृत्युलेख-माइण्ड 1944

से ही मुझे कुछ समझ मे आता है। कुक विल्सन की दृष्टि म तो केवल ठोस पदाथ ही चेतना से भिन्न है। किन्तु जोसेफ का इस महत्वपूर्ण बिन्दु पर उनके प्रति सदेह उन्हे धीरे धीरे कुछ ऐसी अवस्था की आर लौटा लाया जिसे प्रत्ययवादी कहा जा सकता था। यह बात उनके ए कम्पेरीजन काण्टस आइडियलिज्म विद दट आव बकले नामक निबध के निष्कष म भली भांति देखी जा सकती है।[1]

कुक विल्सन का यथाथवाद सदव ही काम चलाऊ एव हिचक-पूर्ण रहा। नव यथाथवाद क उत्कष न परम्परावादी प्रत्ययवाद की अपेक्षा अपन अधिक क्रांतिकारी दृष्टिकोण के कारण कमजोर यत्तियो को पुराने विचार की ओर लौटने का विवश कर दिया अथवा फिर केम्ब्रिज की प्रगतिवादी बाहो मे उसे प्रश्रय दे दिया।

जोसेफ का तकशास्त्र भी प्रत्ययवादी एव कुक विल्सन की विचारधारा के बीच एक समझौता सा ही था। प्रतीकात्मक तकशास्त्र के प्रति विल्सन द्वारा दिखाए गए आक्रोश का जोसेफ भी समथन करते थे और ए डिफेंस आव फ्री थिंकिंग इन लोजिस्टिक्स (माइण्ड 1939-34) नाम से लिखी निबध माला म उन्होने रसेल एव उनके अनुयायिया पर सूसान स्टेबिंग के सतक बचाव को तोडकर भी उन पर प्रहार किया है। उनक प्रहार की प्रणाली ठीक उसी प्रकार की है जसा ब्रूल पर प्रहार करते समय कुक विल्सन की रही है। व्हाट डज मिस्टर डब्लू० ई० जोनसन मीन बाइ ए प्रोपोजीशन ? (माइण्ड 1927) नामक निबन्ध माला मे जोसफ द्वारा की गई जोनसन की आलोचना अपनी अन्य अवस्थाओ से भी ऊपर आकारी तकशास्त्री की कटु आलोचना है। जोसेफ का कथन है कि साध्यीकरण (इमप्लीकेशन) के बजाय अनुमान ही तकशास्त्र का आरम्भिक बिन्दु माना जाना चाहिए। आकारी तकशास्त्रियो और उनके आलोचको के बीच मतभेद का यही मूलभूत बिन्दु है।

उनकी सब प्रसिद्ध रचना एन इण्ट्रोडक्शन टू लोजिक (1906) परम्परागत तकशास्त्रीय पद्धति से रहित एक नव अरस्तुवादी तकशास्त्र की स्थापना करने का प्रयास है। जिस सीमा तक इसमे अरस्तु के[2] पुन सस्थापन का प्रयास किया गया

---

1 पी० बी० ए० 1929 वाला निबध 1935 म एनसिएण्ट एण्ड मोडन फिलोसोफी के नाम से प्रकाशित हुआ। द्रष्टव्य आन आकुपाथिंग स्पेस (माइण्ड 1919)।

2 अरस्तुवादी शृंखला के शास्त्रीय पक्ष के सुन्दरतम फूल वेस एव विल्सन द्वारा 1909-31 के दौर अरस्तु की रचनाओ के आक्सफोड अनुवादो द्वारा उगाए गए हैं। डब्लू डी० रोस के उल्लखनीय अनुवादो द्वारा भी ऐसा हुआ है। शास्त्रीय पक्ष पर किए योगदान के अतिरिक्त रोस मुख्यत नीतिशास्त्र मे रुचि रखते थे। व प्रिचाड तथा जोसेफ

है उसमें कुक के स्वयं के अरस्तुवादी प्रभाव की झलक मिलती है, इसके साथ ही साथ बहुत विस्तृत व्याख्या करने वाले कुक विल्सन के भाषणों का भी उन पर प्रभाव रहा है। किन्तु इसके बाद इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। जोसेफ ने कुक विल्सन के विवेचनाशील तर्कशास्त्र की प्रवृत्ति को पूर्णतः बूझा नहीं था। इस तरह इण्ट्रोडक्शन टू लॉजिक मुख्यतः अरस्तुवादी करके ही पढ़ा जायगा, कुक विल्सनवादी मानकर नहीं।

प्रिचार्ड द्वारा प्राप्त कुक विल्सन का प्रभाव जोसेफ एवं अन्य आक्सफोर्ड के शिक्षकों में अभी भी जीवन्त था। हम इसका उल्लेख आगे वाले अध्यायों में करेंगे। फिर भी आक्सफोर्ड के ऐसे बहुपरिचित ज्ञान मीमांसकों में से एक एच० प्राइस ने जो कि 1935 से आक्सफोर्ड में तर्कशास्त्र के प्राध्यापक रहे अपनी पुस्तक परसेप्शन (1932)[2] में सभी बिखरे सूत्रों का सम्पादन कर दिया। यहां उन पर भी कुक विल्सन का प्रभाव साफ है। प्राइस कुक विल्सन द्वारा किए गए ज्ञान एवं विश्वास के भेद को स्वीकारते हैं। उनके द्वारा सुझाई गई प्रभाव में होने की धारणा का अविकल उपयोग भी करते हैं। प्रभाव या निर्भरता की यह मात्रा भी प्रिचार्ड को प्रभावहीन नहीं कर सकी। पी० ए० एस० एस० 1938 में तथा नोलेज एण्ड परसेप्शन में व सेन्स डेटम फलेसी पर लिखकर उन्होंने प्राइस पर रसेल का अनुयायी होने का आरोप लगाया है। और अपनी इस धारणा में वे पूर्णतः सही भी हैं।[3] क्योंकि प्राइस रसेल से इस महत्वपूर्ण स्थल पर सहमति दर्शाते हैं कि संवेदना भी एक प्रकार का ज्ञान ही है—और हम तत्काल एक एन्द्रिय संवेदना का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार आक्सफोर्ड के नीति सिद्धान्त की रचना करने वाले प्रमुख विचारकों में थे। अरस्तुवादी वातावरण के लिए एज एण्ड यूथ (1953) रूप से प्रकाशित ई० बेकर की आत्मकथा देखें।

1 इस विषय पर प्राइस के अनुभव के लिए देखें उनकी पुस्तक सम कन्सीडरेशन्स अबाउट बिलीफ (पी० ए० एस० 1934)।

2 इस पुस्तक के विस्तृत विवरण के लिए ए० आर० एम० मर द्वारा प्रस्तुत रिव्यू देखें (माइण्ड 1933)।

3 प्राइस ने तो यहां तक किया कि उन्होंने अपना 1 वर्ष कैम्ब्रिज में अध्ययन हेतु लगा दिया और वे वहां शोध विद्यार्थी रहे। यहां यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्राइस हुसर्ल का सन्दर्भ नहीं देते हैं तो भी वे चेतना के वर्णन में हुसर्ल के संघटनवाद से प्रभावित दिखते हैं। प्राइस चेतना में प्रदत्त सभी संवेदनों का भौतिकी या शरीर विज्ञान संबंधी विचारधाराओं का सहारा लिए बिना व्याख्यायित करने में प्रयत्नशील दिखते हैं।

परसेप्शन का वृहदाश विवेचनात्मक है प्राइस विस्तार तथा तक सहित इस बात का खण्डन करने का कारण देते हैं कि हमारा ध्यान आकर्षित करने वाले बहुत से प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्तो पर सावधानी से विचार किया जाना अभी शेष है। किन्तु वे ऐन्द्रिय सवेदना की धारणा को ध्वस्त होने स बचा लेते हैं और उसके साथ ही इस दृष्टिकोण को भी कि ज्ञान मीमासा का मूल विचार बिन्दु यह स्पष्ट करता हैं कि किस प्रकार ऐन्द्रिय सवेदन भौतिक पदार्थ का भाग हो जाता है। यदि उस हमारे दैनिक जीवन क अनुभवो मे अर्थवान होना है तो उसकी वही व्याख्या होनी चाहिए। रसेल के प्रत्यक्षीकरण के आकस्मिक सिद्धान्त को वे असमीचीन मानकर परित्याग कर देते हैं। कोई आकस्मिक अनुमान हमे उस समय तक ऐन्द्रिय सवदन के माध्यम से भौतिक पदार्थों से सम्पृक्त नही कर सकता जब तक कि हमारे पास पहले से ही इस बात के प्रमाण न हो कि ऐसी वस्तुए विद्यमान हैं। इस तरह इस मामले की जवीय या ऐतिहासिक व्याख्या करने से प्राइस के मत म यह बहुत साफ हो जाता है कि हम आकस्मिक तक के द्वारा भौतिक जगत् के अस्तित्व म आस्थाशील नही हो सकते। जब तक कि ऐन्द्रिय सवेदन का सीधा सम्बन्ध भौतिक पदार्थों से न हो तक इस बात का कोई आधार नही है कि किस प्रकार वे आसपास बिखरे ससार के हमारे ज्ञान मे वृद्धि कर सकते हैं।

एक ऐन्द्रिय सवेदन, जब तक कि वह बहुत अधिक तीव्र या मनश्छल (हैल्यूसिनेशन) न हो तब तक एक सामान्य सवदन परिवार' का ही सदस्य है। इस परिवार के मुखिया के रूप म हम जहा तक चक्षुइन्द्रियो का प्रश्न है, वहा तक ठोस उपकरण को रख सकते हैं। साधारण बोलचाल या समझ की भाषा का उपयाग करें तो हम एक वस्तु पर बहुत से दृष्टिकोणो से विचार करते हैं। तब हम ऐसे ऐन्द्रिय सवेदन का भी अनुभव करेंग जो आकार एव साइज मे काफी भिन्नता लिए हुए होगी। ये ऐन्द्रिय उपकरण यदि हम इनको एक ही घनत्व मे से छिटक कर अलग होने वाली भिन्न भिन्न अवस्थाओ के रूप म दखें ता भी एक सगत म बठना इनके लिए असमव नही है। यही घनत्व तब ठोस प्रतिमान हा जाता है। और इसकी शक्ल हमारे ऐन्द्रिय सवदन म प्रकटी विशिष्ट शक्ल हो जाती है। इस तरह सामान्यत किसी वस्तु क वास्तविक घनत्व को ही हम उसका ठास प्रतिमान कह सकते हैं। इन्द्रिय सवदन का परिवार प्राइस की परिभाषा क अनुसार एस ठोस प्रतिमानो से निर्मित है जो अपने बहुत सी अन्य सवदनाओ द्वारा पदाथ सबधी ज्ञान को स्पष्ट करता है।

यहा सवेदनाओ की शृखला का सदभ उल्लखनीय है। रसेल ने वस्तु की परिभाषा भी ऐन्द्रिय सवदना के एसे सचित वग स की है। प्राइस की आपत्ति है कि ऐन्द्रिय सवेदन ता एक स भी हो सकत हैं जस कि नीलम का नीलापन एक पत्र के है। और यही नीलापन यदि एक पील या सफद प्रकाश म रखा जाय तो और भी नीलपन स मल खा सकता है चाह यह नीलापन इम वक्त दो भिन्न वस्तुओ म व्याप्त

भिन्न हो सकता है और इस समय भी वह केवल उसी एक ही वस्तु का अशी होता है। इस तरह कोई ऐन्द्रिय सवेदन जिससे एक परिवार बनता है, गुणात्मक एव ज्यामितिक रूप म निरतर रहना चाहिए। अर्थात् परिवार के उन भिन्न भिन्न ऐन्द्रिय सवेदन का परस्पर प्रभाव होना चाहिए तथा वे एक दूसरे से सयुक्त होने चाहिए। निश्चय ही एक व्यक्ति द्वारा देखी जाने पर इस परिवार मे भी खाच रह जाती है। इस विषय की चर्चा विस्तार मे वह अपनी पुस्तक ह्यूम्स थ्योरी आव एक्स्टरनल वर्ल्ड (1940) म करते हैं। इसका यही मतलब हुआ कि यह परिवार किसी एक व्यक्ति के वास्तविक अनुभव के साथ मेल नही खाता—यह तब भी उन अन्य प्राप्य ऐन्द्रिय सवेदनो की समावना रख सकता है जिन्हे दूसरी मन स्थिति म समवत वही व्यक्ति प्राप्त करता। और चू कि ये प्राप्य ऐन्द्रिय सवेदन किसी अन्य के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, इस तरह यह परिवार वस्तुपरक है सब सामान्य तथा निरन्तर भी है। प्राइस के ऐन्द्रिय सवदनो के परिवार एव मिल की सवदनाओ की अनन्त समावनाओ की एकरूपता से यह बात और भी साफ हो जायगी। प्राइस इस प्रकार से विचार किये जाने का समथन करते हैं किन्तु वे मिल की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि वे उनकी भाति परिवार जसी कोई ठास धारणा बनाने म असफल रहे थे। वे ऐन्द्रिय सवेदन की प्रकृति की एक सतोषप्रद व्याख्या नही कर पाए।

इसके अतिरिक्त मिल सघटनवादी थे। उन्होने भौतिक वस्तु का तादात्म्य ऐन्द्रिय सवदन की अनन्त समावना से कर दिया था। प्राइस इस प्रकार के तादात्म्य का निवारण करना चाहते थे। एक असघटनावादी सिद्धान्त की खोज म वे ऐन्द्रिय सवेदन के परिवार एव भौतिक पदाथ म अन्तर की बात से अपनी व्याख्या प्रारम्भ करते हैं। उनके अनुसार एक भौतिक पदाथ का सर्वाधिक स्पष्ट रूप है इसम निहित अवरोध की क्षमता। एक क्षेत्र उस समय भौतिक रूप से आभरित होता है या फिर किसी भौतिक पदाथ द्वारा पूरित होता है जब ऐन्द्रिय सवेदन के परिवार जो उस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, उनका किसी न किसी रूप म सशोधन हो जाता है। उदाहरण के लिए या तो वे छितर जाते हैं या बिखर जाते है। इसी स जुडा भौतिक पदाथ का एक और रूप होता है। वे आकस्मिक रूप स क्रियमाण रहते हैं। प्राइस भौतिक पदाथ की व्याख्या म केवल इतना कहकर सतुष्ट नही हो जाते कि वे ऐन्द्रिय सवदनो के ऐसे परिवार हैं जो किसी क्षेत्र के बाह्यान्तर म विद्यमान है और अब जो उस पदाथ द्वारा पूरित कर लिया गया है। क्योकि उनका कथन है कि भौतिक परिवार की तरह यह परिवार किसी विशिष्ट इयत्ता के रूप म विद्यमान नही होता। यह तो उस तथ्य की परिणति होती है कि परिवार ऐन्द्रिय सवदना स युक्त होता है जो वास्तविक तो नही है फिर भी प्राप्य हैं। बात को दूसरे ढग से कहे तो एक एक परिवार एक रचना है मूलत उस रूप म जिस रूप म भौतिक पदाथ एक रचना नही है।

उदाहरणाथ मानलें, आग स मैं लाल कोयला उठाकर देखता हू । प्राइस की दृष्टि म इस समय उस कोयन का केवल सामने वाला रूप[1] ही मेरे सामने है । ऐन्द्रिय सवेदना के अन्य सभी सुरक्षित सयोगो म केवल यही एक ऐन्द्रिय सवेदन इस क्षण वास्तव मे सक्रिय है । इसके अलावा कोयल के आकस्मिक गुण भी अन्य सभी अवस्थाओ म दिख ही रहे है । मक्खन का एक टुकडा यहा पिघलाया जा रहा है कागज का टुकडा वहा तह किया जा रहा है और एक अन्य स्थान पर कोई रूमाल सुखाया जा रहा है, किन्तु प्रत्यक्षदर्शी की भौहे सभी अवस्थाओ म ताप महसूस करती ही हैं । इसी तरह कोयला वातावरण के वेग से भेद जान स पूव एक प्रकार का अवरोध सभी दिशाओ म कायम करता है, केवल मात्र उसी भाग मे नहीं जहा ऐन्द्रिय सवेदन का सयोग प्रकटा है । य तथा ऐसे ही अन्य विचार यह बताते हैं कि ऐन्द्रिय सवेदन परिवार तथा क्षेत्र पूरक पदाथ मे कोइ क्रमवार सबध नही है । इस तरह यह परिवार भौतिक पदाथ भी नही है । तो भी प्राइस यह स्वीकारते हैं कि भौतिक पदाथ के विषय मे हम सिवाय इसके कुछ नही कह सकते कि इसम कुछ क्षमताए होती है । वे नवकान्तवादी अनीश्वरवाद सिद्धान्त की पुन स्थापना करते हुए कहते हैं कि भौतिक पदाथ के अन्तरङ्ग गुण, हमार लिए न केवल अनय हैं किन्तु हमार लिए उनका अपरिचित रहना अपरिहाय है । यद्यपि भौतिक पदाथ एव ऐन्द्रिय सवदन परिवार म कोई तादात्म्य नही है, और ऐन्द्रिय सवदन अपने अस्तित्व के लिए एक भौतिक पदाथ पर अवलम्बित है तो भी तथ्य यही है कि भौतिक पदार्थों की व्याख्या या परिभाषा यह बताकर ही दी जा सकती है कि वे कौन से ऐन्द्रिय सवेदन परिवार मे आते हैं ।

हमार दनिक जीवन म भी जब हम वस्तुओ के विषय म कुछ कहते हैं तो हमारा अथ न केवल ऐन्द्रिय सवदन परिवार से होता है और न अकेली भौतिक वस्तु से ही, हमारा आशय इन दानो का एक साथ सदभ देना है । हम ऐन्द्रिय सवेदनो के परिवार के साथ भौतिक पदाथ की बात करत हैं । यही कुल मिलाकर भौतिक वस्तु को हमारे सामन प्रस्तुत करता है । लौक का प्रतिनिधिवाद भौतिक वस्तु एव

---

1 प्राइस इस बात का खण्डन करते हैं कि सभी ऐन्द्रिय सवेदन दो आयाम के है । उनकी दृष्टि मे ऐन्द्रिय सवेदन घनत्वशील भी हो सकते हैं । वे यह जानकर चकित हैं कि ऐन्द्रिय सवेदन क सिद्धान्तो की आलोचना केवल इस आधार पर की गई है कि उनके लिए पदार्थों का तात्कालिक प्रत्यक्षीकरण द्वययामी है । सभी लोगो के सम्मुख स्पष्टत प्रकट हो जान वाले सघटनात्मक तथ्यो को वे कसे इन्कार कर सकते हैं । किन्तु यह तथ्य कि चाक्षुष सवदन सामान्यत धब्बो के रूप म वर्णित किये गये हैं । और उससे ऐसा मालुम होता है कि ऐन्द्रिय सवेदना के आलोचको की बात सदा ही गलत नही हो सकती ।

भौतिक पदार्थ के बीच उलझन पैदा करता है। संघटनवाद भौतिक वस्तु एव ऐन्द्रिय संवेदन परिवार के बीच का भेद नहीं करता तो भी इन दोनों में से संघटनवाद की ओर उनका झुकाव अधिक है। भौतिक पदार्थ एक छायाभासी सत्ता है, किन्तु उनका विचार था कि इन दोनों में से एक के चुनाव की मजबूरी से व बच गए हैं। तो भी प्रत्यक्ष इस बात से आश्वस्त नहीं हो सका कि व अपनी स्थापनाओं में सफल रहे हैं परसेप्शन चाहे संघटनवादियों के लिए प्रेरक ग्रंथ क्यों न रहा हो।

1953 में[1] प्राइस की बाद की रचनाओं को *थिंकिंग एण्ड एक्सपीरिएन्स* नामक ग्रन्थ में संकलित किया गया है। यह पुस्तक प्रत्यक्षीकरण की समस्याओं से परे हटकर विचार करने की क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करती है। आंशिक रूप में तो यह विचारों के संबंध में *स्थापित उन सिद्धान्तों की आलोचना ही है, जो वस्तुस्थितिवाद* के प्रभाव में आकर यह स्वीकारते हैं कि विचार करने की परिभाषा प्रतीकों के प्रयोग करने की प्रणाली के रूप में की जा सकती है। प्राइस यह बताने का भी प्रयास करते *हैं कि विचार के कुछ ऐसे प्रकार भी हैं जिनमें प्रतीकों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं* होती विशेषकर ऐसे समय जब हम काले बादलों को देखते हैं और विचार करते हैं कि वर्षा होगी[2] और यह भी कि विचार में जिन प्रतीकों का प्रयोग होता है उन्हें *भी वह पार कर जाता है। क्योंकि हमारी विचारधारा का एक अंश ही शब्दों* में उस प्रतीक को अभिव्यक्त कर पाता है जिसका रूप हमारे मन में बना है। जब हम कुत्ते के विषय में सोचते हैं तो उसका बना एक विशेष रूप कुत्तों के विषय में हमारी सारी विचारधारा को अपने में नहीं समेटता। यदि हम एक भवरे कुत्ते के विषय में सोचते हैं इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय केवल भवरे कुत्ते ही हमारी विचारधारा को आक्रान्त किए हुए हैं। तो भी इसके साथ ही प्राइस यह नहीं चाहते कि उन्हें विवश होकर विचारधारा की परम्परागत धारणा स्वीकारनी पड़ जाए।

---

1 द्रष्टव्य सी इन्नू के मण्डल द्वारा प्रस्तुत संवाद (पी क्यू 1954)।

2 स्पष्टत इस बात पर तो विवाद हो ही सकता है कि इस तरह की प्रक्रियाएं दूसरे जानवरों में उसी तरह मिलती हैं अथवा नहीं जैसी मनुष्यों में मिलती हैं और क्या वे वास्तव में विचार प्रक्रिया के ही रूप हैं या नहीं। प्राइस यह बताने का प्रयास करते हैं कि वे ऐसी ही हैं। वे कहते हैं कि उनमें भी एक तर्कभाव होता है, जैसे यदि तो' का एवं, या का। उदाहरण के लिए अप्रतीकात्मक स्तर पर भी कोई अर्थ तो रहीं न कहीं रहता ही है। इस बात पर प्रस्तुत उनके विचारों ने उनके रिव्यू करने वालों के कान खटखटाए हैं, किन्तु फिर भी यह कुक विल्सन की परम्परा में ही है कि तर्कशास्त्र को विचारों के आकार का सिद्धान्त माना गया है।

इस धारणा के अनुसार क्रिया इस बात मे निहित है कि उसके जरिए हम एक विशेष वग के पदार्थो का बोध होता है, जिन्हे सदर्मानुसार समष्टियों, धारणाओं या अमूत विचारो की सना दी जाती रही है । वे यह बताने का प्रयास करते हैं कि हम धारणाओ का प्रयोग कर सकते हैं । हम इस बात म सहमत हैं कि विचारणा को सही रूप म बोध माना गया है चाहे इन धारणाओ का कोई स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख हो या नही । उनका विचार सिद्धान्त धारणाओ के सक्रिय होने का विवरण मात्र है । परसेप्शन म उनकी दृष्टि मूलत सघटनवादी रही है—जिस प्राइस सघटनात्मक सत्य मानते हैं । बार बार सोचने की प्रक्रिया मे वे उसी पर बल देते है, जबकि सामान्य तौर पर प्राग्मावी सिद्धान्तो के फेर म इनकी आवश्यकता का भी बलिदान कर दिया गया है । फिर भी प्राइस की रचनाए परम्परासम्मत ही लगती हैं, क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत नए भेद कुक विलसन द्वारा रचित स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेंस म पहले ही आ गए हैं । कुक विलसन के तकशास्त्र के अनुयायी चाहे न्यून रहे हों किन्तु आक्सफोड मे विकसित हुए सिद्धान्तों मे उनकी आत्मा का प्रभाव निरन्तर गतिमान ही है ।

अध्याय ११

नव-यथार्थवादी विचारक

वर्तमान शती के प्रारंभिक वर्षों मे यह सोचना भी संभव नही लगता था कि यथार्थवाद के प्रभाव को बौद्धिक रूप से कम किया जा सकेगा। यह वास्तव मे एक बेहूदा पूर्वाग्रह था। ब्रेण्टानो एवं मीनाग ने यह संकेत दिया था कि जिसे हमारा मस्तिष्क जानता है वह उस मानसिक क्रिया से भिन्न है जिसके जरिए उसे जाना जाता है। मच और उनके बाद जेम्स ने तो यदि इन्हे आत्मपरकवाद की ओर यथार्थवादी भावभूमि पर अग्रसरित हुए मानलें, कम से कम इस बात से इन्कार किया था कि तात्कालिक रूप से जिसका प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भी एक मानसिक अवस्था सी है। और तब रसेल द्वारा समर्थित मूर ने उन सभी स्थापनाओं का खण्डन किया था जिन्हे ब्रेडले जैसे प्रत्ययवादियो ने तथा मिल जैसे संघटनवादियो ने अखण्डनीय कहकर स्थापित किया था। उन्होने कहा था कि प्रत्यक्ष पदार्थों की सत्ता इस तथ्य मे निहित है कि वे देखे जा सकते हैं। जब यथार्थवाद उन बिखरी हुई प्रवृत्तियो को एक रूप देने मे लग गया जिन्हे समयान्तर मे मीनाग, मैंच एवं जेम्स द्वारा आविष्कृत किया गया था तब प्रत्ययवाद के विरुद्ध संघर्ष करने मे नव यथार्थवादियों ने मूर एवं रसेल का दामन पकडा था।

इंग्लैण्ड मे नव यथार्थवाद को एक मौलिक सिद्धान्त का रूप देने वालो मे टी० पी० नन[1] का नाम लिया जा सकता है। शिक्षा शास्त्री के रूप मे विख्यात इन महाशय ने दर्शन पर बहुत कम लिखा-किन्तु वह थोडा ही अपनी सीमित आयामो का तोडकर विचार के इतिहास मे व्यापक प्रभाव डालने वाला रहा है। विशेषत आर सकेन्डरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डेण्ट आव परसेप्शन ?[2] नाम से संयोजित गोष्ठी

---

1 यथार्थवाद पर सामान्य तौर पर देखें आर० आई० पी० (1938), आर० बी० परी, प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेंसीज (1912) आर० पी० ग्रेमर ला थ्योरी दे ला कोनाइसां चज ल निओ रीअलिस्टि एंग्लियाइ (1928), एवं ला निओ रिअलिज्मे अमेरिकाइने (1920), आर० डब्लू० सलस करेण्ट रीअलिज्म इन ग्रेट ब्रिटेन एण्ड यूनाइटेड स्टेटस (मानिस्ट 1927, ए० के० रोजर्स इंग्लिश एण्ड अमेरिकन फिलोसोफी सिंस 1800 (1922), एल बोमन क्रिटिसिज्म एण्ड कान्स्ट्रक्शन इन द फिलोसोफी आव द अमेरिकन निओरीअलिज्म (1955)

2 पी० ए० एस० 1909, शिलर ने उनके साथ गोष्ठी मे भाग लिया था। द्रष्टव्य नन की पुस्तक द एम्स एण्ड एचीवमेण्टस आव साइण्टिफिक मेथड (1907)

इस धारणा के अनुसार क्रिया इस बात मे निहित है कि उसक जरिए हम एक विशेष वग के पदार्थो का बोध होता है, जि ह सदर्मानुसार समष्टियो धारणाओं या अमूत विचारो की सना दी जाती रही है। वे यह बताने का प्रयास करते हैं कि हम धारणाओ का प्रयोग कर सकते हैं। हम इस बात मे सहमत हैं कि विचारणा को सही रूप म बोध माना गया है चाहे इन धारणाओ का कोई स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख हो या नही। उनका विचार सिद्धा त धारणाओ के सक्रिय होने का विवरण मात्र है। परसेप्शन म उनकी दृष्टि मूलत सघटनवादी रही है–जिस प्राद्स सघटनात्मक सत्य मानत हैं। बार बार सोचने की प्रक्रिया मे वे उसी पर बल देते है जबकि सामा य तौर पर प्राग्मावी सिद्धान्तो के फेर म इनकी आवश्यकता का भी बलिदान कर दिया गया है। फिर भी प्राइम की रचनाए परम्परासम्मत ही लगती हैं, क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत नए भेद कुक विल्सन द्वारा रचित स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरे स मे पहले ही आ गए हैं। कुक विल्सन के तकशास्त्र के अनुयायी चाहे न्यून रहे हो कि तु आक्सफोड मे विकसित हुए सिद्धान्तो मे उनकी आत्मा का प्रभाव निर तर गतिमान ही है।

अध्याय ११

नव-यथार्थवादी विचारक

वर्तमान शती के प्रारंभिक वर्षों में यह सोचना भी संभव नहीं लगता था कि यथार्थवाद के प्रभाव को बौद्धिक रूप में कम किया जा सकेगा। यह वास्तव में एक बेहूदा पूर्वाग्रह था। ब्रेंटानो एवं मीनोंग ने यह संकेत दिया था कि जिसे हमारा मस्तिष्क जानता है वह उस मानसिक क्रिया से भिन्न है जिसके जरिए उसे जाना जाता है। मच और उनके बाद जेम्स ने तो यदि इन्हें आत्मपरकवाद की ओर यथार्थवादी भावभूमि पर अग्रसरित हुए मानलें कम से कम इस बात से इंकार किया था कि तात्कालिक रूप से जिसका प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भी एक मानसिक अवस्था सी है। और तब रसेल द्वारा समर्थित मूर ने उन सभी स्थापनाओं का खण्डन किया था जिन्हें ब्रेडले जैसे प्रत्ययवादियों ने तथा मिल जैसे संघटनवादियों ने अखण्डनीय कहकर स्थापित किया था। उन्होंने कहा था कि प्रत्यक्ष पदार्थों की सत्ता इस तथ्य में निहित है कि वे देखे जा सकते हैं। जब यथार्थवाद उन बिखरी हुई प्रवृत्तियों को एक रूप देने में लग गया जिन्हें समयान्तर में मीनांग मैच एवं जेम्स द्वारा आविष्कृत किया गया था तब प्रत्ययवाद के विरुद्ध संघर्ष करने में नव यथार्थवादियों ने मूर एवं रसल का दामन पकड़ा था।

इंग्लैण्ड में नव यथार्थवाद को एक मौलिक सिद्धान्त का रूप देने वालों में टी॰ पी॰ नन[1] का नाम लिया जा सकता है। शिक्षा शास्त्री के रूप में विख्यात इन महाशय ने दर्शन पर बहुत कम लिखा—किन्तु वह थोड़ा ही अपने सीमित आयामों को तोड़कर विचार के इतिहास में व्यापक प्रभाव डालने वाला रहा है। विशेषत आर सैकंडरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डण्ट आव परसेप्शन ?[2] नाम से संयोजित गोष्ठी

---

1 यथार्थवाद पर सामान्य तौर पर देखें आर॰ आई॰ पी॰ (1938), आर॰ बी॰ पैरी प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेंसीज (1912), आर॰ पी॰ क्रेमर ला प्यारी दे ला कोनाइसा चज ल निओ रीअलिस्टि ए ग्लिपाइ (1928), एव ला निओ रिअलिज्मे अमेरिकाइने (1920), आर॰ डब्लू॰ सेलर्स करेण्ट रीअलिज्म इन ग्रेट ब्रिटेन एण्ड यूनाइटेड स्टेटस (मानिस्ट 1927, ए॰ के॰ रोजर्स इंग्लिश एण्ड अमेरिकन फिलासाफी सिंस 1800 (1922), एल वोमन क्रिटिसिज्म एण्ड कास्ट्रक्शन इन द फिलोसोफी आव द अमेरिकन निओरीअलिज्म (1955)

2 पी॰ ए॰ एस॰ 1909, शिलर ने उनके साथ गोष्ठी में भाग लिया द्रष्टव्य नन की पुस्तक द एम्स एण्ड एचीवमेण्टस आव साइंटिफिक मैथड (-)

मे उनका योगदान इ ग्लण्ड म काफी समय तक चर्चा का विषय रहा और बर्ट्रेण्ड रसल की चचल चतना को भी इसने प्रभावित किया। उसके पश्चात् अमरीका मे उसका प्रभाव स्वीकार किया गया। अपन निबध म नन ने दो स्थापनाए की थी (१) कि प्राथमिक एव सतही दोनो प्रकार क गुण वस्तु म मौजूद होते हैं चाहे उ हे देखा जाय या नही तथा (२) गुण दख जाने के साथ ही अस्तित्व मे आते है।

उनकी विचारधारा का अधिकाश शास्त्रीय है स्टाउट क आरम्भिक निबधो[1] को उन्होने अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। स्टाउट का विचार था कि वे यह मानकर प्रारम्भ कर सकते हैं कि हमारे अनुभव मे कम स कम कुछ तो ऐसे तत्व है ही जिनका अस्तित्व केवल हमारे द्वारा देखे जाने पर ही है। जसे कि दद। किन्तु नन की इस सबध म यह आपत्ति है कि ठीक भौतिक पदाथ की ही भाति दद भी हमारे सम्मुख कठिनाइया प्रस्तुत कर देता है। हमारे बोध के माग मे रोडे अटका देता है और सक्षेप म वह भी ऐसी वस्तु हैं जिससे हमारा पाला पडता है। इसलिए दद भी मन से परे की कोई वस्तु है, जिसस मेरा मन बहुत प्रकार से जुड सकता है। यह स्वीकारने से मना करना कि जो कुछ भी हम अनुभव करते हैं वह अपने होने के लिए इस तथ्य पर आश्रित है कि उसका अनुभव किया जाए और यही नव यथाथवादियो का मूलभूत आधार था।

स्टाउट ने यह भी बताया था कि पदाथ के माध्यमिक गुण कवल अनुभव क उपकरण के रूप मे ही प्रस्तुत होते हैं। यदि हम कांच क एक प्याल को विविध प्रकार की रोशनी म दखें और इस बात को तूल न दें कि कही प्याला ता बदल नही दिया गया, इसी प्रकार यदि बहुत से देखने वाल एक साथ पानी स भरे एक प्याल म हाथ डालें तो उष्णता क विभिन्न अशमानो की बात करग जबकि दरअसल ऐसी कोई घटना नही घटी है कि पानी क तापक्रम म बदल आ जाए। य तथ्य यह जाहिर करत हैं कि माध्यमिक अवस्थाए कवल ऐन्द्रिय सवेदन के धरातल पर प्रकट होती हैं और हमारे प्रत्यक्षीकरण का उपकरण बन जाती हैं। य भौतिक पदार्थों की वास्तविक दशाए नही हैं।

नन का इस सबध म दिया गया उत्तर असमन्वयवादी है। ऐन्द्रिय सवदन एव वास्तविक दशाआ म भेद करना इनके अनुसार समीचीन नही है। काच के एक प्याल पर विभिन्न रोशनियो म चढ़े विभिन्न रगसाय भी प्याली की वास्तविक

दशाएं ही हैं। और पानी की विविध प्रकार से अनुभव की गई उष्णता भी पानी की वास्तविक दशाएं हैं। सामान्य मनुष्य और एक वैज्ञानिक दोनों किसी वस्तु के विषय में एक ताप तथा एक रंग की धारणा रखते हैं, क्योंकि अन्यथा वस्तु की जटिलता उन्हें पराजित कर देगी। नन की दृष्टि में तथ्य तो यही है कि एक वस्तु में एक तरफ की उष्णता नहीं होती है और उसकी ये उष्णताएं एक सीमित दिक में ही विद्यमान नहीं हैं किन्तु विभिन्न स्थानों में भी ये वस्तु के चारों ओर विद्यमान रहती हैं। एक वस्तु एक ही इंच की दूरी पर जाकर अधिक गर्म हो सकती है और एक फुट की दूरी पर जाकर भी नहीं हो सकती और किसी ठण्डे हाथ को किसी गर्म हाथ की अपेक्षा वही वस्तु अधिक गर्म लग सकती है। इसी तरह एक रोशनी में दूसरी की अपेक्षा कोई वस्तु अधिक या कम पीली नजर आ सकती है। इसके विपरीत कुछ भी सोचना सामान्य जीवन में समझी गई वस्तु सम्बन्धी धारणा एवं अनुभव से समझी गई वस्तु के बीच एक उलझन पैदा करना है।

नन के 'प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त' में तब भौतिक पदार्थों का सामान्य बोध एक दम परिवर्तित हो जाता है। अपने यथार्थवाद के लिए उसे यही मूल्य चुकाना पड़ा। एक वस्तु अब प्रकट रूपों का आकलन है चाहे प्रत्येक रूप उसे मन से स्वतन्त्र ही क्यों न हो जिसके समक्ष वे प्रकट हुए हैं।

नन का यथार्थवाद इस स्थल पर आकर बहुत कुछ मच के संघटनवाद से मेल खाता है यही बात अमरीकी नव यथार्थवाद के विषय में कही जा सकती है।

स्काटलैण्ड का सामान्य बुद्धि दर्शन जिसके विषय में हम पहले ही विचार कर चुके हैं उन्नीसवीं शती के अधिकांश भाग तक अमरीकी विश्वविद्यालयों पर छाया रहा। और उसका प्रभाव न तो जेम्स के अर्थ क्रियावाद से ही कम हुआ और न रायस के प्रत्ययवाद से। सर्वाधिक उल्लेखनीय व्यक्ति पीयर्स को भी टोमस रीड की सूक्ष्म और सन्तुलित बुद्धि की प्रशंसा करनी पड़ी थी। उनकी सामान्य बुद्धि की विवेचना[1] रीड के मत के प्रसारण में काफी सहायक रही। इसके बाद जब पीयर्स

---

1 पीयर्स की दृष्टि में सामान्य बोध ही हमारा प्रारम्भिक बिन्दु होना चाहिए यहां तक तो पीयर्स और मूर दोनों सहमत हैं। किन्तु विशेष सामान्य बोध का सिद्धान्त पीयर्स के अनुसार गलत भी तो हो सकता है यद्यपि यह सत्य है कि अपने व्यापक रूप में सामान्य बुद्धि की बात ठुकराई तो जा ही नहीं सकती। देखें आर० एम० चिनोम द्वारा लिखित व फालिबिलिज्म एण्ड बिलीफ शीर्षक में स्टडीज इन फिलोसोफी आफ सी० एस० पीयर्स (सम्पादक पी० पी० वनर एवं एफ एच यंग 1952) में लिखा निबंध। जे० बूचलर चार्ल्स पीयर्सेस एम्पीरिसिज्म (1939), डब्ल्यू० बी० गली कृत पीयर्स एण्ड प्रेग्मेटिज्म (1952)

न रीड की आलोचना की तो वह यथाथवादी दृष्टिकोण स ही । उ होन बताया कि रीड ने प्रत्यक्षीकरण क प्रतिनिधित्व सब धी कार्टेजियन सिद्धा त स स्वय को मुक्त नही किया है । 1896 म पीयस ने लिखा कि वस्तुए अपन आप म क्या हैं इनका सीधा अनुभव हम हाता है । इमसे अधिक गलत और क्या हो सकता है कि हम केवल हमारे विचारो का ही अनुभव करते हैं । निस्स देह यह सब झूठो का सर्वोच्च बुज है ।

द वल्ड एण्ड द इण्डीविजुअल (1900) म रोयस ने अमेरीका की यथाथवाद के प्रति बढती हुई रुचि का प्रबल विरोध किया था । यथाथवाद को वहा स्वत त्रता के प्रहरी के रूप म परिभाषित किया जाने लगा था और इस परिभाषा स रोयस को चिढ थी । *तथ्य का जगत् उनकी दृष्टि म हमारे भौतिक जगत् सबधी* ज्ञान से भिन्न है । इस ससार स यदि हमारा मस्तिष्क विलीन भी हो जाए तो भी उस जगत् मे आगे किए जाने वाले भौतिक वस्तुओ सबधी तथ्यात्मक अनुभवो म कोई अन्तर नही आएगा । इसके प्रतिवाद मे रोयस द्वारा दिए गए लम्बे तक, जो ठोस एव चातुयपूण हैं, यह दिखाने के लिए हैं कि यदि स्वत त्रता ही अन्तिम स्थिति है मात्र एक दिखावा नही तो ज्ञान के सम्ब ध सहित सारे अ य सबध सद्धान्तिक रूप से असमव हैं । ज्ञान की, पदार्थों की, स्वायत्तता को कायम रखने मे ही यथाथवाद का अ त हो जाता है—और रोयस के अनुरूप ऐसे ज्ञान की मौलिक समावना ही नष्ट हो जाती है ।

रोयस के प्रहार ने अपने पहल के अनुयायियो म से दो को एकदम इसका उत्तर दने के लिए प्रेरित कर दिया । इसम एक थे आर० बी० परी तथा दूसरे डब्लू० पी० मो टेग्यू ।[1] सापेक्षता एव स्वायत्तता पूणत समचारिणी हैं, दानो यह बात तो मान गए ।

यह बताना सरल नही है कि वस्तुत स्वायत्तता कहा है ? इसी बात को लकर इ गलण्ड म शिलर न नन की आलोचना की थी । इस स्वत त्रता या स्वायत्तता की सतोपजनक व्याख्या करनी ही नव यथाथवादियो के सम्मुख प्रस्तुत हुई दो प्रमुख समस्याओ म से एक थी । दूसरी समस्या बिना यथाथवाद को त्यागे यह

1 प्रोफेसर रोयसेज रेफ्यूटेशन आव रीयलिज्म म माटेग्यू पर एव परी पर लिखा गया निबध (पी० आर० 1902 एव मोनिस्ट 1902 क्रमश) तुलना के लिए देखें जेम्स द्वारा दूषित बुद्धिवाद पर किया गया प्रहार देखे माण्टेग्यू कृत स्टोरी आव अमेरिकन रीएलिज्म फिलोसोफी 1937 पुन मु द्रित ट्वेण्टीयथ से चुरी फिलोसोफी सम्पादक डी० डी० रूस 1943 जे० पी० 1954 म क्रमश देखें परी डब्लू० पी० मोण्टेग्यू एण्ड द न्यू रियलिस्टस ।

स्पष्ट करना था कि यथार्थ का भ्रम से किस तरह भिन्न किया जाए। अब तो वह चट्टान जिस पर बहुत से व्यक्तियों ने आशान्वित होकर यथार्थवाद को गोद दिया था अब हिलने लगी है।

अमरीका की दार्शनिक पत्रिकाएं इस शताब्दी की पहली दशाब्दी में ऐसे बहुत से प्रयासों से भरी हुई हैं जिनसे एक ऐसे यथार्थवाद का खाका तैयार किया जाय तो इन समस्याओं का संतोष-प्रद हल निकल सके। किन्तु नव यथार्थवाद उस समय तक परिपक्व नहीं हुआ जब तक 1912 में द न्यू रियलिज्म नाम से एक सहयोगी ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके सहयोगी लेखकों में ई० बी० होल्ट डब्लू० टी० मारविन, डब्लू० पी० मोण्टग्यू, आर० बी० परी डब्लू० बी० पिटकिन एवं ई० जी० स्पाउल्डिंग थे।

एसेज इन फिलोसोफीकल क्रिटिसिज्म में नव यथार्थवाद को प्रत्ययवाद का यथार्थवादी समान धर्मी माना गया है। बहुत से दार्शनिक जो प्रत्येक बात पर तो एक मत नहीं थे—कि दर्शन की ओर प्रवृत्त होने की अब उनकी दिशा कम से कम एक हो गयी है और इसके जरिए वे अपने विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं। यह एक घोषणा पत्र[1] सा ही है जिसका एक लम्बा आमुख लिखा गया है, जिसका समापन संक्षिप्त नीति चर्चाओं की शृंखला से होता है। दर्शन जगत् अब इस संबंध में अनजानी होने का बहाना नहीं कर सकता कि यथार्थवाद की एक नई एवं क्रांतिकारी आत्मा अभी भी काफी दूर थी।

तो भी बहुत से मामलों में नव यथार्थवाद का योगदान केवल कथनों के चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। यह बात रिफ्यूटेशन आफ आइडियलिज्म नाम से मूर द्वारा लिखित पुस्तक में देखी जा सकती है। और प्रत्ययवादी सिद्धान्त के विरुद्ध विश्लेषण की वैधता की वकालत करना जिसमें यह कहा गया था कि सत्य ही पूर्ण है तब यथार्थवाद एक माध्यम के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके जरिए अमरिका में रसल के दर्शन का प्रभाव एक दम कम हो गया। तो भी हमें अंग्रेजी दर्शन पर हुए नव यथार्थवाद के प्रभाव को अति वादी करके नहीं देखना चाहिए। रसल ने भी अपनी विचारधारा के बहुत से मूल भूत सिद्धान्तों को विलियम जेम्स से ग्रहण किया था जिसे उन्होंने एकेश्वरवाद के सभी आलोचकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना था।

---

1 दर्शन में साहित्य में तथा राजनीति में यह घोषणा पत्रों का युग था। द न्यू रियलिज्म एवं इमेर्जिंग एप्रोच टु फिलोसोफी में समानता के बहुत से बिन्दु हैं। जी० राइल कृत आन टेकिंग साइडस (फिलोसोफी), इस विषय में मतान्तर के लिए देखें।

द न्यू रियलिज्म की इस महत्वपूर्ण स्थापना को कि संबंध बाहरी हैं जेम्स ने पहले ही बता दिया था। मारविन ने इसी सिद्धान्त को अद्वितीय क्षमता से सचित किया था। इस तर्क वाक्य में कि पद ग्र ब से र नामक संबंध के कारण जुड़ा है ग्र र किसी भी अंश में ब का निर्णायक तत्व नहीं हो जाता। और न र ब ग्र के ही निर्णायक और न र ही ग्र या ब का निर्माता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञान चूंकि एक संबंध है ज्ञान ज्ञाता के संबंध के कारण प्रकट नहीं हुआ है और न ज्ञाता ही ज्ञान के संबंध के कारण है।

यहां तक तो नव यथार्थवादी भी सहमत थे—तो भी उनकी सहमति उपर्युक्त प्रकार के ज्ञाता एवं ज्ञान की व्याख्या के लिए वैसी की वैसी नहीं थी। जब रसल द्वारा नव यथार्थवाद का पक्ष लिया गया तो उनका संकेत वहां असम्पृक्त एकेश्वरवाद की भावभूमि पैरी एवं होल्ट ने मैच, जेम्स और नन के प्रभाव में आकर तैयार की थी।[1] किन्तु मोण्टेग्यू जैसे अन्य नव यथार्थवादी इस असम्पृक्त एकेश्वरवाद के प्रबल आलोचक थे।

जेम्स के प्रगतिशील अनुभववाद की अति प्रगतिशील आत्मा को होल्ट परी द्वारा प्रस्तुत यथार्थवादी प्रकार में थोड़ा अल्प कर दिया गया है। जेम्स ने इस का खण्डन किया था कि चेतना नाम की कोई सत्ता अस्तित्व में है। चेतना के आग्रही केवल एक प्रतिध्वनि के भक्त हैं और क्षण क्षण में विलीन होती हुई आत्मा की सत्ता की धूमिल अफवाह को दर्शन की हवा पर आरूढ़ करना चाहते हैं। दरअसल केवल अनुभव ही अस्तित्व में हैं 'जानना' विभिन्न प्रकार के अनुभवों में पारस्परिक संयोग से ही प्रकटता है। एफ० जे० ई० वुडब्रिज[2] ने ही इस पर यह आपत्ति की

---

1 जेम्स की विचारधारा की ओर सर्वाधिक प्रवृत्तिशील एवं विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी करने वालों में पेरी का नाम सबसे पहले आता है। उन्होंने मैच द्वारा लिखे गए ग्रन्थ एनालिसिस आव सेन्सेशन्स (1914) को वर्तमान यथार्थवाद का एक शास्त्रीय ग्रन्थ माना था। द्रष्टव्य होल्ट कृत द कान्सेप्ट आव कोन्शसनेस (1914) एवं परी कृत प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेन्डेन्सीज।

2 वुडब्रिज को नववादी दल में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिलने के बावजूद भी उन्होंने उसे अस्वीकृत कर दिया। उन्होंने उनके निबंध द कान्सेप्ट आव कोन्शसनेस (जे० पी० 1905) में जेम्सोत्तर यथार्थवाद की झलक देखी थी जो उनसे मेल खाती थी। द्रष्टव्य उनके द्वारा कान्टेम्पोरेरी अमेरिकन फिलोसोफीज (अंक २) में प्रस्तुत अपने कन्फेशन्स। उनका प्रभाव मुख्यतः उनके शिक्षण में मिलता है तथा यदाकदा लिखे उनके निबंधों में भी। उनकी प्रमुख रचना द रीएलिज्म आव माइण्ड (1921) है। उनके दर्शन का संक्षिप्त विवरण प्राप्त करने के लिए देखें एच० टी० कोस्टेलो कृत द नेचरलिज्म आफ फ्रेडरिक वुडब्रिज (नेचुरलिज्म एण्ड द ह्यूमन स्पिरिट सम्पादक वाई० एच० क्रिकोरियन 1944)।

थी। अनुभव की परिभाषा केवल यह कहकर दी जा सकती है कि यह वह अवस्था है जिसके विषय में एक चेतनाशील प्राणी सचेत होता है। चेतना की चर्चा करना ही उसके पहले से होने को प्रमाणित करता है। परी एवं होल्ट ने वुड्ब्रिज के विवेचन में कोई दम देखा और उन्होंने अनुभव को चेतना में कोई स्पष्ट या अस्पष्ट सबंध बनाये बिना परिभाषित किया।

इस उद्देश्य के लिए उन्होंने जेम्स के दर्शन की बहुमुखी समता का आश्रय दूसरी तरह से लिया। जेम्स ने इस बात पर आग्रह व्यक्त किया था और यह उनकी विचारधारा की प्राथमिक स्थापना भी थी, जिसे उन्होंने सर्वप्रथम अपने निबंध स्पेंसर्स डेफीनीशन आव माइण्ड (1878) में प्रवर्तित करते हुए कहा था कि मनुष्य एक जीव है–जिसे अपने आप को वातावरण में बनाए रखना पड़ता है जो उसके होने के कभी तो अनुकूल रहता है और कभी प्रतिकूल। परी ने जेम्स से मानवी शरीर रचना का यह विचार ग्रहण किया तथा उसे दृष्टिसिद्धान्त के रूप में संगठित किया, जिसे बर्गसा ने भी अपनी कृति मैटर एण्ड मैमोरी में प्रयुक्त किया था। बर्गसा का 'कथन था,' एक मस्तिष्क का मूल विषय उस वातावरण के एक भाग से निर्मित होता है जिसकी ओर क्षण क्षण में उसका ध्यान चला जाता है। परी के निष्कर्षानुसार किसी जीव द्वारा दिये गये प्रवृत्तिसूचक रेस्पांस का नाम ही मन है। एक मेज' के प्रति हमारी चेतना उदाहरण के लिए इस तथ्य पर निर्भर करती है कि हमारा नाड़ी संस्थान मेज की ओर प्रवृत्त हो गया है। किसी भी सत्ता के होने का भाव यहां चेतना द्वारा व्यक्त नहीं होता मानसिक क्रिया का कोई प्रकार भी नहीं।

इस प्रकार व्यक्ति चेतना के निजी तत्व एवं विज्ञान के सामान्य जगत् का भेद होल्ट-परी के मतानुसार निरर्थक है। जेम्स ने तो अपने निबंध हाउ टू माइण्डस केन नो वन थिंग (जे० पी० 1905) में यह सुझाया था, कोई अनुभव मेरा उसी समय होगा जब उसका मेरा होने का अनुभव किया जाए और तुम्हारा उस समय होगा जब उसे वैसा अनुभव किया जाए। इस तरह इसी एक अनुभव के लिए मेरा और तुम्हारा होने में कोई दिक्कत नहीं है। इस बिंदु को आधार मानकर परी अतिरिक्त विशेषता के भ्रम का खण्डन करते हैं। जिसके अनुसार एक वस्तु जो तुम्हारे मन में है मेरे मन में नहीं हो सकती। यदि यह तथ्य नहीं होता कि मन के तत्वों का परस्पर टकराव होता है तो किसी प्रकार का मानवी व्यवहार संभव नहीं होता। तो भी निसंदेह परी यह स्वीकार करते हैं कि अन्य लोगों के लिए यह मालूम करना कि मैं क्या सोच रहा हूं जरा मुश्किल अवश्य होता है। यही कारण है कि ऐसा सुझाव दिया जाना आसान है कि मेरे मन में भाव मेरे अपने हैं किन्तु यह मुश्किल ऐसी नहीं है कि असंभव लगे। यहां तक कि सबसे मुश्किल अवस्था में जहां केवल

मैं कुछ स्मरण कर रहा हू एक सतर्क द्रष्टा यह अ दाजा लगा सकता है कि मेरे मन म कौनसा भाव है ? 'मेर द्वारा लदन का स्मरण किया जाना ऐसे तत्वों का बना है जिसे मेरी केन्द्रीय चतना प्रक्रिया, मेरे सेरब्रम क अन्दर निरन्तर हो रहा मशोधन तथा मेरी मौलिक समझ जो व्यावहारिक और सवेदना के स्तर पर लदन से जुडी है और तब इन सबका मिला जुला रूप लदन बन गया है कम स कम सद्धान्तिक रूप स सब सामा य क लिए मेर चेहरे म उभरन वाली इन विभिन्न अवस्थाओ का ज्ञान प्राप्त किया जाना सभव है।

यहा आकर असपृक्त एकेश्वरवाद की मूलभूत स्थापनाओ का स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक है। यहा चेतना का त्याग कर दिया गया है और उसी तरह सजगता के कम एव ऐन्द्रिय सवदन का भी। कम से कम अब वे वह अर्थ नही रखते जो मूर के द्वारा प्रवर्तित किया गया था। वस्तुपरक तथ्यो के अतिरिक्त कुछ भी अस्तित्व म नही है। जानना ऐसे तत्वो का पारस्परिक सबध है। यह सबध इसलिए विचित्र भी है क्यो कि इनमे से कम म कम प्रस्तुत दो सबधित मदो मे से एक तो अवयवी प्रक्रिया को व्यक्त करता हुआ होना चाहिए।

शीघ्र ही हमारे होठो पर एक सामान्य आपत्ति आ खडी होती है। तब गलती और मनश्छल का क्या होगा ? गुलाबी चूहे तथा मुडी हुई छडिया क्या वस्तुपरक तत्व हैं ? होल्ट इस निष्कर्ष के प्रकट हो जाने के प्रति पूर्णत सचेत हैं। प्रत्येक तत्व होने की सर्वव्यापी समष्टि मे उपजीवी क रूप मे रहता है। किन्तु कुछ तत्व तब हमारी दृष्टि म ही सत्य तथा कुछ असत्य हो जाते हैं। होल्ट का इस सबध म यही उत्तर है कि किसी अनुभव के दौरान सत्य का कैसा भी क्षीण स्वरूप अथवा प्रबल स्वरूप क्यो न प्रकटा हो, मुझको इसकी चर्चा मे रुचि नही है।

यह उत्तर बहुत स्वाभाविक है क्योकि होल्ट की दृष्टि म सत्य असत्य का भेद माध्यमिक परम्परा के कारण ही है। हम जुडे हुए प्रत्यक्षीकरणो से एक प्रणाली का निर्माण कर लेते हैं जिसे ह्यूम की दृष्टि म तो उस सत्य कहकर गौरव प्रदान करना हुआ, किन्तु होल्ट के अनुसार यदि ऐसी प्रणाली म कही सत्य का स्थान है तो उसे स्वीकार करने, तथा यदि वह असत्य है तो उसे असत्य कहकर बहिष्कृत करने म कोई उज्र नही होना चाहिए। रसेल ने इसी बिन्दु को बडे नटखटेपन स प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार कुछ प्रत्यक्षीकरण हमारे समक्ष किसी वस्तु की 'अधिकृत कथा' ही हमारे समक्ष रखते हैं और उसक स्थायी एव गरिमामय व्यवहार की झाकी प्रस्तुत करते हैं। किन्तु कुछ प्रत्यक्षीकरण बहुत बिगडे दिल होते हैं असामान्य होते हैं और उस समय तक महज विस्मरणीय होते हैं जब तक कि कोई ज्ञान मीमासक उनके लिए दलाल होने का दावा नही कर देता। होल्ट के अनुसार

एक दार्शनिक के पास अपना विवेकशील मस्तिष्क इन टुटपुंजे बातों में लगाने के लिए समय नहीं है।

मामले पर सामान्य चर्चा करें तो हम लगेगा कि एक पेड के उन वास्तविक तत्वों में जो उसके अंश हैं तथा उनमें जो हमारी दृष्टि से उसमें देखे गए हैं और जो असत्य हैं तथा आत्मपरक हैं दरअसल कोई अंतर तो है ही। किन्तु होल्ट, नन का अनुकरण करते हुए कहते हैं कि पेड से संबंधित असंख्य ज्यामितिक आकारों को जिनमें से किसी एक के प्रति भी हमारा नाडी संस्थान संवेदित हो सकता है, को पेड का एक तत्वांश कहे जाने का पूर्ण अधिकार है-चाहे व्यावहारिक दृष्टि से हम किसी आकार को ही वस्तु का सही स्वरूप क्यों न मान लें। वस्तु अभाव पेड से संबंधित सही अवस्थाएं ही हैं। और पेड में तथा इन संबंधित अवस्थाओं में भेद किए जाने का कोई निश्चित मानदण्ड है भी नहीं। नन की दृष्टि में तव होल्ट परी द्वारा किया गया इस सामान्य बोध सिद्धान्त का बचाव कि प्रत्यक्षीकरण के पदार्थ द्रष्टा से भिन्न होते हैं हमारी वस्तु की स्वभाव संबंधी धारणा को ही व्यक्त करता है।

अमरीकी नव यथार्थवाद की इसी आधार पर कटु आलोचना हुई। परी एवं होल्ट के द्वारा प्रस्तुत ज्ञान मीमांसा पर पहले से ही कुछ शंकाएं की जाने लगी थी। इस तरह नव यथार्थवादियों का सर्व प्रथम बना दल बिखर गया। होल्ट एक सम्माननीय मनोवैज्ञानिक हो गए परी एक नीति शास्त्री, पिटकिन ने अपनी प्रसिद्धि इस बात पर पाई कि उन्होंने लोगों को 40 साल की अवस्था प्राप्त करने पर भी खुशहाल हो जाने का मार्ग बता दिया था। माण्टेग्यू ने दर्शन चिंतन करना जारी रखा किन्तु उनकी प्रणाली निश्चित ही नव यथार्थवादी नहीं थी। न मारविन और न स्पाल्डिंग ने ही दर्शन के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण योग दिया।[1] तो भी

---

1 माण्टेग्यू ने यथार्थवाद, आत्मपरकतावाद एवं विवेचनात्मक यथार्थवाद के समन्वय का प्रयास किया था। यह उस अमरीकी वृत्ति का ही परिचायक है जिसके अनुसार विभिन्न वादों को समन्वित करके देखने का भाव प्रकट होता है। कन्टेम्पोरेरी अमेरीकन फिलोसोफी का अध्ययन करने से पता लगता है कि वहां भी समस्यामूलक यथार्थवाद, व्यक्तिपरक यथार्थवाद, अनुभववादी आदर्शवाद, अस्थायी यथार्थवाद जैसे शीर्षकों की बहुतायत मिलेगी। मूलतः एक अमरीकी दार्शनिक अपने को एक ब्रितानी दार्शनिक से, जो स्वयं को वादों के झमेले से दूर रखना चाहते हैं वादों के सहारे ही नये वाद की प्रतिष्ठा करने में सुरक्षित महसूस करते हैं। समाज शास्त्रियों को इस में अन्तर शायद विचार का कोई आधार मिल जाए। मोण्टेग्यू की ज्ञानमीमांसा का सारांश द वेज आव नोइंग (1925 नामक ग्रन्थ में दिया गया है। इस पुस्तक के अन्त

का वार्तालाप, जिसमे इस आ दोलन का अपना विशिष्ट प्रभाव तो रहा ही जसा कि पेरी रीअलिज्म इन रेट्रोस्पक्ट (सी०ए०पी०,2) मे यह सुझात है कि कार्टेजियनवाद के विरुद्ध सघष करने के लिए यह एक महत्वपूण दल तयार हो गया था। नव यथाथवाद ने द्वद्ववाद पर भी इसलिए प्रहार किया था कि उस एक अनुभववादी सिद्धान्त के निर्माण म सहायता मिलती थी। पारमार्थिक प्रत्ययवाद के द्वारा प्रस्तुत कोई स्पष्टीकरण अब अधिक प्रभावशाली नही लगता था। नव यथाथवादी विचारधारा के प्रवत्त न क माग म चाहे जितनी बाधाए रही हो, किन्तु कोर्टिजियन वाद तथा परमात्मवाद के विरुद्ध प्रस्तुत उनके प्रहारो म इसस कोई कमी नही आई। बहुत कम दाशनिक ही शायद आज यथाथवाद की सत्ता को हटाने के पक्ष म होगे।

द इमेर्जेसपेशन आव फिलोसोफी आफ एपिस्टेमोलोजी नामक ग्र थ रचकर मारविन ने नवयथाथ को सद्धान्तिक रूप देने म योग दिया था। यह एक अजीब ध्वनि प्रस्तुत करने वाला शीषक है। क्योकि यथाथवाद सामान्यत एक ज्ञानमीमासा तो था ही। किन्तु मारविन की दृष्टि म यथाथवाद की ज्ञान मीमासा इसलिए महत्वपूण है कि यह दाशनिक को तत्वदशन पर ही विचार करने की छूट देता है और तत्त्वदशन का वतमान समय तक उपलब्ध अनुभवो के सामान्यीकरण की प्रक्रिया कहकर स्वीकारता है। डकार्ट के समय से जिस तरह दाशनिक यह मानते रहे थे कि यदि हमारे सम्पूण ज्ञान हमारे मस्तिष्क द्वारा प्राप्त अनुभवो के ज्ञान के सकलन पर ही आधारित हैं तो यह निष्कष निकालना आसान है कि मानवी मन सबधी कोई जाच पडताल सत्य सम्ब धी किसी जाच पडताल से पहल की जानी आवश्यक है। और तत्व दशन के लिए ऐसी गोल मोल दृष्टि के निवारण म ही तत्वदशन सबधी मूल चर्चा बहक गई है। अनुभववाद म प्रस्तुत ज्ञान म मासा आवश्यक है। इस तरह मारविन की दृष्टि मे तत्ववादी ज्ञानमीमासा के चगुल से मुक्त हो जाते हैं।

ब्रितानी दाशनिक सेमुअल एलक्जेण्डर पर यह दायित्व रखा गया कि वे यथाथवादी तत्वदशन की रूपरेखा तयार करें। 1920 म उनकी पुस्तक स्पस टाइम

एक नव यथाथवादी विवेचनाशील यथाथवादी तथा एक प्रत्ययवादी न भाग लिया था-और जहा एक सच्चे यक्ति हाइलोनस की तरह मोण्टग्यू उनके पारस्परिक विवाद का समन्वय करने को उपस्थित थे वतमान शती क ज्ञान मीमासा सबधी मुबाधो पर प्रस्तुत हुई मूलभूत मानबिन्दुओ की चर्चा के लिए उपयोगी था। चाहे इनके दौरान हाइलोनस की दृष्टि सदव ही गहरी और सूक्ष्म रही हो। स्पाडिंग के लिए देखें द न्यू रशनजिज्म (1918) एव मारविन क लिए देखें ए फस्ट बुक इन मैटाफिजिक्स (1912)।

एण्ड डीटी प्रकाशित हुई। यह प्रकाशन एक ऐसी दशाब्दी के प्रारंभ में हुआ था जिसमें एक साथ बहुत से तत्वदर्शनों की स्थापना हुई थी। 1921 में मक्टेगट की पुस्तक द नेचर ग्राव एग्जिस्टेंस का प्रकाशन और व्हाइटहैड की प्रोसेस एण्ड रीअलिटी नामक पुस्तक 1929 में अपने मूल में द नेचर ग्राव एग्जिस्टेंस को नव हीगलवादी ग्रान्दोलन की एक कड़ी के रूप में रखा जा सकता है। जबकि प्रोसेस एण्ड रीयलिटी की भांति स्पेस टाइम एण्ड डीटी की पृष्ठभूमि में नव यथार्थवाद का स्तर था। यद्यपि यह पुस्तक ब्रेडले एवं बोसांके के प्रभाव से किसी भी भांति अछूती नहीं रही थी। इसके अतिरिक्त भी द स्पेस टाइम एण्ड डीटी तथा द नेचर ग्राव एग्जिस्टेन्स में एक मौलिक अन्तर है। मैक्टेगट एक ठोस निगमनात्मक तत्वदर्शन की रचना में सलग्न हैं जबकि एलक्जेण्डर उस जगत् का जिसमें हम रहते हैं, घूमते हैं और विचार करते हैं सीधासादा वर्णन प्रस्तुत करने में व्यस्त लगते हैं। उनके एक्सप्लेनेशन्स (माइण्ड 1921) नामक निबंध में वे इस दूरी तक भी यह स्वीकारने को तैयार हैं कि उन्हें वाद विवाद करना नापसन्द है। उनकी यह घोषणा एक दार्शनिक के लिए विचित्र सी लगती है। दर्शन विवरण से आगे बढ़ता है। तर्क का उपयोग वहां पर तथ्य के रूप को देखने के लिए होता है। उसी प्रकार जैसे एक जीवशास्त्री सूक्ष्मदर्शक यंत्र का प्रयोग करता है। अपने एक प्रारम्भिक निबंध सेन्सेशन्स एण्ड इमेजेज (पी० ए० एस० 1910) में इसलके साथ उनका संबंध बहुत साफ उभर आता है। उनकी प्रणाली यही है कि वे दार्शनिक पूर्वाग्रहों का निवारण करते चलते हैं और किसी प्रस्तुत अनुभव में वास्तव में क्या वर्तमान है यही बताने का प्रयास करते हैं। द नेचर ग्राव एग्जिस्टेन्स जो वाद विवादों से भरपूर है वह इस प्रस्तुति से जितनी दूर है उतनी कोई अन्य नहीं हो सकती।

एलेक्जण्डर की प्रणाली पठन एवं चर्चा की दृष्टि से उनकी पुस्तक द स्पेस टाइम एण्ड डीटी को एक कठिन ग्रन्थ बना देती है। बहुत से मामलों में तो वह एक दार्शनिक रचना की अपेक्षा साहित्यिक ग्रन्थ ही अधिक लगता है। वे एक दार्शनिक से ही तर्क की एक निरन्तर शृंखला बनाए रखने की अपेक्षा करते हैं जो विद्वत्ता से रंगी हुई होनी चाहिए। किन्तु एलक्जेण्डर ? वे न तो हमें उकसाते हैं न हमारे साथ तर्क ही करते हैं। वे हमसे केवल हमारे तथाकथित सूफीवाद का जामा उतार फेंकने का आग्रह जरूर करते हैं और तब इस संसार को एक अबोध दृष्टि से देखने का आग्रह भी करते हैं। इसके बावजूद भी वे जो संसार हमारे सामने रखते हैं वह अत्यन्त जटिल, सोफियाना है। बहुत से दार्शनिक तो उनकी बात मानने में भी इन्कार कर देते हैं। स्पेस टाइम एण्ड डीटी के प्रकाशन के वक्त इसका जितना हल्ला हुआ था वह शनैः शनैः उसकी उपेक्षा में बदलता गया। तो भी कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसके पक्के प्रशंसक हैं। कुछ तो यह भी मानते हैं कि यह वर्तमान शती की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाओं में से है।

जब अलक्जण्डर 1877[1] म आस्ट्रेलिया स आक्सफाड आए तो सवप्रथम उनका सम्पक विख्यात प्रत्ययवादियो स हुआ जसे, ग्र न नटलशिप एव ए सी ब्रेडल। ये सब एलक्जेण्डर क समय बलियल म प्रशिक्षक थे और इनकी विचारधाराओ से प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था। जहा कही भा उन्हान प्रत्ययवादियो स अपना सबध तोडा है प्रत्ययवादी वहा हो हमेशा आदर के साथ इनकी चर्चा करत रहे हैं। यह आदर

1 इस आन्दोलन से बाहर आ जाने वाल एक उल्लखनीय दल म स शायद *गिलबट मरे तथा ग्रेफटन इलिएट स्मिथ* मुख्य हैं। एलक्जेण्डर का विश्वास है कि उनका तत्वदशन अपनी आत्मा म प्रजातान्त्रिक है। यह कहना निरथक नही होगा कि उनके आस्ट्रेलिया के मूल प्रभाव ही उन्हें तत्वदशन म परमात्मवाद के प्रति विरोध खडा करन म सहायक रहे। यह सही है कि एलेक्जेण्डर की रचनाए *आस्ट्रेलिया की* दाशनिक विचारधारा के विकास म सहायक रही। जिस विचार-प्रणाली का मूल स्रोत सिडनी विश्वविद्यालय के विचारक जान एण्डरसन रहे थे, वही एलेक्जेण्डर के तक क प्रकृतिवादी तथा तथा यथाथवादी स्वरूप का निर्माण *करने म काफी सहायक भी रहे। जो लोग एडरसन की रचनाओ के निकटतम सम्पक* मे आए हैं, उनके अनुयायियो और शिष्यो के अतिरिक्त वे यथाथवादी दशन के सव श्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण का इसे एक उदाहरण मानते हैं। ज्ञान मीमासा तथा तत्वदशन सबधी उनके ठोस निबध बहुत कम गहन चिंतन से युक्त हैं (उनकी पुस्तक सूची देखें) और वे *प्राय आस्ट्रेलियन जनल* आव फिलोसोफी मे प्रकाशित होते रह हैं। द्रष्टव्य जी राइल कृत (ए जी पी म) लोजिक एण्ड प्रोफेसर एडरसन। 1950) एव जे एल मैकी का इस सम्बन्ध म दिया गया जवाब (1951) ऐ० जे० पी० मे *तथा अन्यत्र लिखे गए निबध और रिव्यू आदि म मैकी पारट्रिज, रोज वाकर, बेकर* थोमटन मेकिन्टोश आमस्ट्रोग, एव पासमूर सदश लेखको ने एलक्जेण्डर के न केवल दशन किन्तु राजनीति, सौन्दयशास्त्र एव कानून पर रह प्रभाव को व्यक्त किया है। एलक्जेण्डर के लिए देखें पी० डिवक्स कृत ले सिस्टेमे द एलेक्जेण्डर (1929), *जे० मेकार्थी कृत द नेचुरलिज्म आव समुअल एलेक्जेण्डर (1948)*। मृत्यु आलेख देखें जे० लयड कृत (पी० बी० ए० 1938), जे० ए० मूरहेड के निबध (फिलोसोफी 1939) जी० एफ० स्टाउट (माइण्ड 1940) ए० बोयस गिबसन (ए० जी० पी० 1938) द फिलोसोफी *आव एलेक्जेण्डर शीषक स लिखे गय स्टाउट क निबध* माईण्ड (1940) एच० बी० लाइनान कृत द एम्पिरिसिज्म आव डा० एलेक्जेण्डर (ए०जे०पी० 1951) एव एमरनेस आव सेल्फ (मोनिस्ट 1936), एलक्जण्डर कृत फिलोफिकल एण्ड लिटरेरी पीसेज का जान लयड द्वारा लिखित *आमुख (1939)* ए० पी० स्टियरनोट कृत गोड एण्ड स्पेस टाईम इन दि फिलोसोफी आव एलेक्जेण्डर (1954)।

उन्होंने अन्य नव यथार्थवादियों के लिए कदाचित् कभी नहीं दिखाया था। यह श्रौदार्य फिर भी कैम्ब्रिज की छींटाकश वृत्ति से मुक्त नहीं था। जहां पर अपने छींटा लगे स्थलों को भूलकर मेक्टेगर्ट ने यह शिकायत की थी कि स्पेस टाइम एण्ड डीटी के प्रत्येक अध्याय में हम एक ऐसा दृष्टिकोण मिलता है, जिसे प्रोफेसर अलक्जेण्डर को छोड़ कर कोई अन्य दार्शनिक स्वीकार नहीं करता केवल टाइम जैसी पुस्तक के प्रबल विरोधी से यह अपेक्षा करना कि वे उसके रचियता की प्रशंसा करेंगे अमानवीय अपेक्षा ही कही जाएगी।

इसके अलावा भी एलेक्जेण्डर पर कुछ दूसरे प्रकार के प्रभाव चालू थे। नए जीव विज्ञान एवं प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ने उनका ध्यान आकृष्ट किया था। मनोविज्ञान की सुरक्षा में स्टाउट एवं एलक्जेण्डर दोनों ने आक्सफोर्ड के आलोचकों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा था। एलक्जेण्डर के मित्र यह निर्णय नहीं ले पा रहे थे कि उनके द्वारा किए जा रहे मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से उन्हें खुश होना चाहिए या सचेत। यह केवल एक युवा मन का उत्साह नहीं था। स्पेस, टाइम एण्ड डीटी जितनी अनुभववादी जांच पड़ताल में खरी नहीं उतरती उतनी प्रयोगशील मनोवैज्ञानिकों के लिए उचित है। इसी प्रकार एलेक्जेण्डर की प्रारंभिक रचना मोरल, आडर एण्ड प्रोग्रेस (1889) जो लेस्ली स्टीवन की परम्परा की ही एक रचना है एवं जिस पर जीवशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रभाव है, उनकी दर्शनेतर रुचियों की ओर संकेत देती है। जीव विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रभाव का इस पुस्तक की रचना में महत्वपूर्ण भाग रहा है।

तो भी एलक्जेण्डर अपने आपको एक ज्ञान मीमांसक के रूप में विख्यात करना चाहते थे। और उन्होंने द बेसिस ग्राव रीयलिज्म (पी० बी० ए० 1914) नामक एक दीर्घ निबंधमाला प्रकाशित करवा कर अपने ज्ञान मीमांसक होने का प्रयास किया था। इस निबंध को लिखने की तात्कालिक प्रेरणा उन्हें बोसांके के निबंध द डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इट्स आब्जेक्ट्स (1913) से मिली। इस पुस्तक में बोसांके ने यथार्थ का, प्रत्ययवाद के एक ऐसे सहयोगी के रूप में स्वागत किया है जिसे प्रत्यक्षीकरण के प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के विरुद्ध संघर्ष करना था। जिसे सामान्यतः पदार्थ के कठोर सिद्धान्त' के रूप में जाना जाता है लेकिन यथार्थवाद पर भी उनका अन्तिम उद्घोष विरोधी भाव लिए हुए था। 'इसने यह कहकर गम्भीर पाप किया था कि मन विशेष सत्ताओं के जगत् में एक विशेष सत्ता ही है।' बोसांके ने लिखा था कि मुझे मेरी चेतना की तुलना एक वस्तु से न करके एक वातावरण से करनी चाहिए। इसकी प्रकृति में हर वस्तु को अपने में शामिल करना ही है। और पदार्थों की प्रवृत्ति उससे जुड़ना ही है। मैं कभी यह नहीं कहता कि मेरा मन यहां है और पेड़ वहां है।

इसके ठीक विपरीत एलेक्जेण्डर चेतना को कि हीं अवयवो, आकारो स उपजा हुआ तत्व मानते हैं। उनके समक्ष जो पेड है वह मेरी चेतना म होने जसा कदापि नही है हा, वह मेरी चेतना क समक्ष अवश्य है, इस रूप मे कि पड जसा एक पदाथ किसी सचेत प्राणी के सम्मुख है इतना मैं देख सकता हू। एलक्जेण्डर पर मूर द्वारा की गई प्रत्ययवाद की आलोचना का स्थायी प्रभाव रहा था। यद्यपि व असम्पृक्त एकेश्वरवादियो द्वारा मानसिक क्रिया के अवयवी प्रत्युत्तर म बदल दिए जाने की बात पर आकृष्ट थे तो वे क्रिया पदाथ विश्लेषण' को पूणत त्याग दने क लिए अपने को सतुष्ट नही कर सके। एलक्जेण्डर को जो बात मूर की अपक्षा परी एव होल्ट के अधिक नजदीक ले आती है वह यह है कि व मन के प्रत्येक कम को चित्कम (कॉनेशन) पदाथ का रेस्पास मानते हैं। यह पहचान की क्रिया नही होकर ऐसा चित्कम हैं जिसके जरिए पदाथ का मान प्राप्त किया है।[1] मानसिक क्रिया का मूलाधार किसी पदाथ की निर्जीव प्रतिलिपि क रदना मात्र नही है यह तो उन मनोवज्ञानिक अवस्थाओ पर आश्रित है जो अपने आप म एक मन प्रक्रिया प्रस्तुत करती हैं गहन एव दिशोन्मुख।

यदि यही वास्तविक स्थिति है। और ज्ञान किसी वस्तु एव मानसिक क्रिया की उपस्थिति के प्रयास के अलावा कुछ नही तो फिर बोसाके के दृष्टिकोण का हमारे लिए क्या अथ रह जाता हैं? एलेक्जेंडर की दष्टि मे बोसाके के लिए जो उलझन थी वह यही कि एक वस्तु का विचार करत समय अनिवाय रूप से हम उस क्रिया पर भी विचार कर रह है जो उसे जान रही है। इससे यह निष्कप निकलता है कि क्ष नामक एक पदाथ को दखते समय क्ष मेरा दष्टिमान न रहकर क्ष की चतना वह दष्टिमान हो जाती है जिसमे क्ष किसी न किसी तरह मूलाधार क रूप मे उपस्थित हो जाता है। और चू कि सीधे रूप म क्ष मरी चेतना मे है ही नही तो चेतना की परिभाषा एक एसे वातावरण के रूप मे देनी होगी जिसम वस्तुए उपस्थित रहती हैं।

एलेक्जेंडर इस बात पर कृतसकल्प हैं कि व वयत्तिक मस्तिष्को एव उनक समक्ष पदार्थों के भेद को कायम रखें। वे प्रत्ययवादियो क आधार को यह कहकर

1 द्रष्टव्य उनकी कति फाउण्डेशस एण्ड स्केच प्लान आव ए कोनेशनल साइकोलोजी (ब्रि० जरनल आव साइको० (1911)। एलेक्जेण्डर का विचार था कि व चित्कर्मी मनोविनान स्टाउट स सीखे हैं कि तु स्टाउट का मत उनसे उलटा था-देख ए क्रिटिसिज्म आव एलेक्जेण्डस थ्योरी आव माइण्ड एण्ड नालेज (ए जे पी 1944) एव प्रोफेसर एलेक्जेण्डस थ्योरी आव सेन्स परसेप्शन (माइण्ड 1922) शीपक स लिखे उनके निबध।

अस्वीकृत कर देते हैं कि हम कभी मानसिक क्रिया पर चिंतन नही करते। क्रियाओं पर चितन नही हो सकता, सिर्फ उन्हें भोगा जाता है जिया' जाता है। इस तरह एक पदार्थ के प्रति हमारी चेतना हमारे लिए ही चिंतन का आधार नही बन सकती। जिस पर हम विचार करते हैं वह केवल एक पदार्थ है, चाहे इसके साथ ही साथ हम उस क्रिया को भी भोगते हो जो यह विचार कर रही है।[1] मानसिक क्रिया और उसके पदार्थ एकदम अलग अलग हैं। पदार्थों को भोगा नही जा सकता और न मानसिक क्रियाओं पर ही विचार हो सकता है। केवल देवता की दृष्टि मे ही, जो मनुष्यो से बड़ी मानसिक सत्ता वाले व्यक्ति माने जाते हैं, हमारी सचेत क्रियाएं पदार्थ का रूप ग्रहण कर सकती हैं। तब वह देवता हमारी सचेत क्रिया पर इस दृष्टि से विचार कर सके कि मानो वे जिस पदार्थ से उत्पन्न है उनके साथ ही पदार्थ होकर उपस्थित भी हैं। किन्तु हम देवता नही हैं हमारे लिए मानसिक क्रिया केवल भोग्य रूप ही है एक एंजायमेंट ही है।

एक पदार्थ को जानना उसके लिए मानसिक क्रिया का वर्तमान रहना ही है। हमारे सामने एक बहुपरिचित प्रश्न उभरता है, यदि मन के समक्ष प्रस्तुत हुए पदार्थ उसी के साथ विद्यमान होते हैं तो जैसे हैं उसी के रूप से उन्हें ग्रहण करने मे मन असफल क्यो हो जाता है? मन का अनुसरण करते हुए एलेक्जेण्डर इस प्रश्न का यह उत्तर देते हैं कि सबसे पहले तो हमें वैकल्पिक बोध एवं दोष को एक नही मानना है। हमारा मन उसी अवस्था के प्रति सचेत होता है जो उसके लिए उत्तेजना का कारण बनती है। इसके लिए सम्पूर्ण पदार्थ के प्रति उसका बोध होना आवश्यक भी नही सम्पूर्ण पदार्थ में से चुनी हुई वह स्थिति ही मन के साथ वर्तमान है जो प्रस्तुत उत्तेजना का कारण रही है। इस तरह यह अपूर्णता अपने आप में दोष नही है। यदि दो आदमी एक मेज को देखते हैं, एक उसकी चपटी सतह को तथा दूसरा उसके चौकोर सिरे को देखता है, तो दोनो में से कोई भी गलती पर नहीं है जब तक कि वह यह गलती से विश्वास न करले कि उसने जो कुछ देखा है वह सम्पूर्ण मेज के लिए सही है। रोयस ने भी यही बात उठाते हुए कहा है कि किसी पदार्थ के केवल मात्र हमारी चेतना के समक्ष प्रकट हो जाना कोई दोष नही हो सकता। यदि हम एक सुदूर पहाड़ी को देखते हैं तो हमारे मन के समक्ष एक नीलापन प्रस्तुत होता है। यहा तक तो सब ठीक है। अब हम गलती उसी समय करते हैं जब हम यह नीलापन पहाड़ी का अपना

1 द्रष्टव्य जान एण्डरसन कृत द नोन–एग्जिस्टेंस आव कांशसनेस (ए जे पी 1929), सी० जे० ड्यूकास कृत इंट्रोस्पेक्शन, मेण्टल एक्टस एण्ड सेन्सा (माइण्ड 1936)।

मान लें। तब ऐलेक्जेण्डर के मतानुसार हम दो अलग प्रकारों के अनुभवों को एक दूसरे से उलझा रहे हैं। हम यह कल्पना कर रहे हैं कि एक पदार्थ काल दिक के एक सीमित क्षेत्र में स्थित हैं जबकि दरअसल वह उससे परे है। गलती इस बात में नहीं होती कि कोई अनहोनी बात हमारे समक्ष प्रस्तुत हो गई है बल्कि हमारे द्वारा सही पदार्थ को गलत स्थान पर रख देने से ही यह गलती होती है।

यही विश्लेषण सैद्धान्तिक रूप से अधिक जटिल अवस्थाओं के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। मान लो हम गलती से कागज की लाल पृष्ठभूमि में एक भूरे धब्बे को हरा कह देते हैं। इस वक्त इस कागज के आसपास भी कहीं हरा रंग नहीं है, पहाड़ी के पास नीला रंग दिखता था उस रूप में भी नहीं। किन्तु एलेक्जेण्डर का कथन है कि यहां महत्वपूर्ण बात यही है कि हरा कहीं न कहीं तो विद्यमान है ही। और वह वहां एक ऐसे विस्तार में फैला है जैसा हम उसे एक कागज पर फैला हुआ देखते हैं। देखा गया पदार्थ तथा उसके साथ अन्य पदार्थों का मेल दोनों ही इस जगत में विद्यमान हैं। हम गलती उसी समय करते हैं जब हम उन्हें गलत स्थान या गलत समय में विद्यमान मानकर चलते हैं। हम कभी भी कोई सवथानवीन पदार्थ रच नहीं सकते। एलेक्जेण्डर के यथार्थवाद के आधार के रूप में उनका यह जो दोष सिद्धान्त है वही स्पेस टाइम एण्ड डीटी नामक ग्रंथ में विस्तार से वर्णित किया गया है। यहां उसको पूर्णत समझाया जाना संभव नहीं है इसलिए संक्षेप में बता दिया गया है।

'बेसिस आव रीअलिज्म' में एलेक्जेण्डर ने लिखा कि यथार्थवाद की प्रकृति वस्तु को पौराणिक ध्वंसावशेषों से बाहर ले आना है। ससीम पदार्थों से मनुष्य एवं मन दोनों को अपने सही क्रम में स्थित करना ही यथार्थवाद का उद्देश्य है। एक ओर यथार्थवाद भौतिक वस्तुओं को मन के द्वारा उन पर चढ़ा दिए रंग से मुक्त करता है तो दूसरी ओर उन्हें मन की भांति अपने अस्तित्व का मौलिक दर्प भी दिलवाता है। इस तरह यथार्थवाद स्वाभाविक है। इसके अनुसार अन्य ससीम पदार्थों की भांति मनुष्य भी एक ससीम सत्ता है। वह अन्य ससीम पदार्थों का मालिक एवं नियन्ता नहीं है। उनके इस प्रकार के प्रकृतिवाद का खण्डन इस आधार पर हुआ कि यह मन को अनादृत करके उसकी सम्पन्नता का अपहरण करना ही हुआ। स्पेस टाइम एण्ड डीटी में बिना अनादृत किए मन को अपने सही दर्जे में रखना ही अलेक्जेण्डर का उद्देश्य था। इस प्रयोजन के लिए उनके लिए एक उपयोगी सिद्धान्त भी उन्हें मिल गया और यह सिद्धान्त था-विकासोद्भव का सिद्धान्त (थ्योरी आव इमर्जेण्ट इवाल्यूशन)। उद्भव की धारणा कम से कम 1875 में जी० एच० ल्यूविस द्वारा लिखी पुस्तक प्रोब्लेम्स आव लाइफ एण्ड माइण्ड तक में देखा जा सकता है किन्तु इस एक विकास सिद्धान्त के रूप में नए ढंग

म प्रस्तुत करने का श्रेय एक दार्शनिक जीवशास्त्री सी० लोइड मोरगन[1] को है। लोइड मोरगन ने यन्त्रवाद एव शक्तिवाद क बीच का मध्यम माग अपनाया है। यन्त्रवादी यह दिखाने म व्यस्त थे कि शरीर भौतिक रासायनिक ढाचो क अतिरिक्त और कुछ नही है और *प्राकृतिक चुनाव क दौरान उन्हें अपनी यह वत्तमान शक्ल* ग्रहण को है। शक्तिवादी के लिए इसके विपरीत शरीर में एक मौलिक शक्ति होती है और वास्तव म यही वह माध्यम होता है जिसके जरिए जीवन पूणता–प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है।[2] लोइड मोरगन शक्ति सिद्धान्त को जीवशास्त्री सिद्धान्त मानने के लिए तयार नही हुए। वगसा की काव्यात्मक प्रतिमा के प्रति पूरे आदर भाव क साथ (क्योकि उनकी दृष्टि म वगसा का जीवन सिद्धान्त विज्ञानसम्मत होने की अपेक्षा काव्यात्मक अधिक था,) उन्होने अपने ग्रन्थ इन्सटिंक्ट एण्ड ऐक्स्पी रिएन्स म लिखा, *डार्विन के महान् एव वास्तविक विज्ञान सम्मत सामान्यीकरणो पर* प्रस्तुत उनकी आलोचना यही दिखान म सफल हो पाई है कि उद्भव सबधी तत्व दशन पर तथा वनानिक व्याख्याओ म कितनी मात्रा म विचारो का आदान प्रदान एव परस्पर गुफन हुआ है। इन दोनो का विवाद हमारी रायो को प्रभा कर सकता

---

1 उदाहरण के लिए यह बात उनकी कृति इन्सटिंक्ट एण्ड एक्सपीरिएन्स (1912) मे मिलती है। यद्यपि एलक्जेडर एव मोरगन बहुत से मामलो म सहमत थे फिर *भी मोरगन एक यथार्थवादी नहीं थे। उनकी दार्शनिक स्थिति के लिए* द्रष्टव्य ग फिलोसोफी आव इवोल्युशन (सी० बी० पी० 1)। उनके दार्शनिक विचारो को गिफोर्ड मापणमाला के सग्रहीत ग्रन्थ एमरजेण्ट इवोल्यूशन (1923) म अधिक विस्तार से देखा जा सकता है एव लाइफ माइण्ड एण्ड स्पिरिट (1926) म भी दर्खे उनके विचार।

2 इस प्रकार के सिद्धान्त का प्रवत्तन जिसका मूल अरस्तू म है-लाइफ एण्ड हेबिट (1877) नामक ग्रन्थ क रचयिता उपन्यासकार तथा जनवादी विचारक समुअल बटलर म *देखा जा सकता है। यह ग्रन्थ उस समय रचा गया था जब* डार्विनवाद एक नयी परम्परा बन रही थी। अपने विशेष उद्देश्यो की पूर्ति के लिए बक टू मेथ्यूसिले ला (1921) तथा मैन एण्ड सुपरमैन (1903) नामक कृतियो म बर्ना र्डशा द्वारा इसके सिद्धान्तो की विवेचना की गई। शक्ति वाद की सवसिद्ध रचना बगसाँ कृत ग्रन्थ क्रीएटिव इवोल्यूशन (1907) है। इसम जीवनी शक्ति का एलान वाइटल क रूप म प्रस्तुत किया गया है। इसी विचारधारा की एक दूसरी कडी है दार्शनिक जीवशास्त्री हेन्स ड्राइश कृत साइन्स एन्ड फिलोसोफी आव ओरग निज्म (1908) इसम उन्होने एन्टेलेकीज का सिद्धान्त प्रवर्तित किया है। राजनीतिक विचारक ज० सी० स्मटस कृत होलिज्म एण्ड इवोल्यूशन नामक ग्रन्थ भी देखें (1936)।

है तथा जीव शास्त्र के विकास का माग अवरुद्ध कर सकता है। शक्ति उनक मता नुसार एक वनानिक प्राकल्प नहीं है, यह एक तत्वदशन है। यह विकास के स्रोत का सिद्धान्त है। इसम विकास प्रक्रिया का विवरण नही है। इनसे भिन्न विकासोद्भव के सिद्धान्त मे विकास के दौरान हुई घटनाओ पर प्रक्रियाओ का वास्तविक विवरण है। यह विवरण ऐसी यान्त्रिकता का भी समाहार करता चलता है जिसके अनुसार यह माना गया है कि जीवन्त प्रक्रियाए केवल मात्र भौतिक रासायनिक प्रक्रियाए हैं। एक सच्चे विकास म जो दनिक रूप स घटित होन वाल कार्यों स भिन्न है मोरगन के अनुसार उसके प्रमेयो म कुछ न होकर बहुत कुछ उसके निष्कर्षों म विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दो म परिणत प्रक्रिया कभी भी उन अवस्थाओ से अलग नही होती जिसस उसका विकास हुआ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यापारक्रियाएँ (जसे चेतना) भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओ स विकसित हो सकती हैं और यह आवश्यक नही कि उन्हे प्रक्रिया म वापस बदला जा सके।

विकासोद्भव का यह सिद्धा त ऐलेक्जण्डर के ग्र थ स्पेस टाइम एण्ड डीटी का खाका तयार करने का कारण रहा। यह अद्भुत ही है कि एक जीवशास्त्री द्वारा जीव विज्ञान सबधी आविष्कृत किया गया एक सिद्धान्त तत्वदशन के रूप मे काम मे आए। तत्वदशन को बहुधा अति वज्ञानिक जाच पडताल क रूप म दखा गया है जिसम यदि विनान पर उसकी श्रेष्ठता नही रही हो तो कम से कम वहा उसकी सीमा से तो बाहर जाना ही पडता है। किन्तु एलेक्जेण्डर के लिए तत्वदशन स्वय एक विज्ञान है और भौतिकी स उसका इतना ही अ तर है कि उसम अधिक बोध गम्यता है। यद्यपि प्रकृति विनान स इसकी प्रणाली म भेद है तो भी इसके निष्कर्षों का वनानिक निष्कर्षों से मेल खाना आवश्यक है। और वज्ञानिक अ वेषणो स इसम काफी सहायता मिल सकती है। इसकी विषय वस्तु भी बहुत से विनान क्षेत्रो म प्रयुक्त दिक, काल एव वस्तु अवस्थाए ही हैं। दिक एव काल सब प्रथम आते हैं। यह कहना कोई बडी बात नही है कि दशन की सभी मूलभूत समस्याए अपने हल के लिए समय एव दिक की समस्याओ के हल पर ही आश्रित हैं और मूलत इस बात म निहित हैं कि ये दोनो परस्पर किस भाति जुडे हैं। दाशनिको ने अधिकाश समय को अधिक महत्व नहीं दिया है। वतमान दाशनिको म यह बात ब्रेडल एव मेक्टेगट मे विशेष रूप से देखी जा सकती है और अधिकाश मात्रा मे रसल क लिए भी यह बात सही है। रसल ने लिखा है कि इस बात मे कुछ तथ्य तो है कि समय सत्य की एक महत्वपूर्ण व कृत्रिम अवस्था तो है ही। वतमान के समान ही भूत एव भविष्य को भी सत्य मानना चाहिए और समय के चगुल से मुक्त होना दाशनिक विचार के लिए आवश्यक ही है। कोई भी दाशनिक जो दशन को तक से दखता है इस प्रकार की बात कह तो आश्चय नही। यह तो स्पष्ट है कि अभिप्रेत (इम्प्ली केशन) केवल सामयिक सबध मात्र नही है और सत्य जिसका तकशास्त्र अध्ययन करता

है, शाश्वत है। इसके विपरीत यह बात देखी जा सकती है कि एलेक्जण्डर के लिए सत्य सापेक्ष है। सत्य भिन्न भिन्न है और रूढ होते होते असत्य भी हो जाते है। सत्य होने का अर्थ है सामाजिक मन द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना और वह मन जिस बात को स्वीकारता है वह समय समय पर बदलता जाता है।[1] और जहा अनुमान का प्रश्न है जिसे प्रत्ययवादियो की भाति वे तर्कशास्त्र का विषय मानते है उनके अनुसार वह स्पष्ट ही इस धारणा को गलत सिद्ध करना है कि सत्य केवल यथार्थ ही नही हैं किन्तु मन के साथ उसका एकीकरण भी है। क्योकि अनुमान से ही वाक्यो की एक प्रणाली में बदला जा सकता हैं और प्रणाली और सगति अपने आपमें सत्य का अग नही है केवल मन के साथ अपने सबधों के कारण ही उनका स्थान स्वीकार किया जा सकता है। इस तरह अब न तो सत्य ही और न तार्किक सबध सूचक ही शाश्वत हैं। एलेक्जेंडर अब पूर्ण मनोयोग से समय पर गभीरता पूर्वक विचार कर रहे हैं।

बर्गसॉ ने उनसे पूर्व समय का पुनर्स्थापन करने का विचार किया था। किन्तु एलेक्जेण्डर की दृष्टि में बर्गसॉ ने समय के काल को केवल उजागर किया था और वह दिक की कीमत पर। और अपनी इस प्रक्रिया ने काल के विचार का पूर्णत रहस्यमय बनाकर छोड दिया था। इस सदर्भ में बर्गसॉ एव एलेक्जेण्डर का पारस्परिक विरोध पूर्ण हो गया। बर्गसॉ का दर्शन समय को दिकीय सीमाओं में बाधने के विरुद्ध एक प्रबल आवाज थी जबकि एलेक्जेण्डर का कहना है कि उसकी व्याख्या केवल उसी प्रकार से हो सकती है यद्यपि बर्गसॉ की तरह वे यह तो स्वीकारते हैं कि दिक की व्याख्या भी कालगत सीमाओ के जरिए होनी चाहिए। वास्तव में न तो काल और न दिक् ही अपने आप समझे जा सकने योग्य हैं। प्रत्येक का बोध दूसरे के सदर्भ से ही हो सकता है और इस तरह उस विचार को काल दिक, विचार का ही एक अङ्ग मानना चाहिए।[2]

---

1 इस बिन्दु पर एलक्जेण्डर, ड्यूई एव मार्क्स की विचारधारा के बहुत नजदीक हैं और काफी दूर जाकर वे हीगल के समान भी लगते हैं। द्रष्टव्य पी० एच० पट्रिज कृत द सोशल थ्योरी आव ट्रूथ (ए० जे० पी० 1939)।

2 इससे मिलते जुलते ही एक सिद्धान्त की रचना में मिकावस्की तथा आइस्टीन जैसे भौतिक शास्त्री लगे थे। किन्तु एलेक्जेण्डर का काल दिक सम्बन्धी सिद्धान्त उनके स्वतन्त्र तत्ववादी विवेचन का परिणाम था। वे भौतिक शास्त्र का अवलम्बन प्राप्त करके प्रसन्न थे किन्तु उन्होने कभी भी भौतिक सिद्धान्तो का उपयोग नही किया। और न वे सब भौतिकी के नियमो को पूर्णत स्वीकार ही करते थे। एलेक्जेण्डर में ही हम एक साथ काल दिक् सम्बन्धी दो धारणाओ को विकसित होते देख

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नहो मानते कि व यह बताए कि कस काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध म दिए जान वाले नकारा त्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मेक्टेगट का अनुसरण करन को तयार थ। विशुद्ध *काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है।* किन्तु इस तरह उन्होने उपयु क्त लोगो की भाति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव म हम इसका साक्षात्कार करते हे। और एलेक्जेण्डर का कथन हैं, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वसा ही उसका वरान हमे करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव मे हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई *अलग सत्ता नही है* किन्तु *अलग अलग अवसरों पर* विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो स परिचित हो लें तो ये अपना आतक हम पर अधिक लाद नही सकेगें।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से वे दो जुडवा सदूकें हैं जिनमे वस्तुए विचरण करती हैं। सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया मे दार्शनिको ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक्र का दिकीय सहअस्तित्व स। किन्तु काल–दिक का सापेक्ष सिद्धा त एलेक्जेण्डर की दृष्टि म इस तथ्य की अवहेलना करता ह कि इन सबधो म प्रयुक्त मन अपने आप म काल–दिकीय है और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता ह क्योकि इस तरह काल दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और ह जो उन्ह तत्वदशन के बहुत करीब ले आती ह वह यह कि अ य पदावस्थाओ की भाति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता ह जब उनकी व्याख्या काल–दिकीय आधार पर की जाए। काल–दिक के सबध मे सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक *तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।* उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ) है, जिसमे से वस्तुएँ प्रकटती हैं (चू कि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध मे देखें ए० ई० मर्फी *कृत* एलेक्जेण्डस मेटाफिजिक्स आव स्पेस–टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्राड के निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके साथ एलेक्जेण्डर का उत्तर सम एक्सप्लेनेशन्स नामक निबन्ध मे देखें। जी० डाउस हिक्स को (हिबट जनल 1921), आर० पी० हाल्डेन को (नेचर 1920) एव डी० एमेट का *टाइम इज द माईण्ड आव स्पेस* (फिलोसोफी 1950) मे देखें।

पदार्थ काल दिक के अनुक्रम में है इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी सदर्भ ही स्मरण में आता है) यह सरलता से समझ में आने वाला सिद्धान्त नहीं है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एवं व्याख्याएं उनके पाठकों की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) से तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक एक ऐसे अभिधान हैं जिनसे वस्तुएं प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियों का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओं का पूरक है जो अनुक्रम से वर्तमान रहती हैं और घटनाओं के क्रम के द्वारा बिन्दुओं का पुराव ही वह अवस्था है जिसे वास्तव में एलेक्जेंडर महोदय काल दिक् मानते हैं। व अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूर्वक गति कहना पसन्द करेंगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक की धारणा से स्वतन्त्र एक ऐसे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यों न हो कि गति एक सर्वव्यापी सत्ता है। एलेक्जेण्डर का तत्व दर्शन कई अर्थों में हरेक्लाइटस से मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूर्णत ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल–दिकीय ब्रह्माण्ड अपनी प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही यह बिन्दु है जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त-केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डीटी के जिस प्रश्न पर स्वयं एलेक्जेंडर को गर्व है वह है आव द केटेगरीज शीर्षक से लिखी गई बुक ll जसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओं को वस्तुओं का उलटा रूप मानते हैं। यह विपर्यय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाएं वे अवस्थाएं हैं और मूल अभिधान के वे नियामक तत्व हैं, जो काल दिक का निर्माण करते हैं। वे प्रत्येक वस्तु में हैं क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली को दो अवस्थाओं के सदर्भ से उद्धृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओं ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य सदर्भों के दौरान खींचा है, समष्टिभाव एवं सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कहीं न तो कोई समष्टि है और न व्यष्टि। प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इण्डिविजुअल) है, अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलों में व्यष्टि है जिनमें वह दूसरी वस्तुओं से जो अपनी रचना में

---

1 विशेषत द्रष्टव्य, एलेक्जेण्डर का निबंध हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री में–सम्पादक क्लिबेन्स्की एवं एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियों से एलेक्जेण्डर के तत्वदर्शन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओं से यह मुक्त है।

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नही मानते कि वे यह बताए कि कैसे काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध मे दिए जाने वाले नकारात्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मक्टेगट का अनुसरण करने को तयार थे। विशुद्ध काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है। किन्तु इस तरह उन्होने उपयुक्त लोगो की भाति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव मे हम इसका साक्षात्कार करते हे। और एलक्जेण्डर का कथन हैं, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वैसा ही उसका वर्णन हम करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव मे हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई अलग सत्ता नही है, किन्तु अलग अलग अवसरों पर विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो से परिचित हो लें तो ये अपना आतक हम पर अधिक लाद नही सकेगें।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से, वे दो जुडवा सदूकें हैं जिनमे वस्तुए विचरण करती हैं। 'सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया मे दार्शनिकों ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक का दिकीय सहअस्तित्व से। किन्तु काल–दिक का सापेक्ष सिद्धा त एलक्जेण्डर की दृष्टि मे इस तथ्य की अवहेलना करता है कि इन सबधो मे प्रयुक्त मन अपने आप मे काल–दिकीय है और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता है क्योंकि इस तरह काल-दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और है जो उन्हे तत्वदर्शन के बहुत करीब ले आती है वह यह कि अ य पदार्वस्थाओ की भाति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता है जब उनकी याख्या काल–दिकीय आधार पर की जाए। काल-दिक के सबध में सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ) है, जिसमे से वस्तुए प्रकटती हैं (चू कि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध मे देखें ए० ई० मर्फी कृत एलेक्जेण्डर्स मेटाफिजिक्स आव स्पेस-टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्राड के निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके [illegible] जी० डाउस

पदार्थ काल दिक के अनुक्रम में है इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी संदर्भ ही स्मरण में आता है) यह सरलता से समझ में आने वाला सिद्धान्त नहीं है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एवं व्याख्याएं उनके पाठकों की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढंग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) से तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक एक ऐसे अभिधान हैं जिनसे वस्तुएं प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियों का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओं का पूरक है जो अनुक्रम से वर्तमान रहती हैं और घटनाओं के क्रम के द्वारा बिन्दुओं का पुराव ही वह अवस्था है, जिसे वास्तव में एलेक्जेंडर महोदय काल दिक् मानते हैं। व अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूर्वक गति कहना पसन्द करेंगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक की धारणा से स्वतन्त्र एक ऐसे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यों न हो कि गति एक सर्वव्यापी सत्ता है। एलेक्जेण्डर का तत्व दर्शन कई अर्थों में हरेक्लान्टस से मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूर्णत ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल-दिकीय ब्रह्माण्ड अपनी प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही यह बिन्दु है जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त-केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बैठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डीटी के जिस अंश पर स्वयं एलेक्जेंडर को गर्व है वह है भाव द केटेगरीज शीर्षक से लिखी गई बुक ।। जैसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओं को वस्तुओं का उलटा रूप मानते हैं। यह विपर्यय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाएं वे अवस्थाएं हैं और मूल अभिधान के वे नियामक तत्व हैं जो काल दिक का निर्माण करते हैं। वे प्रत्येक वस्तु में हैं क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली को दो अवस्थाओं के संदर्भ से उद्धृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओं ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य संदर्भों के दौरान खींचा है, समष्टिभाव एवं सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कहीं न तो कोई समष्टि है और न व्यष्टि। प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इण्डिविजुअल) है, अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलों में व्यष्टि है जिनमें वह दूसरी वस्तुओं से जो अपनी रचना में

---

1 विशेषत द्रष्टव्य, एलेक्जेण्डर का निबंध हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री में-सम्पादक क्लिबन्स्की एवं एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियों से एलेक्जेण्डर के तत्वदर्शन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओं से यह मुक्त है।

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नही मानते कि वे यह बताए कि क्स काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध म दिए जान वाले नकारात्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मेक्टेगट का अनुसरण करने का तयार थ। विशुद्ध काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है। किन्तु इस तरह उन्होने उपयुक्त लोगो की भाति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव मे हम इसका साक्षात्कार करते हे। और एलेक्जेण्डर का कथन हैं, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वसा ही उसका वरणन हम करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव म हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई अलग सत्ता नही है किन्तु अलग अलग अवसरो पर विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो से परिचित हो लें तो ये अपना आतक हम पर अधिक लाद नही सकेगें।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से, वे दो जुडवा सदूकें हैं जिनम वस्तुए विचरण करती हैं। सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया म दाशनिको ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक का दिकीय सहअस्तित्व स। किन्तु काल–दिक का सापेक्ष सिद्धा त एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे इस तथ्य की अवहेलना करता ह कि इन सबधो मे प्रयुक्त मन अपने आप म काल–दिकीय ह और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता है क्योकि इस तरह काल दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और ह जो उन्हे तत्वदशन के बहुत करीब ले आती ह वह यह कि अ य पदावस्थाओ की भाति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता ह जब उनकी व्याख्या काल–दिकीय आधार पर की जाए। काल–दिक के सबध मे सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ़) है, जिसम से वस्तुएँ प्रकटती हैं (चूकि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध म देखें ए० ई० मर्फी कृत एलेक्जेण्डर्स मेटाफिजिक्स आव स्पेस–टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्रॉड के निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके साथ एलेक्जेण्डर का उत्तर सम एक्स्प्लेनेशन्स नामक निबन्ध मे देखें। जी० डाउस हिक्स को (हिबर्ट जनल 1921), आर० पी० हाल्डेन को (नेचर 1920) एव डी० एमेट को टाइम इज द माईण्ड आव स्पेस (फिलोसोफी 1950) मे देखें।

पदार्थ काल दिक के अनुक्रम में है इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी सदर्भ ही स्मरण में आता है) यह सरलता से समझ में आने वाला सिद्धान्त नही है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एव व्याख्याए उनके पाठकों की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) से तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक् एक ऐसे अभिधान हैं जिनसे वस्तुए प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियो का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओं का पूरक है जो अनुक्रम से वर्तमान रहती हैं और घटनाओं के क्रम के द्वारा बिन्दुओं का पुराव ही वह अवस्था है जिसे वास्तव मे एलेक्जेंडर महोदय काल दिक मानते हैं। व अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूर्वक गति कहना पसन्द करेंगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक् की धारणा से स्वतत्र एक ऐसे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यो न हो कि गति एक सर्वव्यापी सत्ता है। एलेक्जेंडर का तत्व दर्शन कई अर्थों मे हरेक्लाइटस से मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूर्णत ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल-दिकीय ब्रह्माण्ड अपनी प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही यह बिन्दु हैं जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त-केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बैठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डीटी के जिस अंश पर स्वय एलेक्जेंडर को गर्व हैं वह है भाव द केटेगरीज शीर्षक से लिखी गई बुक 'II जसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओं को वस्तुओं का उलटा रूप मानते हैं। यह विपर्यय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाए वे अवस्थाए हैं और मूल अभिधान के वे *नियामक तत्व हैं जो काल दिक का निर्माण करते हैं।* वे *प्रत्येक वस्तु म हैं* क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली को दो अवस्थाओं के सदर्भ से उद्घृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओं ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य सदर्भों के दौरान खींचा है, समष्टिभाव एव सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कही न तो कोई समष्टि है और *न व्यष्टि।* प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इन्डिविजुअल) है अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलो मे व्यष्टि है जिनमे वह दूसरी वस्तुओं से जो अपनी रचना में

---

1 विशेषत द्रष्टव्य एलेक्जेण्डर का निबध *हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स* (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री मे-सम्पादक क्लिबेन्स्की एव एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियो से एलेक्जेण्डर के तत्वदर्शन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओं से यह मुक्त है।

सामा य रूप मे आकर स्थिति हो जाती है, भिन्न हैं। इसका समष्टिभाव इस बात मे निहित है कि रचना की वसी ही योजना की पुनरावृत्ति अ यत्र हुई है। चाहे इस पुनरावृत्ति मे उन्हे ससीम पदार्थों का सयोग रहा हो, जैसे एक काच का गोला जमीन मे लुढ़कते वक्त अपना वही आकार कायम रखता है या वह भिन्न ससीम पदार्थों के सयोग स हुई हो जैसे कि एक थल मे रखे काच के गोले एक ही प्रकार का आकार रखते हैं। पुनरावृत्ति की यह सम्भावना काल दिक की एक रूपता क विद्यमान होने से ही प्रकटती है जो एक वस्तु की अपनी रचना का वही योजना-क्रम कायम रखते हुए अपना स्थान बदलने मे सहायता करती है। इस सदभ म समष्टि भाव का प्रसग उठाने का सीधा साधा अथ काल दिकीय एकरूपता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना हुआ। इसके अतिरिक्त ऐसी योजना घटना क्रम के सामा य व्यवहार के कारण ही प्रकटती है। अलेक्जेंडर के अनुसार समष्टिभाव प्लेटो के आकार की भाति अपरिवतनशील अक्षर एव अन त नही है, किन्तु गति मे प्रकट रूपाकार (पटन) हैं, समय सधर्मी हैं।

उसी प्रकार सम्बन्धसूचक भी अपन आप म मूलत काल-दिकीय हैं। एलेक्जेण्डर सम्ब ध सूचक की परिभाषा ऐसी सम्पूर्ण स्थिति म करते हैं जिनमे उसके विभिन्न पद उस सम्ब ध सूचक क कारण प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार एक मातृक सबध ऐसी क्रियाओ की इकाई है जो मा और बच्चे के परस्पर सबध को व्यक्त करती है। वह मा और बच्चे के बीच सयोग उत्पन्न करता है। या दानो क बीच किसी प्रकार के व्यवहार के विद्यमान रहने का सकेत देता है। इस प्रकार एक सबध सूचक एक ठोस पूरक है, पदो के मध्य रही अस्पष्ट शृ खला नही। एलेक्जेण्डर की दृष्टि म वे पदो से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। लडाई के वक्त म यद्यपि हम जानते हैं कि ऐस सघष मे मनुष्य जूझते हैं हम लडाई की घटना को ही स्पष्ट रूप से देख पाते हैं और एक व्यक्ति की गणना नही करत। किन्तु ये तो विस्तृत चर्चा के मामल हैं। एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे महत्वपूर्ण बिन्दु तो यह है कि एक सबध-सूचक काल-दिकीय तत्वो क बीच रहा एक काल-दिकीय आदान प्रदान ही हैं। इस आदान प्रदान की कोई साथकता अथवा कोई दिशा तो होनी ही है। इसी बात को दूसरी तरह से कह तो कहना हागा कि गति की प्रणाली क बीच गुजरत हुई गतियो को सम्ब ध सूचक कहा जा सकता है। इसी बात को इसी ढग से प्रस्तुत करें तो कहगे कि गति प्रणाली के बीच गुजरती हुई गतियो का ही सबध सूचक कहा जा सकता है।[1]

---

1 एलेक्जेण्डर के सबधों के सिद्धान्त की बुनावट के बहुत से धागे है जिन्हें इस प्रकार क सक्षिप्त विवरण म देखा नही जा सकता। इससे अधिक सतोषप्रद विवरण के लिये देख, मर्फी द्वारा मोनिस्ट मे लिखे गये निबध।

कैटेगरीज से एलेक्जेण्डर, 'द आर्डर एण्ड प्रोब्लम्स आफ एम्पिरिकल एग्जिस्टेंस'' शीर्षक वाला बुक III वाले भाग में आते हैं–जिसे उनके बहुत से आलोचक स्पेस, टाइम एण्ड डीटी का सबसे अधिक उपयोगी अंश मानते हैं। अभी तक तो यही कहा गया है कि एक वस्तु के अनुभवजन्य गुण उसकी अन्तर्निहित गति के साथ जुड़े हैं। किन्तु सह सबंध की धारणा असाध्य रूप से भ्रामक है। समस्या इससे अधिक सही रूप देने की है। इसका सूत्र हम मन और शरीर के पारस्परिक सबंध से प्राप्त कर सकते हैं।

यह एक अप्रत्याशित सुझाव है। बहुत से दार्शनिकों से तो मन या शरीर' के सबंध में समस्या को अधिक उलझते हुए ही पाया है। एलेक्जेण्डर उनसे सहमत नहीं है। पर्यवेक्षण एवं चिन्तन इस बात को बहुत स्पष्ट बना देते हैं कि कुछ ऐसी प्रक्रियाएं जो विशिष्टत चैतन्य हैं वे भी उन्हीं स्थानों और उसी समयावधि में घटित होती हैं जो जीवित शरीर की जटिलतम क्रियाओं के प्रकटीकरण के दौरान उन स्थानों एवं समयावधि में घटती हैं। तब मन शरीर का सह सबंध इस बात पर निहित है, जो प्रक्रियाएं हमें अपने अन्तजगत् में घटित होती हुई मालूम पड़ती है, ठीक वैसी ही प्रक्रियाएं नाडी-संस्थान के बहिर्जगत् में घटित होती हुई देखी जा सकती हैं।

एक खास प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाएं इस तरह एलेक्जाण्डर की दृष्टि में चैतन्य प्रक्रियाएं हैं। विकासक्रम की शब्दावलि में चेतना की परिभाषा यह कह कर दी जाती है कि वह जीवन्त प्रक्रियाओं के विकास की एक विशिष्ट बिन्दु पर प्रकट हुई प्रक्रिया है। भौतिक विज्ञान का कोई भी ज्ञान हमें वास्तविक अनुभव के प्रकट होने से पूर्व यह बताने में सफल नहीं होगा कि किस प्रकार की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव हो रहा है। यद्यपि प्रादुर्भाव के बाद भौतिक प्रक्रिया में प्रकटी चैतन्य प्रक्रिया की मात्रा का निर्धारण हम निश्चय ही कर सकते हैं। भौतिक प्रक्रियाओं में प्रकटने वाली चेतना को विकास क्रम में एक निर्वचनीय गुण वाली नई अवस्था का नाम दिया जा सकता है।

गुणावस्था के इस सूत्र पर विचार करते हुए ही एलेक्जेण्डर 'उद्भव' के सामान्य रूप का वर्णन करते हैं। जब कालदिक् या गति जटिलता के खास अंशमान को प्राप्त हो जाते हैं तो गुणों का प्रादुर्भाव होता है। सर्व प्रथम तथाकथित प्राथमिक गुण प्रकटते हैं–जैसे कद शकल अंग ये सब पदावस्थाओं के अनुभवजन्य रूप हैं। तब माध्यमिक गुण जैसे रंग और ये प्राथमिक गुण से उसी प्रकार सम्पृक्त होते हैं जैसे मन, शरीर से। तब जीवन्त प्रक्रिया का प्रादुर्भाव होता है। तब मन और दवी चेतना। ऐसे प्रत्येक मामले में स्वाभाविक उदारता के साथ हम यह स्वीकारना चाहिये

कि नई गुणावस्थाये प्रादुभू त होती हैं । इस तथय का कोई स्पष्टीकरण नही है । बस यह तो एक तथय है ।[1] क्रम का निर्धारण और एक के बाद अवस्थाओ का अकन करना प्रकृति विज्ञान की समस्या है । एक तत्ववादी को तो अस्तित्व के स्तर को उजागर करके सतोष प्राप्त कर लेना चाहिये—और हमे उन स्तरो के बीच विद्यमान सबध को भी समझना चाहिये ।

अब हम सक्षेप म एलेक्जण्डर क ससीम अस्तित्व के सिद्धा त पर विचार कर सकते हैं । सवप्रथम तो प्रत्यक ससीम अस्तित्व अन्य ससीम अस्तित्वों के साथ कालदिक म विद्यमान रहता है । एक ससीम अस्तित्व ठोस तत्व है अर्थात् कालदिक की एक सीमा घेरता हुआ घनत्व है । यही गलतियो का दृश्य है जिसम से प्रत्यक गति का एक इतिहास होता है । वे समय मे समय के जरिए प्रकटती हैं और समय म ही विलीन हो जाती हैं । वस्तु की तीन विशेष अवस्थाए होती हैं—उसका कालदिकीय भाव वह प्रक्रिया जिसमे वह घटित होती है—तथा उसका रचना विधान या आकार ग्रहण करना । हमारी दृष्टि मे पहला अवस्था वस्तु के स्थान, तिथि, अवधि एव उसके विस्तार को बताने वाली है । दूसरी अवस्था उसके ऐन्द्रिय जगत मे प्रत्यक्ष हो जाने वाले गुण उजागर करती है । तीसरी अवस्था उसके स्वभाव पर प्रकाश डालती है और उस ही हम अपने विचार की वस्तु मानते हैं ।

एलेक्जेण्डर की ज्ञानमीमासा इस प्रकार के तत्वदशन मे अपना आश्रय ढूढ लेती है । सभी अन्य ससीम सत्ताओ की बहुलताय मे वह विद्यमान है । विद्यमानता एक साथ सभी गुणो के रहने का सकेत नही देती । ऐसी बहुत सी घटनाए, जहा मन विद्यमान रहता है या एलेक्जेंडर की ही शब्दावलि म वे घटनाए जो मन क दष्टिकोण का निर्माण करती हैं बहुत समय पहले ही घटित हो चुकी । दूर क तारो मे घटित होने वाली घटनाओ को हमारे मन द्वारा किया जान वाला प्रत्यक्षीकरण इसी का ज्वलत उदाहरण है । यह बाल मन क लिए विचित्र नही है । प्रत्येक वस्तु उन्ही घटनाओ की प्रतिक्रिया है जो पहले गुजर चुकी है । हम किसी भी बिन्दु को किसी भी वस्तु के पहन के दष्टिकाण स भिन्न होन वाला बिन्दु भी कह सकत हैं । इसमे वे सारी घटनाए समाहित होती हैं जो विभिन्न स्थानो समया तथा तिथियो मे घटित हुई है और जिनसे वस्तु का आगमन प्रदान रहा है । काल दिक वास्तव म ऐसे ही दष्टिकोण से बना है एक साथ विद्यमान रहने वाल आरपार होने वाले तत्वाशा[2] के कारण नही ।

---

1 द्रष्टव्य एलक्जेडर कृत नेचुरल पाइटी (हिबट जनल 1922 पुन मुद्रित फिलोसोफीकल एण्ड लिटरेरी पीसेज 1939 मे ।

2 इस दष्टिकोण के प्रस्तुतीकरण के लिए विशेष तौर पर दखें सम एक्स्प्लेनशस एव आलोचना के लिए देख ब्रोड एव मर्फी द्वारा लिखित निबध (उसी मे) । यदि

अब दैवी भाव (डीटी) किस प्रकार इस दर्शन से जुड़ता है ? इसी प्रश्न का उत्तर एलेक्जेण्डर स्पेस टाइम एण्ड डीटी की बुक IV में देने का प्रयास करते हैं। विकास क्रम में दैवी भाव एक आगे की अवस्था है। मन से इसका वही संबंध है जो मन का जीवन प्रक्रियाओं के साथ है। या फिर जीवन्त प्रक्रियाओं का भूत रासायनिक प्रक्रियाओं के साथ। हमारे लिए उसकी प्रकृति का निर्धारण कर देना असंभव है। उदाहरण के लिए दैवी भाव को मन कहना यह कहने के बराबर होगा-जीवन्त प्रक्रियाएं भूत रासायनिक प्रक्रियाओं से भिन्न नहीं हैं। दैवी भाव निश्चय ही मन से युक्त है हां किन्तु उसके विशिष्ट गुण इसी तथ्य पर अवलम्बित नहीं है।

एलेक्जेण्डर की दृष्टि में तब ईश्वर वास्तविक होने के बजाय प्रत्ययभावी है। वह भी सृष्टि का अंग है पूर्ण रूप से सर्जित नहीं। यदि हम एक वास्तविक ईश्वर की मांग करेंगे तो वह केवल एक दैवीभाव की धुरी पर टिका यह अनन्त जगत् ही है। तब क्या नहीं काल दिक् को ही जो अनन्त एवं सृजन शील है ईश्वर मान लें ? इसे न मानने का एक प्रत्यक्ष कारण तो यह है कि कोई भी व्यक्ति काल-दिक् के लिए पूजा भावी नहीं हो सकता। किन्तु यह काम तो तत्ववादी दार्शनिक का है कि वह ऐसी सत्ता के प्रति ऐसा भाव उजागर करे। वे इस अमूर्त संभावना को भी स्वीकार करते हैं कि तत्ववाद दार्शनिक को इस दिशा में भी ले जा सकता है कि ऐसी कोई सत्ता विद्यमान नहीं है किन्तु उनका अपना तत्वदर्शन तो उन्हें दैवी भाव की ओर ले जा रहा है, उसके विपरीत नहीं। और क्या यही इस बात के पक्ष का उदाहरण नहीं है ? क्योंकि ऐसा प्रत्येक दर्शन जो मानवी अनुभव के किसी भी स्थल को नगण्य मानकर छोड़ दे, उसके प्रति गंभीर रूप से शंकालु होना स्वाभाविक है। हमें सदैव ही यह मानना चाहिए कि प्रत्येक युक्ति के अनुरूप ही एक ऐसा पदार्थ भी है जो उसकी तृप्ति कर सकता है और धार्मिक भाव उनकी दृष्टि में एक ऐसी युक्ति है जिसकी तृप्ति दैवी भाव से कम गुणों वाली किसी भी सत्ता से नहीं हो सकती। किन्तु एलेक्जेण्डर भी यह दैवी भाव धर्म के सर्वमान्य ईश्वर से इस अर्थ में भिन्न है, कि वह विकास की अन्तिम कड़ी नहीं है, किन्तु इससे उसके दैवीभाव के प्रति किसी प्रकार का हीन भाव उन्हें नहीं होता।

हम किसी घन के टुकड़े-टुकड़े कर दें तो स्वतः ये टुकड़े जुड़कर फिर घन नहीं हो सकते। इसके विपरीत यदि हम एक घन के चारों ओर घूमें और उस पर दृष्टि डालें तो हमारी दृष्टि घुलीमिली होगी। पहली दृष्टि दूसरी के द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की अकुलाहट व्यक्त करेगी। इसी प्रकार काल-दिकीय कोई दृष्टि काल दिक् पूरे भाव को प्रकटन की मांग करेगी। जबकि एक ही घटना के उपकरण यह काम नहीं करेंगे।

1 द्रष्टव्य डब्लू० एच० उकुहर्ट का मृत्युलेख (पी० बी० ए० 1946)।

इसके अतिरिक्त भी बहुत स दाशनिक अपने आपको यथाथवादी कहलवाय जाने को उद्यत थे। उन पर एलेक्जेण्डर के दशन का प्रभाव था हा कि तु व ज्ञान-मीमासा स उनके तत्वदशन की ग्रार कभी आकृष्ट नही हुए। ए स्टडी इन रीयलिज्म (1920) नामक रचना म जोन लेयड न 'धरती के यथाथ' पर ही बल ि‍या। उन्हे यह स्मरण था कि उनकी ज म भूमि रीड की ज म भूमि के नजदीक थी जिसम तत्ववादी के बजाय विवेचन एव विश्लेषण पर बल दिया गया था। व एलक्जेण्डर क प्रशसक थे और मानत थे कि एलेक्जेडर की रचनाओ ने उनके प्रभाव को ढक लिया है। कि तु उनके दशन का वातावरण मूर के समय केम्ब्रिज मे रहे वातावरण की याद दिलाता है जहा वे एक विद्यार्थी रह थे। वे सरलता से एलेक्जेण्डर के अमूर्ती करण की तरफ नही खिचते। गिफड भाषण माला म पढे गए अपने निब ध थीइस्म एण्ड कोस्मालोजी (1940) तथा माइण्ड एण्ड डीटो (1941) मे किसी निश्चित निष्कष के रूप म बहुत कम प्रकट हुआ है। एस पारवर्ती धम--दशन की बजाए जिसका वृहल्श प्रसिद्ध है एक ऐस दशन मे विश्वास जमना स्वाभाविक ही है जो स्वविकसमान है।

एक अ य स्कोटलण्डीय विद्वान प्रोफेसर एन० कम्पस्मिथ जा डेकाट ह्यूम एव का ट पर लिखी शास्त्रीय टिप्पणियो के लिए प्रसिद्ध हैं, एलक्जण्डर के अधिक निकट हैं। उन्होने इसी बात को लेकर अपने आपको प्रत्ययवादी मान लिया है। उनकी कृति प्रोलेगोमेना टू एन आइडियलिस्ट थ्योरी आव नोलेज (1924) यथाथवादी आधार–भूमि पर प्रत्ययवादी नान दशन निर्मित करने का प्रयास है।[1] उनका कथन है कि प्रत्ययवाद मे और आत्मपरकतावाद मे कोई आवश्यक सबध नही है। तात्विक दष्टि से आत्मपरकतावाद तटस्थ है और बकले क लिए वह जितना उपयोगी रहा उससे कम मैंच के लिए नही रहा। एक प्रत्ययवादी यथाथवादी भी हो सकता है। केम्पस्मिथ के अनुसार उसे यह नही दिखाना पडता कि यथाथ 'मनस' चेतना से भिन्न हैं वह तो आध्यात्मिक मूल्यो [illegible] करत [illegible] य आध्यत्मिक मूल्य वास्तव म ब्रह्माण्डीय स्तर प [illegible] हैं। [illegible] की विचारधारा का

केम्प स्मिथ एलेक्जेण्डर द्वारा की गई आत्मपरकतावाद की आलोचना तथा उनके स्वाभाविक प्रक्रिया सिद्धान्त को अपने म समाहित करने की क्षमता रखत थे। किन्तु वे एलेक्जेण्डर के साथ साथ कहीं नही चलते। मूलत वे उनके द्वारा माध्यमिक *गुणो की स्वतन्त्रता की बात का कभी नहीं मानते हैं वे यह मानते हैं कि इन्द्रियाघात* मन म विद्यमान नही होते। वे यह भी मानते हैं। कि व अपने आधार के लिए किसी अवयवी पर आश्रित हैं। उनकी दृष्टि म य जव प्रक्रियाए हैं–और एक शरीर को एसे ऐसे वातावरण म बने रहन की क्षमता देती हैं जो जटिल है तथा जिसे सही तौर पर रख पाना दुष्कर है। उदाहरणाथ जब हम पानी का देखते हैं, तो हम एक स्थिर एव निरन्तर प्रवाह का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। परमाणुओं की उछल कूद हम वहा नही देखते और हम यदि इस प्रकार भ्रमित नहीं होते तो यह सम्पूर्ण नजारा हमारे मन को ही चकाचौंध म डाल दे। हम इसीलिए छले जाते हैं क्योंकि प्रकृति को हमारी रुचियो की चिन्ता है।

एक अन्य दाशनिक, जिन्होने यथार्थवाद के नवीन रूप मे कुछ सचाई देखी, सी० ई० एम० जोड थे। वे यथार्थवाद को लेकर द रेपयूटेशन आव आइडियलिज्म मे लकर द अनालिसिस आव मैटर लिखने के समय तक चले। किन्तु नव यथार्थवाद उनकी व्यापक सहानुभूतियों के क्षेत्र के लिए बहुत सकुचित था। आस्था के एक अणु अश म रसल बगसाँ एव प्लेटो ने पदार्थ जीवन एव मूल्यो की दृष्टि स क्रमश अपना स्थान बनाया था।[1] इसका परिणाम यह हुआ कि लोकप्रिय दशन का अमला तो प्रस्तुत हो गया किन्तु उसका दाशनिक महत्व बहुत कम सिद्ध हुआ। फिर भी तथ्य यह है कि जोड, जो एक शान्त शास्त्रीय प्रवक्ता थे निबधकार थे एव प्राध्यापक थ ने व्यापक अर्थ मे ब्रितानी जनता म दशन का प्रतिनिधित्व किया। यह ब्रितानी जनता अथवा दशन के विषय मे क्या सिद्ध करता है, मुझ इस बात से कोई सरोकार नही।

---

1. द्रष्टव्य ए रीएलिस्ट फिलोसोफी आव लाइफ (सी० बो० पी० II म) उसके विस्तृत विवेचन के लिए देखें मैटर *लाइफ एण्ड वल्य (1929)*।

अध्याय १२

विवचनात्मक यथायवाद एव अमरीकी प्राकृतवाद

यदि सिद्ध नियमो को दाशनिक उपलब्धियो के साथ भी लागू कर दिया जाता–तो विवेचनात्मक यथाथवादियो द्वारा छोट छोट कानूनी उपद्रव खडे कर दिए होते । एक यथाथवादी होना और उसके साथ ही साथ आदिम धारणाओ स मुक्त होना यही एक लक्ष्य था जिसने अनेक प्रकार के विचारको का ध्यान अपनी ओर खीचा–अय मामलो मे चाहे उनक उद्देश्य कितने ही भिन्न क्यों न रहे हों ।

ब्रितानी[1] विवचनात्मक यथाथवाद उन्नीसवी शती क उत्तराद्ध म स्कोटलण्ड में प्रादुभू त हुआ । वहा भी अमरीका की तरह रीड की सामा य बुद्धि सबधी धारणा को पूणत नए तत्वदशनो की उत्साहो लहर द्वारा बहाया नही जा सका था । हम उसके अश यदाकदा उभरते हुए नजर आ ही जाते हैं, खासकर विचारो का द्वद्व प्रस्तुत कराने वाले स्कोटीय दाशनिक एस० एस० लौरी[2] म देखे जा सकते हैं । इन्होने अपने प्रत्ययवाद के लिए यह मानना स्वीकार कर लिया था कि मैं दूरी पर विद्यमान एक ऐसे पदाथ के प्रति सचेत हो सकता हूँ जो विस्तीण है, स्थानीय सत्तावान, रुपवान है रगमय है, तथा कुछ भार वाला है । ऐसे ही एक दूसरे स्कोट एन्ड्र्यूसेथ (प्रिंगल पैटीसन) थ । उनके विषय म हम पहले विचार प्रस्तुत कर चुके हैं ।[3] इन्होने प्रकृति को मनुष्य से स्वतत्र बताने मे कोई कसर नही उठा रखी थी, यद्यपि काण्ट के दोघ शिष्यत्व मे रहने

---

1 जमनी म विवेचनात्मक यथाथवाद का ही एक रूप 1887 मे ही ए० रील द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया था । जे० बी० प्रेट की पुस्तक पसनल रीएलिज्म (1937) म लिखित ऐतिहासिक टिप्पणी देखें । एव उबरवेग कत डी रिअलिस्टि से रिचतग के चौथे अड्क को देखें । इस पुस्तक क 259 पृष्ठ मे दी गयी पुस्तको पर टिप्पणी देखें ।

2 उनकी कति सिन्थेटिका (1906) तत्वदशन मे प्रत्ययवादी तथा ज्ञानमीमासा मे *यथाथवादी होने का अच्छा व्यक्तिगत प्रयास है । द्रष्टव्य जे० बी० वली कत प्रोफे* सर लौरीज नचरल आइडियलिज्म (माइण्ड 1908) एव लौरी के फ्रासीसी शिष्य जी० रेमकल कत ला फिलोसोफी डी० एस० एस० (1909),

3 द्रष्टव्य अध्याय चौथा प्रिंगल पटीसन कत बलफोर लेक्चस आन रीअलिज्म जो फिलोसोफिकल रिव्यू (1892 4) मे प्रकाशित हुए कि तु जो 1933 तक पुस्तकाकार रूप म प्रकाशित न हुए । माइण्ड 1934 म सलग्न स्मरणाण तथा जोन लयड का निबध देखें ।

के कारण पूर्णत स्कोट परम्परा के प्रकृत यथार्थवाद की ओर लौट जाना उनके लिए असमव हो गया है । यहा यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वे काण्टवादी रहते हुए भी यथार्थवादी होने की आशा करते थ । उन्होने अपने आपको एक विवेचनात्मक यथार्थवादी कहा भी है ।

सब प्रकार क आदिम यथार्थवाद क विरुद्ध वे यह लिखत हैं कि चत य सत्ता वस्तुओ मे निहित प्रवृत्ति के अनुसार अपन स परे नही जा सकती । जिसे हम सीधे रूप म जानते हैं उसका भाव हमारे मन म होना ही चाहिए चाहे इस के कारण हमे हमसे स्वतत्र एक जगत की सत्ता को मानना ही क्यो न पड जाए ।

उन पर स्वाभाविक रूप स अमरीकन विवेचनात्मक यथार्थवादियो की भांति लाक के सिद्धात की पुन स्थापना करने का अभियोग लगाया जिसे सभी जगह प्रतिनिधि प्रत्यक्षीकरण का सिद्धान्त कहकर अनादत किया गया था । सेथ का उत्तर है कि लौक ने एक भीषण भूल की । उन्होंने यह सोच लिया कि ज्ञान केवल प्रत्ययो का ही होता है जबकि दरअसल ज्ञान प्रत्ययो के जरिए होता है । यद्यपि हम सीधे रूप म प्रत्ययो का बोध होता है ये वो नही है जिन्हे हम जानते हैं । यहा आकर सेथ स्टाउट के साथ हो जाते हैं जिनकी प्रारम्भिक रचनाओ का निर्भीक होकर वे सदभ भी देते हैं ।

सेथ की प्रमुख आलोचना का लक्ष्य सघटनवाद रहा । यदि अनुभव को वस्तु-सदभ मे न देखा गया तो वह अस्थायी अवस्थाओ का असम्बन्धी क्रम मात्र रह जायगा । यदि मिल के सघटनवाद को पढते समय हम यह दिखाते हैं कि हम उन्हे समझ रहे हैं तो इसका कारण यही है कि हम स्वत ही सवेदना की स्थायी सभावनाओ के स्थान पर वस्तु को रखकर चलते हैं । सामान्य रूप स इन दानो मे कुछ मिलता जुलता अश भी है । प्रत्ययवाद एव सघटनवाद हमारे समक्ष यथार्थवादी धारणाओ से चुपचाप कुछ उद्धृत करके यहा बाह्य वस्तु-जगत् को स्थानापन्न करके प्रस्तुत कर सकते हैं । कही न कही यथार्थवादी हुए बिना कोई भी एक सगत दशन का निर्माण नही कर सकता, सेथ की दृष्टि म यथार्थवाद के पक्ष मे यह प्रमुख तक है ।

एक अन्य स्कोटवासी राबट एडेमसन की रचनाओ म उत्तर-काण्टवादी प्रवृत्ति का एक दूसरा रूप मिलता है । एडेमसन जो विद्वान् के रूप म विख्यात थ, ने कभी भी अपने सिद्धान्त को गोलमोल करके प्रस्तुत करने का प्रयास नही किया । डब्लू आर सोरले द्वारा द डेवलपमेण्ट आव मोडन फिलोसोफी (1903)[1]

1 देखें सोरले कत परिचयात्मक स्मरणाश एच० जोन्स के एडेमसन पर लिख निबध (माइण्ड 1902), जी० डाउस हिक्स माइण्ड (1904), डी० ए० रीज (फी० क्यू० 1952) सेथ की भांति एडेमसन भी लोज के प्रभाव म आगए थे । लोज

मे एडेमसन के निबधो एव भापणो का एक श्रमसाध्य सकलन है। इसमे प्रस्तुत विचारधारा का नवका टवादी विचारधारा से मेल बठता है।

एडेमसन के कथनानुसार अनुभव, स्पष्टत मन या उसके पदाथ की सत्ता के बीच कही भी स्थापित नही हो सकता जो आतरिक एव बाह्य दो भिन्न अवस्थाओ को प्रकटाते हैं। इसके साथ ही साथ अनुभव इस भेद से भिन्न भी नही हो सकता। यह तथ्य कि हमारे कुछ प्रत्यक्षीकरण दिकीय हैं इस अभिज्ञान का सूत्र देते हैं कि कही इनसे स्वतन्त्र जगत् भी है। यह एडेमसन द्वारा कान्ट की इस विचारधारा की कि दिक हमारी बाह्यानुभूति का आकार है पुन व्याख्या है। हम शन शनै यह जान लेते हैं कि हमारा अनुभव द्विपक्षीय है। ससीम सत्ता की जिन्दगी का एक क्षण भी ऐसा अश अपने म समाहित किए रह सकता है जो उस सत्ता की जिन्दगी का एक भाग न हो—और चूकि बाह्य और आन्तरिक दिक का भेद हमारे प्रत्यक्षीकरण पर आश्रित है, हम न तो यह कहना चाहिए कि हमारा ज्ञान आन्तरिक के विषय म है (आत्मपरक वादियो की भाति) और न हम यही कहना चाहिए कि जो कुछ हम जानते हैं वह इस आतरिकता मे स्वतन्त्र है (जसा कि आदिम यथार्थवादी मानते हैं)।

इस प्रकार एडेमसन द्वारा प्रस्तुत विवेचनात्मक यथाथवाद आदिम यथार्थवाद एव आत्मपरकतावाद के बीच समन्वय है। यथार्थवादियों के साथ एडेमसन इस बात का खण्डन करते हैं कि अनुभव मन की आश्रित अवस्थाओं के ज्ञान का ही नाम है। आत्मपरकवादियो के साथ व इसका खण्डन करते है कि वह मानसेतर अवस्थाओ के ज्ञान का नाम है। उनकी दष्टि मे तथ्य यही है कि जो कुछ अनुभव किया गया है वह मन के साथ किसी प्रकार के सबध होने के कारण अनुभव नही किया गया हैं। क्योकि अनुभव मनोज्ञान एव वस्तु-ज्ञान दोनों से पहल की स्थिति है।

ब्रितानी विवेचनात्मक यथाथवादियो म सबसे प्रवीण एव सूक्ष्मदर्शी मानचेस्टर मे एडेमसन के ही शिष्य जी० डाउस हिक्स[1] थे। एडेमसन से अलग उन्ह न

के इस कथन से यथाथवाद का आदश लेकर की गई जाच स ही प्रत्ययवाद को उपलब्धियो की पुष्टि का जा सकेगी यह बात एडेमसन की दाशनिक जाचो का ध्येय हो सकती है। सयुक्त राज्य म जी० एस० फलटन ए सिस्टम आव मेटाफिजिक्स (1904) नामक रचना को विचारो के इसी आदोलन की एक कडी माना जा सकता है।

1 द्रष्टव्य डब्लू० जी० डीबरा रचित स्मारक सूचना (पी० पी० ए० 1941)

केवल प्रत्ययवाद के विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा करनी पडी थी, अपितु अधिक महत्वपूर्ण ढग से मूर एव रसेल के इद्रिय सवेदन सिद्धात एव नव तथा एलक्जेण्डर के यथार्थ के विरुद्ध भी खडा होना पडा। शास्त्रीयता के प्रति लगाव होने से व अपने दर्शन में निरन्तर विकास नही प्रस्तुत कर सके। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन क्रिटिकल रीयलिज्म (1938) है जो भाषणों एव निबधो का सग्रह है।

उन्होने मीनोग को बडी सतर्कता से पढा था और मूल तत्वो को वे गुणो का समूह मानते हैं और इसी तरह व प्रत्यक्षीकरण का अपना सिद्धात निर्मित करते हैं। प्रत्यक्षीकरण का सतापप्रद विश्लेषण एक नही तीन मूलतत्वो से ही किया जा सकता है। पदार्थ का मूल तत्व वह मूल तत्व है, जिसका तत्काल बोध हम होता है और प्रत्यक्षीकृत क्रिया का मूलतत्व अब पदार्थ व प्रत्यक्षीकृत क्रिया दोनो जहा अपने मूल तत्वों की *विशेषताओ के कारण भिन्न इयत्ताए हैं वहा तात्कालिक बोध इस प्रकार* की किसी तीसरी इयत्ता की अपेक्षा नही रखता जैसे कि एद्रिय सवेदन। मूर द्वारा दिए गए चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण के विवरण से सर्वप्रथम सचेतता की एक मात्र क्रिया ही विद्यमान रहती है। तब कुछ गुणो से युक्त एक थपडा (पच) उभरता है और तब कही जाकर कोई पदार्थ, जिससे किसी न किसी तरह वह थपडा सबधित होता है। डाउस हिक्स के अनुसार न तो कोई थपडा है–न कोई रूप और न ऐसी कोई इयत्ता ही है–सिवाय सचेतता एव पदार्थ के। इन दोनो मे से एक से हमारे बोध मे प्रकट पदार्थ सबधित होना ही चाहिए।[1] कोई यह आपत्ति कर सकता है कि पहले दृश्यमान रूप तो होना चाहिए क्योकि वस्तुओ के लिए यह कहना निरर्थक नही है कि व विभिन्न मनुष्यो के लिए भिन्न भिन्न रूप म प्रस्तुत होती हैं। डाउस हिक्स इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि एस वाक्यो म एक दृश्यमान रूप किसी इयत्ता का नाम नही होता। यह कहना कि वस्तुए विभिन्न रूप म प्रस्तुत होती हैं–इस बात को कहने का गलत तरीका है कि व भिन्न भिन्न आदमियो को भिन्न भिन्न रूपो मे दिखाई देती। है इस प्रकार के भेद होना कोई आश्चय का विषय नही है।

एडमसन के साथ सहमत होते हुए डाउस हिक्स कहते है कि प्रत्यक्षीकरण विलगीकरण (डिसक्रिमिनेशन) की क्रिया है। हमारे वातावरण की सारी जटिल स्थितियो म से कुछेक का चुनाव है। उसी वातावरण म रख जाने पर भी अलग

---

1 देखें आर व मेटीरियल्स आव द सेंस अफक्शन्स आव द माइण्ड ? (पी० ए० एस० 1916) पर डाउस हिक्स ए। मूर के विचार। उनके अनुमान की क्रिया के सिद्धात के लिए देख 1920 म पी० ए० एस० द्वारा प्रस्तुत विचार–विमश जिनम लेयड मूर, ब्रोड एव डाउस हिक्स आदि ने भाग लिया।

अलग द्रष्टा गुणों की विभिन्न इकाइयों को चुन लेंगे—डाउस हिक्स की दृष्टि में यही बात दोष का भी कारण बनती है। पेड़ की टहनी पर पत्तियों के बीच बैठ कर गाते हुए पक्षी के काले पंखों का पता लगाना किसी द्रष्टा के लिए मुश्किल हो सकता है और वह गाते हुए पक्षी को हरे रंग का मान सकता है। एक दूसरे दर्शक की आँखें पत्तियों पर पड़ रही सूर्य की किरणों के पीलेपन से चकाचौंध हो सकती हैं और वह पक्षी का रंग नीला मान सकता है। यदि ऐसे मामलों में कोई विवाद उठता है तो उसे निपटाने के निश्चित तरीके हैं—ऐसे तरीके जो हमें वैसी ही निश्चतता प्रदान करते हैं जो अनुभववादी जाँच पड़ताल के पश्चात् हमें प्राप्त होती। इस तरह आदिम यथार्थवादियों की भाँति न तो यह मानने का कोई आधार है कि एक प्रत्यक्षीकरण अन्य सभी प्रत्यक्षीकरणों की ही भाँति मूल्यवान हैं और न मूर और रसेल की भाँति यह मान लेना कि जिसे द्रष्टा देखता है वह एक विचित्र प्रकार की इयत्ता है जिसे दृश्यमान रूप या ऐंद्रिय संवेदना कहा जा सकता है। ये दोनों ही पक्षी के वास्तविक गुणों की द्योतक नहीं हैं।

ऐंद्रिय संवेदन के लिए भौतिकी में प्रस्तुत कोई भी प्रमाण ऊपर दिखाए गए दोष से अधिक विश्वासयोग्य नहीं। यह तो सामान्य धारणा है कि किसी वस्तु का रंग भौतिकी के अनुसार परमाणुओं के कम्पन के अतिरिक्त और कुछ नहीं तो भी जो रंग हम देखते हैं वह केवल कम्पन नहीं हो सकता। इससे यही निष्कर्ष निकला कि जो कुछ हम देखते हैं वह निश्चय ही ऐंद्रियाघात होना चाहिए किसी भौतिक पदार्थ का गुण मात्र नहीं। हिक्स के मतानुसार भौतिकी यह बताने में अभी तक असमर्थ है कि परमाणुओं का कम्पन या तो किसी वस्तु के रंग का भौतिक समानधर्मी है—अथवा उसका कारण है। एक चमकीला पदार्थ (बाडी) लाल रोशनी से जगमग हो सकता है और ऐसे परमाणुओं का भी बना हो सकता है, जो एक सेकिण्ड में चार करोड़ की गति से प्रवहमान होते हैं। इससे यह तो तय हो गया कि भौतिक पदार्थ जिन गुणों को धारण करते हैं उन सबको हम नहीं देख सकते और इसी कारण यह मान लेना कहाँ तक संगत है कि शेष के गुण किसी अन्य इयत्ता के अंग हैं और उसे ऐंद्रिय संवेदन कह सकते हैं।

इस प्रकार डाउस इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस बात पर विश्वास करने का कोई ठोस कारण नहीं है कि जिसे तात्कालिक रूप में हम देखते हैं वह ऐन्द्रिय संवेदन हैं। इसके विपरीत ऐन्द्रिय संवेदन के सिद्धान्तक लोग अपनी इयत्ताओं के आवास का एक निश्चित स्थान निर्धारित नहीं कर सकते। एक गरीब द्वारा किए गए संबंधों की भाँति वे कभी मानवी शरीर और कभी भौतिक पदार्थ के बीच में प्रमाण करते रहते हैं और दोनों ही उससे घृणा करते हैं। तो भी उन्हीं की उदारता पर आश्रित रहने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा नहीं। यदि पूछा जाय कि

किस प्रकार ऐन्द्रिय सवदन किसी कम्पनशील परमाणुओ का प्रकट रूप हो सकता है, ऐन्द्रिय सवदन क सद्धातिक यह कहने लग जाते हैं—उनकी दृष्टि उस छोटे से प्रश्न म न होकर कही अन्य लगी है। यदि हम यह मानलें कि अमुक अमुक रग दखते समय कम्पनशील परमाणु हमारी चक्षुर्इन्द्रियो को अपनी ओर आकर्षित करके उत्तेजित करते हैं तो बिना किसी वैज्ञानिक प्रमाण के हम मुश्किलो को पार कर सकते हैं।

डाउस हिक्स द्वारा प्रस्तुत विवेचनात्मक यथार्थवाद तब पदार्थ एव गुणो क भेद की व्याख्या पर आधारित है। गुण वही है जिसका तात्कालिक बोध हमे हो, पदार्थ वही है जो हमे उपयुक्त बोध प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है। इस तरह गुण न तो अस्तित्वशील और न अनुजीवी सत्ता ही है, जबकि पदार्थ और बोध मयी क्रियाए सत्तावान हैं। बहुत से अमरीकी नवयथार्थवादियो ने अपनी धारणाओ को इस अन्तर पर आश्रित रखा। कुछ अन्यो की धारणा थी कि बोध के समय तत्काल जो पदार्थसमक्ष आता है वह अपनी मौलिकता के कारण स्वयमेव एक सत्ता है।

ऐसेज इन क्रिटिकल रीअलिज्म ए कोम्रोपरेटिव स्टडी आव द प्रोब्लेम्स आव नॉलिज नामक ग्रथ मे जिसम डी० ड्रक ए० ओ० लवजोय, जे० बी० प्रेट ए० के० रोजस जी० सण्टयाना आर० डब्लू० सेलस तथा सी० ए० स्ट्रोग जसे सह योगी हैं उसम व्याख्यायित विवेचनात्मक यथार्थवाद अपने व्यापक रूप मे नवयथार्थ वाद के प्रतिरोध मे उठाई गई एक आवाज है। किसी प्रकार के आदिम यथार्थवाद के विरोध म सभी विवेचनात्मक यथार्थवादी इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्यक्षीकरण के तीन मूलभूत तत्व है प्रत्यक्षीकरण की क्रिया, प्रस्तुत अवस्था और दृश्यमान पदार्थ।

होल्ट एव परी की यह मान्यता थी कि जिनका तात्कालिक बोध हम होता है वह वस्तु क जटिल रूप हैं। उसके जटिलतम रूप एव वस्तु का तब वे तादात्म्य कर दते हैं। विशेष रूप स उस समय व वस्तु को उसके विभिन्न प्रकट गुणो का आकलित रूप मानते हैं। वस्तु और उसक जटिलतम रूपो क इस तादात्म्य को विवचनात्मक यथार्थवादी अस्वीकार कर दत हैं। क्योकि इससे वस्तु सबधी उस सामान्य प्रत्यक्षीकरण की धारणा का खण्डन हो जाता है जिसके अनुसार उसका रूप एव स्थान एक ही माना गया है। प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुओ को स प्रकार नवयथार्थवाद स खण्डित होने स बचाने के लिए वस्तुओ एव उनक जटिल रूपो के तादात्म्य के विचार का परित्याग करना होगा क्योकि यह जटिल रूप वस्तु की उपस्थिति का बोध देन वाले दिग्दर्शन के अलावा और कुछ नही हो सकता।

स्पष्ट ही तब विवेचनात्मक यथार्थवादियो को बकले की इस सुपरिचित आपत्ति का सामना करना पडेगा जिस तात्कालिक रूप से हम देखते हैं। यदि वह सबका ही उसका जटिल रूप है, तो यह जानना तो और भी मुश्किल है कि अमुक स्थिति उस जटिल रूप से भिन्न कोई अन्य वस्तु है। विवेचनात्मक यथार्थवादी इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि बकले का तर्क यह मानता है और इसी बात पर लॉक भी भटक गए थे कि विशिष्ट इयत्ता के रूप मे हम सर्वप्रथम जटिल रूप को देखते हैं और तब हम अपने आपसे ही जानने की कोशिश करते हैं कि वह हम वस्तु ज्ञान की किस दिशा की ओर ले जाता है। वास्तव मे इस प्रकार की प्रत्येक जटिलता बिना भौतिक वस्तुओ के विशिष्ट सदर्भ के प्रारम्भ से ही बिखरी रहती है।

बात को यहा तक तो सारे विवेचनात्मक यथार्थवादी भी स्वीकारने का तयार थे, किन्तु वस्तु के जटिल रूप की प्रकृति की व्याख्या मे सब एक मत नहीं थे। सन्टयाना एव उनके अनुयायी स्ट्रॉग, ड्रेक एव रोजस इस जटिल रूप को समष्टियो की आकलित इकाई या सारतत्वो का एकीकरण मानते हैं, जिसे इस प्रकार आकलित होते हुए एक विशिष्ट वस्तु मे देखा जा सकता है। किन्तु ये स्वत न तो अस्तित्वशील हैं और न अनुजीवी। यह पूछना कि यह जटिल रूप कहा स्थित है ? उसकी प्रकृति को ही गलत समझ लेना है। रूढ़िवादी विचारकों के लिए स्थिति इसके विपरीत है। उनके लिए विश्लेपण जो कि तात्कालिक बोध नही है एक विशिष्ट मानसिक अवस्था के तत्व के रूप मे इस जटिल रूप वाली स्थिति को प्रकटाता है। इसलिए इस प्रश्न का कि इसकी स्थिति कहा है स्पष्ट उत्तर यही है मन मे'।

इस बिन्दु के साथ एक अन्य बिन्दु भी अपरिहाय रूप से जुडा था वह था उस तरीके की खोज करना जिससे वस्तु का जटिल रूप अपने से इतर किसी अन्य स्थिति की ओर इंगित करता था। उदाहरणाथ, सेलस इसके समथन के लिए वाड स्टाउट एव गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको का सदभ प्रस्तुत करते हैं और वे एडेमसन का सदर्भ भी दे देते तो आश्चय नही था। एक स्वतत्र एव बाध्य वस्तु की धारणा प्रारभ से ही हमारे प्रत्यक्षीकरण मे प्रस्तुत बाध्यता के धूमिल सदर्भ के कारण विकसित होती है। विकास की इस प्रक्रिया को जब मनोविज्ञान विस्तार मे चर्चित कर सकता है। सण्टयाना इसके विरुद्ध मनोविज्ञानवादी नही थे। हम मनोवैज्ञानिको की भाति अनुभव नही करते, जानवरो की भाति अन्त प्रेरणा से यह अनुभव करते हैं–वस्तुए हमारी सत्ता से स्वतन्त्र होकर विद्यमान हैं और हमारे द्वारा अनुभव किए गए अपने जटिल रूप की कुछ अवस्थाओ को व उजागर करती हैं। हमारी यह अन्तर्जात अनुभूति उचित नही है, किन्तु यह इतनी प्रबल है कि इसके औचित्य की आवश्यकता भी नही है।

विवेचनात्मक यथार्थवादियो के दो पक्षो का अन्तर काफी था और बहुत स्पष्ट था और एक समूह के रूप म खडे हो जाने का इनका इतिहास काफी लम्बा था। इसके साथ ही साथ विवेचनात्मक यथार्थवाद का प्रमुख प्रयत्न नवयथार्थवादी धारणाओ को उनके उसी रूप म स्वीकारना जिसम व प्रत्ययवाद का खण्डन करते हैं इस बात म निहित था कि इस समुदाय के दोनो वर्गों के सदस्यो द्वारा बहुत सी रचनाओ का प्रकाशन किया गया।

इस प्रकार लवजोय, जो द ग्रेट चेन आव बीग (1936) लिखकर कल्पनात्मक विद्वत्ता की अद्वितीय क्षमता के धनी सिद्ध हुए ने रिवोल्ट अगेस्ट ड्यूएलिज्म (1930) की रचना की जो विवेचनात्मक यथार्थवादी आन्दोलन की सबसे प्रभावशाली एव ठोस रचना थी। अपनी विद्वता का उपयोग प्रस्तुत विरोधास्पद मामला मे करके लवजाय नवयथार्थवादियो पर सहज द्वन्द्वात्मक विधि का उपयोग करके व नगण्य व्यक्तियो की बातो को बढा चढाकर कहकर अपना रास्ता प्रशस्त कर लन का अभियोग लगाते हैं। इसके साथ ही व शिलष्टात्मक ढग से लाक एव प्रत्यक्षीकरण के प्रतिनिधिकरण क सिद्धा त का पक्ष भी ल लेते हैं। व यह बात विस्तार म वर्णित करने का प्रयास करत हैं कि आधुनिक अप्रतिनिधिकरणवादी जिनम जेम्स स्मिथ, व्हाइटहैड एव रसल भी शामिल है यह पता लगान के अयोग्य रहे हैं कि उन प्रच्छन्न विचारो डिलमाज) से कसे बाहर आए जो मूलत सभी विचारशील मनुष्यो को प्रत्यक्षीकरण की प्रतिनिधि सिद्धान्त के किसी न किसी रूप का स्वीकार करते आए हैं। प्रतिदिन घटित होन वाली घटनाए भ्रम स्मृतिया, अपेक्षाओ आदि का भी नवयथार्थवादियो के समय विचारको द्वारा कोई सतोषप्रद विवरण प्रस्तुत नही किया जा सका। य विचारक शरीर विज्ञान एव भौतिकी के प्रमाणो का उपयोग करने मे भी असफल रहे, जिनम कहा गया है कि वस्तुए मूलत वसी नही है, जसा हम उन्ह देखते हैं। सामान्य बोध क विचार के रक्षक होने का मुखौटा ओढ़कर नवयथार्थवादियो ने दनिक व्यवहार म आन वाली वस्तु के उस रूप को ही नष्ट कर दिया है जिस पर सृष्टि सम्बन्धी सामान्य बुद्धि धारणा टिकी है। इस धारणा के स्थान पर उन्होने एक असगत गुणो की अविश्वसनीय अवस्था का प्रवत्तन कर दिया है, केवल विवेचनात्मक यथार्थवादी एक चिन्तनशील मनुष्य के विश्वासों की सुरक्षा कर सकते हैं। लवजाय इस यथार्थवाद का क्या स्वरूप होता इसका चर्चा से इतने सबद्ध नही हैं जितने उन दार्शनिकों पर प्रहार करने मे लगे हैं जिनका यथार्थवाद किसी विवक्ष्य दृष्टि से असपृक्त रहा हो।

अन्य विवेचनात्मक यथार्थवादियो म स्ट्रोग[1] थे इनकी लिखी अनेक पुस्तको

---

1 द्रष्टव्य द फिलोसोफी आव जो सण्टयाना म सेंटयाना द्वारा स्ट्रोग पर लिखा निबंध (स० शिल्प 1940) डब्लू० पी० माटग्यू मिस्टर सी० ए० स्ट्रोंग्स फीथ फार स्केपटिक्स (जे० पी० 1939)

की शृंखला की प्रथम कडी 1903 म व्हाई द माइण्ड हैज ए वाडी' नाम से प्रकाशित हुई और अपनी विस्तृत विवेचन म शन शन परिवतन एव परिवद्धित होत हुए वे 'ए क्रीड फार स्केप्टिक्स (1936) नामक पुस्तक की रचना करत हैं और इसके एक व्यापक मनोयतिवाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील लगते है। इम यतिवाद का विवेचनात्मक यथायवाद केवल एक तत्वाश ही है। अधिकाश समय तक अपेक्षित रहने के बाद भी स्ट्रोग ड्रेक म परिवतन लाने म काफी सफल रहे जिनकी पुस्तक द माइन्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर (1925) उनकी दाशनिक मान्यताओ का बहुत विशद चित्रण करती है।

स्ट्रोग एव ड्रेक नवयथार्थवादियो से इस बात मे सहमत है कि एक ऐसा अभिधान अवश्य है जिसमे से सभी वस्तुए निर्मित होती हैं चाहे यह अभिधान तत्वो स निर्मित हो या नही। व अभिधान एव ढाचे म एक स्पष्ट अन्तर मानत, है भौतिक विज्ञान वस्तुओ के क्रम या ढाचे की याख्या करत हैं और जिसका तात्कालिक बोध हम होता है समवत उसका अधिकाधिक अनुमान इतना ही लगाया जा सकता है केवल एक स्थान पर हम अभिधान एव ढाचे का भेद मालुम होता है वह है हमारे द्वारा अपने मन का ही पयवेक्षण। वस्तुए जिस रूप म अनुभव करती है इसका थाडा अदाज इस बात स हम हो सकता है यह कोई मनोवैज्ञानिक ज्ञान नही है मनोवैज्ञानिक तो ढाचे की ओर देखता है मस्तिष्क एव नाडी सस्थान का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त ऐसे अन्य किसी अभिधान का ज्ञान हम नही होता जिनसे भौतिक वस्तुओं का निर्माण हुआ हो इसलिए यह मानना युक्ति सगत है कि यही वह अभिधान है जिससे भौतिक वस्तुए बनती है। स्ट्राग एव ड्रेक यह बताने का प्रयास करते है कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी दष्टिकोण से हम मन एव वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध का सतोषप्रद जवाब नही दे सकते और न प्रकृति म मन का स्थान ही निर्धारित कर सकते हैं।

स्ट्रोग एव ड्रेक दोनो अपन आपको प्रकृतवादी या भौतिकवादी कहलाने मे सुख का अनुभव करते थे, मूलत इसलिए कि वे यह नही मानते थ कि मन प्राकृतिक क्रम से छिटककर अलग हुई कोई स्थिति है। मनोवैज्ञानिक की भाति यदि इसका अध्ययन करेंगे तो मन अवयव की सचेत प्रतिक्रिया मात्र है। अतज्ञान से देखें तो प्राकृतिक पदार्थों के साथ इसका अभिधान सिद्ध होता है। दोनो ही अवस्थाओ म यह कोई माध्यमिकी स्थिति नही है, प्राकृतिक जगत म मन कोई अति प्राकृति केन्द्र नही है।

आर० डब्लू० सेलस[1] के द्वारा एक अन्य प्रकार क प्राकृत विवेचनात्मक

1 द्रष्ट य सेनस के विषय के जानने के लिए जे० एल० ब्लाउकृत मैन एन मूमेण्टस इन अमेरिकन फिलोसोफी (1952) सेलस द्वारा रचित ए स्टेटमण्ट आव क्रिटिकल रीयलिज्म (आर० पी० आई० 1938, सेलस की रचनाओ पर पी० पी० आर० मे हुई चर्चाए (1954) एव (1955 मे) उनके उत्तर।

यथार्थवाद (नेचुरलिस्टिक क्रिटिकल रिएलिज्म) की पुष्टि की गई। इसका प्रवर्तन उन्होंने बहुत से निबन्धों एवं पुस्तकों के जरिए किया जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय ए फिलॉसोफी आव फिजिकल रीअलिज्म (1932) है। भौतिक यथार्थवाद से उनका तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु काल एवं दिक में ही विद्यमान है और या तो वह स्वयं एक भौतिक प्रणाली है या किसी भौतिक प्रणाली में अपनी सत्ता में जुड़ी है इस प्रकार उन्होंने मन के 'छायाछाया' के सिद्धान्त को स्वीकार किया उनके अनुसार मन अवयव का परिवर्तन नहीं कर सकता क्योंकि वह मस्तिष्कीय अवस्थाओं के कारण से ही विद्यमान है इसी कारण किसी भी प्रकार का निपट यथार्थवाद असमीचीन है। भौतिक पदार्थ से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मन अवयव से बाहर नहीं निकल सकता। यही सेलर्स के विवेचनात्मक यथार्थवाद एवं प्राकृतवाद को जोड़ने वाला बिन्दु है।

प्राकृतवाद के प्रारम्भिक भेद टूट गए क्योंकि उनमें स्तर की धारणा का निर्वाह नहीं हो सका। एलेक्जेण्डर की भांति सेलर्स भी विकासोद्भव के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं किन्तु उनमें उनमें एक बात भिन्न है वह यह कि जो कुछ विकसित हो रहा है वह कालातीत नहीं है किन्तु अमुक अमुक प्रकार की हो कोई भौतिक प्रणाली है। इस प्रकार हम यह नहीं मानना चाहिए कि मन एवं मूल्यों को किसी और अवस्था में भी बदला जा सकता है। सब वस्तुएं प्राकृतिक हैं इस सिद्धान्त को इस सिद्धान्त से भिन्न रखना चाहिए कि प्रकृति एक है जिसका रूप सभी वस्तुओं में प्रकटता है। सेलर्स न तो डीवी के प्रति और न हैकेल के प्राकृतवाद के प्रति ही अधिक सहानुभूत हैं। उनकी दृष्टि में डीवी ने 'अनुभव' के केवल मानवी रूप से शुरूआत करके गलती की जबकि वास्तव में कोई भी संगत प्राकृवाद भूतवादी होना चाहिए अर्थात् भौतिक पदार्थ ही उसका आरम्भिक बिन्दु होना चाहिए।

सभी नहीं तो बहुत से विवेचनात्मक यथार्थवादी तो अपने प्रातिवाद (ऑन्टोलॉजी) में प्राकृतवादी थे। इनमें सर्वविदित हैं सण्टयाना जिनका विवेचनात्मक यथार्थवाद, प्राकृतवाद के प्रामुख्य को लेकर हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका के बौद्धिक जीवन में सण्टयाना अत्यन्त महत्व के दार्शनिक सिद्ध हुए हैं। इंगलण्ड में इनका प्रभाव बहुत कम रहा। यद्यपि बर्ट्रेण्ड रसल जैसे विचारकों की प्रशंसा उन्हें प्राप्त हुई और साहित्यिक जगत में भी उनका नाम चला तो भी उनके दार्शनिक होने के सम्बन्ध में ब्रिटेन में कोई विवाद नहीं[1] है।

---

1 इस तरह रसल ही एक ऐसे ब्रिटिश विचारक हैं जिन्होंने द फिलासोफी आव जार्ज सण्टयाना (सं० पी० ए० शिल्प 1940) वाले ग्रन्थ में योगदान दिया है। ग्रेट ब्रिटेन में सण्टयाना की ख्याति केवल ग्रेट पोएट्स अथवा जेम्स फ्राम सण्टयाना के कारण ही हुई। इनमें प्रस्तुत शक्तियों के कारण ही ये पुस्तकें अपना स्थान प्राप

यदि दशन का क्वल विश्लपण या दनिक धारणाम्रा का स्पष्टीकरण मानलें ता सण्टयाना को कभी कभी दाशनिक की सज्ञा दी जा सकती है। उनका स्थान शोपनहावर की भाति है जिनक व काफी ऋणी है या फिर उन्ह मूर या मक्टेगट क साथ जाडने क बजाय नीत्शे के साथ जोडा जा सकता है। उनकी रचनाए विशाल हैं व महाक्याकार विचारक है और वे जितन अपने एपरकस) के लिए विख्यात हैं उतने दाशनिक प्रयत्न के लिए नही। उनकी शक्ति पाठको को एकदम चौका दन म निहित है और यह चकाचाध किस विन्दु पर आएगी यह पाठकों की मन शक्ति पर निभर करता है। यह तथ्य स्पष्ट ही एक इतिहासकार क लिए समस्या खडी कर दता है। यह समस्या उम समय और भी प्रवल हा जाती है (जसी कि इम पुस्तक म हमारे लिए हा गई है) जब नीति शास्त्र एव सौन्दय शास्त्र की चर्चा मे वे मुह फर लत हैं। प्लटो के द्वालापो की भाति सण्टयाना की विचारधारा म यह पता लगा लना मुश्किल है कि नीति शास्त्र कहा समाप्त होता है और तत्व दशन कहा प्रारम्भ होता है। उनकी रूचि के विपय तो मानवी मन एव मानवी सस्कृति है उनका तत्व दशन जस ही केन्द्रीय बिन्दु स च्युत हो जाता है वैस ही वह दुरूह होता जाता है। यह बात अब आश्चयजनक नहीं है कि उन्होने 1935 मे व्यापक रूप म पढा गया एक उपन्यास भी लिखा जिसका नाम द लास्ट प्यूरीटन था।

यहा की गई टिप्पणी सण्टयाना की सवाधिक प्रभावशाली रचना तथा निरन्तर शृखला म लिखी गई पुस्तको पर लागू होती है (द लाइफ आव रीजन 1905-6) इसम सण्टयाना का तत्वदशन क्रियाशील मस्तिष्क ठोस अध्ययन किए जाने स कुछ ही अधिक वचारिक सामथ्य को लेकर मुखरित हुआ है। लाइफ आव रीजन के लिए जा महत्वपूण बात है वह यह कि उन्होन दशन के आकारभूत तत्वो का गमीरता पूवक विवेचन किया है क्योकि सण्टयाना के लिए मनुष्य विवेकशील प्राणी के अतिरिक्त और कुछ नही। इस ससार को बौद्धिक जीवन प्रदान करना

बना सकी। एक सिडनिक अखबार ने एक बार सण्टयाना को पूर्वी क्षेत्र का सन्त कहा था। द्रष्टव्य जी० डब्लू० हाउगेट जोड सण्टयाना 1938 जे० पी० 1954) की सण्टयाना विशेषाक नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म आव सण्टयाना 1933 म लिखे गए सण्टयाना पर कुछ और निबन्ध रसी के 1928 एस० पी० लेम्प्रेज द्वारा लिखा सेण्टयाना दन एण्ड नाऊ 1928 वाला लेख भी शामिल है जे० एच० रडेल व लेटेण्ट आइडियलिज्म आव ए मैटीरियलिस्ट 1931 एम० आर० काहेन को म्लेखें केम्ब्रिज हिस्ट्री आव अमेरिकन लिटरेचर (खण्ड। 1917-21) डी० एल० मरे ए मोडन मेटीरियलिस्ट (पी० ए० एस० 1911) सण्टयाना कृत आत्म कथात्मक खण्ड परसन्स एण्ड प्लेसेज (1944-9) आनन्द एव उपयोग के लिए पठनीय है।

मनुष्य का सबसे बड़ा योगदान है–यह विवेकशील जीवन एक अतिप्राकृतिक व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाकर जानवरों जैसे शरीर से युक्त मनुष्य द्वारा किया जारहा है। इस प्रकार सण्टयाना ने संयुक्त राज्य अमरीका के दार्शनिकों के समक्ष एक ऐसी परिस्थिति में भी एक तीसरा विकल्प रखा जिसमें वरण रॉयस के नीतिवाद एवं हैकेल[1] के न्यून भौतिकवाद के बीच करना पड़ता था। आंशिक रूप से यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि सण्टयाना इसीलिए प्रभावशाली रहे क्योंकि उन्हें गलत रूप में समझा गया।

बहुत से पाठकों के समक्ष तो उन्होंने इस बात को अपने भाव से स्वीकार भी किया कि प्राकृतवाद एवं मानववाद का अर्थ न्यूनीयता नहीं है वहां मनुष्य के अधिकारों की माग है प्रयक्रियावाद एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद एवं ब्रह्माण्डीय संस्कृति जैसे विचारों की भी सिद्धि संभव है।[2] जब सण्टयाना ने इस बात का खण्डन किया कि प्रत्येक मानवी संस्थान के लिए प्रकृति का आधार होना आवश्यक है तो उनके विषय में यह माना गया कि वे मानवी संस्थानों को क्षणिक भावनाओं पर आधारित स्थितियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते जबकि वास्तव में परम्परा के महत्व के प्रति उनका भाव ऐसा था वे चाहे नए रूप में ही क्यों न हों पर अपने को वैधानिक मानने को भी तैयार थे। उनका विचार था कि मनुष्य का आदर कोई इसलिए नहीं करता कि उसने कुछ स्थायी एवं महत्वपूर्ण आविष्कार किए हैं जैसे कि उसके वर्तमान सामाजिक संस्थान। वे तो वास्तव में एक रूढ़िवादी थे जबकि उनकी रचनाओं का प्रभाव क्रांतिकारी था।

लाइफ आव रीजन एवं तत्पश्चात् लिखे बहुत से निबंधों में सण्टयाना ने अपने तत्वदर्शन का विस्तृत विवेचन किया है ताकि वह विवेचनात्मक यथार्थवादियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके। किन्तु उसे 1923 तक जब तक उन्होंने स्केप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ नहीं लिख लिया कोई निश्चित रूप न मिल सका। यह 1927–40 तक लिखे तथा द रील्म्स आव बीग नाम से चार खण्डों में संकलित हुए ग्रंथ के आमुख के रूप में प्रस्तुत हुआ है। वे अद्वितीय महत्व के हैं। द रील्म्स आव एसन्स एवं रील्म आव मैटर जैसे ग्रंथों को लिखकर कोई भी दार्शनिक विषय वस्तु के अनुकूल ठोस लिख देने की आशा कर सकता है तो भी वे यह ठोसता प्राप्त नहीं कर पाए–सण्टयाना स्वयं कहते हैं कि रील्म आव मैटर एण्ड रील्म आव

---

1 द्रष्टव्य एच० एल० कलेन अमेरिका एण्ड द लाइफ आव रीजन (जे० पी० 1921)।

2 द्रष्टव्य उनके दर्शन का सारांश व फिलोसोफी आव जोज सण्टयाना में एपोलोजिया प्रो मेण्टे सुआ नामक विशेष रूप से उल्लेखनीय परिशिष्ट तक में प्राप्य है।

एसन्स दोना म ही मन कुछ मूलभूत बातें ही कही है। और ये मूलभूत बात भी वास्तव म धूमिल है।

स्केप्टिसिज्म एण्ड ऐनीमल फेथ में जो उनकी बाद की रचनाओं म सबसे अधिक पढी गयी, हुसल एव रसेल को प्रतिमान मानकर व तत्वदशन पर डकार्ट की मेडीटेशन्स म प्रयुक्त प्रणाली का उपयोग करते हैं। निश्चित ज्ञान अन्तत किस बात का रह जाता है यह जानन क लिए वे सभी वस्तुओ पर सदेह की दृष्टि रखते हैं किन्तु जहा डेकार्ट का विचार था कि व इस तरह एक निश्चित अस्तित्व मान अवस्था में सोचन वाल क रूप मे तो विद्यमान हू ही, की उपलब्धि कर लेत हैं। सण्टयाना रसल एव हुसल की भाति सन्देह प्रणाली का कडा उपयोग हमारे समक्ष केवल प्रस्तुत एव सारतत्वो' को ही छोड देता है अस्तित्वमानो की कोई वस्तु अस्तित्व म है अर्थात उसका भूत है भविष्य है और वह अन्य वस्तुओ के साथ बाहरी सबधो से भी जुडी है यह बात सदव ही सदेहास्पद रहेगी। जिस बात पर सन्देह नही किया जा सकता वह यही है कि हम एक विशिष्ट सारतत्व का बोध कर रहे हैं।

यह बात प्लटो का स्मरण दिलाती है। किन्तु सण्टयाना का विचार था कि प्लेटो सारतत्वो की ओर नतिक रूप से अग्रसर हुए हैं और जो कुछ निम्न एव अशुभ था उसे त्यागते हुए ही उन्होंने यह सब किया है। इसके विपरीत सण्टयाना के लिए प्रत्येक समव विधेय एक सारतत्व है। सारतत्वो के क्षेत्र से कुछ भी छूट नही सकता एक पापी का साधु के समान ही अधिकार है। काल्पनिक एव वज्ञानिक दोनो का भी विवेकशील प्राणी किसी भी तरह से सारतत्वों का उपयोग सकेता के रूप से करता है। अपने चारो ओर फले जगत को प्रतिबिबित करके देखता है। प्रतिबिम्ब क सिद्धात के विषय म सण्टयाना ने पीयस से सीखा था। पीयस ने सण्टयाना को बताया था कि सारतत्व किस प्रकार अस्तित्व के बिना उनक चित्र रूप हुए विदेशक हो सकते हैं उनकी क्षीण प्रतिलिपिया हुए बिना व विद्यमान हो सकते हैं।

यदि हम सण्टयाना स पूछें कि किस प्रकार हम सार तत्वो स अस्तित्व की ओर जा सकते ह—धातु तत्वो के बोध स किस भाति इस विश्वास की ओर बढ सकत है कि एस अस्तित्व हैं जो इन सारतत्वो म विद्यमान होत है। उनका उत्तर यह है कि हमारा यह विश्वास उस समय जमता है जब हम वस्तुओ क साथ पशु चतना स्तर पर व्यवहार करन लगत हैं हम खाते हैं पीत हैं घायल होते है और चकित भी हो जाते हैं दूसरे शब्दो मे घटनाए हमार साथ घटती हैं। और इस प्रकार हम पदाथ गति एव परिवतन के क्षेत्रो के सूत्र पकडन की क्रिया क शिकार हो जाते हैं।

सण्टयाना बिल्कुल यह मानने को तयार हैं कि हम उस तरह कभी भी पदार्थ के सही क्षेत्र क निर्धारण की दिशा म नहीं पहुच सकते जिस तरह सारतत्वो के सबध

मे विचार करके पहुंच सकते हैं।[1] उनकी दृष्टि म तत्व यही है कि हम वस्तुग्रो का ज्ञान होता है हम किसी वस्तु का उसी समय जानते हैं जब हम उसका कोई विवरण दे सकें जो उसके 'उपयुक्त' हा। अर्थात् इस विवरण से कोई ऐसा जरिया न निकल आए जिससे हम पाशविक स्तर पर उसके साथ निर्वाह कर सकने योग्य हो जाए। ये विवरण जो एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का रूप ही हो सकते हैं सण्टयाना की दृष्टि मे कभी भी भौतिक पदार्थों की नकल प्रस्तुत नही कर सक्ते। विचार सृजनशील हैं कार्यात्मक हैं, दर्पण म प्रस्तुत हुए बिम्ब जस नही हैं। विवरण जो प्राणी मात्र के लिए सकेत के सूचक होते हैं उन खतरो क विरुद्ध चेतावनी होत हैं जो उसके समक्ष प्रस्तुत होने वाली हैं किसी भी रूप म 'सही' नही हैं। उन्हे वज्ञानिक धरातल पर स्थापित हुई अवस्थाग्रो के रूप म स्वीकार कर लेना युक्ति युक्त हो सकता है किन्तु अपनी वाणी मे ऐसा कहते हुए व्यग्य के स्तर तो होगे ही।

विवेकशील मानव सण्टयाना के वणन के अनुसार अपने चारो ओर के जगत् को घय से सही एव ठण्डे रूप मे ही देख पाते हैं। अपने जगत् को समझने की विधि उसे मूलत विशाल मानवी सस्थानो मे उसी के द्वारा लिए गये माग से मिलती है— विवेक से परे सण्टयाना के अनुसार ग्रात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। इस बिन्दु पर उनक बहुत से प्र शसक उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर गये। प्राकृतवाद का मसीहा अपन अनुबन्ध से टूट गया है। इसलिए वे उनके द्वारा निर्देशित होन क विरूद्ध हो गए। *सण्टयाना ने फिर भी इस बात का खण्डन किया है कि आत्मा के अभिज्ञान से किसी* भी प्रकार उनकी विचार धारा की दिशा अ-प्राकृतिकवादी हो जाती है। प्राकृतवाद तो एक ऐसा दृष्टिकोण है जो यह स्वीकारता है कि क्रिया केवल भौतिक वस्तु का ही गुण है और आत्मा उनकी दृष्टि म कोई शक्ति नहीं है। मनस (साइके) हमारे दनिक ससग मे आने वाला हमारा आत्म जिसका वणन मनोविज्ञान मे मिलता है वह निस्सदेह क्रिया कर सकता है और इसीलिए वह आत्म तो भौतिक है आध्यात्मिक नही। आध्यात्मिक जीवन क्रियामाण जीवन नही हैं, यहा आकर सण्टयाना वास्तव म शापेनहोवर की इस विचारधारा की ओर लौटते है कि जितनी जितनी आत्मा अपन को इच्छा से दबाव से मुक्त करती है उतनी उतनी ही वह अपनी मूल शक्तियो को पहचान कर सकती है।

अर्थक्रियावाद के द्वारा दिए गए कम एव ऊर्जा पर बल के विरूद्ध कोई प्रतिक्रिया इसस अधिक आगे नही जा सकती थी[2]

---

1 देखें हर्बट स्पेन्सर भाषण माला म दिए गए उनके भाषण विशेषकर द अल्नोएवल (*1923*)।

2 तुलना के लिए देखें जेम्स द्वारा सण्टयाना के दशन का रद्दी स्थितियों को पूर्णता की ओर ल जाने का प्रयास कहा जाना।

अमरीका के प्राकृतवादी दार्शनिकों के उन्नायकों की श्रृंखला की एक दूसरी कड़ी जो सण्टयाना से अपनी रुचियों एवं प्रवृत्तियों में सण्टयाना से काफी भिन्न है और अधिक संभावना वाले विचार के हैं वे मारिस कोहन है[1]। जो उनके बहुत से निष्कर्षों का फिर भी आदर करते हैं। सण्टयाना की ही भांति वे ऐसे प्राकृतवाद की खोज में थे जिससे एक व्यवस्थित यतिवाद का निर्माण हो सके, कम से कम जान डीवी के प्राकृवाद से तो भिन्न हो ही, तो भी सामाजिक संस्थान जिनमें मनुष्य अपनी विभिन्न जिन्दगियां बिताता है, सण्टयाना की ही भांति उनकी रुचि के केन्द्र रहे।

कोहेन के दार्शनिक विचारों ने कभी भी एक सम्पूर्ण एवं अंतिम दर्शन का रूप नहीं लिया। उनकी सर्वविदित पुस्तक रीजन एण्ड नेचर (1931) की रचना भी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंधों के संकलन से तैयार हुई है। उसी प्रकार की वृत्ति जिसमें गलतियां रह जाने का काफी खतरा है वे प्रिफेस टू लौजिक (1944) में अख्तियार करते हैं। रीजन एण्ड नेचर का उपशीर्षक है एन एसे आन द मीनिंग आव साइण्टिफिक मेथड यह उनके तत्वदर्शन सम्बन्धी प्रविधि का एक प्रशंसनीय सारांश है। वे वैज्ञानिक प्रणाली से प्रारम्भ करते हैं, जो प्रायः सभी विवेकशील मनुष्यों की जांच का उपकरण रही है और तब पूछते हैं कि इस प्रणाली के दौरान उपलब्ध सफलताएं संसार की सामान्य प्रकृति के बारे में कुछ बताने में कितनी खरी सिद्ध हुई है। सबसे पहले उन्हें उस प्रणाली का ही वर्णन करना है। तत्काल ही वे प्रहार करते हैं यह विचार सदैव ही उनके लिए शत्रु का सा ही रहा है। विज्ञान मूलतः आगमन है। अर्थात् विशिष्ट मामलों से सामान्य निष्कर्षों का अनुमान लगाना। ज्ञान की प्रगति धूमिल से स्पष्ट की ओर होनी चाहिए न कि व्यष्टि से समष्टि की ओर। टहनियां देखने से पूर्व हम वृक्ष ही देखते हैं, अर्थात् हम यह जान लेते है कि कुछ न कुछ ऐसा है जिसमें सामान्य एवं अस्पष्ट वृक्ष होने की तो धातु है ही, चाहे हम इसका कोई भी पूर्ण संकेत न हो कि वह पेड़ किस प्रकार का है या किस जाति का है।

---

1 द्रष्टव्य फ्रीडम एण्ड रीजन स्टडीज इन फिलोसोफी एण्ड जूइश कल्चर इन मेमोरी आव मौरिस रेफेल कोहन सम्पादक एस० डब्लू० बरन, ई० नेगल के० एस० पिन्सक 1951 मरणोपरान्त प्रकाशित कोहेन की आत्मकथा ए ड्रीमर्स जर्नी 1949 एच० टी० कोस्टेलो कत लोजिक एण्ड रीअलिटी (जे० पी० 1946)

2 डीवी द्वारा नीतिवाद के अधीनस्थ तात्विकी को रख देने के सम्बन्ध में उनके विचार के लिए देखें सम डिफीकल्टीज इन डीवीज एन्थ्रोपोसेण्ट्रिक नेचुरलिज्म (पी० आर० 1940), उनका सामाजिक रुचि खास तौर पर उनके विधि दर्शन में देखी जा सकती है। देखें ला एण्ड सोशल आडर (1933)

व्यष्टियो का सतक अन्तर कोहेन के अनुसार केवल वज्ञानिक जाच पडताल की ही उपज है। उससे अलग होने का बिन्दु नहो। इसी प्रकार इस बात की धूमिल पहचान कि किसी एक प्रकार की वस्तु एव दूसरे प्रकार की वस्तु मे कोई सामान्य सम्बध हैं ही वज्ञानिक नियमो के निर्धारण की भूमिका है। वज्ञानिक नियम, इस तरह के वर्णन के अनुसार अनुभवो की इकाइयो क सक्षिप्तीकरण नही है जैसा कि कई बार मिल ने मान लिया था।

अनुभव कदाचित् धारणाओ को एक दूसरे स जोडत है। धारणाए जो वज्ञानिक उद्देश्य पूर्ति के लिए अधिक सिद्ध एव उपयोगी होती हैं, बजाए उनके जिनसे अनुभव का प्रारंभिक सावका पडता है।

विज्ञान सम्बधी एसा सिद्धान्त अपने लिए प्लटो की लपटनी वाली विचार धारा की याद दिलाता है। और चूकि प्राकृतवाद एव प्लेटोवाद दोनो ही विमुखी धाराए है इसलिए यह बात हम आश्चय म डाल सकती है। किन्तु प्लेटो म दिखाई देने वाला साम्य कृत्रिम है। कोहेन प्लटो के इस मूलभूत सिद्धान्तो का परित्याग कर देते हैं कि सवेदना एव विचार मे कोई तीव्र भेद है। प्लटो एव अनुभववादी दोनो ने ही कुछ ऐसी बुरी गलतिया की हैं। उन्होने अनुभव को निष्क्रिय मानकर सवदनो को अगीकार करते हुए माना है और विचार से उसको अलग किया है, जो उनकी दष्टि म समष्टियो को सक्रिय रूप मे एक दूसरे को जोडती है।

व्यष्टि एव समष्टि का निष्क्रिय एव सक्रिय तथा अनुभव एव विचार का यह द्वद्व कोहेन अपनी विचार धारा से मिटा दना चाहते हैं। उनका कहना है कि अनुभव म हम एसी वस्तुओ के ससग म आते हैं जो अपने बहुत से व्यवहारो एव रूपो का प्रकट करती हैं और जो दूसरी वस्तुओ म भी भि न तरीके से रूपा तरित हो सकती हैं। एक बार यह जान लिया जाए तो इस जगत् का समष्टिया या सारतत्वो तथा अस्तित्वो के रूप मे विभाजन करना अपनी सारी अथवत्ता खो देगा।

तो भी एक मुश्किल उन्हे इस मामले मे चुप कर देती है। स्पष्ट ही भौतिकी का सबध इयत्ताओ से है। उदाहरण के लिए, एक पूण ठोस अवयव को कोई भी अनुभव न तो हमारे समक्ष रख ही सका है न रख सकेगा। क्या यह तथ्य इस बात का सकेत हमे नही देता कि विज्ञान अपनी विषय वस्तु के रूप म अ-प्राकृतिक इयत्ताओ क जगत् का कल्प ही सामने रखता है। यद्यपि किसी भी प्रकार स हम पूणत एक ठोस वस्तु का अनुभव नही कर सकते तो भी हमारे लिए यह तो सम्भव है ही कि हम ठोस रूप म हमार अनुभव म आने वाली वस्तु का क्रम निर्धारण ता कर हा सकते हैं। काल्पनिक वैज्ञानिक नियम केवल सम्बधो का रुपान्तरो का, एक क्रम स दूसरे क्रम म जाने का ही वर्णन कर सकते हैं। इस सम्बध म प्रस्तुत एक आदश

स्थिति की अधिक से अधिक इस क्रम मे निहित वस्तु की सामान्य प्रकृति का सकेत दे सकती है।

कोहेन सूक्ष्म स सूक्ष्मतम नियमों पर भी इसी प्रकार के विश्लेषण प्रणाली का उपयोग करते हैं। तक एव विशुद्ध गणित के सिद्धान्तो को वे रसेल का अनुसरण करते हुए एकीकरण कर दत हैं। तर्क के नियम रूपान्तरों एवं कार्यविधियो के एस नियम हैं जिनक जरिए समा सम्भव यथाथ चाहे वे भौतिक हो, मनोजगत् क हो तटस्थ हो या कोई उनका जटिल रूप हो सभी को एक साथ मिलाया जा सकता है। इस प्रकार तकशास्त्र भी प्राकृतवादी सिद्धा त क ढाच म आ सकता है जो हम उन मर्जो की सूचना देता है जिससे पदाथ एक साथ रखे जा सकते हैं या अलग से किए जा सकते हैं।

कोहेन का प्राकृतवाद जीवशास्त्रीय न होकर तर्कशास्त्रीय हैं। उनके अनुसार प्राकृतवादी होना हमारी विवशता है। यदि हम गम्भीरता पूवक वैज्ञानिक विधि के अथ को समझें, तो वैज्ञानिक भौतिकवाद जो इस सिद्धान्त का मानता है कि प्रत्येक प्राकृतिक घटना भौतिक दशाओ पर अवलम्बित है वह केवल अनुभवो से प्राप्त कोई छिछला सामान्यीकरण नही है किन्तु यह एक व्यवस्थित जगत् की आवश्यकता स उपजा है जो एक उहापोह युक्त कोई कल्पना सृष्टि नहीं है। प्राकृतवाद वस्तुओ के पारस्परिक सम्बन्धो पर बल देता है। यही वह बात थी जो कोहेन के आकषण का विन्दु बनी और यही कारण है कि वे ऐसे अनुभव के अणु सवेदन सिद्धान्त से अलग करने म कृत सकल्प रहे जो प्राय इस की सहवर्ती धारा रही है। कोहेन का प्रकृतवाद, केयड बोसाके तथा रोयस क वस्तुपरक प्रत्ययवाद के अधिक निकट का सिद्ध होता है बजाय लाक या ह्यूम के।

जसा कि हमने पहल देखा है कोहेन बहुत स परम्परागत द्वन्द्वो का परित्याग कर देते हैं, उदाहरणाथ विचार एव अनुभव के बीच के द्वन्द्व को। यह परित्याग धुरीयता के सिद्धान्त[1] के रूप म परिपक्व हो गया। एक वस्तु कभी व्यवहार का एक रूप ही प्रस्तुत नही करती इसम बहुत सी विपरीत स्थितिय भी काय करती रहती हैं। यह क्रिया करती है, पीडित होती है, एव क्षरित हो जाती है, वह आदश' होते हुए भी वास्तविक है यह गति मे रहकर भी अगति म है। तो भी कोहेन द्वारा निर्मित धुरीयता का सिद्धान्त उचित नहीं है उनके हाथो मे पडकर वह अपने विवेचन म जितना रीति वधानिक सिद्धान्त है उतना ही तत्ववादी भी। यह उनके विवेचन शील मस्तिष्क के काफी अनुरूप पडता है। इसके कारण वे अनुभववाद एव बुद्धिवाद

1 द्रष्टव्य डी० जे० ग्रोस्टीन कृत द प्रिंसिपल आव पोलेरिटी इन कोहेन्स फिलोसोफी फ्रीडम एण्ड रीजन)।

पर समान रूप न प्रहार करते हैं। जहा कही भी उन्ह एक सिद्धान्त के स्वीकारने म कोई खतरा होता है तो व दूसरे पर प्रहार करते हैं। दूसरे को स्वीकारने म खतरा लगता है तो पहले की कटु आलोचना करते हैं। तो भी कोहेन द्वारा सुझाई धुरीयता दशन के परम्परागत दरों स हम बाहर निकाल जाने म सफल होती है। यह अभी तक बनी दार्शनिक भवनो पर एक प्लग की भाति आशा और वरदान की तरह रहा।

बहुत स तरीको स तब आधुनिक अमरीकी दशन को प्राकृतवादी कहा जा सकता है। वह सहयोगी ग्रथ नचुरलिज्म एण्ड द ह्यूमन स्पिरिट (स० वाई० क्रिकोरियन 1944) जो डीवी के एक निबध स प्रारम्भ होता है कोहेन को समर्पित किया गया था एव उसम सण्टयाना का सदम भी मुक्त रूप से है। अमरीकी दार्शनिको की विविध रूचियों एव उनकी उल्लखनीय योग्यताओं का सुदर परिचय दता है। इसके कुछ सहयोगी जस एस० पी० लम्प्रेवत एन एच० डब्लू० श्नीडर सवप्रसिद्ध विद्वान हैं। अ य जसे एम० हुक कवल सामाजिक दशन म रूचिशील हैं। ए० ईडल उसी मे प्राकृतवादी नीतिशास्त्र का बचाव करते हैं। ई० वीवास प्राकतवादी सौन्दय शास्त्र का कौनसा तत्व दशन उन्ह एक साथ एकत्र कर दता है यह कहना आसान नही है।

यही एक बिन्दु है जिस डब्लू० आर० डेनीस[1] न अपने निबध द कटेगोरी आव नचुरलिज्म मे लिखा है। उनके अनुसार प्राकृतवाद के साधारण रूप से यह बताने का प्रयत्न किया है कि मूलतत्व (सब्सट स) केवल एक है चाहे वह पदाथ हो या काल निक, या मनस तत्व जिनस प्रत्येक वस्तु बनी है। समसामयिक प्राकृत वाद पनावस्थाओ का सिद्धान्त है तत्वों का नही। यह अपने अपने पदार्थों के वणन करने का काम भौतिक शास्त्री, जीवशास्त्री नीतिवादी सौंदयशास्त्री जसे लोगो पर छोड देता है। क्योकि यही लोग इन विशिष्ट अभियानों से सबद्ध हैं। प्राकृत-वाद का प्रमुख सिद्धान्त डेवीज क अनुसार यही है कि एक वैज्ञानिक प्रकार के अलावा ज्ञान का और कोई प्रकार है ही नही। इसकी प्रणाली विश्लेषणात्मक है। यह परीक्षण एव व्याख्या करती है कोहेन की तरह वज्ञानिक जाच पडताल की मूलाधारी पदावस्थाओ की। अवस्थाज्ञान ही इसका प्रमुख उद्देश्य है या इस विभ्रम का कोई उपचार ढूढना है कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो के बीच अपाटनीय खाइया हैं। यदि कभी इस विभ्रम की शक्ति का क्षय हो जायगा तो दशन को बिना विवाद

1 केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के दशन ग्र थो के प्रकाशन म दिए गए अपन योगदान से तथा दशन विभाग मे प्रकाशित उनके निबधो मे एक ग्र थ के कारण व काफी प्रसिद्ध होगए, इससे प्रत्येक अक मे एक अलग रूप मे चयनीय विषय है।

के नान के क्षेत्र स टूच कर जाना होगा और विनान को जगत् की व्याख्या का भार सौप दना होगा ।

जिन -यक्तियो के प्राकतवाद ने यह रूप ल लिया है, अर्नेस्ट नगल उनम श्रेष्ठ है । डेनीज की भाति उनका वरित माध्यम पुस्तकें न लिखकर निबध[1] लिखना रहा कम से कम ऐस ·ाशनिको स जो विश्लेपरणात्मक एव विवेचनात्मक होना चाहता है यही अपेक्षा की जानी चाहिए । उनके प्रमुख उद्देश्यो मे से एक तकशास्त्र की प्रकति का ऐसा निरूपण करना है, जिसस प्राकतवादी भी सतुष्ट हो जाए । तकशास्त्र पयवेक्षण ए· परीक्षण का कोई सवसाधारण वनानिक तरीका काम म नही लेता और इमीलिए यह इस दष्टिकोण के तई एक कठिनाई प्रस्तुत कर दता है । *यही एक तरीका है जिसस नान का उपलधि की जा सकती है ।*[2]

नगल ने काहन को एक बहुपठित ग्र थ की रचना करन मे सहयोग दिया था, यह है **एन इण्टोडक्शन टू लोजिक एण्ड साइण्टीफिक मेथड** (1934) । कि तु वे कोहेन के इस सिद्धा त से सतुष्ट नही है कि तकशास्त्र का काम अनुभव के उप करणो का कोई सामा य सम्ब ध खोजना या उनके स्वरूप को निर्धारण करना ही है । तकशास्त्र के विषय म ऐसी दष्टि तकशास्त्र के ही एक मूलभूत सिद्धा त की अवहेलना कर जाती है और वह है असगति का सिद्धा त । केवल कथन न कि वस्तुए असगत हो सकत हैं । इसी प्रकार कथन को ही तकशास्त्र के रूपा तरिक करके देखा जा सकता है । तकशास्त्र उन दशाओ से कतई सबधित नही है जिनसे एक वस्तु दूसरी वस्तु मे रूपा तरित हो जाती है । नगल तो मिल के तकशास्त्रीय नियमो के प्राकतवादी बचाव किए जाने के भी पक्ष म नही थे । नगल के अनुसार तक शास्त्रीय सिद्धा त निश्चय ही स्थापित वनानिक सामा यीकरण स अधिक शक्तिवान है । क्योकि तकशास्त्र की मदद स ही कि प्रबल एव क्षीण रूप म स्थापित सामा यी करण का भेद किया जा सकना सभव है । तो भी दूसरी ओर मिल की असफल धारणाओ से यह निष्कप निकालने को तयार नही कि तकशास्त्र प्राकतवादी तत्व दशन के मीमा सदभ स बाहर का विषय है । तथाकथित विचारो के नियमो से ही उनके अनुसार ·ययोचितता (प्रेसिशन) के आदर्शों की स्थापना हुई है । उ हे स्वीकार

---

1 सोवरेन रीजन (1954) म एव *लोजिक विदआउट मैटाफिजिक्स* (1956) नगल ने अपन दाशनिक निब धो का एक साथ सकलन कर दिया है ।

2 द्रष्ट·य टुवड्स ए नेचुरलिस्टिक क·सप्शन आव लोजिक (अमेरिकन फिलो सोफी टुडे एण्ड टुमारो, सम्पादक एम कलन ए· एस हुक (1935) तथा नचुरलिज्म एण्ड ह्यूमन स्पिरिट म लोजिक विदआउट आण्टोलोजी ।

करने से तर्कशास्त्री यही मानता है कि सम्प्रयण एवं पड़ताल उसी समय प्रमविष्णु हो सकते हैं जब कोई उक्त शास्त्र के अनुरूप कार्य करे। यह एक ऐसा दावा है जिसे प्राकृतवादी ढंग से परीक्षित किया जा सकता है। खास तौर पर काम में व्यस्त परीक्षक के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करके। इसी प्रकार विभिन्न तर्कशास्त्रियों द्वारा निर्मित बहुत सी तर्क प्रणालियां नगल की दृष्टि में अनुमान संबंधी अभ्यास के वैकल्पिक प्रस्ताव मात्र हैं न कि किसी एक विषयवस्तु का वैकल्पिक निरूपण, जैसे कि अभिप्रेत का संबंध है। ऐसे किसी तर्कशास्त्र का औचित्य देना उन व्यवहृत अनुमानों का प्रदर्शन करना है, जिन्हें वह यह कहकर प्रस्तावित करता है कि वे अमुक अमुक प्रकार की वैज्ञानिक खोजबीन में उपयोगी हैं। अब यह बात स्पष्ट हो जायगी कि नगल का प्राकृतवादी तर्कशास्त्र कोहेन का अपेक्षा डीवी के अधिक समीप ले जाता है। यद्यपि कोहेन की नाति व जीवशास्त्रीय उत्सों के संदर्भ जिन्हें डीवी ने प्रस्तुत किया है तर्कशास्त्र के लिए अनुपयुक्त कहकर अपनी असहमति प्रकट करते हैं। अब यह स्पष्ट दिखता है कि पुरानी अगलाएं तोड़ी जा रही हैं। कोहेन ऐसे प्राकृतवादी थे जो हीगल के प्रशंसक थे। नगल एक गणितज्ञ एवं आकारी तर्कशास्त्री जिनकी सहानुभूति तर्क की प्रयत्रियावादी व्याख्या किए जाने की ओर थी। इस प्रकार प्रतिवादी धारणाओं के मिलने का एक और ज्वलंत उदाहरण सी० आई० लेविस के दर्शन में देखा जा सकता है। वे न तो प्राकृतवादी हैं और न विवेचनात्मक यथार्थवादी ही। कभी कभी तो उन्हें प्रत्ययवादी भी कहा जाता है। तो भी उनका संदर्भ देने के लिए यह अवसर चुन लेना असमीचीन नहीं है।

लेविस ने रायस के संरक्षण में अध्ययन किया था जिन्होंने प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था। मौलिक अभिप्रेतों के विरोधाभासों से असंबद्ध रहने के कारण उन्होंने ठोस अभिप्रेतों के तर्कशास्त्र की रचना की जिससे ये विरोधास्पद स्थितियां विलीन हो गई।[1] लेविस प्रणाली में प उसी समय

---

1 देखें सर्वे आव सिम्बोलिक लोजिक (1918) तथा साथ ही में सी० आई० लेविस एवं सी० एच० लैंगफोर्ड कृत सिम्बोलिक लोजिक के परिशिष्ट में किए गए परिवर्तन एवं संशोधन भी देखें। उनकी प्रणाली के अपने अलग विरोधाभास हैं और ये हैं ठोस अभिप्रेतों के विरोधाभास। क्योंकि यदि यह तार्किक रूप से असंभव है कि फ असत्य हो तो तार्किक रूप से प के लिए सत्य होना एवं फ के लिए असत्य होना असंभव है। अर्थात् वे तर्कवाक्य ही असत्य होंगे जो आवश्यक रूप से सत्य हैं। किन्तु ये विरोधाभास लेविस की दृष्टि में हमारे तार्किक अन्तर्ज्ञान के लिए कोई संघर्ष प्रस्तुत नहीं करते। द्रष्टव्य डब्लू नीले कृत द डेवलपमेंट आव लोजिक (पी० ए० एस० 1945)।

फ है यदि एक मात्र रूप म प का सत्य होना तार्किक दृष्टि से असमव हो जाय। तार्किक असभावना का यह विचार, जो दोनो सत्य नही है वाले विचार से अलग है, को ही उनके तकशास्त्र का मौलिक भेद माना गया है। तो भी लेविस यह तो स्वीकारते हैं कि यद्यपि वे इस आधार पर एक कलन का निर्माण कर सकते हैं तो भी उनकी प्रणाली विशुद्ध आकारी दृष्टि से मौलिक अभिप्रत के सिद्धान्त से किसी रूप म श्रेष्ठ नही हैं। या फिर ऐसे बहुत से वकल्पिक तकशास्त्रो का झुण्ड प्रस्तुत हो जाता है जिन पर किसी ने काय नही किया है। इनमे से कोई भी प्रणाली किसी विरोधाभास को लिए हुए नही हैं और इसीलिए दोनो ही प्रणालियां उस एक मात्र कठिन परीक्षणो मे सफल होती है जिन्हे कोई तकशास्त्री अख्तियार करता है। तब किस प्रकार एक कलन एव दूसरे के बीच म से कोई विकल्प चुन लेना सभव है। तकशास्त्र स्वत किसी निष्कर्ष का निर्माण कर सकता इस लिए तकशास्त्री का तक से पर ज्ञान मीमासा के क्षेत्र म जाना पडता है।

इस अवस्था म तकशास्त्र के आकारी रूप को त्याग बिना डीवी का औचित्य दिया जा सकता है। कलन की रचना मे आकारी दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कोई बात उपयुक्त नही लगती। प्रणालियो के बीच म से किया गया कोई चुनाव अथ क्रियावादी आधार पर तो होना ही चाहिए। इसी प्रकार के विचारो से माइण्ड एण्ड द वल्ड ओडर (1929)[1] की रचना सभव हो सकी है। वहा लेविस सवेदन के प्रस्तुतीकरण जो कि मात्र प्रदत्त हैं एव प्राग्भावी पदावस्थाओ के सिद्धान्त जिनके जरिए इनमे प्रस्तुतीकरणो की व्याख्या एव निणय होते हैं के बीच के भेद को विशेषतया ऐसे सिद्धान्तो पर बल देकर जिनसे सत्य एव असत्य का अन्तर स्पष्ट होता है, प्रकटाया है। अनुभव अपने ही विषय पर दिए जाने वाले निणय के पद पर आसीन नही हो सकता, केवल मन ही अपनी कसौटी पर काम करता हुआ अनुभव सबधी निणय ले सकता है। उसी तरह जिस तरह वह तार्किक प्रणालियो के बीच मे से एक का चुनाव कर सकता है। लेविस के अनुसार दशन का काम मन द्वारा उपयोग मे लाई गयी पदावस्थाओ का निर्माण करना है। यह काय निश्चय ही विवरणात्मक न होकर विवचनात्मक होगा कम से कम उस क्षेत्र म जहा विचारो म प्रस्तुत अस्पष्टताओ के निवारण की बात लागू होती है और तत्पश्चात् ही उनके असगतियों को कम कर देना होता है जो इन पदावस्थाओ के साधारण प्रयोग के समय भी उपस्थित हो जाती हैं।

---

1 द्रष्टव्य पी० हिवावस कत ले प्रग्मेटिज्म कोन्सेप्चुअल, डी सी० आई० लेविस (आर० एम० एम० 1934), जे० बी० प्रट कृत लोजीकल पाजीटिविज्म एण्ड प्रोफसर लेविस (जे० पी० 1934)।

उनकी दृष्टि म पदावस्थाओ की एक भी एसी इकाई नही है जो अनुभव पर समष्टि रूप स लागू हो सके। उदाहरणार्थ एक स्वप्न, मनोवैज्ञानिक के लिए सत्य है जबकि शरीर वैज्ञानिक के लिए असत्य। प्रत्येक वैज्ञानिक उन पदावस्थाओ का प्रयोग करता है जो उसकी क्रियाओ के लिए अपने जाच पडताल के क्षेत्र म सर्वाधिक उपयुक्त हो। मामल को इस प्रकार रख दने से लेविस का यह मन्तव्य नहीं कि वैज्ञानिक जानबूझकर ससार क सामन पदावस्थाओ को प्रस्तुत करता है। मन क सामने प्रदत्त स्थिति एव मन द्वारा उस सबध मे दिए गए योगदान के बीच का भेद इस ससार में हम खोजना पडगा यह स्वत प्रस्तुत नही है। ग्रीन के साथ सहमत हाते हुए वे कहते हैं कि जिस जगत की अनुभूति हम करते हैं वह एक ऐसा जगत् है जिसम मन पहल स ही क्रियाशील है। अगर एसा नही होता तो वह पूर्णत अनिवचनीय नही होता। किसी एसी वस्तु का ही नामकरण हो सकता है *जिसका कोई रूपाकार हो या जिसम कोई क्रम हो।* इससे यही निष्कष निकलता ह कि हम किसी वस्तु क विषय म यह कभी नही कह सकते कि वह प्रस्तुत है। जानन का अथ ही पदावस्थाओ म ल आना है। रसल द्वारा प्रस्तुत जानकारी द्वारा बाह्य ज्ञान का विचार यहा तक रूप स असभव है। तो भी कोई ऐसी वस्तु है जो प्रस्तुत है जिस विचार की कोई क्रिया बदल नही सकती। कोई भी दाशनिक कभी इस बात म सफल नही हुआ कि वह बिना प्रस्तुत' के काम चला सके चाहे उसका काय किसी भी प्रकार का क्यो न हो। इस सीमा तक तो विवेचनात्मक यथार्थवादी सही थ वे सारतत्वो के महत्व का स्वीकार करते समय भी सही थ। किन्तु उन्होने प्रस्तुत को जो कि अवचनीय सवेदनशील तत्व हैं एव उन अवस्थाओ म जिनके जरिए उनका पद निर्धारण हाता है, दोनो को एक जैसा ही सारतत्व मानकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। यदि वे यह दख पाते कि केवल पदावस्थाओ के कारण ही जो उनक सिद्धान्त की दिग्दर्शिका ह उनके सिद्धान्त म अपन सिद्धान्त म तारतम्य बैठ सकता था।

उनक समक्ष खडी हुई समस्या यहा भी प्रस्तुत हो जाती ह। हमार पास यह जानन का क्या मानदण्ड ह कि अनुभव पदावस्थाओ के प्रकार क अनुकूल ह? एक दृष्टि से लविस के मत म इस प्रश्न का उत्तर उस समय सम्भव नही है जब कोई यह पूछे कि हम किस प्रकार यह जान सकते हैं कि हम जो कुछ अनुभव कर रहे हैं वह हम उसे जसा मान बठे हैं उसस बिल्कुल भिन्न ह ही नही। क्योकि हम इसे तो उस समय जान सकते हैं जब हम अनुभव को कुछ और ही मानलें किन्तु इस नई मान्यता के लिए भी ठीक वसे ही प्रश्न खडे हो जाएगे। किन्तु दूसरी दृष्टि से इस प्रश्न का जवाब यह कहकर दिया जा सकता है कि अनुभव एक ऐसी वस्तु तो होनी ही चाहिए जो हमारे द्वारा निर्धारित पदावस्थाओं को स्वीकृति देती चलती है। क्योकि

ये सिद्धान्त ही ऐसी वस्तुए हैं जो सत्यासत्य का भेद कर सकती हैं। पदावस्थित सिद्धान्त लेविस के अनुसार हमारे द्वारा अनुभव की व्याख्या किए जाने का वर्णन करता है। इसलिए जो होने वाला है वह किसी भी रूप मे इन सिद्धान्तो का उन्मूलन नही कर सकता। यदि हमारी रुचि, हमारी व्याख्या प्रणाली आदि मे परिवद्धन हो जाए ता वे भी परिवर्तित हो सकते हैं, किन्तु इनका कभी खण्डन नही हो सकता।

इस प्रकार अनुभव किसी प्राग्भावी सत्य के खण्डन की दिशा मे कुछ नही कर सकता क्यो कि ये सत्य केवल विश्लेषण करने एव पदावस्थाओ को सयोजित करने के अतिरिक्त और कुछ नही करते। उनकी आलोचना की जा सकती है और इनमे सशोधन हो सकता है। किन्तु यह उसी आधार पर होगा कि इनमे कही विरोधाभास प्रस्तुत हो गया है। इस प्रकार लेविस प्रग्भावी सत्यो का बचाव कर पाने की आशा करते हैं और अर्थक्रियावाद की निमूलन वत्ति से तक को रक्षा कर सकते हैं। किन्तु जस ही पदावस्थाओ को अनुभव पर लागू करने का प्रश्न उपस्थित होता है तो आकारी विचार कायम नही रहते और अर्थक्रियावादी परीक्षण पुन उभर कर सामने आ जाते हैं।

एन ऐनालिसिस आव नौलेज एण्ड वेल्यूएशन (1946)[1] मे लेविस अर्थक्रियावाद की सही प्रकृति जाच करते हैं। जॉन डीवी की रचनाओ मे भी अनुभववादी तकवाक्य एव मूल्यो को एक दूसरे से सबद्ध माना गया है। लेविस यह बताने का प्रयास करते हैं कि नीति शास्त्र ज्ञान मीमासा का एव अर्थ सिद्धान्त का गुम्बज है। इसके साथ ही व इस अर्थक्रियावादी ढाचे मे प्राग्भावी सिद्धान्त की स्थापना भी कर देना चाहते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिस आवश्यक सत्यो की सज्ञा दी जा सकती है। अर्थक्रियावाद एव आकारी विचारो के इस सयोग मे ही लेविस की विचारधारा का अद्भुत रूप देखा जा सकता हैं।

---

1 द्रष्टव्य सी० जी० हेम्पेल का रिव्यू (जे० एस० एल० 1947)।

अध्याय १३

हठीले तत्ववादी

पिछले कुछ अध्यायों मे प्रत्ययवाद पर बहुत कम कहा गया है य प्रत्ययवादी यथार्थवादी आलोचना की एक के बाद दूसरी लहर के भोको से पूर्णत समाप्त नहीं हो पाए। बोसांके ने यथार्थवाद से संघर्ष किया तथा गलत प्रत्ययवादी विश्वासो के विरुद्ध भी (द मीटिंग प्राव एक्स्ट्रीम्स इन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी, 1921)। मूरहैड, होनले एवं अन्य बहुत से विचारकों ने तो उन्नीसवीं शती की चौथी दशाब्दी तक प्रत्ययवादी परम्परा को जीवित रखा। इन विवेचनात्मक वर्षों में प्रत्ययवाद ने भी नए रूपो का स्वाद चखा।

कुछ युवा प्रत्ययवादियो मे क्रिस्तानी धर्मवेत्ता भी थे जो ब्रेडले के परमात्मवाद एवं व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद के बीच का कोई मध्यमार्ग खोज लेने मे ही अपनी सुरक्षा महसूस करते थे। इस तरह उदाहरण के लिए गाड एण्ड पर्सनलिटी (1919) मे सी० सी० वैब ने ब्रेडले के विरुद्ध यह स्थापना की कि परमात्म केवल एक व्यक्ति होना चाहिए एवं एक ससीम। ईश्वर के प्रवक्ताओं के विरुद्ध उन्होन यह कहा कि परम पुरुष अनन्त एवं सर्वव्यापी होना चाहिए। उन्होने मनुष्यो को ईश्वर के[1] साथ साक्षात्कार कर सकने योग्य बताकर बोसांक को गहरा धक्का लगाया किन्तु उनका क्रिस्तानी आदर्शवाद अधिक संवेदनशील पाठकों के लिए ही सुकर था।

दूसरे प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र के ही प्रमुख विचारों को कायम रखा तथा उन्हे विकसित भी किया। उनमे से उल्लेखनीय हैं एच० एच० जोकिम जिनकी द नेचर आव ट्रुथ (1906) का सदर्भ हम पहले ही दे चुके हैं।[2] ऑक्सफोर्ड मे तर्कशास्त्र के प्राध्यापक के रूप मे उन्होने विद्यार्थियो की समूची पीढी पर अपनी विवेचनात्मक क्षमता का प्रभाव डाला फिर भी कोई महत्व का ग्रन्थ उन्होंने प्रकाशित भी नही करवाया

---

1 द्रष्टव्य बर्नार्ड बोसांक एण्ड हिज फ्रेण्ड्स (सपा० ज० एच० म्योरहैड)। वब उनकी विचारधारा का सारांश आउट लाइन्स आव फिलोसोफी आव रिलीजन (सी० बी० पी० II) नामक ग्रन्थ मे देते हैं।

2 देखें इस पुस्तक का अध्याय 5 तथा आर० एफ० ए० होनले एवं बी रसल द्वारा द नेचर आव ट्रुथ की आलोचना (माइण्ड 1906) जी० ई० मूर (माइण्ड 1907) जी० डाउस हिक्स (हिबर्ट जनल 1907) एल० ए० रीड ट्रुथ कोरेस्पोण्डेन्स एण्ड कोहरेन्स (पी० आर० 1922)।

ये सिद्धान्त ही ऐसी वस्तुए है जो सत्यासत्य का भेद कर सकती हैं। पदावस्थित सिद्धान्त लेविस के अनुसार हमारे द्वारा अनुभव की व्याख्या किए जाने का वर्णन करता है। इसलिए जो होने वाला है वह किसी भी रूप मे इन सिद्धान्तो का उन्मूलन नही कर सकता। यदि हमारी रूचि, हमारी व्याख्या प्रणाली आदि मे परिवर्द्धन हो जाए ता वे भी परिवर्तित हो सकते हैं किन्तु इनका कभी खण्डन नही हो सकता।

इस प्रकार अनुभव किसी प्राग्भावी सत्य के खण्डन की दिशा मे कुछ नही कर सकता क्यो कि ये सत्य केवल विश्लेषण करने एव पदावस्थाओ को सयोजित करने के अतिरिक्त और कुछ नही करते। उनकी आलोचना की जा सकती है और इनमे सशोधन हो सकता है। किन्तु यह उसी आधार पर होगा कि इनमे कहीं विरोधाभास प्रस्तुत हो गया है। इस प्रकार लविस प्रग्भावी सत्यो का बचाव कर पाने की आशा करते हैं और अर्थक्रियावाद की निर्मूलन वत्ति से तक की रक्षा कर सकते हैं। किन्तु जसे ही पदावस्थाओ को अनुभव पर लागू करन का प्रश्न उपस्थित होता है तो आकारी विचार कायम नही रहते और अर्थक्रियावादी परीक्षण पुन उभर कर सामने आ जाते हैं।

एन ऐनालिसिस आव नौलेज एण्ड वेल्यूएशन (1946)[1] मे लेविस अर्थक्रियावाद की सही प्रकृति जाच करते हैं। जॉन डीवी की रचनाओ मे भी अनुभववादी तकवाक्य एव मूल्यो को एक दूसरे से सबद्ध माना गया है। लेविस यह बताने का प्रयास करते हैं कि नीति शास्त्र ज्ञान मीमासा का एव अर्थ सिद्धान्त का गुम्बज है। इसके साथ ही वे इस अर्थक्रियावादी ढाचे म प्राग्भावी सिद्धान्त की स्थापना भी कर देना चाहते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिसे आवश्यक सत्यो की सज्ञा दी जा सकती है। अर्थक्रियावाद एव आकारी विचारो के इस सयोग म ही लेविस की विचारधारा का अद्भुत रूप देखा जा सकता हैं।

---

1 द्रष्टव्य सी० जी० हेम्पेल का रिव्यू (जे० एस० एल० 1947)।

अध्याय १३

हठीले तत्त्ववादी

पिछले कुछ अध्यायो मे प्रत्ययवाद पर बहुत कम कहा गया है, य प्रत्ययवादी यथार्थवादी आलोचना की एक के बाद दूसरी लहर के झोकों से पूर्णत समाप्त नही हो पाए। बोसोके ने यथार्थवाद से संघर्ष किया तथा गलत प्रत्ययवादी विश्वासो के विरुद्ध भी (द मीटिंग आव एक्स्ट्रीम्स इन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी, 1921)। मूरहैड, होनले एव अन्य बहुत से विचारको ने तो उन्नीसवी शती की चौथी दशाब्दी तक प्रत्ययवादी परम्परा को जीवित रखा। इन विवेचनात्मक वर्षों में प्रत्ययवाद ने भी नए रूपो का स्वाद चखा।

कुछ युवा प्रत्ययवादियों मे क्रिस्तानी धर्मवेत्ता भी थे जो ब्रेडले के परमात्मवाद एव व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद के बीच का कोई मध्यमार्ग खोज लेने म ही अपनी सुरक्षा महसूस करते थे। इस तरह उदाहरण के लिए गाड एण्ड पर्सनलिटी (1919) मे सी० सी० वैब ने ब्रेडल के विरुद्ध यह स्थापना की कि परमात्म केवल एक व्यक्ति होना चाहिए एव एक ससीम। ईश्वर के प्रवक्ताओं के विरुद्ध उन्होने यह कहा कि परम पुरुष अनन्त एव सर्वव्यापी होना चाहिए। उन्होने मनुष्यो को ईश्वर के[1] साथ साक्षात्कार कर सकने योग्य बताकर बोसाके को गहरा धक्का लगाया किन्तु उनका क्रिस्तानी आदर्शवाद अधिक सवेदनशील पाठको के लिए ही सुकर था।

दूसरे प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र के ही प्रमुख विचारों को कायम रखा तथा उसे विकसित भी किया। उनमे स उल्लेखनीय हैं एच० एच० जोकिम जिनकी द नेचर आव ट्रुथ (1906) का सदर्भ हम पहले ही दे चुके हैं।[2] आक्सफोर्ड म तर्कशास्त्र के प्राध्यापक के रूप म उन्होने विद्यार्थियों की समूची पीढी पर अपनी विवेचनात्मक क्षमता का प्रभाव डाला फिर भी कोई महत्व का ग्रन्थ उन्होने प्रकाशित भी नही करवाया

---

1 द्रष्टव्य बर्नार्ड बोसाके एण्ड हिज फ्रेण्डस (सपा० ज० एच० म्योरहैड)। वब उनकी विचारधारा का साराश आउट लाइन्स आव फिलोसोफी आव रिलीजन (सी० वी० पी० II) नामक ग्रथ म देते हैं।

2 देखें इस पुस्तक का अध्याय 5 तथा आर० एफ० ए० होनल एव बी रसल द्वारा द नेचर आव ट्रुथ की आलोचना (माइण्ड 1906) जी० ई० मूर (माइण्ड 1907) जी० डाउस हिक्स (हिबट जर्नल 1907) एल० ए० रीड कृत कोरेस्पोण्डेन्स एण्ड कोहरेन्स (पी० आर० 1922)।

इसके बावजूद भी उन्होने स्पिनोजा कत टे क्टेटस डी इम्प्टलेक्टस एमेण्डेशनें (मरणोपरान्त प्रकाशित 1940) नामक ग्रथ पर टिप्पणी प्रकाशित करवाने की योजना बनायी थी। उनके कुछ भाषणो का सम्पादन एल० जे० बक द्वारा लोजिकल स्टडीज (1948) नामक ग्रन्थ मे किया गया।

लोजिकल स्टडीज सच्चे प्रत्ययवादी अर्थों म तकशास्त्र का ग्र थ ह केवल आकारी या सतही अर्थों मे नही। इसका अधिकाश प्रस्तुत की धारणा के समालोचन मे लगा है जो उस समय विवाद का प्रचलित विषय एव शली थी।

यह समालोचना जितनी डिकार्टे के विरुद्ध है उतनी ही रसल व रसेल और डिकार्टे दोनो अपने विभिन्न तरीको से एस सत्यो की खाज म निकल थ जा तत्काल ही स्वय सिद्ध हो। जौकिम की यह धारणा ह कि कोई भी वक्तव्य पूणत सत्य नही हो सकता। उनकी यह धारणा उपरोक्त विचारधारा क बिल्कुल विपरीत ह। जिस प्रणाली को कोई सत्य व्यक्त करता ह उसके क्षेत्र म जितनी दूर तक ज्ञान हम ले जाय उनकी ही सचाई उसमें होगी। यह उस सीमा पर आकर गलत हो जायगा जब कोई प्रणाली अपूण रूप से उसे व्यक्त करती हो।

जौकिम की मान्यता ह कि सत्य या ज्ञान का उनके द्वारा किया गया विश्लषण बनाये रख सकना सरल नही ह। दोष अपर्याप्त ज्ञान स निश्चय ही भिन्न ह। उदाहरण के लिए एक ज्यामितिक दोष निश्चय ही केवल किसी ज्यामितिक प्रणाली के अपर्याप्त ज्ञान स उपजी हुई स्थिति नही ह तो भी कोई प्रत्ययवादी यह नही मान सकता कि दोष एव अपर्याप्त ज्ञान अ तत भिन्न ह। दूसर स्वय प्रत्ययवादी सिद्धा त के सत्य या ज्ञान के विश्लेषण म भी कुछ अ तर विरोध है। जो कि इस बात पर जोर दत हैं कि यह विचार के द्वारा अपनी सभावनाओ की शन शन पहिचान के साथ ही विकसित होन वाली कोई अवस्था है फिर भी इसके साथ साथ यह एक एसा प्रत्यय है जो सभी *विकास और परिवतन स परे है।* यदि वे पदाथ की प्रथम अवस्था पर बल देते है तो प्रत्ययवादी यह स्वीकारने से लगते हैं कि विकास केवल एक भूल स दूसरी भूल की ओर जाने का नाम है, यदि दूसरी बात स्वीकारत है तो वे सभी मानवी महत्वाकाक्षाओ स पर किसी सत्य को उजागर करते हैं—*यह माग ब्रेडल के परमात्य का ओर ले जाता है* अर्थात् विचार के ऐस प्रत्यय की ओर जा रहस्मय है तथा अगम्य है। कि तु जोकिम का विश्वास है कि वाद विवाद द्वारा सत्य की शन शन विकसित होने वाला समयातीत अवस्थाओ का सम वय किया जा सकता है क्योकि द्वाद्वात्मकता के लिए विकास किसी आधार म निष्कष की ओर जाने का एक तार्किक माग है। यह पूर्ववर्ती स अनुवर्ती समया तर मे जाने का माग नही है। यह कहना कि विचारो के इतिहास म एक अवस्था दूसरी

से विकसित हुई है यह मानने से अधिक कुछ नही है कि यह भी अवस्था तार्किक रूप से दूसरी अवस्था पर आश्रित है और इस आधाराधय का यह सम्बन्ध समयातीत है। जोकिम का प्रत्यलवाद तब एक के बाद दूसरे विचार सूत्रो द्वारा हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली स जुड जाता ह।

यदि आक्सफाड म जोकिम ने हीगल की पताका फहराय रक्खी ता उसक साथी ज० ए० स्मिथ न जो कि 1910 स लकर 1935 तक नीतिशास्त्र ए ं तत्व वादी दशन के प्राध्यापक थ दस प्रत्ययवाद के बिल्कुल विरोध म खड होकर बी० क्रोचे एव जी० जण्टाइल की रचनाओ की ओर प्रवृत्त हुए।[1] उन्होन स्वय बहुत कम लिखा और वे एक अरस्तूवादी विद्वान के रूप म विख्यात थ तथा प्राय एक अध्यापक के रूप म स्नेह से याद किय जाते थ। इन्होने अपने दशन का सामान्य लगाव आच जण्टाइल के आत्मा क दशन' के प्रति प्रकट किया था।

इटली का प्रत्ययवाद, ब्रितानी प्रत्ययवाद के समान ही उन्नीसवी शती के प्राकृतवाद क विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी। इटली म इसका प्रतिनिधित्व बहुत सी रचनाओ क लखक तथा भारी वस्तु स्थिति वादी आर० आर्डिगो द्वारा किया गया। और जसा कि बी० स्पेवेन्टा की रचनाओ म हुआ है हीगल को फिर इसके प्रवतक क रूप म स्वीकार किया[2] गया। परन्तु इटली के हीगलवादियो न यह भी किसी न किसी भाति स्पष्ट कर दिया कि व शिष्यत्व का यह जामा एक दूसरे तरीके स ही पहनेगें। इटली मे हीगलवाद की इस रूप म ठोस व्याख्या हुई कि वह एक तक शास्त्र होने की वजाय इतिहास दशन अधिक है। दूसरे जमन विद्वानो की भाति हीगल का भी मध्यरेखीय क्षेत्रो की ओर भात भात मानवीकरण कर दिया गया।[3]

इस तरह मानवीकृत हीगलवादी स ही क्रोचे एव जेन्टाइल का प्रत्ययवाद विकसित हुआ। यहा यह बात महत्व की है कि क्रोचे[4] की प्राथमिक रुचि साहित्य

---

1 द्रष्टव्य उनक द्वारा लिखित निबन्ध फिलोसोफी एज द डवलपमेण्ट आव द नोशन एण्ड रीअलिटी आव सल्फ-कान्शसनेस (सी० बी० पी० II)

2 देख जी मार्केसिनी कृत ला विटा एत इल पेसीअरो डी० आर आर्डिगो (1907) स्पेवेन्टा की बहुत सी रचनाए 1901 म उनके मरणोपरान्त जेन्टाइल द्वारा प्रकाशित करवाई गई।

3 देखें जी डी रूगीरो कृत मोडन फिलोसोफी (1912) इसका अनुवाद ए एच हैल एवं आर० जी० कालिंगवुड द्वारा 1912 म किया गया।

4 एच० विल्डन कार कन द फिलोसोफी आव बनेडटो क्रोचे एन इन्ट्रोडक्शन टू हिज फिलोसोफी (1922) सी० स्पृग कृत बेनेडेटो क्रोचे (1952) आर० आई०

की ओर थी तथा वे वाद-विवाद स अलग थे। धीरे धीरे ही व दर्शन की ओर प्रवत्त हुए। उन्होने साहित्यिक एव ऐतहासिक जिनासाओ क प्रति अपना लगाव नही छोडा। वास्तव मे इगलेण्ड मे तो उन्हे एक सौन्दयशास्त्री एक समालोचक एक इतिहासवेत्ता तथा इटली की आजादी के प्रवक्ता के रूप म ही एक तत्ववादी होने अपेक्षा ज्यादा प्रसिद्धि मिली। उनकी रचनाओ को वहा प्रचलित करने का कष्टसाध्य काय उनके गहरे प्रशसक ज० ए० स्मिथ तथा एच० विल्डनकार ने किया।[1]

क्रोचे न अनुसार आत्मा ही वास्तविकता है सत्य है। सत्य होना किसी न किसी मस्तिष्क की बहुविधक्रियाओ म से कोई एक होना है। क्रोचे किसी भी प्रकार के पारवर्तित्व (ट्रासडेंस) का विराध करते हैं। ऐसा कोई भी सुझाव कि कही एक ऐसी सत्ता है जो मानवी आत्मा से पूणत अलग है चाहे वह वस्तु व। अपनी स्थिति ही (कान्ट) क्यो न हो या फिर कष्टानी ईश्वर' अथवा प्राकतवादियो की 'प्रकति' का मात्र ही क्यों न हो। मन जिस अन्दर खोज नही सकता क्रोचे उसे मनगढन्त कहकर त्याग देते हैं। खोजना क्रोचे के अनुसार एक सरल अन्त दशन की क्रिया नही है यह तो क्रिया के अन्दर और बाहर दोनो ही अवस्थाओ मे मन द्वारा अपने ही अन्दर स खोजे गए स्रोतो की विधि है।

कम ही सघष है इस बात को अभिव्यक्ति देना क्रोचे के अनुसार हीगल की महत्वपूण उपलब्धि थी। क्रोचे न अपनी पुस्तक व्हाट इज लिविंग एण्ड व्हाट इज

पी० (1953) का क्रोचे विशेषांक। जी केस्टेलनो कृत बेनेडेटो क्रोचे (1936) एव ल ओपेरा फिलोसोफी का स्टोरिका ए लिटरेरिया डी बेनेडेटो क्रोचे (1942) मे पुस्तको की एक विस्तृत सूची दी गई है। अपनी ही दाशनिक स्थिति के बारे मे लिखा गया क्रोचे का स्वय का कथन माई फिलोसोफी म देखें जिसे ई एफ करिट द्वारा 1946 म इसी नाम स अनूदित किया गया।

1 पहल एक उत्साही व्यापारी थ जिन्होने अरिस्टोटोलियन सासान्टी के जरिय से लन्दन के किंग्सकालज मे दशन की प्राध्यापकी प्राप्त की। इस समय उनकी अवस्था 61 वष की थी 1918)। 1925 म व लासएन्जेलस म दक्षिणी कली फोनिया मे चले गए। उनका अपना दशन लबनीज क स्थाणुवादी धार्मिक प्रत्ययवाद का ही एक रूप था, इसके कारण व लासए डोलस क व्यक्तित्व मूलक वातावरण के अनुकूल सिद्ध हो सकें उनकी पुस्तकें ए थ्योरी आव मोनेडस (1922 एव कोजीट न्स कोजीटेटा (1930) किन्तु पहले बगसो को तथा फिर इटली क प्रत्ययवाद को ब्रितानी पाठको के समक्ष प्रस्तुत करने मे वे प्रख्यात हो गय।

बेड इन द फिलोसाफी श्राव हीगल (1907)[1] में कही है। क्रोचे कम ही सघप है इस बात को जो उनकी अन्तर्दृष्टि का अनुभव था, एक औपचारिक अभिव्यक्ति देने मे सफल हुए हैं। यद्यपि वे हीगल का आदर करते थे फिर भी वे अपने को नव हीगलवादी कहलाना पसन्द नहीं करते थे। वे हीगल के अन्तरिम आदर्श की प्रणाली से घृणा करते थे। उनकी दृष्टि में विकास ही सब कुछ था। अस्थाई व गतिशील प्रणाली से विकसित हुई गतिशील प्रणालियो का नाम ही सत्य है क्रोचे की व्याख्या के अनुसार यह विकास अपने ऊँच समन्वय में विमुखी द्वन्द्वो की ही कोई धारा है। क्रोचे के विचार में हीगल विपरीततामों' तथा विशिष्टताम्रो के बीच उलझ कर रह गए। अच्छाई और बुराई सत्य एव असत्य निश्चय ही सही विपरीत ताएं है और एक द्वन्द्वात्मक सघर्ष में तथा सहकारिता में व एक दूसरे के करीब रहती हैं जबकि अच्छाई और सत्य इसके विपरीत मानसिक विकास के 'विशिष्ट रूप हैं जो परस्पर सघर्षशील नही है और न उन्हें किसी बडे सिद्धान्त मे ही समन्वित किया जा सकता है।

क्रोचे इस तरह मन की ऐसी चार श्रेणियां निर्मित करते हैं ए। अपनी पहली चार कृतियो में से तीन मे, जो उनके आत्मा के दर्शन (फिलोसोफी आव द स्पिरिट) के सिद्धान्त का निर्माण करती हैं, इन श्रेणियों की प्रकृति एव उनके पारस्परिक सम्बन्धो का वर्णन करने में ही लगा देते हैं। वे सर्वप्रथम सौंदर्यशास्त्र सम्बन्धी एक पुस्तक (1902) से प्रारम्भ करते हैं। दर्शन की शुरुआत करने का अंग्रेजी की दृष्टि में यह एक विचित्र तरीका है क्योंकि इंग्लैंड मे दर्शन परिवार के एक सदिग्ध सिपाही के रूप में ही उसका दर्जा निर्धारित किया गया है। सौंदर्य-शास्त्र का दार्शनिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि एक कला की रचना एव प्रशंसा करने में मन अन्तर्ज्ञान के स्तर पर ही कार्य करता। क्रोचे, मानसिक क्रिया के इसी स्तर की चर्चा करना चाहते हैं। सौन्दर्य शास्त्र उनके लिए अन्तर्बोध का विश्लेषण मात्र है। अपने इसी रूप मे बहुत से दार्शनिको द्वारा इसकी काफी

1 क्रोचे ने अपनी सक्षिप्त रचना को सेगियो सुलो हीगल (1930) नाम से लिखा जिसका बाद में परिवर्धन एव सशोधन हुआ। क्रोचे की यह आदत थी कि वे अपनी रचनाओं को प्राथमिक अवस्था में ही प्रकाशन के लिए दे देते थे, कई बार तो किसी विद्वत् समाज की कार्यवाही के लिए दे देते थे और तब एक पुस्तक के रूप में उसे प्रकाशित करने के लिए सशोधित करते रहते थे। पाठ्यक्रम एव पुस्तक सूचि दोनों को पुस्तकाकार एव पत्रो में प्रकाशित करने की प्रथम तिथि का ही हवाला मैंने दिया है और उसमें क्रोनो लोजिया डले ग्रोपरे डल क्रोचे' जो कि ला लेटरटयूरा इटालियाना (1951) के 75 वे पृष्ठ में सम्मिलित किया गया है उसी का अनुसरण मैंने किया है।

मात्रा मे प्रवहेलना की गई है। वे प्राय दूसरे तथा सद्धातिक स्तर तक ही जा सके हैं। यह स्तर तार्किक विचार प्रथवा धारणा का है प्रौर क्रोचे ने इसकी व्याख्या लाजिक एज द साइंस प्राव प्योर कान्सेप्ट नामक पुस्तक मे यह जाने बिना की है कि सभा सफल धारणाए अन्तर्ज्ञान पर आधारित होती हैं।

इसी भाति यावहारिक धरातल पर दाशनिको ने विचार के मित ययी स्तर को उपेक्षित छोड दिया है। क्रोचे ने इसे बाद म जीवन स्तर' (वाइटल लेवल) की सज्ञा दी है प्रौर इसी जरिए नीति शास्त्र का पक्ष पोषण किया है जहा हमारी मितव्ययी' त्रियाओ को वचारिक दृष्टि से वर्णित किया है। इन लोगो ने जिन्दगी के बुरे प्रथवा अच्छे रूप का निणय कर लिया है, बिना यह जान कि किस रूप मे जीवन का यह क्रम चालू है। इस तरह ठास जीवन से सपक तुडाकर क्रोचे के मतानुसार (द फिलोसोफी प्राव द प्रेक्टिकल 1909) दशन एक कल्पना जगत् मे खो जाता है या फिर थोथी विचार सृष्टियो मे।

क्रोचे के मतानुसार मन इन विभिन्न श्रेणियो म निरन्तर भ्रमण करता रहता है प्रौर जिसका भी प्र तर्ज्ञान उसे होता है उसके सबध म कोई विचार या धारणा वह बना लेता है प्रौर तब ताजी प्ररणा क लिए वह फिर अन्तर्ज्ञान के स्तर तक लौट जाता है—या फिर व्यावहारिक रूप से उस सिद्धान्त का परीक्षण करता है—प्रौर फिर सद्धान्तिक रूप से यावहार को समझने का प्रयास प्रारम्भ करता है।

इस तरह मन की गति चक्राकार है। विकासवादियो की भाति टेढी मेढी या द्वन्द्वात्मक नही। तो भी यह चक्र वाइको[1] की धारणा के जसा नही है जिसके अनुसार इस चक्र क मात्र रूपाकारो का पुन गठन होता रहता है। मन निरन्तर अपने स्रोत की ओर लौटकर ही आगे बढता है।

तब दशन मन के किस स्तर की उपज है? क्रोचे अपने ग्र थ द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस प्राव हिस्टोरियोग्राफी (1917) म बतात हैं कि दशन मनकी गति म प्रकटे सामान्य सिद्धान्तो के निरूपण के अतिरिक्त प्रौर कुछ नहो हो सकता दूसरे शब्दो मे दशन इतिहास का रीति विधान है। इतिहास मन के वास्तविक क्रम

---

1 ये इटलीवासी इतिहास के दाशनिक थे जिहोने इटली के प्रत्ययवादियों को बहुत प्रभावित किया था। दखें क्रोच कृत द फिलोसोफी प्राव जी बी वाइको (1911), अनुदित आर० पी० कोलिंगवुड (1913) तथा एच० फिश जी० बर्गिन कृत विको की आत्म कथा का अनुवाद (1944)। जायस कृत उपन्यास फिनेगन्स वेक का दाशनिक ढाचा विको से ही प्रभाव ग्रहण करता है।

को व्यक्त करता है। दर्शन इतिहास की इसी प्रणाली का वर्णन करता है। बहुत से दार्शनिकों ने यह बात तो स्वीकारी ही है कि दर्शन प्राकृतिक विज्ञान का रीति विधान है। किन्तु क्रोचे के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान अमूर्तीकरण का शिकार है। यदि विज्ञान का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया जाए और उसे मनुष्यों के मन की गति का एक अंश माना जाय, तभी हम उनकी सही प्रकृति को समझ पायेंगे। समझने का अर्थ ऐतिहासिक रूप में देखना है—क्रोचे की विचारधारा का यही केन्द्र बिन्दु है।

क्रोचे के अनुसार तब मन की गति दो प्रकार से है, विपरीतताओं के जरिए हुई उसकी द्वन्द्वात्मक गति, तथा विशिष्टताओं के कारण हुई उसकी चक्राकार गति। अन्य इटली के प्रत्ययवादी विचारक जिनमें मुख्यतः जेन्टाइल हैं इस दुमुखी वृत्ति को विरोधाभासी कहकर अमान्य करार देते हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी कि जेण्टाइल मुसोलिनी के प्रवक्ता थे।[1] उनकी विचारधारा क्रियावादी एवं एकाधिकारवादी थी। जेण्टाइल द्वारा प्रस्तुत विचारधारा (थ्योरी आव माइण्ड एज प्योर एक्ट, 1916) के अनुसार विचार की विशुद्ध क्रिया के अतिरिक्त कोई वस्तु सत्य नहीं है। उनके अनुसार शृंखला (पेंसियरो पेंसाटे) एक साथ सृष्टि क्रम भी है। 'प्रकृति केवल मृत प्राय विचार है-पन्सियरो पसेटे प्रकृति को विचार के साथ इसी तरह जोड़ने से मन द्वारा प्रकृति बोध संभव है। अन्यथा प्रकृति को स्वायत्त-वस्तु ही माना जा सकता है और इस तरह वह मन के लिये सदैव अज्ञात ही रहेगी। इस प्रकार वस्तुपरकता की बाधाएं जेण्टाइल के दर्शन में पूर्णतः विलीन हो जाती हैं। मानवी विचार के विविध रूप सब 'क्रिया' में आकर सम्मिलित हो जाते हैं। सत्य उस क्रिया के अन्वेषण से ही अस्तित्वमान होता है। बोसांके वस्तुपरकता के इस छोटे भाग में आने के प्रतिरोध में खड़े हो गए और आश्चर्य की बात नहीं है कि मूर और रसेल के अनुयायियों द्वारा भी जेण्टाइल के दर्शन पर सहानुभूति पूर्वक विचार न हो सका।

अंग्रेजी दार्शनिकों में जो इटालवी विचारधारा के बहुत निकट हैं खास तौर पर क्रोचे के, वह आर० जी० कोलिंगवुड हैं।[2] ये आक्सफोर्ड में चेयर आफ

---

1 तुलना के लिए देखें पी० रोमेनल कृत क्रोचे वर्सेस जेन्टाइल (1947)। इसमें जीवनी भी है। देख आर० डब्लू होम्स कृत आइडियलिज्म आव जेण्टाइल (1937) सी० पलिजी कृत 'द प्रोब्लम आव रिलीजन फोर द मोडन इटेलियन आइडियलिस्टस' (पी० ए० एस० 1923)

2 द्रष्टव्य ई० डब्लू० एफ० टोमलिन कृत आर० जी० कोलिंगवुड (1953) आर वी मककेलम, टी एम नोक्स आइ ए रिचमण्ड आदि के निबंध मे देखें। पा बी ए 1943 म। द आइडिया आव हिस्ट्री (1943) में टी एम नोक्स द्वारा

व्यक्त हुए हैं वे उसस मेटाफिजिल फिलोसोफी पर जे० ए० स्मिथ के बाद आसीन हुए। सभी अवस्थाओं मे तो नही किन्तु कुछेक मामलो म तो कोलिंगवुग भी महाद्वीपीय विचार के प्रति अधिक आस्थाशील दिखते हैं। मानवी सस्कति ही उनका प्रमुख कथ्य है। उनके तकशास्त्र एव उनक तत्वदशन उनके सौंदय शास्त्र एव इतिहास सिद्धान्त क अन्तगत ही आ जाते हैं। वे इस सामान्य ब्रितानी धारणा क विरुद्ध खड़े होने *को तयार हैं कि भौतिकी ही सही ज्ञान का प्रकार है उनके* एव क्रोचे के लिए समान रूप स इतिहास न कि भौतिकी हमे वस्तु की सही स्थिति स परिचित कराती ह। किन्तु यह एक ऐसा निष्कष था जिस पर केवल व ही पहुँचे।

एक मात्र दशन जो मनुष्य के लिए उपयोगी दिखाई दता ह—यह बात कोलिंगवुड अपनी पुस्तक स्पेकुलम मेन्टिस (1924) म लिखते हैं—वह यही ह कि मानवी अनुभव के मूल रूपो का सही ढग से विवचन हो।' यह बात काफी परिचित सी लगती ह। कोलिंगवड के इस कथन का हम यही अथ लगा सकते हैं कि दाशनिक एक ज्ञान मीमासक ह। किन्तु कोलिंगवुड का आशय बिल्कुल भिन्न ह। हम लागों को कलाभ्यास म निरन्तर दखते ह उन्हे अथ म प्रवृत्त देखते हैं *उन्ह विज्ञानादिक ज्ञानो म सलग्न पाते हैं और ये अपन द्वारा वरित जीवन मे* बहुत कम प्रसन्न दिखते हैं। किन्तु फिर भी उन्ह प्राय दूसरे लोगो का अपना अनुसरण करने का आग्रह करते हुए देखा जाता ह। वे क्यो यह काम करते हैं और उन्हे अपने श्रम से क्या मिलता ह? ऐस ही अनुभवो को कोलिंगवुड अपने दशन का आधार बना कर चलते हैं। ये कलाकार के, सत के, वज्ञानिक आदि के बहुविध अनुभव हाते हैं। इनका परम्परागत ज्ञानमीमासा म चर्चित सवदनाए या प्रत्यक्षीकरण' नही ह।

लिखित आमुख देखें। जी राइल कत 'मिस्टर कोलिंगवुड एन्ड द ओन्टोलोजिक आरगूमेण्ट" (माइण्ड 1935), सी जे ड्यूकास कत मिस्टर कोलिंगवुड आन फिलोसोफीकल मेयड (1936 जे पी), ए डी रिशी कत द लोजिक आन क्वेश्चन एण्ड आन्सर (माइण्ड 1943) ई ई हैरिस कोलिंगवुड आन ईटरनल प्रोब्लम्स" पी० क्यू० (1951), हेरिस कत नेचर माइण्ड एण्ड मोडन साइ स मे सशोधित रूप म यह निबध सम्मिलित किया गया है जो यह बताने का प्रयास मात्र है कि विज्ञान म हुए वतमान विकास एक दशन का पूर्वाग्रह रखते हैं जसा कि कोलिंगवुड ने अपनी आरम्भिक रचनाओ मे रक्खा। उनमे कहीं वह अनुभववादिता नही हैं जिसकी एषणा बहुत से विज्ञानमना दाशनिक करते हैं। देखें जी आर म्यूर कत "बेनेडेटो क्रोचे एण्ड ऑक्सफोड" (पी क्यू 1954)

अब एक दार्शनिक को इस प्रश्नभूमि पर कैसे बढना चाहिए ? हो सकता है व वह अपने आपको इस भूमि म सीमाधिकारी बना लने म ही सतोष का अनुभव करल और विज्ञान के लिए अमुक सिद्धान्त कला के अमुक सिद्धा त और अन्य क लिए कोई और। किन्तु अपने द्वारा नियुक्त य सीमाधिकारी कौलिगवुड व अनुसार अपन द्वारा दिए गए निर्णयो के कारण समादृत नहीं हो सकते। क्योंकि यह बात स्पष्ट ह कि दार्शनिक के लिए खडे होन क लिए कोई मौलिक आधार होना चाहिए और तब उस शीघ्र मालूम हो जायगा कि जिस असपृक्त भाव को ग्रहण कर पाने का नाटक उसन रच रखा था उसे केवल एक अहमावी का प्रलाप कहकर समष्टि रूप म बहिष्कृत कर दिया जाएगा। इसस भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि न तो कला, न धम, और न विज्ञान ही यह स्वीकार करेंगे कि उनकी कोई निर्धारित सीमाए हैं और न यह मानकर चलत है कि मानवी व्यवहार के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो उसकी पहुच से परे हैं। कौलिगवुड विज्ञान के इसी दुराग्रह (इम्प्रासीजेस) को स्वीकारते हैं। व कहते हैं कि *तथ्य यही है कि कला विज्ञान एव धम एक ही क्षेत्र म विभिन्न धरातलो के बनाए गए भिन्न भिन्न नक्श* हैं। ऐतिहासिक तथ्यो की समाप्ति के रूप मे ये मन द्वारा अपना ही ज्ञान प्राप्त किए जाने के उदाहरण हैं।

क्या हम इससे यह निष्कष निकालें कि दार्शनिक एक सच्चा नक्शा प्राप्त करने की दृष्टि से प्रमुख धरामावी है। बिल्कुल नहीं। कौलिगवुड के अनुसार दार्शनिक के पास कलाकम, धमशास्त्र विज्ञान व श्रम के अलावा अपने निर्देश के लिए कोई अन्य स्थिति है ही नहीं। तो भी आज न तो कलाकार न धमशास्त्री और न वज्ञानिक ही स्वकर्मों से परिचित है। प्रत्येक दार्शनिक क सम्मुख एक चकाचौंध कर देने वाला *आइना रख देते हैं जसे कोई कलाकृति, ईश्वर, प्रकृति या इतिहास। और उस कहते* हैं कि सत्य इन्हीं मे निहित है। दार्शनिक कौलिगवुड इस प्रत्यावतन को प्रत्यावतन के ही रूप में देखता है। वह जानता है कि इनके सिवाय सचाई से प्राप्त किए गए अनुभवो के अतिरिक्त कोई सत्य नहीं हैं। इनम सीमित रूप मे अपने ही चारों ओर से एक ऐसे आइने की तलाश दिखाई देती है जो उसके प्रतिबिम्ब को व्यक्त कर दे। वह भी जानता है कि कुछ दपण कम चकाचोंध प्रस्तुत करते हैं—इतिहास कार का दपण ऐसे अहमाव को कम स कम प्रस्तुत करता है किन्तु वह यह सब उसी समय जानता है जब इतिहास म अपने आप को अध्यात्म के एक नीचे के स्तर तक उतार लिया है। अपने प्रतिबिम्बो की उन प्रतिबिम्बो से तुलना करके नहीं जो उसक दपण म उसको सही प्रतिच्छाया प्रस्तुत करत रह हैं।

स्पेकुलम मेन्टिस कौलिगवुड के दशन को प्रमुख कथ्य के रूप म घोषणा करता है कि तु फिर भी इस पुस्तक म जिस ढग से उनके विचार

सतुष्ट नही थे । वहा पर भी दशन की स्थिति को अस्पष्ट छोड दिया गया था । *आध्यात्मिक क्रिया का प्रत्येक रूप दशन के साथ गुथ गया है क्योकि ऐसा प्रत्यक* रूप एक ऐसा माग है जिसके जरिए मन अपने ज्ञान के विषय से परिचित होता है । किन्तु यदि दशन को इस भाति सर्वाधिक महत्व का मान लिया गया तो इसका अपना कोई क्षेत्र शेष नही रह जाएगा । दशन केवल कला, विज्ञान, एव धम आदि की अपनी सीमाओ के ज्ञान का नाम है ।

एन ऐसे ग्रान फिलोसोफीकल मेथड (1933) म इसके अतिरिक्त दशन को विशेष जाच मानकर चला गया है । वहा कोलिंगवुड दशन की विधि या उसके तक को प्रकृति विज्ञान या गणित के तक से भिन्न सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और इसी दौरान वे क्रमश वर्गीकरण परिभाषा, आदि के तार्किक प्रक्रिया की चर्चा कर देते हैं तथा यह बताने का प्रयास करते हैं कि दशन का स्पश पाकर ये प्रक्रियाए ही एक *विचित्र रूप ग्रहण कर लेती हैं । इस तरह उदाहरणाथ प्रकृति विज्ञान मे जहा* वर्गीकरण से पदार्थों को एक प्रजाति मे एकत्र करने का प्रयास होता है, दार्शनिक धारणाए इसके विपरीत इस तरह से सयुक्त प्रजाति नही है । उदाहरण के लिए यथाथ एव अच्छाई सभी वर्गीकरणो से परे है यहा तक कि आकारी तकशास्त्रीय वर्गीकरण मे भी यह विचित्रता देखी जा सकती है । प्रत्येक निणय नकारात्मक एव सकारात्मक होता है । निणय एक साथ एकाकी तथा समष्टिव्यापी होता है-शर्तात्मक एव *पदावस्थात्मक और निणय अनुमान भी होता है ।*

इसी तरह दाशनिक परिभाषा प्रकृति विज्ञान की परिभाषा की तरह न होकर इस बात का प्रयास नही है वह प्रजाति का अलगाव करे । रिपब्लिक' म *प्लेटो द्वारा ग्रहीत विधि, दाशनिक परिभाषा का विशिष्ट उदाहरण है । राज्य को* प्राथमिकता आर्थिक ढाचे का आधार मानने क विचार से प्रारम्भ करके प्लेटो धीरे धीरे प्रत्यय की ओर अपना माग बना लेते हैं जो ही वास्तव मे यथाथ स्थिति है-(राज्य भी है) । एक दाशनिक परिभाषा वास्तव म इसी प्रत्यय आकार की खोज है जिसका सदभ देकर उसमे रही अपूण स्थितियो का पता लगाया जा सकता है । उसी भाति जिस तरह 'स्पेकुलम मेण्टिस' म कालिगवुड ने कला धम विज्ञान तथा इतिहास के 'स्थान *का पता दाशनिक सदभ देकर* और दशन को वहा *आत्म ज्ञान का प्रत्ययी भाव माना है ।* इस तरह समझे जाने पर परिभाषा व वर्गीकरण ही दशन के दो मुख्य काय हैं । कोलिंगवुड क अनुसार दशन विभिन्न आकारो के मान दण्ड मे किसी धारणा क निर्धारण करने का नाम है और यह काम न तो आगमन और न निगमन से ही समव है । क्योकि दशन का प्रारम्भ न तो किसी सामान्यी करण से होता है और न उसका अन्त ही । इसके बावजूद इसकी अपनी ही एक कडी तक प्रणाली होती है ।

'इतिहासवाद' के ऐसे' (निबंध) म बहुत कम एमी बात है जिसे महत्व की कही जा सकती है।[1] निश्चय ही उनकी प्रणाली इस रूप म इतिहासवादी है कि वह स्वय यह देखने का प्रयास करते हैं कि दार्शनिक लोगों ने किस भांति विचारों का सूत्रपात किया है और उन्होंने कौनसी प्रणाली वास्तव म अपनायी है। इसके बावजूद भी व मानते हैं कि अभी भी दर्शन की बहुत सी समस्याए हल होनी शेष हैं। उन्होंने दर्शन की परिभाषा एक स्थायी समस्या के हल निकालने वाले पुकारे प्रयास की सना देकर की है। अपनी इसी धारणा को बाद में उन्होंने घृणा स इस आधार पर त्याग दिया था कि प्लेटो की समस्याए आधुनिक राजनीति विद् की समस्याओं से भी तो अलग थी।

अपनी आटोबायोग्राफी (1939) म उन्होंने इतिहासवाद म अपने सस्कारित हो जाने की बात को स्वीकारा है। अन्य दार्शनिक आत्मकथाओं की भांति कालिंगवुड द्वारा प्रस्तुत अपने बोधिक विकास का विवरण एक ऐतिहासिक वृत्तान्त के बजाय एक आदर्श सभावना के रूप म पढा जा सकता है। कोलिंगवुड के अनुसार उनके दार्शनिक विचार निरन्तर क्रम म विकसित हुए अर्थात् पुरातत्व एव इतिहास के अध्ययन से बढते-बढते अन्त मे तत्व दर्शन की ओर विकसित हुए। यदि ऐसा है तो उनकी प्रकाशित रचनाए उनके विश्वास का बड़े गलत ढग से प्रतिनिधित्व करती हैं। क्रोच के उन पर हुए प्रभाव के विषय मे भी उन्होंने बहुत कम लिखा है। क्रोच का प्रभाव उन पर काफी रहा।[2] व कम स कम यह तो स्पष्ट करते हैं कि ऑक्सफोर्ड के शिक्षकों ने जो यथार्थवाद उन्हें समझाया था व उससे असतुष्ट थ।

---

1 कई बार प्रत्ययवादियो द्वारा कोलिंगवुड के प्रत्ययवादी प्रशसको द्वारा यह सुझाया जाता है कि मानसिक रुग्णता के 1933 से व शिकार हुए थ वह सब उनकी अन्तिम विसगतियो से देखी जा सकती है। जब कोई इन अन्तिम रचनाओ म निहित अनुमानात्मक मुक्तता का पठन करता है कोई यही सोच सकता है कि उनके समसामयिक भी विचारों की ऐसी ही असगति से पीडित रहे होंगे।

2 उन्होंने क्रोच एव रूगीरो की दो दो पुस्तको का अनुवाद किया। तुलना के लिए देखें क्रोचे पर द आइडिया आन हिस्ट्री 1936 मे लिखित किन्तु 1946 म प्रकाशित) मे उनके विचार तथा ऑटोबायोग्राफी म उनके अपने सिद्धान्त। किन्तु कोलिंगवुड कोचे से इस बात पर सहमत हो सकते थे कि प्रभाव की चर्चा करना मानवी विचार के विकास को यान्त्रिक झटको से चालू हुआ मानने जसा है। कोई आदमी इससे उसी वक्त प्रभावित हो सकता है जिससे पहले स ही वह काफी सहानुभूत रहा हो। क्रोचे स्पेकुलम मेन्टिस की आलोचना इस आधार पर करते हैं वह मानवी आत्मा की कियाओ की विशिष्टताओ का पर्याप्त हल प्रस्तुत नहीं करता।

यथाथवादियो की इतिहासहीन दष्टि के कारण उन्हे बडा धक्का लगा। उनके अनुसार मूर एव कुक विलसन भी ब्रेडले एव बकले की भाति उन दाशनिक सिद्धान्तों का खण्डन करने में निरत थे जो अपनी भीषण काल्पनिकता के कारण ही विद्यमान थे। पहले तो व उन लोगो को इस आधार पर क्षमा करना चाहते थ कि वे इतिहास की बात नही कहकर दशन मे ही उलझे थे। किन्तु शीघ्र ही उन्हे यह अनुभूति हुई इस प्रकार की क्षमा असामयिक है। बकले एव ब्रेडले' क्या क्या कहना चाहते थ। उसे न समझना अनधिकारी दाशनिक होना ही है।

विचार करके, जसा कि छोट स छोटे उदाहरणो पर जसे यह लाल गुलाब है यथाथवादियों न किसी भाति यह मान लिया है कि ज्ञान पारदर्शी है अथात् *वह मन को वस्तु के समक्ष ले आने मे ही निहित है।* किन्तु जसे ही हम अपने आप से यह पूछते हैं कि यह ज्ञान कसे विकसित होता है तो पुरातत्व की एक खुदाई के समान हमे यह मालुम होता है कि दृष्टि डालने से कोई काम नही चलने का। किसी महत्वपूण अथ म जानन का मतलब किसी प्रश्न का उत्तर खोजना ही है। ज्ञान एक प्रक्रिया है जिसमे पूछना एक अवस्था है तथा उत्तर देना दूसरी। यह छोटी छोटी अनुभूतिया के लिए भी सही है यद्यपि वहा उत्तर हमे इतना शीघ्र मिल जाता है कि हम सरलता स यह नही मालुम कर पाते कि कोई प्रश्न स्थिति भी प्रकटी थी।

ज्ञान के ऐसे सिद्धान्त से कोलिंगवुड का तक शास्त्र विकसित हुआ था। उन्होने रसेल के तकवाक्यीय तकशास्त्र को इस आधार पर त्याग दिया तथा उसके साथ सलग्न सत्य के सिद्धान्त को भी कि वह प्रश्न एव उत्तर से विलग हो जाता है। कोई तकवाक्य कोलिंगवुड के अनुसार केवल किसी प्रश्न के उत्तर के रूप म ही विद्यमान हो सकता है। प्रश्नोत्तर के माहौल मे यदि उसका उत्तर सही है तो वह सत्य हो जाता है या फिर वह एक ऐसे उत्तर के रूप म प्रकटे जो जाच मे सहायक हो। इस प्रकार न तो तकवाक्य और न कोई सत्य ही जाच पडताल की प्रक्रिया *से अलग कही विद्यमान है।* किन्तु रसेल के तकवाक्यीय सिद्धान्त मे यही बात मान ली गई है।

एन ऐसे ऑन मटाफिजिक्स (1940) म कोलिंगवुड प्रश्नोत्तर तकवाक्य को अपने तत्वदशन की प्रकृति का विवरण देने वाले रूप का शुभारम्भ मानते हैं। वे यहा परम्परागत इस सिद्धान्त का खण्डन करते हैं कि तत्व दशन विशुद्ध सत्ता' का सिद्धान्त है। *रूपो के मानदण्ड मे अन्तिम आश्रय बिन्दु के रूप म है। यह अन्तरिमता एक रूप* की अन्तरिमता जिसमे कोई विचित्रताए नही है और इसी कारण जिन्हे किसी उच्चतर रूप पर आश्रित नही माना जा सकता, कोलिंगवुड के अनुसार यह सत्त,

हीनता से अभिन्न है। एक ऐसा रूप जिसके विषय में आगे कुछ नही कहा जा सकता, वह स्वय कुछ नही। इस तरह विशुद्ध सत्ता जाच का विषय नही है।

उनके विचार मे इसके अलावा कुछ अन्तरिम पूर्व मा यताए भी हैं। पर्याप्त-तात ठोस हैं'। प्रत्येक कथन, प्रत्येक तकवाक्य उनके अनुसार किसी प्रश्न का जवाब ही है। किन्तु प्रत्येक प्रश्न भी, अपने आप किसी पूर्व धारणा पर आश्रित है। जिसके बिना प्रश्न उठना सभव ही नही है। उदाहरण के लिए पुरातत्ववत्ता पूछता है'इस खुदाई का क्या अर्थ है?' तो वह यह मानकर चलता है कि खुदाई मे एक अर्थ है। ऐसी पूर्व धारणा को कोलिंगवुड सापेक्ष मानते हैं क्योंकि यह भी किसी प्रश्न का उत्तर हो सकती है। इस प्रश्न का क्या उस खुदाई मे कोई अर्थ है?'

इसके विपरीत यह पूर्वधारणा कि घटनाओ के कारण होते हैं एक अन्तरिम धारणा है। यह वज्ञानिक जाच पडताल से उत्पन्न नही होती है। यह किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर नही हैं जिसे वज्ञानिक ने पूछा हो, यह तो उनकी प्रश्नावलियो की पूर्व धारणा है या कम से कम इसका ऐसी पूर्व धारणा के रूप मे उपयोग होता रहा है। कोलिंगवुड यह स्वीकारने के लिए बिल्कुल तयार है, पूर्व धारणाए समय समय पर बदलती रहती हैं किसी एक ऐतिहासिक युग मे उनके विचार से पूर्वधारणाओ का एक पुज (कोन्स्टेलेशन) कभी इस ओर कभी उस प्रकार की जाच को अनुशासित करता है। जीवशास्त्र की पूर्वधारणाए भौतिकी की पूर्व धारणाओ से भिन्न होंगी। ये पूर्ण धारणाए युगपद् विचार्य होनी चाहिए अर्थात एक साथ इन्हे माना जाना सभव होना चाहिए। इनके पारस्परिक सबधो तथा जाच के विकास क्रम मे कालिंगवुड सुझाव देते हैं कि इसके साथ ही तनाव का तत्व आना आवश्यक है। इस तनाव पर विजय प्राप्त करने मे ही वे पूर्ण धारणाए बदल जाती हैं। वे इस आधार पर त्याग नही दी जाती कि वे दोषपूर्ण है। सत्य एव भूठ के सिद्धान्त उन पर लागू नही होते क्योंकि वे तकवाक्य नही है और न प्रश्नो के उत्तर ही हैं, उन्हे केवल मात्र छोड दिया जाता है।

कालिंगवुड के पहले के बहुत से दार्शनिको ने अन्तरिम पूर्ण धारणाओ के प्रति अपना लगाव दिखाया था किन्तु उन्होने प्राय यह माना है कि एक तत्ववादी को ऐसी पूर्ण धारणाओं के सत्य को प्रदर्शन योग्य बनाना चाहिए या फिर उसे किसी निगमनात्मक प्रणाली का अग बना देना चाहिए। यदि कोलिंगवुड सही है तो ऐसी महत्वाकाक्षाए केवल गलतफहमियो से पदा होती हैं। पूर्ण धारणाए तकवाक्य नही हैं, पूर्व धारणाओं का कोई विधान नही हो सकता। अपनी प्रकृति से ही उन्हे प्रमाण की आवश्यकता नही हैं। एक दूसरे से उनके सबध बताने का प्रयास करना और उन्हे किन्ही प्रमेयो को निष्कर्ष मानकर उनके विषय मे यह मानना है कि वे अन्तरिम

स्थिति से कम हैं। अधिक स अधिक तत्वदशन जो कुछ कर सकता है–एक विशेष जाच म प्रयुक्त पूर्ण धारणाओं से शनै शन किसी ऐतिहासिक स्थल पर आकर युक्त होकर आगे बढता है। बिना कुछ जाने वास्तव मे उ होने यही किया है। अरस्तू एक महान तत्ववादी थ क्योकि वे यूनानी विज्ञान की पूर्ण धारणाओं को प्रकाश म लाये। काण्ट इसलिए महान थे क्योंकि न्यूटनवादी भौतिकी के लिए उन्होने ठीक वसा ही ही काय किया। जब यूनानी दाशनिकों ने देवताओं के विरूद्ध ईश्वर पर विचार करना प्रारम्भ किया तो वे घूम फिर कर किसी विज्ञान की विशिष्ट जाच पडतालो के विविध रूपों के एकीकरण का सदभ दे रहे थे। सत्रहवी सदी म प्रकृति' न भी वैसा ही काय किया और जब स्पिनोजा ने कहा था कि 'ईश्वरप्रकृति है तो वे इससे अधिक कुछ नही कह रहे थ कि प्रकृति और ईश्वर सबधी पूण धारणाओं म तादात्म्य है।

इस तरह कोलिगवुड दाशनिक विचारो की सृजनवादी मान्यता को उदघृत करते हैं जिस हमने उन्नीसवी सदी क दशन मे देखा है जहा 19वी शती की सृजन वादी जाच पडताल मनोवज्ञानिक व जीवशास्त्रीय थी कोलिगवुड मूल भूत सृजनवादी विनान का आधार इतिहास मे देखते हैं। यहा तक कि प्राकत विनान भी मूलत ऐतिहासिक है यह बात वे अपनी पुस्तक **द आइडिया आव नेचर** (मरणोपरान्त 1945 मे प्रकाशित) म कहते हैं। इसके तथ्य इस बात म निहित है किसी एक समय म किसी अमुक अमुक स्थान म अमुक अमुक प्रकार के पयवेक्षण किए गए यह बताने के लिए कि ऐसी ही ऐतिहासिक जाच करने की आवश्यकता है। वनानिक सिद्धान्त भी किसी न किसी के विचार तो हैं ही गुरूत्वाकषण के शास्त्रीय सिद्धान्त को समझना यूटन का विचारधारा की व्याख्या करना ही है। इस तरह कोलिगवुड इस निष्कप पर पहुचते हैं प्राकृत विनान भी विचारो का एक अवस्था के रूप मे ही विद्यमान है और ऐतिहासिक सदभ मे सदा स ही विद्यमान रहा है अपन अस्तित्व के लिए वह ऐतिहासिक विचारधारा पर आश्रित है। विनान का कोई उस समय तक नही समझ सकता जब तक वह इतिहास को न समझता हो और कोई इस प्रश्न का उत्तर भी उस समय तक नही दे सकता कि प्रकृति क्या है, जब तक वह यह न जाने कि इतिहास क्या है?

ह्यूम न यह बताने का प्रयास किया था कि तत्ववादी प्रश्न उस समय तक अनुत्तरित है जब तक उन्हे मनोवज्ञानिक प्रश्नो का रूप न दे दिया गया हो इस प्रश्न का कि किसी कारण की सही प्रकृति क्या है? वे ऐसे रूपान्तरित करते हैं–हम यह विश्वास क्से कर सकते हैं कि अ ब का कारण है। इस पर आपत्ति करते हुए कोलिगवुड कहते हैं कि मनोविनान विचार का विनान न होकर अनुभूति एव सवेदना का विज्ञान ही है और तत्वदशन की चर्चा मे उसका प्रसग अथहीन

है। सही प्रश्न को जो उत्तर योग्य तथा सदमज्ञेय हो इसी प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि किन्हीं कार्य-कारणों पूर्ण धारणाओं की वैज्ञानिक जांच पड़ताल करने वाले विचारों के इतिहास के कौन से क्रम में मानकर चलते हैं। इतिहास तब पूर्णत तत्त्वदर्शन को भी अपने में समेट लेता है। स्पेकुलम मण्टिम में इतिहास अपने आध्यात्मिक क्रियाओं के दर्शन के करीब पड़ता है तो इसके स्तर से उसका दर्जा नीचा है। अब इतिहास ही जांच का एक ऐसा रूप है जिसमें मानवी आत्मा सुरक्षा का अनुभव करती है।

प्रत्ययवाद की एक कट्टर शाखा जिसका निकट सम्बन्ध ब्रितानी दर्शन की रूढ़िगत परिपाटियों से रहा है, का प्रवर्तन जी० एफ० स्टाउट[1] ने किया। उनकी पुस्तक माइण्ड एण्ड मैटर (1931) ब्रितानी प्रत्ययवादी परम्परा की बहु उल्लिखित कृतियों में से एक है और अभी अभी ही जिसके मरणोपरान्तक प्रकाशन में (गोड एण्ड नेचर 1952) उनका तत्वदर्शन अधिक विस्तार में वर्णित है।

जैसा कि हमने पहले ही लिखा है उनके तत्वदर्शन का प्रमुख विचार विमत एक्य' का विचार था। यह विचार प्रत्ययवादियों के ठोस समष्टि के सिद्धान्त के जैसा ही कार्य करता है उनके समष्टि सिद्धान्त में मूल तत्व के रूप में यह बहुत जाना पहचाना विचार है। स्टाउट का समष्टि सिद्धान्त[2] जिस पर अधिकांश कुक विलसन का प्रभाव है इस परम्परागत धारणा के खण्डन से प्रारम्भ होता है कि वस्तुएं व्यष्टियां हैं और उनके गुण समष्टियां। एक वस्तु अपने गुणों से ऊपर एवं परे की कोई सत्ता नहीं है यदि गुण समष्टियां हैं तो कहां से कोई वस्तु अपनी व्यष्टि प्राप्त कर सकती। व्यष्टि के लिए स्थान उस समय हो सकेगा जब गुण स्वयं

---

1 द्रष्टव्य अध्याय अष्टम् देखें जोन विजडम कृत 'प्रोबलम्स आव माइण्ड एण्ड मैटर' (1934) सी० डी० ब्रेड द्वारा माइण्ड एण्ड मैटर' का रिव्यू (माइण्ड 1932)

2 द नेचर आव यूनिवर्सल प्रोपोजीशन्स (पी० ए० ए० 1921 स्टडीज में पुनर्मुद्रित) एन यूनिवर्सल्स अगेन (पी० ए० एस० एस० 1936) देखें गॉड एण्ड नेचर (फुटनोट 77 में दी गई पुस्तक सूची आलोचना के लिए देखें गोष्ठी आर द करेक्टर्स आव पर्टीकुलर थिंग्स यूनिवर्सल और पर्टीकुलर) इसके साथ प्रकाशित जी० ई० मूर स्टाउट हिक्स आदि की रचनाएं भी देखें पी० ए० एस० स० 1935 एन के स्मिथ कृत द नेचर आव द यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1927) एच० नाइट कृत स्टाउट ओन यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1936) आर० आई० आरोन कृत टू सेंसेज आव द वर्ड यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1936) डी० ज० ओकोनर कृत स्टाउट्स थ्योरी आव यूनिवर्सल्स (ए० जे० पी० 1949)।

व्यष्टियां हो जाए। दोविलियार्ड मे दो के गुण उनकी दृष्टि में उतने ही विशिष्ट हैं जितनी वे दोनो गेदें हैं। प्रत्येक गेंद की अपनी सफेदी है उसकी अपनी गोलाई है, *उसकी अपनी चिकनाई है।* यहां तक तो वे नामवादियों के साथ सहमत हैं किन्तु वे उनकी तरह यह निष्कर्ष नहीं निकालते कि गुण केवल नाम के हिस्सेदार होने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते। विभिन्न सफेदियां' उनके अनुसार एक ही प्रकार के रूप हैं और इसलिए वे ऐक्य की तृतीय करती हैं यह एक ऐसी एकता है *जिसमें अनेकता भी निहित है। सफेदी' उनके दृष्टिकोण से उन सभी विशिष्ट* सफेदियों की इकाई है। वह उस एकता से परे और आगे कुछ नहीं है जिस प्रकार एक वस्तु कुछेक पदावस्थाओं की इकाई है—*वह कोई तत्व नहीं। आत्म* अनुभवों की ईकाई है। वह विशुद्ध अह नहीं है—प्रत्येक दशा में कोई विचरित इयत्ता जिसकी कल्पना व्यष्टियों की इकाई से परे की गई हो। स्टाउट के दर्शन में व्यष्टियों की विभक्त इकाई में रूपान्तरित हो गई है।

क्या कोई सर्वव्यापी इकाई है जिसमें इकाई के ये विभिन्न प्रकार अपना स्थान रखते हैं स्टाउट का विचार था निश्चित ही ऐसा होना चाहिए — गोड एण्ड नेचर में उन्होंने रसेल के विरुद्ध कुछ तर्क दिए हैं। उन्होंने प्रत्ययवादियों की स्थिति सम्बद्ध रसल के इस कथन को स्वीकारा है प्रत्येक वस्तु जो पूर्ण नहीं है वह आंशिक है और स्पष्ट शेष जगत में व्याप्त अपने पूरक भाव की सहायता के बिना उसका अस्तित्व में रहना संभव नहीं है।[1] इस तरह समष्टि से न्यून कोई भी स्थिति स्वायत्त नहीं हो सकती। रसेल ने इस धारणा का दूसरी धारणाओं के साथ तालमेल बैठा दिया था और कहा था कि समष्टि के किसी भी इकाई अंश के जरिए सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण समष्टि के विषय में कहा जाना संभव है-रसेल की विचारधारा की दिशा मूलतः इसी ओर गतिशील रही और स्टाउट उनकी दूसरी धारणा का विरोध करके उसे त्याग देते हैं।

स्टाउट की *मान्यता है कि प्रत्येक अंश* कुछ ऐसे *प्रश्न* उपस्थित करता है जिसका इस विचारधारा में कोई उत्तर नहीं मिलता और इस प्रकार वह अपने *आपको विशाल ऐक्य के अंश* के रूप में ही फिर प्रकट करता है किन्तु उपस्थित हुए प्रश्नों का उत्तर अकेले उस अंश पर विचार करने से प्राप्त नहीं हो सकता। *समष्टि की प्रकृति का* यथोचित विवरण देने के लिए हमें अपने 'सम्पूर्ण अनुभव का ब्यौरा देना होगा। तो भी हम प्रश्नाकुलता से पूर्णतः मुक्त हो जाएंगे यह

---

1 द्रष्टव्य एन० के० स्मिथ का निबन्ध द नेचर आव यूनिवर्सल्स तथा जा० राईल कृत प्लेटोज पारमेनिडिज (मा०, ण्ड 1939)।

सम्भव नही लगता। इसी सीमा तक स्टाउट अपने आपको अनिश्वरवादी मानकर प्रसन्न हैं और ब्रेडले के पक्ष मे अपना मच खडा करते हैं। किन्तु ब्रेडले की इस धारणा को व नही स्वीकारते कि ये अश अत विरोधी है। स्टाउट क लिए वे समष्टि के शुद्ध अश हैं। व केवल मात्र अपनी अपूर्वता म वहा खडे रहते हैं। इस तरह अनुभववाद को त्याग बिना ही स्टाउट प्रत्ययवादी होने की आशा करते हैं।

अब समस्या यही है कि विविध इकाइया जिनकी ओर अनुभव हमे ले जाता है व मिलकर किस प्रकार एक इकाई का निर्माण करती हैं। गभीर समस्या तो उनकी दृष्टि म मन एव पदाथ के बीच प्राट द्वत एव अतारतम्य रहने के कारण प्रस्तुत हो जाती हैं। यह अतारतम्यता निश्चयत ही परम नही हैं क्योकि मेरी मन की क्रियाए मेरे चारो ओर व्याप्त जगत् मे ही प्रवाहित रहती हैं—मैं एक टनिस के खिलाडी हाने के सम्बन्ध मे केवल गेंद एव रैकेट से किसी योजना को शुरुआत कर सकता हू। तो भी इस सीमा पर आकर भी अतारतम्यता का कोई न कोई मानदण्ड तो प्रकट हो जायगा क्योकि भौतिक पदाथ आरभ नही है।

भौतिकवादी एकता अवश्य प्राप्त करले किन्तु उसे तब मन को पदाथ की बलिवेदी पर चढा देना होगा उससे उपजा मानना होगा। 'माइण्ड एण्ड मैटर' का अधिकाश ऐसे भौतिकवादी हलों की आलोचना ही है। स्टाउट का भौतिक तक यह है पदाथ कभी कभी मन जसी अपने से सवथा भिन्न किसी अवस्था को उत्पन्न ही नही कर सकता। इस बिन्दु की स्थापनाथ ह्यूम की आलोचना के विपरीत भी, वे इस दष्टिकोण का बचाव करते हैं कि कोई एक कारण न केवल किसी वस्तु का पूववर्ती किन्तु किसी काय' का 'बोध गम्य' आकार भी हो सकता है—एक कारण का होना ऐसी ही युक्ति है जिसके जरिए यदि हम पर्याप्त व्यापक एव परिशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि कर सकते है, अपितु हम यह भी देखना चाहिए कि कसे व क्यो कोई काय निजी कारण से तार्किक आवश्यकता के रूप मे प्रकट होते हैं। कारण एव काय दोनो की एक ही 'सृजन प्रकृति' होनी चाहिए इस प्रकार ह्यूम के विरुद्ध यह सही नही है कि अमूत रूप म विचार किय जाने पर कोई वस्तु कभ दूसरी का कारण बन सकती है। विशेषत जो अमानसिक हैं वह कभी भी मानसिक का कारण नही हो सकती।

यह एक्य प्राप्त करने का एक स्थाणुवादी (मानडिस्टिक) माग भी है। इस माग पर वाड के प्रभाव म आकर स्टाउट ज्ञान के लिए प्रेरित हो गए थ। भौतिक पदाथ छद्मवेश मे आत्म ही है। किन्तु ससार को हम जसा अनुभव करत हैं वह ससार निश्चय आत्मो की ईकाई नही है और स्थाणुवादी इस छोट से तथ्य का भी स्पष्टीकरण नही दे सके।

स्टाउट का अपना हल यह है कि मन शरीर स्थित मन ही है। कार्टेजियन द्वंद्वात्मकता के विचार की भांति वह विशुद्ध आत्म नहीं है–प्रत्येक भौतिक पदार्थ मना युक्त होना चाहिए चाहे यह अपने आपमें केवल मनोमय न हो। इसी प्रकार मन एवं पदार्थ के द्वैत का समन्वय किया जा सकेगा और उनमें तारतम्य देखा जा सकेगा। 'माइण्ड एण्ड मैटर' में वे यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि प्रकृति एक समष्टिव्यापी एवं शाश्वत मन की अभिव्यक्ति करती है। इस धारणा का अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करने का काम उन्होंने अपनी पुस्तक 'गाड एण्ड नेचर' के लिए रख दिया था जिसे आजीवन वे प्रकाशित नहीं करवा सकें और न कभी पूर्ण ही कर सके। तथ्य यह है कि वे दैनिक जीवन से भिन्न प्रकार के अनुमानों को बे सहजता से अपनी स्वीकृति नहीं देना चाहते थे। इसके साथ यह तो स्पष्ट है कि उनका तमाम तत्वदर्शन एक ऐसे मन का विचार प्रस्तुत करता है जो सम्पूर्ण प्रकृति की एकता का आधार' है। उनका तर्क है कि हमारे प्रस्तुतीकरण मूलत अपूर्ण होते हैं और उस वस्तु का संदर्भ देते हैं जिसके अंग वे हैं पदार्थ स्वयं प्रकृति का अंश है और वह ऐसे प्रश्नों को उजागर करता है जिनका उत्तर समष्टि से न्यून कोई इकाई नहीं दे सकती। हमारा स्वयं मन भी इस तथ्य पर संगठित होता है कि इसके समक्ष विचार का एक मात्र लक्ष्य है–सम्पूर्ण समष्टिभाव ही वह विचार है मन चाहे उस समष्टिभाव का बोध कितने ही अल्परूप में क्यों न करे। तब समष्टि भाव एक इकाई होनी चाहिए किन्तु यह उस समय तक इकाई नहीं हो सकती जब तक कि वह मनोमय न हो। क्योंकि अन्यथा इसकी इकाई भौतिक तत्व एवं आत्म तत्वों के बीच में विभक्त हो जाएगी। समष्टि की इकाई उसके अंशों का संयुक्त नहीं करती यह तो एक विभक्त इकाई है। इस तरह स्टाउट का समष्टिव्यापी मन क्रिस्तानी ईश्वर के बहुत नजदीक पहुंच जाता है ब्रेडले के परमात्म से उसका संबंध उतना नहीं है।

अन्य ब्रितानी तत्ववादियों ने महाद्वीपीय दर्शन में से कोई न कोई प्रेरणा अवश्य ग्रहण की है। एच० जे० पेटन मूलत इसी बात से संबद्ध रहे हैं कि वे काण्ट के कार्य की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करें। उनका 'काण्टस मैटाफिजिक्स ऑव एक्सपीरिएन्स' (1936) विशेषत काण्ट के[1] 'क्रिटीक ऑव प्योर रीजन' की उल्लेखनीय टीका है।

1 उनकी अधुनातन कृति 'मोडन प्रेडिकामेण्ट' (1955) धर्म दर्शन पर लिखी गई पुस्तक है। धार्मिक आस्था का एक मात्र आधार धार्मिक अनुभव है आध्यात्मिक युक्ति के विरोध में किन्तु काण्ट द्वारा वस्तु की स्वायत्तता पर किए गए विचार की दिशा में ही वे सोचते हैं कि दर्शन कम से कम यह तो प्रदर्शित कर सकता है कि विज्ञान द्वारा देखा गया संसार यथार्थ को वास्तव में खपा नहीं सकता–ए० बी० गिबसन द्वारा आर० एम० 1956 में प्रस्तुत रिव्यू देखें।

एच० एफ० हैलेट द्वारा अपने ग्रंथ एटरनिटास (1930)[1] में स्पिनोजा की विचारधारा की तफसीरी तथा व्याख्या की गई है तथा उसी क्रम में एलक्जेण्डर एवं ह्वाइट हैड की आलोचना की गई है। उनका प्रमुख उद्देश्य यह बताना है कि दर्शन अनुभव के विवरण में कहीं कमजोर नहीं रह सकता। हैलेट इस वर्णन को सघटनवाद (हेगल के ढंग से बिल्कुल नहीं) कहते हैं। इसका उद्देश्य अनुभव के विविधरूपों को अन्तरिम यथार्थ से नियमित करने का प्रयास होना चाहिए। संक्षेप में हैलेट वस्तु स्थितिवाद से किनारा कर लेते हैं। बहुत से अन्य वैज्ञानिक भी विभिन्न मार्गों से इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। आज भी स्काटीय विश्वविद्यालयों में प्रत्ययवाद दर्शन की एक मूलभूत प्रबल धारा मानी जाती है।[2]

संयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्ययवाद अपने विभिन्न रूपों में आश्चर्यजनक ढंग से प्रचलित हुआ। किसी भी वर्तमान प्रत्ययवादी को उस पर वह अधिकार आज तक नहीं मिला जितना एक बार रोयस को मिला था। यहाँ उनके नाम गिनाना बेकार है और अमरीकन प्रत्ययवाद के विभिन्न प्रकारों के बीच भेद करना एक ऐसा कार्य है जो किसी भी इतिहासकार को शीघ्र सठिया देने के लिए पर्याप्त है। *यदि तीन लेखक डब्लू० ई० होकिंग, बी ब्लेंशड एवं डब्लू० एम० अरबन को* ही संक्षिप्त विचार के लिये ले लिया जाय तो वह इस आशा में है, बजाय इस निश्चित विश्वास के साथ, कि वे ही अमरीकी प्रत्ययवाद[3] की उल्लेखनीय धाराओं के प्रतिनिधि रहे हैं।

---

1 द्रष्टव्य सी० डी० बोडकृत प्रोफेसर हैलेट्स एटरनिटास (माइण्ड 1933)।

2 उदाहरण के लिए देखें सी० ए० कम्पबैल कृत स्केप्टिसिज्म एण्ड कन्स्ट्रक्शन (1913), ए० डी० रिचीकृत द नेचुरल हिस्ट्री आव माइण्ड (1936) जोन मैक कृत द बाउन्डरीज आफ साइन्स (1913) एवं डी० एम० मैककिनान द्वारा पी० ए० एस० में दिया योगदान। उनमें से अधिकांश दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक जीवन का एक भाग उत्तरी सामा क्षेत्र पर *बिताया किन्तु स्कॉटलण्ड ने सदैव ही उनके* अनुकूल वातावरण प्रस्तुत किया है। माइण्ड एवं स्कोटीय फिलोसोफिकल क्वाटरली (1950) के बीच का अन्तर स्पष्ट है। कम्ब्रिज में एक नीति सिद्धान्तवादी के रूप में प्रख्यात ए० सी० एविंग ने भी प्रत्ययवाद की एक शाखा का प्रवर्तन किया, इसमें स्टाउट से कुछ साम्य था। द्रष्टव्य उनकी कृत आइडियलिज्म ए० क्रिटिकल सर्वे (1934)।

3 कन्टेम्पोरेरी अमेरिकन आइडियलिज्म के दो भागों (स० जी० पी० ऐडेम्स एवं डब्लू० पी० मोन्टेग्यू) बहुत से दार्शनिक सूत्र भी हैं तथा उनके साथ पुस्तक सूची भी है जिसमें प्रमुख अमरीकी प्रत्ययवादियों के नाम हैं जिसमें से जी० पी०

हाकिंग की अनक पुस्तकों मे स ह्यूमन नेचर एण्ड इटस रिमार्किंग (1918) नामक जो पुस्तक सव प्रसिद्ध है वह नतिक धार्मिक मानना का प्रकट करती है जो प्रबल रूप मे अमरीकन प्रत्ययवाद के पीछे निहित है। ब्रेडले या मेक्टेगट की भांति इनके पास वादविवाद की ठोस योग्यता नही है। होकिंग की दृष्टि एक साथ नतिक' एव धार्मिक है। उनके दशन का प्रारम्भ इस धारणा स होता है कि सृष्टि का कोई अथ है।' प्रकृतिवाद विचारको की तरह इस बात का खण्डन करना दाश निक कहलाने क समस्त आधारो को त्यागता है। होकिंग की दृष्टि मे इसके लिए नग्न सत्य नही हैं। प्रत्यक वस्तु का अथ है या उसका मूल्य' है। हो सकता है यह अथ सदव स्पष्ट न हो। अनुभव हम बताता है कि वस्तु सम्ब धी अपनी धार णाओ का यदि हम विस्तृत करें जिसे करने म कवि एव रहस्यवादी हमारी सहायता करते हैं ता ऐसे ऐसे मूल्य प्रकट होते हैं जिन्ह पहल हमने अनदेखा कर दिया था। इस तरह ये एक दाशनिक के लिए वह विश्वास करने का अथ, एकान्तिक विश्वास नही है तथ्यो की आन्तरिक सगति न होकर यह उसका अधापन ही है जो उसे कभी कभी व मूल्य देखने स वचित कर दता है जो नतिक अनुभवो की भीड के रूप म उसके समक्ष प्रस्तुत हो जात हैं।

समष्टि मे अथ' दखना होकिंग की दृष्टि मे उसे आत्म के रूप मे देखना होगा और इस सम्ब ध म रहस्यवादी की अन्तद ष्टि हम सत्य के जितना करीब

एडेम्स, एम० डब्लू० कल्किन्स जस अदम्य परमात्मवादी तथा जी० वाटस कनिंघम के नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इसे जी० एच पामर को समर्पित किया गया है जो हावड म जेम्स रोयस एव सण्टयाना के सहयोगी थे तथा बहुप्रशंसित शिक्षक भी थे। द्रष्टव्य **कन्टेम्पेरेरी आइडियलिज्म इन अमेरिका** (स० सी० वेरेट 1932)। इसके अलावा अन्य समसामयिक अमरीकी तत्ववादियो म जो प्रत्ययवादी धारा से अलग हैं और सवाधिक चर्चित हैं वे हैं सी० डी० ड्यूकास जिनकी कृति **नेचर माइण्ड एण्ड डेथ** (1951) दार्शनिक निबन्धो की एक लम्बी श्रृखला का सार सकलन है। वे विशेषत नीति सिद्धान्तवादी तथा सौन्दयशास्त्री के रूप मे प्रसिद्ध हैं। उनका विचार दशन उनकी कृति **फिलोसोफी एज ए० साइन्स** (1941) मे प्रस्तुत हुआ है—दशन का सम्बन्ध अभिशसाओ का युक्तियुक्त आधार खोजने से है। दशन की सामान्य परिभाषा के रूप म इसे अधिक लोगों का समयन नही मिला। किन्तु नीतिशास्त्र के विवरण की दृष्टि से इसी परिभाषा म लोगो की रुचि वही थी किन्तु ड्यूकास ने कायकरण जस मसलो पर भी मुक्त रूप म लिखा। वे कहते हैं कि कायकारणी तकवाक्य आवश्यक है किन्तु बुद्धिवादियो की धारणा के अनुसार नही। उन्होन मन एव शरीर के सबध पर भी लिखा। उनकी रचनाओ पर हुई चर्चा देखें (पी० पी० आर० 1952)।

ल जाती है उतना परम प्रत्ययवादियो का तकशास्त्र भी नही ल जाता। बब की भाति होकिंग यह नही मानत कि आत्म' भी एक मूल्य है। यही कारण है विज्ञान इसकी कोई सतोषप्रद व्याख्या प्रस्तुत नही कर सका है और यदि विज्ञान ने ऐसा किया है तो बहुत कृत्रिम तौर पर यहा तत्ववादी फिर उन मूल्यो की ओर प्रवत्त हा जाता है जिन्हे विज्ञान भुला देता है।

ब्रैण्ड ब्ल शड क द्वारा एक बहुत ही दूसर प्रकार के प्रत्ययवाद की रचना की गई है। इनकी पुस्तक द नेचर आव थोट (1939)[1] ब्रितानी प्रत्ययवाद द्वारा प्रवर्तित तकशास्त्र का जिसे विचारो का सिद्धान्त के रूप मे उन्होन स्थापित किया है अनेक दष्टियो से सवश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण है। ब्लेंशड की दष्टि मे दो ऐसी बाते हैं जिनके आधार पर बोसाके जस लखको के विचारो की पूर्ति की जानी चाहिए। उन्होने मनोविज्ञान पर बहुत कम ध्यान रखा[2] और सामान्य रूप से विचार सिद्धान्त के किसी ग्रथ को न मानकर वास्तव मे ही उन्होने उसका परित्याग कर दिया और दूसरे उन्होने विचारा क प्रत्यय (आदश) को पर्याप्त विस्तार म नही बताया। पहली भूल को सुधारन के लिए ब्लनशड मानवी विचार धारा के विकास का वणन तार्किक एव मनोवैज्ञानिक दोनो ही दष्टिया स करना चाहते हैं। प्राथमिक प्रत्यक्षीकरण से लकर किसी सुव्यवस्थित ज्ञान की ओर का सक्रमण ऐसा अवश्य है जिसका वणन करने म मनोवैज्ञानिक पूण समथ है। तो भी इसक साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक को यह जान लेना चाहिए कि मानवी विचार क्रम सदव ही अपन विकास के दौरान एक तार्किक आदश स सचालित होता रहता है। विचार मनोवैज्ञानिक ढग स वणनीय अवस्थाओ क जरिए ही आगे बढत हैं फिर भी उनका माग ऐसा होता है जो एक तार्किक रूपाकार प्रकट करता है।

विचार के प्रत्यय का विवरण देने के लिए ब्ल शड ने जाकिम का कम प्रभाव ग्रहण नही किया था। जोकिम को इन्होने अपनी एक दो रचनाए समर्पित भी की है। सत्य का समवायी सिद्धान्त उस आदश का वणन करता है जिसकी ओर सारे मानवी विचारो का रूख है और जिस अन्य किसी सिद्धान्त द्वारा वर्णित

---

1 द्रष्टव्य, ई० नगल कृत सोवरेन रीजन इसी नाम की पुस्तक म (1954)।

2 ब्लेंशड डब्लू० मिचल कत स्ट्रक्चर एण्डग्रोथ आव द माइण्ड (1907) का अपवाद मानते हैं जिसका बोसाके एव होनले न बडे उत्साह स स्वागत किया था। इस तरह यही विस्तार में उत्तर ब्रैडलेवादी दष्टिकोण से हटकर उन्नीसवी शती क मनोविज्ञान पर विचार करने का सवप्रथम प्रयास है। ब्ल शड इसम प्रस्तुत मनोविश्लेपण क सिद्धान्तो का खूब उपयाग करत हैं। ऐडेलेडी विश्वविद्यालय म बहुत सालो तक मिचेल एक प्रभावशाली शिक्षक रह चुके थ।

किया जाना सभव नही है। यह एक ऐमी प्रणाली है जिसमे उसके मूलभूत तत्व आवश्यकत्व को अपनी व्याख्या से अलग कर देते हैं और आकारवादी इसे तक एव गणित के सुपुद कर देते हैं प्रत्ययवादी इमे सब ओर देख लेते हैं। एक बार फिर आकारी विवेचको से विवाद करना पडेगा। ब्लेशड अपनी इस धारणा का आखिरी दम तक बचाव करते हैं। स्टाउट की भाति व भी ह्यूम के काय कारण के सव व्यापी होने से ब्लेशड अपना माग इस बात की ओर निकालते है कि किसी आव श्यक प्रणाली की सवव्यापकता होनी ही चाहिए। इस तरह ब्लेशड का दशन अपनी मनोविज्ञान सबधी मागो के साथ, मूलत परम प्रत्ययवाद की ब्रितानी शाखा का ही एक अ ग है कई अ शो म व रोयस क करीब आ जाते हैं किन्तु वे रोयस के तकशास्त्री रूप के ही निकट आते है रोयस के नीति शास्त्री के करीब नही।

डब्लू एम अरबन [1] अपने को प्रत्ययवादी कहलाया जाना नापसन्द करते थे। उनकी एक पुस्तक का शीयक मी बियोण्ड रीअलिज्म एण्ड आइडियलिज्म (1949) है। ज्ञानमूलक प्रत्ययवाद को ही अरबन न हीगल क यून दिग्दशन मे पार करने का प्रयास किया है। उनका ध्येय एक ऐम दशन की रचना करना है जो उस सीमा तक प्रत्ययवादी है जहा तक वह यह स्वीकारता है कि सत्य भी वास्तव म आदश ही है। किन्तु जो इस बात का खण्डन करता है कि जिस हम तात्कालिक रूप मे जानते है अपने अस्तित्व के तथा रूप के लिए उस मन पर आश्रित है जो उसका बोध करता है। अरबन की दृष्टि म ऐसा दशन मानवी मन के स्वाभाविक तत्वदशन के साथ मेल खायगा। यह फिर शाश्वत दशन' के लिए एक योगदान हो जायगा जिसका रूप हमे प्लेटो अरस्तू एन्सेल्म, एक्वीनस स्पिनोजा तथा लबनीय आदि के दशन मे दिखाई देता है। और जिनका विरोध अति प्राकृतवादियो द्वारा ही किया जा सकता है जो हॉकिंग की दृष्टि से दाशनिक कहे जाने योग्य भी नही है। अपने म अ तर्निहित तथ्य तथा मूल्य' के लिए सघष के साथ प्राकृत वाद मे तथा शाश्वत दशन म न कि ज्ञानमूलक आदशवादियो तथा यथाथ-वादियो के बीच रहे घातक झगडो मे ही वतमान विचार का सूक्ष्मतम सुवाद प्रस्तुत हुआ है।

'मानवी मन का स्वाभाविक तत्वदशन' दनिक जीवन की वस्तुओ की सव साधारण धारणा को स्वीकार करता है, एव पदावस्थाए-तत्व एव गुणो से सम्बद्ध पदावस्थाए जिनकी उपयोग स्वाभाविक भाषा म होता है लैंग्वेज एण्ड रीअलिटी (1939) म अरबन यही बताने का प्रयास करते हैं कि कोई सिद्धात अन्तत

1 जे० ई० स्मिथ द्वारा लिखित बियोण्ड रीअलिज्म एण्ड आइडियलिज्म एन एप्रीशिएसन आव डब्ल्यू० एम० अरबन (आर० एम० 1957)।

इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता। व स्वीकारते हैं कि उस समय निश्चय ही कुछ मुश्किल आती है जब स्वाभाविक तत्वदशन की पदावस्थाओं को अनुभव के क्षेत्र से बाहर व्यवहृत करना होता है। इस दृष्टिकोण म कुछ अय तो है कि शाश्वत दशन के प्रति अनुभववादी तत्वदशन मे परम यथाथ के रूप में ईश्वर सबधी इसकी धारणा निराशाजनक रूप स मानव-समरूपी है किन्तु यह साथकता उसी समय विलीन हो जाती है जब हम एक बार यह अनुभव करते हैं कि तत्ववादी प्रतीकों की भाषा म बातचीत करता है। शायद इसीलिए तत्ववादी को उसके शाब्दिक रूप मे स्वीकार करके ही काण्ट ने पारवर्ती तत्वदशन के निर्माण के विरुद्ध इतनी प्रबल आवाज बुलन्द की थी। अरबन की दृष्टि म ईश्वर सबधी सिद्धान्त अपरिहाय रूप से प्रतीकात्मक है, रूपकात्मक है।[1] इसका यह अथ नही कि वे निरथक हैं।

उनकी येल यूनिवर्सिटी स सेवामुक्त हो जाने के पश्चात् वह विश्वविद्यालय उनके एक अनुवर्ती की खोज म था जो उस परम्परा का निर्वाह कर सके जो उनके द्वारा स्थापित की गई थी। अर्नेस्ट कसिरर के रूप म उन्हे ऐसा व्यक्ति मिला जो 1932 से अपन दश जमनी से निष्कासित था। उस समय तक उनकी रचनाओं म से सिवाय सबस्टैंस एण्ड फक्शन (1910) एव आइस्टीनूस थयोरी आव रिलेटिविटी (1921) के अग्रेजी वेशभूषा म प्रकट नहीं हुई थी। 1923 म इन दोनो पुस्तकों का एक अनुवाद प्रस्तुत हुआ। पिछले कुछ वर्षों म तो कसिरर की रचनाओं क अनुवाद की धूम मच गई। ऐसे ओन मैन (1944) को उन्होंने अग्रेजी पाठकों के सुविधाथ फिलोसोफी आव सिम्बोलिक फाम्स समझान के लिए लिखा। यह पुस्तक अनेक बार मुद्रित हुई एव लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफस ने तो पूरा एक सस्करण उनके लिए प्रकाशित किया।[2]

1 यह तत्वदशन के प्रति ऐसी दृष्टि है जिसका प्रवतन वतमान विचारकों मे हुआ है। अ शत नवमागवादियो के प्रभाव मे। इसे वस्तुस्थितिवादी आलोचकों के विरुद्ध तत्ववाद की सुरक्षा का अस्त्र माना गया है। उदाहरण क लिए देखें ई० बेवन कृत सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ (1938) डी० एम० एमट द नेचर आव मैटाफिजिकल थिंकिंग (1945)। तत्ववाद को रूपकात्मक दृष्टि स व्यक्त करन म इस पुस्तक को काफी महत्व की माना गया है। ए० एन० व्हाइटहैड कृत सिम्बोलिज्म इटस मीनिंग एण्ड इफेक्ट (1928)। एमट इस पुस्तक के बडे ऋणी है। नवमार्गीय सिद्धान्त पर देखें एम० पनिडो कृत ले रोले डि ला एनालोजी एन थियोलोजी डोगमेटिक (1931), इसके साथ ही टोमवादी रचनाए देखें जो आगे वर्णित है।

2 द फिलोसोफी आव अनस्ट कसिरर (स० पी० ए० शिल्प 1949 देखें सी० डब्लू० हेन्डल द्वारा लिखित द फिलोसोफी आव सिम्बोलिक फोम्स (1923) के

तो भी कम स कम इगलण्ड म ता कसिरर को दाशनिक होने का गौरव प्राप्त न हो सका। लिविंग फिलोसोफर्स के लसको म स एक भी अग्रेज नही है– और उनम स सिवाय अरबन के तत्ववादी होने का गौरव भी प्राप्त नही। माइण्ड (1953) प्रोब्लम्स आव नोलेज के समीक्षक आदि ने स्पष्ट रूप स उनकी पुस्तक का 'बहुत बुरी पुस्तक' कहा था।

जी० सी० ज० मिजल जसे टिप्पणीकार कसिरर के सम्बन्ध म यह मानन को तयार थे कि *सस्कृति के इतिहासकार के रूप म उन्होने नए क्षितिजो का स्पश* किया है चाहे इतिहासकार के रूप म अपनी भूमि की चिनाई अधूरे ढग से ही उन्होने की हो। यह प्रतिक्रिया खास तौर की है। इग्लेण्ड म कसिरर की प्रकृति दाशनिक इतिहासकार के रूप म हुई है विशुद्ध दाशनिक क रूप म नही। कसिरर की दृष्टि म यह बिना स्थापना का गौरव है। ज्ञान की ही भाति दशन उनके लिए आत्मज्ञान है। और सस्कृति म आत्मज्ञान का अथ है मानवी आत्मा की क्रियाओ क सम्बन्ध मे हुआ ज्ञान।

कोहन क शिष्य के रूप म तथा मारबग की नवकाण्टवादी शाखा के सदस्य के रूप म ही कसिरर की विचारधारा का विकास हुआ। शेष के उनके आध्यात्मिक पूव प्रभावो म हीगल के फिलोमेनोलोजी आव स्पिरिट तथा हडर क इतिहास *दशन का प्रभाव तथा हज की भौतिक शास्त्र की प्रतीकवादी व्याख्या का प्रभाव* देखा जा सकता है। इन स्रोतो स व इस निष्कष पर पहुचे कि मानवी सस्कृति का कोई भी बडा चेत्र जिनम विज्ञान धम कला पुराख्यान तथा भाषा हैं यथाथ का कोई चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर पाने म समथ नही हुआ। और उसे ऐसे बाहरी जगत् के रूप मे देख रखा है जिसे केवल मनुष्य मात्र को समझना शेष है। इनम स प्रत्यक बोध का ही एक प्रकार है। वह प्रस्तुत जगत् का मात्र प्रत्यक्षीकरण नही है किन्तु हमारे द्वारा प्राप्त अनुभव का सुव्यवस्थित रूप से व्यवहृत किये जाने का माग निर्मित करना है। बोध की यह एक ऐसी अवस्था है जिसे प्रतीक रचना द्वारा सुकर बनाई जा सकती है तथा एकातिक आत्मपरकता स इसकी सुरक्षा इसकी युक्ति-युक्तता तथा व्यवस्था क जरिए की जा सकती है।

कसिरर भौतिकी के चेत्र से प्रारम्भ करत हैं। उनकी दृष्टि म भौतिकी का विकास नग्न यथाथ से होता हुआ प्रतीकात्मक रचना का रूप ग्रहण करता

अग्रेजी अनुवाद का आमुख। एस० लेंगर कृत फिलोसोफी इन ए न्यू की (1942) सस्कृति के दशन की एक जीवन्त एव मौलिक रचना है। कसिरर इसके मूल प्रभाव स्रोत रहे हैं किन्तु अन्य स्रोतो से भी उसने प्रभाव ग्रहण किया है, विशेषकर व्हाइटहैड से और उस कम तत्ववादी पदावलियो मे प्रस्तुत किया गया है।

चलता है जो और अधिक वर्णन नहीं करता अपितु एक जगत् की व्यवस्था करता है, उसमें एक क्रम देखता है। आवश्यक रूप से दार्शनिक भौतिकी की ओर अपना ध्यान केंद्रित किए रहते हैं क्योंकि वे गलत रूप में यह विश्वास करते हैं कि यथार्थ की ओर पहुंचने का भौतिकी एक अद्वितीय मार्ग है। एक बार हम इसके सृजनात्मक अथवा प्रतीकात्मक स्वरूप को जान लें तो हम भौतिकी मानवी संस्कृति का अंश लगेगी जो हर जगह ठोस यथार्थ की भिन्न दिखने वाली धरती से आदर्श की समान रूप से प्रवाहित होने वाली धारा के रूप में प्रसूत की वह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें मानवी आत्मा अपनी अभिव्यक्ति पाती है। मनुष्य को समझने का केंद्र बिंदु उसका विज्ञान नहीं है उसकी भाषा है। मनुष्य प्रतीकीकरण करने वाला प्राणी है—और मानवी भाषा भी संवेदना के स्तर से प्रसूत तथा समष्टि की ओर विकसित होने वाला प्रतीक है।

ब्रितानी परम्परा के अनुसार ही यदि हम यह प्रश्न पूछें जो कसिरर के नवकाण्टवादी तत्वदर्शन के अनुरूप हो है—'प्रस्तुत' में कौनसी कौनसी अवस्थाएं है और बोध का रूप या आकार क्या है ?' 'सत्य एवं झूठ में क्या भेद है ?', तो कैसिरर की रचनाओं में कदाचित् उसका कोई उत्तर न हो। कदाचित् कोई यह तो कह सकता है उनमें से ऐसे बहुत से प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं जो परस्पर संघर्षशील हैं[1]। इस बात का नकारने का कि वे एक दार्शनिक हैं यही औचित्य है। ब्रितानी दार्शनिकों द्वारा यह शब्द भली भांति समझ लिया गया है। चाहे किसी दार्शनिक की रचनाएं मानवी संस्कृति के विकास के रूप में पढ़ी जाय, य जीवन से ही उत्तिस्त मानी जायेंगी। इससे पूर्व भी दर्शन के इतिहासकारों पर इनका प्रभाव रहा था। उन्होंने ही सबप्रथम न्यूटन बाइल, गलीलियो के महत्व का ज्ञान दर्शन के लिए बताया था।[2] तो भी कुछ सीमाएँ तो रहना ही चाहिएँ क्योंकि कोई भी उन्हें एकमात्र इतिहासकार के रूप में अध्ययन नहीं कर सकता। उनके द्वारा मानवी संस्कृति का किया गया एक रचनात्मक विश्लेषण जो ठीक उसी प्रकार का है जैसा टायनबी के ग्रंथ द स्टडी ऑव हिस्टरी में देखा जा सकता है, में तुलनात्मक दृष्टि से कुछ सीमाएं हैं।[3]

---

1 उदाहरणार्थ देखें आइ० के स्टीवन्स एवं डब्लू० सी० स्वब कृत द फिलोसॉफी आव अर्न्स्ट कसरर में के निबंध।

2 कसिरर के कार्य को बाद में ई० ए० बर्ट द्वारा अपनी प्रभावशाली कृति मैटाफिजिकल फाउण्डेशन आव मोडर्न फिजिकल साइंस (1925) द्वारा आगे चलाया गया।

3 तुलना के लिए देखें डब्लू० एम० सालमिज द्वारा लिखित द फिलोसोफी आफ अर्न्स्ट कसिरर में कसिरर आन गैलीलियो' नामक निबंध।

जब वे अपने तत्वदशन का बचाव एक शाश्वत दशन के रूप म करते हैं तो अरबन नव-माग-वादियो द्वारा एक्वीनास के दशन के लिए गए मुहावरे का उपयोग करते हुए लगते हैं। अरबन इस बात को स्वीकारने मे कोई सकोच नही करते कि उनक दाशनिक विचार-कुल म एक्वीनास का स्थान भा गौरव पूण है। किन्तु वे यह मानने के लिए कतई तयार नही कि टोम वाद ही शाश्वत दर्शन है। एक्वीनास के ब्रितानी प्रशसको की यह एक सहज प्रवृत्ति रही है कि व अपने विचारो को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने म विश्वास करते हैं। वैव, टेलर एमेट सदृश लेखक (धम-दर्शन मे अपनी विशेष अभिरुचि रखने वाले) एक्वीनास से मुक्त रूप से सभी प्रभाव ग्रहण करते हैं फिर भी उन्हे अन्तिम वरिष्ठता देना नहीं चाहते। बहुत से विख्यात ब्रितानी तथा अमरीकी दार्शनिक इससे भी आगे पहुच गए हैं। उन्होंने तो नव मागवाद की ही अवहेनना कर दी है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की इस आधार पर अवहेलना की है कि यह सगठन विशेष की विचारधारा है और उसमे किसी सच्ची दार्शनिक आत्मा के स्वतन्त्र काय की अभिव्यक्ति नही है।[1]

योरप महाद्वीप म इसके अतिरिक्त नवमागवाद तथा विशेषतया नव-टोमवाद बौद्धिक क्षेत्र म उस समय से प्रमुख अङ्ग रहे थे जब एटरनी पेट्रिस (1879) नाम स एक चर्चीय विश्वकोश म यह बात कही गई कि एक्वीनास की रचनाओं को रोमन कथोलिक उपगोष्ठियो म दिए जाने वाल दार्शनिक उपदेशो का आधार मानना चाहिए। यदि दश न का महत्व उसक शास्त्रीय अनुयायियो स ही आका जाय तो केवल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद[2] के अतिरिक्त नव टोमवाद का कोई सीधा प्रतिद्वन्द्वी हो नही।

---

1 जैसा कि अपेक्षित है उत्तर-विटजनस्टीन मापाई आ दोलन एव नव-मागवाद के कुछ सदस्यो मे परस्पर सहानुभूति के चिन्ह दखे जा सकते हैं। मार्गीय विश्लेपण के सूक्ष्म भेदो की पुन सहानुभूतिपूवक चर्चा शुरू हो गई है। इसी प्रकार आकारी तकशास्त्र के पुनरावतन के साथ ही मार्गीय तकशास्त्रियो की रचना म रुचि जाग्रत की गई है। इस रुचि को स्पष्टत सी० एस० पीयस की रचनाओ म दखा जा सकता है। अभी अभी ए० एन० पायर ने मध्यकालीन एव आधुनिक तकशास्त्र के बीच की समानताओ पर बल दिया है। उदाहरण के लिए देखें उनकी फोमल लोजिक (1953)। दखे ज० एस० जुबुरा कृत प्रजेप्ट्स डे विक्स न्यू स्कोलास्टिसिज्म (1926)।

2 पुस्तक सूची के लिए दखें पी० मण्डोनेट एव ज० डस्ट्ज कत बिब्लियोग्राफी टोमिस्टे (1921) एव जे० बुर्के कत टामिस्टक बिब्लियोग्राफी (1920-40) (1945), टोमवाद की भूमिका के लिए दखें ए० जी० सर्टीलेंजिस कत ले टोमिस्मे

स्वभावत नव–मागवादियो ने अपनी अधिकाश ऊर्जा मध्यकालीन दार्शनिकों पर टिप्पणिया तथा सस्करण तैयार करने मे ही व्यय कर दी। इन्ही के कारण मध्यकालीन लखको की रचनाए आधुनिक पाठक के समक्ष प्रशसनीय सस्करणों तथा अनुवादों म प्रस्तुत हो सकी हैं। अन्य बहुत से मागवादियो ने जैस कि इग्लेण्ड म एफ० जे० कपल्टन आदि पौराणिक मध्यकालीन एव आधुनिक दर्शन के इतिहास पर विवेचनात्मक अध्ययन किया है। लाउवेब बेलजियम) मे द इस्टीटयूट सुपीरियर डी फिलोसोफी नामक सस्था ने जिसकी स्थापना कार्डिनेल मरसियर द्वारा हुई, केवल नव टोमवादी दशन के केन्द्र के रूप मे ही काय किया अपितु यहा से बहुत सी विशाल दाशनिक जीवन गाथाए प्रकाशित भी हुई हैं।

यह बात उल्लखनीय है कि सभी नव मागवादी अपने मध्यकालीन प्रभावको को पुन स्थापित करके प्रसन्न नहीं थे। पी० ज० मोरचल अपनी बृहद् रचना द पाइण्ट आव डिपाचर फोर मैटाफिजिक्स (1923–6) म टोमवाद को अन्य धाराओं के साथ समन्वित करने का प्रयत्न करते हैं विशेष रूप से आधुनिक दशनो मे से वे काण्टवादी धारा के साथ इसका समन्वय करते हैं। ए० गमैली के नेतृत्व मे जो रिविस्टा डी फिलोसोफिया निओस्कोलास्टिक के सम्पादक य इटली के लेखको के एक समुदाय ने आधुनिक दशन एव विनान के परिणामो का टोमवाद के सामान्य आकार म खपा देना चाहा। जमन नवमागवाद बहुत कम ही विशुद्ध टोमवादी रहा। जे० गेस जसे दार्शनिक के हाथो मे पडकर वह समटनवाद के साथ सधि मे पड गया।

सस्था की दृष्टि स ये लखक किसी ऐस दार्शनिक आन्दोलन के प्रवतकों के रूप मे नगण्य वग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं जो मुख्यत कट्टर नव टोमवाद से ही सतुष्ट हो गए थे। इस कट्टरता ने फ्रास म जेकस मारीटेन के हाथों म पड़-कर

---

19 20) (अग्रेजी अनुवाद) द फिलोसोफी आव सेण्ट टामस एक्वीनास (1924) एव द स्पिरिट आव मेडीकल फिलोसोफी (1932) नवमार्गीय पुनरावतन के सक्षिप्त विवरण के लिए देखें सदम सहित आइ० एम० बोकेंस की कृत योरोपाइस्चे फिलोसोफी डेर गेगेनवट (1947 म अग्रेजी अनुवाद 1656)। पुनजागरण के प्रथम वर्षों के विस्तृत विवरण के लिए देखें, जे० एल परनियर कृत द रिवाइवल आव द स्कोलास्टिक फिलोसोफी इन द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1908) द्रष्टव्य, एफ एवलिग कृत द टोमिस्टिक आउटलुक इन फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1932), नवमार्गीय पत्रों मे से महत्वपूर्ण ये हैं-द न्यू स्कोलास्टिसिज्म, डोमिनिकन स्टडीज एव द इस्टीटूट सुपीरियर डे फिलोसोफी लोवेन की पत्रिका—

एक प्रबल बौद्धिक अभिव्यक्ति प्राप्त की थी।[1] बहुत से रोमन कथोलिक बुद्धिवादियो की भाति मारीटेन पहले एक पक्के बर्गसॉवादी थे किन्तु वे बर्गसॉं एव फ्रासीसी प्रत्ययवादियो को नव-टोमवाद के हित मे निम्ज्ति करने के लिए भी जीवित रहे। फ्रास के बाहर वे कला तथा राजनीति के लेखक के रूप मे विख्यात हैं। उनकी अपेक्षाकृत कम दार्शनिक रचना द डिग्रीज आव नोलेज 1932) को व्यापक रूप मे पढा गया है। इसमे वे वैज्ञानिक ज्ञान, तत्वदर्शन तथा रहस्यानुभूति को अलग अलग मानकर भेद करते हैं-किन्तु भिन्न भिन्न होते हुए भी ज्ञान की दृष्टि से ये जुडे हुए अश हैं। वे ऐसी प्रत्येक बात के विरोध मे हैं कि इनमे से एक ही यथार्थ की ओर ले जाता है।

ब्रितानी (एव आयरिश) नव मागवादी लोग बडे पमाने पर उपगोष्ठियो के लिए पाठ्यपुस्तको के तयार करने मे लगे रहे। जे० रिकाबी के विशिष्टाक एव पी० कोफी की अपेक्षाकत अधिक महत्वपूर्ण पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। ओक्सफर्ड के जसुइट पादरी एल० जे० वाकर तथा एम० सी० डी० आरकी अपेक्षाकत अधिक महत्वाकाक्षी रहे हैं। वाकर कृत थ्योरीज आव नोलेज (1910) आलोचनात्मक ढग से ज्ञानमीमासा की प्रमुख शाखाओ की विश्लेषण करती है। उसका उद्देश्य यह बताना भी है कि जिन सत्याशो का उनमे व्यक्त किया किया गया है वे अरस्तू-टामवादी तत्वदर्शन मे पहले से ही विद्यमान हैं। डी आरकी कृत द नेचर आव बिलीफ (1931) उन प्रश्नो का पुन परीक्षण है जिन्होने न्यूमैन को द ग्रामर आव एसेण्ट मे परेशान कर दिया था। अब इन पर उस ढग से विचार हुआ है जसा न्यूमैन ने नही किया था अर्थात् यह विचार नव-मागवादी ढग से हुआ है।

पिछले पचास वर्षों मे तत्वदर्शन की बहुत सी शाखाऍं महाद्वीप मे प्रादुर्भूत हो गई हैं। इग्लण्ड मे लोग इनसे अधिक प्रभावित नही हुए। लिओन ब्रशविक[2] अपनी रचना द डेवलेपमेण्ट आव थोट इन वेस्टन फिलोसोफी (1927) मे उसी विचारधारा के प्रवाह मे लिखते हैं जिसमे क्रोचे एव बाद मे कोलिंगवुड रहे। वे इस सिद्धान्त पर प्रहार करते हैं जो मुख्यत गणितीय तर्कशास्त्रियो से सम्बन्ध रखता है-कि यह तो दार्शनिक का काम है कि पहले से प्रस्तुत धारणाओ को वह व्यवस्थित एव परिभाषित करे। इस दृष्टिकोण से तो सैद्धान्तिक रूप से मानवी मस्तिष्क को एक कलन मशीन का एवजी माना जा सकता है-जबकि तथ्य यह है

1 द्रष्टव्य सी० ए० फेवर कृत द फिलोसोफी आव जेकस मारीटेन (1953)।

2 द्रष्टव्य ब्रूशविक विशेषाक (आर० आई० पी० 1951) एव आर० एम० एम० 1945 का अङ्क। फ्रेंच प्रत्ययवाद के लिए सामान्यत देखें ए० एचेवेरी कृत ला आइडियलिज्मे फ्रांकाइज कण्टेम्पोराइन (1933)

कि धारणाए मन की क्रिया की अ श हैं और य धारणाए प्रकृति की व्याख्या के उसके प्रयास से उपजी है। इस तरह धारणाओ पर दार्शनिक रूप से विचार करने के लिए हमे मन की क्रिया का परीक्षण करना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नही यह बात व सेल्फ नोलेज (1931) म कह दते हैं कि दर्शन म तदर्शन ही है। मन को जानना उसकी निगरानी करना है उसे सक्रिय देखना है और उसे अपनी रुचि की अनन्त शाखाओ मे निरत देखना है।

जमन म इसी बीच एक ऐसा हल्ला हुआ था जिसके परिणामस्वरूप अस्तित्ववाद का प्राकट्य हो गया। विचारो का यह आन्दोलन जो स्पष्टत मार्टिन एडेगर म देखा जा सकता है प्रस्तुत प्रसग के लिए अभी हटा दिया जाता है। फिर भी एन० हाटमेन[1] को समथ तात्विकी (आण्टालोजी) का उल्लेख करना ही चाहिए। उनकी एथिक्स (1925) अग्रेजी भाषा म 1932 म अनूदित हुई है। दूसरी तरफ उनके तात्विकीय लेखों को जिनके पाच भाग 1933 से 1950 तक प्रकाश मे आए, ग्रेट ब्रिटेन या अमरीका म व्यापक तौर पर पढ़ा गया। यह आश्चयजनक बात नही ह। समसामयिक ब्रिटिश दर्शन के मुख्य रूप मे विवेचन-विश्लेषण-युक्त वातावरण म हाटमैन का सत्ता का सिद्धान्त (थ्योरी आव बीग) निर्माण करने के आकाक्षी प्रयत्न को भी सहानुभूति के साथ कठिनता से पढ़ा गया, यद्यपि कार्टेजियन परम्परा पर उनके आघात का तब भी लागो ने उचित रूप मे स्वागत किया। लेकिन यह बात तब भी द्रष्टव्य है कि बडे पमाने पर दर्शन के इग्लेड म मृतप्राय होने के बावजूद भी यारप महाद्वीप म अब भी उसका चलन ह।[2]

---

1 देखें ओ समुअल की ए फाउण्डेशन आव ओण्टोलोजी ए क्रिटिकल एनलिसिस आव निकोलाइ हाट मैन 1954।

2 बोचेस्की के अनुसार आधुनिक युग के तीन महान् दार्शनिक मैरिटेन हाटमैन और व्हाइटहेड हैं। समसामयिक फ्रेंच जमन लटिन और समसामयिक ब्रिटिश दर्शन के मध्य की खाई को कोई भी विवरण ठीक से पाट नही सकता, भले ही वे दोनो ओर के लखक ऐसे क्यो न हो जो अपने अपने देश वासियो के निणय से सहमत न होते हो।

अध्याय १४

प्रकृति वज्ञानिक दाशनिक बने

उन्नीसवी शताब्दी म प्रकृति-विनान कालान्तर मे आगे चलकर जब एक सामाजिक सस्थान बन गया तो उसने स्कूलो और विश्वविद्यालयो म प्रवेश कर इस बात की माग की कि वज्ञानिक प्रयोगशालाओ को पुस्तकालयो के समकक्ष रखना चाहिए क्योंकि दशन अथवा मार्गीय साहित्य (क्लासिसिज्म) सच्चे शिक्षक न होकर वही सच्ची शिक्षक है। स्वभावत ही इन मांगो का विरोध हुआ। विनान अपने लिए कोई न कोई स्थान स्वाथपूण उद्देश्यो के कारण ही प्राप्त कर सकता था। हाइकल हक्सले और क्लिफोड जिस मुद्दे को लेकर भिड गये वह विनान ही था, जो आक्रामक तरीके स बढ़ रहा था। इन लखको ने जनसाधारण का ध्यान एक नए और शक्तिशाली सामाजिक प्रभाव की ओर खीचा जो बाद म चलकर पर्याप्त रूप से प्रभावी हो गया। इन लेखको द्वारा इस नये प्रभाव क अवतार की सूचना दने का ढग कुछ ऐसा उत्साहपूण और चाव पदा करने वाला था जैसा कि एक किशोर का अल्हडपन और गर्वीला व्यवहार इस बात की सूचना देता सा लगता है कि मुझ म एक नया व्यक्ति जन्म ले रहा है जो किसी से कम नही है। इसी बीच दूसरे वनानिक एक अलग ही तरह के कशोय के लक्षण प्रकट कर रहे थे। ये लक्षण थ अन्तरालोचनात्मक विश्लेषण और स्वालोचन। इस आत्मालोचन ने आरभ मे कुछ इस प्रकार की दिशा ली कि जो-जो बातें एक वस्तु निष्ठावादी मानस को विचलित करती हो-या वस्तु-निष्ठावादी बुद्धि को नही जचती हो उन्हे विनान के विशेषकर यान्त्रिकी के क्षेत्र से बाहर निकाल फेंका जाय। इस प्रकार वनानिक नव-कान्तवाद पर एक पाद-टिप्पणी सी लिख रहे थे।

जी० आर० करखाफ की पुस्तक प्रिंसिपल्स आव मिकेनिक्स (1874) की भूमिका मे वज्ञानिक वस्तु निष्ठावाद की पूरी योजना रूपान्वित है। करखाफ लिखते हैं-मिकेनिक्स यान्त्रिकी गति का विनान है। इसके उद्देश्य की परिभाषा हम यो करते हैं कि यह प्रकृति मे पदा होने वाली गतियो का सरलातिसरल तरीके से सपूण वणन करता है। करखाफ इसका पूण विरोध करने पर तुले हुए हैं कि विज्ञान का उद्देश्य घटनाओ के कारण का वणन करना है कि व क्यो घटती हैं। उनका कहना है कि वज्ञानिक के लिए क्यो का स्वरूप कसे' मे निहित है। घटनाओ के बीच पारस्परिक नये सम्बन्धो को खोजकर न कि घटनाओ के परे के किसी कारण की खोज करके, वनानिक अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

अर्नस्ट मश का ग्रथ द साइस आव मिकेनिक्स (1883) [अंग्रेजी अनुवाद (1893)] करखाफ के सिद्धान्तो क महत्त्वपूर्ण प्रयोग के रूप म बहुत बडे क्षेत्र मे आदर प्राप्त कर चुका है यद्यपि 1872 मे ही मश ने अलग से उसी प्रकार क निष्कर्ष निकाल लिय थे। वास्तव म तो मश-करखाफ मार्का वस्तुनिष्ठावाद तत्कालीन वैज्ञानिक व दार्शनिक वातावरण के कारण उद्भूत हुआ। जिस विज्ञान न अपने विकास मे अन्तर्निहित कारणता स अणु वेग तथा निरपक्ष वरिमा जसी धारणाओ पर अविश्वास करना शुरू किया जिस न विचारवान तत्वदशन के विरुद्ध अपन आपको लगा दिया उस विज्ञान ने अवश्य ही स्वभावत नव-कान्तवाद का प्रभाव ग्रहण किया होगा। मैश ने अपने पापुलर साइंटिफिक लेक्चस (1866) म लिखा, द क्रिटीक आव प्योर रीजन' न पुराणपन्थी तत्वदशन क घिसे-पिटे नकली विचारों का निकाल कर अ धकार जगत मे भगा दिया। उनका उद्देश्य प्राचीन यान्त्रिकी के पुराण पन्थी विचारों के साथ भी यही सलूक करने का था। इसलिए वह कहते हैं कि विज्ञान अनुभवो मे मितव्ययतापूर्ण उपयोग के प्रयत्न का नाम है। अत्यधिक सख्या के नाना प्रकार के अनुभवो का एक सक्षिप्त सूत्र म वणन कर जो कि एक, आम बात है विज्ञान इस बात की आशका को कम करता है कि हम अपने आपको एक सवथा अज्ञात स्थिति म पाए। एक प्रकार से व सोचते हैं कि विज्ञान हमें भ्रमित करता है। वस्तुओ मे से उनका जादू निकाल लेता है। कारण कि वह हमें बताता है कि जो कुछ हम सवथा अपरिचित और अजीब सा लगता है वह विभिन्न अनुभवो के पारस्परिक सम्ब धो म अत्यन्त परिचित स्वरूप की ही एक विशेष अभिव्यक्ति है। ऐसी भ्रामकता अपरिचित का परिचित मे ऐसा परिवतन एक साथ वही सब कुछ है जिसकी हमे उस हेतु आवश्यकता है और जिस बकले ने जीवन के व्यवहार की सना दा है[1]।

मैश की परम्परागत यान्त्रिकी की आलोचना यहीं स प्रारम्भ हाती है। प्रवाही विद्युत की अणुओ की एक यान्त्रिकी, जो (जस बोलने स) अनुभवा से परे चली जाती है वह कहते हैं अपने उद्देश्य म असफल हो रही है। वे इस बात को मानने का तयार हैं कि परमाणु सिद्धान्त को एक गणितीय प्रकृति मान लिए जाने पर ही वह अनुभवो के साथ हमारे व्यवहार को सुकर कर सकता है। लेकिन यदि वैज्ञानिक अपनी उपलब्धियो के सदभ मे यह मानने लग जाय कि परमाणु अपने आप म सत्य हैं तब वह विज्ञान के उन फलदायी क्षेत्रो का सीमोल्लघन कर जाता है जो उसे तत्ववादी परिकल्पनाओ के दलदली बजर स अलग करते हैं।

---

1 बी० जे० पी० एस० 1953 के० आर० पापर ने मैश एव बकले की तुलना की है।

निरपक्ष दिक् निरपेक्ष काल, यहा तक कि आकस्मिक घटनाए, जसा कि मैश ने सोचा, ये सब परमाणुग्रो के माग से होकर जाते हैं। प्रकृति मे न तो काय ही है और न कारण ही। प्रकृति मात्र चलती जाती है। एक विकसित विज्ञान अपने परिणामो को काय-कलनीय सम्बन्धो क रूप म अभिव्यक्त करेगा। अपूयिक (अ-सेप्टिक) सूत्र तत्वदर्शन की काय-कारण-युत कडियो का स्थान परिवतन कर देते हैं। निरपेक्ष दिक और निरपेक्ष काल आदि, ये धारणाए मैश के अनुसार मध्यकालीन अवशेष हैं। वह विरोध करते हुए कहते हैं कि किसी भौतिक पदार्थ के दिकीय अथवा उसकी लौकिक स्थिति के बार के सिवाय किसी अन्य पदाथ से उसके सम्बन्ध के बारे म बात करना निरथक है। भौतिक-शास्त्री एक पण्डुलम की गतिविधि की तुलना किसी घटी-मुख के सामने घूमते हाथो से कर सकता है न कि निरपेक्ष काल के विकास से। किसी प्रक्रिया की निरपेक्ष कालावधि की चर्चा करना अथवा उसकी निरपेक्ष तिथि के सम्बन्ध म बात करना व्यथ तत्वदर्शन है और सक्षेप मे ऐसी धारणाएँ निरपेक्ष दिक पर ही लागू होती हैं। मैश की विचारधारा का यही एक पक्ष है जो आइन्स्टीन को प्रभावित कर सकता था।

मैश के विनान दशन का एक अन्य सतत कथ्य निष्कृति म महत्वपूर्ण सिद्ध होने वाला था। उन्होंने भौतिकवादियो के लेखो मे विद्यमान प्रदर्शन पर अतिरिक्त बल दिया। उनके अनुसार वह बल एसा था जो उन्हे एक कडे आदर्श, जो कि मिथ्या और भ्रमपूर्ण था, की तरफ ले जाता था। एक वनानिक प्राकल्पना को जिस दूसरे शब्दो म एक नया नियम कहा जा सकता या तथाकथित प्रथम सिद्धान्त मे से बनावटी ढग से नही निकाला जाना चाहिए था। उन्होने कहा यदि ऐसी कोई प्राकल्पना जाच स सिद्ध हो सकती तो वही सब कुछ उसके लिए, हमारी अपेक्षानुसार पर्याप्त था।' उन्होने लिखा कि जब एक उपयुक्त कालावधि के पश्चात् एक प्राकल्पना को उचित ढग से जाच कर सिद्ध कर लिया गया हो तो एक विज्ञान क लिए इसके अतिरिक्त और कोई भी अपेक्षा अनावश्यक हो जानी चाहिए। उपयुक्त कालावधि' और उचित ढग से जाच-सिद्ध जसे वाक्याशो की अस्पष्टता यहा एकदम स्पष्ट हो जाती है। तथ्य यह है कि विनान पर कडे प्रदर्शन के रूप म प्लेटो-कार्टेजियनवादी धारणा पर मैश द्वारा किए गए आघात रीतिविधान क अनुवर्ती विकास के क्षेत्र म महत्वपूर्ण देन हैं।

इग्लण्ड मे जहा मैश की अनूदित पुस्तकें शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई डब्ल्यू० के० क्लिफाड और अधिक विस्तार मे लिखने वाले उनके मित्र और शिष्य जीव वनानिक-सास्यिक काल पियसन ने भी कुछ वसे ही विचार दिए। क्लिफोड ने अपने भाषण[1] आन थ्योरीज आव फिजिकल फोर्सेज मे, कई ऐसे वाक्यो को जो प्रश्नात्मक

1 1870 मे दिया। लेक्चर्स एण्ड एसेज' पुस्तक 1879 म उनकी मृत्यू परान्त प्रकाशित हुआ।

स्वरूप के होते हुए भी सच्चे अर्थों में प्रश्न नहीं होते, घटनाएँ क्यों घटती हैं इस वाक्य के सन्दर्भ से अपनी बात में सोदाहरण समझाया है। इस वे सूचना-प्राप्ति करने की सच्ची माग न मानकर एक कूट प्रश्न ही मानते हैं। हम 'वास्तव में क्या (घटनाएँ) घटती हैं ?' जसे सच्चे वैज्ञानिक प्रश्न को भी अच्छी तरह पूछ सकते हैं कारण कि हम उत्तर देने की आशा रख सकते हैं। माइण्ड में अपने निबन्ध आन द नेचर आव थिंग्स इन दमसेल्वज (1878) में उन्होंने पुन यह टिप्पणी की कि कारण' शब्द का विज्ञान अथवा दर्शन में कहीं भी कोई वैध स्थान नहीं है।

कोई भी देख सकता है कि हवा का रुख किस ओर है। तथ्य यही है कि ये सब प्रसंगोक्ति से अधिक कुछ नहीं है। क्लिफोर्ड की कामनसेंस आव द एक्जेक्ट साइंसेज (1885) जिसे पियर्सन ने सपादित और पूर्ण किया है अधिक सारभूत ग्रंथ है।[1] उसमें क्लिफोर्ड नव-यूक्लीडियन ज्यामितियों के उन परिणामों पर विचार करते हैं जिन्हें जर्मन दार्शनिक-वैज्ञानिक एच० वान हेल्महोल्ज ने अपने भाषण द ओरिजिन एण्ड मीनिंग आव ज्योमेट्रिकल एग्जिअम्स'[2] में बहुत पहले ही दे दिया है। तत्पश्चात् यह विचार त्याग दिया गया कि युक्लिड की ही एक मात्र ज्यामिति है जो कि गणित शास्त्र की शुद्ध निर्णायक शाखा है और जो दिक् में सबो द्वारा गृहीत माग का एक आदर्श विवरण है। अब व्यावहारिक ज्यामिति को शुद्ध ज्यामिति से अच्छी तरह अलग रखा जाता है। क्लिफोर्ड कहते हैं कि शुद्ध गणित की एक शाखा ज्यामिति को दूसरी ज्यामिति की तुलना में ठीक या गलत मानना वैसा ही अनुचित है जसा क्रिकेट को सही मानकर हाकी को गलत मानना। क्रिकेट के साथ किसी एक घटना विशेष का सम्बन्ध कर उसे भले ही यह कहकर गलत करार दे दिया जाय कि वह क्रिकेट के खेल के नियम के अनुकूल नहीं है। इसी प्रकार एक शुद्ध रेखागणितज्ञ नियमों की गलती करता है। पर एक ज्यामिति तभी गलत या सही होती है जब वह व्यवहार में आती है, जब उसे चलित सर्वो द्वारा ग्राह्य माग का विवरण मान कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में ज्यामिति अपने आपको आनुभविक जाचों के लिए मुक्त कर देने के कारण तुरन्त ही गणित-भिन्न हो जाती है। गणित और उसके प्रयोग का यह उग्र अन्तर पिछली दशाब्दियों में अत्यधिक

---

1 1846 का सस्करण दखें जिसमें जे० आर० न्यूमैन की भूमिका और बट्रेंड रसेल की प्रस्तावना है।

2 माइण्ड में (1876 1878) पुन प्रकाशित हुआ और उनके पापुलर लेक्चर्स आन साइन्टोफिक सब्जेक्टस में (1865 अग्रेजी अनुवाद 1873) प्रकाशित हुआ। दखें हैल्महोल्ज पर लिखित वी० एफ० लन्जेन का हैल्महोल्ज थ्योरी आव नोलेज (स्टडीज एण्ड ऐसेज इन आनर आव जार्ज साटन, सपादक एम ए मोंटेग्यू, 1944 में प्रकाशित)।

व्यवहृत हुआ था चाहे जिस विशष ढग से ज्यामिति व्यवहृत होती है उसके बारे म नन्नु नच की गई हो।

काल[1] पियसन क्लिफोड का गणित का सिद्धान्त स्वीकार कर अत्यन्त सतुष्ट थे। मैश की ही भाति जिन्होने अपनी साइन्स आव मैकेनिक्स[2] पियसन को समर्पित की थी उनकी रुचि भी यान्त्रिकी के क्षत्र म ही थी। द ग्रामर आव साइन्स' के उन भागो म जिनका जो यान्त्रिकी से सम्बन्धित हैं मश लिखते हैं, पियसन उन्ही सकेतो को आगे बढाते हैं जिन्हे क्लिफोड ने छोड दिया था, और जिन्हे पियसन ही ने न कि क्लिफोड ने अधिक ब्यौरा दिया था। द ग्रामर आव साइन्स' (1892) जिसम पियसन ने यान्त्रिकी के सिद्धान्त का एक व्यवस्थित रूप म प्रतिपादन किया था व्यापक रूप मे प्रभावशाली रहा है। इसके स्तर का प्रमाण कुछ इस तथ्य से भी लग सकता है कि वह एवरीमैन्स लाइब्रेरी' मे पुन प्रकाशित भी हुआ था। वज्ञानिकों के दशन को कई अन्य योगदानो की भाति कदाचित द ग्रामर आव साइन्स दाशनिक परिनिरीक्षा मे खरी नही उतरे। जो यति का सिद्धान्त (epistemology) इसमे है वह लोक और बकले के बीच एक अनुचित समझौता है लेकिन वह अपनी आधुनिकता से हमे बहुधा चौंका देता है। इनमे से बहुत से शोध-प्रबन्ध (Theses) जो कि बाद म चलकर तार्किक वस्तुनिष्ठावाद के रूप मे जाने जाते थ यहा इस ग्रथ म स्पष्ट रूप स प्रतिपादित किए गए हैं।

अपन अनुगामियो की तरह प्रथमत पियसन भी विज्ञान की एकता और सव व्यापकता पर बल देते हैं। मानसिक और भौतिक वस्तुजगत का सारा क्षत्र, समस्त ब्रह्माण्ड ही उसका क्षत्र है।' जब धमशास्त्री और तत्ववादी इस बात की माग करते है कि विज्ञान को अपने उचित व्यापार कम तक ही सीमित रहना चाहिए तो व सीमाए बाधते हैं। इस पर पियसन कहते है कि इसको कोई वज्ञानिक स्वीकार नही कर सकता। ऐसा कुछ भी नही है जो वज्ञानिक अनुसधान के क्षेत्र से बाहर रहता हो।

इस प्रकार पियसन बिना किसी समझौते के इस बात को नकारते हैं कि धम अथवा तत्वदशन हम उसक वज्ञानिक ज्ञान से परे का कुछ देते है। व कहते हैं कि सत्य तक पहुचने का एक ही माग है वह है तथ्यो का विभाजित और उन पर

---

1 देखें ई एस पियसन के पियसन एन्ड अप्रीसिएशन (बोएमेट्रिका 1938)

2 पियसन साथ ही विपुल रूप से मश का भी प्रसग देते हैं। क्लिफोड, पियसन और मश के बीच प्राथमिकताएँ स्थापित करने का प्रयत्न एक निरथक प्रयत्न होगा।

विमर्श करने से प्राप्त माग । यदि हम इस वनानिक रीति का उपयोग करते हैं तो हम सबको अन्तत एक ही परिणाम मिलते हैं। मात्र एक ही तथ्य इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि चू कि प्रत्यक तत्ववादी का अपना अलग ढग है, तत्वदर्शन के पास मानव नान को देने के लिए कुछ भी नहीं है । लग से सहमत होकर पियसन कहते हैं कि तत्ववादी एक प्रकार का कवि है लेकिन एक खतरनाक कवि, कारण यह है कि वह बौद्धिक विमर्श मे लग होने का ढोंग भी रचता है ।

अन्त म मैश और करखाफ की ही भाति पियसन इस बात को भी नकारते हैं कि विनान क्यो की व्याख्या भी करता है । पियसन क अनुसार एक वैज्ञानिक नियम हमारे प्रतिबोधन (perception) की व्यवस्था का एक सक्षिप्त विवरण ही हैं । उदाहरणाथ जब एक भौतिकशास्त्री कहता है कि वह वस्तुओ के यान्त्रिक स्पष्टीकरण तक पहुच गया हैं तो उसका कुल मिला कर यही अथ हो सकता है कि यान्त्रिकी की भाषा *म अनुभवो के कुछ तत्वको का वह वणन मात्र कर सकता है । वास्तव म यान्त्रिकी एक* सुविधाजनक भाषा ही है जिसमे हम अपने अनुभवो का सार दे सकते हैं-इससे अधिक या कम कुछ नही ।

एक दूसरे दृष्टिकोण से भी पियसन का काय मैश की अपेक्षा अधिक रोचक है । वह अपन *समय की यान्त्रिकी* से असन्तुष्ट थे । उन्होने लिखा, *द्रव्य*, पिंड और शक्ति की धारणाओ म व्याप्त सभ्रम को शुद्ध करन के लिए एक तेज ठण्डी हवा की आवश्यकता है ।' किसी को यह नही समझना चाहिए कि उन्नीसवी शती का वस्तु-स्थितिवाद कुछ उग्र और आत्मसतुष्ट वनानिको के दशन पर आघात का ही एक रूप था प्रत्युत एक महत्वपूण सीमा तक, उसन स्वय विनान क अ दर ही बीसवी शती की क्रान्ति के लिए माग प्रशस्त किया, जो आइस्टीन के नाम के साथ सम्बद्ध थी ।

इससे पूव कि हम उस क्रान्ति क स्वभाव और प्रभाव पर विचार कर हम उस समय के कुछ दाश निक व नानिको क बारे म भी कुछ कहना चाहिए जिनके लेखक मश क वस्तुस्थितिवाद से एकदम प्रभावित थे । जमन भौतिकशास्त्री एच० हट ज हैल्महोल्ज के ही शिष्य थ, जो अपन शिष्य हट ज के अपूण और मृत्यूपरान्त प्रकाशित ग्रथ द प्रिन्सिपल्स आव मैकनिक्स प्रजेन्टेड इन ए न्यू फोम' (1884 अग्रेजी अनुवाद 1899) की प्रस्तावना लिखने के लिए ही जीवित रहे । इस ग्रथ म हट ज ने यान्त्रिकी मे प्रागभावी और आनुभविक क्या है इन दोनो का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट करने का यत्न किया । उन्होने अपना काय इस ढग स किया जिससे उनके एक सहकर्मी इन्जीनियर विटजन्स्टीन और उनके बाद उस समय के कई ब्रिटिश विनान दार्शनिक भी विशेष प्रभावित हुए ।

हर्टज के अनुसार शुद्ध या निगम्य यान्त्रिकी बिम्बों और धारणाओं से बनती है। इन बिम्बों को प्रायोगिक तथ्यों की अनुकृतियां अथवा सामान्य प्रतिबिम्ब नहीं माना जा सकता। वे मानते हैं कि ये बिम्ब तथ्यों के अनुकूल होते हैं लेकिन यह अनुकूलता एक चित्र से उस वस्तु की जिसका वह चित्र प्रतिनिधित्व करता है अनुकूलता जैसी नहीं है। बशर्ते कि वे बिम्ब हमें आवश्यक पूर्वानुमान करने के योग्य बनाते हों। यथार्थ के साथ यही एक समझौता है जिसकी हम उनसे अपेक्षा कर सकते हैं। हर्टज सोचते हैं कि बिम्बों की कोई भी संख्या समान रूप से संतोष जनक हो सकती है यदि हम उन्हें उनके आनुभविक व्यावहारिकता के दृष्टिकोण से देखें। इस प्रकार अपने इलेक्ट्रिकल वक्स (1882 अंग्रेजी अनुवाद 1893) में वे इस बात की धारणा करते हैं कि मैक्सवल के हैल्महोलज के तथा उन सबके विद्युत के सिद्धान्त जिन्हें वे यहां प्रस्तुत कर रहे हैं स्वरूप की विशेष भिन्नताओं के बावजूद भी एक ही आन्तरिक महत्व को लिए हैं और इसीलिए उन्हें एक से पदार्थों का ही बना हुआ होना चाहिए।

यदि कोई भौतिकशास्त्री एक की बजाय दूसरे बिम्ब को अधिमान देता है जबकि प्रत्येक बिम्ब एक ही समीकार की ओर अग्रसर होता है तो यह मात्र इसीलिए है कि कुछ बिम्ब दूसरों की तुलना में अधिक सरल और उपयुक्त हैं क्या कि वे वस्तु के आवश्यक सम्बन्धों के दूसरों की तुलना में अधिक चित्र प्रस्तुत करते हैं और उनमें दूसरों की अपेक्षा खाली और सतही सम्बन्धों की संख्या कम है। हमारे प्रत्येक चित्र में वे कुछ न कुछ ऐसे गुण अवश्य होते हैं जो उसके प्रमुख कार्य के लिए इतने आवश्यक नहीं होते, उदाहरणार्थ किसी नक्शे की कुछ विशेषताएं उस कागज पर भी आधारित होती हैं जिस पर वह बना हुआ होता है न कि उस क्षेत्र के भूगोल पर ही जिसका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। एक चित्र में ऐसी असंगतियां जितनी कम होंगी चित्र उतना ही अच्छा होगा। इसी आधार को लेकर हर्टज ने अपने विद्युत के सिद्धान्त को मैक्सवेल के सिद्धान्त की तुलना में अधिमान दिया। वह इस बात की धारणा नहीं करते कि उनका सिद्धान्त उन बिन्दुओं पर भी सही है जिन पर मैक्सवेल का गलत है। सामान्य रूप से हर्टज अधिक स्पष्टता और सादगी के लिए न कि अधिक परिशुद्धता के लिए यान्त्रिकी का पुनः लेखन करते हैं।

जो प्रणाली उन्होंने बनाई है वह अपने आपको कार्यरत भौतिकशास्त्रियों[1] के लिए अनुकूल नहीं मानती। उनके लिए जो चीज महत्व की थी वह उनका विभिन्न बिम्बों का अन्तर था, जिसके माध्यम से यान्त्रिक तथ्यों और वास्तविक तथ्यों का प्रतिनिधित्व होता था, और उस अन्तर के साथ जो अन्य बात थी वह इसी बात

1 ए० जे० पी० मैस्मार्ट और पी० फाउल्के के मध्य विमर्श देखें (1951-52

को दर्शाने का प्रयत्न था कि यान्त्रिकी मे एक शुद्ध प्राग्भावी तथ्य भी है। द प्रिंसिपल्स आव मेकनिक्स का दो भागो मे बाटा गया है-प्रथम पुस्तक की प्रामुख-टिप्पणी मे हट्र्ज इस विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं कि उस पुस्तक की विषय वस्तु अनुभव से पूर्णत स्वतन्त्र है। यदि यह बात सत्य हो तो इससे मिल के ढग की पूर्णतया 'आनुभविक यान्त्रिकी' की सभावना समाप्त हो जाती है। उसी के साथ उसके प्राग्भावी तत्त्व अब उन बिम्बो को इकाइयो के अतिरिक्त और कुछ नही रहते जिन्हे हम आनुभविक के साथ अधिक प्रभावशाली होने के लिए निर्मित कर देते हैं। वे किसी भी अर्थ म विवेक की आवश्यकता नही हैं। इस प्रकार हट्र्ज का यान्त्रिकी का विश्लेषण पारम्परिक अनुभववाद और पारम्परिक बुद्धिवाद (Rationalism) *के बीच का मार्ग प्रशस्त करता है।*

साइन्स ऐड ह्राइपोथेसिस (1902 अग्रेजी अनुवाद 1905) जैसे ग्रन्थो मे गणितीय भौतिक शास्त्री को प्रशिक्षित करते हुए हैनरी पोइनकेयर[1] ने *अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तथा निष्कर्ति मे शीघ्र प्रभावशाली स्वरूप म* बहुत कुछ वैसी ही स्थिति सामने रक्खी। पोइनकेयर इस विचार को नकारने म विशेष रूप स सन्नद्ध हैं कि सिद्धान्तत यान्त्रिक ढग से विज्ञान का निर्माण स्वयसिद्धों में से निष्कर्षिया निकालकर ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से वह आत्मा से उसी विचार आन्दोलन के हामी हैं जिसके बगसा और अर्थक्रियावादी हैं। वह विचार के यन्त्रीकरण के किसी भी प्रयत्न के विरोध मे सहजता और अन्त ज्ञान की रक्षा करते हैं। इस कारण से उन्होंने रसल और उसके सहयोगियों के गणितीय तर्क पर प्रबलता से आघात किया है। उन्होने सोचा कि गणित को तर्कशास्त्र मे बदलने का अर्थ उस सहजता और अन्त ज्ञान के तत्त्व को नष्ट करना होगा जिसे उन्होने विशेष महत्व दिया है।

उस 'रूढ़िवाद' की यही पृष्ठभूमि है जो पोइनकेयर के नाम के साथ जुडी है। जब उन्होंने इस बात की धारणा की कि यान्त्रिकी के नियम परिपाटियां है तो वह इस लिए थी कि परिपाटी मानवीय आत्मा का एक स्वतन्त्र सृजन है। जैसा कि अर्थक्रियावादियों ने कहा था यदि नियम अनुभवो का एकमात्र साराश ही होता तो वैज्ञानिक का कार्य उसके पर्यवेक्षणो के रिकार्ड करने और उनके साराश निकालने तक ही सीमित रहता। वैज्ञानिक वास्तव मे एक सवेदनशील मशीन के अतिरिक्त और कुछ नही है। लेकिन यदि इसके विपरीत नियम मात्र परिपाटियां या छद्मवेशी परिभाषाएं अथवा ऐसी भाषा हो है जिसे हम वस्तुओं की गति के सम्बन्ध मे बात करने की व्यवस्था के लिए निर्मित करते हैं, तो वैज्ञानिक एक सर्जक है।

---

1 आर० एम० एम० (1913) का पोइनकेयर अक देखे, टी० डेनजिग हैनरी पोइनकेयर (1954)

यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष ही विज्ञान की वस्तुपरकता को नष्ट कर देता है। उसे काव्य की एक प्रजाति (Species) में बदल देता है। पाइनकेयर के मत म उनके कुछ शिष्य[1] परिपाटीवाद (Conventionalism) को उस दिशा म बहुत दूर तक ले गए, और आदर्शवाद म जाकर विलीन कर दिया। इसलिए उन्होंने यह दर्शाने की चेष्टा की कि परिपाटी एक स्वतन्त्र सृजन होने के बावजूद भी स्वेच्छा नहीं है। अनुभव यदि किसी वैज्ञानिक को एक विशेष परिपाटी पर चलने के लिए बाध्य नहीं करता तो कम से कम एक दिशा को छोड़कर दूसरी किसी दिशा म जाने के लिए निर्देशित तो करता ही है। पाइनकेयर अपने प्रिय उद्धरण म कि वैज्ञानिक ग्रहों की गति के सम्बन्ध म एक टोलेमिक और और एक कोपर्निकन, विवरणों म से किसी एक परिपाटी को चुनते हुए न कि किसी तथ्य को रिकार्ड करते हुए अपने चुनाव म किञ्चित भी नहीं सकुचाता। विज्ञान की वस्तुपरकता इसी बात से निकलती है कि एक बार एक परिपाटी के चला दिए जाने पर वैज्ञानिक लोग उसकी वरिष्ठता को स्वीकार कर लें। पाइनकेयर न सोचा गलीलियो सत्य के लिए संघर्ष कर रहा था भले ही सत्य वास्तव मे वह न हो जिस गलीलियो ने मान रखा था।

पोइनकेयर परिपाटीवादी और आनुभविक तत्वों को समन्वित करने म वास्तव मे भले ही सफल न हुए हो, वे अपने सहकर्मी वैज्ञानिक पियर दुहीम[2] का

---

1 उदाहरणार्थ के लिए ई० ली राय। देखें उनको द लोजिक आव इनवेंशन' (आर एम एम 1905)। परिपाटीवाद का एक सस्करण पहले ही जी० मिल्हाड के द्वारा अपनी ले रशनल (1898) म रसायनशास्त्र मे व्यवहृत हुआ था। फ्रांसीसी रीतिवादी सामान्यत इसे दर्शन की ही एक शाखा मानते हैं जो कि फ्रास म अधिक सक्रिय हैं। देखें ए लीलेन्ड पब्लिकेशन्स इन द फिलोसोफी आव द साइन्सेस (1900) जो फिलोसोफीकल थोट इन फ्रास एण्ड द यूनाइटेड स्टेटस मे प्रकाशित हुआ (सपादन एम० फारबर (1950) द नेचर आव फिजिकल थ्योरी (1931) नामक बी लेन्जन के ग्रन्थ म और ए० पथ की द ए थ्योरी इन फिजिकल थ्योरी (1946) मे इन सबने यह कह कर कि व्यापक रूप से पुष्ट प्राक्कल्पनाएं परिपाटियों की तरह ही कार्य करती हैं, परिपाटीवाद को अनुभववाद के साथ समन्वित करने के प्रयत्न किये, यद्यपि बाद के अनुभवों ने भले ही उन्हे उलटा कर दिया हो। सी लवी कृत पेप का रिव्यू (माइण्ड 1947) भी देखे।

2 देखें दुहीम कृत ए रे की पुस्तक ला थ्योरी दे ला फिजीक चेज लेस फिजीसियेन्स कन्टेम्पोरेन्स (1907) की समीक्षा जिसे एक परिशिष्ट के रूप मे उनकी पुस्तक फिजिक्स इटस आब्जेक्टस, इटस स्ट्रक्चर (1906 अंग्रेजी अनुवाद 1954) के द्वितीय सस्करण के साथ (1914) मे जोडा गया।

इस बात से आश्वस्त करने म निश्चय ही असफल रहे कि व वसा समन्वय कर सके थे। दुहैम इस बात का स्वीकार करते हैं कि वनानिक सिद्धान्तो को बडे अनमने मन से अस्वीकार किया जाता है। कभी कभी तो उनके अवगुण लम्बे प्रयोगो के प्रमाण के पश्चात ही सामने आते हैं, तब भी वे इस बात को स्वीकार नही करते कि ये शुद्ध परिपाटियां हैं, कोई भी प्रयोग सिद्धान्त रूप में उन्ह असिद्ध नही कर सकता। उनका उद्देश्य वज्ञानिक सिद्धान्ता का एक ऐसा लखा तयार करने का है जो उन्ह अनुभवसिद्ध होने के लिए प्रस्तुत करे यद्यपि उस जाच का साधा और तात्कालिक होना जरूरी नही है।

दुहेम के अनुसार रीतिवादी एक भ्रामक किन्तु खतरनाक गलती म पडने है। वे शरीरविज्ञान अथवा दनिक जीवन की भाति भौतिक सिद्धान्तो को भी, विनान की आनुभविक प्राकल्पनाओ के साथ मिलाते ह। लकिन जहा ऐसी कोई प्राकल्पना कुछ विशष पयवेक्षणीय इयत्ताओं के गुणो का वणन करती हैं, दुहैम कहते हैं वहां एक भौतिक नियम अमूत्त और प्रतीकात्मक होता है। वह भौतिक इयत्ताओ के स्थान पर पुजो, दबावो और आयतनो को सम्मिलत करता हैं। यदि एक वनानिक किसी दबाव और ताप को देखने की बात करता है दुहैम चुनौती देत हुए कहते हैं कि, ता उस यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका पयवक्षण एक सद्धान्तिक सम्बन्ध को पहल से मान कर चलता है यथा पारे के खाने के घनत्व म ताप और एक परिवतन के बीच का सम्ब ध। इस प्रकार यह मानना एक दम गलत है कि भौतिक विनान एसी आनुभविक प्राक्ल्पनाओ से बनता है जो पयवक्षण द्वारा अन्तिम रूप से प्रस्थापित या विस्थापित की जा सकती हैं। तथाकथित पयवक्षण स्वय अपने आप म वनानिक सिद्धान्तो को अन्तर्निहित किए रहते हैं और यह उन्ही सिद्धान्ता मे स हमारे पयवक्षणो के विरोध म हा सकता है प्राक्ल्पनाए विराधी नही हैं।

भौतिक शास्त्र की प्रणाली को जसा कि दुहेम वणन करते हैं चार अवस्थाओ मे बाटा जाता है। प्रथमत भौतिकशास्त्री भौतिक प्रक्रियाओ के सरलतम अगो को चुन लेता है जो उसे सरल दिखते हैं, वह गलती पर भी हो सकता है (कारण कि व कसे विखण्डित होते हैं, वह नही जानता, लेकिन तब भी उनमे से वह कुछ अधिक जटिल प्रक्रियाओं का निर्माण कर सकता है।) वह इन्हें गणितीय प्रतीको के रूप मे रूपाकित करता है यहा वास्तव मे शुद्ध परम्परा का एक तत्व आ जाता है। जसे कि भौतिकशास्त्री ताप को एक सेन्टीग्रेड पर बहुत स अशमानो म प्रतीकित करने के लिए चुनता है तो अपनी रचनात्मक गणितीय कल्पना के प्रयोग से वह इन प्रतीकों को एक सामान्य सिद्धान्त के रूप म जोड़ देता है। यहा तक अनुभव भी भौतिकशास्त्री को सुधारने म असमथ है, उसका काय अभेद्य रहता है। जब तक कि

उम म आ तरिक विराध प्रकट न हो जाए । लेकिन अ त म वह अनुभव की तरफ ही अधिक लौटता है । नगे तथ्यों की तरफ नही बल्कि प्रयोगात्मक नियमो की तरफ । यदि उसके सिद्धान्त मे से ज्ञात प्रयोगात्मक नियमो को निगमित किया जा सकें तो वह इसे सच्चा मानता है लकिन यदि जो परिणाम वह निकालता है प्रयोगात्मक नियमो के साथ असगत हैं तो उसके उपकरण चाहे जिस सीमा तक परिशुद्धता की इजाजत देते हो वह अपना सिद्धान्त झूठा मानकर छोड दता है अथवा उसमे कोई न कोई सशोधन अवश्य कर देता है । तब इन अवस्थाओ म प्रयोगात्मक नियम निर्णायक हो जाते हैं।

कुछ मायनों मे दुहैम का ढग मैशियन है । वह कहते हैं कि भौतिक सिद्धान्त एक व्याख्या नहीं है । व्याख्या का काय तत्वदशनवादियों के लिए छोड देना चाहिए[1] । वह आगे कहते हैं, एक सिद्धान्त गणितीय तकवाक्यो की ऐमी व्यवस्था है जो अधिकाधिक सरल पूर्ण और सही ढग से प्रयोगात्मक नियमो के पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती है । लेकिन साथ ही वे किसी भी स्थिति मे मैश के अनुगामी मात्र नही हैं । उनकी मौलिकता प्रथमत सिद्धान्तो और प्रयोगात्मक नियमो के स्पष्ट अन्तर दिखाने मे, दूसरे एक असली (क्रूशल) प्रयोग के आदश को त्याग देने मे तथा तीसरे उनके इस बात के आग्रह म है कि भौतिक सिद्धा तो को गणितीय स्वरूप ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् यह उनकी यान्त्रिक आरूपो की अस्वीकृति हुई ।

ई० मेयरसन[2] के लेखो म मैश का विरोध अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और मुहफट है । सभवत यह बात अमहत्वपूर्ण नही है कि मेयरसन का प्रशिक्षण एक रसायनशास्त्री के रूप मे ही हुआ था अत एक दृष्टि से विज्ञान का उनका सिद्धा त मैश के वस्तुस्थितिवाद क विरोध म एक परम्परात्मक रासायनिक यथार्थवाद के बचाव के रूप मे लिया जा सकता है । दुहैम और पियसन से ये वसे

1 वसे दुहैम एक कथालिक थे । उ होने भौतिकशास्त्र को तत्ववादी दशन से जिस तीव्रता के साथ अलग कर दिया वह भौतिकशास्त्र के लिए भी उतन ही हित का था जितना तत्ववादी दशन के । अभिनव दशन की एक महत्वपूर्ण विशेषता वास्तव मे कथोलिक दाशनिको की विज्ञान की वस्तुस्थितिवादी व्याख्याओ को इस आधार पर स्वीकार करने की तत्परता ही रही है कि वे धम का काफी गुजाइश द देते है ।

2 देखें जी बास ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन आव द फिलोसोफी आव ई० मैयरसन (1930), ए० ई ब्लूमबग का ई मेयरसनस क्रिटीक आव पोजिटिविज्म' मोनिस्ट 1992) मैटर एण्ड लाइट (1937, अग्रेजी अनुवाद 1939) म प्रकाशित एल० डी ब्रोगली का स्मारक निबन्ध ।

कनिष्ठ हैं। वास्तव में दर्शन को इनका अत्यंत व्यापक योगदान द प्रोग्रेस आव थोट (1931) तक प्रकाशित नहीं हुआ था। तथ्य यही है कि उनकी विचारधारा पूर्व आइंस्टीन काल में ही निर्मित हो गई थी। यह विचारधारा वातावरण के लिहाज से पुरातन थी इतिहास का कालक्रम अवश्य नया था।

मेयरसन की पहली महत्वपूर्ण पुस्तक आइडेंटिटी एण्ड रियलिटी (1908 अ ग्रे० अनु० 1930) उनकी कृतियों के दोनो मुख्य बिन्दुओं को सुझाती है। वस्तुनिष्ठावादी इस सिद्धान्त के विपरीत कि विज्ञान संवेगों को अनुशासित करता है उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि विज्ञान का उद्देश्य है यथार्थों तक वस्तुओं को भेदना क्योंकि वास्तव में यही तात्त्विक आवेग (ontological impulse) हैं। जो वस्तुत है, उसकी खोज ही विज्ञान का प्रेरक तत्त्व है। मेयरसन के अनुसार परमाणुसिद्धान्त एक आदर्श वैज्ञानिक सिद्धान्त का अच्छा उदाहरण है। दूसरे, इस विचार के खिलाफ कि विज्ञान अपने आपको अचल संयोजकों (Constant Conjunctions) की खोज तक ही सीमित रखता है, वे कहते हैं कि विज्ञान समरूपकों की खोज है। विज्ञान प्रदर्शित करता है कि जो सतही तौर पर सृष्टि और विनाश की प्रक्रिया दिखती है, वह वाकई में पदार्थों के अन्दर होने वाली ऐसी पुनर्व्यवस्थाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं जो प्रत्यक्ष परिवर्तनों के माध्यम से अपनी समरूपता को कायम रखती हैं। और उस दृष्टिकोण से मेयरसन ने सोचा कि संरक्षण सबंधी नियम वैज्ञानिक जांच में से ही निकले हैं। वास्तव में यदि विज्ञान पूर्ण रूप में सफल होता तो वह व्यर्थ की पुनरुक्तियों में उलझ कर कभी का समाप्त हो गया होता। यह एक ऐसी नियति थी जिससे वह बचा रहा—यद्यपि यह पर्याप्त विरोधाभासी लगता है, पर यह सब इसलिए हुआ क्योंकि विज्ञान पूर्णत कभी भी अविवेकी स्थितियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सका अर्थात् वह उन विभिन्नताओं में रही एकरूपता को प्रकट करने में असफल रहा।

स्पष्टत मेयरसन की रचनाएं समसामयिक दर्शन की प्रमुख धाराओं के सीधे विरोध में आती है। आज उन्हें एक दार्शनिक मानने की बजाय विज्ञान के इतिहासकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त है, दूसरे लेखकों के विपरीत जिनकी रचनाओं पर हम विचार करते रहे हैं—जैसे मश, पियर्सन क्लिफोर्ड हर्ट्ज, दुहैम पाइनकेयर, और जिनकी कृतियों ने विज्ञानदर्शनों का आकार ग्रहण किया व समसामयिकों का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित किया। इसी बीच भौतिकशास्त्री स्वयं तत्त्ववादी अनुमान की गहराइयों में चले गए।

पिछली कुछ दशाब्दियों में दार्शनिक प्रवृत्तिवाले वैज्ञानिकों की रचनाओं में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्तिमूलक परिवर्तन प्रकट हुआ है। दुहैम और मश दोनों ने भले

ही यह भिन्न भिन्न कारणों से किया हो तत्वदर्शन से भौतिकशास्त्र के स्वतंत्र होने की बात पर जोर दिया। उन्होंने इस बात की धारणा की कि भौतिकशास्त्र न तो किसी का ऋणी ही था और न उसने परम्परात्मक दर्शन को ही कुछ दिया। इसके विपरीत एडिंगटन और व्हाइटहेड जो शिक्षा से गणितज्ञ भी थे पूर्णत तत्ववादी रहे जबकि तत्वदर्शन को साधारणतया पेशेवर दार्शनिकों द्वारा दूर से ही टाल दिया जाता रहा।

भौतिकशास्त्र की प्रकृति मे हुए परिवर्तन, एसे परिवर्तन जिनके विषय मे हम केवल नाम और[1] तिथि लिख सकते हैं दर्शन के प्रति वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण मे कुछ क्रान्तिकारी संशोधन के लिए उत्तरदायी हैं। अनेक अर्थों मे ऐसा आभास हुआ कि भौतिकशास्त्र तत्ववाद की जिम्मेदारियों के लिए उसका वारिस हो गया। प्रथम परिवर्त्तन था दिक और काल के सम्बन्ध मे। आइन्स्टीन का सापेक्षता का विशेष सिद्धान्त (1905) सापेक्षता के पक्ष मे इस बहु विवादित दार्शनिक समस्या को लेकर धीरे धीरे जम रहा था कि क्या दिकीय स्थिति और कालावधि अमूर्त और सापेक्ष है ? एक भौतिकशास्त्री के, न कि एक तत्ववादी के प्रयत्नो से एक दार्शनिक सुवाद अन्तत समाप्त हुआ। दूसरे जैसा कि कहा गया था भौतिकशास्त्र ने प्राचीन नियतिवादी सुवाद पर एक नई रोशनी डाली। शास्त्रीय नियतिवाद को इस प्रकार रखा जा सकता है-यदि दिए हुए समय मे एक भौतिक पद्धति का तथा उस पर लागू होने वाले समस्त बाह्य प्रभावों का सम्पूर्ण विवरण उपलब्ध हो, तो सिद्धान्त रूप से उस पद्धति की भावी स्थिति के बारे मे पूर्वानुमान करना सदैव सभव है। ऊर्जाणु-यान्त्रिकी ने जो हिसेनबर्ग के 'अनिश्चय सिद्धान्त मे प्रकट हुई थी और जिसे एडिंगटन ने 'अनियततत्ववादी सिद्धान्त की मान्यता दी थी उप-अण्वीक्षणीय प्रक्रियाओं के संबंध तो कम से कम पूर्ण विवरण' की संभावना को रद्द कर शास्त्रीय नियतिवाद के सिद्धान्त को नीचा दिखाया है। एक विद्युतकण की स्थिति को पूर्ण परिशुद्धता के साथ निश्चित करने के दौरान मे ही हिसेनबर्ग ने कहा कि भौतिकशास्त्री उसकी निश्चयीकरण की संभावनाओं को स्वत ही समाप्त कर देता है। अनेक भौतिकशास्त्रियों ने जब इसका यह अर्थ निकाला कि कार्यकारण सम्बन्धी सिद्धान्त को पछाड़ दिया गया है, तो ऐसा आभास हुआ कि एक महत्वपूर्ण दार्शनिक निष्पत्ति भौतिकशास्त्रियों के विचारविमर्शों से एक बार फिर प्रकट हुई है।

1 विस्तृत विवरणों के लिए देखें ए० आइन्स्टीन और एल० इनफील्ड की द इवोल्युशन आव फिजिक्स (1938), डब्ल्यू० विलसन की ए हन्ड्रेड ईयर्स आव फिजिक्स (1950)।

तीसरे नवभौतिकी बहुत कुछ महत्वपूर्ण अंशों में ज्ञानमीमांसीय थी। उसकी सफलताओं ने, जैसा कि बताया गया, हमेशा के लिए ज्ञानमीमांसा के तमाम परम्परावादी झगड़ों को तय कर दिया था। यह कसौटी–जिसे अब एक शास्त्रीय उदाहरण का स्तर प्राप्त हो गया है, आइन्स्टीन की परम समकालिकता (एब्सोल्यूट सायमल्टेनिटी) की धारणा की आलोचना है। आइन्स्टीन पूछते हैं, कोई इस बात को कैसे दर्शा सकता है कि दो सुदूर घटनाएं एकदम समकालिक हैं? आइन्स्टीन सिद्ध करने के प्रयास में कहते हैं–ऐसा कोई भी प्रयत्न जिससे हम उनकी समकालिकता को स्थापित करने की आशा करते हैं एक दोषपूर्ण प्रतिगमन (वीसियस रिग्रेस) को ही अपने में सन्निहित करता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि हम यह सुझाते हैं कि दो घटनाएं समकालिक हैं क्योंकि वे घड़ी मुखों पर नापे जाने के पश्चात् एक ही समय में घटती दिखती हैं। सुदूर वस्तुओं के मामले में कोई इस बात का निश्चय कैसे कर सकता है कि घड़ी–मुखों पर पहुंचने वाले हाथ एक बिन्दु पर एक ही समय में पहुंचे हैं?

आइन्स्टीन समापन करते हुए कहते हैं कि सुदूर वस्तुओं की परम समकालिकता की धारणा निरर्थक है। आइन्स्टीन कहते हैं कि ह्यूम और मश के अध्ययन ने उन पर निश्चय ही प्रभाव डाला है। ज्ञानमीमांसीय विश्लेषण जिसका यहां भौतिक सिद्धान्त की रचना के लिये प्रयोग हुआ है वह न तो लौक और न बर्कले ही के लिये एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे बाह्य विवेचनात्मक माना जाय। अब यह भौतिक शास्त्री के कार्योपकरणों में से एक ऐसा उपकरण है जिसका औचित्य किसी अन्य उपकरण की भांति भौतिक समस्या के हल करने के पश्चात् उपलब्ध सफलता का संकेत देता है। इस आधार पर एक मात्र स्वीकार्य ज्ञानमीमांसा वही है जो सक्रिय भाषा में धारणाओं को परिभाषित करे और जो उन सब धारणाओं को निरर्थक कह कर त्याग दे जो कार्यशील परिभाषाओं के अन्तर्गत नहीं आतीं।

भौतिक शास्त्र के इस दार्शनिक रूपान्तर का सभी भौतिकशास्त्रियों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वागत नहीं किया। एडिंगटन ने इसे प्राकृत दर्शन का पुनरुद्भव माना है। रदरफोर्ड जैसे प्रयोगवादी इन नयी प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण सदेहशील थे। तो भी सम्पूर्णतः गणितीय भौतिकशास्त्री जिनके लिए ज्ञानमीमांसक विश्लेषण प्रयोगशाला के शिक्षण से कहीं अधिक उपयुक्त है, आधुनिक विज्ञान का प्रवक्ता रहा।[1] वे भी आधुनिक भौतिकशास्त्र के दार्शनिकीकरण के संबंध में एकमत नहीं

1 इस संबंध में एक उल्लेखनीय अपवाद हैं प्रयोगवादी एन० आर० कैम्पबल, जिनकी रचना फिजिक्स द एलीमेण्ट्स (1920) भौतिक नियमों एवं भौतिक सिद्धान्तों के बीच रहे संबंधों की महत्वपूर्ण ढंग से व्याख्या प्रस्तुत करती है। स्ट्रक्चर एण्ड

थे। आइंस्टीन एवं प्लैंक[1] इन दोनों में से एक भी यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे कि हिसनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त कार्य कारण के सिद्धान्त का अंतिम रूप से उन्मूलन कर देने में सफल हुआ है। और न सभी भौतिकशास्त्रियों ने आइंस्टीन के दिक्काल सिद्धान्त को ही स्वीकार किया। कम से कम थोड़े हेर फेर के बाद ही धारणाओं एवं सक्रियता के बीच के संबंधों को विभिन्न धरातलों पर स्थापित किया गया। किन्तु उन मतभेदों के बीच की दूरी कितनी ही रही हो तथ्य यह है कि परम्परागत दर्शन ही अधिकांश समस्याओं को अब भौतिक सिद्धान्तों के आधार पर ही चर्चित किया जा रहा था। भौतिकशास्त्री अब उन विवादों पर अपनी विशेषज्ञ दृष्टि से विवेचन करने लगे जिन्हें वे कभी रूखे तत्ववाद का विषय मानकर त्याग देते थे।[2]

पेशेवर दार्शनिक, दार्शनिक पत्रकार नहीं भौतिकी में हुई क्रांति से बहुत न्यून रूप में प्रभावित हुए। उन को यह संदेह करना पड़ा था कि बहुत सी अन्य क्रान्तियों की भांति भौतिकी की क्रांति ने भी कोई नई दार्शनिक समस्या को खड़ा नहीं किया और न पुरानी समस्याओं को ही हल किया है। हां, केवल हंगामा ही अधिक मचाया है। इसके साथ यह तो माना जाना ही चाहिए कि व्यवसायी दार्शनिकों को यह बात डरा गई कि दार्शनिक भौतिकी अपनी युक्ति के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर गणित में जाकर विलीन होती चली जा रही है। न दार्शनिकों की यह आस्था कि वे सूक्ष्म बातों को भी समझ सकते हैं उन्हें इस अपेक्षा की ओर ही ले गई कि उनके बाध में

थ्योरीज नामक इसी का एक अध्याय फागल एवं ब्रोडबक की कृति रीडिंग्स इन द फिलोसोफी आव साइन्स में भी पढ़ा जा सकता है। रीतिविधान की चर्चा करने वाली रचनाओं में कम्पबैल की रचनाएं बहुधा अचर्चित ही रह जाती हैं। (ब्रेथवेट की साइण्टिफिक एक्सप्लेनेशन इसका अपवाद है) किन्तु युवा ब्रिटिश विचारकों में इन्हें बड़े सम्मान से पढ़ा जाता है।

1 आइंस्टीन फिलोसोफर साइण्टिस्ट (लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफर्स स० पी० ए० शिल्प (1949) में देखें यही चर्चा।

2 उदाहरण के लिये देखें एम० प्लैंक कृत व्हेयर इज साइन्स गोइंग? (1932) (अंग्रेजी अनुवाद 1933)। डब्लू० हिसेन्बर्ग कृत फिलोसोफिकल प्रोब्लेम्स आव न्यूक्लियर साइन्स (1935) अंग्रेजी अनुवाद (1952) एम० बार्न कृत नेचुरल फिलोसोफी आव कॉज एण्ड चांस (1949) एल० डी० ब्रोगली कृत मैटर एण्ड लाइट (1937 अंग्रेजी अनुवाद 1939) एच० मारजिनो द नेचर आव फिजिकल रीयलिटी (1950) एच० वील कृत द फिलोसोफी आव मैथेमेटिक्स एण्ड नेचुरल साइन्स परिवर्द्धित संस्करण 1939 (मूल जर्मन टेक्स्ट 1926 का था)

कोई विशेष महत्व का चमत्कार उत्पन्न होने वाला है। केवल अपवाद अवश्य रहे होंगे। उल्लेखनीय दार्शनिक राजनीतिज्ञ आर० बी० हाल्डेन, अपनी बहुपठित पुस्तक द रेन आव रिलेटिविटी (1921)[1] म अपनी हीगलवादी आस्था पर म इस्टीन के मापन्नता के सिद्धा त की व्याख्या करने का प्रयास करत हैं। एलेक्जेण्डर ने कालन्कि् सम्बन्धी सिद्धा त की उनके द्वारा की गई आशिक पुष्टि का स्वागत किया। रसल ने नवभौतिकी की लोकप्रिय व्याख्या की तथा उसक प्रभाव चि हो का वहा दर्शाया। बहुत से केम्ब्रिज दार्शनिकों ने जमे सी० डी० ब्रोड इस बात का मानवोचित प्रयास किया कि भौतिकी क समसामायिक विकास मे से कोई दार्शनिक अथ निकाला जा मके। सब मिलाकर अभिनव विज्ञान के दार्शनिक स्वर की खोज के लिए वनानिक दार्शनिको की ओर ही मुँह कर के हमे देखना होगा जो इस काल म बहुतायत मे थे।

अ ग्रे ज लेखको म सर आथर एडिंगटन नाम के ज्योतिषी सुविख्यात हैं[2] उनकी कृति स्पेस टाइम एण्ड ग्रे विटेशन (1920) म उन्होंने आधुनिक वैनानिक विचारो के स्पष्टतम व्याख्याता के रूप मे यश कमाया। नेचर आव फिजीकल वर्ल्ड (1928) एव द फिलोसोफी आव फिजिकल साइन्स (1939) मे वे प्रबुद्ध प्राकृत दार्शनिक के रूप मे प्रकटे हैं। उनक दशन म नवभौतिकी की व्याख्या के लिए उपयोग म ली गई व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवादी प्रवृत्ति के दशन किये जा सकते हैं।[3]

---

1 इनके साथ ही विशिष्ट राजनीतिज्ञ होने क नाते लार्ड हाल्डन दार्शनिक कृतियो की एक दीघ श्रृ खला क निर्माता थ जिनमे द पाथवे टू रीअलिटी सब-प्रसिद्ध है। यहा यह बात उल्लखनीय है कि रेन आव रिलेटिविटी (1903 4) ब्रिटन के व्यवसाय के लिए आणविक ऊर्जा पर काय किय जाने की सम्भावना और उसके महत्व पर बल देते हैं। प्रत्ययवादी तत्ववादी दार्शनिक द्वारा एकाएक अपने ग्र थ म सहज व्यावहारिकता का यह प्रयोग किया जाना वास्तव म अद्वितीय है। देखें ए एस प्रिंगल पटीसन द्वारा लिखित मृत्युलेख (पी० बी० ए० 1028)

2 दखें ए० डी० रिशी द्वारा दिये गये एडिंगटन की स्मृति मे भाषण (1948), ई० ह्वाइटाकर (1951), एच० डिंगल (1954), जी० डी० हिक्स कृत प्रोफसेर एडिंगट्स फिलोसोफी आफ नेचर (पी० ए० एस० 1928) एन० आर० कम्पवल "एरम आव सर आथर एडिंगटन' (फिलो० 1931) ई० व्हाइटाकर फ्रोम यूक्लिड टू एडिंगटन (1949) आर० बी० ब्र थवट क रिव्यू (माइण्ड 1929 1949) सी० डी० ब्राड (फिलो० 1940)

3 देखें एस० स्टबिंग फिलोसोफी एण्ड फिजिसिस्ट 1937, पी० फ्रैंक इण्टर प्रिटेशन्स एण्ड मिसइण्टरप्रिटेशन्स आव माडन फिजिक्स (1939), द न्यू फिजिक्स एण्ड मैटाफिजिकल मैटीरियलिज्म (पी० ए० एस० 1942) एव रीअलिज्म एण्ड मोडन फिजिक्स (पी० ए० एस०,एस० 1929 पर विचार), ई० नेजल सोवरेन रीजन (1954)

एडिंगटन यह मानते है सब प्रश्नो से परे, कि हम प्रत्यक्षत हमारी चेतना के उपकरणो के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु स परिचित नहीं होते। इस मामले म तथा और भी बहुत स मामला म उनक दार्शनिक विचार सीधे रूप मे डबलू० के० क्लिफोर्ड से प्रभावित हैं। व इस एक मान्यता नही मानते किन्तु यह एक तथ्य हैं जो अन्य मान्यताओं से कही अधिक इस सबध म सन्देहशील है कि एडिंगटन का दशन आधुनिक विज्ञान की ही एक परिणति है और कार्टेजियन परम्परा से प्रभावित नही है।

इस तरह एडिंगटन क लिए आइस्टीन की भौतिक धारणाओ सबधी काय कारी परिभाषा चेतना के उपकरणों की बात की ही सिद्धि है। अनुभव या क्रियाए ऐसे ही उपकरणों से पूणत निर्मित हैं। तो भी इसक साथ ही मनुष्य अपरिहाय रूप स उस ज्ञान की ओर पहुचने का प्रयत्न करत हैं जो अपनी चेतना स परे विद्यमान है—बाह्य जगत क रूप म। एडिंगटन के सामने भी तब आत्मपरकतावाद की मूलभूत समस्या आ खडी होती है। उन्हे अब यह बताना है कि ज्ञान भी हमारी चेतना तक ही सीमित है। वह साथ ही साथ किसी ऐसी अवस्था का ज्ञान भी हो सकता है जो चेतना से परे है। उनका हल नव-काण्टवादी हल है। यदि बाह्य जगत् चेतना की प्रकृति का ही होता तो अनुभव हम उसके रूप स परिचित करा सकना था, यह उनका तक है। इस प्रकार बाह्य जगत् चेतना ही है-जीवन है। बाह्य जगत् का ज्ञान ही सारा वस्तुपरक ज्ञान है, वह आत्मा का ही ज्ञान है। विशुद्ध रूप से वस्तु परक जगत् आत्म जगत् ही है जिसे भौतिकी छायित या प्रतिबिम्बित ही कर सकती है तिरोहित नही कर सकती।

हमे यह आश्चय नहीं करना चाहिए कि दार्शनिकों ने जिनके द्वारा इस प्रकार के अर्द्ध परिपक्ववाद के जरिए ही इसका प्रवतन एव रक्षा की गई है, एडिंगटन के तत्ववाद पर गम्भीरता पूवक विचार किया जाने स इ कार कर दिया है। उनके विज्ञान दशन ने सकुचित रूप म अधिक रुचि जाग्रत की थी। इसम आकषण है और अभिनव भौतिकी की युक्तिया तथा अभिप्रेतो की सुन्दर व्याख्या है।

एडिंगटन की दृष्टि म भौतिक शास्त्री 'अदृष्ट तत्वो के त्याग म अभी भी पर्याप्त रूप से दृढ नही हो पाए हैं। ऐसी धारणाए जो एक विशिष्ट अवस्था पर बनी हैं, कभी भी सत्यापित नही हो सकतीं। एक बार आइस्टीन प्रणाली के अभिप्रेतो को गभीरता पूवक स्वीकार लिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकी बिन्दुसूचको को या मीटरी जाच को सयोजित करने के अतिरिक्त और किसी काम की नही है। ये बिन्दुसूचक जो अदृष्ट' प्रक्रियाए या इयत्ताए नही हैं, इस तरह भौतिकी की विषय वस्तु है। भौतिक जगत् जो जीवाणुओं, विद्युदणुओ

म्रादि का जगत् है (जिसे किसी भी भांति जीवन या चेतना का वाह्य जगत् नही मानना चाहिए)वही एक ऐसे जगत् के रूप म परिमापित किया जा सकता है जिसकी कि बि दुसूचक व्याख्या करते हुए माने गए है।

तब एडिंगटन की दष्टि म भौतिक जगत् वस्तुपरक नही है। इस तरह वे नियम जिन्ह भौतिकशास्त्री भौतिक इयत्ताओ क यवहार का नियामक मानत है व निश्चय ही वास्तव मे विद्यमान अवस्थाओ के विवरण नही हैं– सभी प्राकृतिक नियम आत्मपरक हैं। उन्हे एडिंगटन द्वारा आत्मपरक कहे जाने का यही आशय है कि उन्ह ज्ञानमीमासा क सिद्धान्त स निगमित किया जा सकता है या फिर प्राग्मावी सिद्धा तो क जरिए। व यहा काण्ट से भी आगे चल जाते हैं। यहा तक कि प्राकृतिक स्थिराक क रूप म समष्टि म विद्यमान परमाणुओ की सख्या को प्राग्भावी विचार द्वारा बिना अस्पष्ट हुए निगमित किया जा सकता है और इस तरह वे पूर्णत आत्मपरक हैं। यह एक चकाचौंध कर देने वाला सिद्धान्त है। यह एक विचित्र सिद्धा त है किन्तु इसे केवल विचित्र या स्वीयात्मक (अार बिट्रेरी) सिद्धा त कहकर त्यागा नही जा सकता। एडिंगटन सशक्त रूपसे नव भौतिकवादी सिद्धा तो की ओर युक्तिपूवक हमारा ध्यान खीचना चाहते हैं जिनके जरिय एक प्रस्तुत परिस्थिति म ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए सभव है। इस बिन्दु के सबध म उनके द्वारा प्रस्तुत विस्तृत उदाहरण, व इस पर जो तत्ववादी ज्ञानमीमासक धारणाए उन्होने बनाई वे दशन-वैज्ञानिको के लिये विशेष महत्व की हो गई हैं।

स्पष्टत यह देखा जा सकता है कि एडिंगटन आत्मपरक वव वस्तुपरक भौतिक एव बाह्य जगत् सबधी धारणाओ से जूझने मे लग हैं। व इस अनिवादी धारणा को मानने मे हिचकत हैं कि भौतिक जगत् एक साथ आत्मपरक भी है तथा एक मात्र विद्यमान जगत् भी है। उनक दशन म प्रस्तुत बाह्य जगत् म मूल्या के लिय पर्याप्त स्थान है। वस्तुपरकता क आदश का न छोडकर भी वे यह सब कर सके हैं। एडिंगटन के साथी भौतिकशास्त्रियो का उनमे इस बात म असतुष्ट रहना अस्वाभाविक नही था कि ज्ञान उस सीमा तक ही वस्तुपरक है जहा तक वह भौतिकी की सीमा स बाहर है।

जिन लोगो ने एडिंगटन के बाह्य जगत् क सिद्धान्त का परित्याग कर दिया है और अन्य मामलो मे जो उनक दार्शनिक क्षत्र तक ही सीमित रहे हैं– उनम दो व्यक्ति उल्लखनीय हैं एच० डिंगल एव पी० डबलू० ब्रिजमेन। डिंगल वृत व सोर्सेज आव एडिंगटन्स फिलोसोफी (1954) नामक शोधलख स्पष्ट रूप स उनके और अपन बीच रहे विज्ञान–दशन सबधी मतभेदो को व्यक्त करता है। डिंगल क अनुसार एडिंगटन यह जानने म पूर्णत असफल रहे कि उनकी दार्शनिक कृतियो का क्या

एडिंगटन यह मानते है सब प्रश्नो से परे, कि हम प्रत्यक्षत हमारी चेतना के उपकरणो के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु स परिचित नही होते। इस मामले में तथा और भी बहुत से मामलो म उनक दार्शनिक विचार सीधे रूप मे डब्लू० के० क्लिफार्ड से प्रभावित हैं। वे इसे एक मान्यता नहीं मानते किन्तु यह एक तथ्य हैं जो अन्य मान्यताओ से कही अधिक इस सबध म महत्वशील है कि एडिंगटन का दर्शन आधुनिक विज्ञान की ही एक परिणति है और कार्टेजियन परम्परा से प्रभावित नही है।

इस तरह एडिंगटन के लिए आइस्टीन की भौतिक धारणाओ सबधी कार्यकारी परिभाषा चेतना क उपकरणो की बात की ही सिद्धि है। अनुभव या क्रियाए ऐसे ही उपकरणो से पूर्णत निर्मित हैं। तो भी इसके साथ ही मनुष्य अपरिहार्य रूप स उस ज्ञान की ओर पहुचने का प्रयत्न करते हैं जो अपनी चेतना से परे विद्यमान है-बाह्य जगत के रूप म। एडिंगटन के सामन भी तब आत्मपरकतावाद की मूलभूत समस्या आ खडी होती है। उन्हे अब यह बताना है कि ज्ञान भी हमारी चेतना तक ही सीमित है। वह साथ ही साथ किसी ऐसी अवस्था का ज्ञान भी हो सकता है जो चेतना से परे है। उनका हल नव-काण्टवादी हल है। यदि बाह्य जगत् चेतना की प्रकृति का ही होता तो अनुभव हम उसक रूप स परिचित करा सकता था, यह उनका तर्क है। इस प्रकार बाह्य जगत् चेतना ही है-जीवन है। बाह्य जगत् का ज्ञान ही सारा वस्तुपरक ज्ञान है, वह आत्मा का ही ज्ञान है। विशुद्ध रूप से वस्तु परक जगत् आत्म जगत् ही है जिसे भौतिकी छायित या प्रतिबिम्बित ही कर सकती है तिरोहित नही कर सकती।

हम यह आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि दार्शनिकों ने जिनक द्वारा इस प्रकार क अर्द्ध परिपक्ववाद के जरिए ही इसका प्रवतन एव रक्षा की गई है, एडिंगटन के तत्ववाद पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाने से इ कार कर दिया है। उनके विज्ञान दर्शन ने सकुचित रूप म, अधिक रुचि जाग्रत की थी। इसम आकर्षण है और अभिनव भौतिकी की युक्तिया तथा अभिप्रेतो की सुन्दर व्याख्या है।

एडिंगटन की दृष्टि म भौतिक शास्त्री 'अदृष्ट' तत्वो के त्याग म अभी भी पर्याप्त रूप से दृढ नही हो पाए हैं। ऐसी धारणाए जो एक विशिष्ट अवस्था पर बनी हैं कभी भी सत्यापित नहीं हो सकती। एक बार आइस्टीन प्रणाली के अभिप्रेतो को गभीरता पूर्वक स्वीकार लिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकी बिन्दुसूचको को या मीटरी जाच को सयोजित करने के अतिरिक्त और किसी काम की नही है। ये बिन्दुसूचक जो अदृष्ट' प्रक्रियाए या इयत्ताए नही हैं, इस तरह भौतिकी की विषय वस्तु है। भौतिक जगत् जो जीवाणुओ, विद्युदणुओ

प्रादि का जगत् है (जिसे किसी भी भांति जीवन या चेतना का बाह्य जगत् नही मानना चाहिए) वही एक ऐसे जगत् के रूप म परिभाषित किया जा सकता है जिसकी कि बिन्दुसूचक व्याख्या करते हुए माने गए हैं।

तब एडिंगटन की दृष्टि म भौतिक जगत् वस्तुपरक नही है। इस तरह वे नियम जिन्हे भौतिकशास्त्री भौतिक इयत्तामो क व्यवहार का नियामक मानते हैं व निश्चय ही वास्तव मे विद्यमान अवस्थाओं के विवरण नही हैं– सभी प्राकृतिक नियम आत्मपरक हैं। उन्हें एडिंगटन द्वारा आत्मपरक कह जाने का यही आशय है कि उन्हे ज्ञानमीमांसा क सिद्धान्त से निगमित किया जा सकता है या फिर प्राग्भावी सिद्धान्तो के जरिए। व यहा काण्ट से भी आगे चल जाते हैं। यहा तक कि प्राकृतिक स्थिराक' क रूप म समष्टि म विद्यमान परमाणुओं की सख्या को प्राग्भावी विचार द्वारा बिना अस्पष्ट हुए निगमित किया जा सकता है और इस तरह व पूर्णत आत्म परक हैं। यह एक चकाचौध कर दने वाला सिद्धान्त है। यह एक विचित्र सिद्धान्त है किन्तु इसे केवल विचित्र या स्वैरात्मक (प्रार बिट्रेरी) सिद्धान्त कहकर त्यागा नही जा सकता। एडिंगटन सशक्त रूपम नव भौतिकवादी सिद्धान्तो की ओर युक्तिपूर्वक हमारा ध्यान खीचना चाहत हैं जिनके जरिय एक प्रस्तुत परिस्थिति म ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए सभव है। इस बिन्दु क सबध म उनके द्वारा प्रस्तुत विस्तृत उदाहरण, व इस पर जो तत्ववादी ज्ञानमीमासक धारणाए उन्होने बनाई वे दर्शन-वैज्ञानिको के लिये विशेष महत्व की हो गई हैं।

स्पष्टत यह देखा जा सकता है कि एडिंगटन आत्मपरक एव वस्तुपरक भौतिक एव बाह्य जगत् सबधी धारणाओं स जूझने म लगे हैं। व इस अतिवादी धारणा को मानने मे हिचकते हैं कि भौतिक जगत् एक साथ आत्मपरक भी है तथा एक मात्र विद्यमान जगत् भी है। उनके दर्शन म प्रस्तुत बाह्य जगत् म मूल्यो के लिय पर्याप्त स्थान है। वस्तुपरकता क आदर्श को न छोडकर भी वे यह सब कर सके हैं। एडिंगटन के साथी भौतिकशास्त्रियों का उनम इस बात म असतुष्ट रहना अस्वाभाविक नहीं था कि ज्ञान उस सीमा तक ही वस्तुपरक है जहा तक वह भौतिकी की सीमा स बाहर है।

जिन लोगों न एडिंगटन के बाह्य जगत् क सिद्धान्त का परित्याग कर दिया है और अन्य मामलो म जो उनके दार्शनिक क्षेत्र तक ही सीमित रह हैं– उनम दो व्यक्ति उल्लखनीय हैं, एच॰ डिंगल एव पी॰ डब्लू॰ ब्रिजमैन। डिंगल कृत द सोर्सेज आव एडिंगटन्स फिलोसोफी (1954) नामक शोधलेख स्पष्ट रूप स उनके और अपन बीच रह विज्ञान-दर्शन सबधी मतभेदो को व्यक्त करता है। डिंगल क अनुसार एडिंगटन यह जानने म पूर्णत असफल रहे कि उनकी दार्शनिक कृतिया का क्या

मतलब निकाला जा सकता है। वे यह नहीं देख पाते कि उन्होंने बाह्य जगत् की विक्टोरियन धारणा को अर्थहीनता में बदल दिया है– विशेषकर यह देखते हुये भी कि कितने विक्टोरियन भौतिकशास्त्री सघटनवादी हुए हैं। यह जान करके कि भौतिक विज्ञान बाह्य जगत् को व्यक्त करने में असफल रहा, एडिंगटन ने निष्कर्ष निकाला कि इसे दूसरे ढंग से व्यक्त किया जाना चाहिये। डिंगल प्रतिवाद में कहते हैं कि अच्छा तो यह होता कि वे यह कह देते कि बाह्य जगत् है ही नहीं। डिंगल मैश से इस बात में सहमत हैं कि विज्ञान अनुभवों का सह-सम्बन्ध ही है, एवं भौतिक-शास्त्र के मामले में ये अनुभव बिन्दुसूचकों का रूप ले लेते हैं – और इनका सह सम्बन्ध विद्युदणुओं जीवाणुओं तथा तरग-क्रियाओं आदि के जगत् में से ऐसे बिन्दुसूचकों की रचना कर देना ही होगा।

जीवविज्ञान के मामले में अनुभव जैविक निरीक्षण होते हैं जो विकासशील जगत् में समन्वित हो जाते हैं, इसी में पतृक्ता आदि जैविक धारणाएं भी शामिल हैं। इसी प्रकार धर्म एवं आचारशास्त्र में धार्मिक एवं नैतिक अनुभवों का समन्वय होता है। न तो भौतिकी और न जीवशास्त्र न तो मैटिक या अमैट्रिक पर्यवेक्षण हमें विज्ञान के जगत् से बाहर ले जाने में समर्थ है–क्योंकि यह जगत् सहसबंधी अनुभवों के अलावा अन्य कुछ नहीं रखता–एक ऐसे बाहरी जगत से जिसे सभावित *वैज्ञानिक सयोग से परे मान लिया गया है। न नैतिकता तथा धर्म ही* ऐसे अति-अनुभवी जगत् की रचना करने में समर्थ हैं। अनुभव सभी कुछ है एवं पर्याप्त है।

ब्रिजमैन का सक्रियवाद' जो सर्वप्रथम लोजिक आव मोडर्न फिजिक्स (1927) में भली भांति प्रवर्तन में आया है, एडिंगटन के विज्ञान दर्शन की भांति ज्ञान मीमांसीय गुत्थियों से भरपूर है। इसमें जो सर्वाधिक प्रभावशाली[1] है वह है इसका यह अर्थक्रियावादी सिद्धान्त कि धारणा प्रत्यभिमुखी क्रियाओं की इकाई *का ही पर्याय है।'* उदाहरणार्थ लम्बाई की धारणा जिसे ब्रिजमैन ने विस्तार में वर्णित किया है–उन क्रियाओं के समूह से अभिन्न है जिनके जरिए हम यह कहते हैं कि लम्बाई माप की जाती है। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि तारकमापी

---

1 देखें इस पर आधारित रचनाएं बी० एफ० स्किनर द बिहेवियर आव ओर गेनिज्म (1939) सी० बी० प्रट द लोजिक आव मोडर्न साइकोलोजी (1939), आपरेशनिज्म इन साइकोलोजी पर साइकोलोजिकल रिव्यू (1945) का प्रकाशित विशेषांक। गूढ़ अध्ययन के लिए देखें ए० सी० बन्जामिन कृत ओपरेशनिज्म (1955) मथेडोस नामक पत्रिका के प्रकाशक इटली के रीतिविधायक समुदाय के लोग थे। ब्रिजमन द्वारा प्रवर्तित विचारों को जर्मनी के रीतिविधायक ह्यूगो डिंगलर की रचनाओं में देखा जा सकता है। देखें मैथेडोस (1952)।

लम्बाई थ्योडोलाइट से मापी लम्बाई की धारणा से बिल्कुल भिन्न है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सभी ज्ञान सापेक्ष है। ब्रिजमैन हाल्डेन कृत 'द रेन ग्राव रिलेटिविटी' का यहां पर समर्थनपूर्वक संदर्भ देते हैं। ब्रिजमैन के अनुसार ग्राइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त के ये अपरिहार्य निष्कर्ष हैं। जब तक कि हम उन्हें स्वीकार नहीं करते तब तक हम ग्राइंस्टीन की विचारधारा के क्रांतिकारी पक्ष को पसन्द करने में असफल हो जाएंगे।

सभी वैज्ञानिकों में से यदि गणितज्ञों को भी इस श्रेणी में मान लिया जाए–जिन जिन ने भी अपने को दार्शनिक बना लिया है उनमें सर्वप्रसिद्ध हैं ए० एन० व्हाइटहैड। कुछ ऐसे लोग भी जो हैं जो यह मानते हैं कि वह हमारी शती के प्रमुख दार्शनिक हैं जबकि कुछ ऐसे भी हैं जो उनकी तत्ववादी सृष्टि को रहस्यमय निजी स्वप्न की सृष्टि कहकर त्यागने योग्य मानते हैं। इतिहास का अन्तिम कथन कुछ भी हो–जिसकी अभी से पूर्वकल्पना करना मूर्खता पूर्ण ही होगा–किन्तु हम यह तो कह ही सकते हैं–कि कोई भी व्यक्ति कभी भी उनकी रचनाओं का ऐसा विवरण कदाचित न दे पाएगा जो बहुत अधिक अंशों में स्वीयात्मक न हो। मतों का परिवर्तन जो हर स्थान पर स्पष्ट देखा जा सकता है और जो उन तात्विक एवं विविध रचनाओं के कारण ही नहीं है जो उनके अपने सुदीर्घ जीवन काल में लिखी गई हैं, किन्तु एक अध्याय की सीमा में भी बदल कर यह रूप देखा जा सकता है। अभिव्यक्ति की धूमिलता तथा लोच तो हर जगह इनमें विद्यमान है। उनके द्वारा विज्ञान, कला, समाज, दर्शन के इतिहास आदि से सबद्ध संदर्भ की चौंधिया देने वाली वृत्ति ये सब समसामयिक विचारों का इतिहास लिखने वाले के मन में निराशा का भाव जागृत कर देते हैं। सर्वश्रेष्ठ यही है कि उनकी विचारधारा का एक ऐसा खाका बनाया जाय ताकि पाठक अपनी सामर्थ्यानुसार उसमें से ही उन्हें समझ सकें।[1]

---

1 इतने पर भी वी० लोवी कृत डवलपमेण्ट ग्राव व्हाइटहैड्स फिलोसोफी (द लाइब्रेरी ग्राव लिविंग फिलोसोफर्स एलफ्रेड नोथ व्हाइटहैड 1914) पुस्तक से कम किसी कृति द्वारा उनका संदर्भ देना संभवत उन्हें गलत समझना ही होगा। इस ग्रंथ में दूसरे निबंध भी देखें। व्हाइटहैड पर रिव्यू भी देखें। सी० डी० ब्राड, ब्रेथवेट, स्टेबिंग, जोनसन कृत व्हाइटहैड्स थ्योरी ग्राव रीअलिटी (1952) जिसमें आलोचनात्मक निबंध के अलावा कई पुस्तकसूचियां भी हैं। डी० एमेट कृत व्हाइटहैड्स फिलोसोफी ग्राव ग्रारगेनिज्म (1932), ए० एन० व्हाइटहैड (पी बी ए 1947) ए० एन० व्हाइटहैड द लास्ट फेज (माइण्ड 1948), डब्लू० डब्लू० हेमरश्मिट कृत व्हाइटहैड्स फिलोसोफी ग्राव टाइम (1947) ई० पी० शाहा कृत व्हाइटहैड्स थ्योरी ग्राव एक्स्पीरिएन्स 1950 मिलर डी० एल० तथा जेन्ट्री जी० कृत

व्हाइटहैड ने एक गणितज्ञ के रूप में अपना कार्य प्रारंभ किया किन्तु उनके गणित में वे भाव पहले ही थे जिनके जरिए वे प्रमुख युगान्तरकारी दार्शनिक रचनाएं लिख पाए। उन्होंने सर्वदा ही व्यापक तौर पर सम्भाव्य सामान्यीकरणों की स्थापना करने का प्रयास किया है। अपनी प्रथम विशाल कृति ए ट्रीटीज ग्रान यूनिवर्सल एलजेब्रा (1891)[1] में उन्होंने बीजगणित के ऐसे ही सामान्यीकरण को आगे बढ़ाया–उसे गणित से बिल्कुल मुक्त कर दिया। यह बात हम पहले भी जोर्ज बूले की रचनाओं में देख चुके हैं। व्हाइटहैड एक ऐसे बीजगणित की रचना करने की आशा करते थे जो वास्तव में समष्टिव्यापी हो एक ऐसा बीज गणित, जिसका प्रवर्त्तन में आया बीजगणित एक अंश मात्र ही हो। इसके साथ ही साथ उनकी कृति ट्रीटीज में एक उपशीर्षक भी है विद एप्लीकेशन'। वे अपरिभाषित प्रतीकों से काम लेने से असंतुष्ट थे। वे अपने प्रतीकों का ज्ञान के विशेष क्षेत्रों की जांच के लिए उपयोग करना चाहते थे। यदि हम उनकी तुलना उनके समसामयिक ब्रितानी दार्शनिकों से करें तो हमें मालूम होगा कि वे उनसे जितना मूर्तरूपों में भिन्न है उतना ही अमूर्त रूपों में भी। एक ओर जहां वे उनके द्वारा माने गए विशेष का सामान्यीकरण कर देते हैं वहीं दूसरी ओर उनके सामान्यीकरणों की वे भौतिकी शिक्षाशास्त्र कला आदि सिद्धान्त के रूप में व्याख्या करते हैं। उनके विशेषीकरण दर्शन के क्षेत्र के अतिरिक्त और कहीं अपना स्थान नहीं रखते।

यूनिवर्सल एलजेब्रा की रचना के पश्चात् के व्हाइटहैड के जीवन के वर्ष अपने कभी रहे शिष्य बर्टेण्ड रसेल के साथ मिलकर प्रिंसिपिया मैथेमेटिका'[2] की रचना में व्यतीत हुए किन्तु इसके बावजूद भी उन्होंने रोयल सोसाइटी के लिए एक उल्लेखनीय स्मारिका जिसका शीर्षक मैथेमेटिकल कान्सेप्ट फोर द मेटीरियल वर्ल्ड (1905)[3]

द फिलोसोफी ग्राव व्हाइटहैड (1938) वी० लोवी, सी० हार्ट्सहोर्न ए० एच० जानसन कृत व्हाइटहैड एण्ड द मोडर्न वर्ल्ड (1950)।

1 देखें डब्लू० वी० ग्रो० क्वाइन कृत व्हाइटहैड एण्ड द राइज ग्राव मोडर्न लोजिक। इसी पुस्तक में शिल्प द्वारा निखित सी० आई लेविस कृत सर्वे ग्राव सिम्बोलिक लोजिक।

2 देखें अध्याय 9। प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में व्हाइटहैड के योगदान की अनुशंसा के लिए देखें रसेल कृत व्हाइटहैड एण्ड प्रिंसिपिया मैथेमेटिका (माइण्ड 1948) द्रष्टव्य व्हाइटहेड का लेख द ग्रारगेनाइजेशन ग्राव थोट (1916) जो 1991 में द एम्स ग्राव एज्यूकेशन में तथा उपयुक्त शीर्षक में ही 1917 में प्रकाशित हुआ।

3 सर्वप्रथम द फिलोसोफिकल ट्रांजेक्शन्स ग्राव द रायल सोसाइटी (1906) में प्रकाशित एफ० एस० सी० नोथ्राप एवं एम० डबलू० ग्रोस कृत अल्फ्रेड नोथ व्हाइटहैड एन एन्थोलोजी (1953) में पुनः मुद्रित है।

था लिखने का समय मिल ही गया। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की भाषा के ऐसे प्रयोग का प्रयास है जिसके माध्यम से अन्तरिम इयत्ताओं तथा दिक के बीच समाविष्ट सम्बन्धों की चर्चा हुई है। इसमें सवसामान्य भाषा का प्रयोग है तथा इसमें माना गया है कि अन्तिम इयत्ताओं से ही दिक् में विद्यमान भूत (stuff) का निर्माण हुआ है।

उनकी स्मारिका में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। व्हाइट हैड की शिकायत है कि दार्शनिक पूर्णत अपर्याप्त तार्किक उपकरणों की सहायता से ही काम चला लेता है। वह तत्व गुण एवं अधिक करता द्विपादी संबंधसूचकों के बाहर नहीं जाता। भौतिक पदार्थ एवं दिक के बीच विद्यमान संबंधों का कोई भी यथोचित विवरण देने के लिए उसे अनेकिक संबंध सूचकों का उपयोग करना चाहिए। बहुत से परम्परागत सिद्धान्त तो तार्किक संभावनाओं की प्रति सरलीकरण की चाहना के कारण ही ध्वस्त हो जाते हैं यही बताना उनके दर्शन का सतत कथ्य था।

दूसरे स्थान पर इस स्मारिका में यह बात स्पष्ट देखी जा सकती है कि व्हाइटहैड क्या भौतिक जगत् की परम्परागत धारणा से असंतुष्ट थे तथा क्यों वे मौलिक रूप से इसके स्थान पर एक नई तात्विकी का प्रयोग करना चाहते थे। दिक बिन्दु पदार्थ–परमाणु काल–प्रकरण के रूप में किए गए तीन भेदों को पूर्णत सामान्यीकरण तक ले जाकर शास्त्रीय विचारक व्हाइटहैड की अपेक्षित मांगों को संतुष्ट करने में असफल रहे। अभी तक तो वे इस संभावना का सुझाव भी नहीं दे रहे कि काल के प्रकरण को छोड़ा जा सकता है किन्तु वे अभी से इस संबंध में कि दिक–बिन्दुओं को भौतिक परमाणुओं की भाषा में परिभाषित किया जा सकता है–श्रमपूर्वक विचार करने में संलग्न दिखाई देते हैं। उनके अनुसार जहां तक विशुद्ध ज्यामिति तक ही सीमित रहने का प्रश्न है वहां तक शास्त्रीय सिद्धान्त द्वारा किया गया कार्य प्रशंसनीय है क्योंकि यह उनके परिवर्तन का यथोचित विवरण नहीं दे सकता। स्पष्टतः ही दिक् में विद्यमान स्थिर बिन्दु परिवर्तित नहीं हो सकते। और इस तरह भौतिक शास्त्री के समक्ष परिवर्तनशील परमाणुओं तथा स्थिर बिन्दुओं का एक हल न किया जा सकने वाला द्वैत है। किसी प्रकरण में परमाणु द्वारा एक बिन्दु का आवरण पूर्णत स्वैच्छात्मक नहीं है। किसी भी रूप में वह बिन्दु को, परमाणु को अथवा प्रकरण की प्रकृति से निगमित नहीं है। स्वैच्छात्मकता की इस स्थिति ने व्हाइटहैड को परेशान कर रखा था।

उनकी स्मारिका से यह स्पष्ट हो गया था कि व्हाइटहैड रसल के विचारों के प्रभाव में आ गए थे। यह बात अपेक्षित नहीं थी। वास्तव में रसल कृत फिलोसोफी आव लेबनीज जो उस समय दर्शन को एक महत्वपूर्ण योगदान था, व्हाइटहैड को

प्रणाली द्वारा व्हाइटहैड प्रकरणों की परिभाषा अनुभव से करते हैं और उस अनुभव को वास्तव में उनका तदाकारी नहीं स्वीकारते। प्रकरणों की परिभाषा अवधियों के समूह को उस श्रेणी से दी गई है जिसमें अन्य प्रकरणों से विशेषत व्यापक सम्बन्ध विद्यमान हैं।[1]

चौथी बात व्हाइटहैड का प्लेटोवाद अब पूर्णता पर है—वे घटनाओं एवं पदार्थों का भेद करते हैं—

प्रत्येक घटना अपने आप में अद्वितीय है—अपनी प्रकृति से ही वह अपुनर्घटनीय है।' हम कह सकते हैं कि घटनाएं प्रकृति की विशिष्टताएं हैं अभिधान हैं। दूसरी ओर पदार्थ वही हैं जिन्हें प्रकृति में हम परिचित रूपों में पहचान सकते हैं। और ये प्रकृति के स्थायी अङ्ग हैं। न तो पदार्थ और न घटनाएं ही पृथक रूप में अस्तित्व मान रह सकते हैं। प्रत्येक घटना का एक विशेष रूप होता है अर्थात् कोई पदार्थ निश्चय ही उसमें अन्त प्रविष्ट हुआ होता है जबकि प्रत्येक पदार्थ किसी घटना का ही मूर्तिमान करता है। तो भी यद्यपि हम पदार्थ की स्थिति को समुचित रूप से बता सकते हैं, यह सोचना भीषण भूल हो जायगी कि यह केवल मात्र उसी दायरे में है। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि झंझा एतलांतिक महासागर में स्थित है। वह तो है ही, किन्तु इंग्लण्ड के मनोरुग्ण यात्री डर कर कई बार इंग्लण्ड से ही अपनी बंथ रद्द करवा लेते है। इसलिए झंझा इंग्लण्ड में भी है और एतलांतिक में भी। एक पदार्थ अपने आसपास के तत्वों से भी बना है और उसका आसपास का वातावरण भी असीमित है।[2]

पांचवी बात जो उनके दर्शन में सर्वाधिक प्रभावशाली थी और विशेष रूप से जिसे *साइन्स एण्ड द मोडन वल्ड* में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी वह यह है कि व्हाइटहैड प्रकृति के विभाजन का विरोध करते हैं। यह सब तो गलीलियो—लौक द्वारा किया गया समष्टि वर्णन है जिसमें रंगों ध्वनियों गन्धों के तात्कालिक अनुभव *जगत् में तथा विज्ञान* की इयत्ताओं जिनमें न गंध है न रंग है, न ध्वनि का भेद है और जिन वस्तुओं में हमारे मन की आसक्ति हो यह द्वैत उसीके विषय में एक

---

1 व्हाइटहैड के दर्शन में प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में प्रयुक्त प्रणाली को ही महत्व पूर्ण प्रणाली माना जा सकता है। विस्तार के लिए देखें द प्रिंसिपल्स आव नेचुरल नौलेज (भाग० 3) द कोन्सेप्ट आव नेचर (अध्याय 5) प्रोसेस एण्ड रीअलिटी (भाग 4)।

2 देखें स्टेबिंग ब्रेथवेट तथा डॉ० एम० रिचर्ड्स इज द फलेसी आव सिम्पल लोकेशन ए फलेसी ? (पी० ए० एस० एस० 1927)।

विभ्रम भी उत्पन्न कर देता है। विनान के लिए सूर्यास्त की रक्ताभा प्रकृति का उतना ही ग्र श है जितना परमाणुग्रो का कम्पन। यदि वनानिक सूर्यास्त का मन—सयोग स उत्पन्न स्थिति मानत हैं तो उससे उसकी प्रकृति की मूल स्थिति का सम्यक विवरण दे पान की ग्रसमथता ही जाहिर होगी। जो कुछ जाना गया है उस विनान को फिर से सह-सयुक्त करना चाहिए ग्रौर इस बात की चिंता नही करनी चाहिए कि पहल उसे किस रूप म समझा या जाना गया है। ग्रपनी बहुत गलत समझी गई ग्रौर व्यापक रूप से गलत व्यवहृत बात को जब व्हाइटहड न यो लिखा प्रकृति ने मन के लिए ग्रपने सब द्वार बद कर लिए हैं तो व मूलत यही कहना चाहत थे।

प्रकट रूप म तत्ववादी ग्रपनी रचनाग्रो म जिन्ह व्हाइटहैड न ग्रपने बाद के वर्षों मे लिखा खासतौर पर 63 वष की ग्रवस्था म हावड की चेयर ग्राव फिलोसोफी प्राप्त करने क बाद, तो उनके प्रकृति दशन क कथ्य एक बार पुन व्याख्यायित हुए तथा विकसित हुए। बाद की इन रचनाग्रा म स 1925 मे लिखी साइस एण्ड द मोडन वल्ड को व्यापक रूप से पढा गया। इस इतना ग्रपन तत्वदशन के लिए नही पढा गया जितना मानवी सस्कृति को समझ सकने की दिशा म किए गए योगदान क रूप म पढा गया। एडवेंचस ग्राव ग्राइडियाज' को भी उन्ही कारणो से वैसी ही लोकप्रियता मिली। केवल प्रोसेस एण्ड रीग्रलिटी (1929) म ही व्हाइटहैड का तत्वदशन पूरी ग्रभिव्यक्ति पा सका—चाह यह ग्रभिव्यक्ति ग्रपने ग्रापम कितनी ही दुविधाजनक क्यो न रही हो।

स्वभावत **प्रोसेस एण्ड रीग्रलिटी** की तुलना एलेक्जेण्डर की **स्पेस टाइम एण्ड डीटी** से किया जाना काफी सभव है। व्हाइटहैड ने इस पुस्तक की बडी प्रशसा की। किन्तु य ग्रनुशसाए पारस्परिक थी। दोना ही लेखको की दृष्टि मे दशन की मूलभूत समस्या काल दिक का विशिष्ट वस्तुग्रा स सम्बन्ध नियत करना है। इन दोनों के हल फिर भी बहुत भिन्न हैं। इसके ग्रतिरिक्त वे दोनो एक ही प्रकार का दाशनिक प्रणाली का उपयोग करते हैं, ग्रर्थात् ऐसी विधि का जिसे ग्रनादर की दृष्टि स दखते हुए हम 'म ग्रापको बताता हू' वाली प्रणाली कह सकते हैं। फिर भी दोनो पूणत बुझौवल वाली इसी प्रणाली से विचार व्यक्त नही करते। रिलीजन इन द मेकिंग (1926) म व्हाइटहैड ने लिखा कि तत्ववाद एक विवरण है। मानवी रुचि क एक विशेष चेत्र म जहा पर वह सत्य का कोई सामान्य रूप दखने की गध प्राप्त कर लेता है तत्ववादी उसी चेत्र मे सचाई ढूढता है। वह तब इन्हे काम-चलाऊ तौर पर पदावस्थाए मान लेता है। तथा इस खोज म कि वे वस्तुत क्या है, लग जाता है ग्रौर मानवी रुचि के ग्रन्य

चेत्रों म प्रस्तुत उनक उद्धरणों स उनकी तुलना करता है। सामान्य सिद्धान्तों से अनुभव का निगमन असम्भव है। उसका उल्टा विचार ही तत्ववादी की भीषण भूल रही है। तो भी हम अनुभव के अतिसामान्य रूप का वर्णन कर सकते हैं। 'प्रोसेस एण्ड रीयलिटी' ऐसे ही एक विवरण का प्रयास है।

व्हाइटहेड क लिए इसकी शुरुआत प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त से होती है। जहां प्राकृतिक दर्शन म उनकी दृष्टि समरूपी है, अर्थात् मानवी चिंतन या प्रत्यक्षीकरण की क्रिया का कोई सदर्भ प्रस्तुत नहीं करती उनका तत्वदर्शन विषम रूपी है—अर्थात् वहां वे प्रकृति के सबध म हमारे चिंतन का विश्लेषण कर रहे हैं। अवयववादी दर्शन आधुनिक दर्शन का यह आत्मपरक आधार स्वीकार लेता है कि सम्पूर्ण विश्व ऐसे तत्वों से बना है जो कर्त्ता क अनुभवों मे प्रकटते हैं। इस तरह वे जानबूझकर अपने तत्वदर्शन को प्रत्ययवादी परम्परा से जोड़ देते हैं। उनका उद्देश्य परम प्रत्ययवादी सिद्धान्त का यथार्थवादी आधार पर रूपान्तर करना है। वे इस तरह बोसांक तथा हाल्डेन की सूक्ष्ममयी वृत्तियों के ब्रैडले की अपेक्षा, अधिक निकट लगते हैं—यद्यपि ब्रैडले के अनुभूति सिद्धान्त से वे कृतज्ञतापूर्वक बहुत प्रभाव भी ग्रहण करते हैं। हाल्डेन के वे इस सिद्धान्त को स्वीकारते हैं कि हम यह विश्वास करन क लिए तत्पर रहना चाहिए कि ससार हम जितने और जसे रूप म दिखाई दे उतने और वसे ही रूप मे हम उसे स्वीकार लें। परम प्रत्ययवादियों में तथा व्हाइटहेड म जो बात सयोग से मिल जाती है और कदाचित् यही बात उन्हे रसल से बिल्कुल विलग कर देती है वह है उनके द्वारा इस सिद्धान्त का स्वीकरण कि प्रत्येक तक्वाक्य एक समष्टि का सदर्भ देता है और उसका कोई न कोई सामान्य तत्ववादी रूप होता ही है और अपने अंतिम विश्लेषण तक उसे तथ्य के सबध मे अपेक्षित समष्टि का सामान्य रूप घोषित करना ही चाहिए। यह निष्कर्ष इस सिद्धान्त की स्वाभाविक निष्पत्ति है कि वस्तु म निहित सभी तत्व किसी प्रणाली से उसका सबध स्थापित करते समय प्रकट हो सकते हैं।

व्हाइटहेड के दर्शन[1] की जीवशास्त्रीय ध्वनि निश्चय ही प्रत्ययवादी परम्परा

---

1 जीवशास्त्रीय दर्शन जो व्हाइटहेड के प्रभाव में निर्मित हुआ उसके लिए देखें डब्लू ई एगर *ए कण्ट्रीब्यूशन टू द थ्योरी आफ लिविंग आरगेनिज्म (1943)*। जसा कि हम अध्याय 11 म देख चुके हैं भौतिक एव जीवशास्त्री दोनों अपनी वज्ञानिक जाच पड़तालों म आई मुश्किलों के कारण ही दार्शनिक बन गए थे। उदाहरणार्थ देखें सी शेरिंगटन *मैन आन हिज नेचर* (1940), जे० एस० हाल्डेन *द फिलोसोफी आफ ए बायलोजिस्ट* (1935), एल० होगबेन *द नेचर आफ लिविंग मैटर* (1930)।

म नही मिलती। इस बिन्दु पर कदाचित् व्हाइटहैड अमरीकी अर्थक्रियावाद स ही प्रभावित हैं। सवप्रथम प्रत्यक्षीकरण का जीव शास्त्रीय सकेत अनुबोधन म विक्ल्पित करके और उस अवयवव्यापी वातावरण को अग मानकर व इसी परिग्रहण (प्रीहे`शन) को सभी वस्तुओं मे निहित पारस्परिक सम्बन्धो के जरिए खोजते हैं–चाहे वह वस्तु कोई अवयव हो या नही। उनकी व्याख्या के अनुसार यह समष्टि अस्तित्व की इकाइयो स बनी है और य इकाइया (अनुभूतिया) परिग्रहण से ही बनी हैं। व्हाइटहैड की दृष्टि मे दाशनिक इसलिए भटक गए हैं क्योकि उन्होने यह मान लिया कि दृष्टि सबधसूचकता की विशेष अवस्था है। व्हाइटहैड इन्ह अपनी आन्तराग सवदना पर विचार करने के लिए कहते हैं। तभी वे शायद यह देख पाएगें कि परिग्रहण एव प्रतिराध केवल नीरस सवेदन का प्राप्त करना ही नही, बल्कि वे तत्व हैं जो न केवल प्रत्यक्षीकरण के मूलभूत अङ्ग हैं अपितु, समष्टि के निर्मायक सारे सबधो के भी।

अध्याय १५

कुछ केम्ब्रिज दार्शनिक तथा विटजनस्टीन क्त टॅक्टेटस

केम्ब्रिज मोरल सा म फक्ल्टी वतमान शती की पहली दशाब्दियो म किस प्रकार असफल रही यह पहले ही पर्याप्त रूप से दर्शाया जा चुका है। एक ऐसा विश्वविद्यालय जो मूर रसल मक्टेगट व्हाइटहैड वाड एव स्टाउट सदृश विचारकों क योगदानो के लिए श्रेयामाक है उस पर बजरता का या मक्रीणता का आरोप ता कुछ मथ नही रखता तो भी हमारी कहानी अभी अधूरी है। केम्ब्रिज म पोषित अ य विचारको ने भी इम विश्वविद्यालय के दार्शनिक श्रेय के आकार मे वृद्धि की है। इनम सबसे पहले उल्लेख योग्य है वह दार्शनिक जिसे इस विश्वविद्यालय ने पहल एक मेधावी छात्र के रूप म तथा बाद म एक प्राध्यापक के रूप मे स्थान दिया और जो बाद म जाकर हमारी शती का महान् विचारक बना वह था अस्ट्रिया–वासी लुडविग विटजनस्टीन।

डब्लू० ई० जानसन देशज विचारका म से उल्लेखनीय हैं। इनके विषय म हम सक्षेप म पहले ही (अध्याय ६ म) लिख चुके हैं। द लोजिकल केलकुलस (1892) पर उनके निबधो से उनके द्वारा युगस्वर का पूर्वानुमान लगाए जाने का सकेत मिलता है और आशिक रूप स वह सारी चर्चा भी जो बाद की विचारधाराओ के रूप म कम्ब्रिज म विकसित हुई इनके विचारो मे पहल स ही व्यक्त हुई है। इसके बाद क वर्षा म उन्होने शिक्षक के रूप म महान् प्रभाव डाला लेकिन प्रकाशित कुछ भी नही कराया। 1920 तक तो लोजिक[1] शीर्षक से लिखी अपनी प्रमुख पुस्तक

---

1 भाग 1 1921 म भाग दो (उपशीषक डेमोंस्ट्रेटिव इ फरेंस डिडक्टिव एण्ड इण्डक्टिव) 1922 म, भाग 3 द लोजीकल फाउण्डशन आव साइंस 1924 म भाग चतुथ की रूपरेखा के कुछ भाग जो प्रोबेबिलिटी पर लिखे गए हैं उनके मरणोपरान्त माइण्ड 1932 म प्रकाशित हुए। सी० डी० ब्रोड, 'डब्लू० ई० जोनसन (पी० बी० ए० 1931) तथा द्वितीय भाग का उनका आलोचनात्मक रिव्यू (माइण्ड 1922) भाग 3 (माइण्ड 1924) एच० डबलू० बी० जोसेफ व्हाट डज मि० जोनसन मीन बाई ए प्रोपोजीशन ? (माइण्ड 1927–8) ए० एन० प्रायर डिटरमिनेबल्स डिटर्मिनेटस एण्ड डिटरमेनेण्ट्स' (माइण्ड 1949) तर्कशास्त्र की पुस्तकें जिनम जोनसन की रचनाओ का उपयोग किया गया है उनमे आर० एम० ईटन जनरल लोजिक, एन इंट्रोडक्टरी सर्वे (1931) सी० ए० मस द प्रिंसिपल्स आव लॉजिक (1733) तथा एल० एस० स्टेबिंग ए माडन इंट्रोडक्शन टू लाजिक उल्लेखनीय हैं।

का प्रकाशन भी नही कर पाए थे। उस भी उनके विद्यार्थियो म से एक के ही दबाव से, स्वय की प्रेरणा से नही उन्होने साकलित करके पुस्तकाकार रूप म प्रकाशित कराया। यह एक सुनिश्चित योजना के आधार पर लिखी गई कृति नही। इसका मूल्य इसकी व्यापकता मे निहित है। अब इस सम्बन्ध म जो भी किया जा सकता है वह यही कि इसम प्रस्तुत विचारो को एक सामान्य रूप दिया जाय।

यद्यपि जानसन का प्रशिक्षण एक गणितज्ञ के रूप मे हुआ उनकी कृति लोजिक गणितीय न होकर मूलत दार्शनिक है। यह पुस्तक युक्तिपूर्वक तक को गणित से निगमित करने की दिशा म सहानुभूति पूर्वक अग्रसर है। तो भी वे इस काय म भाग नही लेते। वे केवल रसेल की तर्कवाक्यीय फलन के सिद्धान्त की कटु आलोचना ही प्रस्तुत करते हैं। वास्तव मे वे जे० एम० कीन्स से कनिष्ठ तर्कशास्त्रियों का नाम तक नही लेते। कीन्स के नवनिर्मित परम्परागत तर्कशास्त्र का उपयोग वे अपनी रचनाओ म अवश्य ही करते हैं।

जसा हम पहले कह चुके हैं व तर्कवाक्य से प्रारम्भ करते हैं। इसके साथ ही प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र स उनका अलगाव इतना तीव्र नहीं होता है। तर्कवाक्य निर्णय की ठोस क्रिया का केवल एक अश मात्र है'। जोनसन द्वारा विशद भेदो की ओर दिए गए बल के बावजूद भी निर्णय एव तर्कवाक्यो के बीच का सम्बन्ध बताने वाले विभिन्न विवरणो को सगति म लाना असमव है। यह तथ्य, जो उनके ग्रन्थ लोजिक की आत्मा को भी छूता है इस बात का स्वय प्रमाण है कि इसका पाठक पर एक एकीभूत प्रभाव क्यो नही पडता। प्रत्ययवादियो के विरुद्ध ये आकारी तर्कशास्त्र को एक स्वत पूर्ण शास्त्र का दर्जा देते हैं और उसे तर्कवाक्यो का सिद्धान्त मानते हैं। इसके साथ ही यह स्वत पूर्ति (आटोनोमी) स्वाग्रहों (रिजर्वेशन्स) से इतनी अधिक आक्रान्त हैं कि आकारी तर्कशास्त्र मात्र एक 'कठपुतली राज्य' रह गया है—वास्तविक सत्तासूत्र तो ज्ञानमीमासा के हाथो से बँधे हैं।

परिणामत जोनसन का ग्रथ लोजिक अप्रत्याशित क्षेत्रो तक अतिक्रमण कर जाता है, उदाहरण के लिए इसमे मन काय सम्बन्धो का सुन्दर विश्लेषण है। तर्कशास्त्र, 'जो विचार का विश्लेषण विवेचन मात्र है, आगमन की अवहेलना नही कर सकता—आगमन सम्बन्धी कोई भी समुचित चर्चा कारण एव तत्व-सबधी धारणाओं पर एक प्रकार की खोज ही होनी चाहिए। ऐसी खोज यदि इसे गभीर रूप से किया गया तो मन काय-सबधों से उपजी विशेष समस्याओ का विवरण एव निदान प्रस्तुत करने के लिए है। जोनसन सक्षेप म अपनी युक्तियो का वहाँ तक अनुसरण करते हैं जहाँ तक वे उन्हे ले जाती हैं। उनका लोजिक सामान्य दर्शन क्षेत्र को भी उनका एक योगदान है, केवल तर्कशास्त्र नही है। किन्तु केम्ब्रिज

वचारिक प्रथवा तार्किक परम्परा क्या रही है इसका विवेचन उन्होंने बडे ही सुन्दर ढग से किया है। उनकी दार्शनिक चर्चाएं साफ सुथरी विश्लेषणात्मक व विभेद मूलक अवश्य हैं किन्तु बहुत कम प्रश्नों में निर्णयात्मक है।

जोनसन कुछ बातो के लिए प्रभावशाली रहे। उनके नव तर्कवादो ने (यद्यपि ऐसा बहुत कम हुआ है) व्यापक स्वीकरण प्राप्त किया है। उसमें ऐसे फिकर प्रयुक्त हैं, जैसे प्रदर्शन योग्य परिभाषा (ग्रास्टसिव डेफिनीशन), व ऐसी विपरीतताएँ बतलाते हैं जैसे 'नाम मूलक एव सरचनाकारी' में 'प्रवधारक एव अवधाय' में सतत (कटिंयुएट) एव घटनशील (प्राकरंट) में। ये दार्शनिक साहित्य की परिचित शब्दावलियां हो गई हैं। इससे केवल यह अर्थ नही निकलता कि जोनसन शब्दों के मात्र एक चतुर शिल्पी थे। उन्हें दार्शनिक मुवादों का नया रूप देने तथा उन्हें प्रबलतर करने के लिए अपने नवान्वेषणों की उपयोगिता सिद्ध करनी ही थी।

वे यह बताने के लिए निकलते हैं कि परिभाषा की केवल एक प्रक्रिया नही है और न आगमन की ही एक प्रक्रिया है, वे अनेकों हैं। इसके बावजूद जब वे नवा वेपित स्थितियों का नामकरण करते हैं तो वह केवल शैल्पिक दृष्टि से नहीं है, ऐसा मान लेने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। वे फिर एक बार तर्कशास्त्रियों को तार्किक प्राकारों का निर्धारण करने में उनके द्वारा बरती गयी बेफिक्री के कारण बुरा भला कहने से भी नही चूकते। विशेष रूप से उनका विचार है कि उन्होंने लाल एक रग है तथा प्लेटो एक मनुष्य है जैसे दो तर्क वाक्यों को गलत ढग से एक सरणि में रख दिया है। उस अन्तर का निर्धारण करते हुए जिसे उनके अनुसार उन्होंने अनदेखा कर दिया था वे अधिकारी एव अवधाय के भेद को अपने तर्कशास्त्र में प्रकटाते हैं। प्लेटो एक मनुष्य है, यह तर्कवाक्य वर्ग सदस्यता के विषय में न कह कर अवधारी के अवधाय होने के विषय में बताता है। लाल, हरे, पीले ये एक अवधारी रग के अवधाय है। उसी प्रकार, जिस प्रकार वर्ग, वर्तुल, अडाकार आदि सब अवधारी शक्ल के अवधाय हैं। इन अवधारियों की इकाइयों की जो बात स्वीकृति करती है वह वर्ग सदस्य की भांति इस बात पर निर्भर नही करती कि उनमें कहीं समानता है लेकिन जोनसन के सुझावानुसार, इसका यही अर्थ है कि उनमें किसी एक खास तरीके का भिन्नत्व है। एक ही अवधाय के अवधारी एक दूसरे से अलग अलग होते हैं। वह भी इस विशेष अर्थ में कि वे एक ही समय में उसी क्षेत्र को अवच्छिन्न नही करते। एक ही क्षेत्र लाल और गोलाकार हो सकता है किन्तु एक ही समय में लाल और हरा नही हो सकता। इसके अलावा उनका अन्तर तुलनीय भी है। जबकि विभिन्न अवधायों के लिए यह नही कह सकते।' यह कहा जा सकता है कि लाल एव हरे रग में जो अन्तर है वह लाल और नारंगी रग के अन्तर से कहीं ज्यादा है, किन्तु हम यह नही कह सकते कि यह अन्तर लाल एव गोलाकार के अन्तर की भांति बडा छोटा या बराबर है।

जोनसन की प्रतिभा इसी प्रकार के सतर्क भेदों की रचना करने की ओर लगी हैं। उनकी गणितीय क्षमता का स्मरण करते समय यह मालूम करके आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि समाव्यता के सिद्धान्त की ओर वे स्वभावत आकर्षित हुए होंगे जिसम सतक विश्लेषण के द्वारा गणित तकशास्त्र एव ज्ञानमीमांसा के बीच मे से कुछ मूल्यवान तत्त्व प्राप्त कर लेना उन्ह सभव लगता था। समाव्यता पर उनकी कृतियाँ आंशिक हैं और पूर्णत समन्वित नहीं हैं। वे उस समय तक तो प्रकाशित ही नहीं हुई जब तक 11 वर्ष नहीं बीत चुके और केम्ब्रिज विचारक जे० एम० कीन्स ने अपनी कृति ए ट्रीटीज आन प्रोबेबिलिटी (1921) प्रकाशित नहीं कर दी जिसमे आंशिक रूप से जोनसन से प्राप्त शिक्षा का मूर्त रूप मिला है और जो आंशिक रूप स उन क्षेत्रों के भी जिनका प्रावलन करना जानसन के बूते के बाहर की बात थी, बाहर के क्षेत्र मे चली जाती है।

कीन्स पर जोनसन का ऋण केवल मात्र इस बात मे निहित माना जाता है कि उन्होंने उनके परिमेयों का सदम प्रस्तुत किया है। जोनसन को कीन्स पहले अपने पिता जे० एन० कीन्स के मित्र के रूप में फिर एक अध्यापक तथा फिर एक सहकर्मी के रूप म भी जानते थे। तो भी, वास्तव मे ट्रीटीज के दार्शनिक अंशों की आत्मा निश्चय ही जोनसन की[2] है। अपनी भूमिका मे कीन्स ने मूर एव रसेल के साथ जोनसन का नाम जोड़ा है। और उन्ह ऐसे दार्शनिक माना है जो तथ्य के उजागर करने की दिशा मे एक ही तरह स सयुक्त हुए हैं। उन्होंने अपने विषय को मात्र काल्पनिक अभियोग से निकाल कर वैज्ञानिक भूमि प्रदान करवाई। प्रिंसिपिया एथिका म मूर ने कहा है कि शिव (गुड) अपरिमाप्य है। इस आधार पर कीन्स का भी यह कहने का साहस मिला कि समान्यता की भी यही स्थिति है। रसेल न तकशास्त्र से गणित का निगमन किया। कीन्स ने भी समाव्यता के सिद्धान्त से यही करना चाहा। किन्तु ट्रीटीज मे पाया जाने वाला एक अनोखा 'ज्ञान तर्कागम वातावरण' भली भांति जोनसन से उद्‌घृत हुआ माना जा सकता है।

कीन्स जोनसन की तरह, तकवाक्य स प्रारम्भ करते हैं, वेन की भांति घटना या 'होना' से नहीं। तारतम्य के सिद्धान्त पर प्रस्तुत वेन की इस धारणा को कि प्याले से निकाली जाने वाली दूसरी गेंद शायद काली होगी वे एक समाव्यता का रूप देना चाहते हैं। जब तक कि समाव्यता का सिद्धान्त अपने सभी

---

1 द्रष्टव्य आर० एफ० हेरडस द लाइफ आफ जे० एम० कीन्स (1951) इसमे न केवल कीन्स के सदम ही देखें अपितु केम्ब्रिज मे नैतिक विज्ञान क वातावरण का विवरण देने वाले ग्रन्थ के रूप मे भी इसकी उपादेयता है।

2 एच० जेफ्रीज की साइंटिफिक नोलेज' की भूमिका भी देखें।

दावो म दनिक उपयोग का होना सिद्ध नही करता तब तक इसे उन क्षेत्रों तक ही मीमित रहना चाहिए जिनमे तारतम्य का सिद्धा त स्पष्टत प्रयुक्त हो सकता है, और जिसके भेद निकालने स सबधित कोई धारणा कारगर लग सकती है ।

किसी तकवाक्य को समाव्यता के स्तर तक ले जाना कीं स के अनुसार उसे ज्ञान के किसी अङ्ग से जोडना हुआ। समाव्यता तकवाक्य की आत्मजन्य विशेषता स उपजी हुई बात नही है। यह तो अपन युक्तियुक्त होने की मात्रा का सकेत हमारे पास विद्यमान प्रमाणो के आधार पर देती है और इसके आधार पर ही हम किसी तकवाक्य को सही मान सकते हैं। इस तरह से अथवाक्य सदव ही सापेक्ष ही सापेक्ष है तो भी इस अथ म कि उसमे एक एसी समाव्यता है जो प्रमाण से सम्बन्धित है समाव्यता वस्तुपरक भी है–चाहे हम इस समा यता को पहचानें या नही। हम अब यह पूछ सकते हैं कि प्रमाण एव निष्कष के बीच कुछ समा य बताने का सबध किस बात स है। कीं स का उत्तर है, यह एक अद्वितीय तार्किक सबध है जिसे अ य सबध मे बदला नही जा सकता। हमे इसका बोध अन्त –प्रेरणा से होता है उसी प्रकार जिस प्रकार हमे अभिप्रेतो का बोध होता है।

तो भी अभिप्रेत क विपरीत, समाव्यता का सबध असमानो को स्वीकारता है। प्रदत्त प्रमाणो पर एक निष्कष दूसरे की अपेक्षा अधिक समाव्य हो सकता है। इस तथ्य को जानकर कुछ समा यता के सद्धान्तिक इस निष्कष पर ही पहु च गए कि समा यताए सदव ही परिमाणत तुलनीय है।। कीं स के मत म एक बार फिर उ होने बिल्कुल ही असमा य आधार पर यह निष्कष निकाला है–और वह भी ऐसे मामले म जहाँ प्याले स गेंद निकालने के वक्त सिवाय काली और सफद गेंदो के और किसी प्रकार की गद नही हैं कि विकल्प ऐकान्तिक हैं समसमा य है तथा अन्तिम सपूण (एक्जास्टिव) है। ऐसी अवस्था मे तो समा यता निश्चय ही आशिक रूप म प्राक्कलित हो सकती है। किन्तु इस मामल पर अधिक यापक रूप से विचार हो तो हम शीघ्र पता लगेगा कि क्रम तक की तुलनाओ को भी प्रश्न उठाये जान की बात नही रहती परिमाणात्मक सरचनाओ के बात तो जाने ही दीजिये। परीक्षणो की एव सामा यीकरणो की इकाइयो के बीच विद्यमान सबध पर विचार करें, और मान लें कि अमुक अ वाले मामला मे परीक्षणो की सख्या अपेक्षाकृत अधिक है, ब वाले मामल म विविध प्रकार परीक्षण हुए हैं एव स वाले मामले म सामा यीकरण का क्षेत्र और भी व्यापक है। ऐसी अवस्थाओ मे किस इकाई के आधार पर हम इन विभिन्न

प्रकरणो के समूहों को सामान्यीकरण की समावना के सम्बन्ध मे रखकर देख पाएगे तथा उनकी तुलना कर सकेंगे ?

कीन्स के समान्यता के सिद्धान्तानुसार समाव्यता एव प्रन्त साक्ष्य में गहरा सबध है। यह कहना कि एक तर्कवाक्य की रचना उचित आगमन के आधार पर हुई है इस कथन से मेल खाता है कि यह काफी समाव्य है । तो फिर यह शास्त्रीय समस्या कि आगमन का औचित्य कसे दिया जाय,' इस रूप मे परिवर्तित हो जाती है कि हम कब यह मानें कि एक सामान्यीकरण काफी समाव्य हो गया है ? कीन्स यह बताने का प्रयास करते हैं कि इस सबधी कोई भी निष्कर्ष एक सामान्य अभिधारणा पर आश्रित होता है। कीन्स ने इस अभिधारणा को 'प्रिंसिपल आव लिमिटेड वेराइटी' (सीमित विविधता का सिद्धान्त) कहा है। इसे मिल के 'यूनिफोर्मिटी आव नेचर' (प्रकृति की एकरूपता) के सिद्धान्त का सशोधित रूप माना जा सकता है। वे लिखते हैं कि हम उस सीमा तक पूर्ण मेल की प्रणाली का तथा अन्य आगमनात्मक प्रणालियों का औचित्य दे सकते हैं कि प्रस्तुत क्षेत्र के पदार्थों के (जिन पर ही हमारे सामान्यीकरण टिके हैं) स्वतन्त्र गुणों की असीम सख्या नही है। अर्थात् उनके रूप चाहे जितने विविध हो उन्हे अपरिवर्तनीय सबधो के समूह म समाहित किया जा सकता हैं जो सख्या मे ससीम है।

दूसरे शब्दों मे आगमन इसलिए उचित है क्योंकि वस्तुओं के गुण अपने साथ अन्य गुणो को भी लिए हुए होते हैं। मिल की अपेक्षा कीन्स का यह सिद्धान्त आगमन की कितनी रक्षा कर सका यह बात कीन्स के अनुयायियों को अभी भी सशय म डाले हुए है।

वैज्ञानिक चिंतन मे रुचि रखने वाले अन्य कैम्ब्रिज विचारकों म से सबसे अधिक परिचित तथा विपुल ग्रन्थों की रचना करने वाले सी० डी०[1] ब्रोड हैं।

---

1 ब्रोड का सदम देने वाल बहुत से निबध एव किताबें हैं। किन्तु उनमें से बहुत कम उनकी रचनाओं पर आधारित है। लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफर्स (1957) की शृखला म ही एक ग्रंथ उन पर भी निकलने वाला था। सेन्स परसेप्शन एण्ड मैटर (1953) म एम० लीन ने ब्रोड के प्रत्यक्षीकरण सबधी विचारों का विवेचनात्मक परीक्षण किया है। यह एक ऐसा विषय था जिस पर ब्रोड स्वय बड़ा ध्यान देते थे। ब्रोड के समय सिद्धान्त पर हुई चर्चा के लिए देखें ज० डी० मेबोट कृत 'अवर डायरेक्ट एक्सपीरिएन्स आव टाइम' (1951 माइण्ड)। सी० डब्लू० के० मण्डल द्वारा किया गया 'हाऊ स्पेसियस इज द स्पेसियस प्रेजेन्ट?' नामक निबध (माइण्ड 1954 में उत्तर)। आर० एम० ब्लेक कृत 'मिस्टर ब्रोड्स थ्योरी आव टाइम' (माइण्ड 1925)।

अपने साइण्टिफिक थोट (1923) नामक ग्रथ म वे अपनी ही प्रतिभा का अकन इस प्रकार करते हैं। यदि दाशनिक विचारधारा म कहीं भी मेरा स्थान है तो न तो वह ऐलक्जेण्डर जैसी रचनात्मक उवरता और न मूर के से तीव्र आलोचनात्मक चातुय के कारण ही है। व्हाइटहैड एव रसेल की रचनाओ म प्राप्त इन दानो की तकनीकी गणितीय विशेषताओ का समवित रूप भी मरी प्रतिभा का स्वरूप नही है। मै तो अधिक से अधिक वस्तुओ के सबध म अधिक विनम्रता तथा कम छिछलेपन से कुछ कहने की ही क्षमता रखता हू।' उनके इस आत्मकथन के साथ रसेल द्वारा उनकी कृति परसेप्शन फिजिक्स एण्ड रिअलिटी (1914) पर लिखे गए रिव्यू की कुछ बातें भी जोडी जा सकती हैं, इस पुस्तक मे अपनी कोई मौलिक नवीनताए नही हैं किन्तु इसका महत्व दूसरो के द्वारा प्रस्तुत विचारों को असाधारण न्याय निष्पक्षता एव विवेक से प्रस्तुत करने म ही है। अब इससे अधिक और क्या कहा जाय? ब्रोड दशन' के नाम से कुछ भी वणन योग्य नही। क्योकि इस आलोचना का प्रत्युत्तर देने के लिए वहा कोई खास प्रमाण नही। उनके स्पष्ट एव सतक साराशो का साराश निकालना कमलिनी को रौंद कर बिगाडना ही होगा। हमे तो केवल उनक विचारो की रूपरेखा मे ही सतुष्ट होना होगा जो उन्होने दशन की प्रकृति के विषय मे लिखे है। विशेषत यह देखने लिए कि कही हम एक सामान्य गलती तो नही कर रहे है और अशत इसलिए भी कि केम्ब्रिज दशन के सदभ म उन्हें कही रखने का यह सरलतम माग है।

ब्रोड[1] विवेचनात्मक एव अनुमानात्मक दशन मे भेद करते हैं– विवेचनात्मक दशन वह दशन है जो मूर, रसेल की विचारधारा म प्रकटा है। इसका उद्देश्य विज्ञान की तथा दनिक जीवन की मूलभूत धारणाओ का विश्लेपण करना ही है जसे कि कारण गुण अवस्था आदि। तथा फिर उन सामान्य तत्ववाक्यो को कडी जाच क लिय प्रस्तुत करना है जिन्हे वज्ञानिक एव सामान्य आदमी दनिक रूप से बोलता है, या प्रस्तुत करता है। जसे प्रत्येक घटना का एक कारण होता है' या प्रकृति एकरूपा ह।' इस तरह ब्रोड की अधिकाश रचनाए विश्लपणात्मक ही हैं–यद्यपि इनम प्रस्तुत विश्लेपण प्राय कुछ ऊपर उठकर किए गए हैं। इनके द्वारा भौतिक वस्तुआ की धारणा का इतना विश्लेपण नही किया गया ह जितना उन वस्तुओ क विश्लपण के विषय मे रखी गई

1 द्रष्टव्य सी० डी० पी० आई० मे क्रिटिकल एण्ड स्पेकुलटिव फिलोसोफी नाम से लिखा गया निबध साइण्टिफिक थोट (1923)। सम मेथडस आव स्पेकुलटिव फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1947)।

धारणा का माइन्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर (1925) का अन्तिम अध्याय जिसमे ब्राड मन एव पदार्थ के सबधो पर सत्रह प्रकार के सिद्धान्तो का उल्लेख करते हैं–उनकी इस प्रणाली की सवश्रेष्ठ उपलब्धि अथवा हठादाकृष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है।

तो भी ब्राड विचारानुमान के शत्रु नही। 'यदि हम इस ससार को समझने के लिए रूपरेखा बनाकर नही सोचते तो हमारे सम्मुख निश्चय ही एक सकुचित दृष्टिकोण रहेगा'। एक विशुद्ध विवेचनात्मक दशन शुष्क एव अनम्य (रिजिड) है। वे प्रत्ययवाद की प्रशसा करते हैं क्योकि इसके जरिए कला, विज्ञान, धम एव सामाजिक नियमो को एक ही सिद्धान्त की कसौटी पर रख कर मूत रूप दिया गया है। ब्राड केवल विचारानुमानी दशनो पर ही प्रहार करते है।

इस तरह सबसे पहले उन उन लोगो के लिए जो दशन को स्वभावत प्रेरणास्पद, रूपकात्मक तथा काव्यात्मक मानते है ब्राड सहानुभूति के विषय नहीं है। 'जो कुछ भी कथनीय है उसे किसी भी भाषा के स्पष्ट एव उपयुक्त, प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।' दूसरी बात कि वे विचारानुमानी दशन को कभी पूर्ण परीक्षण या प्रदशन की कसौटी पर खड़ा होने लायक नही मानते। प्रकृति से ही उसे काम-चलाऊ प्रवाही विज्ञान के नए अन्वेषणो के साथ के नए मार्गों का अनुसरण करने तथा सामाजिक जीवन मे हुए नए प्रयोगो के अनुकूल सिद्ध होने की क्षमता रखनी चाहिए। पहले से ही दशन के जरिए यह निर्धारण नहीं हो सकता कि मूलभूत स्थिति क्या है? इसकी विषयवस्तु इस अपने बाहर से मिलती है।

तीसरी बात कि विचारानुमानी दशन को सदव ही विवेचक दशन के आधार पर टिका रखना चाहिए–वह विचारानुमानी दार्शनिक जो हरेक की मान्यताओं का बिना विवेचना के ग्रहण कर लेगा वह गल्पसृष्टियो पर खड़ा होगा। ब्राड की स्वय की रचनाए भी विचारानुमानी दर्शन की भूमिका के रूप मे लिखी गई है। स्वय भी वे कुछ अर्शों में विचारानुमानी हैं। साइण्टिफिक थोट नामक उनके ग्रथ में प्रकृतिविज्ञान के काम मे लाई गई धारणाओ का स्पष्टीकरण किया गया है। इसके साथ ही इसे भौतिकी, ज्ञानदशन एव सामान्य बुद्धि के सिद्धान्त के जरिए व्यक्त करने का प्रयास भी माना जा सकता है। माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर मे मनोवैज्ञानिक धारणाओं का विश्लेषण है। चाहे वे मन को प्रकृति मे ही कहीं पदस्थापित करने का प्रयास करते हो। यह पुस्तक आलोचना से परे की वस्तु हो जाती है। ब्राड 'भौतिक उद्भव के सिद्धान्त के ही एक सस्करण का पक्ष लते हैं। वास्तव में हम इस विषय में आश्चय करने लग जाते हैं कि ब्राड द्वारा आरम्भ

म सुझाया गया विश्लेषण एव विचारानुमान का भेद क्या ग्रभी तक कायम रह सका है ?

ब्रोड के ग्रधिकाश पाठको को तो इस बात का गहरा धक्का लगा क्योकि उन्होंने माइण्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर म यह बात कही थी। इस तरह का व्यवहार एक केम्ब्रिज विश्लेषणवादी दार्शनिक से किसी भी भाति ग्रपेक्षित नही है। ब्रोड ने 'साइकिकल रिसर्च एण्ड फिलोसफी'[1] म ग्रपनी दार्शनिक मान्यताग्रो को काफी विस्तार मे लिखा है।

सवप्रथम उन्होने निबध रूप से उन लोगो का खण्डन किया है जिनके लिए दर्शन की साथकता यह बात निर्विरोध रूप से स्वीकारने मे निहित थी कि यूरोप एव ग्रमरीका के सममामयिक ग्रादमी के लिए जो विश्वास सामान्य रूप से प्रचलित हैं उनका विश्लेषण ही दर्शन का ध्येय है, ग्रर्थात् इस प्रकार के ग्रादमी के उन विश्वासों का विश्लेषण जिन्हें निर्विवाद रूप से उसने ग्रहण किया है ग्रौर जिन पर ग्रविश्वास करने का उसे कोई कारण नही प्रतीत होता।' एक जगह उन्होने यह भी लिखा कि ग्रब यह बात स्पष्ट हो गई है सामान्य बोध पर बहुत कम लिखा या कहा जा सकता है। विश्लेषण इस तरह एक नगण्य बौद्धिक कसरत है। इस मामले मे वे रसेल के काफी करीब तथा मूर स कोसो दूर पडते हैं। उनका प्रारम्भिक बिन्दु सामान्य बोध के बजाय विज्ञान है। यदि इन दोनो म कोई सघर्ष होता है तो सामान्य बोध को विज्ञान के लिए माग छोड देना चाहिए। इसके साथ ही वे रसेल की साहसिकता के बजाय मूर की सतकता की नकल करने के प्रयत्न म रहते हैं। एक बार उन्होने इस प्रकार पश्चात्ताप भी किया, सौ मूर सावेट सो रसल पावेट।' उनके ग्रादशभूत यही दो मान जा सकते हैं--रसेल का ज्ञान व मूर की विश्लषणात्मक क्षमता, इनका सयोग।

इस तरह सामान्य बोध का मनस्तत्वशोध के विरुद्ध स्थापित किया जाना ग्रौचित्यपूण नही है। न ही प्राग्भावी तत्वदशन सब प्रकार की भूतबाधाग्रो का समाधान कर सकता है। चाहे हम कहे कि इस समय प्राग्भावी तत्वदशन है नही, होता तो ऐसा करता। मनस्तत्वशोध को स्वय ग्रपने विषय मे कहने के लिए पृथक रूप से छोड दिया जाना चाहिए। हाँ इसे विवेचनात्मक दशन से निश्चय ही सयमित किया जाना चाहिए। यह ब्रोड का मूलभूत दृष्टिकोण है।

सभी तत्ववादियो म से मेक्टेगट की ब्रोड सर्वाधिक प्रशसा करते हैं। क्योकि

---

1 फिलोसोफी (1949) मे प्रथम प्रकाशित रिलिजन, फिलोसोफी एण्ड साइकिकल रिसर्च 1953) मे पुन प्रकाशित। मनुस्तात्त्विक शोध कर इसमे प्रचुर सामग्री दखें। फ्लू कृत न्यू ग्रप्रोच टू साइकिकल रिसर्च तथा फिलोसोफी (1949) एव (पी० ए० एस० एस० 1950 म भी समभी है।

मैक्टेगट ने उस बात का प्रयत्न किया जो असमव है, उन्होने निगमनात्मक तत्वदशन की रचना करनी चाही। ब्रोड ने अपने जीवन के अनेक वष एक्जामिनेशन आव मैक्टेगट स फिलोसोफी (1923-8) क तीन भागो क लिखने म बिताए। यह पुस्तक जो साथ ही एक टिप्पणी भी है-ब्राड की दशन-सम्ब धी रचनाम्रो का अच्छा उदाहरण दती है। मेक्टेगट म ब्रोड को सतोष देने वाली दो वस्तुए थी उनकी शीतलता एव स्पष्टता। कोई भी दाशनिक इतना कम उग्र नही रहा होगा और न ही किसी ने स्पष्ट होने का इतना जी-तोड प्रयास किया होगा। ब्रोड के अनुसार एक बार निश्चित प्रमेयो का सरल भाषा मे निर्धारण हो जाय एव उनम से तक पूण ढग से निश्चित निष्कष निकाल लिए जाए तो फिर उनका अनुसरण करके उन्हें स्वीकार करने या फिर अस्वीकार करन म हम काई कठिनाई नही पायगे। ब्रोड ने मेक्टेगट को इस व्यापक परीक्षण म सही पाया था। यही इस बात का प्रमाण है कि ब्रोड के विचारानुमान के प्रति उनकी सहानुभूति थी इस सहानुभूति का विशेष रूप भी था, इसका भी यह प्रमाण है।

साई टिफिक थॉट के आमुख म ब्रोड ने लिखा कि 'मैं पृथक गभार दृष्टि स मेरे उन मित्रो द्वारा दशन क क्षेत्र मे की गई उछलकूद को देखता रहू गा क्योकि य सब हर विटजनस्टीन की बासुरी क जादुई स्वरो क समोहन म आकर इधर उधर नाच रहे हैं।' ये सब 1925 म उ होन लिखा। विटजनस्टीन कत ट्रैक्टेटस लोजिको फिलोसोफिकस का अग्रेजी सस्करण [1] इससे तीन वष पूव ही निकला था। जमन भाषा मे इसका प्रकाशन 1921 म हो गया था। इस तरह ब्रोड द्वारा ट्रैक्टेटस की यह टिप्पणी युवा कम्ब्रिज दाशनिको पर पडे विटजनस्टीन के तात्कालिक प्रभाव का ही प्रमाण है। क्योंकि जो कुछ भी हो, वह 19 वी शती के उत्तराद्ध तक इ ग्लण्ड मे व्यापक रूप स पढ़ा नही जा सका था और आज भी उसे विस्तृत विवेचन एव टिप्पणी का आधार बहुत कम ही बनाया गया है।

वास्तव मे यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे साधारणत जरूरत स ज्यादा हिचकिचाहट की स्थिति म ही वर्णित किया जा सकता है। [2] अशत इसे विटजन-

---

1 इसका अनुवाद असाधारण रूप स खराब है। मैंने जो उद्धरण दिये हैं उनमे परिवतन सशोधन करना पडा है।

2 यहा लिखी जा रही बात को अ तरिम रिपोट माननी चाहिये। विटजनस्टीन की महत्वपूण हस्तलिपिया जिनके जरिए ट्रैक्टेटस पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है अभी भी प्रकाशन के लिए तयार की जा रही हैं। इनमे ट्रैक्टेटस से पूव की एक नोटबुक भी सम्मिलित है। ट्रैक्टेटस पर लम्बी टिप्पणिया भी अभी निर्माणाधीन हैं। पूण व्याख्यात्मक टिप्पणी जी० ई० एन० कौलम्बो कृत इतालव अनुवाद मे प्रकाशित है। देखें जी० टी० गेस्किग कत एण्डरसन एण्ड द ट्रैक्टेटस लोजिको फिलोसाफिकस, एन ऐसे इन फिलोसोफिकल ट्रासलेशन्स (एडेपी 1949) जे० आर० वीयन-

में सुझाया गया विश्लेषण एवं विचारानुमान का भेद क्या अभी तक कायम रह सका है?

ब्रोड के अधिकांश पाठकों को तो इस बात का गहरा धक्का लगा क्योंकि उन्होंने माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर में यह बात कही थी। इस तरह का व्यवहार एक केम्ब्रिज विश्लेषणवादी दार्शनिक से किसी भी भांति अपेक्षित नहीं है। ब्रोड ने 'साइकिकल रिसर्च एण्ड फिलोसफी'[1] में अपनी दार्शनिक मान्यताओं को काफी विस्तार में लिखा है।

सर्वप्रथम उन्होंने निबंध रूप से उन लोगों का खण्डन किया है जिनके लिए दर्शन की सार्थकता यह बात निर्विरोध रूप से स्वीकारने में निहित थी कि यूरोप एवं अमरीका के समसामयिक आदमी के लिए जो विश्वास सामान्य रूप से प्रचलित हैं उनका विश्लेषण ही दर्शन का ध्येय है, अर्थात् इस प्रकार के आदमी के उन विश्वासों का विश्लेषण जिन्हें निर्विवाद रूप से उसने ग्रहण किया है और जिन पर अविश्वास करने का उसे कोई कारण नहीं प्रतीत होता।' एक जगह उन्होंने यह भी लिखा कि अब यह बात स्पष्ट हो गई है सामान्य बोध पर बहुत कम लिखा या कहा जा सकता है। विश्लेषण इस तरह एक नगण्य बौद्धिक कसरत है। इस मामले में वे रसेल के काफी करीब तथा मूर से कोसों दूर पड़ते हैं। उनका प्रारम्भिक बिन्दु सामान्य बोध के बजाय विज्ञान है। यदि इन दोनों में कोई संघर्ष होता है तो सामान्य बोध को विज्ञान के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए। इसके साथ ही वे रसेल की साहसिकता के बजाय मूर की सतर्कता की नकल करने के प्रयत्न में रहते हैं। एक बार उन्होंने इस प्रकार पश्चात्ताप भी किया, सी मूर सावेट सी रसेल पावेट।' उनके आदर्शभूत यही दो माने जा सकते हैं—रसेल का ज्ञान व मूर की विश्लेषणात्मक क्षमता इनका संयोग।

इस तरह सामान्य बोध का मनस्तत्त्वशोध के विरुद्ध स्थापित किया जाना औचित्यपूर्ण नहीं है। न ही प्राग्भावी तत्त्वदर्शन सब प्रकार की भूतबाधाओं का समाधान कर सकता है। चाहे हम कहें कि इस समय प्राग्भावी तत्त्वदर्शन है नहीं, होता तो ऐसा करता। मनस्तत्त्वशोध को स्वयं अपने विषय में कहने के लिए पृथक रूप से छोड़ दिया जाना चाहिए। हाँ इसे विवेचनात्मक दर्शन से निश्चय ही संयमित किया जाना चाहिए। यह ब्रोड का मूलभूत दृष्टिकोण है।

सभी तत्त्ववादियों में से मेक्टेगर्ट की ब्रोड सर्वाधिक प्रशंसा करते हैं। क्योंकि

---

1 फिलोसोफी (1949) में प्रथम प्रकाशित रिलिजन, फिलोसोफी एण्ड साइकिकल रिसर्च 1953) में पुनः प्रकाशित। मनुस्तात्त्विक शोध कर इसमें प्रचुर सामग्री देखें। फ्लू कृत न्यू अप्रोच टू साइकिकल रिसर्च तथा फिलोसोफी (1949) एवं (पी० ए० एस० एस० 1950 में भी समझी है।

मैक्टेगट ने उस बात का प्रयत्न किया जो असमव है, उन्होने निगमनात्मक तत्वदशन की रचना करनी चाही। ब्रोड ने अपने जीवन के अनेक वर्ष एक्जामिनेशन आव मैक्टेगट स फिलोसोफी (1923-8) के तीन भागों के लिखने म बिताए। यह पुस्तक जो साथ ही एक टिप्पणी भी है-ब्रोड की दशन सम्बन्धी रचनाओं का अच्छा उदाहरण देती है। मेक्टेगट म ब्रोड को सताप देने वाली दो वस्तुए थी उनकी शातलता एव स्पष्टता। कोई भी दार्शनिक इतना कम उग्र नहीं रहा होगा और न ही किसी ने स्पष्ट होने का इतना जो-तोड प्रयास किया होगा। ब्रोड के अनुसार एक बार निश्चित प्रमेयों को सरल भाषा मे निर्धारण हो जाय एव उनम से तक पूर्ण ढग स निश्चित निष्कष निकाल लिए जाए तो फिर उनका अनुसरण करके उन्हें स्वीकार करने या फिर अस्वीकार करने म हम कोई कठिनाई नही आयगी। ब्रोड ने मेक्टेगट को इस व्यापक परीक्षण म सही पाया था। यही इस बात का प्रमाण है कि ब्रोड के विचारानुमान के प्रति उनकी सहानुभूति थी इस सहानुभूति का विशेष रूप भी था, इसका भी यह प्रमाण है।

साई टिफिक थॉट के आमुख म ब्रोड ने लिखा कि मैं पतृक गमार दृष्टि स मेरे उन मित्रो द्वारा दशन क क्षेत्र में की गई उछलकूद को देखता रहूगा क्योंकि य सब हर विटजनस्टीन की बासुरी क जादुई स्वरो के सम्मोहन म आकर इधर उधर नाच रहे हैं।' ये सब 1925 म उ होने लिखा। विटजनस्टीन क्त ट्रक्टेटस लोजिको फिलोसोफिकल का अग्रेजी सस्करण [1] इससे तीन वष पूव ही निकला था। जमन भाषा म इसका प्रकाशन 1921 म हो गया था। इस तरह ब्रोड द्वारा ट्रैक्टेटस की यह टिप्पणी युवा केम्ब्रिज दार्शनिको पर पडे विटजनस्टीन के तात्कालिक प्रभाव का ही प्रमाण है। क्योंकि जो कुछ भी हो, वह 19 वी शती क उत्तराद्ध तक इग्लण्ड मे व्यापक रूप से पढा नही जा सका था और आज भी उसे विस्तृत विवेचन एव टिप्पणी का आधार बहुत कम ही बनाया गया है।

वास्तव म यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे साधारणत जरूरत से ज्यादा हिचकिचाहट की स्थिति मे ही वर्णित किया जा सकता है।[2] अशत इसे विटजन-

---

1 इसका अनुवाद असाधारण रूप स खराब है। मैंने जो उद्धरण दिये हैं उनमे परिवतन सशोधन करना पडा है।

2 यहा लिखी जा रही बात को अन्तरिम रिपोर्ट माननी चाहिये। विटजनस्टीन की महत्वपूर्ण हस्तलिपिया जिनके जरिए ट्रक्टेटस पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है अभी भी प्रकाशन के लिए तयार की जा रही हैं। इनम ट्रक्टेटस से पूव की एक नोटबुक भी सम्मिलित है। ट्रक्टेटस पर लम्बी टिप्पणिया भी अभी निर्माणाधीन हैं। पूर्ण व्याख्यात्मक टिप्पणी जी० ई० एन० कौलम्बो कृत इतालव अनुवाद मे प्रकाशित है। देखें जी० टी० गेस्किंग कत एण्डरसन एण्ड द ट्रक्टेटस लौजिको फिलोसो फिकस, एन ऐसे इन फिलोसोफिकल ट्रासलेशन्स (एजेपी 1949) जे० आर० वीयन-

स्टीन द्वारा अपने शिष्यों में दर्शन के प्रति उत्साह पैदा करने का परिणाम भी कहा जा सकता है। आज, आज क्या कभी भी, ऐसा कोई व्यक्ति न रहा होगा जो ट्रैक्टेटस के सभी प्रमुख सिद्धांतों का कायल हो। स्वयं विटजनस्टीन ने इसकी आलोचना की है। अभी भी बहुत से क्षेत्रों में इस बात पर विश्वास करने में लोगों का हिचक है कि विटजनस्टीन ने कोई ऐसी गलती की है जो अन्य लोगों जैसी गलती है। विटजनस्टीन ने यदि गलती की है तो वह गलती भी कोई विवेकपूर्ण गलती ही रही होगी और कम से कम अपने समसामयिकों की गलतियों की बजाय उसमें कुछ गूढ़ता रही होगी। एक बार फिर शिष्यत्व संबंधी नाजुक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। यह प्रश्न कि विटजनस्टीन का आशय क्या था? इस दूसरे प्रश्न से जुड़ा है कि कौन उनकी रचनाओं को सही ढंग से समझ सका है और उनके कार्य को आगे ले जा सका है? इसके दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो विटजनस्टीन को धूर्त कहकर अमान्य कर देते हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि ट्रैक्टेटस के किसी भी विवरण को सार्वभौम स्वीकृति नहीं मिल सकती।

उन बाह्य कठिनाइयों के अलावा दर्शन के इतिहासकार को सापेक्षतया भटकने के खतरे से बचने के लिए अपने वर्णन में संयम भी रखना पड़ेगा—क्योंकि ट्रैक्टेटस स्वयं में ही एक पर्याप्त उत्तेजक रचनाओं में से है। इस में विचित्र रूप से सूक्ष्म प्रश्नों पर विमर्श किया गया है जैसे सार्थकता तर्कशास्त्र की प्रकृति तथ्य एवं तर्कवाक्य दर्शन का कार्य, एक तरह से तो यह कृति रोमाण्टिक एवं आकारी दर्शन रूपों को बिना झिझक के मिला देती है।

बर्ग क्त एन एग्जामिनेशन आव लोजिकल पोजिटिविज्म (1936), एन० ब्लेक लैंग्वेज एण्ड फिलोसोफी (1949), माइण्ड 1923 में एफ० आर० रेमसे द्वारा दिया गया विवेचनात्मक टिप्पण जो 1931 में फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स के रूप में प्रकाशित हुआ। ट्रैक्टेटस के अंग्रेजी संस्करण में लिखी रसेल की भूमिका। जे ओ अमसन् फिलोसोफीकल एनालिसिस (1956)। विटजनस्टीन पर सामान्यत स्मरण लेखों देखें जो गस्किंग एवं जेकसन द्वारा लिखे गए हैं (जे० पी० 1951)। जी० राइल (अनालेसिस 1951) जे० विजडम (माइण्ड 1952) बी० रसेल (माइण्ड 1951) के ब्रिटन (केम्ब्रिज जर्नल 1954), जी० वोन० राइट (पी० आर० 1955)। मैंने एक अप्रकाशित शोधलेख का भी जो डी श्वेडर द्वारा लिखित हैं तथा ब्रोडल लाइब्रेरी, आक्सफोर्ड में मिला हैं, उपयोग किया हैं। मैं आक्सफोर्ड में ट्रैक्टेटस पर प्रस्तुत हुई चर्चा से भी काफी प्रभावित हुआ हूं जो कुमारी एन्सकोम्ब मिस्टर डेविड पीयर्स एवं प्रो० गिलबर्ट राइल के बीच हुई थी। उस मैं यहां इसलिए प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं कि उसे सभी अपनी स्वीकृति दे दें। इसके बावजूद भी यह लिखने में मुझे संकोच नहीं है कि उसे कोई भी स्वीकृति नहीं देगा।

इसका आमुख एक साथ इन दो धाराओं का परिचय देता है। इसका पहला वाक्य है, "यह किताब केवल उन्हीं लोगों द्वारा समझी जायगी जिन्होंने पहले से ही उन विचारों पर विचार कर लिया है जो इसमें व्यक्त हैं या फिर उनके समानान्तर विचारों से जिनका परिचय हो।" यह बात रोमेण्टिसिज्म की उत्कृष्ट परम्परा के अनुसरण में ही लिखी गई लगती है। कम से कम इस रूप में कि केवल चुनी हुई आत्माएं जिन पर कृपादृष्टि हो चुकी है वे ही वास्तव में इसे समझ पाएं। तो भी विटजनस्टीन हमें यह बताते हैं कि ट्रेक्टेटस का सारांश यह है कि जो कुछ कथनीय है उसे स्पष्टतः कहा जा सकता है और जहां कोई व्यक्ति बोलने का अधिकारी न हो वहां उसे चुप रहना चाहिए। यहां ट्रेक्टेटस की केन्द्रीय विरोधाभासपूर्ण स्थिति का आभास मिलने लगता है क्योंकि इसमें वह तो कहा गया है जो अकथनीय है और जो बात स्पष्टता से कही जानी चाहिये वह रूपकों एवं कूटोक्तियों के जरिये दुरूह बना कर प्रस्तुत की गई है। ट्रेक्टेटस का रूप भी इस विरोधाभासता की पुष्टि करता है। प्रत्येक पैरा एक सुथरी प्रणाली के साथ गणनांकित किया गया है। मानो अब हम एक ऐसे दार्शनिक की बात पढ़ रहे हैं जो प्रत्येक सम्भव तरीके से हमारे समझने में सहायता देना चाहता हो। तो भी इस तरह से अंकित परे एक प्रहेलिकात्मक शैली में रचे गए हैं। और उनकी वाक्यशृंखला इतनी तनावपूर्ण है कि कदाचित् ही कोई परेग्राफ व्याख्या-सम्बंधी कोई गंभीर कठिनाई प्रस्तुत करने से बाज आता हो।

इस तरह यदि मैं ट्रेक्टेटस की व्याख्या करने के योग्य अपने को समझूं तो कहूंगा कि यह कार्य सूक्ष्म दृष्टि एवं दीर्घ स्थान की अपेक्षा रखेगा। सीमाओं को देखते हुए मैं जो कुछ भी करने की आशा कर सकता हूं वह है उन बिन्दुओं का विचाराय चुनाव करना, जिनके कारण ट्रेक्टेटस का प्रभाव जम सका है।

सबसे पहले तो ट्रेक्टेटस की बौद्धिक पृष्ठभूमि के विषय में विचार होना चाहिए। विटजनस्टीन का प्रशिक्षण दार्शनिक के रूप में न होकर एक इंजीनियर के रूप में हुआ था। इसलिए कोई उनके विषय में यह नहीं मान सकता कि उन्हें मार्गीय दर्शन का साधारण ज्ञान भी था। वह अन्य सभी नौसिखियों की भांति शोपेनहोवर में रुचि रखने लगे थे। यदि कहीं कहीं उनकी रचनाओं में काण्ट का सा पुट मिल जाता है तो उसका यही कारण है। उन्हें मैश एवं हर्ज के विषय में भी कुछ मालूम था और शायद उन्होंने मीनोंग एवं हुसर्ल के विषय में लोगों से केवल चर्चाएं ही सुनी थीं। विश्वास के साथ एक मात्र यही बात कही जा सकती है कि ट्रेक्टेटस लिखते समय विटजनस्टीन केवल फ्रेगे एवं रसेल की कृतियों में दखी या पढ़ी या उनके साथ चर्चा की गई विचार धारा के आधार पर अपना पथ अलग से खोजना चाहते थे। रसेल के तर्कसम्मत अणुवाद के दर्शन से वे कितना प्रभावित हुए और कितना उसमें उन्होंने योगदान दिया यह बात कहना मुश्किल है। वे कभी भी अपने किसी पूर्ववर्ती

की चालू सदर्भ देने के अतिरिक्त और कोई चर्चा नही करते। कभी कभी फ्रेगे एव रसेल के विषय मे भी व जो कहते हैं वह बडा पेचीदा होता है। सक्षेप मे इस तरह से उन पर हुए प्रभावों पर निश्चय से कहना निरथक ही होगा।

अब ट्रैक्टेटस पर सीधी चर्चा ही करें। इसका समारम्भ सजील उद्घोषों से होता है। यह ससार ही सब कुछ है। बस मामला इतना ही है। ससार तथ्यो की, न कि वस्तुओ की पूर्णता से सगुफित है।' ता भी स्पष्टत यह वास्तविक प्रारम्भ नहीं हुआ है। विटजनस्टीन ने ट्रैक्टेटस के परो को बडे ही कलात्मक, प्रभावोत्पादक, एव क्रमवार तरीके से सयोजित किया है। यदि हम यह समझने की आशा करे कि जो कुछ वह कहने जा रहे हैं वह क्या है तो हम उसी शृंखला म आगे पीछे घूमना भटकना पडेगा। वास्तव मे उन्होने साथकता के सिद्धान्त से ही इस पुस्तक का प्रारभ किया है, न कि अत साक्ष्य से प्राप्त तात्विकी से।

विटजनस्टीन की महत्वपूर्ण धारणा है कि प्रत्येक तकवाक्य का अथ स्पष्ट एव निश्चित होता हैं। और इसके साथ यह मान्यता भी कि यह अथ तकवाक्य के ससार से स बधित होने के कारण ही है। दनिक जीवन के तकवाक्य म भी जटिल अभिव्यक्तिया होती हैं और ये रसेल की धारणा के अनुरूप तक सम्मत कोई विशिष्ट नाम नही हैं। इन जटिल अभिव्यक्तियों को विवरण के जरिए बदला जा सकता है। उदाहरणाथ यदि हम कोई यह पूछे कि सभी लखपती जिद्दी होते हैं का क्या अथ है, तो हम इसका उत्तर लखपती एव जिद्दी का विवरण प्रस्तुत करके दे सकते हैं। इसका विवरण हम या दे सकते हैं कि 'वे सभी व्यक्ति जिनके पास एक लाख पौण्ड से ज्यादा राशि है उन्हे समझाया जा सकना कठिन है।' किन्तु इस तरह का विवरण देने से हमने अथ को स्पष्ट एव निश्चित नही बनाया। हमे तब अपने ही इस विवरण की एवज में कुछ दूसरा विवरण जो इससे कम या ज्यादा जटिल हो देने के लिए कहा जा सकता है। तकवाक्य के सम्बन्ध म एक निश्चित अथ पर पहुचने के लिए अर्थात् तकवाक्य का एक ही— और केवल एक ही परिपूर्ण विश्लेषण करने के लिए विटजनस्टीन के अनुसार हम जटिल चिन्हो को तार्किक दृष्टि से विशिष्ट नाम देकर परिभाषित करना चाहिये। ये लिखते हैं कि यह तो स्पष्ट है कि तकवाक्यो का विश्लेषण करते समय हमे प्राथमिक तकवाक्यो का सहारा लेना चाहिए जो अपने तात्कालिक सयोग द्वारा घटित नामो पर आश्रित रहते हैं। इस बिन्दु पर आकर अब हम यह नही पूछ सकते कि अथ अब भी और स्पष्ट किया जाय। क्योंकि नाम की व्याख्या-परिभाषा नही हो सकती। न हम यह आग्रह उस तकविषय के लिए ही करना चाहिये जिसम नामो के अतिरिक्त और कुछ नही होता और जो तत्काल ही हमे ससार से जोड देते हैं। इसका अथ सीधा हमे समझ मे आ जाता है— क्यो कि इसमे दिये गए सदभ मौतिक इयत्ताओं के सरल मिश्रण से बनते हैं।

तब जिसे विटजनस्टीन सरल इयत्ताए मानते हैं, वे पदार्थों के रूप म होनी चाहिए। क्योंकि उनका कोई नाम तो है और तकवाक्यो के निश्चित अथ क लिये नामो का होना आवश्यक है। विटजनस्टीन इन सरल इयत्ताओ का नाम बताने म रुचिशील नही थे। आशय उनका यही है कि ये सरलताए आवश्यक रहनी चाहिए ये सब क्या हैं यह बात प्राथमिक महत्व की नही है। उनका कहना है ' कि यदि यह जगत् अनन्त रूप से जटिल हों ऐसा कि, जिसम प्रत्यक तथ्य मे अनन्त सख्या म आणविक तथ्य निहित हो एव प्रत्यक आणविक तथ्य भी अन त सख्या के पदार्थों स निर्मित हो तो भी पदाथ एव आणविक तथ्य अवश्य होने चाहिए। यह बात ह्यूम क बजाय उन्ह लेबनीज के अधिक निकट ले आती है।

नामो का किसी तकवाक्य के सदभ के बिना कोई अथ नही होता। उसी भाति हम किसी पदाथ की कल्पना नही कर सकते सिवा उस रूप मे जिसमे उसका सबध किसी अन्य विविध पदार्थों से हो। पदार्थों के बीच ऐसे ही सभव सबधो को आणविक तथ्य कहा जा सकता है। यह बात बडी अजीब लगती है कि सभव सबधो को तथ्य मान लिया जाय। साधारणत हम तथ्य के विषय मे उसकी वास्त विकता को लकर ही सोच सकते हैं, सभावना को लेकर नही। तो भी 'सैचवरोल जस जमन शब्द का कोई अन्य अनुवाद किया जाना कठिन ही है। यह विचित्रता उस समय थोडी कम होती लगेगी जब हम आणविक तथ्य के विषय मे यह सोचें कि इसी के कारण तकवाक्य सही और गलत हो सकता है।

एक तकवाक्य सही है यदि कुछ आणविक तथ्य उसमे विद्यमान हैं। गलत है यदि वे विद्यमान नही हैं। तब आणविक तथ्य कुछ इस प्रकार के होने चाहिए जिससे यह प्रश्न कि वे अस्तित्वशील हैं अथवा नही, (प्राप्त होते हैं अथवा नही) उठाया जाता रह सके। आणविक तथ्य उपलब्ध सभावनाए हैं यदि कोई तकवाक्य जो उन्हे चित्रित करता है, वह सही हो। यदि वह गलत होगा तो अनुपलब्ध सभावनाए होगी। किन्तु सभावनाओं के रूप मे उनका अस्तित्व इस प्रश्न से प्रभा वित नही रहता है कि उपलब्ध है अथवा नही। अर्थात् इस प्रश्न से कि वे ठोस रूप मे सत्य हैं भी अथवा नही। विटजनस्टीन के मतानुसार तकशास्त्र का अध्ययन करने म हमे तथ्यों की ठोसता से दरअसल कोई वास्ता नही होता, सारी सभावनाए ही इसके तथ्य हैं। उनके विचार म अपरिहाय रूप से यह सब ऐसा ही है, क्योकि गलत तकवाक्य जो ऐसी सभावनाओ के विषय म कहते हैं जो उपलब्ध व ठोस भी हैं तकशास्त्र द्वारा अनुशासित जगत के भी उतने ही अश हैं जितने वे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर दिये जाने के काबिल भी हैं सही तकवाक्यो के रूप म कुछ अभिप्राय निहित रखते हैं अथवा नही।

तब फिर तर्कवाक्य तथ्यों से किस तरह संयुक्त हैं ? विटजनस्टीन का उत्तर है कि वे तथ्यों के चित्र हैं। यह दृष्टिकोण उनके मस्तिष्क में कैसे बना इसके विषय में अनेक किस्से हैं। किन्तु इन किस्सों में एक अर्थ में सहमति भी है–कि वे एक ऐसे मोडल से काफी प्रभावित थे जिसे कोई दुर्घटना व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया था–जैसे कि मोटर दुर्घटना। अब जैसे ही उन्होंने छोटी सी चित्रित मोटर सड़क एवं आसपास की बाड़ी देखी तभी उन्होंने समझ लिया कि तर्कवाक्य प्रकट हो गया।

इस तरह, विटजनस्टीन ने समस्या का रूप इस प्रकार देखा, समस्या है कि तर्कवाक्य का विवरण देने के लिए सर्वप्रथम इस बात की स्वीकृति देना है कि हमें गलत एवं दोनों प्रकार के तर्कवाक्यों की रचना करने की स्वतन्त्रता है, और दूसरी बात यह कि तर्कवाक्य का मूल संसार से रहे उसके सम्बन्ध के कारण ही बनता है। यह 'चित्र रूपक' दोनों ही दृष्टियों से संतोषजनक लगता है। स्पष्ट ही चित्रांकित मोटर कार के जरिए जो कुछ वास्तव में घटित हुआ उसका गलत चित्र दिया जा सकता है। स्पष्टतः ही मोटर कार बनाते समय हमारे द्वारा प्रयुक्त की गई प्रक्रिया व दृश्य ही विश्व के विषय में कुछ कहना व्यक्त करेंगे।

निश्चय ही मोटरकार अपने आपमें तर्कवाक्य नहीं हैं। हम उसका प्रयोग खेल में तथा दुर्घटना के चित्र दोनों में कर सकते हैं। केवल उन्हें एक विशेष तरीके से रखने से ही वे जो कुछ घटित हुआ है उसे, भली भाँति सम्प्रेषित कर देंगे। इस प्रकार रख जाने से ही वे तर्कवाक्यीय चिन्ह होते हैं। तर्कवाक्य संसार पर प्रक्षेपित किया गया एक ऐसा ही चिन्ह है अर्थात् उसी के जरिए यह कहा या न कहा जा सकता है कि मामला यों हैं। किन्तु अब मामले का (एक सामान्य मामले का) क्या होगा जब तर्कवाक्यीय चिन्ह केवल शब्दों से बना हो ? यद्यपि हमारी साधारण भाषा अब अधिक प्रतीकात्मक नहीं हैं उनकी दृष्टि में इसमें चित्रलिप्यात्मक प्रतीक के जो मूल स्वर हैं उन्हें अपने में पा लिया है। जिस वस्तु का प्रतिनिधित्व हम करना चाहते हैं उसके सम्प्रेषण की क्षमता इसमें हैं। यद्यपि हमने वास्तव में यह कभी नहीं देखा है कि दरअसल भाषा किस का प्रतिनिधित्व कर रही है और इस अवस्था में जहां तर्कवाक्य गलत है तो हम संभवतः यह भी नहीं देख सके हैं कि वह किसे सम्प्रेषित कर रही है। सम्प्रेषण की क्षमता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि तर्कवाक्य की ठीक वही बनावट है या नहीं जैसी उसकी जिसका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। एक नाम एक वस्तु के लिए है दूसरा दूसरी के लिए और उन्हें जोड़ दिया जाता है, इस तरह सम्पूर्ण मिलकर एक चित्रपट की भांति आणविक तथ्यों का प्रस्तुतीकरण कर देता है। एक तर्कवाक्य में उतनी ही वस्तुएं उपलब्ध होनी चाहिए जितनी वस्तुस्थिति में हैं और जिनका भाषा में

प्रतिनिधित्व हो रहा है।[1]

एक आपत्ति इस संबध मे जो हम दिखाई देती है वह यह है कि यह सिद्धा त अधिक से अधिक प्रारम्भिक छोटे वाले तर्कवाक्यो पर लागू हो सकता है। सामान्य तर्कवाक्य आणविक तथ्यो का चित्रण नही करत। उनम तो ऐसी अभिव्यक्तिया होती ह जसे 'सब' 'कुछ' या' एव नही'। आणविक तथ्यो में इनका कोई अनुरूप नही मिलता। इन तथ्यो का आणविक कहने का विटजनस्टीन का आशय कदाचित् यह हो कि वे तार्किक दृष्टि से स्वत त्र है–एक आणविक तथ्य के अस्तित्व से किसी दूसरे आणविक तथ्य के अस्तित्व या अनस्तित्व की किसी प्रकार की सूचना नही मिलती। इस तरह नकारात्मक आणविक तथ्य को हम मान ही नही सकते। सावभौम आणविक तथ्यो के बारे में तो यह कतई समव नही ह हो, पर ऐसे भी तथ्य इस प्रकार नही बनते क्योंकि क्ष य नहीं है' का अस्तित्व तार्किक रूप से क्ष य है के अनस्तित्व' से मुक्त नही है।

विटनजनस्टीन ने इसीलिए लिखा कि मेरा मूलभूत विचार यही है कि तार्किक स्थिराको म प्रतिनिधित्व की क्षमता नही होती। यद्यपि ये सब तर्कवाक्यों मे ही प्रकटते हैं तो भी तार्किक स्थिराक इस प्रकार चित्र के अ श नही बनते। वे काफी विस्तार से इस बात पर चर्चा करते ह कि नही' (नाट) का क्या महत्व ह। उनके विचार म यह तो स्पष्ट ही ह कि नही' किसी सबध का नाम नही ह–उसी प्रकार जसे दाए' या बाए, सबधा के नाम नही ह। वास्तव मे 'नही' नाम हो ही नही सकता। यदि ऐसा होता तो 'नहीं-नहीं–प (या प भिन्न नहीं) प से बिल्कुल भिन्न कथन होता और प' एक अलग ही नाम होता और इस कथन के दो नही' को 'प' बिल्कुल व्यक्त नही कर पाता। वे कहते है कि इससे यह अजीबोगरीब स्थिति भी पदा हो जाती कि प नाम के एकाकी तथ्य से दूसरे अनन्त तथ्य या नाम निकाले जा सकते थे प के साथ 'नही' नही का अर्थात दो नकारो का प्रयोग करते चले जाकर–तो यह सिद्ध हुआ कि 'नही कोई अभिधान नही ह। यह किसी का अपने आपम चित्रण नही करता जिस प्रकार एक तार्किक स्थिराक किसी का सकेतन करता ह–इस उदाहरण म वह यह सकेत करता है कि प पर एक क्रिया की गई है–जो नकारने की क्रिया' ह।

तार्किक स्थिराको का इस तरह तर्कवाक्य म स्थान निर्धारित कर

---

1 इस सन्ब ध म हुए विचार विमर्श के लिए तथा विटजनस्टीन की व्याख्या के समय उत्पन्न हो जाने वाली कठिनाइयो के उदाहरणार्थ देखें, ई० डज कृत 'द पिक्चर थ्यारी आव मीनिंग' (माइण्ड 1953) और उसके जवाब के लिए देखें, ई० ईवान्स कृत ट्रेक्टेटस' 3–1432 (माइण्ड 1955)

विटजनस्टीन इस निष्कर्ष की ओर पहुचे हैं कि प्रत्येक अप्राथमिक तर्कवाक्य आरम्भिक तर्कवाक्यो के सत्य फलन हैं। सम रिमार्क्स ग्रान लोजिकल फोर्म' (पी० ए० एस० एस० (1929) नामक अपने शोध निबन्ध[1] मे वे वस्तुस्थिति को इस तरह प्रस्तुत करते हैं– यदि हम प्रस्तुत तर्कवाक्य का विश्लेषण करने का प्रयत्न करे तो हमे सामान्य रूप से यह मालूम होगा कि वे या तो तार्किक योग है या कोई उपकरण, या फिर आसान तर्कवाक्यो के सत्य फलन हैं। यदि हम अपने विश्लेषण को ओर तक ले जाए तो इसे उस बिन्दु का स्पर्श करना होगा जहा वह ऐसे तर्कवाक्यीय आकारो तक पहुच जाएगा जो स्वय सरलतम तर्कवाक्यीय आकारो से नही बने हैं। हम तब पदो के बीच रहे अन्तरिम सबधो तक भी पहुच जाएगे, अर्थात् उन तात्कालिक सवेगो तक जिन्हे तर्कवाक्यीय आधार को नष्ट किए बिना विभक्त किया जाना सभव नही हैं। रसेल की ही भाति इन अन्तरिम सयोगो के सूचक तर्कवाक्यों को मे आणविक तर्कवाक्य कहता हू। य प्रत्येक तर्कवाक्य के दाने हैं इनमे तत्व निहित हैं और शेष सभी इसी तत्व का विकास मात्र है।

मान लो हम प या फ नामक तर्कवाक्य पर विचार करते हैं। तब या यह अन्तिम सयोग का प्रतिनिधित्व नही करता। जसा कि इस तथ्य म प्रकटता है कि प या फ का अर्थ पूर्णत किया जा सकता है यदि उसके सत्याधारो का सदर्भ हम द द। इस प्रक्रिया म या' का कोई स्थान नही है। यह भी सत्य होगा यदि प तथा फ दोनो सत्य हैं। यह तो उस समय भी सत्य रहेगा जब प सही है और फ गलत

---

1 इस शोध लेख से विटजनस्टीन इतने असतुष्ट थे जो ट्रैक्टेटस के बाद का उनका एक मात्र प्रकाशन था कि उसके पढे जाने का समय आया तो उन्होने उस पर विचार विमर्श करने या उसे पढे जाने से भी इन्कार कर दिया। किन्तु तब भी मुझे ऐसा नही लगता है कि मैंने उस निबध के जो वाक्याश यहा दिए है उन से भी वे असतुष्ट थे।

2 विटजनस्टीन एक एक अमरीकी तर्कशास्त्री एच० एम० शेफर की रचना का उपयोग करते हैं। शेफर ने ए सेट आव फाइव इण्डिपेण्डेण्ट पोस्चलेटस फोर बूलियन अलजबरा (ट्रास अमरिकन मथ सोसाइटी 1913) यह सिद्ध किया था कि एक तर्कवाक्य के सभी सत्य–फलनो को एक बार के नकार स ही रचा जा सकता है (न-प एव न–फ)। शेफर न बहुत कम प्रकाशित करवाया कि तु वे एक प्रभाव शाली अध्यापक थे। दखें स्ट्रक्चर मेथड एण्ड मीनिंग ऐसेज इन आनर आफ हेनरी एम० शेफर, सपा० पी० हनले (1951)। सत्य सारणी एव शेफर द्वारा सुझाए आघाती स्वरो के सिद्धा तों के लिए देखें पी० एफ० स्टासन क्त इण्ट्रोडक्शन टू लोजिकल थ्योरी (1952)। सदर्भ जोनसन (पृ० 138)।

उस वक्त भी होगा जब प गलत है तथा फ सत्य है। यह गलत उसी समय होगा जब प गलत है और फ भी गलत। इन परिणामों का एक चार्ट बनालें और उसे सत्य सारणी कह। तब इसका परिणाम एक ऐसा तर्कवाक्यीय चिन्ह होगा जो स्पष्टत प या फ के अर्थ को ध्वनित करेगा। प्रत्येक अप्राथमिक तर्कवाक्य को इस प्रणाली द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है चाहे उसमे समष्टि यापी परिमाणक सब विद्यमान हो–और चाहे इसम विशिष्ट कठिनाइया ही क्यो न प्रकट जाती हो। इस परिणाम को वैकल्पिक रूप से भी यक्त किया जा सकता है कि समी तर्कवाक्यो का एक ही सामान्य आकार होता है–अधिक तथ्यो की शृखला म स एक का चुनाव विशिष्ट सयोगों को नकार करके ही सभव है।

इस प्रकार के चुनाव म दो प्रतिवादी स्थितिया प्रकटती हैं। पहली वह जिसमे स कोई भी सयोग अलग नही किया जा सकता तथा दूसरी जिसम से प्रत्यक सयोग अलगाया जा सकता है। इस तरह मान लो यदि हम न–'प' म जो प' ह उसे 'प–या–फ में फ' का एवजी मानलें, तब परिणामी अभि यक्ति 'प या न–प' सभी सभावनाओ के लिए सत्य होगी। प–या–फ' द्वारा जो एक मात्र सभावना अलगायी जा रही है वह वही है जहाँ प एव फ दोनो गलत है। यह बात तब नही होगी जब हम फ' की जगह न–प को रख देते हैं। ऐसी अभि यक्ति को जो प या न–प' के आकार की हो विटजनस्टीन पुनरुक्त (टॉटोलाजी) ही मानते हैं। प एव न–प जिसम किसी सभावना को मूतरूप नही मिलता, उसे व विरोधाभास मानते हैं। पुनरुक्तिया एव विरोधाभास निरथक हैं, क्योकि वे ससार का चित्रण नही करते। मैं मौसम के विषय म कुछ नही जानता जब मैं यह जानता हू कि या तो बरसात हो रही ह या नही हो रही है तो भी ये अनुपयोगी नही ह–वे प्रतीकात्मकता की अशत अभिव्यक्ति करते है।

तर्कवाक्य के तमाम सत्य विटजनस्टीन द्वारा पुनरुक्तियो की श्रेणी म रख दिय जाते है। यह बात सत्य फलन सम्ब धी विश्लेषण से प्राप्त हुई। उदाहरणाथ इस तार्किक सत्य को लें 'प या फ तथा उसके साथ ही न–प मिलकर फ को प्रकट करते है।" अब 'प या फ' के तथा न–प' के सत्याधारों का निर्धारण करें तो तत्काल ही हम यह बात ध्यान म आती हुई नजर आएगी कि 'प या फ एव न–प' दोनो सही नही हो सकत। सिवाय उस समय जब फ सत्य हो। यह तथ्य वैकल्पिक रूप से भी विटजनस्टीन के आशय के सिद्धा त के जरिए यह कहकर प्रकटाया जा सकता है कि फ का आशय प या फ के एव न–प क आशय म सम्मिलित है। एक यथोचित प्रतीक म (एक आदर्श भाषा म) विटजनस्टीन के मतानुसार यह बात तत्काल ही स्पष्ट हा जायगी। हम उस समय इस दुनिया के विषय म कुछ नही कह रहे हैं जब हम यह कहते है कि प या फ एव न–प दानो फ का यक्त करते

हैं। ऐसा कहकर हम किसी मौलिक सम्भावना को अलग नहीं कर रहे। विटजनस्टीन के अनुसार हम हमारे प्रतीकांकन की ओर सबका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं–उस अवस्था की ओर जिसके विषय में हमारा प्रतीकांकन स्वयं कहेगा। तार्किक कथन की यह विशेषता है कि हम प्रतीक के जरिए ही यह देख सकते हैं कि वह सही है।

यदि तर्कशास्त्र पुनरुक्तियों से भरा है तब यह पूछा जा सकता है कि हम तर्ककथनों के लिए प्रमाणों को प्रस्तुत करना क्यों आवश्यक मानते हैं? विटजनस्टीन इसके उत्तर में कहते हैं कि पुनरुक्तियों के शीघ्रता से जान लेने के लिए प्रयुक्त एक यान्त्रिक सिद्धीकरण के अलावा प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। यह दृष्टिकोण कि तर्कशास्त्र में कुछ आदिम तर्कवाक्य हैं जिनसे अन्य तर्कशास्त्रीय तर्कवाक्यों का निगमन किया जा सकता है एक भ्रममात्र है। शास्त्र की प्रत्येक उक्तियां इसी सहारे पर खड़ी हैं–वे सब एक ही बात कहती हैं, अर्थात् कुछ भी नहीं कहती।

गणित की तब क्या स्थिति है? विटजनस्टीन के अनुसार वह समीकरणों से बना है जिससे सीधा यह अर्थ निकलता है कि गणितीय तर्कवाक्य भी निरर्थक हैं। क्योंकि यह मानना सदैव ही निरर्थक है कि दो भिन्न पदार्थ एक ही हैं। और किसी वस्तु के विषय में यह बताना कि वह अपने ही से तादात्म्य रखती है कुछ भी न कहने के बराबर है। गणित हमें अपने द्वारा प्रयुक्त प्रतीकांकन के विषय में बताता है–अर्थात् यह बताता है कि कुछ अभिव्यक्तियों को एक दूसरे के एवज में रखा जा सकता है। और यह सब हो सकता दुनिया के बारे में हमें संकेत देता है किन्तु यह संसार को किसी भी भांति चित्रित नहीं करता। इस प्रकार गणित के सारे कथन आशयहीन हैं।

आशयहीन ये अवश्य हैं किन्तु निरर्थक नहीं। इसके अतिरिक्त विटजनस्टीन का मत है कि तत्त्ववादी पूर्णतः निरर्थक बकवास करता है। विटजनस्टीन के इस अभियोग में नवीनता नहीं है। यदि हम इस बात की खोज अधिक गहराई से न भी करें तो १० वीं शती के वस्तुस्थितिवादियों के दैनिक आलोचना-विवेचन में यह देखा जा सकता है। इसमें नवीन यह अभियोग था कि तत्त्ववाद इस तथ्य से प्रकटता है कि दार्शनिक अपनी ही भाषा की तर्क शक्ति से परिचित नहीं हो पाते।

इसका स्पष्ट उदाहरण लें तो कहना होगा कि एक दार्शनिक इस तथ्य द्वारा मार्गच्युत कर दिए गए दिखते हैं कि हमारे तर्ककथनों की व्याकरणसम्मत रचना सदैव ही उसके तार्किक आकार के अनुरूप नहीं होती। व्याकरण में 'लखपती मनस्वित्वशील है' एवं 'लखपती असहयोगी है' दोनों का आकार एक सा

ही है केवल इस कारण कि दार्शनिक को यह विश्वास करना पड़ता है कि अनस्तित्वशील एक गुण है और तब वह अनस्तित्व की प्रकृति के सबधो मे जाच करने के लिए अपने को आमादा कर देता है। एक स्वल्पपूर्ण भाषा मे जिसमे प्रत्येक चिन्ह उसके तार्किक फलन को व्यक्त करता है, ऐसी गलतफहमिया नही रह जाएगी और हम जिसे 'लखपती अनस्तित्वशील है' करके लिखते हैं, उसे वहा तब इस प्रकार व्यक्त किया जाएगा जिससे अनस्तित्वशील है' विधेय के रूप मे नही लगेगा। ऐसी भाषा तर्क को आवश्यक तथा तत्वदर्शन को असभव बना देगी।

अन्य मामलो मे तत्वदर्शन उस प्रयास से उपजता है जब भाषा की सीमा से बाहर जाने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् भाषा एव ससार के बीच के सम्बन्धो की चर्चा करके जसा कि हम करते रहे हैं। विटजिंस्टीन के मतानुसार कोई भी तर्कवाक्य ससार के अनुरूप किसी भी वस्तु का प्रतिनिधित्व नही कर सकता, जिसके जरिए वह उसी प्रकार का एक परिशुद्ध चित्राकन कर सके। यह करने के लिए इसे अपने आपम ससार क एक अश का अचित्रित रूप अपने मे समाहित करना होगा, ताकि ससार और चित्र मे वह तुलना कर सके। किन्तु विटजिंस्टीन की दृष्टि म यह असभव चेष्टा है। ससार के विषय मे बातचीत करने का मतलब ही उसका चित्राकन करना है। इसके विपरीत कुछ भी मान लेना यह कल्पना करना है कि हम भाषाओ मे परे की किसी अवस्था की चर्चा कर सकते हैं, अर्थात् कथनीय से परे के विषय मे भी हम कुछ कह रहे हैं।

तब दार्शनिक क्या कह सकता है? विटजिंस्टीन का वेझिझक उत्तर है, 'कुछ भी नहीं।' 'दर्शन का सही कर्म यही है कि वह वही कहे जो कहने योग्य है।' अर्थात् उस सबध मे जिसका दर्शन से कोई ताल्लुक नही है और जब कोई कुछ भी तत्ववादी कहना चाहे उस यह बताए कि उसने अपने तर्क कथनो में से कुछेक चिन्हो का कोई अर्थ ही नही प्रकटाया है। इस दृष्टिकोण से दर्शन एक सिद्धान्त नही एक क्रिया है। लोगों के सम्मुख यह स्पष्ट करने की क्रिया कि वे किसी विषय म क्या कह सकते हैं और क्या नही।

इसके उत्तर म हम यह कहने को उत्सुक हो सकते हैं कि कम से कम कुछ ऐसे दार्शनिक कथन भी हैं, जो अतत्ववादी हैं, प्रयोजनीय हैं जसे वैज्ञानिक विधि के विश्लेषण से उत्पन्न कथन पर। इसे विटजिंस्टीन नहीं मानते। उनके अनुसार ऐसे तर्कवाक्य या तो मानवी मनोविज्ञान सबधी तर्कवाक्य हैं और या वे विश्लेषण से तर्ककथन ही लगते हैं। वे केवल प्रतीकाकन सबधी कथन हैं। पहले प्रकार के वाक्यो के लिए सवप्रसिद्ध उदाहरण है, 'आगमन का तथाकथित नियम।' विटजिंस्टीन के द्वारा परिभाषित आगमन ऐसा सरलतम नियम निर्धारण करने की चेष्टा

ही है जो हमारे अनुभव के अनुरूप हो। किन्तु इसका यह अर्थ नही है, कि सरलतम अवस्थाए ही वास्तव मे घटित होती हैं। यह तो केवल एक प्राक्ल्प है कि सूर्य कल उदय होगा। इसके विषय म हम पूरा ज्ञान नहीं है कि वह कल उगेगा ही। ऐसा हम उसी समय जानते यदि वह हमारे अनुभव से नि सृत एक आवश्यक तार्किक परिणति होती। तार्किक आवश्यकता के अतिरिक्त और कोई आवश्यकता है ही नही। तार्किक अनुमान के अतिरिक्त अन्य कोई अनुभव है ही नहीं। किसी भी रूप म किसी अनुमान को एक अनुभव की अवस्था मे दूसरे की अवस्था पर लागू नहीं किया जा सकता है। काय कारण के परिणाम से अन्धविश्वास जन्मा है। इसस यह निष्कय निकलता है, कि अनुमान का नियम निश्चय ही तब तकशास्त्र का कथन नही है। विटजिस्टीन की दृष्टि म यह तो केवल (और इसी कारण वह दशन का कथन न होकर मनोविज्ञान का कथन हो जाता है) यही कहता है कि मानव साधारणत जटिल व्यवस्था के बजाय सरलतम व्याख्याए या स्पष्टीकरण पसन्द करते हैं।

काय कारण के नियम के लिए विटजिस्टीन का कहना है कि वह छद्मवेश म तकशास्त्र का ही एक कथन है। प्रतीकाकन के रूप म ही जो दिखाया जा सकता है उसी के इस प्रकार कहने का प्रयास है कि नियम प्राकृतिक होते हैं। चारो ओर फले विश्व की ओर देखने पर हमे एकरूपता नही मिलेगी। ये एकरूपता तो हमारी बातचीत म ही प्रकटती हुई मिलगी और एक रूपता सबधी क्या यह एक ज्वलत तथ्य नही है कि हम परस्पर किसी एक माध्यम से बातचीत कर रहे हैं? इसी भाति जि हे हट ज ने यान्त्रिकी के प्रागभावी नियमो के रूप म चुना, वे प्रतीकाकन के दौरान प्रकट विवरण हैं। ये ऐसे विवरण हैं जिनके विषय मे हमारा यह प्रतीकाकन स्वत प्रकट करता है। यदि हम विज्ञान को ससार का सुन्दर तर्कों की शबलता के द्वारा वणन करने का प्रयास मानें तो विटजिस्टीन के अनुसार प्रागभावी नियम उस परिणाम के अ श नही हैं जिन पर हम इस तरह पहुचते हैं। इसके विपरीत वे तो इस तक-शबलता के मूल अ ग हैं (यद्यपि विटजिस्टीन के अनुसार ये हम यह तो बताते हैं कि ससार का वणन अमुक अमुक नियमो से किया जा सकता है)। इसके विपरीत वे तो इस तक-शृखला के मूल अ ग है (विटजनस्टीन के अनुसार वे हमे यह तो बताते हैं कि ससार का वणन अमुक अमुक तरह से हो सकता है[1]। इस तरह उनका कहना है कि

---

1 देखें डब्लू० एच० वाटसन आन अण्डरस्टेण्डिग फिजिक्स (1938)। इस पुस्तक को ट्रैक्टेटस के प्रभाव म आकर भौतिकी सिद्धा त के निर्माण के लिए देखें एस० टोलमिन कृत द फिलोसोफी आव साइ स (1953) विटजनस्टीन के दृष्टिकोण का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है और उसकी रचना इस ढग से की गई है

उसका अपना सामान्य नियम यही है कि संसार का चित्रण करने वाले तर्कवाक्य प्रकृति विज्ञान के ही तर्कवाक्य हैं और जो संसार का चित्रांकन नहीं करते ता यदि वे निरर्थक नहीं तो पुनरुक्तियां तो हैं ही। दार्शनिक तर्कवाक्यों की इससे कोई विचित्र श्रेणी है ही नहीं। यह निश्चय ही एक दूषित निष्कर्ष था।

केम्ब्रिज विचारकों में से जो लोग तत्काल ही ट्रैक्टेटस से प्रभावित हुए उनमें एफ० पी० रेमजे का नाम उल्लेखनीय है। रेमजे छब्बीस वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुए और उनके थोड़े से परिपक्व अवस्था के वर्ष दर्शन, गणितीय तर्कशास्त्र एवं अर्थशास्त्र सम्बन्धी धारणाएं प्रस्तुत करने में बंट गए। रेमजे उन लोगों में से नहीं थे जो प्रारम्भ में ही एक निश्चित मार्ग पकड़ लेते हैं और बाद में भी उसके प्रति आस्था शील बने रहते हैं। उन्होंने कोई बड़ा ग्रंथ भी नहीं लिखा–आर० बी० ब्रैथवेट द्वारा संकलित उनके निबंधों का मरणोपरान्त प्रकाशन व फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स (1931) शीर्षक कृति उनके मानसिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण करती है, उनकी विचारधारा के सुनियोजित विकास का नहीं–तो भी ये निबंध किसी भांति कम महत्व के नहीं हैं।

जिस निबंध के (1925) कारण फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स का शीर्षक रखा गया–उसमें रेमसे, ह्वाइटहैड एवं रसेल के तर्कों के आधार पर हिलबर्ट एवं ब्राउवर के विरुद्ध अपना पैर जमाते हैं लेकिन शीघ्र अपनी मौलिकता का परिचय भी दे देते हैं। विटजनस्टीन के विरुद्ध उनकी यह मान्यता है कि गणितीय तर्कवाक्य भी समीकरण न होकर पुनरुक्तियां हैं–और वे इस बात को और आगे बढ़ा सके कि गणित भी तर्कशास्त्र से ही निगमित है। इसके साथ ही विटजनस्टीन से ही वे यह सीखे कि तर्कशास्त्र पुनरुक्तियों से निर्मित है। विटजनस्टीन के सामान्य तर्क वाक्यों के सत्य-फलनीय विश्लेषण की सहायता से उनका उद्देश्य यह दर्शाना था कि गणित को एक ऐसे तर्कशास्त्र से निगमित किया जा सकता है जिसमें न तो कोई अनुभवजन्य तर्कथन हो और न न्यूनीकरण के स्वतःसिद्ध कथन या फिर अनन्तता के स्वयं-सिद्ध आदि। तो भी वह विरोधाभास नहीं पड़ता।[1] ह्वाइटहैड एवं

कि इसके कारण टोलमिन दुहैम के निकट लगने लगते हैं विशेषतया वे भौतिक नियमों एवं अनुभवजन्य सामान्यीकरणों में तीव्र भेद मानते हैं–तथा भौतिकी एवं प्राकृतिक इतिहास में भी। देखें ई० नजल कृत रिव्यू (माइण्ड 1954) एवं एच० डिंगल फिलोसोफी (1955)।

1 विस्तार के लिए देखें अध्याय 9। बाद में उन्हें ऐसे तर्कशास्त्र द्वारा जो अनुभववादी तर्कथनों से च्युत हो, विशुद्ध गणित की सुरक्षा करने की संभावना में संदेह हो गया था। गणित के लिए इससे खराब स्थिति और क्या हो सकती थी, यही उनका निष्कर्ष था।

रसेल द्वारा प्रारम्भ की गई जाँच पड़ताल को ट्रैक्टेटस के माध्यम से आगे बढ़ाने वालों में रेमजे महायुद्ध–कालीन ब्रितानी विचारकों में अद्वितीय थे। बहुत से दार्शनिक तो जिनकी रुचियां गणितीय होने के बजाय साहित्यिक ऐतिहासिक या भाषाई थी, उन सब लोगों के समक्ष जब प्रिंसिपिया मैथेमेटिका रखी गई तो उन्होंने विचार लिया कि आकारी तर्कशास्त्र उनके उपयुक्त अब नहीं रहा–और इसी कारण वे तमाम ज्ञानवाद की अधिक सु–स्पष्ट सीमारेखा तक लौट आए।

रेमजे भी इसी दिशा के राही थे–खास तौर पर इसलिए कि उन पर अंशत: जोनसन का प्रभाव था और अंशत: इसलिए भी कि उन्होंने पीयर्स को पढ़ा था तथा रसेल का भी अनुसरण वे कर रहे थे। इस तरह फैक्टस एण्ड प्रोपोजीशन (1927) का अन्तिम निष्कर्ष विटजनस्टीन से अपना तार्किक आधार ग्रहण करने के बावजूद भी अपनी मूल प्रकृति में अर्थक्रियावादी ही रहा। नकारात्मकता के विश्लेषण में उनमें यह बात बहुत साफ दिखाई दे सकती है। विटजनस्टीन के साथ वे इस बात में सहमत हो जाते हैं कि प–भिन्न नहीं (नाटनॉट पी) तर्कवाक्य प ही है। और इस तरह नहीं कोई नाम नहीं। है किन्तु वे मामले को यहीं नहीं छोड़ना चाहते। उनके अनुसार नहीं शब्द अनुभूति में एक विभिन्नता बतलाता है, अर्थात् स्वीकारने और नकारने के बीच विभिन्नता। इस प्रकार यह परिणति होगा कि प पर अविश्वास' करने का अर्थ प–नहीं पर विश्वास करने से अभिन्न हुआ। इस परिणमन का रेमजे विशिष्टत: अर्थक्रियावादी मार्ग से औचित्य सिद्ध करना चाहते हैं इन दो *विभिन्न मानसिक सम्भावों के कारणों और परिणामों* को बतलाकर।

इसी प्रकार अपनी ट्रुथ एण्ड प्रोबेबिलिटी (1926) में वे विटजनस्टीन के इस सिद्धान्त को अस्वीकृत करते हैं कि हम इस प्रकार के अनुमानों का कोई आधार नहीं दिखता जो पुनरुक्तिपूर्ण है। पियर्स के अनुसरण में ही वे आगमन की व्याख्या 'मानव मन की एक आदत' के रूप में करते हैं जिसका विशुद्ध *आकारी तर्क द्वारा कोई औचित्य नहीं बतलाया जा सकता सम्भावना सिद्धान्त के* द्वारा भी नहीं जैसा कि कीन्स ने सोचा था–पर साथ ही वे यह भी मानते थे कि इसी कारण उस आदत को अस्वीकृत कर देना किसी भी भांति युक्तियुक्त भी नहीं है। आगमन का तर्क जो कि एक मानवीय तर्क है–उनके वर्णनानुसार सफलता की उस मात्रा को बतलाता है जिससे एक अन्वेषक सत्य तक पहुंचने के विभिन्न प्रकारों का प्रयोग करता है। आगमन अर्थक्रियावादी दृष्टि से औचित्यपूर्ण है, यह औचित्य युक्तियुक्त भी है केवल मनस्तात्विक मामला ही नहीं, जैसा कि विटजनस्टीन मानते हैं।

'जनरल प्रोपोजीशन्स ग्रान कजुअलिटी (1929) मे भी प्रयत्रियावाद की ग्रोर यह झुकाव दृष्टिगोचर होता है। विटजनस्टीन से पूर्व मे गृहीत इस दृष्टिकोण को भी रैमजे यहा आकर अस्वीकृत कर देते हैं कि एक सामान्य तर्कवचन आणविक तर्कवचनो का पुंज है चाहे वह ऐसा विशेषता वाला पुंज हो जिसके विभिन्न अवयवो को हम अपनी प्रतीकग्राहिणी शक्ति की कमजोरी के कारण विश्रृंखलित नही कर सकते हो। (इस पर रैमजे ने फिकरा कसा है कि जिसे हम नही कह सकते उसे नही ही कह सकते गुनगुना या फुसफुसा भी उसे नही सकते।) साथ ही वे अब भी इस बात पर दृढता से आश्वस्त हैं कि सारे तर्कवचन सत्य-फलन हैं, इससे वह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सामान्य तर्कवचन वास्तविक रूप मे तर्कवचन' ही नही हैं। उन्हे हम 'सत्य' और 'असत्य' के रूप मे वर्गीकृत करने की आवश्यकता ही नही है, केवल हम उन्हे या वर्गीकृत कर सकते है कि अथवा वे सही हैं या गलत युक्तियुक्त हैं या युक्तिहीन। वे भविष्य के बारे मे सोचने के तरीके मात्र हैं। 'मनुष्य मरणशील हैं' कहने का अर्थ है कि आगे जब कभी किसी मनुष्य को देखें तो हम उसे मरणशील समझ लें चाहे लोग हमे इस धारणा से झटका देने का प्रयत्न करें या हम अविवेकी बता दें। पर इसी लिए यह कथन असत्य सिद्ध नही हो जाता कि यह वस्तुओ की प्रकृति के बारे मे कोई निश्चित बात नही कहता।

विटजनस्टीन के विरुद्ध एक बार फिर, रैमजे यह मानते हैं कि दर्शन खास तौर के तर्कवाक्यों की एक श्रेणी उनका विशदीकरण, श्रेणीकरण, परिभाषा तथा विवरण कुछ इस ढग से करता है जिसके जरिए कोई भी प्रयुक्त सज्ञा परिभाषित हो सके। उनकी दृष्टि मे दर्शन के समक्ष कठिनाई यही है कि इसकी परिभाषाए और उनका विशदीकरण पूर्णत अन्योन्याश्रित है एक सज्ञा और परिभाषा दूसरी मे समाहित है। उदाहरणार्थ, हम अपना विशदीकरण यह मानकर नही कर सकते कि अर्थ' की (मीनिंग की) प्रकृति पहले ही बहुत सुस्पष्ट है, और तब हम दिक एव काल के लिए उस शब्द अर्थ (मीनिंग) का प्रयोग करें, क्योकि अर्थ की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने के लिए भी हमे पहले दिक् एव काल सबधी कुछ समझ तो होनी ही चाहिए। इस तरह विशदीकृति-मुखी दर्शन का एक बडा खतरा यह है कि उससे शास्त्रीयता आ जाती है' रैमजे के अनुसार शास्त्रीयता का मतलब है-'जो अस्पष्ट है उसे स्पष्ट मानकर पूर्णत स्पष्ट एव यथोचित मानकर अभिहित करना और तब उसे सही तार्किक पदावस्था में रख देना।' इस टिप्पणी के साथ ही हम पुराने और नये केम्ब्रिज की सीमारेखा को पार कर गए हैं।

फिलहाल तब भी, विशदता पर ही बल दिया जाता रहा। रसेल मूर, विटजिंस्टीन ब्राड, जोनसन, सभी के अध्ययन द्वारा यही निष्कर्ष निकलता माना

जाता रहा कि दर्शन विश्लेषण है, विशदीकरण है। इस युग की एक विशेष उपलब्धि एनालिसिस नामक पत्र का 1933 में प्रकाशित होना है। इसका सम्पादन ए० डंकन जोन्स ने स्टेबिंग, सी० ए० मेस[1] तथा जी० राइल के सहयोग से किया।

एनालिसिस का उद्देश्य जैसा कि उसमें ही बताया गया था यह था ऐसे निबंधों को प्रकाशित करना, जो छोटे सीमित एवं समुचित रूप से परिभाषित हों तथा दार्शनिक मसलों पर एवं ज्ञात तथ्यों पर तैयार किये गये हों। उसमें लम्बे अतिसामान्य एवं सम्भाव्य तथ्यों पर सम्पूर्ण जगत् पर किए गई अमूर्त तत्ववादी विचारानुमानों को स्थान नहीं मिलता। यह स्पष्टतः रसेल की उस माग का पुनः प्रस्तुतीकरण है जिसमें उन्होंने खण्ड खण्ड जाँच की बात कही है। यह बात स्वयं रसेल की पुस्तकों में भी उतनी व्यक्त नहीं हो पाई जितनी मूर के दार्शनिक निबन्धों में व्यक्त हुई है। 1954 में जब एनालिसिस की तत्कालीन सम्पादिका मार्गरेट मेकडानल्ड ने उसमें प्रकाशित निबंधों का एक संग्रह फिलोसोफी एण्ड एनालिसिस शीर्षक से प्रकाशित किया तो उसमें उन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन मूर या रसेल से न लेकर ट्रैक्टेटस से लिया। दर्शन का उद्देश्य विचारों का तार्किक स्पष्टीकरण है। दर्शन की परिणति दार्शनिक तर्कवाक्यों की संख्या बढ़ाना नहीं किन्तु तर्कवाक्यों का स्पष्टीकरण करना है। मूर ने जिसे व्यवहार में लिया, विट्जिंस्टीन ने उसकी शिक्षा दी ऐसा माना जाता था। ट्रैक्टेटस को एक विश्लेषक की हस्तपुस्तिका के रूप में पेश गया है।

तो भी स्वभावतः रसेल मूर एवं विट्जिंस्टीन की इस त्रिवेणी के कारण कुछ कठिनाइयां खड़ी हो गईं। यह पूछा गया था कि वास्तव में यह 'विश्लेषण' किसका विश्लेषण करता है? एक वाक्य का तर्कवाक्य का, धारणा का या शब्द का? इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि वह विश्लेषण के जरिए उसे क्या रूप देना चाहता है? ये प्रश्न बहुत चर्चित हुए[2] थे, और यह कहना उचित ही है कि विश्लेषणात्मक प्रणाली 'विश्लेषण के विश्लेषण में' मुक्तहस्त से प्रयुक्त होती रही बजाय किसी वस्तु के विश्लेषण के।

---

1 दार्शनिक मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध, जो ब्रण्टानो तथा स्टाउट की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। वे समसामयिक दर्शन के प्रति पूर्ण जागरूक थे। उनकी प्रिंसिपल्स आव लोजिक (1933) नामक पुस्तक एक ऐसी पाठ्य पुस्तक थी जिसे केम्ब्रिज परम्परा पर लिखा गया था। उन्होंने विचार तथा भाषा के सम्बन्ध पर अनेक निबन्ध लिखे हैं। ब्रितानी दर्शन के इतिहास के इस काल के लिए देखें जे० ओ० अमसन कृत फिलोसोफिकल एनालिसिस (1946)।

2 इस चर्चा के कुछ उदाहरण मूर एवं रसेल (अध्याय 1) में हैं।

जिन विविध क्षेत्रो से ये चर्चाए गुजरी वे सब एल० एस० स्टेबिंग[1] की रचनाओ म देखी जा सकती हैं। उनकी कृति द मेथड आव अनालिसिस इन फिलो सोफी मे (पी० ए० एस० 1931) तकवाक्य के तात्कालिक सदम (अर्थात् उस सुनत ही जो ध्वनि हमारे मन म उभरती है) मे तथा उसके सही सदम म जिसमे व सभी बातें सम्मिलित होती है जो वाक्य के सही होन पर लागू होते भेद दिखाया गया है। उदाहरणाथ 'सभी अथशास्त्री गलती कर सकते हैं' नामक तकवाक्य का तात्कालिक सदम की स की गलती को अपने मे समाहित नही करता। हम इस तकवाक्य को की स के विषय मे कुछ न सुनकर भी समझ सकते हैं किन्तु की स की गलती इस कथन के सही सदम को भी अगत यक्त करती है। स्टेबिंग का कहना है, कि चूकि यह तकवाक्य सही है इसीलिए यह भी सही है कि की स गलती कर सकता है।

स्टेबिंग मानती हैं, कि तत्ववादी विश्लेषण, दो मान्यताओ स काम चलाता है। सबसे प्रथम यही कि तात्कालिक सदम के स्तर पर हम यह भली भांति समझते हैं कि तकवाक्य मे विविधता है। दूसरी बात कि ऐसे तकवाक्य आधारभूत तकवाक्यो के प्रति सही सदम व्यक्त करते हैं तत्वों की अन्तरिम इकाइयों का सदम देते हैं जिनकी अन्तिमता इस तथ्य पर आधृत होती है कि उनके तात्कालिक सदम और सही सदम एक ही है। उनके दिमाग मे मूर की यह धारणा है कि हम सब यह भली भांति मानते हैं कि मुर्गिया अण्डे देती हैं। किन्तु इस तकवाक्य के अन्तिम विश्लेषण मे हमारा मतभेद हो जाता है। इसके साथ ही तत्वो की इकाई का सिद्धान्त विटगिंस्टीन के तत्वों के सयोग एव आणविक तथ्यो के सिद्धान्त से मेल खाता है। इस तरह उनकी व्याख्या से मूर तथा ट्रैक्टेटस द्वारा एक ही बात कही गई है कि दाशनिक विश्लेषण आधारभूत तकवाक्यो का घूघट उघाडने का काय है जिसका प्रत्यक सामान्य तकवाक्य अन्तत सदम देता ही है।

बहुत स्पष्ट रूप से यह तो कहना होगा कि इस परिभाषा मे सभी विश्लेषण परिभाषित नही होते। उनकी कृति लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड एनालिसिस (पी०

उनके 'माडन इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक' (1930) ने आधुनिक तकशास्त्र का,
1 विशेषत उसके केम्ब्रिजीय रूप को अधिकाधिक पाठको तक पहुँचाने म काफी योग दान किया। उन्होने मूर रसेल, जानसन, व्हाइटहैड तथा ब्राड से धागे लेकर एक ताना बाना बनाया। उनकी कृति फिलासफी एण्ड द फिजिसिस्ट्स (1937) म उन्होने जीन्स तथा एडिंगटन की परिकल्पनाओं के विरुद्ध साधारण बुद्धि के पक्ष मे काफी कुछ कहा है। फिलोसोफीकल स्टडीज एसेज इन मेमरी आव एड० सूसन स्टेबिंग (1948) म विविध सदम देखें। ई० डी० ब्रानस्टीन मिस स्टेबिंग्स डिरेक्शनल एनलीसिस एण्ड बसिक फक्टस' (एनलिसिस 1934) भी देखें।

अध्याय १६

तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद

वियना विश्वविद्यालय म आगमनात्मक विज्ञानों के दर्शन के प्राध्यापक के लिए नवनिर्मित स्थान पर 1895 म मश की नियुक्ति हुई। यह नियुक्ति वियना म रही अनुभववादी परम्परा का एक प्रमाण था और अब तक ऐसा माध्यम था जिसक कारण वह परम्परा सशक्त एव पुष्ट होती थी। 1922 मे वही पद मोरित्ज श्लिक को प्रदान किया गया जिन्होने इसस पूव ही एक दार्शनिक वज्ञानिक के रूप म ख्याति अर्जित करली थी। विशेषत यह ख्याति उन्हें आइस्टीन के व्याख्याकार के रूप मे मिली थी। श्लिक के चारो आर बहुत जल्दी ही विचारकों का एक दल सगठित हो गया और उस वियना वृत्त[1] (द वियना सरकिल) का नाम दिया गया। इस वृत्त के अधिकांश सदस्य जो मश के प्रभाव म आकर पहले ही अतत्ववादी हो गए थ- या तो वज्ञानिक या फिर गणितज्ञ थे। श्लिक को छोडकर इनमे बहुत कम लोग दार्शनिक परम्परा से परिचित थ और न ही वे उसकी कोई चिन्ता ही करते थे। वत्त म किए गए टक्टेटस के पारायण स या फिर वसमन एव श्लिक द्वारा विटजिस्टीन के नए सिद्धान्तो से परिचित कराए जाने पर ही इस वग को अपने क्षेत्र से परे की

---

1 इसके गठन एव बाद के इतिहास क विवरण के लिए देख वी० क्राफ्ट कृत द वीयना सरकिल (1950 अग्रेजी अनुवाद 1953), एव प्रो० न्यूरेथ कृत ले डेवलप मेण्ट टू सरकिल डी वियना एट ल एवनिर दे ला एम्परिसिज्मे लोजीक। एक्चुअलिटीज 1935)। 'वियना सरकिल' नामक मुहावरा 1928 का निर्मित है। वत्त का प्रोग्राम 1929 मे इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ विसेन्स्चेफलिशे वेल्टाउफासु ग देर वीनर क्रेइस इसके प्रकाशन का प्रमुख माध्यम था एक पत्र अरकेण्टनिस (1930) जिसका 1939-40 के अङ्क मे द जनल आव यूनीफाइड साइन्स नामकरण हो गया। इस वत्त के विख्यात सदस्यो मे एम० श्लिक, आर० कारनप एफ० वसमैन प्रो० न्यूरेथ एच० फीगल बी० वोन जूहोस एफ० कोफमन एच० हेन, के० मेजर के० गोडल बर्लिन की सोसाइटी आव एम्पिरिकल फिलोसोफी के भी ये लोग निकट सम्पक मे रहे थे। इसके सदस्यो मे एच० राइकेनबक थे जो कारनेप के साथ ही अरकेण्टनिस के सह सम्पादक थे तथा एफ० काउस डब्लू० ड्यूबिस्लाव के० ग्रेलिंग आदि थे। द्रष्टव्य ए० जे० एयर द्वारा रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी मे द वियना सरकिल पर लिखी गई टिप्पणी।

विचारधारा की जानकारी होती थी।[1] विटजिंस्टीन स्वयं एक वैज्ञानिक थे, एक अतत्ववादी, और आदर के साथ सुने या पढ़े जाने के सुयोग्य अधिकारी थे।

इस वृत्त का मत था कि विटजस्टीन ने अनुभववादियों को विचारों के खतर नाक दर्रे से निकलने का मार्ग बताया था। अनुभववादी उत्सुकता से इस बात की जाँच करते रहे थे कि किस प्रकार गणित की इसी निश्चितता तथा आदर्श अवस्था को अनुभववाद के इस सिद्धान्त से समर्थित किया जा सकता है कि सभी बोधगम्य तकवाक्य अनुभव पर आधारित हैं।

बहुत से अनुभववादियों में तो मिल के तकशास्त्र का कड़ा विरोध करने की ही क्षमता नहीं थी, जिसके अनुसार गणितीय तकवाक्यों को अनुभव का सामान्यीकरण माना गया था।[2] केवल विटजस्टीन की भाँति उनकी व्याख्या तादात्म्यकारी मानकर की जाय तभी उनके लिए ठीक था।[3] अनुभववादी को उनकी मौलिक स्थापनाओं में जरा सा संशोधन करना था। अब वह यह कह सकने योग्य था कि तादात्म्यकारी अवस्था को टालकर, सभी बोधगम्य तकवाक्य अनुभव पर आश्रित हैं। चूँकि कोई तत्ववादी यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हो सकता कि उसके तकवाक्य ससार के विषय में कोई सूचना नहीं देते, उनका यह संशोधन तत्ववाद पर अनुभववादियों की आलोचना का कोई गम्भीर प्रभाव नहीं डालता था और यही बात थी जो वियना वृत्त की रुचि का कारण बनी।

इस वृत्त के सदस्यों के लिए जिन्हें बाद में लोजिकल पोजिटिविस्टस[4] के

---

1 1956 तक भी विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता था कि विटजस्टीन ने श्लिक एवं वसमन से क्या मन्त्रणा की थी। विटजस्टीन द्वारा टंकित करवा के प्रेषित कुछ पत्र जो वियनावृत्त की स्थापना से प्रारम्भ होकर उसके विकास तक का संकेत देते हैं अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। उनके 1929 में लाजिकल फार्म पर पढ़े गए उनके शोध निबन्ध से यह स्पष्ट हो जाता है कि विटजनस्टीन ट्रैक्टेटस से अभी बहुत आगे नहीं गए थे और जितनी दूर वे गए थे वह दिशा तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद की ही ओर थी।

2 सदम के लिए देखें जौन एण्डरसन कृत एम्पिरिसिज्म (ए०जे०पी० 1927)

3 अतत्ववादी गणितज्ञ एच० हन ने सब प्रथम वृत्त का ध्यान ट्रैक्टेटस की ओर खींचा था। उनकी पुस्तकें लाजिक, मथेमेटिक, एंत कोनोइसा दे ला रीएलिटी (एक्चुअलिटीज 1935) एवं डीवेदलुंग देर विसेंसचेफ्लिखेन वेल्ट्रोफसुंग (अर्क 1930) देखें पी० फैंक द्वारा हेन पर लिखा मृत्युलेख (अर्क 1934)

4 ब्लूमग एवं फीगल कृत लोजिकल पोजिटिविज्म (जे० पी० 1931)। श्लिक इस नाम के स्थान पर कंसिस्टेण्ट पोजिटिविज्म (संगत अनुभववाद) नाम पसन्द करते थे। देखें जे० आर० वीएनबर्ग कृत एन एग्जामिनेशन आव लोजिकल

नाम से जाना गया तत्वदर्शन यह बताने का प्रयास मात्र है कि कुछ ऐसी इयत्ताएं हैं जो संभावित अनुभव की पहुंच से परे विद्यमान हैं जैसे कि काण्ट द्वारा सुझाई गई वस्तु स्वायत्तता (थिंग्स इन देमसेल्ज)। इस कारण स्वभावतः ही वे निरूपण के सिद्धान्त (प्रिंसिपल ग्राव वेरीफियेबिलिटी) की ओर आकर्षित हो गए। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी तर्कवाक्य का अर्थ उसके निरूपित किये जाने की क्षमता में ही निहित है। इस प्रणाली के उपयोग से उन्हें विच्युतीकरण का वह मार्ग मिल गया जिसमें वे ऐसी सभी इयत्ताओं को अर्थहीन कहकर नकार सके जो पर्यवेक्षण के क्षेत्र में नहीं आ सकती। तत्वदर्शन को भी इसी प्रक्रिया में तब अर्थहीन कहकर परित्याज्य मान लिया गया। तत्वदर्शन के विरुद्ध विस्तार में वाद-विवाद करना समय का पूर्ण दुरुपयोग है। यदि एक तत्ववादी यह कहता है कि 'सत्य परमात्म हैं' और दूसरा यह कि सत्य आत्मतत्वों की बहुलता में निहित है, तो अनुभववादी को उनका उत्तर देने के लिए अपने दिमाग को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं। उसे तो यही कहना चाहिए– आपके बीच के विवाद को सुलझाने के लिए कौन से संभावित अनुभव की आवश्यकता है? इस प्रश्न का तत्वदर्शन में कोई उत्तर नहीं है और निरूपण के सिद्धान्त के अनुसार इससे यही अर्थ निकलता है कि उनकी स्थापनाएं बिल्कुल निरर्थक हैं। इस दृष्टि से यह कहना अर्थहीन है कि 'सत्य परमात्म नहीं है या सत्य ही परमात्म है' क्योंकि दोनों में से एक भी स्थापना को अनुभव से निरूपित नहीं किया जा सकता। इस तरह तत्ववादी विवाद अर्थ सार-विहीन हैं।

निरूपण भी तार्किक वस्तुस्थितिवादियों ने विटजस्टीन के ट्रैक्टेटस से उद्धृत किया था। विटजस्टीन ने निश्चय ही वहां यह लिखा था कि किसी

पोजिटिविज्म (1936) सी० डब्लू० मौरिस कृत लोजिकल पोजिटिविज्म, प्रेग्मेटिज्म एण्ड साइण्टिफिक एम्पिरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937) जी० बर्गमन कृत द मेटाफिजिक्स ग्राव लोजिकल पोजिटिविज्म (1954) आर० वोन मिसेस कृत पोजिटिविज्म (1939 अंग्रेजी अनुवाद 1951) जे० जोर्गेंसन कृत द डवलपमेण्ट ग्राव लोजिकल एम्पिरिसिज्म (यू०एस० 1951), एल०एस० स्टेबिंग कृत लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड एनालिसिस (पी०बी० ए० 1933) ई० नजल कृत एनालिटिक फिलोसोफी इन युरोप (जे०पी० 1936) डब्लू०एच० वकमीस्टर कृत सेवेन थीसेस ग्राव लोजिक्ज पोजिटिविज्म क्रिटिकली एग्जामिण्ड (पी०ग्रार० 1937) वी० वान जूहोस कृत प्रिंसिपल्स ग्राव लोजिकल एम्पिरिसिज्म (माइण्ड 1937) जे०ए० पासमूर कृत लोजिकल पोजिटिविज्म (ए०जे०पी० 1943 44 48) एच० फीगल कृत लाजिकल एम्पिरिसिज्म (टवण्टीयथ सेंचुरी फिलोसोफी स० डी० डी० रून्स 1944), डब्लू० टी० स्टेस कृत पोजिटिविज्म (1948 माइण्ड) टी० स्टारर कृत एन एनालिसिस ग्राव लोजिकल पोजिटिविज्म (मथोडोज 1951)।

तर्कवाक्य को समझने का अर्थ यह जानना है कि यदि वह सत्य है तो किस रूप में। फिर भी वस्तुस्थितियों का वह कदम यात्रा बहुत उस उच्चस्तरीय सूक्ति से, जिसमें तर्कवाक्यीय अर्थ का उसकी निरूपण प्रणाली के तादात्म्य से किया गया था, थोड़ा हटकर था। विटजस्टीन के ही मतानुसार वस्तुस्थितिवादियों ने उनके उस कथन को गलत समझ लिया जो वाद विवाद में ही उन्होंने अधूरा छोड़ दिया था। उन्हें यह कहता हुआ देखा गया[1] कि मैं कभी कभी यह कहा करता था कि किसी वाक्य को क्यों प्रयोग किया गया है। इसका स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए यह बहुत अच्छी युक्ति थी कि अपने से ही एक प्रश्न पूछा जाय कि कोई कैसे प्रमुक कथन का निरूपण कर सकता है? किन्तु किसी शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए यह तो केवल एक तरीका ही है। कुछ लोगों ने इस सुझाव को रूढ मानकर निरूपण की प्रबल मांग करनी प्रारम्भ कर दी है और उससे ऐसा ध्वनित होता है जैसे कि मैं ऐसा करके सार्थकता के सिद्धान्त की स्थापना कर रहा हूं।'

इसका उद्गम चाहे जो भी रहा हो, मैंस एवं पीयरसन के तर्कवाक्य का पुनः संगठन करने के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। निरूपण का सिद्धान्त इसके बाद तो शीघ्र ही तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का मूलाधार बन गया। सबसे पहले स्पष्टतः इसका प्रयोग एफ० वसमैन द्वारा अक १९३० में प्रकाशित अपने निबन्ध लोजिस्के स्नालाइसे देस वेहर्स्लेनलिक इत्सबग्रिफ्स में किया है। इस निबन्ध के तत्काल पश्चात् ही इसकी सार्थकता इसके स्तर एवं इसकी उपयोगिता पर झगड़े खड़े होने प्रारम्भ हो गए[2]।

---

1 डी०एल०टी०जी० एवं ए०सी०जे० द्वारा लिखे गए अंश (एजी०पी० 1951)

2 शिलक कृत पोजिटिविज्म एण्ड रीयलिज्मस (1932 अंक) इस सम्बन्ध का एक अन्य आरम्भिक कथन है। डी० शीरिन का टिप्पणी जो इस निबन्ध के साथ फ्रेंच में किए गए अनुवाद में प्रस्तुत है, का सिन्थसी (1948) में देखो। तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद पर सामान्य रचनाओं का अवलोकन करें सी०आई० लविस कृत एक्सपीरिएन्स एण्ड मीनिंग (पा०आर० 1934) एल० एस० स्टबिंग, ए०ई० हीथ, रसल कम्यूनिकेशन एण्ड वरीफिकेशन (पी०ए०एस०एस० 1934), एम० ब्लैक द प्रिंसिपल आव वरीफाइबिलिटी (अनालिसिस 1934), ई० नजल कृत वरीफाइबिलिटी ट्रूथ एण्ड वेरीफिकेशन (जे०पी० 1934), डब्लू० टी० स्टेस मेटाफिजिक्स एण्ड मीनिंग (माइण्ड 1935), सी०जे० ड्यूकास वरीफिकेशन, वेरीफाइबिलिटी, एण्ड मीनिंगफुलनस (जे०पी० 1936) जी० राइल कृत अनवरीफाइबिलिटी बाई मी (एनालिसिस 1936), ए०सी० एविंग कृत मीनिंगलेसनस (माइण्ड 1937) एम० लजरोविज द प्रिंसिपल आव वरीफाइबिलिटी (माइण्ड 1937) एवं स्टेंग

विवाद के कुछ वि दुओ का साराश इस प्रकार दिया जा सकता है—

(1) प्रत्यक्षत निरूपण का सिद्धा त अपने आप मे न तो आनुभविक सामान्यीकरण है और न एक समानाथक सिद्धान्त ही है। तब इसका स्तर क्या है ?

(2) हम सामान्यत शब्दो या वाक्यो के अथ की जाच करते रहते हैं। एक तकवाक्य वाक्य मे निहित अथ को ही बताता है—कुछ एसी स्थिति का नहीं जो साथक है। इसके अतिरिक्त एक तकवाक्य को ही हम निरूपित करते हैं उस सत्य और झूठ सिद्ध करते हैं तब निरूपण का अथ के साथ तादात्म्य कसे समव है ?

(3 तकवाक्य अनिरूपणीय या तो इसलिए हो सकते हैं कि हम तक्षण किसी ऐसे माग का निर्धारण नही कर सकते जिसस उन्हें निरूपित किया जाय या फिर भौतिक रूप से उनका निरूपण असमव है या फिर तार्किक कारणो से उन्ह निरूपित किये जाने का प्रश्न ही नहीं रहता। इनमें से कौनसी अनिरूपणीय प्रजाति अथहीनता लिए हुए है ?

(4) 'निरूपण अस्पष्ट है इसका अथ 'सत्य सिद्ध करना है' या फिर सत्य पराक्षित करना ह। क्या हम तब यह कहना पडेगा कि जब तक एस माग म बढने का कोई *जरिया न हो जो उसे सत्य सिद्ध करेगा तब तक तकवाक्य निरथक ही रहगा* या फिर इसम इतनी ही माग की गई है कि इसकी सचाई की जाच करने का कोई न कोई माग माग होना चाहिए ? इसके अतिरिक्त उपयु क्त दोनो प्रकार की प्रक्रिया की प्रणाली से क्या तकवाक्य की साथकता का तादात्म्य है या फिर यह इतना ही बताने के लिए है कि इसमे कोई अथ तो है ?

(5) निरूपण का सिद्धा त अ तत निकषो पर जाकर टिक जाता है। यदि किसी तकवाक्य की साथकता उस अवस्था म ही निहित है जो निरूपित कर सकती है तो ये निकष स्वय तकवाक्य नही हो सकते या वकल्पिक रूप से य ऐसे तकवाक्य होन चाहिए जिनकी साथकता उन्ही म अ तर्निहित हो। फिर वे निरूपण क्या हैं ?

तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद का जटिल इतिहास इन विषयो का हल निकालने मे ही जिसकी रचना हो गई, भली भाति इस वृत्त के दो प्रमुख सदस्य श्लिक एव कारनेप की रचनाए पढकर समझा जा सकता है। या फिर इसके एक मात्र ब्रितानी प्रवत्तक ए० ज० एयर की कृतिया पढकर। जसा हम पहले देख चुके हैं

एण्ड वीक वरीफिकेशन (माइण्ड 1939) जे० विजडम मटाफिजिक्स एण्ड वेरीफिकेशन (माइण्ड 1938), आई० बर्लिन वरीफिकशन (पी०ए०एस० 1938) डी० मकिनान एफ० वसवन डबलू सी० नील वरीफाइबिलिटी (पी०ए०एस० एस० 1945) आर० आई० पी० के 1950 1951 क विशषाक जे०एल० इवान्स मीनिंग एण्ड वरीफिकशन (माइण्ड 1953)।

शिलक दशन क इतिहास से कुछ मात्रा म परिचित थ और वे कभी इस बात को
नकारत नही हैं, कि दशन का भी मूल्य है, कि तु उसका नान की शाखा के रूप मे
कोई मूल्य नही । उनके साथी वस्तुस्थितिवादियो ने इस सम्ब ध मे काफी भ्रम
फलाया । जब रसेल क पद–चि हो पर चलकर उ होन एव वनानिक दशन की
स्थापना की या फिर उ होने दशन को रूप गुणहीन शब्दो से सजाना उचित समझते
हुए लिखा कि यह तक का विनान है ।"[1] व एसा सोचकर भूल कर रह थे कि उनकी
स्वय की रचनाए परम्परागत दशन स असपृक्त थी । लकिन एक और भूल जो व
कर रहे थ वह यही, कि कोई भी विनान दशन का एवजी हो सकता है । शिलक
विटजिस्टीन क साथ सहमत होत हुए कहते हैं कि दशन एक क्रिया है, सिद्धान्त नही ।
यह साथकता खाजन की क्रिया है, इस तरह इसका अपना कोई कथ्य नही होते हुए
भी हम हमारी धारणाओ को अधिक स्पष्ट रूप मे व्यक्त करने मे सहायता करती है
और इस रूप म वह विनान से भी काफी भिन्न है ।

इस स्थिति पर एक प्रकट आपत्ति प्रस्तुत होती है–शिलक स्वय दाशनिक
स्थापनाए करने से नही चूक रहे । उदाहरणाथ निकपराय साथकता का सिद्धा त ।
तब वे इस बात को कसे नकार सकते हैं कि दशन एक नान की शाखा है ? विटजि
स्टीन इस प्रकार की आलोचना की पूर्वापेक्षा करत हुए स्वीकारते हैं कि ट्रेक्टेटस
के तकवाक्य जहा तक व दाशनिक हैं, अथहीन हैं । तो भी उनकी अथहीनता एक
विचित्र प्रकार की हैं–तत्ववाद के अ धकार–पूण अनथ स प्रकाशित करने मात्र की
ही निरथकता उस क्यो न मानें ! शिलक इस तरह क अ तर को स्वीकारना नही
चाहते । उनके अनुसार निकपण का सिद्धा त एक स्वयसिद्ध स्थिति है । यह काई
नवीन बात नहीं कहता । हमने जो सदव जाना है उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित
करने के अतिरिक्त और यह कुछ नहीं करता । इसक काई आश्चय नही कि उनक
साथी वस्तुस्थितिवादियो को न ता शिलक क और न विटजिस्टीन के निष्कर्षों से कोई
सतोष हुआ । एक स्वयसिद्ध भी एक सत्य है, तथा निरथकता प्रकाशित नही कर
सकती ऐसा इन लोगो का मत था । इसलिए उ होने दाशनिक सत्यो के वकल्पिक
विवरण की बात सोचनी प्रारम्भ करदी ।

प्रकट रूप से शिलक द्वारा साथकता की खोज एव सत्य की खोज के भेद
असमीचीन है । साथकता की खोज करना ही सच्च तकवाक्य को उपलब्ध करना

---

1 देखें उनकी कृति ल इकोले दे वियने एत ला फिलोसोफी ट्रेडीशनले (एक्चु
अलिटीज 1937), द्रष्टव्य एफ० वसमैन द्वारा शिलक के ग्र थ गेसामेल्टे औफसाजे
1926–36 मे लिखा गया आमुख तथा एच राइकनबक द्वारा मृत्युलेख (प्रक०
1936), पी० फैंक (प्रक० 1937) एव एच० फीगल (प्रक० 1639, ।

है। एक ऐसे तर्कवाक्य का जिसमें तर्कवाक्य के सही-सही अर्थ का भी पता लगता है किन्तु इन खोजों को तर्कवाक्य के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि कोई हम से पूछे कि कंदरावासी (ट्रोग्लोडाइट) का क्या अर्थ है हम निस्संदेह उत्तर देंगे गुहावासी। किन्तु यह उत्तर केवल प्रारम्भिक उत्तर होगा, क्योंकि इससे फिर एक प्रश्न उत्पन्न हो जाता है वह यह ठीक है किन्तु गुहावासी का क्या अर्थ है? किसी अभिव्यक्ति का अन्तिम अर्थ प्रकटाने के लिए या ऐसी अभिव्यंजना करने के लिए जो आगे के सभी प्रश्नों का मुंह बन्द कर दे हमें शब्दों से बिल्कुल परे जाना होगा। तब हमें केवल सीधे रूप में हाव भावों से वह सब बताना होगा जिसका हमारी अभिव्यक्ति से संदर्भ है।

हमें यह भी देखना है कि यद्यपि निरूपण सिद्धान्त तर्कवाक्य में सार्थकता खोजने की विधि है तो भी श्लिक के शब्द का परिभाषित करने की प्रणाली क्या है? श्लिक अभी भी यह बताना चाहते हैं कि कैसे एक शब्द की सार्थकता तर्कवाक्य की सार्थकता से सबद्ध है। फैक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स (एनालिसिस 1935) में वे यही चर्चा करते है। यहां वे तर्कवाक्य की निम्नांकित परिभाषा देते हैं– ध्वनियों या अन्य प्रतीकों की शृंखला (वाक्य), इनके साथ जब इन्हीं से सम्बन्धित तार्किक नियमों का प्रयोग हो। ये नियम हो जब प्रत्यक्षसिद्ध (डाइक्टिक) परिभाषाओं का प्राप्त कर लेते हैं तब वे किसी भी तर्कवाक्य में सार्थकता प्रकटा देते है।

किन्तु अब हमें यह पूछने का पूर्ण अधिकार हो जाता है कि इस तरह परिभाषित तर्कवाक्यों का निरूपण कैसे सम्भव होगा? न तो कोई प्रतीक न कोई नियम इस सम्बन्ध में कभी संयोजित होने की अवस्था में आएंगे। इसी तरह प्रतीकों के संयोजक तथा नियम किस तरह नियमों को अर्थ बता दे सकेंगे?

कदाचित् ऐसी ही कठिनाइयों के फलस्वरूप श्लिक को मीनिंग एण्ड वेरीफिकेशन (पी० आर० 1936) में लिखना पडा, केवल वाक्यों की, न कि तर्कवाक्यों की अपनी कोई सार्थकता होती है। नियम उनके अनुसार, अब प्रतीकों की अर्थसीमाएं हैं प्रतीकों से संयुक्त नियमों की नहीं। इसके बावजूद भी उन्हें यह मानने से कोई नहीं रोक सका (यह बात उन्होंने इस के बाद के ही पृष्ठ में लिखी) कि मूल रूप से निरूपण का सिद्धान्त तर्कवाक्यीय आकार का ही है। श्लिक के दर्शन में परम्परागत वस्तुस्थितिवाद जिसमें, निरूपण की ही सार्थकता है–और नव विचारवादियों में जिन्होंने वाक्य-प्रयोग के साथ सार्थकता का तादात्म्य स्थापित किया था एक सुलझाया न जा सकने वाला संघर्षपूर्ण तथा भेद देखा जा सकता है।

यह द्वन्द्वात्मकता अनवेरीफाइबिलिटी नामक उनके निबंध में काफी स्पष्ट रूप से सामने आई है। उन्नीसवीं शती के वस्तुस्थितिवादियों के समक्ष अर्थहीनता एक

ऐसी अवस्था थी, जिसका परीक्षण विज्ञान द्वारा किया जाना संभव नहीं था। इस परिभाषा के आधार पर उन्होंने बहुत से वैज्ञानिकों की उन धारणाओं को निरर्थक बताया है जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक सत्य के रूप में स्वीकृत मानकर चल रहे थे। उदाहरण के लिए तारों की रासायनिक रचना के विषय में बताने वाले बहुत से तर्कवाक्यों को इस तरह अर्थहीन करार दे दिया गया है। श्लिक अब अर्थहीनता की ऐसी परिभाषा प्रस्तुत करना चाहते हैं कि अमुक तर्कवाक्य की सार्थकता प्रस्तुत समय की वैज्ञानिक परिधि से बाहर की वस्तु हो गयी है। एक तर्कवाक्य उसी समय निरर्थक है जब 'सैद्धान्तिक रूप से भी अनिरूपणीय हो।' इसके उद्धरण में वे एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं 'बालक नंगा है किन्तु वह एक लम्बा नाइटगाउन पहने है।' श्लिक के अनुसार ऐसा कहना अर्थहीन है, क्योंकि नंगा शब्द का प्रयोग करने से नियम हम इस बात की इजाजत नहीं देते कि हम उन व्यक्तियों के साथ जो लम्बा गाउन पहने हों, इसका प्रयोग करें। जब हम तत्ववादी कथनों की जांच करने लग जाते हैं तो हमें पता लगेगा कि उनकी अर्थहीनता कुछ ऐसे ही प्रकारों के कारण हैं। वे तार्किक व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं। इसके वैकल्पिक रूप में विट्गेन्स्टीन ने भी इस स्थिति को ट्रैक्टेटस में यों प्रस्तुत किया-'हम देखते हैं कि तत्ववादियों ने अपनी धारणाओं में प्रयुक्त कुछ चिन्हों को कोई अर्थ नहीं दिया। दोनों ही स्थिति से एक तत्ववादी की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में नियमों से अयुक्त रह गई है, इसलिए सैद्धान्तिक रूप से निरूपण योग्य नहीं।'

इससे स्वाभाविक रूप से यही निष्कर्ष निकला कि निरूपण की मांग विशुद्ध तार्किक आधार पर ही की जा सकती है अर्थात् उसका निर्धारण उन नियमों से संभव है जो प्रतीकों को अनुशासित करते हैं, और इस तरह बना निरूपण योग्य एक वाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं—श्लिक कभी कभी इतना ही कहते हैं। वे लिखते हैं कि निरूपणीयता जो किसी वाक्य को अर्थवान करने का पर्याप्त आधार है वह तार्किक क्रम की ही एक संभावना मात्र है। इसकी सृष्टि ऐसे वाक्यों के रचने में निहित है जो पदों की व्याख्या या परिभाषा प्रस्तुत कर देने वाले पदों से निर्मित हो। निरूपण तार्किक दृष्टि से वहीं असंभव है जहां आपने ऐसे वाक्यों की रचना बिना इन नियमों का पालन किए की है और अब जिनके कारण निरूपण असंभव हो गया है।

इससे तो ऐसा लगता है कि अब पूर्णत अनुभवजन्य वस्तुस्थितिवाद की सार्थकता के निरूपण का परित्याग कर दिया गया हो। किन्तु श्लिक यह नहीं मानते कि उनका विचार परिवर्तन हो गया है। मापाई नियम मूलत प्रकट रूप से परिभाषित किए जाने वाले अनुभवों के आधार पर ही बने हैं। सार्थकता खोजने के लिए हमें संसार को देखना होगा। तर्क एवं अनुभव में कोई विरोधाभास नहीं है-और न

यह जरूरी ही है कि एक तार्किक ही अनुभववादी हो सकता है। यदि वह यह समझना चाहता है, कि वह क्या कर रहा है तो उसे दोनो म से एक होना होगा। यह निष्कर्ष, कि सार्थकता की खोज एक साथ ही तार्किक प्रवेषण भी है तथा अनुभववादी जांच पड़ताल भी किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर सके।

किसी भी स्थिति म जब श्लिक ने अनुभव' सबधी कोई अपनी मा यता प्रस्तुत की गम्भीर मुश्किलें उठ खड़ी हुई हैं। इन मुश्किलो को समझने के लिए हमें श्लिक के साथ उनके मौलिक निरूपण सिद्धा त की ओर लौटना होगा, जहा पर उन्होने निरूपण का अर्थात् सार्थकता का अनुभव मे बदले जाने योग्य स्थिति स तादात्म्य रखा है। ए न्यू फिलोसोफी ऑव एक्स्पीरिएन्स[1] म उन्होने लिखा है, कि तकवाक्य को समझने के लिए हम सही रूप म उन विशिष्ट परिस्थितियो का बताना होगा जो उसे सत्य बतान का कारण रही हैं तथा उन दूसरी विशिष्ट परिस्थितियो का भी जो उसे झूठा बना देंगी। परिस्थितियों का अर्थ है अनुभव के तथ्य और इसी तरह ये अनुभव किसी तकवाक्य के सत्यासत्य की विवेचना कर सकते हैं। अनुभव तकवाक्यो का निरूपण है और इसीलिए किसी समस्या के हल करने की कसौटी उसे समावित अनुभवो म बदला जा सकना ही है।

मैश की ही भाति श्लिक यहा पर उत्तर-योग्य एव अनुत्तर-योग्य प्रश्नों के भेद का वर्णन करते हैं। अनुत्तर-योग्य प्रश्न जसे 'जीवन की सार्थकता क्या है इस तथ्य पर आधारित हैं कि उनके सम्बन्ध म प्रस्तुत तथाकथित हलो म से किसी एक को उत्तरयोग्य मानने का कोई औचित्य नहीं है और न ऐसे हलो को अनुभव म परख कर देखा जाना ही समव है।

अब श्लिक के लिए अनुभव मन की ऐसी अवस्था है-जो मूलत मुझी को प्राप्त हो ऐसा नहीं क्योकि यह भी अनुभव से निर्मित हुआ है। किन्तु अब यह विश्लेषण करने से मुझ से सबद्ध लगने लगा है। यह कहना निरर्थक है कि दूसरे लोगो को पास मन है या नहीं-यह प्रश्न उत्तर योग्य नहीं है, क्योकि दूसरा के मन को सद्धान्तिक रूप से मेरे अनुभवों' मे रूपायित किया जाना असभव है। इस तरह अनुभवजन्य निरूपणीयता उस मानसिक अवस्था का निरूपण ही है जिसे अकेला म अनुभव कर सकता हू। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सद्धान्तिक रूप स मेरे अलावा किसी के द्वारा भी यह निर्धारित करने का कोई आधार नहीं है, कि कोई तकवाक्य निरूपणीय है या अनिरूपणीय। चूकि सार्थकता एव निरूपणीयता म तादात्म्य है इस लिए हम स्पष्टत ही इस अजीब निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि

---

1 पब्लिकेशस इन फिलोसोफी स० द कोलेज आफ द पसेफिक (1932)।

वास्तव म केवल मैं ही यह जान सकता हूं कि एक तकवाक्य का क्या ग्रथ है? किसी ग्रौर के विपय म यह कहना कि 'वह जानता है कि ग्रमुक तकवाक्य का क्या ग्रथ है,' निरथक है।

श्लिक इस निष्कप से बचने क प्रयास मे रसेल–पोइनकेयर के इस दृष्टिकोण का समथन करते हैं कि वज्ञानिक ज्ञान सदव ही सरचना का नान है जा ग्रनुभव म जीन या उसे भोगने स भिन्न है। उदाहरण के लिए जब हम हरे रग की सवदना का उपभोग करते हैं, तो श्लिक क ग्रनुसार यह ग्रनुभव निजी हाता है। दूसरे नोग भी निस्सदेह उस वक्त हरे शब्द का प्रयोग करते है जब व पत्ती को देखते हैं। इसस यह निष्कप नही निकलता, कि उ है भी वही ग्रनुभव हुग्रा। उनके ग्रनुभव की विपय वस्तु वही है। जितना हम ग्रधिक स ग्रधिक जान सकते हैं ग्रौर जितना एक वैज्ञानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्रधिक स ग्रधिक हमारे जानने योग्य है, यही है कि सरचना-सवध उनके ग्रनुभवो एव हमारे ग्रनुभवो क वीच मेल खाते हैं। भौतिक-शास्त्रियों के लिए इस दृष्टिकोण स 'हरा' किसी ग्रनुभव का नाम न होकर सवधो से जुडी प्रणाली के एक ग्रभिधान का नाम है जसे कि रगीन चाट। विकसित भौतिकी म हरा' जसे शब्द की गरज में पूणत गणितीय ग्रभिव्यक्तिया रखी जा सकती हैं। इस तरह विशुद्ध भौतिकी के तकवाक्य पूणत ग्राकारी हैं।[1]

किन्तु इन तकवाक्यो का क्या ग्रथ है? एक ग्रोर श्लिक को हम यह कहत हुए देखते हैं कि सरचनात्मक होने के कारण उसका ग्रथ सरचना के ग्रलावा ग्रौर कुछ नहीं हो सकता ग्रर्थात ऐसा कुछ नही हो सकता जो सावजनीन हो एव प्रत्यात्म-निष्ठ (इटरसब्जेक्टिव) हो। इसके साथ ही वे इस शक्ति से ग्रनभिज्ञ नही है कि बिना विपय वस्तु के ग्राकार खोखला है। इस तरह हम उ हें यह मानते हुए देखते हैं कि वज्ञानिक प्रणाली का खोखला ग्राकार, एक विपय वस्तु स भरा जाना ग्रावश्यक है। इससे विनान वास्तविक नान से सम्बध सही विनान हो सकेगा ग्रौर यह सब पयवेक्षण या ग्रनुभव से ही सम्भव होगा। वास्तविक नान को गणितीय समरूपताग्रों से परे किसी न किसी रूप मे विपय वस्तु स जुडना होगा क्योंकि वह निरतर उनका केवल सदभ देकर नही रह सकता।

ऐसी विपय वस्तुए ग्रसम्प्रपणीय एव निजी हैं। प्रत्यक दशन उसम ग्रपनी विपय वस्तु भरता है ग्रौर इस तरह ग्रपने प्रतीको को ग्रद्वितीय ग्रथ देता है ग्रौर सून ग्राकारो को इस प्रकार भरा जाना उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई बालक

---

1 द्रष्टव्य 1932 में लदन म श्लिक द्वारा फाम एण्ड कण्टेण्ट विपय पर दिए गए भापण, जिन्ह श्लिक न तो प्रकाशित नहीं करवाया, किन्तु जो गेसामेल्टे ग्राफसाजे मे प्रकाशित हो गए। मूलरूप स ग्रपनी पूव विटगिंस्टोनकालीन रचना ग्रालेमैने ग्रकॅम्टनिस्लेहर (1911)।

रेखाओं से खिंचे किसी चित्र में रंग भरता है। इससे लगता है कि वैज्ञानिक कथनों की अंतरिम सार्थकता भी अन्ततः अबूझ है। एक वस्तुस्थितिवादी के लिए यह निष्कर्ष निकालना विचित्र ही हो सकता है। अब श्लिक के तत्वदर्शन की यह परिभाषा कि वह आकार से परे विषय की ओर जाने का मार्ग है और उनके द्वारा विषयवस्तु पर किया गया विमर्श यह सब उनके साथी वस्तुस्थितिवादियों की दृष्टि में इसलिए खण्डन योग्य है क्योंकि यह तत्ववादी है।

कारनेप के इस निश्चय ने ही कि व रूप विषय के इस द्वंद का निवारण कर दें उनके दर्शन के विकास में बड़ी सहायता की है। सर्वप्रथम लोजिकल कंस्ट्रक्शन आव द वर्ल्ड (1901)[1] नामक ग्रंथ में उन्होंने श्लिक के सिद्धान्त को अख्तियार किया है इसके बावजूद भी कि स्वयं उनकी दार्शनिक विचारधारा श्लिक से भिन्न थी। श्लिक अपने आपको सुकरात का शिष्य ही मानते थे तथा उनकी शैली एक प्रणाली–निर्मायक की अपेक्षा साहित्यिक थी। कारनेप, जो फ्रेगे के शिष्य थे, इसके विपरीत हैं, जिन्होंने दार्शनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा उन थोड़े से समसामयिक विचारकों में से ... प्रतीकात्मक तर्क का उपयोग किया।

इस तरह व 'आदिम प्रत्ययों' की एक ऐसी सृष्टि की रचना करना चाहते हैं जिसे आदिम सम्बन्धबोधकों से जोड़ा जा सके। अपने प्रारम्भिक प्रयत्नों के रूप में वे अनुभव प्रवाह में स्वतः आने वाली अंतर्धाराओं (क्रास सेक्शंस) का चुनाव करते हैं रसल की भांति केन्द्रीय संवेदन का नहीं। आदिम होने के कारण ये अंतर्धाराएं आगे और किसी विश्लेषण को स्वीकार नहीं करतीं। इस अंतःप्रवाह स्थिति में हम मूलभूत तत्वों के रूप में जिन्हें देखते हैं (जैसे रंग आदि) उनका निर्माण आदिम सम्बन्धों से ही होना चाहिए। यह सम्बन्ध 'समानता के अभिज्ञान' का सम्बन्ध हो सकता है।

---

1 इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हुआ है—और इंगलैण्ड में इसका प्रभाव भी नगण्य रहा है। अमरीका में फिर भी यह पुस्तक नेल्सन गुडमैन की प्रेरक रही जिनके ग्रंथ द स्ट्रक्चर आव एपीयरेंस (1951) में कारनेप की पुस्तक की बड़ी ही सुकर एवं अच्छी विवेचना है। गुडमन द्वारा स्वयं एक रचनात्मक दर्शन के निर्माण के लिए किये गये प्रयास के सम्बन्ध में देखें एम० क्यूमेट द्वारा माइण्ड 1955 में की गई आलोचनात्मक टिप्पणी। जी० बर्गमन कृत द टाइम्स आव लिंग्विस्टिक फिलोसोफी (आर० एम० 1952) एवं द मैटाफिजिक्स आव लोजिकल पोजिटिविज्म (1954) वी० ल वी एवं एच० वांग द्वारा गुडमन की व्यक्तिवादी धारणा पर टिप्पणी एवं सी० जी० हेम्पेल की टिप्पणी (पी० आर० 1957 में) देखें।

इस उद्देश्य के लिए बहुत सी चातुर्यपूर्ण तकनीकी क्रियाओं का अन्वेषण करके कारनप अनुभवाशों को गुणात्मक वर्गों से 'समानता के अभिज्ञान' के सिद्धान्त के आधार पर जोड़ देते हैं। तब वे ही उनके मतानुसार बोध-वर्ग (स म क्लास) में बदल जाता है। यदि समानता की शृंखला से आबद्ध हो ता दो गुण-वर्ग एक ही बोध-वर्ग की जाति में आते हैं। उदाहरणार्थ कोई दो रंगों को किसी माध्यम से एक रूप दिया जा सकता है, जबकि एक रंग एवं एक स्वर जो परस्पर इस तरह सम्बद्ध नहीं हैं, दो विभिन्न वर्गों के हैं। बोध-वर्ग, संवेदन क्षेत्र' के ही अंग हैं और कारनैप के अनुसार उनकी परिभाषा आयामी पदों म की जा सकती है। 'श्रवण संवेदन क्षेत्र' केवल द्वयायामी चाक्षुष संवेदन क्षेत्र' पचायामी बोधवर्ग है। 'श्रवण सवेदन क्षेत्र केवल द्वयायामी बोधवर्ग है। इसी प्रकार गुणों की परिभाषा भी पूर्णत आकारी एवं सरचनात्मक तरीके से की जा सकती है। 'लाल रंग को ऐसे समानधर्मी वर्ग के रूप में परि भाषित किया जा सकता है जो पचायामी प्रणाली में कहीं न कहीं, कोई स्थान रखता ही है। कारनप तब सामान्य भाषा में इसकी व्याख्या करते हुए एक ऐसी प्रणाली निर्मित करते हैं जिसके जरिए वस्तुए गुणों से अलग होने पर भी आकार रूप में निर्मित मानी जा सकती हैं जबकि पुस्तक का यह भाग केवल मात्र एक खाका है। यही एक

कारनैप की आकारी रचना बहुत सी कठिनाइयों से भरी है। यही एक कारण है कि वे आफबाऊ में घोषित अपनी योजना का कभी समापन नहीं कर पाए। इसका मूलभूत कारण यह है कि वह इस पुस्तक की मूल स्थापना से ही असंतुष्ट थे। विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का सामान्य जगत् कभी भी निजी अनुभवों के अंत प्रभावों से निर्मित नहीं हो सकता। इस तरह तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के प्रारम्भिक सूत्रों को अमान्य करके वे इस वृत्त के प्रगतिशील सदस्य एवं तत्वदर्शन के प्रबल भजक ओटो न्यूरेथ से काफी प्रभावित थ।

श्लिक के लॉक के स्थान पर बकल को आगे करके न्यूरेथ ने यह कहा कि वाक्यों की तुलना केवल वाक्यों से ही हो सकती हैं अव्यक्त यथार्थ[1] से बिल्कुल नहीं

1 श्लिक एव न्यूरथ के बीच रहे सुवाद के लिए देखें एवचुअलिटीज (1935) इसमें श्लिक की उनर देस फण्दोमेन्त दर एरेकेन्तनिस नामक रचना का फ्रेंच अनुवाद है। यह एक ऐसी रचना थी जिसने न्यूरथ को विशेषत उनके विरुद्ध उग्र बनाया। देखें फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स में। तथा श्लिक के निबंध सुर लस को स्टेटेशन। न्यूरथ के उत्तर के लिए देखें ले डेवलेपण्ट डू सरकिल डे वियने'। जी० सी० हैम्पेल द्वारा की गई श्लिक की आलोचना 'द लोजिकल पोजिटिविस्ट थ्योरी आव ट्रूथ' नामक निबंध में (एनालिसिस 1955) एवं बी० वान जुहास कत एम्पिरिसिज्म एण्ड फिजिकलिज्म' (एनालिसिस 1955) यह बादकी रचना अधिक रूढ़िवादी वस्तुस्थिति वादियों की न्यूरथ के नवान्वेषणों के प्रति एक प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं।

अब लगता है कि निरूपण परस्पर वाक्यो के बीच रहे सम्बन्धो के जरिये ही सम्भव था न कि अनुभव एव वाक्यो के पारस्परिक सम्बन्धो के जरिए। वाक्यो को अधिकृत वाक्यो के माध्यम से निरूपित किया जाना है। ऐसे वाक्यो का, यूरेथ के सुझावानुसार बिल्कुल आकारी स्तर का माना जा सकता है और उन्हे ऐसे सरचनात्मक रूपो म रखा जा सकता है। यह बात उन्होंने अपने निबन्ध प्रोटोकोल साज (अक० 1922) मे लिखी। जस ओटो की रिपोर्ट 3 17 सायकाल ओटो के मापण सम्बन्धी विचार 3 16 सायकाल व 3 15 मिनट पर ओटो अपने कमरे मे थे तथा वहा पर उन्होंने एक मेज देखी थी। अधिकृत वाक्य असशोधनीय नही है यह मानना कि ऐसे प्रश्नरहित अधिकृत प्रमाणविकी या सूत्रवाक्यो का रचा जाना सम्भव है, तत्ववादी खोज मे अन्तरिम स्थापनायें करने का स्वप्न देखना है।

श्लिक ने यह माना था कि सभी वज्ञानिक तकवाक्य सशोधन योग्य हैं। इससे यह अथ निकला कि विज्ञान की असशोधनीय धारणाए तकवाक्य नहीं हैं किन्तु वे अनुभव के साथ सीधे अ-क्रियापदी (नान वर्बेलाइजेबल) सपक (कान्स्टटेशन्स) हैं। अव्यक्त को तत्ववादी मानकर परित्यक्त करते हुए किन्तु श्लिक के इस मत को स्वीकारते हुए कि अनुभववादी कथन सदव ही सशोधन योग्य है, यूरथ यह मानने को बाध्य थे कि अधिकत कथन इस मामले म अन्य सभी अनुभववादी कथनो के ही समानान्तर हैं। यदि कोई नया वाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किया जाय तो हम उसकी तुलना उस प्रणाली म करते हैं जिससे हमारा सबध है' हम उस प्रणाली का परीक्षण यह देखने के लिए भी करते हैं, कि नया वाक्य उसके अनुकूल है या नही। यदि नया वाक्य इस प्रणाली के विरोधाभास मे खडा हो जाय तो हम उसे अप्रयोज्य (इन एप्लीकेबल) या दोषयुक्त मानकर त्याग देते हैं अन्यथा हम उस पहल स्वीकार लते है फिर प्रणाली को बदल देते हैं ताकि यह उस समय के बाद स्वत सगत रह सके जब नया वाक्य उससे सयुक्त हो। इस प्रकार न्यूरेथ द्वारा प्रस्तुत तत्वदशन पर प्रहार उन्हे लौटकर सत्य के समवायी सिद्धान्त की ओर प्रवृत्त कर देता है जिससे हम पूव परिचित हैं और जिसे हमने परम-प्रत्ययवादियो द्वारा उपयोग म लाये जाते हुए देखा है। इसमे आश्चय नही कि उनके लिए भी पारवतन (ट्रा सेन्डन्स) एक महान शत्रु था।[1]

---

1 नोट करें न्यूरथ के कथनो एव जम्स के सत्य के सिद्धान्त में एकरूपता (अध्याय 5)। अमरीका म तार्किक वस्तुस्थितिवाद सहजता से वातावरणानुकूल हो गया। दूसरी दशाब्दी के उत्तराश म उन्हे वहा भाषण के लिए निमत्रण दिया गया था तत्पश्चात् बहुत से प्रमुख वस्तुस्थितिवादी (कारनप, बगमन, फीग्ल एव फ्रेंक) जो अमरीका मे ही बस गए खास कर उस समय जब जमनी एव आस्ट्रिया

न्यूरेथ के अधिकत वाक्य प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओ से भी सर्दामत हैं, जिनकी व्यवहारवादियो की भाति जीवशास्त्र प्रक्रिया के जरिए व्याख्या की जानी चाहिए । यही कारण है कि वास्तव म न्यूरेथ के अधिकत वाक्य प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओ का सबध सावजनिक रूप से पहचाने जा सकने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियो के साथ जोडते हैं आत्मपरक नानमीमासा के 'मैं' से नही । इनसे उन्हे यह आशा है कि वे पूणत सभी दुगम अनुभवो के मदम को मेट देंगें । उनके हाथो म तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद व्यवहारवाद के साथ साथ अपना गठबन्धन कर लेता है । अनुभव सबधी सभी कथन उनके अनुसार, भौतिक शास्त्रीय भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति किये जा सकते हैं । अर्थात् दिक् एव काल म होने वाली प्रक्रियाओ का मदम देकर यह सब किया जा सकता है । यही न्यूरेथ के भौतिकतावाद (फिजिकलिज्म) का सार है जो उनके विनान की एकता पर किये गये शोध से काफी सबधित है । चूकि सभी अनुभववादी कथनो को भौतिकी की भाषा मे व्यक्त किया जा सकता है अत जो इस प्रकार व्यक्त न किए जा सकें वे या तो अथहीन वाक्य हैं या पुनरुक्तिया । आध्यात्मिक विनान का कोई ऐसा स्थान नही है, जिससे उस प्रकृति विनानो की प्रतिस्पर्द्धा मे खडा किया जा सके । सभी विज्ञान समान रूप स प्राकृतिक हैं और इसी कारण एकता मे बधे है[1] ।

मे विचारको पर अत्याचार किये जाने शुरू हो गए । सी० डब्लू० मौरिस ने खास तौर पर अपने आपको अथक्रियावाद एव वस्तुस्थितिवाद के बीच मे सम्पक अधिकारी का काम करने के लिए सुपुर्द कर दिया था । द्रष्टव्य लोजिकल पोजिटिविज्म प्रग्मेटिज्म एण्ड साइण्टिफिक एम्पिरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937) ।

1 प्राकृतिक एव आध्यात्मिक विनानो म रहा भेद जसा हम पहले देख चुके है-(अध्याय 4, नोट) यारप महाद्वीप मे व्यापक रूप से स्वीकृति पा चुका था, चाहे इग्लण्ड मे इसका थोडा बहुत भी प्रभाव नही पडा हो । प्रशिक्षण से समाजशास्त्री होने के कारण न्यूरथ इस मत के विरुद्ध लडने को तयार थे कि समाजशास्त्र अपनी प्रकृति से ही अनुभववादी जाच पर आश्रित नही है । विनानो की एकता की धारणा उनके हृदय के बहुत करीब थी । इसके नाम से उन्होने काग्रेसो को सगठित किया जिनम स पाच की रिपोट 1934 से 40 तक के एर्कन्तनिस के मझो मे छपी । वे एन्साक्लोपेडिया आव यूनीफाइड साइन्स (1938) के प्रमुख सम्पादक थे । उनके दाशनिक महत्व की बात पर अभी विस्तार से चर्चा नही हुई है । हलचल करना ही उनकी किले बन्दी थी । देखें वाउल्मिन द्वारा न्यूरेथ के लेख ले डवेलपमेण्ट ड सर्कल डे वियने की भूमिका, एच० एम० केलन द्वारा लिखित मृत्युलेख पी० पी० आर० (1946), डे० लेयड द्वारा चेम्बस एनसाइक्लोपेडिया (1950) म न्यूरथ पर लिखा अश । भौतिकवातावाद क लिए देख सी० ए० नेस कृत फिजिकलिज्म (पी० ए० एस० 1936) ।

न्यूरथ के नवान्वेषणों ने इसी वृत्त में ही काफी हलचल उत्पन्न कर दी, किन्तु कारनप के रूप में उन्हें एक शक्तिशाली सहयोगी मिला, चाहे कारनप ने उनकी आलोचना ही क्यों न की। कारनप ने न्यूरथ का भौतिकतावाद तथा विज्ञान की एकता का सिद्धान्त स्वीकार किया, चाहे अधिकृत कथनों के विषय में उनकी राय उनसे कुछ भिन्न रही हो। द यूनिटी ग्राव साइन्स[1] में जिसका न्यूरथ ने प्रोटोकोलसा लिखकर उत्तर दिया था, उन्होंने अधिकृत कथनों की परिभाषा ऐसे वाक्यों से की थी जो प्रस्तुत का संदर्भ देते हों या प्रस्तुत अनुभव या घटना को सीधा व्यक्त करते हों। या फिर (आकारी रूप में ही) ऐसे कथनों के रूप में जिनके औचित्य की आवश्यकता न हो और जो विज्ञान के शेष कथनों के लिए स्थापकों का कार्य कर सकें। इस तरह वे अप्रशोधनीय स्थापक वाक्य हो जाते हैं जिन्हें न्यूरथ ने तत्ववादी कहकर खण्डित किया है। इसके अतिरिक्त कारनप अधिकृत कथनों के सही रूप के विषय में अनिश्चित है। तो भी जिनका वे प्रचार करते हैं, उनमें से एक भी समावना किसी दर्शक का संदर्भ नहीं देती। अधिकृत कथन उनकी दृष्टि में अनुभव को रिकार्ड करते हैं किन्तु किसी अनुभोक्ता का नाम नहीं देते।

कारनप का अधिकृत कथनों का सिद्धान्त द यूनिटी ग्राव साइंस के लिए पर्याप्त है। प्रत्येक अधिकृत वाक्य एक निजी अनुभव का रिकार्ड करना मात्र है। तब फिर कैसे ये वाक्य सार्वजनीन स्थापनाओं का काम करेंगे एवं अंततः सत्यापनीय वाक्यों के विज्ञान का आधार कैसे सिद्ध होगा इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में वे आरम्भ से ही यह मान कर चलते हैं कि विज्ञान में एकत्व है और सभी अनुभववादी कथनों को एक भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। सब मामलों की अवस्थाएं एक ही प्रकार की हैं और उन्हें एक ही प्रणाली से जाना जाता है। स्पष्टतः किसी ने भी कभी इस बात से इंकार नहीं किया है कि सभी अनुभववादी कथनों को एक भाषा में व्यक्त किया जा सकता है (जैसे अंग्रेजी में)। किन्तु कारनप की रचनाओं में भाषा का तब एक दूसरा भिन्न अर्थ है। इस अर्थ में कि अर्थशास्त्र की भाषा भौतिकी की भाषा से भिन्न हैं।

एक भाषा इस तथ्य से बनी है, कि उसका शब्दभण्डार पर्याप्त है। उसमें आदिम प्रत्ययों के समूह होते हैं या फिर मूलभूत धारणाओं के। एक वाक्यसंघटना अनुवाद करने के निश्चित नियम एक तरह के वाक्यों को दूसरी तरह के वाक्यों में बदलने के नियम (चाहे उस भाषा में ही हो या उसके बाहर की किसी भाषा में)

1 सर्वप्रथम (अंक०—1932) में प्रकाशित उसका डी फिजिकालिशे स्प्राखेअल्स यूनिवर्सल स्प्राखे देर विसनसेखेफ्ट शीर्षक का लेख अंग्रेजी अनुवाद 1934 में साइके मिनिएचर के रूप में।

आदि होते हैं। एक भाषा में व्यक्त किए जा सकते है का यही अर्थ हुआ कि आधारभूत अभिव्यक्तियों का एक निश्चित इकाई है, जिसमें सभी अन्य प्रकार की अभिव्यक्तियों का अनूदित किया जा सकता है और अनुवाद की यह विधि एक ही तरह का है जिसका प्रयोग सभी अनुभववादी कथनों पर समान रूप से हो सकता है।

न्यूरथ का अनुसरण करते हुए कारनप यह तक करते हैं कि यह मूलभूत भाषा भौतिकी की ही भाषा है-जिसमें विशिष्ट सर्वाजकों की इकाई के साथ भौतिक अवस्था के गुणांक का एक निश्चित मूल्य या मूल्यक्रम प्रस्तुत कर दिया जाता है। विज्ञान के सभी तकवाक्यों की रचना इस आधार के जरिए की जा सकती है। उनके सामने समस्या यही देखने की है कि क्या यह बात समान रूप से अधिकृत कथनों के साथ भी लागू होती है या नहीं? अनुभव के य व सीधे रिकार्ड हैं जिन पर वैज्ञानिक कथन आश्रित है। कारनप की दृष्टि से विज्ञान असम्भव है जब तक कि अधिकृत कथन इस प्रकार अनुवादयोग्य नहीं है। श्लिक की भांति यह कहना ही काफी नहीं है कि विज्ञान केवल संरचना में ही रूचि रखता है। अन्तत वैज्ञानिक तकवाक्यों का भी परीक्षण किया जाना चाहिए-अनुभव के संदर्भ से, एवं इसका यह अर्थ हो गया कि संरचना एवं अनुभव दोनों को एक ही भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकना संभव होना चाहिए।

यह बताने के लिये कि अधिकृत कथन कैसे वैज्ञानिक ढंग से व्यक्त हो सकते हैं कारनप न्यूरथ के भौतिकतावाद का पल्ला पकड़ते हैं। 'प्रत्येक अधिकृत कथन को मेरे शरीर की अवस्थाओं के विषय में भी अनूदित किया जा सकता है। हमारे पास यह निश्चित करने के तरीके हैं कि स नामकी अमुक काया अब लाल रंग देख रही है (अर्थात् स से यह कह कर कि जब भी वह लाल रंग देखे तो वह एक बटन दबा दे।) और स की काया अब लाल रंग देख रही है' यह उनकी दृष्टि में इस अधिकृत कथन 'अब लाल' का तार्किक रूप से समानार्थी है। यह समानार्थकता कारनप को वह सब दे देता है जिसकी अपेक्षा व करते हैं। यदि कोई आपत्ति करे, 'ठीक है, किन्तु लाल अनुभव करने से मेरा जो आशय है वह मुझे लाल उत्प्रेरक का प्रतिक्रिया में देखते तुमसे बिल्कुल ही भिन्न है। कारनप की दृष्टि में वह यहां अर्थ का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग नहीं कर रहा। यदि दो कथन तार्किक रूप से समानार्थी हैं यदि प्रत्येक का एक दूसरे से अनुमान लगाया जा सकता है, तो उससे यही ध्वनित होता है कि उनका अर्थ भी एक ही है। दो कथनों के बीच का भेद केवल अर्थ से सम्बन्धित नहीं होगा। यह विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों के आधार पर होगा।

जब न्यूरथ कारनप पर प्रहार करते हैं उनके निरंतर यह मानने के लिए कि कुछ तक विषय अनुभव के सीधे रिकार्ड हैं तो कारनप (यूबर प्रोकोल्साज 1932) में उसका यह उत्तर देते हैं कि न्यूरथ एवं उनमें कोई मौलिक विवाद नहीं है। व

तो केवल मात्र विज्ञान की भाषा की रचना के विभिन्न जरिए सुझा रहे थे। कारनप का कथन है कि अधिकत कथन विज्ञान भाषा की परिधि से बाहर के हैं अर्थात् उनकी सरचना भाषा मे बनी बनाई नही होती, चाहे भाषा मे उन्हे अनूदित करने के विशेष नियम ही क्यो न बने हो। जबकि न्यूरथ का मत है कि वे भाषा के क्षेत्र म ही पडते हैं उनका एक निश्चित रूप होता है और इसीलिए अनुवाद का कोई प्रश्न ही नही उठता। यह मान्यता का मौलिक अ तर है जो कारनप की दृष्टि मे अनुभव के जरिए ही हल हो सकता है। एक सगत भाषा या तो उनके या फिर न्यूरथ के मार्ग पर ही निर्मित हो सकती है। यहां दोनो के बीच का विकल्प इस बात पर टिका होगा कि दोनो म से कौनसी अधिक सुविधाजनक ह इसके अतिरिक्त और कोई कारण मामले पर असर नहीं डाल सकता। कारनप स्वीकारते हैं कि उनकी भाषा म न्यूरथ की अपेक्षा तत्वदर्शन की ओर ले जाने का अधिक खतरा है। उनकी स्वय की दिशा इस दृष्टिकोण की ओर काल पोपर से विचार विमर्श करने के कारण मुड गई थी। और न्यूरथ के विरोध मे वे यह मानने लगे थ कि दर्शक का सन्म देने वाले तर्कवाक्यो की ही बात नही है बल्कि कोई भी एक तर्कवाक्य अधिकृत कथन का काम कर सकता है। किन्तु वे न्यूरथ से सहमत होते हुए कहते हैं कि इन वाक्यों को पहले से ही विज्ञान की भाषा मे अभि यक्ति मिल चुकी है।

कारनप द्वारा न्यूरथ को परिपाटीवादी प्रकृति से दिया गया उत्तर अपनी उच्चतम अवस्था तक उस समय पहुच जाता है जब कारनप की काफी प्रभावशाली पुस्तक द लोजिकल सिण्टेक्स आव लग्वेज (1934) प्रकाशित होती है जिसमे कारनप वतमान तर्कशास्त्र के अभिनव विकासमार्गों के आधार पर (सदर्भ अध्याय 18) इस बात की धारणा का कि सहिष्णुता का सिद्धान्त क्या है प्रतिपादन करते हैं। तर्कशास्त्र म कोई नैतिक मान नही होते। प्रत्येक को अपना तर्क रच लेने की स्वतत्रता है-अर्थात् जसा वह चाहे वसी भाषा का प्रयोग करने की स्वतत्रता है।' कारनप की दृष्टि म दर्शन तर्कशास्त्र की ही एक शाखा है। वे उसे विज्ञान का तर्कशास्त्र कहते हैं। दर्शन हमे पारवर्ती इयत्ताओ की सूचना नही देता क्योकि ऐसी इयत्ताओ का सदर्भ दने वाले सभी वाक्य अर्थहीन होते हैं। इसके बहुत से तर्कवाक्य नीतिशास्त्र के तत्वदर्शन सबधी तर्कवाक्य, भावना को यक्त तथा उत्प्रेरित करते हैं (लग की शब्दावली मे वह एक प्रकार के गीतिकाव्य हैं) किन्तु ससार क विषय मे कुछ भी नही कहते। तत्वदर्शन के व तर्कवाक्य, जो हमे किसी बात की सूचना देते हैं, उदाहरण के लिए ज्ञान मीमासा के कुछ तर्कवाक्य, व सब मन-सम्ब धी अनुभववादी विज्ञान (मनोविज्ञान) की ही सीमा म आते हैं। दर्शन की सीमा म आन के बजाय उसके द्वारा किए गए इस शल्य काय के पश्चात् भी जो कुछ शेष रह जाता है वह सब या तो वज्ञानिको द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा का ही विवरण

मात्र है या उस भाषा का संशोधन करने का प्रयास मात्र। मैश ने कहा भी था कि मैशियन दर्शन सर्वोपरि नहीं है, सर्वोपरि है वैज्ञानिक रीतिविधान। कारनप यह घोषणा करते हैं कि जब तर्कशास्त्र की भाषा निस्सार समस्याओं की जटिलता में उलझ जाती है, तब वह दर्शन के नाम से जानी जाती है।

दर्शन की ऐसी भाषाई व्याख्या की धारणा स्वीकार करने में बड़ी मुश्किल है क्योंकि दर्शन के तर्कवाक्य विभिन्न प्रकार की इयत्ताओं के विषय में होते हैं जैसे संबंधों, गुणों, अंकों, अर्थों आदि आदि के, जो स्पष्टतः भाषाई रूप नहीं है। इस आपत्ति का उत्तर देने के लिए कारनैप तीन प्रकार के वाक्यों का भेद प्रस्तुत करते हैं। व्याकरणसम्मत वाक्य भाषा का ही वर्णन करते हैं। एक प्रयोजन वाक्य (आब्जेक्ट सेंटेंस) जो एक पदार्थ का वर्णन करता है तथा आभासी प्रयोजन वाक्य (स्यूडो आब्जेक्ट सेंटेंस) जो दर्शन में बहुलता से मिलते हैं, वे प्रयोजन वाक्य दिखाई तो देते हैं, लेकिन विश्लेषण करने में मात्र व्याकरण सम्मत लगते हैं।

इस प्रकार यह दार्शनिक कथन कि 'पांच एक वस्तु नहीं है—एक अंक है' उनकी दृष्टि में इस प्रयोजन वाक्य के समानान्तर नहीं है। पानी क्षारीय नहीं है—अम्लीय है' इस प्रस्तुत समानान्तरण का दो तरह से अमान्य किया जा सकता है। यह प्रमाणित करने के कोई ऐसे अनुभवसम्मत परीक्षण नहीं हैं जिनके जरिए यह बताया जा सके कि पांच एक वस्तु है या एक अंक। यह ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो लिटमस कागज के उपयोग की भांति यह बताए कि अमुक चीज क्षारीय है और अमुक अम्लीय। दूसरी ओर दार्शनिक वाक्यों को व्याकरण पदों में बदला जा सकता है—जो उसके आकार को ही व्यक्त करते हैं, जैसे पांच कोई वस्तु शब्द नहीं हैं किन्तु आंकिक अभिव्यक्ति है, जबकि क्षार या अम्ल का ऐसा कोई व्याकरण सम्मत अनुवाद नहीं है। दार्शनिक सामान्यतः भौतिक अवस्थाओं से प्रारंभ करते हैं, अर्थात् वे वस्तु शब्दों के स्थान पर वस्तुओं के विषय में ही चर्चा करते हैं, अंकीय अभिव्यक्तियों के स्थान पर अंकों का ही प्रयोग करते हैं। यह प्रक्रिया अपने आपमें अलाभकारी नहीं है किंतु इससे सहजता से हम तत्वदर्शन की ओर चले जाएंगे और अंक संबंधी प्रकृति की छलपूर्ण समस्या में उलझ जाएंगे।

इसी प्रकार कारनप की मान्यता है कि अर्थ या विषयवस्तु का ध्वनित करने वाले सभी वाक्य आभासी कथन हैं। इस तरह यह वाक्य 'कल के भाषण में बेबीलोन का जिक्र था,' इससे ध्वनित तो यह होता है जैसे कल का भाषण बेबीलोन नामक किसी इयत्ता से जुड़ा हो जबकि यह वास्तव में बेबीलोन के विषय में कुछ भी व्यक्त नहीं करता। यहां केवल वाक्य की रचना में बेबीलोन नामक शब्द के स्थित रहने भर का संकेत मिलता है। आकारी अवस्था में इसको

तब ऐसे गढा जाना चाहिए कल के मापए म ववीलोन नामक शब्द प्रयुक्त हुआ । इसी भाति 'दिन का तारा शब्द सूय का प्रतीक है।' इस आकारी अवस्था मे रूपा तरित होगा शब्द दिन का तारा सूय शब्द का ही पर्याय है । यदि दाशनिक ऐसे अनुमान का सदव ध्यान रक्खे, तो कारनप की दृष्टि मे सभी विवाद कि 'अथ क्या है' हमेशा के लिए विलीन हो जाएगे ।

स्पष्टत ही दिन का तारा एव सूय नामक शब्द एक भाषा म पर्याप्त हो सकते हैं दूसरी भाषा मे वे सभवत न हो । जसे फिन एव एक्सेलन्ट नामक शब्द फ्रेंच भाषा मे पर्यायवाची हैं जबकि अ ग्रेजी म नही । पर्याय सम्बन्धी कथन तब भाषा-सापेक्ष हैं । कारनप के अनुसार सभी दाशनिक स्थापनाओं के विषय मे भी यही है । विटजिस्टीन श्लिक तथा विशेषत कारनप ने अपनी प्रारंभिक रचनाओ म भी यही माना कि सभी वाक्य एक भाषए के अ श के रूप म काय करते हैं-ताकि वाक्य या तो पूरात पुनरुक्त अथवा अपुनरुक्त साथक या निरथक होना हैं । लोजिकल सिण्टेक्स आव लग्वज मे इसके विपरीत कारनप का कहना है, कि यह निराय कि एक वाक्य पुनरुक्त है प्रयोग मे लाई गई भाषा स काफी सबद्ध है । जितने प्रकार की रचना करना चाहे उतने प्रकार की भाषा हमारे लिए विद्यमान है और सुविधा क अलावा और कुछ भी उन्हे अनुशासित करने के नियम निर्धारित नही हैं । एक दाशनिक कथन, आकारी अवस्था म भी पूरात अभि यक्ति नही माना जायगा जब तक उसम उस भाषा का मदम विद्यमान न हो जो काम मे लाई जा रही है । एक बार यह शत पूरी हो जाय तो दाशनिक झगडे खत्म हो जाएग । न्यूरथ भी कारनप के साथ इस बात मे सहमत थ कि वे तथ्यो सबधी विवाद नहीं होकर, भाषाई रचना के वकल्पिक विधान है ।

उदाहरण के लिए जब कोई गणितीय दाशनिक यह कहता है कि अ क वर्गों के वग है और दूसरा यह कहता है कि वे आदिम अभि यक्तियाँ है' तो दोनो म प्रत्येक अपनी ही भाषा का विवरण दे रहा है-या फिर इनमे से प्रत्येक गणितज्ञो क समक्ष ऐसी विशिष्ट अवस्था प्रस्तुत कर रहे हैं जो गणितीय प्रणाली की रचना स सबद्ध हैं । इस तरह दानों एक दूसरे का विरोध नही कर रहे । इसलिए एसी दाशनिक अभिव्यक्तियो क लिए जो व्याकरणीय रूप म प्रस्तुत हो सकने का दृढता-पूवक विरोध करते हैं तो कारनप विटजन्स्टीन के इस कथन का उद्धरण देते हैं- वास्तव म अव्यक्त तो है ही' । या फिर श्लिक के इस कथन का जिसमे उन्होने अकथनीय विषय वस्तु की बात कही है-इन सभी को निरथक कहकर त्याग दना चाहिए ।

दशन की अब अपनी एक विषयवस्तु हो जाती है । जसा हम पहले देख चुके हैं कि विटजस्टीन इस निष्कष पर पहुचे थे कि ट्रेक्टेटस के तकवाक्य अथहीन

है । 'इस तरह मेरी तर्कोक्तियां केवल व्याख्या प्रस्तुत करती हैं और जो मुझे समझ गया है वह अन्तत यह जान लेता है कि जब वह उनके द्वारा उन पर, उनके ऊपर से जाकर जांच कर लेता है तो निरर्थक हो जाती है । यह निष्कर्ष उनके पाठकों के समक्ष उनके प्रतिवादी विरोधास्पद रूप को सामने प्रस्तुत करता है । इस तरह जूलियन बल नामक कवि अपनी कविता एपिसल आन द सबजेक्ट ऑव द एथिकल एण्ड एस्थेटिक बिलीफ्स ऑव हेर लुडविग विटजस्टीन में यह शिकायत करते हैं ।

'वह व्यर्थ की बकवास करता है, बहुत सी उक्तियां कहता है, हमेशा के लिए चुप रहने की उसकी प्रतिज्ञा टूट जाती है ।' उन्होंने उनके 'प्रदर्शन' के सिद्धान्त में तत्ववाद का प्रतिरूप ही देखा —

'जो ज्ञान के किसी गुप्त स्रोत से तस्कर करता है
जो अन्तत एक सम्पुष्ट एवं प्रकट रहस्यवादी है–
जो पुराने शत्रु की भांति लौट कर आया हुआ है–
जो अपने प्रत्यक्ष अनुभव से ही जानता है–
कि सभी प्रकार के ज्ञान एवं सार्थकता से परे क्या है"

क्योंकि जब विटजस्टीन ने लिखा था कि वास्तव में कहीं अव्यक्त तो है ही तो यह क्या उनके रहस्यवादी होने का संकेत नहीं है ?

इसमें आश्चर्य नहीं कि विज्ञानमना वस्तुस्थितिवादी इस सिद्धान्त से असंतुष्ट हो गए । रसेल ने ट्रैक्टेटस के आमुख में इसका एक विकल्प सुझाया कि यद्यपि कोई भाषा स्वयं अपने रूप का वर्णन नहीं कर सकती तथापि इसका रूप दूसरी भाषा द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और उस भाषा का रूप भी तब किसी तीसरी भाषा से व्यक्त किया जा सकता है आदि । इसका प्रभाव यह होगा कि भाषा के रूप का वर्णन किया जाना सदा सदा के लिए संभव हो जायगा चाहे यह उस भाषा में न हो जो अमुक रूप प्रदर्शित कर रही है । रसेल की भाषा में उच्चक्रम (हायरार्की) संबंधी यह धारणा तर्कशास्त्र के विकास के महत्वपूर्ण योग में सहायक रही है और कारनैप ने इसे दार्शनिक जनों के समक्ष प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न भी किया । इसके बावजूद भी चाहे वे लोजिकल सिन्टेक्स ऑव लैंग्वेज के प्रारम्भ में ही इस बात पर बल देते हैं कि एक प्रस्तुत भाषा के कथनों एवं उन कथनों में जो ऐसे कथनों का वर्णन करते हैं रहा भेद, काफी महत्व का है वे सब अन्तत एक व्यापक भाषा की सृष्टि करते हैं तो भी उनकी मान्यता है कि ऐसे तर्कवाक्य जो भाषा के सम्बन्ध में कुछ कहते हैं, उस भाषा का अंश भी हो सकते हैं जिसका वर्णन वे कर रहे हैं । इसका कारण देखा जा सकता है । उन्हें किसी भांति यह बताना है

कि विनान की भाषा का वणन करने वाल कथन उसी भाषा के प्र ङ्ग हैं। और क्योंकि वे पुनरुक्तिया न्हीं हैं हम यह निष्कष नहीं निकाल सक्ते कि एक विशिष्ट भाषा के विशिष्ट नियम होते हैं, इमीलिए वे निरथक हैं। वे यह बात मानने के लिए तयार नही थे। इम तरह या तो वे विनान के भ श हैं या कारनप की इस त्रिविधा की वनानिक, निरथक, पुनरुक्तियुक्त मा यता टूट जाती है।

कारनप का विचार था कि व यह बता सकते हैं-विटजिस्टीन के विरुद्ध कि भाषा का रूप भाषा से ही वणित हो सकता है। विटजिस्टीन के लिए भाषा का रूप वही है जो उसके लिए सामा य है और उस यथाथ के लिए भी जिसे वह व्यक्त कर रही है इस कारण से भाषा के परे किसी वस्तु का सदभ देकर उसका रूप उस भाषा से व्यक्त नही हो सकता। कारनप की कृति लोजिकल सिटेक्स ग्राव लग्वज म किसी भाषा का रूप उसके द्वारा नियमों से ही बनता है। रचना के नियम यह निर्धारित करन हैं कि भ्रमुक वाक्य सुगठित है या जिनसे एक वाक्य दूसरे वाक्य से निगमित किया जा सकता है। विनान की भाषा अपने भ्र दर ही ऐसे नियमो को निहित किय रह सकती है। भाषारचना के य सामा य नियम जो भाषा द्वारा यवहृत समाविष्ट रूपो को व्यक्त करते हैं गणित सम्बन्धी हो सकते हैं सयोज्य विश्ले षण (काम्बीनेटोरियल) के रूप म। एव भाषारचना सबधी तकवाक्य जो आकार रूप म किसी विशेष भाषा के ढाँच को वणित करत हैं-वे प्रयुक्त गणित के तकवाक्य होते हैं जो केवल प्रतीको का सदभ दते हैं-(उदाहरण के लिए दी का प्रतीक जो इस पृष्ठ मे दो बार आया है) भौतिकी के तकवाक्य हैं। विनान के तकवाक्य की रचना विनानभाषा की याकरणसम्मत वाक्यशनियों मे की जा सकती है किन्तु इनसे विनानेतर किसी ग्र य क्षेत्र की अभिनव सृष्टि सभव नही है। भाषापकरण या वाक्यशली जो शुद्ध एव विवरणात्मक है भाषा की भौतिकी या गणित से अधिक कुछ नही है। इस तरह दाशनिक तकवाक्यो के लिए भी विनानो के पारस्परिक व्यवहार म से कोई न कोई स्थान निकल ही आता है।

तब फिर साथकता के सत्यापनीयता सिद्धा त का क्या होगा ? इसके ववििध्यपूण इतिहास का उद्धरण सर्वोत्तम ढग से कारनप कृत टस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० ए० एस० 1936) का सदभ लेकर किया जा सकता है। यहा पर सत्यापनीयता सिद्धान्त (निरूपण) को न तो एक स्वयसिद्ध माना गया है और न अथहीनता की कोई बहक किन्तु विज्ञान की भाषा रचित करने के लिए उसकी सिफारिश की गई है। सिफारिश के तौर पर ही उस अनुभववादियो क समक्ष प्रस्तुत किया गया है जो निश्चय ही विनान की भाषारचना म स्वाभाविक रूप से रुचिशील है और यह देखना चाहते हैं कि तत्ववादी तकवाक्यो को इसके जरिए यक्त न करना पड जाए। कारनप के अनुसार अनुभववादी को निश्चय ही ऐसे कहना चाहिए

कि सभी नान अनुभवसिद्ध हैं अर्थात् उसके पास ऐसे कथन हैं जो इस ससार के विषय मे ही कुछ न कुछ कहते हैं। उ हे इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहिए कि वे जो कुछ कर रहे हैं वह सब भाषा म लगाए गए कुछ अवरोधो की सिफारिश के लिए ही है। ये अवरोध अग्रेजी जैसी स्वाभाविक भाषा के लिए लागू नही होते। इस तरह उनका उद्देश्य एक आदर्श भाषा की रचना करना है-जिसे यह कहकर परिभाषित किया गया है कि जिसके आधार पर अनुभववादी जो चाहता है वह कह सकता है। अर्थात् वज्ञानिक गणिततर्कीय तर्ककथनो के रूप मे। किन्तु वह सभी तत्ववादी कथनो को निरर्थक कहकर अमान्य कर देगी। तत्ववादी इसस भिन्न आदर्श रखकर चलेगा। यदि तत्ववादी अनुभववाद के विकल्प के रूप मे किसी भाषा की रचना कर सकता तो वह सिवाय यह देखने के कि भाषा सगत है या नही और कोई आपत्ति का आधार ढूढ नही सकता था चाहे तत्ववादी की भाषा का प्रयोग फिर भी वह न करना चाहे।

अनुभववादी भाषा के सामान्य ढाचे मे फिर भी अन्य बहुत भी सभावनाए है। इनम निश्चितता के अ शमानो का अन्तर अवश्य है। एक अनुभववादी को यह मानना चाहिए कि विनान के व आदिम विधेय जो उसक आधारभूत कथनो या अधिकृत कथनो म काम मे लाए जाते हैं व सभी पयवेक्षण योग्य है, लकिन इसके बावजूद भी वह अपनी भाषा मे केवल वस्तु भाषी विधेयो का उपयोग ही कर सकता है।[1] इस दूसरी अवस्था म कुछ अन्य विकल्प और हैं, मनोवैनानिक विधेय अपने रूप मे सघटनात्मक हो सकते हैं और चेतना की निजी अवस्था का सदर्भ दे सकते हैं, अथवा वे भौतिकवादी विधेय (फिजिकलिस्ट) हो सकते हैं। ऐसे विधेय जो मनोवनानिक क्रियाओ का सदर्भ प्रस्तुत करत हैं-जसे 'क्रोधित होने' या 'एक कुत्ते का देखने की क्रिया का।' इन क्रियाओं को केवल अभिकर्त्ता ही अनुभव कर सकता है किन्तु इनकी उपस्थिति को स्वतत्र दशक द्वारा भी पुष्ट किया जा सकता है। स्वय पोपर का अनुसरण करत हुए कारनप वस्तु भाषा के समथन म अपना निश्चय प्रकट करते हैं। यह बात उनकी प्रारम्भिक सघटनवादी वृत्ति या फिर न्यूरॅथ की उनके द्वारा अपनायी अधिकृत कथनो की बात के विरुद्ध है। वे यह सब इस आधार

1 वस्तु भाषा, दनिक भाषाई विधेयो से बनी है और इसम उष्ण चतुष्कोणीय तथा नीला आदि शब्दो को भौतिक पदार्थों का विवरण देने के लिए उपयोग मे लिया गया है। कारनप के विचार मे वस्तुभाषा का उस समय भी भाव उनके मन मे था जब उन्होने यह माना कि भौतिकी की भाषा (द लैंग्वेज आफ फ़िजिक्स) ही मूल भाषा है। द्रष्ट य बगमन कृत द मैटाफ़िजिक्स आव लोजिकल पोजिटिविज्म। इस सम्बन्ध मे (एक आदर्श भाषा) इसम पर्याप्त कहा गया है। इसमे मनोवैनानिक विधेयो की बात भी शामिल है।

पर स्वीकार करते हैं कि किसी अन्य भाषा से विज्ञान की एकांतिक वस्तुपरकता सुरक्षित नहीं की जा सकती। स्वभावत कुछ वस्तुस्थितिवादियों ने बडे आक्रोशपूर्ण ढग से उनके इस निर्णय का स्वागत किया और इसे वस्तुस्थितिवाद से फिर यथार्थवाद की ओर लौटने की सजा दी।

श्लिक की प्रारम्भिक रचनाओं में यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है कि वस्तुस्थितिवादी प्रायः इस बात पर सहमत थे कि सब आनदिम विधेयों को भी आदिम विधेयों की भाषा में ही परिभाषित किया जाना चाहिए। कारनप ने बिलकुल इसी मत को स्वीकारा है जब उन्होंने द यूनिटी आव साइन्स में कहा है कि सभी अनुभववादी कथनों को भौतिकी की भाषा में अनूदित किया जा सकता है। टस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग में एक बार फिर वे इस कठोर आवश्यकता से विमुख हो जाते हैं। अब वे अनुवाद्यता पर जोर न देकर न्यूनीकरण पर बल देते हैं जो न्यूनीकृत युग्मों से प्रकट हो जाता है और एक अनुभववादी अधिक से अधिक इसकी माग ही कर सकता है। उन्हें विशेषत इस निष्कर्ष पर पहुचने के लिए जो बात प्रेरित करती है, वह यही कि उनके पास प्रस्तुत विधेयों को दूसरी तरह से परिभाषित करने का कोई आधार नहीं है (जसे घुलनशील, दृश्यमान श्रवणयोग्य आदि शब्दों को आदिम विधेयों के साथ सयोजक के रूप में उपयोग में लाने का कोई मार्ग नहीं है)। इसके अलावा उनका विचार है कि अनुभववादी घुलनशील' जसे विधेय को अपनी भाषा में तर्कवाक्य युग्मों के माध्यम से प्रविष्ट करा सकता है। यदि क्ष को तसमय में पानी में डाल दिया जाता है तो यदि क्ष पानी में घुलनशील है तो त समय में वह उसमें घुल जायगा और यदि क्ष को पानी में त समय में डाला गया और क्ष घुलनशील नहीं है तो त समय में वह नहीं घुलेगा। इस तरह घुलनशीलता का परीक्षण तो हमने कर लिया किन्तु हमें प्रस्तुत वाक्य के इस आकार के अनुवाद की यह विधि उपलब्ध नहीं हुई। क्ष घुलनशील है इस क्ष के दृश्यमान विधेयों में बदल जाने योग्य तर्कवाक्यों में बदला जाना नहीं आया। क्यों कि क्ष घुलनशील तो हो सकता है चाहे उसकी घुलनशीलता का प्रयोग उसे पानी में डालकर किसी ने न किया हो।

अनुवाद्यता से परीक्ष्यता (टस्टबिलिटी) की ऐसी ही एक बात कारनप द्वारा फिलोसोफी एण्ड लोजिकल सिण्टेक्स (1935) में दिए गए सत्यापनीयता के वर्णन में देखी जा चुकी है। वहा उन्होंने निरूपण (सत्यापन) के दो भेद किए हैं प्रत्यक्ष एव परोक्ष। उन्होंने कहा है कि केवल अधिकृत कथनों को ही प्रत्यक्षत सत्यापित किया जा सकता है क्योंकि अनुभव के प्रकथन का बीडा वे ही लेकर चलते हैं। अन्य तर्कवाक्य जसे एकविषयी वाक्य यह चाबी लोहे की बनी है तथा समष्टिकथन जसे यदि किसी लौहिक पदार्थ को चुम्बक के पास रखा जायगा तो वह उसके द्वारा आकर्षित हो जायगा इस बात का निरूपण केवल परोक्षत ही सभव है। इस तरह

एकविषयी कथन तथा विज्ञान के समष्टि-पार्श्वी नियम दोनों में ही प्राकल्प का भाव मौजूद है।[1] परोक्ष निरूपण (सत्यापन) की परिभाषा कारनप अब यह देते हैं कि इन्हें निरूपण (सत्यापन) के लिए पहले से निरूपित तर्कवाक्यों के साथ इस तरह रखना होगा जिससे एक प्रत्यक्षतः सत्यापनयोग्य तर्कवाक्य प्रकट सके। उदाहरणार्थ 'यह चाबी लोहे से बनी है' का निरूपण पहले से निरूपित इस नियम के आधार पर होगा कि यदि एक लौहवस्तु चुम्बक के समीप रख दी जाए तो वह इससे आकर्षित हो जाएगी और प्रत्यक्षतः निरूपित किए गए अनुभव से कि 'चाबी चुम्बक की ओर आकर्षित हुई है' हम यह पता लगा लेंगे कि चाबी लोहनिर्मित है। निरूपण (सत्यापन) का इससे अधिक कुछ मूल्य नहीं है कि उससे वस्तु की सत्यता की जाँच हो जाय। फिर इस वाक्यांश में यह अर्थ तो अभी भी है कि अमुक वस्तु प्रत्यक्षतः निरूपित हुई है, इस वाक्यांश में नहीं कि परोक्षतः निरूपित हुई है। क्योंकि परोक्ष निरूपण (सत्यापन) के जरिए हम निरूपित तर्कवाक्य के सत्य की सिद्धि नहीं कर सकते। तो फिर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि टेस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग में कारनेप निरूपणीय शब्द को छोड़कर उसके स्थान पर परीक्षणीय को अपना लेते हैं एक ऐसे मामले में जिसमें परीक्षित निरूपण की प्रणाली वास्तव में हमारे अधिकार में हो या वह पुष्टिकरणीय (कन्फर्मेबल) हो यदि हम उस प्रणाली का नामकरण न कर सकें तो।

हमारे वर्तमान कार्य की पूर्ति के लिए सारभूत बिन्दु यह है कि एक तर्कवाक्य में उस समय भी अर्थ हो सकता है यदि वह उस अर्थ में निरूपणीय न भी हो जिसमें वस्तुस्थितिवादी उसे वैसा मानते हैं। अथवा चाहे वह आणविक तर्कवाक्यों या अनुभवों की एक ससीम इकाई का समानार्थी न भी हो। पुराना वस्तुस्थितिवादी सिद्धान्त कारनप के अनुसार असुविधाजनक था क्योंकि इसने उन सभी तर्कवाक्यों को निरर्थक कहकर अमान्य कर दिया था, जिनमें अनिबंधित सामान्यता थी। सारे भौतिकी नियम, और वास्तव में वे सब तर्कवाक्य जिनमें ऐसे विधेय हों जिन्हें आदिम विधेयों में पुनीकृत नहीं किया जा सकता। श्लिक ने इस कठिनाई पर रैमसे की भाँति विजय प्राप्त करनी चाही यह मानकर, कि भौतिक नियम स्वीकारोक्तियाँ न होकर इन कथनों की रचना के लिए प्रस्तुत सूचनाएँ हैं। कारनप इनका उत्तर देते हुए कहते हैं कि भौतिक नियमों को वैज्ञानिकों द्वारा वाक्याकार में ही रखा जाता

---

1 इस प्रश्न पर देखें, एन० मैलकम कृत सरटेनटी एण्ड एम्पिरिकल स्टेटमेण्ट्स (माइण्ड 1942), पी० हेनले कृत मान व सरटेन्टी आव एम्पिरिकल स्टेटमेण्टस एव डब्लू० टी० स्टेस कृत आर आल एम्पिरिकल स्टेटमेण्ट्स हाइपोथीसेस ? (जे० पी० 1947)।

है– नियमों के रूप में नहीं। उनकी खुद की सिफारिश यही है कि अनिबंधित सामान्यता के तर्कवाक्यों को विज्ञान में प्रवेश मिल जाना चाहिए।

यह धारणा उन्हें इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि विज्ञान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा ऐसे नियमों से बनी हैं जो बहुत रियायती प्रकार के हों। अनुभववादी को केवल यही माग करनी चाहिए कि प्रत्येक समन्वयकारी तर्कवाक्य पुष्टीकरणीय होना चाहिए। उनके विचार में यह नियम तत्वदर्शन का उन्मूलन करने के लिए काफी सशक्त है क्योंकि तत्ववादी तर्कवाक्य किसी भी भांति अनुभववादी पुष्टीकरण के पात्र नहीं हैं। उनके विपरीत ये विज्ञान के विकास में बाधक भी नहीं हैं। स्पष्ट ही कारनेप अपनी इस प्रारम्भिक धारणा से काफी दूर आ गए हैं जिसमें उन्होंने सार्थकता का अनुभव की अनुवाद्यता से तादात्म्य स्वीकार किया था। अब अधिक से अधिक वे यही कहने को तैयार हैं कि एक तर्कवाक्य अर्थहीन है यदि उसका निष्कर्ष अनुभवसम्मत न हो। कारनेप को इसमें भी कठिनाइयां दिखीं, यानी सार्थकता एवं पुष्टीकरण दोनों में। इन कठिनाइयों का हल प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में उनका प्रयास *तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद* से भी परे ले गया और उन्हें ऐसे सुवादों में उलझ जाना पड़ा जिनकी चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे।

इंगलैण्ड में ए० जे० आयर तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के प्रमुख प्रवर्तक थे। 1936 में प्रकाशित उनकी एक पुस्तक लम्वेज ट्रूथ एण्ड लोजिक, एक युवा व्यक्ति की पुस्तक *जो जीवन्त असमन्वयवादी एवं चुनौती देने वाली है– वास्तव में* महत्ता से प्राप्त तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद की संघटनवादी तथा शास्त्रीय अभिमण्डन हैं।

स्वभावतः यह पुस्तक भी उन मुश्किलों पर विचार प्रस्तुत करती है जो *निरूपण के सिद्धान्त के समय उठ खड़ी हुई थी।* आयर एक सशक्त और अशक्त निरूपण के सिद्धान्त में भेद करते हैं। सशक्त सिद्धान्त यह बताता है कि एक तर्कवाक्य उस समय तक अर्थहीन है जब तक अनुभव अन्तिम रूप से उसकी सचाई सिद्ध नहीं कर देता, एक अशक्त सिद्धान्त के लिए यही अपेक्षित है कि कुछ पर्यवेक्षण उस स्थिति में सदमयुक्त होने चाहिए जिनसे उसके सत्यासत्य का निर्धारण हो सके। ये निरूपण को केवल उसके क्षीण अर्थ में ही ग्रहण करते हैं। वह भी इस आधार पर कि न वे समष्टि नियमों को निरर्थक ही मानते और न भूतकाल सम्बन्धी कथनों को अर्थहीन। इन दोनों में से एक को भी वर्तमान अनुभवों में बदलकर नहीं देखा जा सकता। इस रूप में तो यह सिद्धान्त तत्ववादी दर्शन का उन्मूलन करने के लिए पूर्णतः पर्याप्त है। इसके आधार पर अपने आप में किसी भी पर्यवेक्षण का ऐसे तत्ववादी कथन से कोई सम्बन्ध नहीं है जैसे सर्वदनजन्य अनुभवों का जगत् मिथ्या

है', न कोई ऐसा पर्यवेक्षण ही कर सकता है जिससे इस बात का निर्धारण हो सके कि 'यह जगत, एक मात्र अन्तरिम सत्ता है, या मूल तत्वों की बहुलता में बिखरी हुई कोई सृष्टि ही है।

एक बार हम दर्शन के इस दावे को कि वह तत्ववादी सत्यों का अनुगामी है प्रमाणित कर देते हैं तो दिखाई देगा कि उसका वास्तविक कार्य विश्लेषण ही है। इससे यह कार्य जिस सिद्धान्त रूप में बर्कले ह्यूम तथा लौक ने कार्यान्वित किया। इससे हमें यह निष्कर्ष लेने का अधिकार नहीं है कि दर्शन वस्तुओं को आणविक इयत्ताओं में खण्डित कर देने का ही नाम है। यह धारणा कि यह जगत् वास्तव में प्राथमिक इयत्ताओं के आकलन से निर्मित है एक तत्ववादी निरर्थकता है। दार्शनिक विश्लेषण आयर के मतानुसार मापाई हैं। यह हमें प्रतीकों को परिमापित करने का अवसर देते हैं, जिससे हम उन्हें ऐसे वाक्यों में अनुवादित कर सकते हैं जिनमें न तो वह प्रतीक ही होता है न उसका कोई पर्याय ही। रसेल का विवरण का सिद्धान्त इसका उदाहरण है– और यही बात भौतिक पदार्थों सम्बन्धी वाक्यों के संघटनात्मक अनुवाद में मिलती है जो उन्हें एन्द्रियाघातों के वाक्यों में बदल देते हैं।

इस तरह महाद्वीपीय तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का ब्रितानी दार्शनिक विश्लेषण से जोड़कर आयर सबका ध्यान एक परिशुद्ध ऐतिहासिक संयोग की ओर आकृष्ट कर रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने बहुतों को यह भी आभास दिया कि विश्लेषण और तार्किक वस्तुस्थितिवाद वास्तव में एक रूप हैं। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो आज भी पढ़े लिखे दर्शन के पाठकों में प्रचलित है और जो वस्तुतः दर्शन के व्यवसाय में लगे नहीं हैं।[1] वास्तव में तार्किक वस्तुस्थितिवादी उन नान– मीमांसक समस्याओं में बहुत कम रुचि लेते थे जिन पर ब्रितानी विश्लेषणवादियों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया था। अपनी ओर से विश्लेषणवादियों ने दूसरी ओर वैज्ञानिक तथा गणितीय रचना के सिद्धान्तों की ओर बहुत कम ध्यान दिया। जबकि ब्रितानी विश्लेषणवादी तथा महाद्वीपीय वस्तुस्थितिवादी दोनों ही तत्वदर्शन के विरोधी हैं। दोनों अपनी वृत्ति में अनुभववादी हैं। किन्तु दर्शन के रचनात्मक रूप के विषय में वे काफी मतभेद रखते हैं।

आयर के लिए तो यह कहा जा सकता है कि उनका दर्शन ब्रितानी अनुभव- वादी की मापाई व्याख्या में ही निहित है। यह बात द फाउण्डेशन्स आव एम्पिरिकल

---

1 देखें एन० एस० स्टेबिंग कृत लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड एनालिसिस एवं एम० ब्लैक कृत रिलेशन्स बिट्वीन लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड द केम्ब्रिज स्कूल आव एनालिसिस (जर्नल यूनिफाइड साइन्स 1939)।

नोलेज (1945) में स्पष्ट हो जाती है। यह किताब पूर्णतः शास्त्रीय ब्रिटिश समस्या से सम्बद्ध है जो बाह्यजगत् सम्बन्धी हमारे ज्ञान की है। इसके साथ ही उनके विमर्श से यह प्रकट होता है कि उन्होंने महाद्वीपीय दर्शन सम्बन्धी खोज भी की है। वे यह प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं कि कोई भी पर्यवेक्षण यथार्थवादियों तथा ऐन्द्रिय संवेदना के सिद्धान्तवादियों के बीच के झगड़े को सुलझा नहीं सकता। जब ऐन्द्रिय संघात के हामी यह कहते हैं कि पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण के समय जो परिवर्तन कार्यशील रहते हैं वे तथा विभिन्न प्रकार के दर्शकों के द्वारा किए गए पर्यवेक्षणों की विविधताएँ इस दृष्टिकोण के साथ समन्वित नहीं हो सकती कि हम भौतिक पदार्थों को प्रत्यक्षतः देखते हैं तब यथार्थवादी सदैव ही इसका यह उत्तर दे सकते हैं कि ऐन्द्रिय संघात के हामी भौतिक पदार्थों का एक अत्यन्त संकीर्ण दृष्टिकोण लेकर चल रहे हैं। तब प्रश्न यह रहता है कि क्या यथार्थवादियों के साथ यह कहना अधिक सुविधा-जनक है कि भौतिक पदार्थ एक ही समय से विभिन्न रंगों के हो सकते हैं ? या फिर ऐन्द्रिय संवेदन के हामियों के साथ यह कहना कि वे एक साथ विभिन्न रंगों के नहीं हो सकते ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका पर्यवेक्षण से कोई नाता नहीं है। चूँकि हम जगत् के विषय में सुगम एवं संगत भाषा में या तो ऐन्द्रिय संवेदन की भाषा में या फिर भौतिक पदार्थ की भाषा में बातचीत कर सकते हैं। हमें यही निश्चित करना पड़ेगा कि ऐसी कौनसी भाषा है जो सुगमता पूर्वक हमारे ओठों से प्रवाहित हो सके।[1]

आयर की स्वयं की तरजीह ऐन्द्रिय संवेदन भाषा को है। वे फाउण्डेशन्स आव एम्पिरिकल नॉलेज को संघटनवाद के बचाव के पक्ष का एक ग्रंथ मानकर व्यापक रूप में पढ़ा गया है। आयर का कथन है कि ब्रितानी अनुभववादी इसलिए भटक गए क्योंकि वे ऐन्द्रिय संघातों प्रत्ययों तथा ऐसे कुछ पदों को इयत्ताओं के नाम समझते रहे और यह मानते रहे कि इनके मूलभूत तत्वों पर भी ठीक उसी प्रकार विचार हो सकता है जैसे दूसरी इयत्ताओं पर। इस तरह हम यह बात भली भांति पूछ सकते हैं कि क्या ऐन्द्रिय संवेदन कोई ऐसी धातु होती है जिसे हम देख नहीं पाते ? इस तरह चर्चा करने से ऐन्द्रिय संवेदनात्मक पदावली के पूरे उपयोग को खो देना होगा। या तो ऐन्द्रिय संवेदन के विभ्रम की शास्त्रीय समस्या फिर हमारे समक्ष

---

1 विट्जिंस्टीन के प्रभाव में ऐसा ही दृष्टिकोण जी० ए० पाल द्वारा अपनाया गया है। देखें उनका निबन्ध इज देयर ए प्राबलम अबाउट सेन्सडेटा ? (पी० ए० एस० एस० 1936) (एन० एस० 1 में पुनः मुद्रित) यह निबन्ध आज के ज्ञान मीमांसा सम्बन्धी विवादों में शास्त्रीय महत्व का हो गया है। पाल ने वैसे बहुत कम लिखा है– किन्तु वे एक प्रभावशाली अध्यापक रहे हैं, अमरीका एवं आस्ट्रेलिया दोनों में। इन्हीं दशों में उन्होंने विट्जिंस्टीन की स्थापनाओं की चर्चा की।

प्रस्तुत हो जाएगा । यदि उदाहरण के लिए कोई हमसे पूछता है जब एक व्यक्ति तारे देखता है तो वह कितने तारे देखता है ? हमें इस प्रश्न का उत्तर देने से इस आधार पर मना कर देना चाहिए कि इसका कोई आधार नहीं है क्योंकि जो व्यक्ति वास्तव में तारे देख रहा है वह यह नहीं बता सकता कि उसने कितने तारे देखे हैं। हम यह अनुमान नहीं लगाना है कि उसके ऐंद्रिय संवेदन में उस समय वे तत्व सक्रिय थे जिन पर उसने ध्यान नहीं दिया बल्कि यही कि ऐंद्रियसंबद्ध तारे गणनीय नहीं हो सकते, यद्यपि वास्तविक तारे ऐसे हैं।[1]

संघटनवाद की रचना आयर की दृष्टि में इस प्रकार श्रेष्ठ ढंग से हो सकेगी। भौतिक पदार्थों से संबद्ध दैनिक कथनों को ऐसे वाक्यों में अनूदित किया जा सकता है जो मात्र ऐंद्रिय संवेदन को ही संदर्भित करते हैं। इनमें उस प्रकार के सशर्त कथन भी शामिल हैं कि यदि मैं अमुक अमुक काम करूं तो मुझे अमुक अमुक ऐंद्रिय संवेदन का अनुभव होगा। इस अवस्था पर की गई एक विदित आपत्ति यह है कि ऐंद्रिय संवेदन को बताने वाले कथनों की इकाई भौतिक पदार्थों से संबद्ध कथन के किसी भी तरह समानार्थी नहीं है। यह बात इस तथ्य में प्रकटती है कि भौतिक पदार्थों से संबद्ध कथन सदैव ही सुधार योग्य हैं और इस संबंध में प्राप्त नए अनुभव हमें उनके दोषपूर्ण कथन का अधिकार दे जाते हैं जबकि ऐंद्रिय संवेदन से संबंधित कथनों की इकाई परिमाप से ही असमाधनीय है। आयर इस प्रकार समानार्थी कथनों की अनुपस्थिति को स्वीकृति देते हैं। किन्तु वे यह नहीं मानते कि भौतिक पदार्थसंबंधी कथन ऐंद्रिय संवेदनों से भिन्न कोई और अनुभूति प्रकटाता है। कोई व्यक्ति दरवाजे पर है यह वाक्य किसी विशिष्ट व्यक्ति संबंधी कथनों का समानार्थी नहीं है। जैसे या तो क्ष या य या भ दरवाजे पर हैं।' तो 'व्यक्ति' कोई यहां किसी ऐसी इयत्ता का नाम नहीं है जो उस विशिष्ट व्यक्ति से अलग हो।

अधिक से अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐंद्रिय संवेदन कथन कभी भी समुचित रूप में भौतिक पदार्थों का अंकन नहीं कर सकते। परिणामत यह विश्लेषण करना मुश्किल हो जाता है कि मेज से संबंधित कथनों को ऐंद्रिय कथनों की इकाई में बदल दिया जाय तो भी हम ह्यूम की भांति ऐंद्रिय संवेदन के बीच रहे संबंधों का जिक्र कर सकते हैं जो हमें हमारे अनुभवों से भौतिक पदार्थों से संबंधित कथनों की रचना करने की प्रेरणा दे सकते हैं। यहां यह बात महत्वपूर्ण है—कि ह्यूम की पुनर्व्याख्या करने के प्रयास में आयर ब्रितानी अनुभववाद की परम्परागत

1 इसके बाद हुए संवाद के लिए देखें आयर कृत द टर्मिनोलोजी आव सेंस डेटा (माइंड 1945), पुनर्मुद्रित फिलोसोफीकल ऐसेज 1954 में। तथा उसमें सदर्भ रूप में दिया गया साहित्य।

भौतिकवादी अवस्था म चल जाते हैं। उन्होंने लिखा कि समस्या को उठाने के समय मुझे यह अधिक सुविधाजनक लगा मानो मैं एक प्रकार के पदार्थों से दूसरे प्रकार के पदार्थों की रचना करता चल रहा हूं। किन्तु मूलत इस शब्दों का सदर्भ देने वाली समस्या की दृष्टि से ही देखना चाहिए।' उनके पाठक उनकी इस बात से सदैव ही आश्वस्त नही हुए कि उनके वाद विवाद को सहजता से आकारगत अवस्था में अनूदित किया जा सकता है। जबकि तथ्य यह है कि आयर की पुस्तक की नवीनता सघटनवाद को भाषापदों में बदल सकना थी।[1]

लग्वेज, ट्रूथ एण्ड लोजिक (1940) के द्वितीय सस्करण म आयर के आमुख को तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद पर अन्तिम कथन कहा जा सकता है। यह आमुख उन मुश्किलो को जो इस वाद के समक्ष प्रस्तुत हुई हैं बहुत ही सफाई के साथ प्रस्तुत करता है। हम उन्हे स्पष्ट ही इस बात को समझने म बचैन देख सकते हैं कि जो कुछ निरूपित (सत्यापित किया जाना है वह मूलत क्या है? वे वाक्य एव तकवाक्य के बीच कथन को दर्शन मे नया सदर्भ देकर प्रवेश कराते हैं। वाक्य की परिभाषा व व्याकरणसम्मत सार्थक शब्दो के समूह के रूप म करते हैं। एक कथन यह बताता है कि उन शब्दो की अभिव्यक्ति का स्वरूप क्या है तथा एक तकवाक्य वाक्यो की अनुश्रेणी है जिसमे केवल सार्थक शब्दो या वाक्यांशों का प्रयोग किया गया हो। इस तरह य, वाक्याश अर्थहीन तकवाक्य' आयर की दृष्टि म एक विरोधाभास है। केवल वाक्य ही शब्दश सार्थक हो सकते हैं एव कथन ही निरूपणीय (सत्यापनीय) हैं। इस बात को यो ही स्वीकार किया जाय या नही या फिर इसमे और कोई सशोधन हो यह बात पाठको पर छोड दी गई है।

आयर एक बार फिर निरूपण (सत्यापन) की प्रकृति के सबध म परेशान हो जाते हैं। सशक्त रूप मे निरूपण किए जाने की व्याख्या करें तो ऐसा लगेगा कि आधारभूत तकवाक्यो के अलावा अन्य सभी को नकारना होगा (विशेषकर उस समय जब शिलक की भांति कोन्स्टेटेशस की परिभाषा करें तो) और तो भी अपने क्षीण रूप म देखें तो बात पर्याप्तत वस्तुस्थितिवादियो जसी नही लगती

1 इसी विषय पर अन्य समसामयिक विवादो के लिए देखें 1937 म आर० बी० ब्रथ्वेट द्वारा पी० ए० एस० म लिखे सघटनवाद पर कुछ निबध जी० एफ० स्टाउट के (1938) आर० आई० आरन के (1938) डी० जी० सी० मक्नब (1940) डब्लू० एफ० हार्डी (1945) एवं आयर द्वारा पुर्नविचारित व्याख्याए। (1946) सघटनवाद की विशद व्याख्या के लिए देखें डब्लू० टी० स्टेस कृत थ्योरी आव नोलेज एण्ड एग्जिस्टेंस (1932)।

क्योंकि निश्चय ही तत्ववादी तर्कवाक्यों में प्रस्तुत कुछ अनुभव तो साथक होते हैं।[1] वास्तव में यही विभ्रम है जिसमे निरन्तर ह्यूम की भाँति वस्तुस्थितिवादियों ने अपने को पडा पाया। तत्ववाद को अग्नि मे डाला तो विज्ञान भी उसके साथ उसकी आहुति बन जाएगा। अग्नि की लपटो स विज्ञान को बचाओ तो तत्ववाद रेंगता हुआ उसके साथ आ जायगा।'[2] आयर इस स्थिति का सामना सिवपरण के सिद्धान्त मे एक मौलिक सुधार करके करते हैं-जिसका यहा वरान करना जरा दुष्कर है।[3] वास्तव मे तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का सर्वाधिक महत्व तो इसमे है कि उसमे तत्ववाद का सरलतम भाषा मे खण्डन किया गया है। एक बार यह मानलें कि सिवपरण के सिद्धान्त के विस्तृत विवेचन म तत्ववादी विश्लपरण की अपेक्षा पडेगी, बस, तो फिर समूचा तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का ढाचा ढह जायगा। इसका जादू विलीन हो जायगा।

आयर द्वारा प्रस्तुत आमुख का सामान्य उद्देश्य तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के जरिए भाषा विश्लेषण की दिशा मे जाना था। जिसके लिए एक बार वे विस्फोटक रहे अब वे उसकी अत्यन्त धैर्य के साथ सिफारिश करते हैं। एक मूलभूत आधार पर वे भाषाई व्याख्या मे भी परे चले जाते हैं इस बात का अस्वीकार करके कि प्राग्भावी तर्कवाक्य भाषाई नियम मात्र हैं। ऐसे नियम उनकी दृष्टि मे स्वीयात्मक हैं जबकि तर्क के नियम आवश्यक सत्य हैं।[4]

चूकि दर्शन के सम्बन्ध मे भाषाई दृष्टिकोण ट्रैक्टेटस मे दिये गये गणितीय एव तर्कीय सत्यो के आधार पर ही प्रारम्भ हुआ था इस मामले मे प्रस्तुत किये गए पुनर्विचार ऐतिहासिक महत्व के हैं। फिर भी आयर यह मानते हैं कि तार्किक सत्यो की आवश्यकता चाहे नियमो की इकाइयो से तादात्म्य न भी रखे, तो भी उनका ही परिणाम है। मूलत वे भाषाई पीढी के वस्तुस्थितिवादी ही रह जाते है।

---

1 आधारभूत तर्कवाक्यो के लिए देखें आयर का निबंध 'फिलोसोफिकल एनालिसिस' मे सपा० एम० ब्लैक (1950)। फिलोसोफिकल ऐसेज के नाम से पुन प्रकाशित।

2 देखें जे० ए० पासमूर ह्यूम्स इन्टेन्शन्स (1952)।

3 आलोचना के लिए देखें ए० चर्च को (जे० एस० एल० 1949 म)।

4 प्रारम्भिक दृष्टिकोण के लिए देखें ए० जे० आयर, सी० एच० 'व्हाइटल व एम० ब्लैक कृत ट्रूथ बाई कन्वेन्शन (एनालिसिस 1936), एम० मैलकम आर नसेसरी प्रोपोजीशन्स रीयली वबल ? (माइण्ड 1946) ए० सी० यूविंग कृत द लिंग्विस्टिक थ्योरी आव अप्रायोरी प्रोपोजीशन्स (पी०एस०एस० 1939), डब्लू० सी० किटन एव जे० ओ० अमसन कृत आर नससरी ट्रूथ्स ट्रू बाई कन्वेन्शन ? (पी० ए० एस० एस० 1947)।

अध्याय १७

तर्कशास्त्र प्रयविज्ञान एवं रीतिविधान

प्रिंसिपिया मैथेमेटिका के प्रकाशन के बाद इंग्लैण्ड में प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के प्रति लोगों की रुचि कम होती गई। इसका नेतृत्व जर्मनी हालैण्ड पोलैण्ड एवं संयुक्त राज्य अमरीका के हाथों चला गया। और वह भी दार्शनिकों[1] के हाथों में न रहकर गणितशास्त्रियों के हाथों में। सर्वप्रथम प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में संशोधन किए जाने पर बल दिया गया। इसके स्वयंसिद्धों को एक स्वयंसिद्ध में बदल दिया गया और यह कार्य प्रकारों के सिद्धांत तथा 'यूनीकरण के स्वयंसिद्ध के सिद्धान्त' के निचोड़ पर सिद्ध किया गया।[2] सब गणितशास्त्री इस बात पर सहमत नहीं थे कि गणित की रचना केवल रसल-व्हाइटहैड द्वारा सुझाई विधि के अनुसार तर्कशास्त्र पर की जानी चाहिए। या फिर तर्कशास्त्र की संगति गणित से अलग भी सिद्ध की जानी चाहिए।

इस तरह अतर्क समारी (एंटीलाजिस्टिक) गणित के दो भाग शीघ्र निर्धारित हो गए। पहला हिल्बर्ट के नेतृत्व में आकारवादियों का तथा ब्राउवर के अधीन

---

1 इसके बावजूद भी ऐसे संकेत मिले हैं कि ब्रितानी दार्शनिकों में प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के प्रति एक रुचि जाग्रत हो रही थी। यही कारण है मैंने एम दार्शनिक खोजकर्त्ताओं के बारे में एक अलग संक्षिप्त निर्देशिका इसमें सम्मिलित कर ली है। मुझे इस बात की गलतफहमी नहीं है कि जो कुछ मैंने लिखा है वही उस विशाल विषय एवं कठिन साहित्य का उपयुक्त विवरण है। इसके लिए जे० एस० एन० में प्रकाशित व्यापक रिव्यू तथा जीवनियां देखें। द्रष्टव्य आर० फेज विरेवशास नोवलेस दे ला लोजिस्तीक आवस एतास ऊनिस (रिव्यू जिओस्कोलास्तीक दे फिलोसोफी 1946), एम० बोल एवं जे० रीनहार्ट लोजिक इन फ्राम इन द टवेंटिएथ सेंचुरी (फिलोसोफिकल थोट इन फ्रांस एण्ड यूनाइटेड स्टेटस सपा० एम० फारवर 1950) फोनीकस दे ग्वरे तथा फोनीकस देस एवीस व प्रप्रेस ग्वेरे (एक्जमलिटीज 1950)।

2 देखें अध्याय 9 (प्रकारों के सिद्धांत के लिए)। रसल के स्वयं सिद्धों का एक स्वयं सिद्ध में अवयूनित (रिड्यूस्ड) किया जा सकता है। यह बात सर्वप्रथम जे० नीकोड ने ए रिडक्शन इन द नम्बर आव द प्रिमिटिव प्रोपेजीशन्स आव लोजिक (प्रोसीडिंग्स आव द कैम्ब्रिज फिलोसोफीकल सोसाइटी 1917 में) लिखी।

प्र'त साक्ष्यवादियो का।[1] गणित की[2] स्थापना पर लिखी गई रचनाप्रो म हिलवट न पूणत प्राकारी गणित की समावना को प्रकटाया। प्रर्थात् तर्काकार के ऐसे गणित को जो प्रपनी प्रभि यक्तियो क प्राशय स पूणत मुक्त हैं। इस तरह के विशुद्ध कलन म जो प्रिंसिपिया मैथेमेटिका म भी उपलब्ध नही हैं किसी स्पष्ट परिमापा की उपलब्धि नही है क्योकि इसमे किसी इयत्ता के विशेष वग का सदम प्रस्तुत नही है। परिमापाप्रो का स्थानान्तरण ऐसे रचना सबधी नियमो ने कर लिया है जो उस प्रवस्था को पेश करते हैं जिसम प्रणाली के प्रतीक काय करते हैं तथा उस रूपान्तर के नियमो के जरिए भी, जो स्वयसिद्धा स सूत्र प्राप्त करन की विधि का नियमन करते हैं। यद्यपि ये नियम प्रणाली के स्वयसिद्धो म म ही निर्मित होत हैं तो मा य स्वय सिद्धसत्य नही होते। ये हिलवट की सृष्टि म उसी प्रकार स काय करते हैं जिस प्रकार शतरज के नियम। प्रतीको का भी विचार रखना पडेगा केवल (वास्तविक या समव) कागज म चि ह के रूप मे, किसी विशेष वस्तु का प्रतीकाकन करन के लिए नही।

रसेल प्राकारवादियो के प्रति शिकायत करते हुए कहते हैं कि एक प्राकार वादी ऐसे घडी बनाने वाले मे कम नही जो घडियो को सुन्दर बनाने मे इतना निरत है कि वह समय बताने के उनके उद्देश्य को भी भूल जाता है।' उनका तक है कि

1 विवाद के बि दुप्रो के लिए देखें एम० ब्लक द नेचर प्राव मैथेमेटिक्स (1933), एफ० गोसेथ द्वारा सपा० फिलोसोफी मैथेमेटीक (एवचुप्रलिटीज 1939) एव प्रधिक शास्त्रीय चचा के लिए देखें एस० सी० क्लीन कृत इण्ट्रोडक्शन टू मैटामैथेमेटिक्स 1952।

2 देखें डी० हिल्बट प्रान द फाउण्डशास प्राव लौजिक एण्ड प्ररिथमेटिक (मोनिस्ट 1905), डी० हिल्बट एव पी० बर्सेस कृत ग्रुदलेगेन देर मैथेमेटिका (1934–1939), डी० हिल्वट एव डब्लू० एकरमन प्रिंसिपल्स प्राव मैथेमेटिकल लौजिक (1928 प्र ग्रेजी प्रनुवाद द्वितीय सस्करण जिसम प्रार० एफ० ल्यूस क नी नोटस हैं 1950), एच० बी० करी प्राउटलाइन्स प्राव ए फोमलिस्ट फिलोसोफी प्राव मैथेमेटिक्स '1951)। प्रनुभववादी विनान को प्राकारगत रूप दने क प्रयास भी हुए हैं। इसक लिए देखें जे० एच० वूजर कृत द टेकनीक प्राव थ्योरी कस्ट्रक्शन (यू० एस० 1939)। यह इस क्षेत्र की एक सुन्दर भूमिका देती है। प्राकारवादियो का दृष्टिकोण पूणत एक्जियोमेटिक मेथड इन बायोलोजी (1957) म देखा जा सकता है। बायोलोजी एण्ड लग्वेज (1952) स्वयसिद्धो की दृष्टि स प्रपेक्षाकृत उससे कम सबधित है। यह पुस्तक प्रयोगात्मक विनान के रीतिविधान से सम्बद्ध प्रनेक महत्वपूण समस्याप्रो की चर्चा करती है। प्राकारी मनोविनान के लिए देखें सी० एन० हल कृत प्रिंसिपल्स प्राव बिहेवियर (1943)।

गणित का प्रारम्भ प्राकृतिक ग्र को से होना चाहिए, व्याख्या न किए गए प्रतीकों स नहीं। और इनकी ग्रभि यक्ति भी गणितीय सत्यो मे होनी चाहिए-स्वीयात्मक नियमो म नही। हिल्बट रसेल स इस बात म सहमत होने के लिए तयार थे कि गिनती के लिए हम साधारणत गणित के ग्रङ्को का उपयोग म लते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य साधारण ता नहीं है। व ता स्वय गणित की सगति सिद्ध करने म लग। इस विशप उद्देश्य के लिए सबसे पहल उनक लिए यह ग्रावश्यक है कि व गणित को ग्राकारी स्वयसिद्ध प्रणाला मे बदलें। एसी ग्राकारी की रचना एव परीक्षण करना ही ग्रधिगणित (मटामैथटिक्स) का उद्देश्य है जो गणित स भिन्न हैं। ग्रधिगणित म गणितीय प्रणालियो पर विचार होता है उनका उपयाग नही। यही कारण है कि गणितीय प्रतीक ग्रधिगणितन के लिए कागज पर मढे चि ह मात्र होते हैं। गणित का ग्राकार दकर ग्रधिगणितन यह विचारने के लिय ग्रागे बढ सकता है कि क्या ग्रमुक ग्रमुक स्वयसिद्धा की इकाई स निगमित परिणामो से विरोधाभास प्रकट सकता है? ग्रर्थात् क्या विरोधाभासी सूत्रो को इस प्रणाली स निष्पन्न किया जा सकता है? यदि ऐसा कोई विरोधाभास नही प्रकटता है तो ग्राकारी प्रणाली सगत है। किन्तु ग्राग ग्रव ग्रधिगणितज्ञ ग्रपनी क्षमता का प्रदशन भी करता है। कोई भी प्रणाली जा प्रतीको की व्याख्या सहवर्ती परिमापाम्रो क माध्यम से करती है ग्रौर उन्ह किसी एक विशेष वग की इयत्ताम्रो के लिए उपयुक्त मानती है तो प्राकतिक ग्रङ्क भी सगत होन चाहिए। इस तरह साधारण गणित की सगति भी पूणत ग्राकारी प्रणाली के जरिए भी सिद्ध की जा सकती है।

इस याजना का कार्यान्वित करने के लिए ग्राकारवादी को यह निश्चय करने के लिए कि उसका सूत्र वध है सामान्य प्रणाली की ग्रावश्यकता हाती। क्योकि केवल मात्र यह देख लेना ग्रौर इसी की प्रतीक्षा करना पर्याप्त नही है कि क्या विरोधाभास स्वय उस दौरान प्रकटता है या नहीं? ग्राकारवादी का यह बताना पडेगा कि विरोधाभास उसकी प्रणाली मे उत्पन्न नही हो सकते। ग्रौर यह ऐसा उसी वक्त कर सकता है जब वह किसी प्रस्तुत सूत्र के विषय मे यह निश्चित रूप स कह सके कि वह प्रणाली मे बधा है या नही। इसलिए उस वक्त ग्रावश्यकता स ग्रधिक हलचल मची जब (1931 म) कुत्त गोदेल ने यह बता दिया कि प्रिंसिपिया मैथेमेटिका जसी प्रणाली मे ग्रौर वास्तव मे किसी भी प्रणाली मे-जो गणित की दृष्टि से सुसम्पन्न हो ऐसे तकवाक्य ग्रवश्य ही होगे जो उस प्रणाली द्वारा ग्रपन ग्राप म ही सिद्धीकरणीय न हों। ग्रब यह बात स्पष्ट थी कि ग्राकारवादियो को समस्त गणित को सगत सिद्ध करने मे कठिनाई क्यो ग्राई थी। यह काय ग्रपने ग्राप मे ऐसी प्रकति का था कि वह कभी भी पूण नहीं हो सकता

था ।[1] क्योंकि यदि आकारवादी अपनी अतिवादी महत्वाकांक्षाओं का त्याग भी कर देते, तो भी उनका प्रभाव प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र पर काफी गहरा पड़ा था । बहुत से तर्कशास्त्री तो इस बात से आश्वस्त हो गए थे कि जब तक एक आकारी स्वयं सिद्ध प्रणाली में किसी तार्किक सिद्धान्त को रखा नहीं जाता तब तक उसका महत्व क्षणिक ही होता है ।

हिल्बर्ट का गणित-दर्शन परिष्कृत स्वयं सिद्ध ज्यामिति को प्रधान गणित का सामान्य नमूना मानता है । इसके विपरीत अन्त साक्ष्यवादियों के लिए यह सामान्यतः गणितीय आगमन में निहित है । गणितीय आगमन की दो अवस्थाओं ने अन्त साक्ष्यवादियों का ध्यान अपनी ओर खींचा । पहली तो यह कि सारे अंकों के सम्बन्ध में यद्यपि यह एक निष्कर्ष पर पहुंचने की विधि है तो भी वह कहीं यह मानकर नहीं चलती कि अंकों की वास्तविक समग्रता (टोटलिटी) जैसी कोई चीज है भी जिसे वास्तविक अनन्त कहा जा सके । दूसरे इसमें 'जोड़' करने जैसी किसी प्रक्रिया का भी उपयोग हुआ है जिसे प्रयुक्त करना हम जानते हैं और इसमें सिवाय उन अंकों के अन्य किसी अंक का सदर्भ भी नहीं है जिसकी रचना करना भी (जैसे अमुक अंक के अनुवर्ती) हम जानते हैं । हिल्बर्ट ने कहा था, यद्यपि अधिगणित को अपने आपको उन्हीं प्रविधियों तक ही सीमित कर लेना चाहिए जिनकी वैधता का अन्त साक्ष्य से अनुमान लग सकता हो । गणित का हाथ उससे भी मुक्त है । अन्त साक्ष्यवादी इसके विपरीत, सिवाय इसके कि गणित में भी वे ही प्रक्रियाएं काम में ली जानी चाहिए जिनका अन्त साक्ष्य से स्पष्ट संकेत मिल रहा हो, अन्य कोई बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं- और इससे उन्हें विशुद्ध गणित की कुछ शाखाओं को भी परित्याग करने का जिम्मा लेना पड़ा है । उनकी दृष्टि में इसी प्रकार गणित को विरोधाभास्पद स्थिति में पड़ने से बचाया जा सकता है ।

---

1 गोदेल का निबंध उबर फोरमल अनेन्तशीदवेयर सात्ज़े देर प्रिंसिपिया मैथेमेटिका अन्ड वेरवान्डर सिस्टिमे जो मोनातसेफ्ते फूर मैथेमेटिक अन्ड फिजिक में प्रकाशित हुआ । अन्य मामला में उनके तर्क की चर्चा सी० ए० चर्च के निबंध ए नोट आन द एन्तसीदुंग्स प्राब्लेम' (जे० एस० एल० 1936) में देखें । देखें, बी० रौसर कृत एन इनफारमल एक्सपोजीशन आव प्रूफ्स आव गोदेल्स थ्योरम्स एण्ड चर्चेस थ्योरम्स' (जे० एस० एल० 1939) एवं जे० एन० फिण्डले कृत, गाडेलियन सण्टेंसेज ए नान न्यूमेरिकल एप्रोच' (माइण्ड 1942) । बाद की चर्चाओं के लिए (पुस्तकसूची सहित) देखें ए तारस्की अनडिसाइडेबल थ्योरीज (1953), डब्लू एक्रमैन कृत सोल्वेबल केसेज आव द डिसीशन प्रोबलेम (1954), निर्णय-समस्या या "एन्तसीदुंग्स प्रोब्लेम' उन शर्तों को प्रस्तुत करने की समस्या है, जिनमें कोई तर्कवाक्य सिद्ध हो सकता है ।

अन्त साक्ष्यवादियो की दृष्टि मे गणित अनुभव से चुनने तथा तदनन्तर अनन्त रूप से उनकी पुनरावृत्ति करने की सम्भावना से प्रकटता है। वे किसी ऐसे अक को मानते ही नही जिसे इस तरीके से व्यक्त किया जा सके।[1] इस तरह वे गणित को तर्क पर आश्रित नही मानते। क्योंकि तर्कशास्त्र पहले ही इस गणितीय सत्य को मानता है कि प्रतीक पुनरावर्त्य (रिपीटेबल) हैं। गणित की सुसगति तथा तर्क की सुसगति दोनो को वास्तव मे, समान रूप से साथ साथ स्थापित करना पडेगा।

शास्त्रीय गणितज्ञ को यदि यह सिद्ध करने के लिए कहा जाय कि 'प गुण से युक्त एक न विद्यमान है' तो वह यह काम इस तर्कवाक्य से यह विरोधाभास निर्गमित करके कर सकता है कि सब न के साथ यह बात सही नही है कि न मे प गुण है। यह बतलाने मे कि यदि हम किसी अक की रचना करना जानते हैं तो वह अक अस्तित्व मे है अन्त साक्ष्यवादी अस्तित्व के तमाम परोक्ष प्रमाणो की वैधता को अमान्य कर देता है। शुद्धिवादियो का इस सम्बन्ध मे कुछ चौका देने वाला यह निष्कर्ष है कि विलगित मध्य का शास्त्रीय सिद्धान्त' (प्रिंसिपल आव एक्सक्लूडेड मिडल) भी इसके साथ ही अमान्य कर दिया जाना चाहिए। क्योंकि यदि अन्त साक्ष्यवादी यह मानता है कि इन वाक्यो का इस प्रकार बदलाव सही है अर्थात् यह गलत है कि सब न के साथ यह बात लागू नहीं है कि न मे प का गुण विद्यमान है' को बदलकर 'कम से कम एक न मे तो प गुण मौजूद है' कहना वैध है तो तत्काल ही वह यह भी मान रहा होगा कि अक का अस्तित्व परोक्ष रूप से स्थापित किया जा सकता है। ब्राउवर की दृष्टि मे यह तर्कवाक्य कि 'कम से कम एक न मे तो प गुण मौजूद है' इस सदर्भ मे न तो सही है और न गलत। वे उसे अनिश्चयात्मक मानते हैं। क्योंकि प्रस्तुत न की व्याख्या करने के सम्बन्ध मे कोई नियम बने नही पाए हैं। इसलिए जो तर्कशास्त्र गणित के समानान्तर दौडता है त्रि-मूल्यात्मक होना चाहिए। वही तर्कशास्त्र ऐसा है जिसकी सगति प्रदर्शित की जा सकती है। ब्राउवर इस सबध

1 अन्त साक्ष्यवादियो की दार्शनिक पृष्ठभूमि के लिए देखें एल० ई० जे० ब्राउवर कृत कौन्शसनस फिलोसोफी मैथेमेटिक्स (प्रासीडिंग्स आन द टेंथ इण्टरनेशनल काग्रेस आव फिलासोफी 1949) देखें उन्ही का लिखा निबन्ध इण्ट्यूशनिज्म एण्ड फोर्मलिज्म' (बुलेटिन आव द अमेरिकन मैथमेटिकल सोसाइटी 1913) देखें एच० वील कृत फिलोसोफी आव मैथेमेटिक्स एण्ड नेचुरल साइन्स (1949) ए ड्रसडन ब्राउवर्स कण्ट्रीब्युशन्स टू द फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स (बुलेटिन अमरिकन मैथेमेटिकल सोसाइटी 1924) ए० एम्ब्रोस कृत फिनिटिज्म एण्ड द लिमिटस आव एम्पिरिसिज्म (माइण्ड 1937) अन्त साक्ष्यवादी तर्कशास्त्र को ए हेटिंग एव कोल्मोगोरोफ द्वारा नराकार दिया गया है देखें ए० हेटिंग कृत इण्टयूशनिज्म (1956)

के परिचित 'सत्य या प्रस य' के द्व त को 'सत्य, असत्य या अनिश्चयात्मक' को त्रैत म विभक्त करते हैं।

पोलेण्ड में, इसी बीच, बिल्कुल भिन्न दार्शनिक धरातल पर त्रि-मूल्यात्मक तर्कशास्त्रों के प्रति रुचि जाग्रत होनी प्रारम्भ हो गई थी।[1] पोलिश तर्कशास्त्र का प्राधार अरस्तूवादी तर्कशास्त्र था। अरस्तू द्वारा सुझाई समुद्री लड़ाई की समस्या ने ही जिसे सामान्य भाषा मे 'भविष्य की प्रायत्तता (फ्यूचर कंटिंजेंटस) की समस्या' कहा गया था, लूकासीविज को बिलगाए मध्य' के सिद्धान्त पर प्राकात होने को विवश कर दिया था।[2] उदाहरण के लिए, यदि घटना घटित होने से पूर्व कोई यह कहे कि

1 मीनोग के शिष्य ट्वार्डोस्की द्वारा स्पष्ट एवं सही के भेद पर दिए गए बल ने पोलेण्ड मे तर्कशास्त्र के प्रति रुचि जाग्रत कर दी। इनके प्रसिद्ध शिष्य थे जेन लूकासीविज। इनको न केवल पोलिश प्रतीकवाद का प्रवर्तन करने का श्रेय मिला, और जिसके कारण जटिल तार्किक प्राकारों की रचना मे भी सुविधा मिली थी, अपितु इन्हे पोलिश तर्कशास्त्रियों को बहुत से मूलभूत विचारो को समझाने का श्रेय भी प्राप्त है। इसी भाग से अर्थात् वारसा भाग से टार्स्की एवं लेस्नोस्की आए जिनके व्यष्टि कलन' (कलकुलस आव द डिविज्युअल्स) के सिद्धान्त ने बहुतों का ध्यान आकर्षित किया है। (उदाहरणार्थ देखें, एन गुडमैन कृत द स्ट्रक्चर आव एपीयरेन्स) फ्रेंको म तर्कवादियो क एक स्वत त्र भाग के विषय मे सबसे सुन्दर सूचना एल० शिवस्टेक की रचनाओं म मिलती है जिन्होंने थ्योरी आव कन्स्ट्रक्टिव टाइप्स' (1914-15) नामक सिद्धान्त दिया। देखें उनकी पुस्तक द लिमिट्स आव साइन्स (1935) एवं इस पुस्तक का अध्याय 9, (नोट)। पोलिश भाग के सम्बन्ध म विस्तार क लिए देख, जेड० जारडन कृत "द डेवेलमेण्ट आव मैथमटिकल लोजिक एण्ड आव लाजिकल पोजिटिविज्म इन पोलेण्ड बिटविन द टू वार्स" (पोलिश साइन्स एण्ड लर्निंग न० 6, 1945), ए एन प्रायर कृत फोमल लोजिक (1953) जिसे त्रि-मूल्यात्मक एवं तर्काकारों के लिए विशेष रूप से देखा जाना चाहिए। उन्हीं की टिप्पणी 'लूकासीविजेस सिम्बोलिक लोजिक (ए० जे० पी० 1952) देखें। आई० बोचेन्स्की कृत प्रेसी दी लोजीक मैथेमेटीक (1948) भी देखें जो पोलिश एवं रसेल वादी प्रतीकवाद के बीच रहे स्पष्ट सम्बन्धो का उल्लेख करती है। वर्तमान पोलिश तर्कशास्त्र के लिए देखें टी० कोटारबिन्सकी कृत ला लोजीक एव पोलोने 1945 55' (लि एस्युदोस फिलोसोफिक्स 1956)

2 पोलिश भाषा म उनकी प्रथम पुस्तक थी द प्रिंसिपल्स आव कण्ट्राडिक्शन एन एरिस्टाटेलियन लोजिक (1910)। वर्तमान एवं पुराने (मध्ययुगीय) तर्कशास्त्र के पारस्परिक सबंधो मे रुचि रखना पोलिश तर्कशास्त्र की मुख्य प्रकृति थी। प्रायर की पुस्तक तथा उसम सदर्भित अनेक निबन्ध इस सबंध म देखें। विशेष तौर पर जे०

सेलेमीस का युद्ध तो होगा तो प्रकटत यह कथन असत्य दिखाई नही देता, किन्तु फिर भी, यदि यह सत्य है तो लूकासीविज के विचार म हम यह निष्कर्ष लने के लिए विवश हैं कि भविष्य पूर्व-निश्चित हैं, क्योंकि इसी कारण तो यह बात वास्तविक युद्ध से पूर्व ही सही हो गई। इस नियतिवादी निष्कर्ष से बचने का एक ही माग है कि सत्य-असत्य के मूल्य से परे हम एक तीसरे मूल्य को स्वीकारना होगा। यह मूल्य तटस्थता का मूल्य होगा। तब हम यह कहने योग्य होंगे कि सेलमीस का युद्ध होगा न तो सत्य है न असत्य।' और इस तरह हम असत्य या नियतिवादी व्यूह मे फसने से बच जाएँगे। एक बार इन तीनो मूल्यो के सिद्धान्त को तर्क मे स्वीकृति मिल जाय तो फिर इस बात का कोई कारण नही दिखाई देता कि हम उपयुक्त अपर्याप्त निष्कर्ष पर ही लटके रह जाए। इसीलिए पोलिश तर्कशास्त्री तटस्थ (एन वेल्यूड) मूल्य प्रणाली पर तत्काल ही विचार करने म लग गए।

अन्य मामले मे अरस्तू म उनकी रुचि उन्हे परम्परागत द्विमूल्यीय तर्कशास्त्र से आगे ले जा सकी। इस बार अब इस रुचि ने उन्हे एक यथावस्थी तर्कशास्त्र (मोडल लाजिक) निर्मित करने की ओर प्रेरित किया, जिसमे तर्कवाक्यो को या तो आवश्यक या सम्भव या असम्भव कहा गया है तथा इसके साथ ही साथ उन्हे सत्य असत्य भी माना गया है।[1] पोलेण्ड की क्रांतिकारी आस्था से प्रेरित होकर अन्य तर्कशास्त्रियो ने तर्कशास्त्र के क्षेत्र को अवश्यकरणीय क तर्कशास्त्र म बदलन का प्रयास भी किया था जो कथन सम्बन्धी परम्परागत तर्कशास्त्र के अतिरिक्त था।

बोचन्स्की कृत एनसिएण्ट फार्मल लोजिक (1951) देखें। पी० बोएनर कृत मैडीवल लोजिक (1952) जे० लूकासीविज कृत एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टिक (1951) ए० एन० प्रायर कृत थ्री-वल्यूड लोजिक एण्ड फ्यूचर कण्टिन्जेन्टस (पी० क्यू० 1952) आर० जे० बटलर कृत एरिस्टोटलस सी फाइट एण्ड थ्री वेल्यूड लोजिक (पी० आर० 1955) जी० ई० एम० एसकोम्बे कृत अरिस्टोटल एण्ड द सी बटल (माइण्ड 1956)। आकारीभूत बहुमूल्यीय तर्कशास्त्र के लिए देखें जे० बी० रोसेर एव ए० आर० टर्केट कृत मैनीवल्यूड लाजिक्स (1952)। इस ग्रन्थ म प्रारम्भिक डायलाग उन दार्शनिक विचारो की चर्चा करता है जिनसे बहुमूल्य तर्कशास्त्र का उद्भव हुआ।

1 यथावस्थी फलको न पहले ही सी० आई० लूइस एव सी० एच० लनफोड की कृति सिम्बोलिक लोजिक म अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया था। इसम आवश्यकता पर बल दिया गया था। देख जी० एच० वान राइट कृत एन एसे इन मोडल लोजिक (1951) आर० फेज ले लोजिकस नोवलेस दे ला मौदलोइत (रिव्यू निओ स्कोलास्टीक दे फिलोसोफी 1937)।

प्रश्नात्मक तर्कशास्त्र की सम्भावना प्रकटाने से सम्बन्धित जाँच पड़ताल भी की गई थी।[1]

इन विकासों ने स्वभावत ही आकारवादी तर्कशास्त्रियों में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ा दी थी। आकारी रूप देने के लिए एक प्रणाली के बाद दूसरी प्रणाली की रचनाएँ होने लगी ताकि सगति का परीक्षण किया जा सके। तटस्थ (न) मूल्य के स्वयसिद्धीकरण के विषय में काफी शक्ति एव ऊर्जा लगाई जा रही थी। यथार्थवस्यात्मक प्रणालियों के निर्माण तथा उनमें निहित निर्णायक समस्याओं पर विचार करने की दिशा में भी बहुत लोग प्रवृत्त हो गए थे। लूइस के 'कठोर अभिप्रेत' की प्रणाली को भी चूने के बीजगणितीय तर्कशास्त्र पर प्रयुक्त किया गया। और तो और अरस्तू के तर्कशास्त्र को भी इससे अछूता नहीं छोड़ा गया। आश्चर्य नहीं कि बहुत कम लोग इस सबके बावजूद भी गणितीय क्षमता रखने वाले थे जिससे वे प्रतीकात्मक प्रहेलिकाओं का तर्क के माध्यम से अध्ययन कर सकें। आकारी करण के मूल्य को स्वीकृत करते हुए और उसका शुद्ध से शुद्धतम गणित पर प्रयोग करने के लिए महत्व मानकर भी बहुत से दार्शनिक यह कहने को उद्यत थे कि इसका दार्शनिक महत्व नगण्य ही था। तो भी जैसा हम देख चुके हैं तार्किक समस्याओं पर आकारी दृष्टिकोण का निश्चय ही कारनप एव तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवादियों पर सीधा-सीधा प्रभाव पड़ा था। किन्तु इसके परोक्ष प्रभाव भी रहे थे। साधारण भाषा में दर्शन को भलीभाँति आकारीकरण की प्रणाली के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया माना जा सकता है। ऐसा सकेत भी है कि नव तर्कशास्त्र दर्शन को विविध दिशाओं में बढ़ने की ओर भी प्रेरित कर जाएँ।[2]

---

1 निश्चयात्मक तर्कशास्त्रीय सस्करणों के लिए देखें ई० मेली ए द सेजेसेत्जे देस सोलेन्स (1926), ज० जार्जसन इम्परेटिव्स एण्ड लाजिक (एक० 1938), ए० होफ्सटड्टर एव ज० सी० सी० मकिन्सी ग्रान द लोजिक ग्राव इम्पेरेटिवस (पी० एस० सी० 1959) ए० रास इम्परेटिव्स एण्ड लाजिक' (पी० एस० सी० 1944), आर० एम० हेयर 'इम्परेटिव सेण्टेन्सज (माइण्ड 1949), ए० ई० डकन-जोन्स एसशन्स एण्ड कमाण्ड्स' (पी० एस० सी० 1951)। प्रश्नों के लिए देखें एम० एल० एव ए० एन० प्रायर इरोटेटिक लोजिक (पी० आर० 1955)। द्रष्टव्य डिप्रोण्टिक लाजिक सबक जी एच वोन-राइट (माइण्ड 1951) तथा इसके साथ ही ए एन प्रायर क्त द एथिकल कोपुला' (ए जे पी 1951)।

2 द्रष्टव्य के आर० पापर डब्ल्यू० सी० नील ए० ज० आयर हाट कन लौजिक डू फोर फिलोसोफी? (पी० ए० एस० एस० 1949)। ऐसे सामान्य प्रश्नों पर कि क्या वकल्पिक तर्कशास्त्र हो सकता है? अथवा अरस्तू एव रसेल की भाँति क्या तर्क की कोई एक प्रणाली हो सकती है? देखें वगफोर्ड 'कन्सर्निंग लोजिकल

पोलिश तर्कशास्त्रियों में से अंग्रेजी जगत के परिचित लोगों में बहुत विख्यात हैं ए० तार्स्की। उन्हीं की पुस्तक *इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड टू द मेथडोलोजी आव डिडक्टिव साइन्सेज* (1936) 1941 में अंग्रेजी संस्करण के रूप में भी प्रकाशित हुई है। टार्स्की का नाम विशेषतः दो बातों के साथ जुड़ा है तर्कशास्त्र एवं अधितर्कशास्त्र संबंधी भेद के लिए तथा सत्य के अर्थ-विज्ञानसंबंधी सिद्धान्त के लिये। अधितर्कशास्त्र तार्किक प्रणालियों की चर्चा करता है उसी भांति जिस भांति अधिगणित गणित को आकारी रूप देता है। फिर भी हिल्बर्ट के अधिगणित एवं टार्स्की के अधितर्कशास्त्र में मौलिक भेद है। हिल्बर्ट के अनुसार अधिगणित गणित की निराकारी चर्चा है जबकि टार्स्की एक आकारी अधितर्कशास्त्र की रचना करने के लिए चेष्टाशील थे जो उनकी दृष्टि में साधारण भाषा की अस्पष्ट एवं अयुक्तियुक्त अभिव्यक्तियों से मुक्त होगा, और वह अपनी वैधता के लिए हिल्बर्ट द्वारा सुझाये गये प्रत्यक्ष अन्तःसाक्ष्य पर आश्रित भी नहीं होगा।

कारनप कृत *लोजिकल सिण्टेक्स आव लैंग्वेज* टार्स्की की प्रणाली का व्यवहार में लिए जाने का उदाहरण है। यहां तक कि सर्वाधिक आकारवादी तर्कग्रन्थ भी इस धारणा की व्याख्या को साधारण भाषा में कहने के अनुच्छेदों से भरे हैं और उनमें तार्किक सूत्रों के निर्माण की विधि तथा उनके पारस्परिक संबंधों का संकेत देने का प्रयास है। कारनप का कथन है यदि ये सरणियां स्वयं आकारी हो जायें तो तमाम तर्कशास्त्र पूर्णतः सही हो जायगा।' *द लोजिकल सिन्टेक्स आव लैंग्वेज* ऐसे वाक्यों के विषय में वाक्यों की रचना करने की सही विधि का वर्णन करता है। किन्तु अर्थविज्ञान पर कार्य करते हुए इसी दौरान में टार्स्की ने ही कारनप को *लोजिकल सिण्टेक्स आव लैंग्वेज* की कठोरता को थोड़ा नरम करने के लिए सहमत किया, क्योंकि इस पुस्तक में कारनप ने उन सारे अर्थ-सन्दर्भों को तत्त्ववादी कहकर अनादृत किया था जिन्हें वाक्यों के पारस्परिक संबंधों के जरिए व्यक्त नहीं किया जा सकता हो। टार्स्की के प्रभाव में आकर उन्होंने *स्टडीज इन सेमेंटिक्स* लिखा जो पहले से कम आत्म प्रहारवादी थी।

अपने संक्षिप्त इतिहास में अर्थविज्ञान (सेमेंटिक्स) नामक शब्द ने बौद्धिक क्रिया की विविध भूमियों पर पदक्षेप किया है। ऐसे ब्रे सेमान्तीक (1897) में

प्रिंसिपल्स (बुले० अमे० मैथ० सोसा० 1928)। पी० वीस आन आल्टरनेटिव लोजिक्स (पी०आर० 1937) एफ० बसमन आर देयर आल्टरनेटिव लौजिक्स ? (पी० ए० एस० 1945), सी० आई० लूइस को इसी पुस्तक के बारहवें अध्याय में पढ़ें। ई० टोम्स कृत द ला आव एक्सक्लूडेड मिडिल (पी० एस० सी० 1941), सी० आई० लूइस पाल वीस आन आल्टरनेटिव लाजिक्स (पी० आर० 1934)।

मिस्टर ब्रियल ने इस शब्द को गढ़ा था और उसे अर्थ सम्बन्धी भाषाई जाच की मशा से अभिहित किया था। ब्लिस्टेन्स द्वारा इसका आशय वह लिया गया जो कारनप द्वारा तर्कसम्मत वाक्यशली (लाजिकल सिन्टेक्स) का लिया गया था। इसका प्रयोग बहुधा अर्थ सबधी जाच पड़ताल के लिए भी हुआ है जो पीयस के सकेत सिद्धान्त म प्रकटी है या जो फ्रेगे द्वारा प्रस्तुत अर्थ एव सदर्भ के भेद म प्रकटी है तथा जो विटजनस्टीन के चित्र सिद्धा त म व्यक्त हुई है। अधिक लोकप्रिय स्तर पर कहें तो कहना होगा कि विश्लेषण करने का ऐसा प्रयास जो भाषा की जटिल हुई स्थितियों के लिए प्रयुक्त हुआ हो अर्थ विज्ञान कहलाएगा।[1]

अर्थ-विज्ञान का यह वाद का सस्करण द मीनिंग आव मीनिंग म रूपायित हुआ है। इसकी रचना सी० के० ओगडेन ने एव आई० ए० रिचडस ने की जिन्होंने पीयस के निबंधों का मनोयोग स अध्ययन किया था और जिन पर उन्होंने एक लम्बा परिशिष्ट भी दिया है। और थोड़ा बहुत (रसल के माध्यम से) उनका फ्रेग से भी परिचय था। सामान्य शब्दों मे, उन्होंने पीयस के सकेत सिद्धान्त एव व्यवहारवादियों के मनोविज्ञान को उस रूप म सयुक्त करके रखा जो रसेल कृत एनालिसिस आव माइण्ड म अभिव्यक्त हुआ।

द मीनिंग आव मीनिंग की दो बातों ने विशेष हलचल मचाई। इसम प्रस्तुत 'नाममात्रवाद (नोमिनलिज्म) एव 'भावनात्मक अर्थ के सिद्धान्त' ने। जसा कि समसामयिक दशन म भी बहुधा चर्चा रहती है, ओगडन एव रिचड्स ने भी मीनोंग महोदय के उस 'वस्तु सिद्धान्त' से भीषण उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। यदि हम यह मानने का दुस्साहस करें कि अमूत सत्ताए 'नामरूप' मात्र सत्ताए हैं,[2] तो यही घटित होगा। ओगडेन एव रिचड्स यहा आकर एक दूसरे ही प्रतिवादी छोर

---

1 मक्स ब्लक कृत लग्वेज एण्ड फिलोसोफी (1949) नामक ग्रथ मे वतमान समय म प्रकटी अर्थ विज्ञान सबधी विविधताओं की सुदर व्याख्या है। सेमेंटिक्स नामक अध्याय मे इस सबध म लिखी गई अधिकाश रचनाओं का इसम सदर्भ है। मुझे अपने इस ग्रथ म बहुधा ब्लक की रचनाओं का उल्लेख करने का सुअवसर मिला है, जो अप्रत्यक्ष अनुभववादी दृष्टिकोण से लिखी गई है। ब्लक की रचना मे समसामयिक दशन की प्रमुख समस्याओं की सुदर विवचना मिलेगी। उनके निबधों के सग्रह में जो उन्होंने एल० लिस्की के सहकार मे सेमेण्टिक्स एण्ड द फिलोसोफी आव लग्वेज (1952) के नाम से सकलित किया है, अभिप्रायकता सत्य एव सार्थकता के सबध मे अमरीकी विद्वानों के मत भी दिए गए हैं।

2 इसके भीषण प्रतिवाद के लिए देखें, ए०एन० प्रायर कृत एप्टिट्यूड (ए जे पी 1954)।

में जा पड़ते हैं, जिसकी आलोचना विट्जनस्टीन को भी फिलोसोफिक इन्वेस्टीगेशन्स नामक पुस्तक में करनी पड़ी। उन्होंने यह तक प्रस्तुत किया कि प्रतीकवादी उपस्थापना (सिम्बालिक एक्सप्रेसनी) से अलग हटकर उचित प्रतीक सदैव ही किसी काल निरपेक्ष घटना का नामांकन करता है या फिर उसका विस्तार इसी प्रकार के नामों की इकाई में किया जा सकता है। उनकी रचनाओं में प्रस्तुत यह दृष्टि साइंस एण्ड सेनिटी (1933) में ए० कोर्जिवस्की द्वारा तथा द टिरेनी आव वर्ड्स (1938) में स्टुअर्ट चेज द्वारा अपनायी गयी। अमूर्तता पर इतनी प्रबलता से कदाचित कभी भी प्रहार नहीं किया गया हो। मानवी विचारों के एक व्यापक क्षेत्र को अपमानजनक शब्दावलि में खोखले अमूर्तीकरण की संज्ञा दे दी गयी थी।

वर्णनात्मक डेस्क्रिप्टिव) एवं भावात्मक (इमोटिव) भाषा के इनके द्वारा किए गए भेद को मानने वाले सभी जगह पैदा होते चले गए। प्राय इसका प्रयोग उस भाषा या अर्थ के स्वरूप पर प्रहार करने के लिए होता था जो भौतिक विज्ञान के तर्कवाक्य' की कसौटी पर नहीं आ सकता था। किंतु इसके व्यापक दार्शनिक परिणाम निकले।[1] यह अच्छा है नामक तर्कवाक्य के संबंध में आगडन एवं रिचर्ड्स लिखते हैं कि अच्छा' शब्द का एक खास नैतिक अर्थ है अतः यह विशुद्ध रूप से भावात्मक शब्द है। अच्छा है का कोई प्रतीकात्मक फलन नहीं है। यह केवल एक मनोवृत्ति को व्यक्त करने वाला चिन्ह है। और यह कदाचित अन्य लोगों में भी इसी मनोवृत्ति को जाग्रत करता है या फिर उन्हें एक या दूसरी तरह के ऐसे ही कार्य करने की ओर प्रेरित करता है। नीतिशास्त्र के प्रति यह दृष्टिकोण सी० एल० स्टीवेन्सन के निबंध परसुएजिव डफिनीशंस (माइण्ड 1938) में पूर्णत अभिव्यक्त हुआ है। उनकी पुस्तक एथिक्स एण्ड लग्वेज (1944) में भी यह व्यक्त हुआ है। इस दृष्टिकोण ने उस दृष्टिकोण का खण्डन करने में सहायता की कि प्रत्येक कथन जिसका आकार स प है' वाला है केवल स का ही विवरण प्रस्तुत करता है। इस तरह कथनों के विविध आशयों के संबंध में इसके जरिए मार्ग खुल गया। बाद में तो शीघ्र ही वर्णनात्मक एवं भावात्मक शब्दों का द्वैत भी नगण्य मानकर त्याग दिया गया।

---

1 देखें ब्लैक, स्टीवेन्सन एवं रिचर्ड्स कृत ए सिम्पोजियम आन इमोटिव मीनिंग (पी०आर० 1948)। साधारण भाषा में यदि आप वर्णनात्मक एवं भावात्मक शब्दों के अंतर को देखना चाहें तो देखें, एम० ई० टोमलिन एवं के० बेयर कृत आन डिस्क्राईबिंग (माइण्ड 1952)। भाषा के प्रकारों का गंभीर एवं तात्विक विश्लेषण देखें कम्युनिकेशन (1939), लेखक के० ब्रिटन। रिचर्ड्स एवं आगडन से सीखी हुई बातों को ब्रिटन ने समन्वित कर दिया है और ऐसा करते समय उन्हें रसेल कारनप जोन, विजडम आदि का भी खयाल रहा है।

उन अर्थशास्त्रिकों में से जिनकी रचनाएं द मीनिंग आव मीनिंग के ही स्तर की हैं सर्वाधिक गंभीर एवं व्यवस्थित सी डब्लू० मौरिस[1] हैं। वे भी पीयस के बड़े उपकृत हैं। वास्तव में उनकी रचनाएं भी पीयस के संकेत के सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना हैं और वे भी व्यवहारवादी दार्शनिक हैं। फाउण्डेशन्स आव द थ्योरी आव साइन्स (यू० एस० 1938) नामक अपने ग्रंथ में उन्होंने संकेत के सामान्य सिद्धान्त को तीन भागों में विभक्त किया है, और उसके लिए ऐसी प्रणाली अपनायी है जिससे भाषा के प्रयोग संबंधी कोई स्थिर नियम निर्धारित हो सकें। यह बात उन्होंने सीमिओटिक्स' (शब्दार्थ-विज्ञान) के विवेचन के समय उठाई है। इन तीनों में पहला भाषाई उप-विज्ञान है-वाक्यघटन-विद्या (सिण्टेक्टिक्स), जो शब्द-प्रतीकों के पारस्परिक संबंध में बताता है, फिर अर्थ विज्ञान (सेमेण्टिक्स) जो उस विधि का वर्णन करता है जिसके जरिये शब्द अपना अर्थ बताते हैं, एवं अर्थ क्रिया विज्ञान' (प्रैग्मेटिक्स) जो शब्द संकेतों एवं उनके व्याख्याकारों के बीच के संबंध को बताता है। मौरिस स्वयं भी मुख्यतः व्याख्या में रुचिशील हैं। वे विशेषतः इस बात को बताने का प्रयास करते हैं कि प्रतीकों की व्याख्या केवल निजी मानसिक मामला नहीं है, किन्तु वह भी सार्वजनिक दृष्टि में आने वाले व्यवहार से संबंधित अवस्था का मामला है। अन्ततः वे भी अपने शब्दार्थ-विज्ञान (सेमिओटिक्स) पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य हो ही जाते हैं। उनको भान होता है कि उन्होंने भाषा पर आवश्यकता से अधिक बल दे दिया था। वे मानते हैं कि पीयस का संकेत सिद्धान्त ही उचित विज्ञान है जो व्यवहार की उन अवस्थाओं को प्राथमिक मानता है जिनमें हमारी क्रियाएं हमारे द्वारा प्रस्तुत स्थिति की व्याख्या के परिणाम के रूप में वर्णित की गई हैं। संकेत के उपयोग का विशिष्ट व्यवहार इस दृष्टिकोण से हमारे कोट पहनने की क्रिया से उद्धृत किया गया है-जो किताब पढ़कर नहीं, बादल को घुमड़ता देखकर प्रकट हुई है। मौरिस कृत साइन्स लैंग्वेज एण्ड बिहेवियर में वास्तव में अर्थविज्ञान सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र तक भी चला गया है।

दार्शनिक क्षेत्र का अधिक संकीर्ण अर्थ विज्ञान आगडन एवं रिचर्ड्स के बजाय टार्स्की में देखा जा सकता है। कठोर ऐतिहासिक न्याय के हिसाब से, हमें लेस्नोव्स्की एवं टी० कोटारबिन्स्की की रचनाओं का उल्लेख करना होगा, जिनका टार्स्की पर

---

1 द्रष्टव्य सी जे ड्यूकास कृत सम कमेण्ट्स आन सी डब्लू मौरिसेज फाउण्डेशन्स आव थ्योरी आव साइन्स (पी० पी० आर० 1942), जोन वाइल्ड एवं ड्यूकास के बीच रहे बाद के सुवाद के लिए देखें (पी० पी० आर० 1947)। मौरिस कृत साइन्स, लैंग्वेज एण्ड बिहेवियर (1946) में एक भारी पुस्तक-सूची भी है।

काफी प्रभाव पडा था। किन्तु यह सब अभी भी अप्रकाशित है–या फिर केवल पोलिश भाषा में ही प्रकाशित हुआ है। पोलण्ड के बाहरी क्षेत्रों मे पोलिश अर्थविज्ञान का प्रारम्भ टार्स्की द्वारा 1939 मे सत्य की अर्थवैज्ञानिक धारणा [1] पर पढ़े गए निबंध के जर्मन अनुवाद से ही माना जाता है।

यदि तत्ववाद के दैत्य का दमन करना है तो कारनप एवं थूरथ की मान्यतानुसार अर्थ सत्य एवं शब्द संकेत (डेसिग्नेशन) जैसी अभिव्यक्तियों की परिभाषा विशुद्ध वाक्यविज्ञान के आधार पर ही करनी पडेगी [अर्थात् एक आकारी प्रणाली के वाक्यों के गुणों के संदर्भ में ही]। लोजिकल सिण्टेक्स ग्रावज लग्वे में कारनप द्वारा इस योजना के जरिए ही इसके कटु निष्कर्ष तक पहुचने का प्रयास उन्हें भीषण धारणाएं बनाने के लिए बाध्य कर देता है। वे बहुत सकुचित हो जाते हैं। वे कल के भाषण में अफ्रीका का वर्णन था की व्याख्या यो करते है कि यह कल के भाषण में अफ्रीका शब्द आगया इस बात के कहने का गलतफहमी उत्पन्न करने वाला प्रकार है। कारनप टार्स्की के अर्थविज्ञान का स्वागत करते हैं क्योकि उससे ऐसे जबरदस्ती के अनुवादों की सभावना हट गई थी। जबकि कुछ हठी वस्तुस्थितिवादियों की धारणा थी कि टार्स्की आकारी वेशभूषा में एक तत्ववादी ही थे।

इसके अतिरिक्त भी भाषाई विरोधाभासपदो का हल करने का एक तरीका भी टार्स्की ने निकाल लिया। ये विरोधाभासपद स्थितिया उस भाषा द्वारा हल नही हो सकती जिसमे अर्थविज्ञान की गुजाइश न हो–अर्थात् एक ऐसी भाषा जिसमे न केवल वाक्य हों बल्कि ये वाक्य किस प्रकार के हो उनके नाम भी हो–[बर्फ सफेद है को ही उद्धरण चिन्हों मे लिखकर हम बर्फ सफेद है–नामक सीधे वाक्य का नामरूप मान सकते हैं] तथा इसी प्रकार वाक्यों के पद का वर्णन सत्य असत्य' का पर्यायवाची कहकर हम कर सकते हैं। ऐसी किसी भी भाषा में तब वाक्यों की चिन्ता इस प्रकार में हो सकती है 'सब सत्य वाक्य क्ष हैं।' इस तरह के तमाम वाक्य स्वयं अपना सदर्भ देते हैं। टार्स्की के अनुसार विरोधाभासपद स्थिति उस समय स्वयं ही प्रकटती है जब भाषा में ऐसे स्वसन्दर्भित वाक्यों को प्रवेश मिल जाता है। टार्स्की के तर्क इस सम्बन्ध में आकारवादियों के लिए साधारण भाषी दर्शन के

1 इस निबंध का शीर्षक है देर हारेत्स बेग्रिफ इन दन फोर्मेलीसिएतन स्प्राचन' (1936)। उन्ही की रचना देख द सेमेण्टिक कन्सेप्शन आव ट्रूथ (पी पी आर 1944) जो लिस्की में पुन मुद्रित हुई। काटेरबिन्स्की के लिए देखें आर रण्ड का निबंध (एक 1938 जर्मन भाषा में), या फिर उनके तत्वदर्शन के लिए द फण्डामेण्टल आइडियाज आव पनसोमेटिज्म (माइण्ड 1955)। यह 1935 में लिखे उनके निबंध का अनुवाद है।

विरुद्ध उपयोग में लिए जाने के तीक्ष्ण उपयोगी हथियारों का काम करते रहे हैं। और चूँकि साधारण भाषा में ऐसे स्व-सम्भशील वाक्यों का आना स्वाभाविक है इस हेतु इनमें अनिवारणीय विरोधाभासों[1] का होना लाजिमी है।

अर्थविज्ञान के सम्बन्ध में टार्स्की का सुविख्यात योगदान है उनकी सत्य की परिभाषा जो ऐसी परिभाषा के लिए आकार बताने के लिए भौतिक उपयुक्तता से पूर्ण दिशाओं की खोज करती है। सत्य की उपयुक्त परिभाषा में सम-भाव रहना चाहिए। 'बर्फ सफेद है' उसी समय और केवल उसी समय सत्य है जब बर्फ सफेद हो। अधिक सामान्य भाषा में यह तो कहना पड़ेगा, जहाँ प एक वाक्य है और क्ष उस वाक्य का नाम, तो इसकी परिभाषा इस तरह होगी कि यदि प सही है तो क्ष एवं क्ष के समानार्थी भी सही होंगे। यह सम भाव अपने आप में सत्य की परिभाषा नहीं है। यह बात गलती से कई बार सोच ली गई है। ये तो उनकी दशाओं को प्रस्तुत करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता जिनकी आवश्यकता सत्य-सम्बन्धी परिभाषा पूरित करने के लिए होती है। यह स्व-सदम हटाने के लिए सत्य की परिभाषा अधिभाषा (मेटालैंग्वेज) में की जानी चाहिए, ऐसी अधिभाषा में जो विषयभाषा के प्रत्येक वाक्य को अपने में समाहित कर सकती हो, (क्योंकि ऐसा कोई भी वाक्य परिभाषा में प्रयुक्त सममावी श्रेणी के प की एवज में रखा जा सकता है) साथ ही विषय वाक्यों के नाम रूपों को भी समाहित कर सकती हो और उन सामान्य तार्किक अभिव्यक्तियों के नामरूप भी, जिन्हें 'यदि एवं केवल मात्र यदि' के आकार में व्यक्त किया गया हो। इस अधिभाषा के द्वारा ही टार्स्की अन्ततः सत्य की परिभाषा पर पहुँचते हैं। वह इतनी तकनीकी है कि उस की चर्चा यहाँ करना सम्भव नहीं है। उनके अनुसार यह परिभाषा भौतिक उपयुक्तता की आवश्यकता को पूर्ण करती है और उसमें ऐसी कमी भी नहीं रहती जिससे उसमें विरोधाभासद स्थिति प्रकट सके।

ऐसे आकारी अर्थ विज्ञान के उपयोग के सम्बन्ध में बहुत से दार्शनिक शंकालु हो गए। किन्तु कारनप को कोई शंका नहीं थी। टार्स्की द्वारा व्यवहृत नई प्रणालियों का वे उत्साहपूर्वक समर्थन करते रहे।[2] इस तरह कारनैप की अभिनव रचनाओं में

---

1 देखें स्ट्राल कृत 'इज एवरीडे लैंग्वेज इनकंसिस्टेण्ट ?' (माइण्ड 1954) तथा उसमें प्रस्तुत सामग्री का संदर्भ। के आर पापर कृत 'सेल्फ रेफरेंस एण्ड मीनिंग इन आर्डिनरी लैंग्वेज' (वही पुस्तक)।

2 द्रष्टव्य एम ब्लैक 'द सेमण्टिक डेफानीशन आव ट्रूथ' (एनालिसिस 1948) जो लैंग्वेज एण्ड फिलोसोफी के नाम से पुनः मुद्रित हुई। साथ ही देखें निबंध 'कारनेप आन सिमेण्टिक्स एण्ड लोजिक,' प्रोब्लेम्स आव एनालिसिस में (1954), जे एफ

दर्शन को शब्दार्थ-विज्ञान (समिओटिक्स) के ही पर्याय के रूप में देखा गया है । (यह मौरिस की शब्दावलि है जो उन्होने ग्रहण की है) वाक्यशैली (सिंटेक्स) को दर्शन मे महत्व नही दिया गया । ऐसे बहुत से प्रश्न (जिनमे एक सार्थकता की समस्या भी है) जिन्हे पहले उन्होने द्व यार्थक पदो मे व्यवहृत किया था अब वे उन्हे ही अर्थविज्ञान की प्राथमिक समस्या मानकर चलते हैं ।[1] किन्तु इसका यह अर्थ नही कि आकार रूप मे उनका कार्य सीमित हो गया है ।

इसके विपरीत द फाउण्डेशन आव लॉजिक (1943) सत्य असत्य सत्य का मूल्य तथा चलाक के मूल्य जसी शब्दार्थक अभिव्यक्तियो को आकार रूप देने का प्रयास है । कारनप की शिकायत है कि तकशास्त्रियो ने अब तक इनको अनाकारी रूप मे ही प्रयुक्त किया है । उन्होने अपने आपको गलती से बचाने के लिए सामान्य बुद्धि तथा सहज वृत्ति (इन्सटिंक्ट) से अधिक किसी अन्य माध्यम का सहारा नही लिया ।

मीनिंग एण्ड नेसेसिटी (1947) मे जो कारनप का अर्थविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन की तीसरी कृति है कारनप एक बार फिर मिल तथा फ्रेगे [2] के प्रिय कथ्यो की ही चर्चा करते हैं । आधुनिक दार्शनिक तकशास्त्रियो ने कारनप की दृष्टि मे सामान्य रूप से यह मान रखा है कि सुगठित भाषा की प्रत्येक अभिव्यक्ति किसी

टोमसन ए नोट आन ट्रूथ' (अनालिसिस 1949) पी एफ स्ट्रासन ट्रूथ वही) एव देखें पी ए एस एस 1950 । अर्थ क्रिया विज्ञान (प्रग्मेटिक्स) को भी आकारी रूप देने का प्रयास हुआ हैं । देखें डबलू सेलस प्योर प्रग्मेटिक्स एण्ड एपिस्टेमोलोजी (पी एस सो 1947) आर कारनप आन सम का सप्टम आव प्रेग्मेटिक्स तथा इसके साथ आर एम चिशोल्म कृत ए नोट आन कारनप्स मीनिंग एनालिसिस (दोनो पी एस 1955 म मुद्रित) ।

1 कारनप द्वारा लोजिकल सिण्टेक्स आव लग्वज मे किए गए सशोधनो के लिए देखें इण्ट्रोडक्शन टू सेमेण्टिक्स 1942 का परिशिष्ट । बहुत से मामलो म उनके दृष्टिकोण की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति द फाउण्डेशन्स आव लोजिक एण्ड मैथेमेटिक्स (यू एस *1939) म देखी जा सकती है ।*

2 राइल का रिव्यू देखें (फिलोसोफी 1949 म) । उन्होने लिखा है, मेरी प्रमुख मान्यता यह है कि यह कार्य नव-दर्शन के लिए चमत्कार-पूर्ण तकनीकी विचारीकरण है । इसके सिद्धान्त मिल से प्रभावित तथा प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स के बाद मुरझाते हुए युग से प्रकट हुए है ।' नेजल का रिव्यू भी देख (जे पी 1948) एव कारनेप द्वारा दिया गया राइल एव नजल का उत्तर भी देखें एम्पिरिसिज्म सेमेटिक्स एण्ड ओण्टोलोजी (आर आई पी 1950 लिस्की म पुन मुद्रित) ।

ठोस उपजीवी इयत्ता का नाम ही है, जबकि वास्तव में अभिव्यक्तियों का सार्थकता उनके आशय एवं उनके द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र की प्राप्ति में निहित है। फ्रेंगे की भाषा में उनकी सार्थकता एक संदर्भ रखने तथा उसका कोई आशय होने में निहित है। शब्द-संकेत (डेजिग्नेशन) के इस सिद्धांत के आधार पर जिसको काफी विस्तार में लिखा गया है, कारनप यथावस्थी तर्कशास्त्र (मोडल लाजिक) की रचना करते हैं जिसमें यथावस्थी वाक्य वाक्य की शब्दार्थक धातुओं की व्याख्या करता हुआ माना गया है। 'अ आवश्यक रूप से ब है' का मतलब यही है कि अ ब है यह वाक्य आवश्यक तर्कवाक्य है। इस तरह यथावस्थी तर्कशास्त्र भी अर्थविज्ञान की एक शाखा मात्र हो जाता है। वास्तव में यदि कारनप सही है तो अर्थविज्ञान तर्क की प्रत्येक शाखा का मूलभूत एवं महत्वपूर्ण अभियन्ता है।

अपनी सभी रचनाओं में, अन्य सब मामलों में चाहे उनमें कितनी ही विविधता मिले, कारनप ने तार्किक एवं वास्तविक सत्य में भेद बनाए ही रखा है। वे यह जान कर दुखी थे कि टार्स्की ने इस भेद को नगण्य माना था। अमरीका के बहुत से प्रमुख तर्कशास्त्रियों में डब्लू वी ओ क्वाइन का नाम विख्यात है। वे टार्स्की के विषमवादी सुझावों को एक प्रभावपूर्ण प्रतिरेक तक ले गए हैं।

हम जिन तर्कशास्त्रियों की चर्चा कर रहे हैं उनके विपरीत रसल-व्हाइटहैड की तर्क प्रणाली के प्रति क्वाइन वफादार रहे। यद्यपि अपनी पुस्तक न्यू फाउण्डेशन्स आव मथेमेटिकल लोजिक[1] में वे प्रकारों के सिद्धांत की परिभाषा कर देते हैं और अपना कार्य प्रारम्भिक तार्किक प्रत्ययों की बहुत थोड़ी संख्या से चला लेते हैं प्रिंसिपिया में प्रयुक्त प्रत्ययों से भी कम में। उनकी नव स्थापनाएं सम्पूर्ण खण्डन न होकर एक प्रकार का व्हाइटहैड रसल के गणित दर्शन का संशोधन मात्र है। क्वाइन फिर भी वस्तु-निर्देशात्मक तर्कशास्त्र के आदर्श के वफादार हैं और इस बात के प्रति भी संदेह शील हैं कि बिना सिद्धांतों की हत्या किये यथावस्थी तर्कशास्त्र निर्मित किया जा सकता है। यदि उन्हें एक तर्कशास्त्री के रूप में रूढ़िवादी माना भी जाय तो भी यह मानना होगा कि उनकी दार्शनिक उक्तियां जो उनके तर्क से कहीं अधिक सशक्त हैं निश्चय ही ताजे किस्म की हैं। यदि हम उन्हें क्रांतिकारी न भी कहें तो।

उनके संक्षिप्त निबंधों में से खास तौर पर आन व्हाट देयर इज' (आर० एम० 1948) एवं टू डोगमा आव एम्पिरिसिज्म[2] (1937) में प्रकाशित हुआ।

---

1 सर्व प्रथम अमेरिकन मैथेमेटिकल मन्थली (1937) में प्रकाशित हुआ। संशोधित रूप में पुनः मुद्रित हुआ-फ्रोम ए लोजिकल पोइण्ट आव व्यू (1953)।

2 फ्रोम ए लोजिकल पोइण्ट आव व्यू में से रिफरेन्स एण्ड माडेलिटी वाला अध्याय देखें और मीनिंग एण्ड नसेसिटी में कारनेप के साथ रहे सुवाद का भी।

(पी ग्रार 1955)[1] नामक दा निबंधो न उनके समसामयिक विचारकों का आश्चय मे डाल दिया है। ग्रान हाट देयर इज इस बात का विचार करने का प्रयास है कि किन मामलो म एक विशिष्ट तार्किक सिद्धान्त क प्रति हमारा स्वीकरण हमे तात्विकी को दृष्टि से प्रतिबद्ध करता है। यह एक ऐसी योजना थी जिसे बहुत से ब्रितानी दार्शनिक प्राग्भावी कहकर छाड देते तथा यह कहते कि तर्कशास्त्र तात्विक दष्टि स तटस्थ हैं। केवल नामो का प्रयोग हम यह स्वीकारने क लिए प्रतिबद्ध नही करता कि जो नाम हम प्रयुक्त कर रहे हैं-(जसे पगासस) वे सब ऐमी इयत्ताग्रो का सदभ प्रस्तुत करते हैं, ग्रौर न विधेयों का प्रयाग ही यह बताता है कि समष्टिया विद्यमान होनी चाहिए। इसके दूसरी ग्रोर क्वाइन क ग्रनुमार बद्ध चलाकों का प्रयोग हम प्रतिबद्ध करता ही है। उदाहरण क लिए यह कथन लें कुछ कुत्ते सफेद हैं। यह कहना इस स्वीकरण से किसी भाति कम नही है कि एक ऐसी वस्तु है जिसम कुत्तात्व ग्रौर सफेदत्व दोनो हैं। चाहे यह सब सफेदी एव कुत्ता पन के ग्रस्तित्व को सिद्ध न ही करती हो। इसी भाति क्वाइन की मा यता है कि यह कहना कि कुछ जन्तुग्रो की प्रजाति पारस्परिक रूप मे उवरा है' प्रकट रूप म यह स्वीकारना है कि वह कम से कम ग्रस्तित्व मे तो है।

यह स्वीकरण केवल प्रकट मे है क्योकि एक तर्कशास्त्री को ऐसी प्रणाली की जिससे य कथन रचे जा सकें ग्रावश्यकता रहती है। यह एक ऐसी प्रणाली ह जो रसेल के विवरण के सिद्धान्त' के समानान्तर है। इस तरह यह प्रजाति का व्यंजित नही करती। ये नव रचित कथन भी ता हम किसी न किसी वस्तु के ग्रस्तित्व से प्रतिबद्ध कर देंगे। कि तु कदाचित् प्रजाति के ग्रस्तित्व क विषय म नही। एक तर्कशास्त्री हम ग्रपने नव रचित कथन को स्वीकारने के लिए विवश नही कर सकता। किन्तु यह देखना महत्वपूर्ण है कि क्या एक एस तर्कशास्त्र की भी रचना की जा सकती है जो प्रजाति क ग्रस्तित्व से प्रतिबद्ध न हो ग्रौर फिर भी जीवशास्त्रीय कथनों को रचना उससे हो सके ? तब यदि कुछ ग्रन्य कारणों स (क्योकि शायद यह हम एक ग्रधिक सरल एव व्यापक विचार सबधी योजना प्रदान करती है), हम प्रजाति मुक्त तात्विकी को ग्रगीकार करने की सोच लें तो हम कम स कम यह ता जानेंगे कि तर्कशास्त्र म ऐसी कोई बात नही है जा हम ऐसी तात्विकी के परित्याग करने के लिए विवश करे। क्वाइन इसी तरह ऐसे गणितीय तर्कवाक्यो की रचना करना चाहते थे जिनसे उन्हें समष्टियो के सम्बन्ध मे प्रतिबद्ध न होना पडे। व पूर्णत यह स्वीकारते हैं कि ऐसा करने मे उनक ग्रनुसरण के लिये किसी को थोडा भी बाध्य

1 फ्रोम ए लौजिकल पोइण्ट ग्राव व्यू म दोनो पुन मुद्रित हुए। दखें जे जे सी स्माट कृत क्रिटिकल नोटिस (ए जे पी 1953) एव पी एफ स्ट्रासन कृत ए लोजिशियन्स लण्डस्केप,' (फिलोसोफी 1955)।

नहीं होना चाहिये अर्थात् उनकी नामवादी धारणा को स्वीकार करके।[2] वे जिस एक बात पर बल देना चाहते हैं वह यह है कि यदि हम आकारीकरण का एक विशिष्ट तरीका अपना लें, तो हम उसी समय उसके साथ चलने वाली तात्विकी को स्वीकारने के लिए भी विवश हो जाते हैं। वे इस बात को संक्षेप में कहते हैं कि अमूर्त इयत्ताओं को स्वीकारना ही गलत है। और तब उनके स्वीकरण की व्याख्या करते रहना और भी गलत। यों वे उपसंहार करते हैं।

'टू डॉग्माज आव एम्पिरिसिज्म' में क्वाइन दो भिन्न किन्तु जुड़वा रूढ़ियों पर प्रहार करते हैं। पहली यह कि असंशोधनीय (या संश्लेषणात्मक) एवं संशोधनीय (या विश्लेषणात्मक) तर्कवाक्यों में मौलिक भेद है, तथा दूसरी, कि प्रत्येक सार्थक कथन तात्कालिक अनुभवों की ही रचना है। क्वाइन दुहेम के अनुसरण में कहते हैं कि वैज्ञानिक तर्कवाक्यों के एक समूह को परीक्षण के लिए लाता है किसी विमुक्त कथन को नहीं। इसलिए एक तर्कवाक्य एक वैज्ञानिक प्रणाली का मूल तत्व है बजाय अनुभवों का साराश होने के। यदि अनुभव अप्रत्याशित रूप से प्रकट हो जाते हैं तो कोई भी अग्रिम रूप से यह नहीं कह सकता कि वैज्ञानिक तर्कवाक्यों की कौनसी इकाई त्याज्य होगी। सैद्धान्तिक रूप से तो इनमें से कोई भी संशोधनीय हो सकती है-अर्थात् संप्रेषणात्मक हो सकता है। इनमें से कुछ तो निस्सदेह दुर्भेद्य दिखाई देती हैं। हम किसी ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें हम इनको छोड़ सकें। किन्तु प्रमात्रा-सघटनाओं (क्वाटा फ़िनोमिना) के सिद्धान्त की खोज ने जिसके विषय में अग्रिम रूप से किसी ने भी कल्पना नहीं की थी, बहुत से वैज्ञानिकों को प्रकट रूप में अभेद्य तर्ककथनों को छोड़ देने को बाध्य कर दिया-जैसे, कारण-कार्य के तथा विलम्बित मध्य के सिद्धान्त। यह क्वाइन की दृष्टि में हमारे लिए एक चेतावनी होनी चाहिए, यह न मानने की कि कोई भी तर्कवाक्य अपने आप में अनुभव द्वारा असंशोधनीय है।

विश्लेषण संबंधी आकारी परीक्षण ज्ञानमीमांसीय परीक्षणों से किसी भी दृष्टि में अधिक सतोषजनक नहीं है। निम्नांकित पंक्ति पर विचार करें। कोई भी

---

1 देखें पी टी गीच एवं जे आयर व डब्लू वी ओ क्वाइन का 'आन व्हाट देयर इज' (पी ए एस एस 1957), एन गुडमैन एवं क्वाइन का 'स्टेप्स टुवड्स ए कोंस्ट्रक्टिव नोमिनलिज्म' (जे एस एल 1947)। इसके साथ क्वाइन का इस निबन्ध पर नोट 'आन व्हाट देयर इज' की पुस्तकसूची में दिया गया है। ए चर्च द नीड फोर एब्स्ट्रैक्ट एण्टिटीज इन सेमेण्टिक एनालिसिस (प्रोसी अमे एकाडेमी आव आर्टस एण्ड साइंस (1951)। कारनेप कृत एम्पिरिसिज्म, सेमेंटिक्स एण्ड आण्टोलोजी (आर आइ पी 1950), जी जे वारनक मैटाफिजिक्स इन लोजिक' (पी ए एस 1950)।

कुआरा शादी-शुदा नहीं है, तो यह विश्लेषणात्मक होगी, क्योंकि इसे पुनरुक्ति में बदला जा सकता है और कुआरा के स्थान पर अ-शादी शुदा आदमी का पर्याय के रूप में रखा जा सकता है। हम यह कैसे कहेंगे कि कुआरे तथा अ-शादी शुदा आदमी पर्यायवाची हैं ? तो भी विश्लेषण की दृष्टि से इसका पर्याय बताने के लिए ही होता है। दो प्रभि यक्तियां क्ष तथा य उस समय पर्यायवाची होंगी यदि क्ष य है विश्लेषण योग्य है। किन्तु हर कोई जो इन पर्यायवाचियों को किसी की एवज में रख देने की प्रणाली से विश्लेषण का परीक्षण करता है उसे पर्याय की स्वतन्त्र परिभाषा देनी होगी। पर्याय की कोई भी व्याख्या यह तरकीब करने से सफल नहीं होगी। और इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि न तो पर्यायों की एवज में रखने की प्रणाली से और न किसी अन्य माध्यम से ही तर्कवाक्य की एक श्रेणी को विश्लेषण-योग्य मानकर चुना जा सकता है।[1] वे यह मानने को बिल्कुल तैयार हैं कि कुछ ऐसे तर्कवाक्य तो हैं (उदाहरणार्थ गणित के तर्कवाक्य) जिन्हें अन्तिम आधार मानकर हम छोड़ देना चाहिए। किन्तु इसके अतिरिक्त ऐसा नहीं है कि कहीं कोई ऐसा तर्कवाक्य भी है जिसे सैद्धान्तिक रूप में आगे के अनुभव से परिशुद्ध मानकर छोड़ा नहीं जा सके।

आज के तर्कशास्त्रियों में सर्वाधिक स्वतन्त्र (यद्यपि वे भी टार्स्की से अवश्य प्रभावित हुए थे) कार्ल पापर हैं जिनकी रचनाएं अभी तक निबंधों के रूप में ही प्रकट हुई हैं। अपनी 'न्यू फाउण्डेशन फोर लोजिक' माइण्ड 1943)[2] में वे तर्कशास्त्र की मूलभूत समस्या से प्रारम्भ करते हैं अर्थात् वैध अनुमानों को अवैध अनुमानों से कैसे भिन्न करें इस पर टार्स्की का अनुसरण करते हुए वे वैध अनुमान की परिभाषा

---

1 देखें लिस्की का सेमेण्टिक्स। गुडमैन का ऑन लाइकनेस आव मीनिंग (एनालिसिस 1949 के एक निबंध का परिवर्द्धित संस्करण) बी मैटस सिनोनिमिटी (यूनिवर्सिटी आव कैलीफोर्निया पब्लिकेशन्स 1950) एम जी व्हाइट का द एनालिटिक एण्ड द सिंथेटिक एन अनटेनेबल ड्यूअलिज्म जोन ड्यूई फिलोसोफर आव साइन्स एण्ड फ्रीडम सम्पा० एस हुक (1950)। एनालिसिस में पर्यायत्व पर सी डी रोलिंस के निबंध हैं (1950)। पी वियनपाल (1951) ज एफ टामलिन एवं एल मैकलर (1953) के भी निबंध हैं। द्रष्टव्य एच पी ग्राइस एवं स्ट्रासन इन डिफेन्स आव ए डोग्मा (पी आर 1956)। ए होफस्टेडटर द मिथ आव द होल' (जे पी 1954) आर कारनप मीनिंग एण्ड सिनोनिमिटी इन नेचुरल लैंग्वेजेस (पी० स० 1953) डी डब्लू हैमलिन एनालिटिक ट्रुथ्स (1956 माइण्ड)। देखें प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी का अध्याय 14 जो वेसमन एवं जेम्स पर लिखा गया है तथा प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी आवश्यक सत्यों' पर चर्चा है।

2 माइण्ड 1948 में किए गए सुधार एवं संशोधन देखें।

इस अनुमान स देते हैं जो इस तरह रखा जाए कि इसकी कोई भी व्याख्या जो इसके प्रमयों को सत्य बनाती है, उसके निष्कर्ष को भी सत्य करे। इस तरह, उदाहरण के लिए यदि प एवं फ, तो प' एवं बध अनुमान होगा क्योंकि कोई भी सत्य तक वाक्य यदि प एवं फ' म आये हुए प एवं फ की एवज म रख दिया जाए तो इसी व्याख्या से इसका निष्कर्ष प भी सही होगा।

इस मामले म अनुमान की वधता अमहत्वपूर्ण अल्प है। हम यह कहकर आपत्ति कर सकते हैं कि 'यदि प एवं फ तो प यह अनुमान ही नहीं है। किन्तु पापर का यह अमहत्वपूर्ण अल्प चुनाव जानबूझ कर है। अपने एक भाषण म (जो उन्होंने टेन्थ इण्टरनेशनल कांग्रेस आव फिलोसोफी (1948) म दिया था उन्होंने जिसे गणितीय तकशास्त्र का अल्पीकरण (ट्रिवियलाइजेशन) करना कहा है, उसी को वे यहा पूर्ण रूप देना चाहते थे। इसके पहले वे सारे प्रयास जिनमे तकशास्त्र के अल्पीकरण का प्रयास सत्य-सारणी प्रणाली' के जरिए किया गया था, असफल हो गए थे। पापर अपने प्रहार का एक भिन्न माग ही अपनाते हैं। वे सबसे पहले यह बताने निकलते हैं कि गणितीय तक के सब मुख्य विचारों को एकाकी आदिम तकविचार द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। ऐसा निगमनीयता के प्रत्यावर्ती सबधों तथा मकमक सबधो के जरिए किया जा सकता है। यहा तक कि तादात्म्य एव परिमाणन भी, जो सत्य-सारणी प्रणाली से परिभाष्य नहीं है, इस निगमनीयता द्वारा परिभाषित हो सकते हैं। इस तरह केवल अल्पाश्रयी अनुमानों के अतिरिक्त अन्य किसी के बिना सहारे गणित के जटिल रूप को इन परिभाषाओं से पूर्णत प्रकटाया जा सकता है-इस प्रकार जिसे पापर बिना धारणा के तकशास्त्र' की सज्ञा देते हैं उसकी रचना करना सभव है। इस स्वयसिद्धो की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि निगमन का सामान्य सिद्धान्त भी अपने म पर्याप्त रूप से उचित प्रारम्भिक बिन्दु है।

अंग्रेजी प्रदेशों में पापर की विख्यात पुस्तक है, द ओपन सोसाइटी एण्ड इटस एनीमीज (1945) जिसके प्लेटो एवं हेगल पर किए गए प्रबल प्रहारों के कारण इसने तहलका मचा दिया था। यद्यपि इस पुस्तक म बात ही बात म, तार्किक एव गणितीय प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, तो भी यह हमारी पहुच स परे की पुस्तक है। किन्तु उनके स्वदेश आस्ट्रिया मे पापर ने सवप्रथम अपना स्थान रीति वधानिक के रूप मे बनाया। उस समय उन्होने लोजिक देर फोसचुग (1935) लिखा था। यद्यपि यह किताब अभी भी अंग्रेजी म अनूदित नहीं हुई है और समझने भी कठिन है तो भी इसके मुख्य सिद्धान्तों का ब्रितानी रीति-वधानिक रचनाओं पर काफी प्रभाव पड़ा।[1]

---

1 देखें जे० ओ० विजडम फाउण्डेशन्स आव इनफरेन्स इन नचुरल साइन्स (1952), मान सयद रीसेन्ट फिलोसोफीस (1936), वी० क्राफ्ट व वियना

पोपर सीमानिर्धारण की समस्या (द प्राब्लम आव डिमार्केशन) को ही अपने अलगाव का बिंदु मानते हैं। समस्या विज्ञान एव आभासी विज्ञान म भेद करने की है। आभासी विज्ञान मे पोपर क अनुसार न केवल पारवर्ती तत्त्वदशन ही शामिल है किन्तु तारकशास्त्र (ज्योतिष भी जो अनुभववादी होने का दावा रखता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रकट रूप से वैज्ञानिक दिखाई देने वाले सिद्धान्त (जैसे मनोविश्लेषण या मार्क्स का इतिहासदर्शन) भी आभासी विज्ञान की ही श्रेणी मे आते हैं। पापर यह चर्चा करने मे कोई सार नही देखते कि ये सिद्धान्त सत्य है या नही। बल्कि वे तो यही देखते हैं कि, जसा वे दावा करते हैं क्या वे उतने ही वैज्ञानिक हैं? खण्डन क शोध कथ्य (थीसिस आव रिफ्यूटेबिलिटी) के पीछे कदाचित उनका यही उद्देश्य है। कोई प्राक्कल्प उसी समय वैज्ञानिक है यदि केवल मात्र सैद्धान्तिक रूप मे उसके खण्डन किये जाने की संभावना हो।

यद्यपि पॉपर कभी भी वियना वृत्त के सदस्य नही रहे वे इसके निकट सम्पर्क म थे और उनके 'खण्डन के शोधकथ्य' के सिद्धान्त को कारनेप द्वारा सार्थकता के निरूपण सिद्धान्त का संशोधित रूप ही माना है।[1] उनका यह कथन यो पढा गया 'नही सैद्धान्तिक रूप स सत्यापन (निरूपण) से नही अपितु खण्डन से ही सार्थकता का परीक्षण सम्भव है।' वास्तव म पापर इस बात से आश्वस्त थे कि सार्थकता की समस्या मूलभूत महत्व की नही हैं। वस्तुस्थितिवादियो द्वारा निर्धारित सार्थकता की कसौटी द्वारा कोई ठोस परिणाम नही निकले हैं। केवल स्वेच्छात्मक (आर्बिट्ररी) नियमनो की ही स्थापना हो सकी है। खण्डन सार्थकता की कसौटी नही हैं किन्तु विज्ञान एव उसके यथाकारी प्रतिरूप (सिम्युलक्रा) दिखाई देने वाले आभासी विज्ञानो के बीच का भेद निर्धारण करने की प्रणाली है।

मरकिल (1950), वकमीस्टर सेवन थीसेज आव लोजिकल पोजिटिविज्म क्रिटीकली एग्जामिण्ड (पी० आर० 1937) कारनेप टेस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० एस० सी० 1936-7)। राइकनबक कारनप नीने एव न्यूरथ की रचनाएं भी देखें जो इसी अध्याय म चर्चित हुई हैं। पापर का निबंध द पावर्टी आव हिस्टोरिसिज्म (इकोनोमिका 1944-5) सामाजिक विज्ञानो के रीतिविधान के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। वे अब लन्दन स्कूल आव इकोनोमिक्स मे लोजिक एव साइण्टिफिक मेथड के प्राध्यापक हैं। उनका वर्णन करना हम अपने अभीष्ट स बहुत दूर ले जायगा। लोजिक डेर फार्श्चुक का अनुवाद 1958 म प्रकाशित हो गया है तथा द पावर्टी आव हिस्टोरिसिज्म पुस्तकाकार रूप मे 1957 म प्रकाशित हुई है।

1 इसी रूप म इसने कारनेप पर इतना प्रभाव डाला कि वे निरूपण से परीक्षण पर आ गए। न्यूरथ इसके अतिरिक्त इसका आक्रोशपूर्वक आलोचना ही करते रहे। देखें, उनकी कृति सूडो-रेशनलिज्मस दर फाल्सीफिकेशन (एक० 1935)।

कभी कभी ऐसा भी कहा जाता है कि वैज्ञानिक प्राक्कल्प वही है जिसे पुष्ट किया जा सके। कभी ऐसा भी कहा जाता है कि यदि कोई प्राक्कल्प बहुत अधिक सम्भव हो तो वह वैज्ञानिक हो जाएगा। और यहाँ तक भी, कि वह वैज्ञानिक है यदि वह उस सब की व्याख्या करता है जो सम्भवतया घटित हो सकता है।' खण्डन का सिद्धान्त इन्हीं दृष्टिकोणों के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। यदि कोई प्राक्कल्प सभी सम्भावनाओं को व्यक्त कर देता है तो वह कुछ भी व्यक्त नहीं करता। यदि उसे किसी पदवक्षण को व्यक्त करना है तो उसे किसी दूसरे पदवक्षण के साथ अप्रयोज्य भी होना होगा। इसी आधार पर पापर मार्क्सवाद के वैज्ञानिक होने के दावे को अमान्य कर देते हैं। जो कुछ घटता है वह सभी सामाजिक विकास के उनके द्वारा स्थापित प्राक्कल्प की ही पुष्टि करता है। किन्तु यदि ऐसा है तो वे कभी भी यह कहने योग्य नहीं रहेंगे कि वस्तुएं एक प्रकार से ही निर्मित न होकर क्यों भिन्न भिन्न प्रकार से निर्मित हो जाती हैं? इस तरह उनके प्राक्कल्प अपनी प्रकृति से ही पूर्णत अवैज्ञानिक है।

किसी अधिक सम्भाव्य प्राक्कल्प पर विचार किया जाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है। हम इस सबंध में जो कुछ करना है वह यही कि हम कोई अल्प या बिल्कुल खोखला सुझाव ही प्रस्तुत करें। जितना कम हम इससे प्रतिबद्ध होंगे, उतना ही अधिक सम्भाव्य वह होगा। इस तरह यदि हम स्पष्ट करना चाहें कि अमुक अमुक व्यक्ति को बुखार क्यों आ गया है तो इसका स्पष्टीकरण कि उसके साथ कुछ न कुछ गड़बड़ है, अधिक सम्भाव्य स्थिति है। कदाचित् इससे भी अधिक कि उसे खसरे का रोग हो गया। किन्तु यह सब पूर्णत वैज्ञानिक मूल्य से विरहित है। पापर के अनुसार वैज्ञानिक अधिक सम्भव प्राक्कल्प की खोज नहीं करता, किन्तु ऐसी स्थिति की खोज करता है जिसमें निश्चित अपेक्षाएं हों। और यदि वे अपेक्षाएं नहीं प्रकटती तो निश्चयत उन्हें अमान्य कर दिया जाएगा। यह सोचना एक उपयोगी श्रम है प्रत्येक वैज्ञानिक कथन किस किस बात को अमान्य करता है। उदाहरणार्थ 'सभी चीते मनुष्यभक्षी हैं' अमनुष्यभक्षी चीतों की सम्भावना को ही अमान्य कर देता है। इस तरह हमें इस की शक्ति का पता चलता है, और हम देखते हैं कि कितना शीघ्र इसका खण्डन भी हो गया ऐसे चीतों की खोज करके।

अन्त में यह कहना ही पर्याप्त नहीं है कि वैज्ञानिक प्राक्कल्प वही है जिसे पुष्ट किया जा सके। क्योंकि यह सदैव ही सम्भव रहा है कि किसी प्राक्कल्प की किसी तरह पुष्टि कर दी जाय। वास्तविक प्रश्न यही है कि क्या एक प्राक्कल्प का भली भांति परीक्षण हो चुका है? अर्थात् क्या उसका खण्डन किये जा सकने की दिशा में पूरे प्रयत्न कर लिये गए हैं? यहीं आकार पापर तारक विज्ञान के दावों को भी ठुकरा देते हैं। तारक विज्ञानी प्राक्कल्प जैसे कि सितम्बर में जन्मे

लोग भावुक होते हैं, निश्चय ही अनेक व्यक्तियों के जरिए हो सकता है किन्तु ज्योतिषी प्रायः इस प्राक्कल्प को खंडन के प्रयास या परीक्षण तक नहीं ले जाता। इसी तरह संक्षेप में खण्डनीयता वैज्ञानिक प्राकल्प का विशेष रूप है और विज्ञान वही है जहां खण्डन किये जाने के लिये व्यवस्थित प्रयत्न हों चाहे सफलीभूत हों या असफल।

यह तो स्पष्ट है कि पापर ने वैज्ञानिक प्रणाली के आगमनात्मक विश्लेषण को त्याग दिया है जिसके अनुसार विज्ञान विशुद्ध पर्यवेक्षण पर आधृत है और आगमन से शनैः शनैः सामान्यीकरण की ओर हम बढ़ सकते हैं। वैज्ञानिक शनैः शनैः यह विश्वास करने लग जाते हैं कि नियमितताओं का अस्तित्व है केवल यह देखकर कि उनके प्रयोगों के परिणामों द्वारा घटनाओं के एक ही प्रकार के रूपाकार (पटर्न) बार बार प्रकटे हैं। पॉपर के अनुसार दरअसल हम सभी अपेक्षाओं प्रत्याशाओं को लेकर जन्मे हैं और हमारे अन्दर जन्मजात प्रतिक्रियाएं भी हैं जिनमें से नियमितताओं की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। हम शनैः शनैः एक आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी जिससे सामान्यीकरण की वृत्ति से हम हट सकें। किन्तु हमारे सामान्यीकरणों को परीक्षण तक ले आने की इच्छा भी रहनी चाहिए।

वे कहते हैं कि पर्यवेक्षण सिद्धान्तों के लिए कोई उपादान (कच्चा माल) नहीं हैं वरन् सिद्धान्त ही हमें पर्यवेक्षणों की ओर ले जाते हैं। द पोवर्टी ऑव हिस्टोरिसिज्म में वे लिखते हैं कि वैज्ञानिक विकास की किसी भी अवस्था में हम सिद्धान्त जैसी किसी वस्तु के बिना प्रारम्भ नहीं करते जो हमारे पर्यवेक्षण का निदेशन करता है और पर्यवेक्षण के असंख्य पदार्थों में से चुनाव करने में सहायता करता है। ह्यूम के इस सुझाव पर कि हमारी अपेक्षाएं हमारे अनुभवों के बीच रहे साम्यों के कारण प्रकटती हैं, पोपर यह आपत्ति करते हैं कि समरूपता सदैव ही हमारे लिए महत्वपूर्ण किसी स्थिति के समानान्तर स्थिति के प्रकट जाने में ही है। इस प्रकार समानता की स्थिति की पहचान ही यह बतलाती है कि हम पहले से ही अपेक्षाएं रखते हैं।

विज्ञान का प्रारम्भिक बिन्दु गल्पों का तीक्ष्ण विवेचन है, उन गल्पों का जो हमारी सहजात रूढ़ियों के कारण उपजते हैं। और ये पर्यवेक्षणों के आकलन नहीं होते। इस प्रकार वे निष्कर्ष निकालते हैं कि वैज्ञानिक का कार्य यह बताने का नहीं है कि वह कैसे पर्यवेक्षणों से सिद्धान्त की ओर गया। आगमन की कोई समस्या उसके समक्ष नहीं है। प्राक्कल्पों से प्रारम्भ करके वैज्ञानिक गलत प्राक्कल्पों को अमान्य करता जाता है और यह बताता है कि उनसे ये गलत निष्कर्ष निकले हैं। उसकी विधि का तार्किक औचित्य इस तथ्य में निहित है कि समष्टिगत

तकवाक्य मी, जो विनान की सीमा के अग हैं, ऐसे तकवाक्यो द्वारा गलत सिद्ध हो सकते हैं जो काल और दिक् के एक विशेप विंदु पर प्रकटी घटनाओं के अस्तित्व का नापन करत हैं। इस तरह के तकवाक्य आधारभूत हैं। इस अथ मे नही कि वे किसी तात्कालिक अनुभव को व्यक्त करते हैं बल्कि इसलिए कि उनक जरिए एक प्राकल्प का परीक्षण हो जाता है। यदि हम एक आधारभूत तकवाक्य को स्वीकार लें क्योंकि इसी विंदु पर आकर हमारी आस्था का तत्व प्रकटने लगता है, तो हम उन सब प्राकल्पो का परित्याग करना पडेगा जो इसके विरोध मे हैं। कोई प्राकल्प उनकी दृष्टि म आधारभूत तकवाक्यो की इकाई स निर्मित नही होते। मूलत इसी कारण कि ऐसी कोई भी इकाई एक समष्टिगत तकवाक्य की समरूपिणी (इक्वलेन्ट) नही हो सकती अर्थात् ऐस तकवाक्य की जो अस्तित्व मोल तकवाक्यो को नकारता हो। (तकवाक्यो की य इकाइया 'यह एक मनुष्यभक्षी चीता है' —'वह एक मनुष्यभक्षी चीता है आदि दोनो मिलकर भी कोई चीता अमनुष्यभक्षी नहीं है' की समरूपिणी नही होगी।) इस तरह सामान्य प्राकल्प को समवत आगमन द्वारा स्थापित नही किया जा सकता।

पापर की रचनाओ का एक तीसरा महत्वपूर्ण पहलू उनके द्वारा सारवाद (एसेंशलिज्म) की आलोचना है। अर्थात् अमुक अमुक वस्तु क्या है ?' इस आकार के प्रश्नो का उत्तर देन का प्रयास। प्रस्तुत वस्तु के सार या वास्तविक प्रकृति क निरूपण के जरिए यह इनक उत्तर देन का प्रयास मात्र है। अधिक सामान्य रूप से, सारवाद एक ऐसा दृष्टिकोण बताना है कि अन्तरिम स्पष्टीकरण देन का श्रेय तो कवल विनान को ही है। पोपर की दृष्टि म इससे जिनासाए प्रकट जाएगी एव रहस्यवाद प्रारम हो जायगा। दरअसल सारवाद की आलोचना करने वाले पापर पहले ही व्यक्ति नही है। इसके पूर्वालोचक बकले एव मैश न भी सामान्यत यह विचार किया है कि सारवाद का एकमात्र विकल्प उपकरण वाद (इन्स्ट्रूमेटलिज्म) है। वनानिक सिद्धान्त उनकी दृष्टि म ससार की अधिक प्रभावशाली प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास है। वह केवल विवरण नही है। किन्तु पॉपर की दृष्टि मे उपकरणवाद वैनानिक प्राकल्पो क परीक्षण की प्रणाली का विवरण दने म असमथ है। एक उपकरण टूट भी सकता है, या फशन स बाहर हो सकता है किन्तु निश्चय ही इसको अमान्य नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उपकरण-वाद विज्ञान का एक विशुद्ध तकनीकी दृष्टि स दखने की माग करता है। और इस तरह वैनानिक सिद्धान्तो क उपयोगी ढग से लागू किए जान से सबद्ध ऐसी समीचीनता को प्रकटाता है जो अन्तत वैनानिक विकास क लिए ही घातक हो जाता है।

पापर, इस तरह उपकरणवाद एव सारवाद के बीच का एक मध्य माग खोजने की आशा करते हैं। एक वज्ञानिक सिद्धान्त ससार के लिए एक ज्ञान-

पूर्ण अनुमान है और यह अनुमान कठोर आलोचनात्मक परीक्षणों को अपना सकता है। यह बात जीवित प्राणियों के लिए भी उतनी ही सच्ची है जितनी विद्युदणुओं के प्राक्कल्प के सबंध में सही है। पापर की दृष्टि से एक उपकरणवादी गलती से यह सोचता है कि पदार्थ का विद्युदणु–सिद्धान्त मेज कुर्सियों के यथार्थ का खण्डन ही कर देता है' और यह बताता है कि अपनी वास्तविक प्रकृति में वे केवल अणुओं के आकलन मात्र हैं। उपकरणवादी यह सोचकर भी कम गलती नहीं करते कि आणविक सिद्धान्त ही यथार्थ की व्याख्या करने के लिए एकमात्र सिद्धान्त है वह उसका विवरण नहीं है। मेजें विद्युदणुओं की सही प्रकृति की नहीं हैं और नहीं विद्युदणु ही मेजों की प्रकृति के हैं। विद्युदणु एवं मेजें दोनों के सत्य सबंधी दावे यथोचित हैं।[1]

पॉपर की रचनाओं में बहुत सी समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। इनमें से सर्वाधिक स्पष्ट (जो विशेषतया सांख्यिक यान्त्रिकी से प्रकटी है) यह है कि यद्यपि सामान्य कथन विज्ञान में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं तो भी वे खण्डन–योग्य नहीं लगते। कोई भी अस्तित्वशील तर्कवाक्य (जैसे आज बरसात हो रही है) इस प्रकार के किसी प्राक्कल्प को अमान्य नहीं कर सकता है कि केनबरा में बरसात होने की संभावना का मूल्यांक 'प है। पॉपर ने इस कठिनाई पर काफी सोचा विचारा है। सर्वप्रथम तो वे यह कहते हैं कि यद्यपि प्रमात्रा–नियमों को सांख्यिकीय पर्यवेक्षण से जाँचा जा सकता है तो भी वे अपने आपमें सांख्यिकीय नहीं हैं। तथा दूसरे, इसके विपरीत भाव प्रकट जाने पर भी समान्यता के प्राकल्प सैद्धान्तिक रूप से खण्डनीय हैं क्योंकि वे ससीम श्रेणियों की बारंबारता के सबंध में कुछ कहते हैं। किन्तु हम पापर के सिद्धान्त के इस पहलू को और भी अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे (यह किसी भी दृष्टि से प्रभावशाली भी नहीं रहा है) यदि हम समान्यता पर हुए अभिनव कार्यों के संदर्भ में ही इसकी जाँच करें।

इस सबंध का अधिकांश कार्य अभिनव गणितीय तर्कशास्त्र की भाँति (जिसमें प्रायः इसका निकट का सबंध माना गया है) काफी मात्रा में तकनीकी है। उसमें प्रकट दार्शनिक प्रश्नों को यहाँ उठाना सरल नहीं है। केवल समान्यता के दो प्रमुख मार्गों का वर्णन करके उनमें विद्यमान भेद की चर्चा हो सकती है। पहला मार्ग उन

---

1 इस प्रश्न पर देखें जे० जे० सी० स्मार्ट द रीअलिटी आव थ्योरेटिकल एन्टिटीज (ए० जे० पी० 1956)। जे० वी० थोनटन साइण्टिफिक एण्टिटीज (ए०जे०पी० 1953)। सी० एफ० प्रेसले लॉज एण्ड थ्योरीज इन द फिजिकल साइन्स (ए०जे०पी० 1954)।

लोगों का है की की म की भांति समाभ्यता की परिभाषा दो तकवाक्यो के तार्किक सबधों मे देते हैं । तटस्थ तकवाक्यो की इकाई की इस सबध सूचकता के कारण हो तकवाक्य स म प की समाभ्यता प्रस्टी है ।' दूसरा भाग उनका है जो वग के अनुसरण म समाभ्यता के बारम्बारी सिद्धान्त की वकालत करते हैं । उनकी व्याख्यानुसार समाभ्यता क सिद्धा त इस प्रकार के हैं, म घटनाओं का वग घ घटनाओं के वग म क नामक बारम्बारता क साथ घटित होता है । किन्तु जसा हम देखेंगे "सभी सीमाएँ इतनी स्पष्ट नहीं है । और इसकी उप प्रजातिया तो अनन्त है[1] ही ।

अभिनव रीतिविधायकों मे म हेराल्ड जेफ्रेज की स के बहुत निकट हैं । कीसवादी तरीके स समाभ्यता के तुलनात्मक विश्लेषण प्रारभ करके जेफ्रीज यह बताने का प्रयास करते हैं (साइण्टिफिक इन्फरे स 1931 म) कि एक ठोस परिमाणात्मक समाभ्यता–विश्लेषण गणक मूल्यों क परम्परागत प्रदानों (असाइनमेंटस) की सहायता मे ऐसे स्वयसिद्धा पर स्थापित किए जा सकते हैं जो केवल तुलनात्मक समावनाओं का ही उजागर करते हैं । *जेफ्रेज की रचनाए आकार म स्वय सिद्धात्मक* हैं । एक आकस्मिक पाठक के लिए यह बिल्कुल नही लिखी गई है और न एक ऐप दार्शनिक के लिए जो गणितमना न हो । कीसवादी दृष्टि का इसमे उल्लेखनीय पुनरुक्त तथा विकास देखा जा सकता है ।

इसी प्रकार का एक और सिद्धा त जो बाल्ज़ानों, एवं अभिनव रूप से जे० वोन क्राईज कृत प्रिंसिपल्स आव द केलकुलस आव प्रोबेबिलिटीज (1886) से ही नि सृत है, विटजनस्टीन द्वारा ट्रैक्टेटस में सुझाया गया था और वसमैन द्वारा उसे व्यापक रूप दिया गया । (देखें[2] अर्केन्तनिस 1930 के प्रथम अङ्क मे उनका लख) । यह सिद्धा त यह मानकर चलता है कि प्रत्येक तकवाक्य का अपना एव निश्चित

---

1 समाभ्यता पर नूतन रचना के लिए देखें, ई० नजल प्रिंसिपल्स आव थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी (मू० एस० 1949) । एम० जी० केण्डल थान द रिफा स लिएशन आव थ्योरीज आव प्रोबेबिलिटीज म (1949 जिसमे एक प्रमुख साक्ष्यकार द्वारा की सवादी तथा बारम्बारी सिद्धा तो का मम वय किया है ।) केलकुल देस प्रोबेबिलिटीस एक्चुअलिटीज 1951) पी० पी० आर० 1946–6 मे आयोजित एक व्यापक एव गभीर गाष्ठी जो समाभ्यता पर थी, देखें । जी० बगमैन आर० कारनैप, काफमैन *नजल ए । विलियम्स आदि ने इसम भाग लिया था ।*

2 लोजिस्के एनालाइस दो बारस्कीनलिकिस्त बग्रिफ'। इस अङ्क म राइकेनबक आर० वान मीसस हुन ए फीगल द्वारा समाभ्यता पर लिखे निबध हैं ।

क्षेत्र (स्पाइलरोम) होता है अर्थात् उससे कुछ संभावनाएं प्रकटती हैं। विट्जनस्टीन के लिए तर्कवाक्य का क्षेत्र उसके सत्याधारों से मेल खाता हुआ है। यदि एक तर्कवाक्य के सत्याधारों की संख्या र का प्रतिनिधित्व त्र प्रतीक से होता है और र तथा स तर्कवाक्यों में विद्यमान सत्याधारों की संख्या को 'त्र स' प्रतीक द्वारा व्यक्त किया गया है तो त्र स का त्र के प्रति अनुपात उस संभाव्यता का मापदण्ड होगा जो र द्वारा स को दी गई है। इस तरह 'प या फ' के संबंध में प की संभाव्यता $\frac{2}{3}$ हो जाती है क्योंकि सत्य सारणियों में से 'प एवं (प या फ)' एक बटा दो अंश में सत्य है जबकि प या फ सही हैं। इसी प्रकार किसी भी आणविक तर्कवाक्य प की संभावना किसी अन्य फ तर्कवाक्य के प्रमाण पर $\frac{1}{2}$ हो जाती है क्योंकि 'प एवं फ' के सत्याधारों के अङ्कों का फ के सत्याधारों के अंकों में यही अनुपात है।

विट्जनस्टीन कीन्स से इस बात में सहमत हो जाते हैं कि किसी असीम (सिम्प्लिसिटर) की संभावना के बारे में बातचीत करने का कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न सदैव ही परिचित परिस्थितियों के अन्दर उसकी संभावनाएं निहित करने का है और यह संभावना तार्किक संभावनाओं में रहे पारस्परिक आकारी संबंधों के बीच की प्रागभावी स्थिति के रूप में परिभाषित हुई हैं। केवल इसी दृष्टिकोण के जरिए विट्जनस्टीन के अनुसार हम यह समझ सकते हैं कि संभाव्यता का कलन कैसे हो सकता है। यह कहना कि एक प्याले में से निकाली जा रही काली गेंदों की संख्या करीब करीब उतनी ही पड़ती है जितनी सफेद गेंदों की एक अनुभववादी तथ्य है। गणितीय तर्कवाक्यों के विट्जनस्टीन द्वारा किए गए विश्लेषण से यह तथ्य गणित का नहीं है। इस तरह बारम्बारी सिद्धांत संभाव्यता के संबंध सूचकों की तर्क गणितीय प्रकृति के विषय में कहने में असफल हो जाता है।

विट्जनस्टीन के लिए अनुभव से निर्धारित सापेक्ष बारम्बारता संभाव्यता के विश्लेषण में एक नकारात्मक महत्व की स्थिति है। मान लो कि इस सूचना के आधार पर (जो मेरे अधिकार में रही साधक सूचना है।) कि एक प्याले में बराबर बराबर सफेद वे काले रंगों की गेंदें हैं मैंने इस संभाव्यता का कलन किया है कि एक काली गेंद अब प्याले से निकाली जायगी।' तब मुझे पता लगता है कि वास्तव में सफेद गेंदों की संख्या निकाली गई काली गेंदों के बराबर ही है। यह बात मुझे मेरी इस धारणा में दृढ़ करती है कि गेंदों का निकाला जाना मुझसे अज्ञात परिस्थितियों के हाथों में अवलम्बित नहीं है। किन्तु संभाव्यता का वास्तविक कलन सदैव ही तार्किक निगमन का विषय है। वैसमैन भी इसी भांति यह मानेंगे कि श्रेणियों में अनुपारी स्थितियों की मात्रा का माप सदैव ही तार्किक दृष्टि पर निश्चय नहीं हो सकता, क्योंकि अनुपारी स्थितियों (ओवरलपिंग) में से विभिन्न समावित अनुमानों का चुनाव करके हम सांख्यिक अनुभव के आधार पर अपने

परिणाम लाने का प्रयास करते हैं, किन्तु तो भी सभाव्यता तो स्वय ही इन्ही श्रेणियो मे रहे सबधों पर टिकी है।

बारम्बारता के सद्धान्तिकों ने, इसके विपरीत बारम्बारता को सभाव्यता के साथ मिला दिया है। बारम्बारता का सिद्धान्त सभावना को पार्थिव रूप देता है और उसे प्राग्भावी सभावनाओ के रहस्य-क्षेत्रो से अलग ले जाता है। साथ ही उसका एक साख्यकार के व्यावहारिक जगत से निकटतम सबध जोडता है। वास्तव म आर० वोन मीसेज ने प्रोबेबिलिटी स्टेटिस्टिक्स एण्ड ट्रूथ (1928)[1] म सभाव्यता के बारम्बारी सिद्धान्त की रचना की है जो उतनी ही आनुभविक है जितनी सद्धान्तिक भौतिकी। किन्तु उनकी रचनाओं का वास्तविक प्रभाव बारम्बारी सिद्धान्तो की अनुभववादी प्रकृति पर शका उत्पन्न करना ही था। बारम्बारवादी यह मानने के अभ्यासी हो गए थे कि 'एक पनी (सिक्का) के सिर वाले सिरे से गिरने की सभावना ½ है' कहने का यही अर्थ है कि 'अन्त म जाकर पनी के गिरने की सभावना समग्र अङ्को स आधी है।' स्पष्टत यहां अन्त म जाकर नामक वाक्याश अनुपयुक्त है। इसके साथ ही एक अन्य मुश्किल भी है। मानलो सदव ऐसा ही होता कि प्रत्यक पाचवी उछाल का परिणाम पैनी का पिछला सिरा एव प्रत्येक दसवा उसका सिर वाला सिरा होता, तब, यद्यपि यह बात सही है कि अन्तत इस क्रम मे आधी उछालों का परिणाम सर ही होने वाला है तो भी एक पैनो की उछालो को सामान्य क्रम म आधे आधे रूप म विभाजित किया जाना उचित नही जान पडता। सभाव्यता का सिद्धान्त जुए की विषमताओं' से प्रकटा है। निश्चय ही वे विषमताए पूर्णत बदल जाएगी यदि यह भविष्यवाणी की जाए कि एक विशेष उछाल सदव ही, (तथा अमुक उछाल कभी भी नही) सर के रूप मे ही परिणमित होगी। इस तरह बारम्बारता कभी भी सभाव्यता के साथ तादात्म्य नही रख सकती।

वोन मीसेस इन दोनो आपत्तियो का हल निकालन का प्रयास करते हैं। वे एक समूहवाची धारणा को प्रस्तुत करते हैं। इसकी परिभाषा उन्होने पर्यवेक्षण

1 अग्रेजी अनुवाद (1936) देखें। ब्रोड का रिव्यू माइण्ड (1937) मे देखें। आर एल गुडस्टीन 'आन वोन मीसस थ्योरी आव प्राबेबिलिटी,' (माइण्ड 1940)। नीले कृत प्रोबेबिलीटी एण्ड इण्डक्शन में वान मीसेस पर हुई चर्चा, वेसमैन एव फीगल की आलोचना, अर्केण्टनिस (1930)। बारम्बारता के सिद्धा त का एक दूसरा सस्करण ए० कोल्मोगोरोव की फाउण्डेशन्स आव द थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी (1933 अग्रेजी अनुवाद 1950) म देखें। आर० एफ० फिशर की रचनाए भी देखें। उनकी पुस्तक द डिजाइन आव एक्स्पेरीमेण्ट्स (1935) एव स्टेटिस्टिकल मेथड एण्ड साइण्टिफिक इ फेरेन्स (1956) म।

क ऐसे असीम वग से की है जो दो शर्तों को पूरा करते हो । पहली, जिस बारम्बारता के माध्यम से एक समूहवाची के विशिष्ट सदस्यो का निर्धारण होता है वह एक सीमा म सतुलित हो जाए, दूसरे, इस सीमा का मूल्य उस समय भी अप्रभावित रहता हो यदि हम समूहवाची के सभी समावित सदस्यो की इकाई की चर्चा करने के बजाय एक ऐसे उप समूह पर, जो अपने किसी विशिष्ट भाव के कारण सबसे भिन्न है, विचार करें । (यही वेतरतीबता की माग भी है जिसे वोन मीसेस द्यूत प्रणाली का असभावी सिद्धान्त कहते हैं ।) यह मान भी लें कि समूहवाची विचार समान्यता की गणितीय कलन सम्बन्धी क्रिया का सुविधाजनक बनाता है, तो भी बारम्बारी तक वाक्यो के आनुभविक स्तर सम्बन्धी गभीर समस्याए भी खडी कर देता है । यदि बारम्बारी कथन अनिश्चित वग म व्याप्त विविधता के सदभ से समान्यता को परिमापित कर भी दे तो कसे वे आनुमाविक जाच पडताल को मण्डित या खण्डित कर सकेंगे ? क्योकि यह तो ससीम वग तक ही सीमित हैं ? यह प्रश्न स्वभावत खडा हो ही जाता है ।

पापर का विचार था कि वे बारम्बारता के सिद्धान्त को आनुभविक पृष्ठभूमि पर वोन मीसेस की सीमा से सबद्ध सापक्ष बारम्बारता के सघनन बिन्दु की एवज म रखकर पुन प्राप्त कर सकते हैं । सीमा से अलग सघटन (कडेसेशन) बिन्दु किसी क्रम के ससीम अ श की एक वास्तविक बाम्बारता ही है । यह एक ऐसी बारम्बारता है जो अन्य अ शो की बारम्बारता स अलग है और वह भी बहुत सूक्ष्माशो मे । यह बारम्बारता ही समान्यता है । एक प्राक्कल्प के रूप मे तब हम यह कह सकते हैं कि किसी क्रम के भावी अ शो की बारम्बारता सघनन बिन्दु के मूल्य से अधिक प्रदायी मात्राओ मे भिन्न नही होगा । इस तरह कुछ सीमाओ म समान्य कथन भी परीक्षणीय हैं ।[1]

बारम्बारता के सब विख्यात समथक निश्चय ही एच० राइकनबक हैं ।[2] राइकेनबक के ज्ञानदशन की प्रमुख नवीनता (जो अन्यथा परम्परागत वस्तुस्थितिवादी ढर्रे म चली है) है भार को तृतीय सत्य मूल्याक म नना । वास्तव म अन्त म तो वे

---

1 ए० एच० कोपलड कृत प्र डिक्शस एण्ड प्रोबबिलीटीज (1936) भी देखिए ।

2 उनकी थ्योरी आव प्रोबबिलिटी सवप्रथम जमन भाषा म छपी (1935) अ ग्रेजी अनुवाद (1949) । इसमे कुछ और बातें भा हैं । रसेल द्वारा ह्यूमन नोलेज (1948) मे इसकी आलोचना देखें । इम ग्रन्थ मे रसेल की दृष्टि के लिए देखें, एच० जेफ्रेज वर्ट्रेण्ड रसेल आन प्रोबबिलिटीज (माइण्ड 1950) । राइकेनबक की विचारधारा के एक आरम्भिक वृत्तान्त के लिए देखें एक्सपीरिएन्स एण्ड प्रेडिक्शन

उसे सत्य मूल्यांकों का एवजी ही मानते हैं। बहुत कम तर्कवाक्यों को सत्य या असत्य का दर्जा दिया जा सकता है। इस तरह हम कभी भी भाजों तर्कवाक्य का विवरण दन की स्थिति मे नहीं रहते। प्रत्येक तर्कवाक्य का निश्चित भार होता है, जो सत्य के विपरीत) एक निरन्तर माप द्वारा मापा जा सकता है। सत्य एवं असत्य राइकेनबैक के मत म ऐसे ही सीमित मसलों के आदर्श मापदण्डों से निर्मित हुए हैं। कीं स की भांति राइकेनबैक का विश्वास है कि हमारे ज्ञान की अवस्था से ही किसी तर्क वाक्य का माप सम्बन्धित है। किन्तु कीं स के विपरीत वे यह सोचते हैं कि प्रत्येक सार्थक तर्कवाक्य का एक निश्चित भार होता है। यह निश्चित परिणाम का होना ही उनकी दृष्टि में सार्थकता की कसौटी है और इसका कथन बारम्बारता के सदर्भ स हो सकता है।

कींस ने संभाव्यता के बारम्बारी विश्लेषण को दो बातों के कारण अमान्य कर दिया था। एक तो यह कि यह किसी एक मामले म होने वाली संभावना को प्रकट नहीं कर सकता तथा दूसरी यह कि यह घटनाओं की बारम्बारता से अलग तर्कवाक्यों की संभावनाओं स कोई सार्थक बात नहीं कहता। राइकेनबैक स्वीकारते हैं कि बारम्बारवादी किसी भी एक घटना की संभावना के सदर्भ को अनुपयुक्त कह कर त्याग देंगे। यह वाक्य कि बीस संभावनाओं म से एक संभावना यह भी है कि जौन स्मिथ एक साल के अन्दर अन्दर मर जायगा' बारम्बारता के सिद्धान्त के अनुसार केवल वृत्ताकार दीर्घ ही प्रकटा सकता है। तथ्य के आधार पर इसका यही आशय है कि वह एक उपवर्ग का सदस्य है तथा उससे छोटे किसी वर्ग का सदस्य नहीं है जिसके संबंध मे हमे यह सांख्यिक ज्ञान है [ज्ञान (पोजिट)] कि उसका मरना बीस में से एक संभावना है।' उदाहरणार्थ यह जानते हुए कि जान स्मिथ टी० बी० का मरीज है, एवं उसकी उम्र 21 साल है और यह भी कि ऐसे बीस मरीजों म से एक, साल पूरा होने से पूर्व ही मर जाते हैं और इसके साथ यह जान कर भी कि वह किसी अन्य छोटे वर्ग का सदस्य नहीं है (जैसे कमजोर हृदय वाले टी० बी० के बीमारों का एक वर्ग जिसके विषय म हम समुचित सांख्यिक ज्ञान है—)

(1938)। राइकेनबैक की आलोचना के लिए देखें, पापर की पुस्तक द लौजिक आव साइन्टिफिक इन्वेस्टिगेशन, एवं पी० हज, (एक० 1939), ई० जे० नेल्सन प्रोफेसर राइकनबैक ओन इण्डक्शन (जे० पी० 1936), ई० नैजल का रिव्यू आव द थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी (माइण्ड 1936), तथा प्रोबेबिलिटी एण्ड थ्योरी आव नौलेज (पी० एस० सी० 1939)। गीयरिंगर कृत ऊबर दी वार चीनलिकीन वोन हाइपोथेसेन' (जनल यूनीफाइड साइंस 1939)। आइ० पी० नीड द जस्टीफिकेशन आव द इन्डिक्शन आव इण्डक्शन (जे० पी० 1940)। राइकेनबैक ने इन सभी को तत्काल ही उत्तर दिया।

हम यह शर्त लगा सकते हैं कि 20 में से एक के रूप में मरनेवालों में उसकी बारी भी है। किन्तु हमारी यह शर्त उस समय बदल भी सकती है यदि हमारे ज्ञान की अवस्था में ही परिवर्तन आ जाए। अर्थात् यदि हमें मालुम हो जाये कि जोन स्मिथ मोटरसाइकल भी चलाता है। इससे यही सिद्ध हुआ कि एक घटना के घटित होने की संभावना में केवल स्थानान्तरी संभावना है। जबकि निश्चित प्रमाणों पर प्रस्तुत भार (इन कथनों से विपरीत कि इक्कीस वर्षीय टी० बी० के मरीजों में से बीस में से एक साल पूरा होने के अन्दर अन्दर मर जाता है) इस बात का तथ्य इस बात से अप्रभावित रहता है कि ऐसे मरीजों में कोई अन्य गुण भी मौजूद है।

तो भी जहां व्यक्तियों संबंधी संभाव्य कथन गल्पात्मक (फिक्टीशस) होते हैं, व्यावहारिक बुद्धि हम ऐसे कथनों को सशर्त कथनों (पोजिट) के रूप में प्रस्तुत करने के लिए बाध्य भी करती है। हम इस उद्देश्य के लिये सांख्यिक प्रमाण प्रस्तुत करने का औचित्य दे सकते हैं। चूंकि इस संबंध में आगे बढ़ने का इससे बढ़िया कोई मार्ग नहीं है। जब तक इस कथन को कि अमुक अमुक घटना संभाव्य है इस आकार में प्रस्तुत नहीं किया जाय कि 'यह घटना घटेगी, राइकेनबक के अनुसार, ऐसा कहने वाले का बारम्बारी विश्लेषण तत्काल ही घटनाओं के विवरण के लिए भी उतनी ही शीघ्रता से लागू किया जा सकता है जितना समान्य तर्कवाक्यों पर। बारम्बारता के सिद्धान्त पर कीन्स की दूसरी आपत्ति भी इस पहली आपत्ति के साथ समाप्त हो जाती है।

समाव्यता के बारम्बारी विश्लेपण को आकार रूप देने के लिए राइकनबक एक बहुमूल्यीय समान्यता के तर्कशास्त्र की रचना करते हैं जिसमें सत्य असत्य संबंधी द्विमूल्यात्मक धारणा को बहुमूल्यी धारणा 'भार' से स्थानान्तरित कर दिया है। इस तरह के आकारी सम्भावना के तर्कशास्त्र की रचना, राइकेनबक के अनुसार, इसलिए की जा सकती है क्योंकि बारम्बारी व्याख्या के माध्यम से यह गणितीय धारणा में बदल जाती है। अब यह नहीं माना जाना चाहिए कि जब हम कोई वाक्य बोलते हैं (जिसके सत्य होने के विषय में कुछ नहीं जानते और जो भावी अवस्थाओं का उद्घोषक है) तो हम सूचनात्मक तर्कशास्त्र के एक विशेष प्रकार का ही उपयोग कर रहे होते हैं। उनके अनुसार राइकनबक का समाव्यता का तर्कशास्त्र, आकारी तर्कशास्त्र को अनुभवसिद्ध बनाने के कार्य को पूरा करता है। उनका विश्वास है कि उन्होंने रसेल के विरुद्ध भी इस बात को सिद्ध कर दिया है कि इस संबंध में अनाकारी, अन्तर्बोधी प्राग्भावी सिद्धान्तों की सहायता की आवश्यकता भावी कथनों के लिए कतई आवश्यक नहीं है।

एक सभान्यतात्मक तर्कशास्त्र इस तरह सामान्य कथनों के जरिए कलन करने की ही विधि है। प्रश्न यही रहता है कि हम कैसे इन सामान्य कथनों को

स्थापना करते हैं। वास्तव म तो हम जिस बात को देख सकते हैं वह है ऐसे मामलो
की एक सीमित इकाई। मान लो कि इस इकाई मे कोई विशेष बात निश्चित आवृत्ति
के रूप मे प्रकटती है। तो यह कैसे सिद्ध करेगी कि ऐसे ही अन्य मामलो मे इसकी
आवृत्ति इसी तरह घटेगी ? या फिर अमुक अमुक सीमाओ म घटेगी ? राइकेनबैक
के लिए यह आगमन के शास्त्रीय पक्ष को सही ढग से प्रस्तुत करने का ही तरीका
है। उनकी दृष्टि मे आगमन एक नीति हैं, बारम्बारता की सीमा निर्धारित करने
की नीति। इस तरह (जटिलताओ का निवारण करके) इस सीमा तक पहुचा जाता
है उन इकाइयो मे जिनकी चर्चा हमने की है। भावी अनुभव के प्रकाश मे इस मूल्य
का सशोधन करना ही यह नीति है। आगमनात्मक नीति उचित नीति है क्योंकि
यदि बारम्बारता की कोई सीमा है तो यही उस सीमा का पता लगाने का सर्वश्रेष्ठ
तरीका है।

इस तरह राइकनबैक एक सुदृढ बारम्बारवादी सिद्ध होते हैं। कारनैप
अपने प्रकृत्यनुसार मध्यममार्गी हाने[1] का रास्ता ही अपनाते हैं। वे दो प्रकार की
समावनाओ के बीच तीव्र भेद करते हैं। बारम्बारी समाव्यता तथा पुष्टीकरणीय
समाव्यता। पहली समाव्यता का क्षेत्र साख्यिकीकार का क्षेत्र है। तथा दूसरी का
तकशास्त्रियो का। यदि राइकैनबक की भाति हम उसे एक सिद्धान्त मे बदलने का
कोशिश करेंगे तो इससे बडी गडबड और नही हो सकती। यह सुझाव देना बहुत
घातक है कि बारम्बारता ही वास्तविक प्रकार की समावना है, जबकि यह मानना
भी उतना ही घातक है कि समाव्य कथनों म बारम्बारता नहीं है। कारनप के
अनुसार, तव, बारम्बारवादी तथा उनके विरोधी दोनो भिन्न भूमियों पर विचार कर
रहे हैं। दोना सम्माव्यतासम्बन्धी दो बिल्कुल भिन्न धारणाओ पर।

एक विशिष्ट समाव्य कथन की चर्चा मे हम जाच से सदा यह निश्चित नही
कर सकते कि समाव्यता की कौनसी धारणा को यह मूर्तिमान कर रहा है। मानलो
एक भरी हुई द्यूत के पासों की पेटी का सदर्भ देकर कोई कहे कि इस द्यूत पेटी मे से
निकलने वाले पासो मे ६ अक के निकलने की समावना 0 15 है। उससे यदि पूछें
कि इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? तो वह उत्तर मे कहेगा कि 1000 बार
पासा फेंकने की लम्बी शृखला में ६ अकों की आवृत्ति कवल 150 बार हुई। इस

1 इसके लिए देखिये उनकी कृति लोजिकल फाउण्डेशस आव प्रोबेबिलिटी
(1950)। इस पुस्तक की दशन से सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन दो नेचर एड
एप्लीकेशन आव इण्डक्टिव लोजिक (1951) मे अलग से किया गया है।
देखिये एस० तोलमिन का रिव्यू (माइण्ड, 1953) तथा एच० वान राइट का
विवेचन।

तरह इससे कोई यह धारणा भी निकाल सकता है कि वह इसमें समान्यता का बारम्बारी सिद्धान्त ही उपयोग में ला रहा है। किन्तु कारनप का सुझाव है कि यदि वह आगे बढ़े तो उसे मालूम होगा कि वह मात्र बारम्बारता को नहीं गिन रहा, वह बारम्बारता पर एक समान्यता का अनुमान लगा रहा है। इस तरह उसके कथन की सार्थकता इतनी ही है कि मेरे द्वारा प्रमाणों के आधार पर यह घोषणा करने की काफी सम्भावना है कि छः अंक की सापेक्ष बारम्बारता भविष्य की फेंक की दीर्घ श्रृंखला में भी कम से कम इस पासे में थोड़े बहुत समयान्तर के बाद ० १५ हो ही जाएगी।' इसलिए कारनप का कथन है कि सापेक्ष बारम्बारता से सबंधित यह अनुभवजन्य कथन नहीं है किन्तु प्रमाणों एवं निष्कर्षों के तार्किक सबंधों से उपजा एक तार्किक विश्लेषण है।

यद्यपि इस प्रकार कारनप भी यह मानने के लिए तैयार हैं कि कभी कभी सामान्य कथन बारम्बारता को व्यक्त करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते तो भी उनकी दृष्टि में बारम्बारता की व्याख्या के लागू किये जाने का क्षेत्र बहुत सीमित है। इसके प्रवर्तकों द्वारा सोचे गए क्षेत्र से भी बहुत ज्यादा सीमित। सामान्य रूप से कारनप कीन्स से इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि सम्भावनाएं किसी खास घटना को केवल तार्किक आधार पर ही मिल सकती हैं। किन्तु कीन्स के विपरीत एक प्राक्कल्प को सम्भावनाएं प्रदत्त करने के सबंध में वे एक परिमाणात्मक विधि की रचना करना चाहते हैं। तथा वसमैन से भी अलग वे यह सोचते हैं कि श्रेणियों के अनुपारण की माप या फिर एक वाक्य का दूसरे के द्वारा पुष्टीकरणीयता का अंशमान (*डिग्री आव कन्फर्मेबिलिटी*) विशुद्ध *तार्किक विधि से निर्धारित हो सकता* है। और इसके लिए न्यूनतम सांख्यिक पर्यवेक्षण की अपेक्षा नहीं है। ये ही प्रणालियाँ आगमनात्मक तर्कशास्त्र की स्थापना करती हैं।

कारनप पापर के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि कोई भी तर्कशास्त्र हमें यह नहीं बता सकता कि सही प्राक्कल्प की सिद्धि हम कैसे कर सकते हैं। किन्तु इस संदर्भ में आगमनात्मक एवं निगमनात्मक तर्कशास्त्रों की भली भांति तुलना की जा सकती है-कुछ स्वयंसिद्धों को छोड़कर कोई ऐसी विधि नहीं है जिससे नए साध्या (थ्योरम्स) की रचना की जा सके, चाहे उसमें दिए गए प्रमाण को जाचने का यह विधि मौजूद अवश्य हो कि अमुक अमुक साध्य उस स्वयंसिद्ध से निकला है। इसी प्रकार यद्यपि ई प्रमाण हमारे पास है तो भी हमारे पास ऐसी कोई विधि नहीं है जो ह प्राक्कल्प के उजागर होने की उस स्थिति को बताए जिसमें ई आया है। कारनप के विचार में तर्कों के परीक्षण की ऐसी प्रणालियां हैं जो यह सिद्ध करने का दावा करती हैं कि ई के प्रमाण पर ह के पुष्टीकरण का एक अंशमान है जो र है। (यहां र एक वास्तविक अङ्क है)। परीक्षण की ये विधियां जो अरस्तू

के तकपदो के नियमो के अनुकूल ही हैं, आगमनात्मक तकशास्त्र की रचना करती हैं। इससे यह ता स्पष्ट हो गया कि कारनप की दृष्टि म आगमनात्मक तकशास्त्र का क्षेत्र बहुत सीमित है। अभी तक कारनप ने अपन आगमन क सिद्धान्त को ही व्यक्त किया है। उसके कुछ पहलू तो निश्चय ही बोधगम्य है।[1]

---

1 देखें द कण्टीनुअम आव इण्डक्टिव मेथडस (1952) एक शोध जिसे प्रोबेबिलिटो एण्ड इण्डक्शन क द्वितीय भ क म स ल लिया गया था। निकोड कृत लोजिक आव इण्डक्शन (1923) फाउण्डेशन्स आव ज्योमेट्री एण्ड इण्डक्शन (1930) के रूप म पुन प्रकाशित यह पुस्तक की स एव पुष्टीकरण सिद्धान्त के मध्य रही ऐतिहासिक कडी है। कारनप हम्पल क लख स्टडीज इन द लोजिक आव कनफरेमशन' (माइण्ड 1945) का काफी उपयोग करत हैं। तथा ए डेफीनिशन आव डिग्री आव कन्फरमेशन (पी० एस० सी० 1945) का भी जो पी० ओपरनहीम के सहकार से लिखा गया। हम्पल इस बात की विस्तृत चर्चा करते हैं कि प्राकल्प के पुष्टीकरण का क्या अथ है? व नीकोड के इस दृष्टिकोण को कि पुष्टीकरण सदैव ही इस आकार का है अमान्य कर दते हैं। 'यह अ एव ब दोनो है' यहा प्राकल्प यह है कि 'सब अ ब हैं। व इस आधार पर इसका खडन करत हैं कि इसका क्षेत्र बहुत सकुचित होगया है। और उनका मत है कि अधिक मुक्त परिभाषाए सरलता से विरोधास्पास्पद स्थितियो की ओर ल जा सकती हैं। इस तरह यह कहना कि एक तकवाक्य प्रत्येक ऐसे तकवाक्य स पुष्ट हो सकता है जो उससे निकला है इसका परिणाम यह होगा कि 'सब हस सफद है," इसकी पुष्टि किसी ऐसी बात से हो सकेगी जो न तो सफेद ही हो और न हस ही अर्थात् एक काले कौव से। हेम्पल इस तरह के प्रतिवाद स वचकर पुष्टीकरण की परिभाषा करने का प्रयास करते हैं। स्पष्टीकरण पर उनकी रचनाए विशेष कर द फक्शन आव जनरल लाज इन हिस्ट्री (जे० पी० 1942) [फीगल एव सेलस की रीडिंग्स भी] काफी प्रभावशाली रही है। उन्होन पापर के इस दृष्टिकोण को काफी चचनीय बनाया कि किसी सघटना की सही व्याख्या करने का अथ यह बताना है कि उसका विकास समष्टि नियमो से तथा विशिष्ट मौलिक दशाओ से हुआ है। 'पुष्टीकरण-सिद्धान्त' की आलोचना के लिए देखें, कारनप एव गुडमैन के मध्य हुए सुवाद को (पी पी आर 1947) एव गुडमैन कृत फेक्ट फिक्शन एण्ड फोरकास्ट (1954) को। गुडमैन इसम प्रक्षेपणीयता (प्रोजेक्टबिलिटी) के सिद्धान्त की चर्चा करते हैं जिससे शायद पुष्टीकरण के विरोधाभास दूर हो सकें। असत्यीकरण के प्रमानो पर हुई चर्चा क लिए देखें पोपर के द लोजिक आव साइण्टिफिक इन्वस्टीगेशन, एफ० बी० फिच एव ए० डब्लू० बक्स जस्टीफिकेशन इन साइ स (एम० व्हाइट द्वारा सपादित एकेडमिक फ्रीडम एण्ड रिलीजन मे 1953) बारहिल एव कारनप के बीच रहे सुवाद के लिए देखें बी० जे० पी० एस० (1952)।

चार अन्य अभिनव कृतियां इसी संभाव्यता एवं आगमन के कथ्य की चर्चा करती हैं। डी० सी० विलियम्स कृत द ग्राउण्ड ग्राव इण्डक्शन (1947), डब्लू० नीले कृत प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन (1941), जी० एच० वोन राइट कृत द लोजिकल प्रोबलम ग्राव इण्डक्शन (1941) एवं आर० बी० ब्रेथवेट कृत साइण्टिफिक एक्स्प्लेनेशन (1953)। विलियम्स इनमें सबसे अधिक आशावादी हैं। आगमन उनके लिए केवल आकारी दृष्टि से वध युक्ति की एक विशिष्ट प्रजाति है। इसमें यह विचित्रता रहती है कि इनके निष्कर्ष प्रमेयों से ही अन्तिम रूप से निःसृत नहीं होते किन्तु उनमें एक उच्च संभावना रहती है। उदाहरणार्थ मान लें, हमारे समक्ष सेवों का एक ढेर लगा है और हम यह निर्धारित करना चाहते हैं कि उसमें से कीड़ों द्वारा कितने खाए हुए हैं। विशुद्ध गणितीय युक्ति से विलियम्स के अनुसार हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि यदि हम उस ढेर में से एक निश्चित परिमाण का एक नमूना निकाल लें तो इस तरह थोड़े से अंश में से चुने गए इस नमूने में कीड़ों द्वारा खाए सेवों का जो अनुपात होगा वह किसी भांति पूरे ढेर में विद्यमान कीड़ों द्वारा खाए सेवों के अनुपात से कम नहीं होगा। उदाहरण के लिए यदि चुने हुए नमूने में 30 प्रतिशत सेव कीड़ों द्वारा खाए हुए हैं—तो हम यह निष्कर्ष देने के अधिकारी हैं कि यह अधिक मात्रा में संभव है कि 25 प्रतिशत से 35 प्रतिशत तक के सेव (सारे ढेर में से) कीड़ों द्वारा खाए हुए हैं। इस प्रकार वे यह तर्क देते हैं हम हमारे आगमनात्मक निष्कर्षों को विशुद्ध तर्क गणितीय युक्ति से उचित ठहरा सकते हैं। निस्सन्देह यहां खतरा मोल लेने की स्थिति अवश्य है। यह नमूना प्रतिनिधि नहीं भी हो सकता। किन्तु यह खतरा गिना गिनाया है। ऐसा खतरा उठाने से कोई भी विवेकशील प्राणी नहीं कतराएगा।[1]

एक तरह से तो वान राइट[2] की ट्रीटिस ग्रान इण्डक्शन एण्ड प्रोबेबिलिटी

---

1 देखें विलियम्स की प्रोबेबिलिटी इण्डक्शन एण्ड प्रोबिडेण्ट मैन' एम० फारबर कृत फिलोसोफिकल थोट इन फ्रांस एण्ड द यूनाइटेड स्टेट्स में संकलित। इसमें विनियम अपने तर्कवाक्यों को कारनैप के तर्कवाक्यों से जोड़ते हैं। पी० पी० आर० 1946–6 में हुई संभाव्यता पर परिचर्चा विलियम्स के शास्त्रीय संभाव्यता के पक्षकार होने के कारण उनकी आलोचना पर हुई है। नजल को जे० पी० (1947) में नीले को फिलोसोफी (1949) में एवं ब्लैक को जे० एस० एल० 1947 में उनके रिव्यू करते देखें तथा उसके साथ ग्राव द डायरेक्ट प्रोबेबिलिटी ग्राव इण्डक्शन्स (माइण्ड 1953) में विलियम्स द्वारा उनके उत्तर देखें।

2 वोन राइट फिनलेण्ड के एक दार्शनिक थे। वे केम्ब्रिज चेयर में विटजनस्टीन के कुछ समय तक उत्तराधिकारी रहे, किन्तु अब फिनलण्ड लौट गए हैं। उन्होंने ई० कला के जिन्होंने वियना वृत्त की चर्चाओं में भाग लिया था, संरक्षण में अध्ययन

एक रूढिवादी पुस्तक है। वे बारी बारी से आगमनात्मक अनुमानों का परम्परागत तरीके से औचित्य देने की बात करते हैं। सबसे पहले आगमनात्मक विधि का निर्धारण करके, दूसरे उन्हें एक सामान्य सिद्धान्तो पर आधारित करके जैसे प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त, तीसरे, परम्परागत ढंग से यह तर्क देकर कि आगमनात्मक ढंग से स्थापित तर्कवाक्य परिभाषा की दृष्टि से सत्य है, चौथे, आगमन से नि सृत तर्कवाक्यों का यदि सत्य रूप म दर्शाया न भी जा सके तो भी वे बहुत अधिक सम्भाव्य तो हैं ही। प्रत्येक अवस्था म वान राइट इन बातों का औचित्य अधिक सशक्त ढग स प्रस्तुत करते हैं[1], और इसके साथ ही प्रतीकात्मक तर्कवाक्य के सभी उपकरणों का सहारा ले लेते हैं। उनका सामान्य निष्कर्ष यही है कि औचित्य से कभी भी आगमन की वैधता का प्रदर्शन नहीं हो सकता। किन्तु औचित्य की प्रत्येक विधि खास परिस्थितियों के संदर्भ में काफी प्रभावशाली हो सकती है। कुल मिलाकर, वान राइट परम्परागत औचित्य को आकार देने म ही अधिक निरत दिखते हैं, बजाय विस्तार म यह बताने के कि आगमन को औचित्य देने के लिए उन्हें किस संदर्भ म रखा जाना चाहिए।

इसी भांति सम्भाव्यता पर वान राइट द्वारा किया गया विचार-विमर्श खास तौर पर ए ट्रीटाइज आन इण्डक्शन एण्ड प्रोबेबिलिटी (1951) मे, एक स्वय सिद्ध प्रणाली की रचना म लगा हुआ लगता है। इसकी व्याख्या के सम्बन्ध म बहुत न्यून कहा गया है। वास्तव में उनका स्वयं का यह निष्कर्ष है कि जब हम युक्तियों को आगमनात्मक सम्भाव्यता के सहारे कोई आकार देते हैं तो हमें पता लगता है कि वे निपट नगण्य हैं तथा व्यावहारिक रुचि से शून्य हैं। सम्भाव्यता का सिद्धान्त कलन के रूप में जितना रुचिकर है उतना जाच पड़ताल के व्यावहारिक उपकरण के रूप म नहीं। किन्तु इसका संकेत देना मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंश होगा क्योंकि यह सम्भाव्यता के सैद्धान्तिक को यह मानने से रोक देगा कि उसने कोई आदर्श प्रणाली प्राप्त करली है।

किया। देखें सी० ब्रोड कृत हेर वोन राइट आन द लोजिकल इण्डक्शन (माइण्ड 1944) जे० सी० कमनी 'ए ट्रीटीज आन इण्डक्शन एण्ड प्रोबबिलिटी (पी० आर० 1953)। राइट के सम्भाव्यता संबंधी विचार देखें उन्ही के निबंध 'आन प्रोबेबिलिटी' (माइण्ड 1940) मे।

1 खास तौर पर व मिल की विधि का ही पुनरचन कर रहे हैं, 'दशाओं का तर्कशास्त्र' कहकर। वे यहा ब्रोड के निबंध द प्रिंसिपल्स आव डिमोंस्ट्रेटिव इण्डक्शन (माइण्ड 1930) स प्रभावित हैं।

विलियम्स की ही भांति नीले [1] सम्भाव्यता का एक तार्किक सिद्धान्त निर्मित करना चाहते थे। उनके अनुसार सम्भाव्यता तर्कवाक्यीय फलनों को जोड़ने वाला वस्तुपरक सम्बन्ध है। सभी य कथन यह कहते हैं कि क्ष का र जैसा होना इस बात को सम्भव करता है कि वह स के प्रकार का है। इन कथनों का महत्व विवेकशील कर्म से उनके सम्बन्ध में निहित है। कोई भी सन्तोषजनक सम्भाव्यता का सिद्धान्त इतना समझने में हमारी मदद करेगा– (जो बारम्बारता का सिद्धान्त नहीं करता) कि किसी कार्य के लिए सम्भाव्य तर्कवाक्य का उपयोग करना क्यों युक्तियुक्त है?

नीले के तर्क का एक प्रबल पहलू यह भी है वे अब रूढ़ करार दे दिए गए सिद्धान्तों एवं उचित रूप से स्वीकृत तथ्यों के तादात्म्य को त्याग देते हैं। वे कहते हैं कि सिद्धान्त यह जरूर बताते हैं कि तथ्य क्या हो सकते हैं किन्तु वे अपने आप में तथ्य नहीं है। कुछ सिद्धान्त, जैसे एक ही समय में कोई वस्तु लाल एवं हरी दोनों नहीं हो सकती, अन्तर्दर्शनीय आगमन से सीधे समझी गई स्थितियां हैं। कुछ सिद्धान्तों का जिनमें प्राकृतिक नियम भी शामिल हैं सीधा बोध नहीं हो सकता। तो भी वे सिद्धान्त तो हैं ही। प्रकृति का यह नियम कि 'प फ है' इस बात को ही सिद्ध नहीं करता कि प्रत्येक प फ है किन्तु इससे भी कहीं ज्यादा कि फ हुए बिना कोई भी स्थिति प नहीं हो सकती।' आगमनात्मक समस्या इस तरह नील के लिए यही बताना है कि ऐसे अन्त बोध हीन सिद्धान्तों को प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत क्यों माना जाए।

नील सम्भाव्यता के क्षेत्रीय सिद्धान्त का संशोधित रूप स्वीकार करते हैं। यह सम्भाव्यता कि क्ष प होकर अ गुण को प्राप्त करता यह बात प क्षेत्र के एवं अ क्षेत्र के फलन के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर है। विट्जनस्टीन ट्रैक्टेटस में तर्कवाक्य के क्षेत्र का आणविक तर्कवाक्य के संयोजक के रूप में प्रकट कर सकते थे। उनके लिए क्षेत्रों की तुलना करना आणविक तर्कवाक्यों का अंकन करने जैसा ही एक सफल कार्य था। इसके विपरीत नील यह मानते हैं कि कि तर्कवाक्यीय फलन, जैसे 'सेव होना' सम्भावनाओं के अनन्त क्षेत्रों को खोलना है। सेव को वर्णित करने के सम्भव मार्गों का कोई अन्त नहीं है। किन्तु ये सम्भावनाएं उनके अनुसार (यहां आकर उनका तर्क बहुत अमूर्त एवं कठिन हो जाता है) उप-श्रेणियों में रखी जा सकती हैं ताकि सेव होने के विभिन्न वैकल्पिक तरीकों के समूहों को सिद्धान्ततः अन्य

1 ब्राड का रिव्यू देखें माइण्ड (19‘0) में, एफ० एल० विल नौलेज थ्योरी ऑव प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन' (पी० आर० 1954) एफ० जे० ए सकोम्बे मिस्टर नीले ऑन प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन एवं नीले का उत्तर (माइण्ड 1951)।

वकल्पिक तरीको के साथ (जिनमे कीडो द्वारा खाए गये सेवो का विवरण भी शामिल है) रखा जा सकता है। इस प्रकार का समूहीकरण ऐसी दशाओ मे समव है जो सामा यत सतोषजनक नही है, किन्तु उनका काय तो समावना की परिमापा करना है। उन्ह यह डीग हाकने की आवश्यकता नही कि उसका माप क्या है इसकी उन्हे पूण सूचना है।

तकवाक्यीय फलनों का क्षेत्र, नीले के अनुसार, वनानिक एव तार्किक नियमो द्वारा नियमित है। केवल सिद्धा त ही यह बता सकते हैं कि प कौनसी समावनाओ के माग खोलता है, और किसक साथ वह अनुप्रयुक्त है। प्राकृतिक नियमो की समावना पर विचार करना निरथक है। प्राकृतिक नियम तो वे हैं जो समावनाओ का निर्धारण करते हैं। वे अपने आपम न तो समव हैं और न असमव।

नीले स्वीकारते हैं कि नि रसदेह हम कभी कभी प्राकल्पो को सामा यता प्रदान कर देते हैं अर्थात् एक ऐसे तकवाक्य को जिसके हम प्राकृतिक नियम होने की शका रखते ह। किन्तु ऐसा करके हम समाव्यता की उस धारणा का उपयोग कर रहे हैं जो सयोगो के कलन मे रही सामा यता से बिल्कुल भिन्न है। और इसका प्रकटी-करण इस तथ्य मे होता है कि हम साथक रूप म एक प्राकल्प को समाव्यता को एक आकिक मूल्य प्रदान नही कर सकते। यहाँ फिर एक प्राकल्प की समावना के सबन्ध मे बात करने के बजाय उसी अगीकरणीयता (एक्सेप्टेबिलिटी) पर चर्चा करना बेहतर होगा। केंद्रीय आगमनात्मक प्रश्न को इस तरह व्यक्त किया जा सकता है कि किन अवस्थाओ मे उसे सिद्धान्त मानकर काय मे प्रयुक्त करना विवेक-पूण है? नीले का उत्तर है कि एक प्राकल्प अगीकाय होगा यदि उसे प्राप्त करने म आगमनात्मक नीति का सहारा लिया गया हो। अर्थात् अनुभव द्वारा अब तक प्रकटाई गई बारम्बारताओ का सामा यीकरण करने की नीति। इस तरह यदि हमे किसी ऐसे क्ष का ज्ञान नहीं है जो य नही हो तो यह आगमनात्मक नीति है कि यह मानलें कि सब क्ष य हैं। जबकि इसके साथ ही (नीले पापर से भी काफी प्रभावित थे) हम ऐसे अनुभवो पर भी सतकता मे आखें लगाए रहना होगा जो हमारे सामा यीकरणो के विपरीत कुछ सिद्ध करे। यहा हम पूछ सकते हैं कि 'यह नीति अपने आपमे कसे उचित है?' नीले बताना चाहते हैं कि यदि हम भविष्य[1] के सम्बन्ध म कुछ कहना है तो इस नीति को अपनाना सवश्रेष्ठ है।

---

1 जसा पीयस कभी कभी सुझाते थे। देखें फीगल **द लॉजिकल करेक्टर आव द प्रिंसिपल आव इण्डक्शन** (पी० एस० सी० 1934) एव 'डी प्रिंसिपाइस नोन ऐस्ट डिस्प्यूटेण्डम' फिलोसोफीकल अनालिसिस, सपा० ब्लक 1950)। यह देखा गया है कि इस अध्याय म नामाकित बहुत से समाव्यता के सैद्धान्तिक आगमन का औचित्य

नीले की रचनाएं अपनी आत्मा में कुक-विलसन-वादी हैं, जबकि ब्रैथवेट, इसके विपरीत, रुचि एवं दृष्टिकोण में पूर्णत कम्प्रिजवादी हैं। उनकी कृति साइण्टिफिक एक्स्प्लेनेशन रीतिविधानिक मसलों की एक बड़ी संख्या में चर्चा करती है। उदाहरणार्थ नीले के विरुद्ध यह बताना चाहते हैं कि प्राकृतिक नियमों में एक विचित्र प्रकार की आवश्यकता दिखाई देती है। केवल इसीलिए कि वैज्ञानिक प्रणालियों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण हाथ बटा रही हैं। इसके अलावा भी वे प्रतिमानों (माडल्स) के वैज्ञानिक सिद्धान्तों में प्रयुक्त किए जाने की काफी विस्तार में चर्चा भी करते हैं। किन्तु हम तो यहां उनके द्वारा प्रस्तुत सम्भाव्यता एवं आगमन के विश्लेषण पर ही बल देना है।

ब्रैथवेट की पुस्तक का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि दार्शनिक क्षेत्र में भी वे नेमैन पीयसन मार्गी' सांख्यिकीकारों की रचनाओं का जिक्र छेड़ देते हैं, तथा उनके प्रभाव[1] में विकसित हुए खेलों के सिद्धान्त की भी। इस समस्या से अभिमुख होने पर कि यह सब कैसे सम्भव है कि सम्भाव्यता के कथनों को कैसे प्रदर्शित या खण्डित करें ब्रैथवेट का कहना है कि सम्भाव्यता के कथनों के लिए खण्डन का नियम बनाने की सम्भावना तो है (जिसे वे 'क नियम' कहते हैं) किन्तु इस प्रावधान के साथ खण्डन कभी भी अंतिम नहीं है। जब हम एक सम्भाव्य प्राकल्प का खण्डन करते हैं तो इस दृष्टि के अनुसार तो वह इस स्वाग्रह के साथ ही हमेशा होता है कि भावी अनुभव इसे पुनः स्थापित भी कर सकता है। यह तथ्य कि वे इस तरह

व्यावहारिक कारणों पर देते हैं। उनके तर्क सकलित करके आलोचनात्मक ढंग से रिव्यू भी कर लिये गए हैं। (एम० ब्लैक प्रोब्लम्स आव एनालिसिस।) ब्लैक का कथन है कि ये सभी औचित्य पुनरुक्तियां ही सिद्ध हुए हैं। वे यही कहते हैं कि आगमनात्मक नीतियां ही एक मात्र मार्ग है जिससे विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है और जिनकी उपलब्धि ही आगमन को दूसरी नीतियों से अलग करती है। ब्लैक का मत है आगमन की कोई समस्या ही नहीं।

1 देखें जे० एल० रसेल द्वारा प्रस्तुत ब्रैथवेट की पुस्तक का रिव्यू, फिलोसोफी एवं आर० जे० हर्स्ट (पी० क्यू० 1954)। कारनेप ने भी नेमन पीयसन मार्ग की ओर ध्यान दिया है। किन्तु बहुत से सम्भाव्यता के विचारक आर० ए० फिशर जैसे सांख्यिकीकारों के अलावा किसी को भी नहीं पढ़ते। देखें उदाहरणार्थ जे० नैमन एवं पीयसन द टेस्टिंग आव स्टेटिस्टिकल हाइपोथेसेज इन रिलेशन टू प्रोबेबिलिटीज ए प्रायारी (प्रोसी० केम्ब्रिज फिलोसोफी सोसाइटी 1933) एवं ए० वाल्ड की रचनाएं जिन्हें संक्षेप में स्टटिस्टिकल डिसीशन फंक्शन्स (1952) में लिखा गया है। खेल के सिद्धान्त के लिए देखें जे० न्यूमन एवं ओ० मोर्जेनस्टन द थ्योरी आव गेम्स एण्ड इकोनोमिक बिहेवियर (1944)।

अस्थायी तौर पर खण्डित किए जा सकते हैं, समाव्य कथनों की आनुभविक प्रकृति को सुरक्षा कर लेता है। इस बात में यहां पापर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

'क नियम' यह निर्धारित करता है कि यह प्राक्कल्प कि 'एक अ एक ब है तथा उसके साथ प की संभावना है' अमान्य हो जाएगा यदि ब की संख्या अ संबंधी 'न' रूपी अनुभवों में प से उस एक मात्रा में ज्यादा या कम है जो लघु संख्या क का फलन है। क को दिये जाने वाले मूल्य का निर्धारण समाव्यताओं के कलन क्षेत्र में नहीं आता। यदि कोई प्राक्कल्प बहुत ज्यादा व्यावहारिक महत्व का है तो हम क को बहुत न्यून मूल्य प्रदान करते हैं, ताकि प्राक्कल्प उस वक्त अमान्य हो जाए जब अ के तटस्थ पर्यवेक्षणों में ब का प्रतिशत प से काफी अंशों में भिन्न आता है। यदि प्राक्कल्प सद्धांतिक महत्व का है तो हम क को केवल बहुत उच्च मान प्रदान करेंगे। इस तरह नैतिक रुचियां, जो सापेक्ष महत्वों के विचार हैं, इस प्रश्न के अन्तस्तल तक बढ़ जाती हैं कि अमुक प्राक्कल्प को अमान्य करना है या नहीं। ऐसे ही विचारों की सहायता से ब्रैथवेट आगे बताते हैं कि हम वैकल्पिक प्राक्कल्पों में से कुछ निर्णय ले सकते हैं। खास तौर पर उस समय जब क नियम द्वारा किसी बात का खण्डन न किया जा सकता हो।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्राक्कल्पों के बीच का निर्णय केवल स्वीयात्मक निर्णय है, क्योंकि सिद्धान्ततः तो यह संभव है कि जिस बात को हम प्राप्त कर रहे या गवा रहे हैं उसकी गणना हम करलें। तथा इसके लिए तो एक विशिष्ट प्राक्कल्प चुनेंगे। अन्त में विशुद्ध तर्क न होकर उपादेयता ही हमारे चुनाव का निर्देशन करेगी। और तो भी उपादेयता हमें उसी वक्त निर्देशित करेगी जब वैकल्पिक प्राक्कल्पों की सापेक्ष उपादेयताओं की गणितीय रूप से तुलना की जा सके। हमारा चुनाव विवेकपूर्ण होगा जब हम सर्वाधिक उपयोगी प्राक्कल्प बना ही सकते हैं।

अध्याय १८

विटजनस्टीन एवं साधारण भाषा दर्शन

ट्रैक्टेटस के प्रामुख में विटजनस्टीन ने विश्वासपूर्वक अपने विषय मे यह कहा है कि विचारो से संबंधित जिस सत्य का सम्प्रेषण यहा किया गया है वह मुझे अकाट्य एवं निश्चित लगता है।' उन्होंने आगे लिखा मेरा मत यह है कि तात्विक रूप से समस्याएं पूर्णत हल कर दी गई हैं।' इसके बाद यह जानकर किसी को आश्चर्य नही करना चाहिए कि उन्होंने दर्शन को अनेक वर्षों के लिए त्याग दिया। दार्शनिक तो वे एक ऐसे इन्जीनियर की भांति विवशता म बने थे, जिसे कीचड व मौसम-भरे एक स्थल को सुखाने का काय करना था। यह काय पूर्ण हुआ और उसके बाद उससे अधिक कुछ भी नही कहा जाना था।

अपने मौन वर्षों मे पूर्णत अकेले नही थे। रेमजे एवं ब्रथवट ने उन्हे आस्ट्रिया मे जाकर खोज लिया था तथा कुछ समय के लिए वे शिलक एवं वसमेन के निकट सम्पर्क मे रहे।[1] 1928 के आसपास दर्शन मे उनकी रुचि पुन जाग्रत हुई। इसकी प्रेरणा कदाचित् उन्हे गणित सम्बन्धी स्थापनाओ पर दिए गए ब्राउवर के भाषणों से हुई हो। इसमे मूलत वे ही समस्याएं उठाई गई थी जिनके कारण विटजनस्टीन दर्शन की ओर प्रवृत्त हुए थे। 1929 मे वे केम्ब्रिज लौट आए।

तार्किक आकारो पर उनका लेख उन विचारो से युक्त उनका अन्तिम सावजनिक कथन था जिन्हे निधड़क होकर बाद मे उन्होंने स्वय ही अस्वीकृत किया था। उसी वष इसका प्रकाशन प्रोसीडिंग आव द एरिस्टोऐलियन सोसाइटी (पूरक अङ्क) में हुआ था। विटजनस्टीन कहते हैं दर्शन एक आदर्श भाषा के निर्माण का प्रयास

---

1 विटजनस्टीन का कहना है कि रेमसे के साथ हुई उनकी बातचीत ने उन्हे अपनी रूढ़िवादी नीद से जगाया था। अभी तक तो हम यही अनुमान लगा सकते हैं कि ये चर्चाएं किन विषयो पर हुई थी, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि रेमसे की बाद की रचनाओ एवं फिलोसोफीकल इन्वेस्टीगेशन्स मे अर्थक्रियावादी स्पर्श मिलता है। प्रो० डो० ए० टी० गेस्किग ने मुझे सुझाव दिया है कि विज्ञान संबंधी उनमे कुछ विचार एन० केम्पबल कृत फिजिक्स द एलीमेण्ट्स मे देखे जा सकते हैं और संभव है इस विषय की सूचना भी रेमसे द्वारा ही विटजनस्टीन को मिली हो। विटजनस्टीन अर्थशास्त्री पी० स्रोफा की आलोचनाओ से बहुत प्रभावित थे। मैं नही जानता किन मामलो म।

है। पदों से युक्त ऐसी भाषा का जिन्हें समुचित रूप स परिभाषित किया गया है
तथा ऐसे वाक्यो स युक्त भाषा का जा बिना अस्पष्टता के उन तथ्यो का जिनका
सदभ वे दे रहे हैं, एक तार्किक आकार प्रकटाए। ऐसी पूण भाषा आणविक तक
वाक्यो पर आधारित रहना चाहिए। मूलभूत दार्शनिक समस्या इ ही आणविक
तकवाक्यों की रचना का विवरण दना है। उनकी बाद की रचनाए अधिकाश
रसेल के तकसम्मत अणुवादी दशन की विरोधी प्रतिक्रियाए हैं।[1]

दार्शनिको न अपनी क्रियाओ को वज्ञानिको की नकल पर खडी करने का
प्रयास करके गलती की है, जसा कि तकसम्मत अणुवाद नामक मुहावरे स ही स्पष्ट
हो जाता है। यही कारण है कि उनको ठोस परिभाषाए देनी पडी हैं। और
असामान्य रूप से अमूत समष्टिकथनो म युक्त सत्य की खोज करनी पडी है। उदा
हरण के लिए जब सुकरात एव थिएटेटस से पूछा गया कि दशन क्या है ता
थियटेटस ने उन विभिन्न अवस्थाओ का ही सदभ दिया जिसके जरिए ज्ञान प्राप्त
किया जाता है। सुकरात न इस उत्तर को स्वीकारने स मना कर दिया और उसे
सम्बन्ध म चर्चा का प्रारम्भिक बिन्दु मानन से भी मना कर दिया। उन्हें उस

विटजनस्टीन ने 1930 से 1947 तक केम्ब्रिज मे किस विषय की शिक्षा
दी इसका पूरा ब्यौरा अभी तक अप्रकाशित है। ब्लू बुक नाम से सामान्य रूप
से विख्यात उनके भाषणों के अश तथा टाइप किए कुछ पन्ने, जिन्हें ब्राउन बुक की
सज्ञा दी गई, बहुत ज्यादा पढ़े गए। उनकी कक्षाओ मे जाने वाले कुछ सदस्यो ने
उनके भाषणो का साराश प्रकाशित भी करवाया है। मुझे यह उचित नहीं लगता कि
विटजनस्टीन के इन भाषणो के विषय मे विस्तृत चर्चा करू जो अपूण प्रतिलिपियो म
हैं। मैं केवल उनके मरणोपरान्त प्रकाशित उनकी कृति फिलोसोफिकल इन्वस्टिगेशस
(1652) की चर्चा करूगा। तथा उनके एलबम स भी कुछ एस अश चुनूगा,
जो उनके जीवन की पिछली दो दशाब्दियो मे बहुत महत्व क रहे। किन्तु मेरे
प्रस्तुतीकरण का अधिकाश निस्सदेह उनकी अप्रकाशित रचनाओ से ही प्रभावित
रहा है। पीछे उनकी स्मारिका का सदभ भी दखें। जी० ई० मूर कृत विटजन
स्टीन्स लेक्चस इन 1930-3 (माइण्ड 1954-5), जे० एन० फिण्डले सम
रिएक्शन्स टू रीसेन्ट केम्ब्रिज फिलोसोफी (ए० जे० पी० 1940-1) एव विटजस्टीन
कृत फिलोसोफिकल इ वेस्टीगेशस (आर० आई० पी० 1953), एन मैलकम के
रिव्यू (पी० आर० 1954), पी० एफ० स्ट्रासन के, (माइण्ड 1954), फिण्डले के
(फिलोसोफी 1955), पी० एल० हीथ के (पी० क्यू० 1997, जी० ए० पाल
'विटजनस्टीन रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी (जी० राइल एव अन्य 1956)।
ब्लू एव ब्राउन बुक्स 1958 मे प्रकाशित हुई। देखें, डेविड पाल व लेटर
फिलोसोफी आव विटजनस्टीन (1958)।

प्रयास से कम किसी भी बात से संतोष नहीं हो सकता था जिसमें ज्ञान के साराश को कठोर परिभाषा देकर प्रस्तुत नहीं किया गया हो। तो भी ऐसी कठोर परिभाषा न तो संभव है और न वाञ्छनीय है।

अवश्य ही हम अपनी परिभाषाओं को तो कठोर कर सकते हैं किन्तु वह केवल इस स्वीयात्मक निर्णय के खतरे पर कि यह या वह वास्तव में ज्ञान नहीं है। किन्तु विटजनस्टीन के अनुसार ऐसे आगे बढ़ना दर्शन की प्रकृति को ही गलत समझ लेना है। दर्शन के लिए हमें लोगों द्वारा ज्ञान का वास्तविक अर्थ निकाले जाने का एक विस्तृत परीक्षण करना होगा ताकि दार्शनिकों की उस तथाकथित परिभाषा में से कोई भाग निकल सके जिसे हम ज्ञान-मीमांसा की संज्ञा से अभिहित करते रहे हैं। अर्थात् इस सम्बन्ध में हमारी दैनिक व्यवहार की भाषा में ज्ञान का जो अर्थ है वही महत्वपूर्ण होगा। परिष्कृत भाषा के शब्द काम में नहीं आएंगे। शब्दों के इन स्वभिन्न प्रयोगों को किसी लघुसूत्र में बांधा नहीं जा सकता अर्थात् किसी ठोस परिभाषा में भी नहीं। जो शब्द दार्शनिकों को अच्छे लगते हैं व सुबोध, ज्ञानगम्य शब्द हैं, जो अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं किन्तु जिनका कोई उत्तरदायित्व निश्चित एवं परिभाषित नहीं किया गया है। लीथियम जैसे व्यावसायिक शब्दों से भिन्न उन शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।

किन्तु ज्ञान शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग करने वाले तरीकों को एक साथ कैसे जोड़ा जाए? खास तौर पर यदि किसी आकारी परिभाषा के जरिए यह कार्य न किया जाए तो? एक ठोस बात प्रस्तुत है–कि हम यह देखें कि शब्दों के प्रयोगों को परस्पर जोड़ा जा सकता है बिना किसी एक व्यापक सूत्र के जरिए वर्णित कर के। उदाहरणार्थ, 'खेल' शब्द ही लें। तख्तों के खेल पत्तों के खेलों से कई प्रकार से मिलते जुलते हैं और उनके नियम बहुत कम फुटबाल पर लागू हो सकते हैं। किन्तु शतरंज के विषय में, तब, हमारे सर्वेक्षण का परिणाम विटजनस्टीन के अनुसार यही है कि हम बहुत सी वस्तुओं में समानताओं का एक जटिल जाल गुंथा हुआ देखते हैं। कभी कभी प्रत्येक बात समान दिखाई देती है कभी कभी विस्तार में समानता रहती है। ऐसे गुंथे जाल को कुटुम्ब की संज्ञा दी है उन्होंने। ऐसी ही जटिलता में खेल का मूलभेद छिपा है, और खेल शब्द का प्रयोग मात्र ही इस जटिलता को अपने में गूंथे हुए है। एक सूक्ति में वे इसका निष्कर्ष यों देते हैं साराश व्याकरण द्वारा व्यक्त होता है। व्याकरण हमें यह बताता है कि अमुक पदार्थ किस तरह का है।

पाठक एव उनके व्याख्याकार हो प्राय उनस विग्रखलित हो जाते हैं क्योंकि विटजन स्टीन क्षण भर को भी यह स्पष्ट करने के लिए नही रुकते कि वे इस अभिव्यक्ति का[1] *प्रयोग कसे कर रहे हैं। यह स्पष्ट करने म उनकी असफलता चाहे उचित* हो अथवा नही, उनकी दशन-सम्बन्धी धारणा से उपजी यह सीधी परिणति है। कसी हुई परिभाषाओं स दशन विज्ञान की एक जाति के समान ही लगेगा। विटजन-स्टीन की धारणा है कि दशन किसी बात की भी व्याख्या नही करता, और न किसी वस्तु का विश्लेषण ही करता है, केवल वणन करता ह।

इसके अतिरिक्त चिकित्सा-विज्ञान की प्रक्रिया म जिस भाति तत्वों का महत्व है उसी भाति दशन मे भी उसके द्वारा प्रस्तुत विवरणो का महत्व है। नान शब्द के प्रयोग के तरीको मे प्रकट कुछ पहलू ही दशन की गडबडियो के जन्म दाता हैं तथा इनके कारण ही हम बौद्धिक रूप स कु ठित हो जाते हैं। इससे कम कोई भी अवस्था हमारा उपचार नहीं कर सकती कि हम वास्तविक भाषाई प्रयोग का सही विवरण प्रस्तुत करें। एक ऐसा विवरण जो किसी भी भाति मूल अभिरुचि का नही। दाशनिक द्वारा किसी प्रश्न पर विचार उसी प्रकार होता है जसे किसी बीमारी का हुआ करता है। एक भिन्न रूपक लें तो कहेंगे कि दाशनिक एक घवडाई हुई मक्खी को उस बोतल मे से निकलने का माग बताता है जिसम वह चली गई है।

[दाशनिक का इन सदर्भो म अथ है अच्छा दाशनिक अर्थात् वह दाशनिक जो विटजनस्टीन की प्रणाली का उपयोग करता है। बहुत स दाशनिको ने तो बीमारी *का इलाज करने के बजाय बीमारी फलाई है और मक्खी को बोतल मे घुसने के लिए* ही मार्गापित किया है।[2]]

इस पर भी यदि हम विटजनस्टीन के द्वारा प्रस्तुत दाशनिक प्रश्न को समझना चाहें, तो हम सबसे पहल यही पूछना चाहिए कि किस विशिष्ट प्रलोभनो से वे हमे मुक्त करना चाहते हैं। उनको सायकता की चचा को ही लें। इसम विटजनस्टीन दो

---

1 तुलना के लिए देखें, मूर का यह कथन, मै अभी भी सोचता हू कि व्याकरण क नियमों की बाबत उनके द्वारा कही हुई बात का साधारण अथ नही था, और मैं अभी तक इस सबध म स्पष्ट नही हो पाया हू कि वे किस अथ मे उसका उपयोग करते रहे थे।' तथा मैलकम का या कथन 'थोडी हिचक के साथ ही मैं निकष की धारणा पर कुछ कहूगा, क्योंकि यही विटजनस्टीन के दशन का सर्वाधिक कठिन स्थल है।'

2 देखें बी० ए० करेल 'एन एप्रेजल आव थेरेप्यूटिक पोजिटिविज्म' (माइण्ड 1946)।

प्रयास से कम किसी भी बात से सतोष नही हो सकता था जिसम ज्ञान के साराश को कठोर परिभाषा देकर प्रस्तुत नही किया गया हो। तो भी ऐसी कठोर परिभाषा न तो समव है और न वाछनीय है।

अवश्य ही हम अपनी परिभाषाओ को तो कठोर कर सकते हैं किन्तु वह केवल इस स्वीयात्मक निणय के खतरे पर कि यह या वह वास्तव मे ज्ञान नही है। किन्तु विटजनस्टीन के अनुसार ऐसे आगे बढना दशन की प्रकृति को ही गलत समझ लेना हैं। दशन के लिए हमे लोगो द्वारा ज्ञान का वास्तविक अथ निकाले जाने का एक विस्तृत परीक्षण करना होगा ताकि दाशनिको की उस तथाकथित परिभाषा मे से कोई भाग निकल सके जिसे हम ज्ञान-मीमासा की सज्ञा से अभिहित करते रहे हैं। अर्थात् इस सम्बन्ध मे हमारी दनिक यवहार की भाषा मे ज्ञान का जो अथ है वही महत्वपूण होगा। परिष्कृत भाषा के शब्द काम मे नही आएगे। शब्दों के इन स्वमिश्र प्रयोगो को किसी लघुसूत्र मे बाधा नही जा सकता अर्थात् किसी ठोस परिभाषा में भी नही। जो शब्द दाशनिको को अच्छे लगते हैं वे सुबोध ज्ञानगम्य शब्द हैं, जो अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होते हैं किन्तु जिनका कोई उत्तरदायित्व निश्चित एव परिभाषित नही किया गया है। लीथियम जसे व्यावसायिक शब्दो से भिन्न, उन शब्दों के अनेक अथ होते हैं।

किन्तु ज्ञान शब्द का विभिन्न अर्थों मे प्रयोग करने वाले तरीकों को एक साथ कसे जोडा जाए ? खास तौर पर यदि किसी आकारी परिभाषा के जरिए यह काय न किया जाए तो ? एक ठोस बात प्रस्तुत है—कि हम यह देखें कि शब्दों के प्रयोगों को परस्पर जोडा जा सकता है बिना किसी एक व्यापक सूत्र के जरिए वर्णित कर के। उदाहरणाथ, 'खेल' शब्द ही लें। तख्तो के खेल पत्तो के खेलो से कई प्रकार से मिलते जुलते हैं और उनके नियम बहुत कम फुटबाल पर लागू हो सकते हैं। किन्तु शतरज के विषय म तब, हमारे सर्वेक्षण का परिणाम विटजन-स्टीन के अनुसार यही है कि हम बहुत सी वस्तुओ मे समानताओ का एक जटिल जाल गुथा हुआ देखते हैं। कभी कभी प्रत्येक बात समान दिखाई देती है कभी कभी विस्तार में समानता रहती है। ऐसे गुथे जाल को कुटुम्ब की सज्ञा दी है उन्होंने। ऐसी ही जटिलता में खेल का मूलभेद छिपा है, और खेल शब्द का प्रयोग मात्र ही इस जटिलता को अपने म गूथे हुए है। एक सूक्ति में व इसका निष्कष यों देते हैं साराश व्याकरण द्वारा व्यक्त होता है। व्याकरण हमे यह बताता है कि अमुक पदाथ किस तरह का है।

व्याकरण, यहा एक तकनीकी अभिव्यक्ति है। फिलोसोफिकल इन्वस्टिगेशन्स में कुछ अन्य पद भी हैं जसे भाषा' क्रीडा' एव निकष (काइटेरियन)। उनके

पाठक एव उनके व्याख्याकार ही प्राय उनसे विभ्र खलित हो जाते हैं क्योंकि विटजनस्टीन क्षण भर को भी यह स्पष्ट करने के लिए नही रुकते कि वे इस अभिव्यक्ति का[1] प्रयोग कैसे कर रहे हैं। यह स्पष्ट करने म उनकी असफलता चाहे उचित हो अथवा नही, उनकी दशन-सम्बन्धी धारणा से उपजी यह सीधी परिणति है। कसी हुई परिभाषाओ से दशन विज्ञान की एक जाति के समान ही लगेगा। विटजन-स्टीन की धारणा है कि दशन किसी बात की भी व्याख्या नही करता, और न किसी वस्तु का विश्लेषण ही करता है, केवल वणन करता है।

इसके अतिरिक्त चिकित्सा-विज्ञान की प्रक्रिया मे जिस भाति तत्वों का महत्व है उसी भाति दशन म भी उसके द्वारा प्रस्तुत विवरणो का महत्व है। नान' शब्द के प्रयोग के तरीको मे प्रकट कुछ पहलू ही दशन की गडबडियो के जन्म दाता हैं तथा इनके कारण ही हम बौद्धिक रूप स कुंठित हो जाते हैं। इससे कम कोई भी अवस्था हमारा उपचार नहीं कर सकती कि हम वास्तविक भाषाई प्रयोग का सही विवरण प्रस्तुत करें। एक ऐसा विवरण जो किसी भी भाति मूल अभिरुचि का नही। दाशनिक द्वारा किसी प्रश्न पर विचार उसी प्रकार होता है जसे किसी बीमारी का हुआ करता है। एक भिन्न रूपक लें तो कहगे कि दाशनिक एक घबडाई हुई मक्खी को उस बोतल मे से निकलने का माग बताता है जिसमे वह चली गई है।

[दाशनिक का इन सदर्भो मे अथ है अच्छा दाशनिक अर्थात् वह दाशनिक जो विटजनस्टीन की प्रणाली का उपयोग करता है। बहुत स दाशनिको ने तो बीमारी का इलाज करने के बजाय बीमारी फलाई है और मक्खी को बोतल मे घुसने के लिए ही आकर्षित किया है।[2]]

इस पर भी यदि हम विटजनस्टीन के द्वारा प्रस्तुत दाशनिक प्रश्न को समझना चाह, तो हमे सबसे पहले यही पूछना चाहिए कि किस विशिष्ट प्रलोभनो से वे हमे मुक्त करना चाहते हैं। उनकी साथकता की चर्चा को ही लें। इसम विटजनस्टीन दो

---

1 तुलना के लिए देखें, मूर का यह कथन 'मै अभी भी सोचता हूँ कि व्याकरण के नियमों की बाबत उनके द्वारा कही हुई बात का साधारण अथ नही था, और मैं अभी तक इस सबध म स्पष्ट नहीं हो पाया हू कि व किस अथ मे उसका उपयोग करते रहे थे।' तथा मैलकम का यो कथन, 'थोडी हिचक के साथ ही मैं निकष की धारणा पर कुछ कहूगा, क्योंकि यही विटजनस्टीन के दशन का सर्वाधिक कठिन स्थल है।'

2 देखें बी० ए० फरेल 'एन एप्रेजल आव थेरेप्यूटिक पोजिटिविज्म' (माइण्ड 1946)।

प्रमुख प्रलोभनों पर चर्चा करते हैं। पहला है– प्रत्यक शब्द को एक नाम मानना। यह एक ऐसा प्रलोभन है जो हम मीनोग की भांति, प्रामासी इयत्ताओं के रचने की ओर प्रवृत्त करता है। खास तौर पर प्रमूत सनाम्रों के सदम मे। तथा दूसरा यह सोचना कि शब्द बोध' या शब्द साथकता का ज्ञान' य सब कोई न कोई मानसिक प्रक्रिया है। जो उस विचार के पदार्थ हैं जिसे लाक ने प्रत्यय (आइडिया) तथा श्लिक ने विषय वस्तु (कण्टेण्ट) माना है। यह अथ का ऐसा विश्लेषण है जो अपरिहाय रूप से उन पहेलियों की ओर ले जाता है जो श्लिक की रचनाओं मे भरी पडी है।[1]

यदि हम चुप हो जाए और शब्द वस्तुत जिस तरह प्रयुक्त होते हैं उसी पर बिना पूर्वाग्रह के विचार करें तो अथ का रहस्य उड जायगा। हम सरलता से अपना सतुलन बनाए रख सकते हैं यदि हम वास्तविक भाषाओं के बजाय सभव भाषा का प्रयोग करें। *कारनैप का दृष्टिकोण भी यही है किन्तु द लोजिकल सिण्टेक्स आव* लग्वज मे कारनप सभव भाषा का जो विवरण देते हैं वह जटिल एव कृत्रिम सूना म बद्ध है। इसे हम दनिक कारोबार की जिन्दगी म प्रयुक्त नही कर सकते, जबकि विटजनस्टीन सामाजिक व्यवहार के एक रूप को वर्णित करते हैं–(चाहे यह व्यवहार किसी वास्तविक समुदाय का न लगकर काल्पनिक जाति का ही लगता हो–) और हम उस तरह की भाषा का प्रयोग करने के लिए कहते हैं जो व्यावहारिक रूप से उस

---

1 यदि मुझे ट्रैक्टेटस के अलावा कोई दो पुस्तकों के विषय मे कहने के लिए कोई कहे जो मेरी दृष्टि म फिलोसोफिकल इन्वेस्टीगेशन्स के अध्ययन के लिए उपयुक्त है तो मै श्लिक की पुस्तक गेसोमेल्टे आफ सार्जे (खास तौर पर उनके फाम एण्ड कण्टेण्ट पर दिए गए भाषणों का) तथा विलियम जेम्स की प्रिंसिपल्स आव साइ–कोलोजी (जो उनके प्रेग्मेटिज्म नामक ग्रथ के पूरक के रूप म निकली थी) का सदभ देना चाहूगा। विटजनस्टीन ने जेम्स का सदभ बहुत दिया है जो एक अपर सम्मान है। किन्तु यह सब उन्होने कदाचित जेम्स से रहे अपने सम्बन्धो का ब्यौरा देने के लिए किया हो। विटजनस्टीन सट आगस्टीन क कन्फेशन्स का भी जिक्र करते हैं जो उत्तम ढग स उन अवस्थाओं का वणन करते हैं जिनमे दाशनिक समस्याए खडी होती हैं। मैने जम्स के उन पर रहे प्रभाव क विषय मे निजी प्रमाणों पर लिखा है। उनके एक पहले के शिष्य ए० सी० जेकसन ने मुझ कहा है कि विटजनस्टीन ने जेम्स का अविकल सदभ दिया है तथा आश्चय की बात तो यह है कि एक जगह तो उन्होने उनकी पुस्तक के एक पृष्ठ का सदभ भी दिया है। एक अवसर पर तो उनके बुक शेल्फ पर केवल जेम्स की ही पुस्तक प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी दिखाई दिया करती थी।

प्रकार के जीवन के लिए उपयोगी हो सकेगा।[1] उदाहरण के लिए, मान लो, एक कारीगर मजदूर के साथ काम कर रहा है। वह जब ईट कहता है तो मजदूर को ईट लाने की शिक्षा देता है। और जब वह 'पत्थर की पट्टी' कहता है तो उसका तात्पय उसे पत्थर की पट्टी लाने का सकेत समझाना है। तब विटजनस्टीन के लिए यही एक ऐसी भाषा है जो दार्शनिको के काम की है। खास तौर पर वे भाषा का यह मानकर प्रयोग करें कि वह केवल नामो से ही बनी है। वे यहा आगस्टीन का सदभ देते हैं।

ऐसी भाषा निश्चय ही अग्रेजी भाषा से बहुत अधिक सरल होगी। यह बहुत कम सामाजिक परिस्थितियो मे उपयोगी होगी। किन्तु इतने सरलीकृत आकार के प्राप्त हो जाने पर भी शब्द केवल नाम नही रह पाते। पत्थर की पट्टी' को समझने का अर्थ होगा उसे भाषाई खेल में कही उपयोग करने का आशय समझना। इस सदभ म यह खेल आदेश दने और लेने की स्थिति है। इस बात को समझने के लिए हम कारीगर को सुनने की प्रक्रिया को स्वीकारना पडेगा जब वह किसी पदाथ की ओर सकेत करते हुए कह रहा हो कि 'यह पत्थर की पट्टी है'। वकल्पिक रूप से, मामले पर विचार करने का एक तरीका, जसा विटजनस्टीन ने सोचा है, इसी तथ्य को उजागर करता है कि नाम केवल छाप है। पत्थर की पट्टियो म वास्तव म पट्टी नामक शब्द लिखा जा सकता है। तब हमे इस शब्द को पढने की शिक्षा ग्रहण करनी पडेगी इससे पूव कि हम कारीगर के आदेश मान सकें। किन्तु ऐसी प्रक्रियाए (जिन्हे हम वस्तुओ के नाम जानने की प्रक्रिया कह सकते हैं) भाषा के प्रयोग की प्रारम्भिक अवस्थाए हैं उसके उदाहरण नही। नामकरण मात्र भाषाई खेल मे काई बहुत बडी गति नही है। शतरज म चाल चलने का मतलब है कि उस तख्त मे मोहरे को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर रखना।

तब फिर पट्टी का अथ नाम रूप-पदाथ तक ही सीमित नहीं रहेगा, किन्तु भाषा म इसका कसे प्रयोग होता है इसका सकेत देगा। यदि वास्तविक पट्टी (भौतिक पदाथ) भी पट्टी के अथ का अग होता तभी हम विटजनस्टीन के अनुसार

---

1 इस विषय पर कारनप के अनुयायियो तथा साधारण भाषाविचारका के बीच काफी सुवाद चला। उदाहरणाथ देखें, वाई० बार हिलेल एनालिसिस आव करेक्ट लग्वेज (माइण्ड 1946), एव विटजनस्टीन की तरफ से ए० एम्बोस कृत द प्रोब्लेम आव लिग्विस्टिक इनएडीक्वसी' (फिलोसोफिकल एनालिसिस सपा० एम० ब्लक 1950)। जे० एस० एल० के समीक्षकों ने सदव ही कडवाहट के साथ यह शिकायत की है कि तार्किक विषयो पर ब्रितानी दार्शनिकों की रचनाए चर्चा करने के लिए अपने आकारों में अपर्याप्त है।

यह कहने लायक होते कि मैंने पट्टी शब्द मे एक अ श को तोड दिया है ।' मैंन ग्राज पट्टी शब्द के सैकडो टुकडे कर दिए हैं ।' आदि । ऐसे वाक्य स्पष्ट ही निरथक हैं–जो हमें यह देखने म सहायता करते हैं कि ग्रर्थों के नामकरण का सिद्धात भी निरथक है । यहा विटजनस्टीन का तक उस विधि का एक महत्वपूर्ण उदाहरण वन जाता है जिसे वे स्वय उपचार विधि की सज्ञा दते हैं । वे छिपे हुए निरथक भाव को प्रकट निरथक भाव का रूप दते हैं ।

कुछ खास मामलो म विटजनस्टीन स्वीकारते हैं कि हम किसी को कहते हैं कि पट्टी शब्द का मतलब है इस प्रकार का इमारत का सामान' । उसके साथ पट्टी की ग्रोर इशारा करते हुए हम सकेत भी देंगे । किन्तु उनके विचार मे, तव हम ऐसे व्यक्ति से बात कर रहे होगे जो हमारे भाषाई खेल को मली भाति समझ रहा है । ग्रौर हम उसे एक खास बिन्दु पर ग्राकर 'पट्टी' शब्द का प्रयोग करने के लिए कहेग, ईट का नही । साथकता के नामकरण का सिद्धात ग्रपनी सगति उन ग्रप्रतिनिधि बातो के हवाले से प्राप्त करता है जिसम हम किसी परिचित भाषा म ही ग्रपनी वाक्य शक्ति का प्रसार कर रहे होते हैं या फिर विदशी भाषा सीख रहे होते हैं जवकि एक समुचित विश्लेषण के लिए उन्हीं बातों पर ध्यान को केन्द्रित करना पडेगा जिनके जरिए हम ग्रपनी ही भाषा को समझ सकते हैं । मामले पर इस तरह दृष्टि रखने पर हम शीघ्र यह देख पाएगे कि यह जान लेना हो कि किन वस्तुग्रो पर किसकी छाप लगानी है' एक भाषा को समझ लेना नही होगा । चाहे ग्रकन एव पुनरकन, समझने के दौर के प्राथमिक कदम के रूप मे जरूरी हो ग्रथवा उपयोगी ।

विटजनस्टीन का प्रश्न है साथकता के सिद्धात में सकेतन या प्रकट परिभाषा पर इतना बल क्यो दिया गया है ? क्योंकि दाशनिको ने सोचा था कि सकेतन से मामला साफ हो जाता है कि यह हमे गलत-फहमी के खतरे से बाहर ले जाता हैं जब हम चचनीय विषय को समुचित रूप से सूक्ष्मतम रूप म स्पष्ट कर लेत है । किन्तु विटजनस्टीन का कहना है कि गलत–फहमी क खतरे से बचन का कोई माग नही है–हम किसी क द्वारा दिए गए सकेत को भी गलत समझ सकते हैं–उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक ग्राकारी क्रिया पदात्मक परिभाषा को गलत समझ सकते हैं । उदाहरणाथ यदि एक शिक्षक लाल' वग की ग्रोर सकेत करता हुग्रा कहता है, लाल । उसके शिष्य यह समझ सकते हैं कि उनका शिक्षक उन्ह वग का नाम बता रहा है । दाशनिको न मान लिया था कि (यहा ग्रब विटजनस्टीन के मस्तिष्क म ट्रैक्टेटस एव रसेल के तकसम्मत ग्रनुवाद की बात है) 'ग्रमि यक्ति के ग्रथ का भी ग्रतिम विश्लेषण होना चाहिए ।' ऐसा विश्लेषण जो सरल तत्वो से बना हो ताकि ग्रथ को पूण सरलता से समझने के लिए हम उसम प्रयुक्त शब्दो के सकेत को समझ

सकें। किन्तु अब विटजनस्टीन सोचते हैं कि तर्कसम्मत प्रण वाद के जिन सरला
कारो की माग की गई है व सरलाकार (सिम्प्लस) मिलने सभव नही हैं।

एक प्रस्तुत भाषाई खेल के लिए वे यह मानने के लिए तैयार हैं कि कुछ
वस्तुओ को सरल मानकर चल सकते हैं। (तब उनके नाम हमारे वाक्यो मे आगे
विश्लेषणापेक्षी नही होंगे।) किन्तु तात्विक रूप से ऐसे पदार्थ सरल नहीं होते। वे
ससार के अन्तिम मौलिक तत्व भी नहीं होते। रसल की एक तर्कसम्मत समुचित
सत्ता की खोज' एक ऐसी सत्ता (नाम) की खोज, प्रकृति से ही आगे के विश्लेषण
की अपेक्षा नही रखेगी, अन्तत उन्हें इस निष्कर्ष पर ले गई कि प्रदर्शन-योग्य
यह (This) नामक शब्द ही एक ऐसा नाम है जो इस माग की पूर्ति करता है। तो
भी यह शब्द विटजनस्टीन के अनुसार कोई नाम है ही नहीं। सही निष्कर्ष तो यही
है कि ऐसी एक भी तार्विक रूप से समुचित सत्ता नही है जिससे यह निष्कर्ष निकले
कि सार्थकता का विश्लेषण सिद्धान्त (तथा उसके साथ यह दृष्टिकोण भी कि दर्शन
का यह विशेष कार्य है कि वह अन्तरिम विश्लेषण सुझाए) पूर्णत अमान्य कर
दिया जाना चाहिए।

तब, हमे कौनसी वस्तु भटका देती है? कौनसी ऐसी अवस्था है जो सरला-
कारों एव अन्तिम विश्लेषण की ओर प्रवृत्त करती है? हम इस बात के तो आदी
हो गए हैं कि यदि हमारे सामने कोई गलतफहमी पैदा हो तो उस गलतफहमी मे
डालने वाले वाक्य के स्थान पर हम एक ऐसे एवजी कथन को रख देते हैं जो उसकी
अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट है। युक्तिपूर्वक ऐसे एवजी कथन को मौलिक कथन के विश्लेषण
का ही भाग माना जा सकता है। इस तरह हम यह मानने को विवश होना पड़ता है
कि एक पूर्णत उपयुक्त एव पारदर्शी भाषा भी हो सकती है-जिसमे अन्तिम विश्लेषण
बताने वाले पदों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिव्यक्तियां न हो। ऐसी भाषा को
खोजने के लिए हमे वे ही प्रश्न पूछने के लिये विवश होना पड़ेगा-जो ट्रैक्टेटस मे
उठाए गए हैं, जैसे एक तर्कवाक्य का वास्तविक आकार क्या है? या अन्तिम
भाषा के उपकरण क्या हैं? आदि। हम सदैव ही एक प्रत्यय के कारण तत्ववादी
जटिलताओ म घुसकर उसके बन्दी हो जाते हैं। इसलिए उनका सर्वप्रथम कर्म
उस प्रत्यय का विनाश करना है। उन्हे इस बात का भान था कि ऐसा करने पर
उनके आलोचक जो कुछ महान एव महत्वपूर्ण है उसे नष्ट करने का अभियोग
उन पर लगावेंगे जब कि उनके खुद के मत म वे केवल ताश के पत्तों का मकान
ही ढहा रहे हैं। ये पत्तो के मकान आप ही ढह जाएगे यदि हम उस जमीन की
सफाई कर देंगे जिन पर वे खड़े हैं। अर्थात् हम सामान्य दैनिक भाषा मे जिस
तरह 'ज्ञान-कथन' एव नाम' का वर्णन करते हैं उसका सही विश्लेषण करने पर यह
बात स्वाभाविक रूप से तय हो जाएगी।

यह कहने लायक होते कि मैंने पट्टी शब्द म एक अ श को तोड दिया है। मैंने आज पट्टी श द के सैंकडों टुकडे कर दिए हैं।' आदि। ऐस वाक्य स्पष्ट ही निरथक हैं—जो हम यह देखने म सहायता करते हैं कि अर्थों के नामकरण का सिद्धात भी निरथक है। यहा विटजनस्टीन का तक उस विधि का एक महत्वपूण उदाहरण बन जाता है जिसे वे स्वय उपचार विधि की सना दते हैं। व छिपे हुए निरथक भाव को प्रकट निरथक भाव का रूप देते हैं।

कुछ खास मामलो म विटजनस्टीन स्वीकारते हैं कि हम किसी को कहते हैं कि पट्टी शब्द का मतलब है इस प्रकार का इमारत का सामान'। उसके साथ पट्टी की ओर इशारा करते हुए हम सकेत भी देंगे। किन्तु उनके विचार म, तब हम ऐसे व्यक्ति से बात कर रहे होंगे जो हमारे भाषाई खेल को भली भाति समझ रहा है। और हम उसे एक खास बिन्दु पर आकर 'पट्टी' शब्द का प्रयोग करने के लिए कहेंगे, ईट का नही। साथकता के नामकरण का सिद्धात अपनी सगति उन *अप्रतिनिधि बातो के हवाले से प्राप्त करता है जिसम हम किसी परिचित भाषा म* ही अपनी वाक्य शक्ति का प्रसार कर रहे होते हैं या फिर विदेशी भाषा सीख रहे होते हैं, जबकि एक समुचित विश्लेषण के लिए उन्हीं बातों पर ध्यान को केंद्रित करना पडेगा जिनके जरिए हम अपनी ही भाषा को समझ सकते हैं। मामले पर इस तरह दृष्टि रखने पर हम शीघ्र यह देख पाएगे कि यह जान लेना ही कि किन वस्तुओ पर किसकी छाप लगानी है' एक भाषा को समझ लना नही होगा। चाहे अ कन एव पुनरकन समझने के दौर के प्राथमिक कदम के रूप म जरूरी हो अथवा उपयोगी।

विटजनस्टीन का प्रश्न है साथकता के सिद्धान्त में सकेतन या प्रकट परिभाषा पर इतना बल क्यो दिया गया है? क्याकि दाशनिको ने सोचा था कि सकेतन से मामला साफ हो जाता है कि यह हमे गलत-फहमी क खतरे से बाहर ले जाता हैं जब हम वचनीय विषय को समुचित रूप से सूक्ष्मतम रूप मे स्पष्ट कर लेते हैं। किन्तु विटजनस्टीन का कहना है कि गलत-फहमी के खतरे से बचने का कोई माग नही है—हम किसी क द्वारा दिए गए सकेत को भी गलत समझ सकते हैं—उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक आकारी क्रिया पदात्मक परिभाषा को गलत समझ सकते हैं। उदाहरणाथ यदि एक शिक्षक लाल' वग की ओर सकेत करता हुआ कहता है, लाल। उसके शिष्य यह समझ सकते हैं कि उनका शिक्षक उन्हे वग का नाम बता रहा है। दाशनिको ने मान लिया था कि (यहा अब विटजनस्टीन के मस्तिष्क म ट्रैक्टेटस एव रसल के तकसम्मत अनुवाद की बात है) 'अभिव्यक्ति के अथ का भी अंतिम विश्लेषण होना चाहिए।' ऐसा विश्लेषण जो सरल तत्वों से बना हो ताकि अथ को पूण सरलता से समझने क लिए हम उसम प्रयुक्त शब्दो के सकेत को समझ

सकें। किन्तु अब विटजनस्टीन सोचते हैं कि तर्कसम्मत अणुवाद के जिन सरलाकारों की माग की गई है वे सरलाकार (सिम्प्लस) मिलना सभव नहीं हैं।

एक प्रस्तुत भाषाई खेल के लिए वे यह मानने के लिए तैयार हैं कि कुछ वस्तुओं को सरल मानकर चल सकते हैं। (तब उनके नाम हमारे वाक्यों में आगे विश्लेषणापेक्षी नहीं होंगे।) किन्तु तात्विक रूप से ऐसे पदार्थ सरल नहीं होते। वे ससार के अंतिम मौलिक तत्व भी नहीं होते। रसल की एक तर्कसम्मत समुचित सज्ञा की खोज' एक ऐसी सज्ञा (नाम) की खोज, प्रकृति से ही आगे के विश्लेषण की अपेक्षा नहीं रखेगी, अन्ततः उन्हें इस निष्कर्ष पर ले गई कि प्रदर्शन-योग्य यह (This) नामक शब्द ही एक ऐसा नाम है जो इस माग की पूर्ति करता है। तो भी यह शब्द विटजनस्टीन के अनुसार कोई नाम है ही नहीं। सही निष्कर्ष तो यही है कि ऐसी एक भी तार्किक रूप से समुचित सज्ञा नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकले कि सार्थकता का विश्लेषण सिद्धान्त (तथा उसके साथ यह दृष्टिकोण भी कि दर्शन का यह विशेष कार्य है कि वह अन्तरिम विश्लेषण सुझाए) पूर्णतः अमान्य कर दिया जाना चाहिए।

तब हमें कौनसी वस्तु झटका देती है? कौनसी ऐसी अवस्था है जो सरलाकारों एवं अन्तिम विश्लेषण की ओर प्रवृत्त करती है? हम इस बात के तो आदी हो गए हैं कि यदि हमारे सामने कोई गलतफहमी पैदा हो तो उस गलतफहमी में डालने वाले वाक्य के स्थान पर हम एक ऐसे एवजी कथन को रख देते हैं जो उसकी अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट है। युक्तिपूर्वक ऐसे एवजी कथन को मौलिक कथन के विश्लेषण का ही अग माना जा सकता है। इस तरह हमें यह मानने को विवश होना पड़ता है कि एक पूर्णतः उपयुक्त एवं पारदर्शी भाषा भी हो सकती है-जिसमें अंतिम विश्लेषण बताने वाले पदों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिव्यक्तियाँ न हों। ऐसी भाषा को खोजने के लिए हमें वे ही प्रश्न पूछने के लिये विवश होना पड़ेगा-जो ट्रैक्टेटस में उठाए गए हैं, जैसे एक तर्कवाक्य का वास्तविक आकार क्या है? या अंतिम भाषा के उपकरण क्या हैं? आदि। हम सदैव ही एक प्रत्यय के कारण तत्ववादी जटिलताओं में घुसकर उसके बन्दी हो जाते हैं। इसलिए उनका सर्वप्रथम कार्य उस प्रत्यय का विनाश करना है। उन्हें इस बात का भान था कि ऐसा करने पर उनके आलोचक जो कुछ महान एवं महत्वपूर्ण है उसे नष्ट करने का अभियोग उन पर लगाएँगे जब कि उनके खुद के मत में वे केवल ताश के पत्तों का मकान ही ढहा रहे हैं। ये पत्तों के मकान आप ही ढह जाएँगे यदि हम उस जमीन की सफाई कर देंगे जिन पर वे खड़े हैं। अर्थात् हम सामान्य दैनिक भाषा में जिस तरह ज्ञान-कथन' एवं नाम' का वर्णन करते हैं उसका सही विश्लेषण करने पर यह बात स्वाभाविक रूप से तय हो जाएगी।

यद्यपि बात विटजनस्टीन जैसी सूक्ष्मता से नही कही जा सकी है तो भी भाषा को समझने की उनकी दृष्टि पर इतना कहना काफी है जो यह मानती है कि भाषा के समझने का मतलब यही है कि हम केवल मात्र उन पदार्थों का सकेत समझते हैं, (अर्थात् उन पदार्थों का जो किसी भाषा म शब्दा द्वारा नामाकित होते हैं) चाहे वह सन्निहित (अतिरिम) रूप से हो या अतिम रूप से। अब इससे कठिनतर समस्या भी आती है कि बोध एक मानसिक प्रक्रिया है यह मानने के आवेग को हम कैसे जीतें? एक व्यक्ति के विषय म यह कह सकते हैं कि वह समझता है'। मान लो, एक शिक्षक इस क्रम को लिखता है 3, 9 27। और तब अपने शिष्य से कहता है, आगे जारी रखो। और शिष्य लिखता है-81, 243। और शिक्षक सतुष्ट हो जाता है, यह जानकर कि उसका शिष्य समझता है। या फिर मानलो हम किसी को यह लिखते हुए देखें 1, 3, 6 और मुश्किल मे पड़ जाए क्योंकि हम 6 के स्थान पर 5 की आशा करते हैं। और तब वह 10 लिखता है तो हम तुरन्त कह सकते हैं कि उसी क्रम मे आग वह 15 21 लिखेगा और हम अपने आप से कहेंगे, कि हम समझ गए।

समझ की ऐसी प्रक्रिया के समय इसके बहुत से सहचारी अग भी हो सकते हैं। हम तनाव का अनुभव कर सकते हैं और तब एक मुक्ति का। हम अपने आप से कहेंगे 'अ तर केवल एक ज्यादा होने का है या।' हम जिन अको की अपेक्षा करते हैं उनका मानसिक बिम्ब हमारे समक्ष हो सकता है-किन्तु इनम से एक भी हमारी समझ के लिए पर्याप्त नही है। जब हम समझते हैं तो चाहे सामान्यत हमारे समक्ष चाक्षुष बिम्ब रहते हो तो भी इन बिम्बो का सदव ही कुछ अन्य उपकरणो से स्थानान्तर किया जा सकता है। जसे लाल बिम्ब का होना वर्णफलक को देखकर स्थानान्तरित हो सकता है। और इसम हमारी समझ का कोई भी मात्र कम नही हुआ होगा। यदि सामान्यत हम अपने से ही किसी सूत्र म बात करें तो चाहे जितना जोर से हम उसे कह तो भी इससे हमारी समझ पर कोई फक नही पडेगा। इसके अतिरिक्त हमारे सामने एक बिम्ब हो सकता है जो हमारे लिए एक सून हो, तो भी हम उसे नहीं समझें यह स्थिति भी हो सकती है। इस तरह विटजनस्टीन का मत है कि जिस रूप मे भी प्रक्रियाए हैं (मानसिक प्रक्रियाओ समत), ऐसी प्रक्रियाए जिनसे समझ स्पष्ट होती है वे तो ठीक हैं किन्तु समझ अपने आपमे एक मानसिक प्रक्रिया हो यह सही नही है।

यदि समझ मानसिक प्रक्रिया नही है'-तब स्वभावत यही प्रश्न उठेगा कि यह क्या है'? यह मूल प्रश्न है। इसे विटजनस्टीन की दृष्टि मे व्याकरण की समस्या माननी चाहिए। वे समझ के विषय की विशिष्ट समस्या पर अपना ध्यान केन्द्रित करते ह। और उसे मनोवैज्ञानिक शब्दों की एक सामान्य समस्या का रूप देना

चाहते है। वे पूछते है य शब्द कस काय करते हैं? हम समवत यह कसे बता सकते हैं कि हम उन्ह सही या गलत ढग से प्रयुक्त कर रहे हैं? य सब एस प्रश्न हैं जिनका उत्तर विटजनस्टीन इन्वेस्टिगेशस क उत्तरार्द्ध मे दने का प्रयास करत हैं। किन्तु वहा भी हम एक यथोचित एव निश्चित उत्तर मिलने की आशा नहीं रखनी चाहिए। यह तो विटजनस्टीन की मूल विधि स भी बाहर जाना हो जायगा। उनका उद्देश्य चिकित्सात्मक है। यहा उसका यही अर्थ है कि वे हमारी इस प्रवृत्ति की चिकित्सा करते है। जिसक आधार पर हम यह मान लेते हैं कि मनोवैज्ञानिक शब्द सदव ही एस निजी अनुभवो का नामाकन करते हैं-जिन्ह अकेले हम ही जान सकते हैं। या फिर जसा व इसे प्रस्तुत करत हैं उसके अनुसार यह प्रवृत्ति यह मानने की है कि हमम स प्रत्येक एक निजी भाषा का प्रयोग कर रहा है, जिसक शब्द गुप्त मानसिक जीवन का नामाकन कर रहे हैं।

विटजनस्टीन क अनुसार ऐसा निजी भाषा का विचार मात्र ही अबोधगम्य है।[1] भाषा मे नामो का प्रयोग उस क अन्तर्बाह्य नियमो क आधार पर ही होगा। अर्थात् वह नियमो पर सचालित है, यही बात भाषा को अर्थहीन कोलाहल या कागज के चिन्हों से अलग करती है। किन्तु विटजनस्टीन का प्रश्न है कि हम तब यह कसे कहेंगे कि हमारी निजी भाषा म आए नाम समुचित रूप स प्रयुक्त हुए हैं? सवेदनाए, प्रभाव या जैसा आप सोचें, प्राकल्प से ही प्रवहमान हैं-अस्थायी हैं-हम उन्हे अपने वर्तमान अनुभवों से तुलना करने के लिए वापस लौटा नही सकते, ताकि हम यह देख सकें कि उन्हें वही नाम दिया जाय या नहीं जो हमने पहली बार सोचा था। विटजनस्टीन क अनुसार केवल यही जवाब देना पर्याप्त नहीं है कि, वे मुझे वैसे ही दिखाई देते हैं। यह कसौटी कि मैं अपनी भाषा का सही प्रयोग कर रहा हू या नहीं केवल इस तथ्य मे ही निहित नहीं हो सकती कि मैं अपने आप को वसा करता हुआ देख रहा हूँ। एक निकष का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए ही होता है कि जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सही है या नहीं। यही इसका मूल बिन्दु है। 'आभास होना', ही इस तरह अपने आपमे एक कसौटी नहीं है। यह उत्तर कि मुझे उसके वसा होने का स्मरण है' भी किसी अच्छी स्थिति का सकेत नही है, जब तक कि सामान्य घटनाओ को स्मरण करने के अपने दावे को ही भाति उसको जाच सकने का भी कोई स्वतन्त्र तरीका न हो। अन्यथा केवल अपनी स्मृति का ही सहारा लेना ऐसा है मानो कोई सुबह क एक अखबार की ही अनेक प्रतियां जाच हेतु खरीद लें और उसी आधार पर कहे कि जो कुछ उसमे

---

1 देखें ए० जे० आयर एव आर० रीज 'केन दयर बि ए प्राइवेट लैंग्वेज?' (पी० ए० एस० एस० 1954)।

कहा गया है वह सही है। वास्तव में तो इस बात की कोई कसौटी है ही नहीं कि जिस तथाकथित निजी भाषा का प्रयोग हम कर रहे हैं उसके शब्द सही ढंग से प्रयुक्त हो रहे हैं अथवा नहीं। और इसका अर्थ यही हुआ कि ऐसी कोई भाषा नहीं है।

क्या इससे हम यही निष्कर्ष निकालें कि शब्द संवेदनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते? यह विटजनस्टीन की दृष्टि में बेहूदा निष्कर्ष होगा। क्या हम प्रतिदिन संवेदनाओं की बात नहीं करते और उन्हें कोई नाम नहीं देते? केवल वास्तविक प्रश्न यही है कि वे कैसे किसी वस्तु का संदर्भ देते हैं? दूसरे शब्दों में हम 'संवेदन शब्दों' को जैसे पीडा को कैसे अभिव्यक्त करते हैं? यहां एक संभावना है कि शब्द संवेदना की आदिम एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति से जुड़े हैं और स्वस्थान में ही प्रयुक्त होते हैं। एक बच्चे ने अपने को चोट पहुंचा ली है और वह चिल्लाता है—और तब बुजुर्ग उससे बातचीत करते हैं—और उसे हाव भाव सिखाते हैं और बाद में वाक्यों की रचना भी। इस प्रकार वे बच्चे को नया पीडा-व्यवहार सिखाते हैं।

यहां विटजनस्टीन विचार कर कहते हैं कि संभावना यही है कि 'मैं पीडा में हूँ' नामक वाक्य चिल्लाहट एवं पश्चात्ताप का स्थानान्तर करले चाहे इसका आकार अब एक कथन का हो गया है। अर्थात् वास्तव में यह पीडा-व्यवहार का ही एक अन्य प्रकार है—बजाय एक वर्णनात्मक कथन होने के। हम ऐसी व्याख्या को इस आधार पर तत्काल ही अमान्य कर सकते हैं कि एक व्यक्ति सदा ही विचार व्यक्त करने के लिए ही भाषा का प्रयोग करता है। एक तर्कवाक्य का अभिव्यक्ति देने के लिए या कोई निर्णय देने के लिए। किन्तु यह वो इतना ही है कि विटजनस्टीन इसके प्रतिवाद में कह रहे हैं। निर्णय लेना उन बहुत से मार्गों में से एक है जिनमें हम भाषा का उपयोग करते हैं। वे आगे कहते हैं कि इसका अर्थ यह हो सकता है कि मैं पीडा में हूँ' का भिन्न भिन्न संदर्भ में भिन्न भिन्न अर्थ हो। वे लिखते हैं हम निश्चय ही यह नहीं कहते कि कोई शिकायत कर रहा है क्योंकि वह कहता है कि वह पीडित है। इस तरह यह शब्द मैं हूँ' शिकायत की चिल्लाहट भी हो सकती है या और कुछ भी। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इनका कथन होना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार की मान्यता मैं डर गया हूँ जैसे मनोवैज्ञानिक कथनों पर भी लागू हो सकती है। यदि हम यह कहें कि मैं डर गया हूं तो हमें पूछा जाता है कि क्या हमारी उक्ति भय की चिल्लाहट है या केवल मैं जैसा अनुभव कर रहा हूँ मात्र उसको बताने का प्रयास है? या हमारे मन की वर्तमान अवस्था का चित्रण है? तो हम इसके विषय में भी कभी कुछ और कभी कुछ उत्तर देंगे। और कई दफा हम यह भी नहीं मान पाएंगे कि हम क्या कहना है। इस प्रश्न का कि 'मैं डर गया हूं' का वास्तव में क्या अर्थ है?' कोई सीधा उत्तर नहीं है।

हमे मदद ही सन्म का सहारा लेना होगा एक भाषाई खेल म [जिसमे शब्द बोले गए हैं] । निश्चय ही हम नहो मान सकते कि यही वह बिंदु है जिस पर विटजन स्टीन खास तौर पर बल देना चाहते हैं कि जो कोई भी ऐसी बात कहता है वह एक मानसिक अवस्था का ही विवरण द रहा है ।

ज्ञानवादियो ने सामान्यत यही कहा है कि मैं पीडा म हू एक निजी अवस्था का ही विवरण है और इसी आधार पर उ होने यह निष्कष निकाला है कि 'केवल मैं ही जानता हू कि मैं पीडा म हू ।' कि तु विटजनस्टीन की आपत्ति है कि यह सब स्पष्टत है ही नही । यह तो दनिक अनुभव की बात है कि लोगो को यह पता लग जाता है कि मैं कष्ट पा रहा हू । वास्तव म तो मैं स्वय जान नहो सकता कि मैं तकलीफ म हू । मैं जानता हू कि मैं पीडा म हू कहना निरथक है । इसकी साथकता उसी समय होगी जब मैं जानता हू कि पीडा म हू की ऐसे वाक्यो के साथ तुलना की जाय मरा विचार है कि मैं पीडा म हूँ ' या मैं दढ़ता पूवक विश्वास करता हू कि मैं पीडा म हू ।' आदि आदि । दूसरे व्यक्ति मुझे देखकर यह कह सकते हैं कि मैं जानता हू कि वह पीडा म है । क्योकि विटजनस्टीन के अनुसार दूसरी परिस्थितियो म वे सोच सकते हैं या दृढ़ता पूवक विश्वास कर सकते हैं कि मैं पीडा म हू, (बिना जान कि मैं पीडित हूँ अथवा नही किन्तु इसके विपरीत इससे यह कहा सिद्ध होता है कि मैं पीडा मे हूँ इसका ज्ञान मुझे होता है ।

जब एक दाशनिक हम कहे कि हम इस विषय म कभी निश्चित नही हो सकत कि कोई पीडित है या नही, तो विटजनस्टीन के अनुसार वह यही कहना चाहता है क्या तुम इस सभावना की कल्पना नही कर सकते कि यद्यपि वह चिल्ला रहा है पछता रहा है, गुर्रा रहा है तो भी हो सकता है वह सभी अवस्थाओ म केवल बहाना बना रहा हो । विटजनस्टीन भनी भाति यह स्वीकारने के लिए तयार हैं कि हम यह सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि कोई कसे इन मामलो म सदेहशील हो सकता है कि तु इस माने हुए परिणाम को तो स्वीकारना नही होगा कि कोई कभी भी निश्चित हो ही नही सकना । कोई यह कल्पना भी तो कर सकता है कि एक व्यक्ति जो अपने कमरे का दरवाजा खोलते समय सदा यह सदेह करता है कि बाहर की जमीन ठोस है अथवा नही, और यह अभिमान भी कर सकता है कि एक खास अवसर पर ऐसा व्यक्ति निश्चय ही खोखल शू य म पर रखेगा तो भी हम इस बात पर सदेह नही करते कि मैदान ठोस है या नही । विटजनस्टीन उपदश के स्वर म कहते हैं-एक सत्य मामले को लेकर यह जाचने का प्रयत्न करना चाहिए कि अमुक व्यक्ति सचमुच भयभीत है या पीडित ? किन्तु यहा भी कोई दूसरा आपत्ति कर देगा कि यदि आप निश्चित हैं तो सदेह के सामने क्या आप

अपनी आँखें ब द करके ही बठ गये ? विटजनस्टीन का उत्तर समझौतावादी नहीं है। वे कहते हैं आँखें ब द हैं। हम अपने गलत होने की समावना को अमा य नहीं कर सकते। कि तु यह निष्कष लना भी ठीक नहीं है कि हम कभी भी निश्चित नहीं हो सकते।

सामा यत विटजनस्टीन के शिष्य अपने गुरु के उदाहरण का अनुकरण करते हैं। खास तौर पर उनके मौन के दिनो म। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि व कभी भी दूसरो द्वारा दिए गए दृष्टिकोण की परवाह नहीं करत थे। कुछ ऐसे कम्ब्रिज दाशनिक थ (जिनम सुविख्यात हैं जान विजडम)[1] जि होने जो बात विटजनस्टीन से एव मूर स ग्रहण की उस अपने अपने ढग से ही प्रस्तुत किया—और इस तरह कम्ब्रिज एव बाह्य जगत के बीच विचारो के सम्प्रपण को खुला रखा।

बहुत से अ य समसामयिक दाशनिको क विपरीत विजडम कला धम एव यक्तिगत सम्ब धो म विशेष रूप स रूचिशील थे जिन पर उ होने उल्लखनीय बातें कही हैं। यही कारण है कि वे कुछ अशो म तत्ववाद की ओर सहानुभूति रखते हैं। कोई भी जो साहित्य को या मनोविश्लषण को गभीरतापूवक लेता है वह इस सिद्धा त के आगे घुटने नहीं टेकेगा कि जो कुछ भी कथनीय है उसे स्पष्ट एक कसी हुई भाषा मे कहा जा सकता है। वह इस बात स भी सतुष्ट नहीं हो सकता कि केवल सत्य कथन ही ज्ञानदायक हो सकते हैं। विजडम का कहना है कि तत्ववाद आज भी मूल्यवान हो सकता है और उसमे वस्तु स्थितिवाद से पूव की इस धारणा को बदलन की आवश्यकता भी नहीं है कि यह एक पारानुभवी (सुप्रा एम्पिरिकल) इयत्ताओ का सकेत नहीं है।

तत्ववादी मुवादो की मूल प्रकृति को उजागर करने के लिए विजडम तीन विभिन्न प्रकार के विवादो की चर्चा करत हैं—(1) अनुभववादी विवाद (उदाहरणाथ

1 देखें अध्याय 15 (प्रो०लेम्स ग्राव माइण्ड एण्ड मैटर के बाद उ होने कोई ग्रथ नहीं लिखा कि तु उनके निबधो का सग्रह अदर माइण्डस (1952) म सकलित किया है।) तथा फिलोसोफी एण्ड साइकोएनालिसिस (1953)। उनकी रचनाए सामा य शली मे लिखी गइ हैं जो उनके बोलने क लहजे के बिल्कुल निकट है। लिखित अग्रेजी भाषा के लहजे स वह काफी भिन्न है। इस तरह एक विचित्र तरीके से वे दुरूह हो जाती हैं। देखें गेस्किग द्वारा विजडम दशन पर चर्चा (ए० जे० पी० 1954) जिससे मैंने काफी सदभ लिया है। विटजनस्टीन के बाद म विकसित हुई केम्ब्रिज विचारधारा के लिए नोमन मैलकम लेवी एम्ब्रोस एस्केम्बे पाल व गेस्किग की रचनाए दखें। लोजिक एण्ड लग्वज (सपा फ्लू 1951 एव 1953) के दो अड्क तथा ब्लक द्वारा सगृहीत फिलोसोफिकल अनालिसिस (1950) भी दखें।

हॉलियम गैस की जलनशीलता के विषय में रहा मुबाद) । ये विवाद पर्यवेक्षण एवं परीक्षण से सुलझ जाते हैं। (2) तार्किक विवाद जो भाषा प्रयोग संबंधी दृढ़ नियमों के संदर्भ से हल हो जाते हैं। इस तरह इस विवाद का हल निकालने के लिये। कि 2+2=4 यह एक नियम है या नहीं हम केवल यही बताना चाहिए कि कोई नियम अपने प्रयोग में न सत्य है न असत्य, जबकि तर्क गणितीय तर्कवाक्य दोनों ही हो सकता है। मानलो अब कोई एसी समस्या को प्रस्तुत करता है जब एक कुत्ता गाय पर हमला कर रहा होता है तो गाय अपने सींग उसकी ओर किए रहती है और कुत्ते की ओर मुंह किये उसके साथ-साथ घूमती रहती है तो क्या कुत्ता गाय के चारों ओर घूमता है [1] ? एसे समयों में चारों ओर का सामान्य अर्थ नहीं लगाना होगा। विजडम के अनुसार यह एक (3) संघर्षमय विवाद है। इसे केवल नई परम्पराएं डालकर ही हल किया जा सकता है, यह निर्णय करके कि इसके लिए कौन सा शब्द प्रयोग में लाना है और कौनसा नहीं-अर्थात् 'चारों ओर' को यहां किस रूप में प्रयुक्त करना है और किसमें नहीं।

दार्शनिकों के लिए विचित्र बात यह है कि वे एसी मान्यताएं रखते हैं जिन्हें शुद्ध तर्क की कसौटी पर कसें तो वे स्पष्ट ही असत्य नजर आएगी। वे कहते चले जाते हैं कि गणित के नियम वस्तुतः व्याकरण के नियम ही हैं-जबकि हम उन्हें यह बता देते हैं कि कोई नियम अपने आपमें सत्य या असत्य नहीं होता। वे तब भी कहते हैं (मूर की भांति) कि चाहे हम यह बताएं कि यहां एक भौतिक पदार्थ है, तो भौतिक पदार्थ अस्तित्वशील नहीं होता। अब आप ही बताएं कि विवादों के सुलझान के लिए निश्चित नियमों को स्वीकारने से साफ मना करने की उनकी जिद का हमारे पास क्या इलाज है? तथ्य तो यह है कि *दार्शनिक साधारण* भाषाई प्रयोग से असंतुष्ट रहते हैं-और इसलिए भाषाई माध्यम से की गई किसी भी धारणा को वे स्वीकार नहीं करेंगे। वे भाषाई नवान्वेषण की वकालत करेंगे। जहां हम एक तार्किक विवाद देखते हैं वे वहां एक संघर्ष देखते हैं।

दार्शनिक का हठ उसी सीमा तक तो मूल्यवान है जहां तक वह हमारा ध्यान उन समान स्थितियों की ओर खींचता है जिन्हें अन्यथा हम अनदेखा कर देते। मान लो एक मनोवैज्ञानिक कहता है हरेक व्यक्ति रुग्णमना (न्यूरोटिक) है तो सबसे पहले हम यह सोचते हैं कि यह तर्कवाक्य अनुभवजन्य खोज को व्यक्त करता है। और इसका प्रभाव हम यहां तक भी देख सकते हैं। सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हम

---

1 जेम्स द्वारा प्रेग्मेटिज्म में काम में लिए गए 'गिलहरी के उदाहरण' का विजडम द्वारा किया गया संस्करण इसी बात को सिद्ध करने के लिए ही है।

उन सभी मामलो मे एक रुग्ण मन स्थिति का बोध होगा जहा पहले हमने ऐसा नही पाया था। यह ठीक उसी प्रकार है जसे एक शरीर-चिकित्सक इस बात का पता लगा सकता है कि प्रत्येक जीवित प्राणी मे केसर के कीटाणु विद्यमान होते है। किन्तु विजडम के अनुसार हम मनोवज्ञानिक की पूरी बात को खो देगें यदि हम उसका जवाब दे कि यह सत्य नही है सतक जाच से यह पता लगा है कि जनसख्या का केवल 14 प्रतिशत भाग ही रुग्ण मन स्थिति का शिकार है।' अर्थात् इसे यदि हम उपयुक्त कथन की तुलना मे रख तो अनुभव से यही बात सामने आती है। क्योकि यदि यह सुझाया भी जाय कि इस खोज से कि रुग्णमना एव स्वस्थ मना लोगो की स्थितियो का भेद जसा हम मानते हैं उसकी अपेक्षा मुश्किल से अकित किया जा सकता है तो भी प्रत्येक यक्ति रुग्णमना है' यह कथन विजडम की दष्टि मे केवल प्राग्भावी है, आनुभविक नही। मनोवज्ञानिक यह सिफारिश कर रहा है कि हमे रुग्णमना शब्द के प्रयोग करने के तरीके को बदलना है। मौलिक रूप से उसके द्वारा की गई इस सिफारिश से होने वाले परिणामो के कारण कदाचित् हम उसकी बात को प्रमाण्य कर दें। इसी भाति यदि एक दाशनिक हमसे कहता है कि सभी गणितीय कथन व्याकरण के नियम है तो इसका एक मात्र जवाब यदि यह हो कि नही, निश्चय ही य नियम नही हैं।' तो यह उत्तर सत्य तो होगा पर एक सगत उत्तर नही। उचित जवाब इसका होगा कि हा मैं देखता तो हू कि व उसी प्रकार के नियम अवश्य है पर । तब हम यही कहग कि दाशनिक द्वारा प्रस्तुत विरोधाभासपद स्थिति के गौरव को भी हमने बनाए रखा है।

तब फिर विशेषत दाशनिक के क्षेत्र की सिफारिशें क्या हैं? वह किन सामान्यताओ पर विशेषत हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं? इसका परम्परागत उत्तर विजडम के अनुसार यही होगा कि दाशनिक सत्ता के क्षेत्रो को परस्पर सयोजित करता है, भौतिक पदाथ तथा ऐन्द्रिय सवेदन, तथ्य तथा मूल्य। कि तु यह उत्तर हमे यह गलत विश्वास करने की ओर प्रेरित कर सकता है कि ऐन्द्रिय सवेदन मूल्यो आदि जसी विचित्र कोई व्यत्ताए हैं और इनका किसी भाति दाशनिक तथ्यों स सबध बताता है, उसी भाति जस एक डाक्टर वाइरस को बीमारी से जोडता है। इससे तो यह स्थिति ही कम भ्रामक होगी कि हम दाशनिक का एक ऐसा व्यक्ति मानलें जो विभिन्न श्रणी के वाक्यो के तर्काकार का वणन करता हो जो हमे बताए कि वे कसे निरूपित होते है तर्कों द्वारा समर्थित होते हैं और चर्चित होते हैं। एक दाशनिक उपयोगितापूवक इसकी चर्चा कर सकता है कि यह लाल है नपोलियन एक आदमी था मिस्टर पिकविक एक अच्छा आदमी था आदि वाक्यो के क्या तर्काकार है। किन्तु वह उस समय तत्ववाद के बीहड मे या फिर तार्किक विश्लेपण के जगल म भटक जायगा यदि वह आभासी एव वास्तविक सत्ता म तथा मूल्यो एव तथ्यो के भेद के निरूपण मे उलझ गया।

जिन समानताओं में एक दार्शनिक रुचि रखता है व वाक्यों के आकारों में
रही समानताएं एवं असमानताएं हैं। उसकी विरोधास्पद स्थितियां उपयोगी हैं जहां
व इन समानताओं पर प्रकाश डालती है। उदाहरण के लिए, जब वस्तुस्थितिवादी
यह कहता है कि तत्ववादी तर्कवाक्य निरर्थक है तो उसका यह विरोधास्पद सामान्यत
उस अन्तर की ओर हमारा ध्यान खींचता है जो वैज्ञानिक तथा दार्शनिक कथनों के
तर्क के बीच विद्यमान है। जब वह कहता है कि हम कभी भी दूसरे लोगों के मन की
बात नहीं जान सकते तो वह यह देखने में हमारी मदद करता है कि दूसरे लोगों के
मन के विषय से सम्बन्धित कथनों का निवर्णन उस तरह नहीं करते जिस तरह हम
मेजों या कुर्सियों के विषय में करते हैं। यह एक ऐसी बात है जिसकी विजडम न
अदर माइण्डस नामक अपने निबन्ध में विस्तृत चर्चा की है। तो भी विजडम यह ता
स्वीकारते हैं कि इन्हीं शब्दों से तत्ववादी विवादों की गहराई एवं उसकी विचित्र
उत्तेजनाओं की चर्चा करना काफी कठिन है। केवल मौखिक सिफारिश से ही इतनी
गर्मी क्यों उत्पन्न हो? इस समस्या के सम्मुख आते ही विजडम अपनी रुचि के
विषय मनोविश्लेषण[1] का सहारा लेते हैं। उन दार्शनिकों को धैर्यपूर्वक सुनते हुए जो
हठपूर्वक यह कहते हैं कि दूसरे लोग क्या अनुभव एवं विचार करते हैं इसके विषय
में हम कभी नहीं जान सकते तो हम एकदम रुग्णमना वाले दीर्घकालिक सदेह का
स्मरण हो आता है। तत्ववाद की भूलभुलैया में भी वही फुसफुसाहट है जैसी काफ़्का
के ट्रिब्यूनल की उन सीढ़ियों में चढ़ते समय सुनाई देती है जो सदा ही एक ऊंची
मंजिल पर स्थित रहती हैं।' दार्शनिक अपने विषय में यह सोच सकता है कि वह
लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है। उदाहरण के लिए दूसरे लोगों के मन का प्रत्यक्ष
बोध करने वाले लक्ष्य की ओर, जबकि रुग्ण मन स्थिति के मामले की भांति, कोई
भी कल्पनीय अनुभव उसे इस बात के लिए आश्वस्त नहीं कर रहे हैं कि उसने लक्ष्य
प्राप्त कर ही लिया है। किन्तु यदि हम लक्ष्य के विषय में भूल जाएं एवं दार्शनिक

1 किसी को भी यह अजीब लग सकता है कि एक दार्शनिक को कोई विजडम
(बुद्धिमानी) कहे, या यह बात कि एक ही नाम के दो व्यक्ति समसामयिक दार्शनिक
हो सकते हैं, युक्तियुक्तता की सीमा से परे की बात लगने लग जाती है। यह दोनों ही
मनोविश्लेषण में रुचिशील थे, इस बात ने बहुतों के मन में यह विचार खड़ा कर
दिया है कि दोनों एक ही है। किन्तु तो भी इस बात पर कम बल दिया नहीं जाना
चाहिए कि लन्दन के स्कूल ऑव इकॉनामिक्स के जे० ओ० विजडम जिन्होंने अन-
कॉन्शस ओरीजिन ऑव बर्कलेज फिलोसोफी (1953) में यह बताने का प्रयास किया
है कि कैसे मनोविश्लेषणात्मक शब्दावली से बर्कले के दर्शन की विचित्रताओं का
वर्णन किया जा सकता है। यह बात केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जान विजडम
से बिलकुल ही मेल नहीं खाती।

कम को उसके द्वारा प्राप्त कर लिए बिन्दु का पुन विवरण मानलें तो हमे यह पता लग जायगा कि उसका वास्तविक मूल्य किस बात म निहित है।

विजडम की दाशनिक स्थिति के विषय मे मेरे द्वारा दिया गया विवरण एक महत्वपूर्ण दृष्टि स भ्रामक है। मैंने उनके विषय मे यही बताया है कि वे बहुत सुलझे हुए हैं जबकि वे उतने सुस्पष्ट एव सुलझे हुए नहीं है। उनकी खास प्रणाली यही है कि वे पहले भेद कर लेते हैं जसे तार्किक तथा मघषशील विचारों के बीच का भेद यह मानकर कि यही खास भेद है जो करणीय है। और तब इस भेद की तीक्ष्ण धार को भौंटा कर देते हैं या फिर यह कहते हैं कि दाशनिक विरोधाभासदियाँ' केवल क्रियापरात्मक सिफारिशें हैं– और तब उसके विपरीत कुछ स्वीकार कर जाते हैं। मैंने कहा है कि दाशनिकों के प्रश्न एव सिद्धान्त वस्तुत क्रियावाची होते हैं' (यह बात उन्होंने फिलोसोफीकल परप्लेक्सिटी (पी० ए० एस० 1936) नामक एक लेख मे कही) किन्तु यदि आप चाहे तो हम ऐसा नहीं कहेंगे या फिर उसके विपरीत ही कोई बात कह दग।' विजडम की चकाचौंध करने की वृत्ति केवल अनुत्तरदायी एव शिथिल नही है। यह तो उनकी इस पक्की आस्था से प्रवाहित होती है कि दाशनिक सिद्धान्त एक साथ ही ज्ञान प्रकाश देने वाले तथा भ्रामक होते हैं। और इन दोनों ही बातो को उजागर किया जाना चाहिए। इस बेहूदी स्थिति को पार कर पाने की कोई आशा नहीं है और इस तरह ऐसे दाशनिक निष्कर्षों तक पहुच सकने की भी जो भ्रामक न हो। अधिक से अधिक एक दाशनिक यही कर सकता है कि वह हम दुष्प्रवृत्त करे और तब उसके बाद स्पष्टत उन बिन्दुओ की ओर हमारा ध्यान खीचे जो स्वय भ्रामक नही हैं किन्तु उसने जो कुछ कहा है वह भ्रामक है।

लेजरोविच के द्वारा सकलित निबन्धो के सग्रह द स्ट्रक्चर आव मेटाफिजिक्स (1958) की भूमिका म विजडम ने लिखा कि जब लोग विटजनस्टीन को सुनते थे तो प्राय उनके लिये एक ऐसे स्थिर प्रकाश को पा लेना कठिन हो जाता था जिसके जरिए वे जो कुछ देखना चाहते हैं उसका व्यवस्थित रूप देख पाते और आज भी जब वे उन्हे पढते हैं तो उनके सामने यही कठिनाई रहती है। विजडम की अपनी रचनाओ के विषय म यही बात बहुत से लाग कहेंगे। किन्तु विटजनस्टीन के बाद के दशन की सामान्य प्रवृत्ति निश्चितता की ओर लौटने की है चाहे उसकी आत्मा विटजनस्टीन जसे समथ विचारक के हाथ मे पडकर परिष्कृत हो गई हो। हम यह वृत्ति लेजेरोविच की पुस्तक म स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। व विजडम के मुख्य कथ्य से प्रारम्भ करते हैं कि दाशनिक विरोधाभासदियाँ केवल क्रियावाची सिफारिशें हैं जिनकी पृष्ठभूमि मे अचेतन प्रयोजन है मानो यह एक ऐसा वैज्ञानिक सिद्धान्त है जिसे विभिन्न दाशनिक विवादो के निकष मे रखकर निकपित किया जा सकता है। विजडम स्पष्ट ही इस प्रकार के परिणामो के कारण पशोपेश म है। वे आगे जोडना चाहते हैं—हा, किन्तु इसके दूसरी ओर– यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ।'

इसी प्रकार के कारणों से (क्योंकि वे उन्हें या तो अपर्याप्तरूपेण सूक्ष्म पाते हैं या प्रति स्पष्ट) विटजनस्टीन के स्व विद्यार्थी उनके साधारण भाषा दर्शन के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि नहीं रखते [1] जिसने बाद में ऑक्सफोर्ड के दार्शनिक क्षेत्र को व्यापक रूप से घेर लिया था।

सभी में विटजनस्टीन के प्रभाव के लक्षण मिलते हैं। ऑक्सफर्ड में विटजनस्टीन के विचारों को एक दूसरे ही स्तर में प्रवेश मिला जो कैम्ब्रिज में व्याप्त दार्शनिक वातावरण से काफी भिन्न पड़ा। ऑक्सफर्ड के दार्शनिकों ने दर्शन का अध्ययन पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्रीय पद्धति से ही किया था खास तौर पर ऑक्सफोर्ड में अरस्तू का जितना प्रभाव है उतना कैम्ब्रिज में नहीं है। जबकि कोई शास्त्रीय विचारक जो दोनों स्थलों में समान रूप से प्रभावशील रहा है वह प्लेटो है अरस्तू नहीं। और यही बात विटजनस्टीन एव मूर के लिए भी लागू हो सकती है।

---

1 देखें, एम० वीज ऑक्सफोर्ड फिलोसोफी (पी० आर० 1953)। साधारण भाषा के प्रभाव एव भौतिक प्रकृति के विषय में हुई चर्चा के लिए देखें के० वयर कृत द आर्डिनरी यूज ऑव द वर्ड्स' (पी० ए० एस० 1951), जी० राइल कृत ऑर्डिनरी लग्वेज' (पी० आर० 1943), ए० जी० एन० फ्लू फिलोसोफी एण्ड लग्वेज' (पी० क्यू० 1955)। आलोचनाओं में शामिल हैं आर० एल० हीथ का 'अपील टू आर्डिनरी लग्वेज' (पी० क्यू० 1952), जे० ए० पासमूर रिफलेक्शन्स ऑव लोजिक एण्ड लग्वेज (ए० जे० पी० 1952) एव प्रोफेसर राइल्स यूज एण्ड यूसेज' (पी० आर० 1954), चिशलोम फिलोसोफर्स एण्ड ऑर्डिनरी लग्वेज' (पी० आर० 1951)। इसके साथ मैलकम का उत्तर फिलोसोफी और फिलोसोफर्स भी देखें। लोकसम्मत वस्तुस्थितिवाद एव ऑक्सफोर्ड के साधारण भाषाई दर्शन के बीच रहे बड़े अन्तर के लिए देखें, जी० जे० वारनाक का वेरीफिकेशन एण्ड द यूज ऑव लग्वेज (आर० आई० पी० 1951) एव कारनप के मीनिंग एण्ड नेससिटी (फिलोसोफी 1949) की राइल द्वारा की गई समीक्षा, देखें स्टासन के निबन्ध भी। एव द रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी (1956) में वारनाक के लेख। अभिनव ऑक्सफोर्ड दर्शन दो अर्थों में साधारण भाषाई दर्शन है– क्योंकि (1) प्रतीकवादी तर्कवादियों की आकारी रचनाओं से भिन्न ऑक्सफोर्डवादी तार्किक मसलों पर अनाकारी तौर पर चर्चा करते हैं और वे इसके लिए नई गढ़ी भाषा का सहारा भी नहीं लेते। (2) कि दार्शनिक समस्याओं पर चर्चा करने के लिए हम साधारण तौर पर जो कुछ बातचीत करते हैं इसे प्राथमिक आधार बताया जाता है, किन्तु सहमति के इन बिन्दुओं के बीच असहमति के भी बहुत से बिन्दु सम्मिलित हैं विशेषकर आकारी तर्कशास्त्र के खास महत्व के लिये। और जिस सीमा में जाकर भाषाई प्रयोगों की विस्तृत चर्चा हुई है, वह अपने आपमें दार्शनिक रुचि उत्पन्न करती है।

जब अरस्तू इस प्रश्न की चर्चा करते हैं कि क्या सद्गुण सवेग हैं तो यहा व साधारण भाषा के प्रभाव के सहारे ही इसकी चर्चा करना चाहते हैं। सद्गुण सवेग न ी हैं क्योंकि हम इस आधार पर अच्छे या बुरे नही कहलाते कि कोई खास सवेग प्रदर्शित करते हैं कि तु हम सद्गुणी उसी समय कहे जाएगे जब हम कोई अच्छा या बुरा कम करते हैं। आगे वे कहते हैं सवेग के विषय म यह कहा जाता कि वह हम प्रवृत्त (मूव) कर देता है– जबकि एक सद्गुण या दुगु ण हम अनुशासित गवन) करते हैं।' तब हम जो कहे वही निर्णायक स्थिति है। इस प्रकार की युक्तिया नाइकोमेशियन एथिक्स नामक सग्रह मे हर स्थान पर मिलेंगी। और विख्यात अरस्तू वादी ऑक्सफोड के विचारको द्वारा खूब प्रयुक्त की गई मिलेंगी। जसा हम देख चुके हैं, कुक विल्सन ने सदव ही एक सामा य मुहावरा निधारित करने के महत्व पर काफी बल दिया है। डब्लू० डी० रास की नतिक रचनाओ म, जो मूर की प्रिंसिपिया एथिका से काफी भि न हैं साधारण आदमी के कथन पर एव उसकी महत्ता पर काफी जोर दिया गया है।

इन विशिष्ट प्रभावो म यह स मान्य विचार और जोड द कि शास्त्रीय रूप स प्रशिक्षित व्यक्ति सदव ही सहीपन' पर अधिक बल देग जिसका मूल भाषा म भी एक निश्चित अथ होना है और यह तब आश्चय की बात नही लगेगी कि साधारण भाषा सम्ब धी दशना न ऑक्सफोड जसे स्थल म इतनी त्वरित गति पाई। आक्सफोड म ही विटजनस्टीन के विचारो को अरस्तू के भासाई भण्डार म भरती किया जा सका। इस भण्डार मे से ऐसे फल निकले हैं जो अ य बातो के अतिरिक्त अपने केम्ब्रिज प्रतिरूपो की अपेक्षा अधिक सूखे एव ठण्ड है।

ऑक्सफोड दशन मे भी विशेषकर जे० एल० आस्टिन की रचनाओ म भाषा म रुचि देखी जा सकती है। यह रुचि भाषा के अपने ही स्वरूप के लिए है। जो बात विटजनस्टीन मे न ी मिलती। बहुत से ऑक्सफोड के विचारको की दृष्टि मे भी मन ज्ञान प्रत्यक्षीकरण जसे शब्दो के प्रयोग का अपना अलग महत्व है और यह महत्व उसके चिकित्सात्मक (विश्लेषणात्मक) और तत्ववादविरोधी शक्ति प्रकटाने की दृष्टि से बिलकुल अलग है। इनके लिए, दशन का एक निजी एव व्यवस्थित कम है। केम्ब्रिज के विटजनस्टीनवादियो के बहुत स पुराने सरक्षको की दृष्टि म आक्स फोड दशन मार्गीयता म आकर शापित हो गया हैं। ऑक्सफोड के विख्यात साधारण भाषाई दाशनिक गिलबट राइल है। राइल की शिक्षा कुक विलसन परम्परा मे हुई। अरस्तू सदव ही उनके लिए अलगाव के स्वाभाविक बि दु रहे हैं। कि तु व महाद्वीपीय दशन म भी रुचिशील थ। पहले हुसल व मीनोग मे बाद म तकसम्मत वस्तुस्थिति वादियो मे। व एक प्रशिक्षित शास्त्रीय दाशनिक थे जसे विटजनस्टीन नही थे परम्परा कायम करने वाले एक दाशनिक चाहे वे कितन ही रूढिहीन क्यों न रहे

हो। यही कारण है कि उनके विचारों की व्यापक रूप से चर्चा हुई है। यहाँ तक कि उन लोगों के द्वारा भी जो विटजनस्टीन में कोई सूत्र नहीं खोज सके।

सिस्टेमेटिकली मिसलीडिंग एक्सप्रेशन्स' (पी० ए० एस० 1931 एवं एल० एल० 1) में राइल अपने परिवर्तन की घोषणा करते हैं यद्यपि यह परिवर्तन झिझक व्यक्त करता है। वे अब यह मानते हैं कि दर्शन का कर्म भाषाई मुहावरों के प्रचलित दुरुपयोग तथा बेहूदे सिद्धान्तों की खोज करना है। ब्रैडले, फ्रेंग तथा रसेल की भांति अभिव्यक्ति के व्याकरणात्मक आकार तथा उसके द्वारा वर्णित तथ्यों के आकार का अन्तर करके राइल यह तक देते हैं कि दैनिक जीवन की बहुत सी अभिव्यक्तियाँ अपने व्याकरणसम्मत आकार के कारण व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक हैं। केवल इसीलिए कि एक वाक्य उदाहरणार्थ मिस्टर पिकविक एक गल्प हैं, व्याकरण की दृष्टि से मिस्टर मेंजोस एक राजनीतिज्ञ हैं का समरूपी (अनेलोगस) है। हम इसे यह जानकर भी पढ़ सकते हैं कि मानो यह एक व्यक्ति का वर्णन हो अर्थात् एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन जिसमें गल्पात्मकता के गुण मौजूद हैं। वास्तव में यह कथन एक गल्पात्मक व्यक्ति के विषय में नहीं है। यह मिस्टर पिकविक जैसे विचित्र गुणों से युक्त, वास्तविक व्यक्ति के विषय में न होकर डिकिन्स के विषय में हैं— या एक वास्तविक पुस्तक पिकविक पेपर्स के विषय में है। यदि कोई बात तत्काल स्वीकार न हो तो फिर यह सब कैसे बताया जाय ? यदि मिस्टर पिकविक एक गल्प हैं' एक पिकविक नाम के व्यक्ति के विषय में होता तो इससे यह तर्ककथन निर्मित होता कि 'मिस्टर पिकविक अमुक अमुक साल में जन्मे हैं।' अर्थात् यह ऐसा परिणाम है जो मौलिक कथन का ही विरोधाभास है। विरोधास्पद स्थितियाँ एवं विपरीतताएं इसके प्रमाण हैं कि एक अभिव्यक्ति व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक है।

राइल जान बूझकर ऐसी अभिव्यक्तियों के विषय में कहते हैं कि 'गल्प हैं' जैसे आकार दैनिक जीवन में हम भ्रमित नहीं करते— किन्तु तत्ववादी जो तथ्यों के आकार में या सत्ता की पदावस्था में विशेष रुचि रखते हैं अपने विचित्र सिद्धान्तों से मोहित हो गये हैं, क्योंकि वे कथनों के व्याकरणसम्मत आकार को उनके ऊपरी रूप में देखने लगे हैं। उन्हें यह मानने को विवश होना पड़ा है कि समष्टियों का अस्तित्व है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि राइल, हुसर्ल एवं मीनोंग का अध्ययन करते रहे हैं। इन लोगों ने गलती से यह मान लिया था कि 'समय की पाबन्दी एक सद्गुण है' यह तर्कवाक्य व्याकरण की दृष्टि से 'ह्यूम एक दार्शनिक हैं' के समानान्तर है। अर्थात् ह्यूम की ही भांति समय की पाबन्दी भी एक नाम है या फिर केवल मात्र इसलिए भी कि हम सही तौर पर यह सकते हैं कि 'छुट्टी लेने का विचार अभी अभी मेरे मन में आया है' इस वाक्य को पढ़कर दार्शनिकों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि विचार नाम की कोई इयत्ता भी विद्यमान है जिसे छुट्टा लेने का विचार मूर्त रूप देता है।

दैनिक जीवन के समापरणों से इस प्रकार के भ्रामक सुझावों का निवारण करने के लिए दार्शनिक को वाक्यों को दुबारा प्रस्तुत करने की शिक्षा मिलनी चाहिए। और उसे यह सब रसेल के विवरण सिद्धान्त की ही भांति प्रस्तुत करने की विधि आनी चाहिए। राइल एवं रेमसे के लिए यह तो दर्शन का एक नमूना है ताकि तथ्यों के आकार को स्पष्टतः प्रदर्शित किया जा सके, जिनकी जांच पड़ताल का माध्यम दर्शन है। दार्शनिक विश्लेषण उनकी दृष्टि में ऐसी ही पुन रचनाओं में निहित है। स्पष्ट ही राइल अब दोनों ही प्रकार की स्थितियों को स्वीकारते हैं कि दर्शन चिकित्सात्मक भी है तथा इसका एक निश्चित कार्य भी है—अर्थात् तथ्यों के वास्तविक आकारों को प्रकट करना। व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक अभिव्यक्तियां वास्तव में विटजनस्टीनयुग के आरम्भिक काल की ही मानी जानी चाहिए। यह युग बाद में जाकर विजडम के तार्किक सरचना के युग के रूप में बदल गया। ऐसे समय में जब कुक विलसन के अनुयायी आक्सफोर्ड में छाए थे, एक आक्सफोर्ड के विद्वान् का कैम्ब्रिज-पद्धति पर चलना महत्वपूर्ण बात थी। (यद्यपि इससे पूर्व प्राइस ने रसेल के एन्द्रिय संवेदन के सिद्धान्त के प्रति सहानुभूतिशील होकर ऑक्सफोर्ड में एक निराशा उत्पन्न करनी थी।)

राइल ने बाद के वर्षों में बहुत से दार्शनिक निबंध लिखे थे। 'द कन्सेप्ट आव माइण्ड को समझने के लिए दो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं केटेगेरीज (पी० ए० एस० 1937) एवं उनका उद्घाटन भाषण (फिलोसोफिकल आरग्यूमेण्ट्स 1945)। केटेगोरीज में राइल ने पदावस्था (केटेगारी) को इस तरह से परिभाषित किया है कि अपने में उन सभी बातों को भी समाहित किया जा सके जो अरस्तू एवं काण्ट के दर्शन में मूल्यवान थी। जबकि उन्होंने पदावस्था[1] में दो कथनों को भिन्न सिद्ध करने का एक निश्चित मार्ग भी सुझाया था जो उन दोनों ने नहीं किया था। थोड़ी देर के लिए इस अपूर्ण अभिव्यक्ति पर विचार करें (जो वाक्य के आकार की है) कि

बिस्तर पर है ऐसी स्थिति में बिना बेहूदगी के हम खाली स्थान की पूर्ति 'जोन्स या सुकरात' जैसे नाम रखकर कर सकते हैं। किन्तु यहां शनिवार नहीं रखा जा सकता। यह बात यह सिद्ध करने के लिए काफी है कि 'जोन्स' शनिवार' से भिन्न पदावस्था को व्यक्त करता है। अभी यह तो सिद्ध हुआ ही नहीं कि जोन्स एवं सुकरात एक ही पदावस्था के हैं या नहीं क्यों कि कुछ ऐसे वाक्याकार हो सकते

1 आलोचना के लिए देखें जे० जे० सी० स्मार्ट ए नोट आन केटेगोरीज (बी० जे० पी० एस० 1953)। इसमें उनका तर्क है कि राइल के कथनानुसार तो दो अभिव्यक्तियां कभी भी एक पदावस्था के आकार की नहीं होंगी। ए० जे० बेकर केटेगोरी मिस्टेकस (ए० जे० पी० 1956)। तुलनीय रसेल का प्रकारों का सिद्धान्त।

हैं जहा जो स तो रखा जा सकता है कि तु सुकरात को रखना निरर्थक हो जायगा। इस तरह ' ने अरस्तू का अध्ययन किया है,' जसे वाक्याकार के रिक्त स्थान पर यद्यपि या तो 'वह' (उसने) या फिर इस किताब के लेखक' जस शब्द भरे जा सकते हैं। तो भी ये दोनो शब्द भि न पदावस्थाओ के हैं। क्योंकि ' ने पुस्तक नहीं लिखी है' जसे वाक्य म 'इस किताब के लेखक' के बजाय 'वह' (उसने) ही भरा जाना उपयुक्त होगा।

ऐसे मामले मे किसी वाक्याकार को अनुचित रूप स पूर दिया जाना ही निरर्थकता का कारण हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत यह बात कहा स्पष्ट है कि यदि हम ' असत्य है' के खाली स्थान को, जो बात मैं कह रहा हू से भर दगे तो हम विपरीतताओ तथा विरोधाभासो म पड जायेंगे। इस प्रकार की अस्पष्ट बहुदगिया दार्शनिक दृष्टि स रोचक हैं।[1] वास्तव मे दार्शनिक लोग व्यवस्थित रूप से पदाव स्थाओ के भेद करने की ओर प्रवृत्त हो गए हैं केवल इसीलिए कि उनसे अप्रत्याशित विपरीतताओ पर प्रकाश पडता है। तब वे यह पता लगाने निकल पडते है कि ऐसे मामलों मे छिपी हुई विपरीतताए कहा हैं, जिनमे पदावस्था का भेद भी छिपा पड़ा है।

'कटेगोरी' नामक राइल क निबंध के दो पहलू महत्वपूर्ण हैं। इनमे उनक दृष्टिकोण को समझने मे सहायता मिलती है। प्रथम तो यही कि यद्यपि वे सदव ही अभिव्यक्तियों ही की बात करत हैं वे यह नही कहते कि कोई धारणा या विश्वास पूर्णत बेहूदा हो सकता है। उनका कथन है कि व कोई भाषा वज्ञानिक जाच नही कर रहे हैं। वे तो वस्तुओ की प्रकृति के विषय म ही कुछ कहना चाहते हैं। या वे केवल धारणाओ क विषय मे ही कम से कम कह रहे हैं। इस बात पर बल देना उ होंने जारी रखा है। बहुत से आलोचक जा अ यथा उनकी कृतियो से सहानुभूति रखते हैं, यह शिकायत करते हैं कि उनक निश्चय आकारी अवस्था [2] म यक्त होन के बजाय भौतिक अवस्था मे भ्रामकता पूवक यक्त हो गए हैं। दूसरे पदावस्थाओ का भद राइल के वर्णनानुसार दार्शनिक युक्ति की अपेक्षा रखता है अर्थात एक तार्किक अनुगणन की (रडियासिनेशन की)। यह बात उन लोगो के द्वारा, जो दशन को विश्लेषण मानते हैं, भुला दी गई है, या अनदखी कर दी गई है।

इस आशय के कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए ही उनक भाषण का अधिकाश

---

1 देखें राइल 'हीटेरालोजिकलिटी' (एनालिसिस 1950), जे० एल० मकी तथा स्माट ए वेरिएण्ट आव द हीटरोलाजिकल पराडोक्स (वही 1952)।

2 द्रष्ट०य एन० आर० हेसन 'प्रोफेसर राइलस माइण्ड' (फी० क्यू० 1952)।

लगा था। दाशनिक तक न तो आगमन है न प्रदशन। दाशनिक की अपनी एक अलग ही विधि है। जिसका सवाधिक प्रतिनिधित्व **रिडक्शियो एड एबमडम** (असगतता-निवारण) की विधि क जरिए होता है। अर्थात्, एक तकवाक्य म स अथवा तकवाक्यो के समूह स ऐस निष्कप निगमित करना जो परस्पर असगत हो या फिर मूल तकवाक्य स असगत हो।' दाशनिक ऐम तकवाक्यों की बेहूदगी बताता है। राइल का यह आशय नही है कि दाशनिक तर्कोक्तियां केवल मात्र विध्वसात्मक ही हैं। रिडक्शियो एड ऐबसडम (असगतता निवारण) का सिद्धान्त एक छिद्रा वेषी पटी का ही काय करता है। या फिर रूपक को बदलें तो यों कहेंगे कि उन मीमाओं का निर्धारण कर दने पर जहा बेहूदगी प्रकट हो जाती है, यह तकवाक्य के प्रयोग सबधी वास्तविक क्षेत्र का अकन करने म सहायक होता है।

प्रत्येक तकवाक्य म कुछ तार्किक शक्ति भी रहती है। अधिकाश म हम जिस तकवाक्य का प्रयोग करते हैं उसकी सीमित तार्किक शक्ति से ही परिचित होते हैं। उनके अथ को हम केवल एक आशिक रूप मे ग्रहण कर पाते हैं। तो भी हम ऐसे तकवाक्यो का प्रयाग कर सकते हैं जसे $3 \times 3 = 9$' या **लन्दन ब्राइटन के उत्तर मे है।'** और इस वक्त हम उन गणितीय या भौगोलिक भूलो मे नही पडते जो इस बात का प्रयास होगा कि हम जो कुछ कर रह हो उस भी भली भाति समझे हुए नही हो। यदि हम उन नियमो का ब्योरा नही दे सकते जिनसे य तकवाक्य सचालित हैं, तो भी कम से कम हम यह तो जानत हैं कि सामा य परिस्थितियो म इनका उपयोग कसे किया जाए। यदि ऐसा नही होता, तो राइल के मत मे दाशनिक को कोई बात आरम्भ करने का अवसर या मौका ही नही मिलता।

जब तकवाक्यों म कुछ समानताए आ जाती है तो राइल के अनुसार कभी कभी यह सुविधा हो जाती है कि इस सामा य अ श को धारणा मानली जाए। उदाहरणाथ वाक्यो के एक समूह म से जान समझदारी का व्यवहार करता है' ब्राउन समझदारी से विचार करता है आदि, हम समझदारी की धारणा का चुनाव कर सकते हैं। मूर ने अपनी आरंभिक रचनाओं मे लिखा है मानों तकवाक्यो की रचना करते समय एक धारणा उसका निर्णायक तत्व है (बिल्डिंग ब्लाक) है।' राइल मूर के विरोध मे यह कहते हैं कि धारणा तकवाक्य के परिवार के लिए एक हस्तामलक रूप गुटका (हैंडी एब्रीवियेशन) है।' इस तरह जब राइल धारणा की तार्किक शक्ति के विषय मे चर्चा करते हैं तो उनका मतलब है कि व उन तमाम तकवाक्यो की तार्किक शक्ति का सक्षिप्त रूपा तर प्रस्तुत कर रहे हैं—जो कुछ अ शो म समान गुणो से युक्त है।

द कन्सेप्ट ग्राव माइण्ड (1949) मानसिक धारणाओं[1] की तार्किक शक्तियों का विश्लेषण करती है। दैनिक जीवन में हम इन धारणाओं से भली भाँति काम चला सकते हैं। हम उदाहरण के लिए यह निर्णय लेना जानते हैं कि कौन समझदार है या मूर्ख'– वह केवल मजाक कर रहा है या कि किसी समस्या पर विचार कर रहा है'।

हम जब यह जानने की कोशिश करते हैं कि ऐसी अभिव्यक्तियों को कौनसी पदावस्था में रखा जा सकता है तो हम भ्रमित हो जाते हैं। अर्थात् उस समय यह स्थिति उपस्थित होती है जब तर्कवाक्यों में प्रविष्ट पदावस्थाओं की तार्किक शक्ति की खोज हम करनी पड़ती है। इस उलझन पर विजय प्राप्त करने के लिए राइल के मतानुसार, हम विविध मानसिक धारणाओं का नक्शा बनाना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, उनके प्रयोग की सीमाएँ निर्धारित करनी पड़ेंगी।

किन्तु सबसे पहले यह गल्पाख्यान (मिथ) भंजित करना होगा एक ग्राधिकारिक (ग्राफिशल) या कार्टेजियन गल्पाख्यान कि 'मनो यवहारी ग्रभिव्यक्तियाँ एक विचित्र प्रकार की इयत्ता का संकेत करती है जो मन या ग्रात्मा के नाम से जाना गया है। यह शरीर से इस ग्रर्थ में भिन्न है कि वह निजी है, ग्र–दिकीय है ग्रौर केवल ग्रन्त दर्शन द्वारा ही जाना जा सकता है। ग्रौर यह जानकर कि समझदारी जैसे शब्द ऐसी इयत्ताओं का नामकरण नहीं करते जो यान्त्रिक नियमों से सचालित हैं, दार्शनिक यह मानने को विवश हो गए हैं कि वे तब ऐसी इयत्ताग्रों का नामांकित करते हैं जो यान्त्रिक न हो, तथा ग्रात्मिक नियमों से सचालित हों। वास्तव में यह मानना पदावस्था–सबंधी भूल है कि वे किसी न किसी इयत्ता का नामांकन तो करती ही हैं। समझदारी शब्द का कार्य मानवी

1 हैम्पशायर की समीक्षा देखें (माइण्ड 1950)। हैम्पशायर ने जो ग्राधुनिक ग्रौक्सफोर्ड में विचारकों में सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न एवं ग्ररूढ़िवादी थे मानस के दर्शन की ग्रोर विशेष ध्यान दिया है। देखें, उनका ग्रान रेफरिंग एण्ड इण्टर्ण्डिग' (पी० ग्रार० 1956)। इसमें वे प्रकट (ग्रोवट) क्या है ग्रौर क्या नहीं इस भेद को व्यक्त करने के लिए एक मार्ग सुझाते हैं। देखें मेकानाल्ड प्रोफेसर राइल ग्रान द कान्सेप्ट ग्राव माइण्ड' (पी० ग्रार० 1951)। जे न विजडम द कॉन्सेप्ट ग्राव माइण्ड' (पी० ए० एस० 1928)। ए० सी० गारनट माइण्ड एज माइण्डिंग' (माइण्ड 1952)। एव ए० सी० यूइग प्रोफेसर राइल्स ग्रटक ग्रान ड्यूग्रलिज्म' (पी० ए० एस० 1952)। जे० हालोवे लग्वेज एण्ड इण्टेलीजेंस' 1951) जो इसी से सम्बन्धित विषयों पर इसी ढंग से चर्चा करती है। लो स्पिरिटो कोमे काम्पार्ट मिण्टो के नाम से एफ० रामी–ल दी द्वारा कृत इटालवी ग्रनुवाद में भी ग्रनुवादक द्वारा बहुत उपयोगी प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है।

यवहार का वर्णन करना है, किसी इयत्ता का नामांकन करना नहीं।' डेकार्ट एवं उन ज्ञान मीमांसकों के अनुसार जो उनका अनुसरण करते हैं मनुष्य ही विभिन्न इयत्ताओं से निर्मित है मनस एवं शरीर, आत्मा एवं यान्त्रिकी काया[1]।' बस तभी ज्ञानमीमांसकों के समक्ष समस्याओं की एक भीड़ लग जाती है कि कैसे एक अभौतिक आत्मा भौतिक शरीर के कार्यों पर प्रभाव डाल सकती है, कैसे आत्मा अपने चारों ओर व्यापे भूत जगत् में प्रविष्ट हो सकती है? ऐसे प्रश्नों का राइल की दृष्टि में कोई उत्तर ही नहीं है। तो भी इनका यह कहकर विनाश भी नहीं करना चाहिए (प्रत्ययवादी की भाँति) कि वास्तव में मनुष्य आत्म तत्व से ही निर्मित है या (भौतिकवादी के साथ) कि वास्तव में वह एक यन्त्र है। मनुष्य न तो केवल आत्मा ही है, न केवल यन्त्र। वह एक मनुष्य मात्र है जो कभी तो समझदारी से व्यवहार करता है कभी मूर्खता से। कभी तो वस्तुओं को देखता है और कभी उन्हें अनदेखा कर जाता है। कभी तो क्रियाशील रहता है और कभी चुपचाप। राइल के अनुसार मनुष्य को आत्मतत्व से वंचित मानकर यन्त्र नहीं मानना चाहिए क्योंकि आखिर तो वह उच्च श्रेणी का स्तनधारी प्राणी है। अभी तक जोखिम से भरी यह उछाल हम लेनी ही है कि हम 'मनुष्य मनुष्य ही है' के प्राक्कल्प को साहसपूर्वक व्यक्त कर सकें।

दार्शनिकों ने यह मान लिया है कि समझदारी से कार्य करना 'सिद्धान्तीकरण' का पर्याय है या 'सत्य की खोज करने' का पर्याय है। किन्तु चूँकि विचार प्रायः निजी सीमाओं में ही होता है अतः (एक बार बचपन में हम यह विचार रूपी चालाकी सीख लें तो) यह निष्कर्ष निकालना सरल हो जाता है कि समझदारी की प्रत्येक क्रिया का सबंध एक निजी एवं गुप्त जगत से है। किन्तु राइल का तर्क है कि 'सिद्धान्तीकरण' केवल बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार की एक प्रजाति है। इस प्रकार सर्वाधिक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य यह जानने में है कि कैसे किसी काम को उसके निष्कर्ष तक ले जाया जाय, या यह जानने में कि एक खेल कैसे खेला जाय या फ्रेंच भाषा कैसे बोली जाय, एक घर कैसे बनाया जाय और ये सब (कैसे) खेलों के, भाषा बोलने के तथा मकान बनाने के विषय में किये गये सिद्धान्तीकरण से बिल्कुल भिन्न हैं। यदि वास्तव में हम यह कहने की कोशिश करें कि व्यवहार उसी समय बुद्धिमत्तापूर्ण होगा यदि उस पर पहले से बुद्धिमत्तापूर्ण विचार कर लिया गया हो तो हम एक अनन्त चक्राकार स्थिति में पड़ जाएंगे। ऐसा मान लेने का यदि कोई भी अच्छा कारण होता कि बुद्धिमानी से क्रिकेट खेलने के लिए यह आवश्यक

---

1 द कॉन्सेप्ट ऑव माइण्ड के साथ ही साथ सी० डी० ब्रोड कृत माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर पढ़ना अच्छा तरीका है।

है कि क्रिवेट के विपय मे बुद्धिमत्तापूण सिद्धा तीकरण इससे पहले किया जा चुका
हो, तो यह विश्वास कर लने का भी उतना ही औचित्य होता कि बुद्धिमत्तापूण
सिद्धा तीकरणक लिए उससे पहले सिद्धा तीकरण का बुद्धिमत्तापूण सिद्धा तीकरण
होना आवश्यक है, इत्यादि और इस तरह अन त क्रम चलता रहेगा।
एक अवस्था पर और क्यो न एक ही बार म ? हमे यह जान लेना पडेगा कि क्रिया
का कोई भी रूप (आकार) बुद्धिमत्तापूण होता है चाह कोई स्थिति उससे पूव
हो या न हो।

किन्तु यहा यह आपत्ति खडी की जा सकती है कि किसी क्रिया के केवल
परीक्षण से ही हम यह नही कह सकते कि वह बुद्धिमत्तापूण है। यह तो मात्र सयोग
भी हो सकता है। शतरज के खेल को बहुत कम जानने वाला भी कभी कभी एक
सही और मुश्किल मे डाल दने वाली चाल चल सकता है। इसलिए राइल यह
स्वीकारते हैं कि हम यह निर्धारित करन के लिये कि कोइ कम बुद्धिमत्तापूण है या
नही, उस काम से परे जाकर देखना होगा। यह पार दर्शन किसी रहस्य का पता
लगा लने जसा नही है, जो हमारे लिय बिलकुल अपनी मानसिक क्रिया को किसी
प्राक्ल्प से प्रकटता हो। इसके बजाय हम तो उसके (अभि)कर्ता की सामान्य
क्षमताओ एव शक्तिओ की जाच पडताल करते हैं। क्या वह अन्य परिस्थितियो मे भी
ऐसी ही चाल चलेगा ? क्या वह दूसरो के द्वारा चली गइ ऐसी चालो को पस द
कर या समझ सकेगा ? यदि हमारे प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक है तो वह शतरज
खेलना जानता है।

जानने की क्रिया राइल के अनुसार, चित्तवत्यात्मक है। ऐसा कहकर वे यह
सुझाव नही दे रहे हैं कि वह खेल एक विशेप प्रकार की इयत्ता का खेल है जिसका
नाम चित्तवत्ति है। यह तकवाक्य कि काच म टूटने की प्रवत्ति (डिस्पाजीशन) होती
है,' उनके अनुसार (अस्पष्ट एव सीमित) शत कथनो की शृ खला की एक शीघ्रलिपि
मात्र है। यदि आप काच को गिरा दें या पत्थर से उस पर चोट करें या इसे मोडने
की कोशिश करें तो यह टूट जाएगा। यदि काच कभी न टूटता हो या हमारे अनुभव
मे काच टूटने की घटनाए कभी प्रस्तुत न हुई हो ता भी हम उसे टूटनीय' नही
कहना चाहिए। इस तरह उसका वणन कर हम किसी घटना का वणन नही कर रह
अपितु एक सशत कथन को ही कह रहे होते हैं।[1]

---

1 आलोचना के लिए देखें डी० पीयस 'द लोजिकल स्टेट्स आव सपोजीशन' एव ए० आर०
(पी० ए० एस० एस० 1951), एस० हैम्पशायर डिस्पोजीश स' एव ए० आर०
व्हाइट 'मिस्टर हैम्पशायर एण्ड प्रोफेसर राइल आन डिस्पाजीश स (एनालिसिस
1953), जी० एन० बड मिस्टर हेम्पशायर आन डिस्पोजीश स (वही)। देखें,

तब यद्यपि हम एक व्यक्ति के विषय मे यही कहना चाहिए कि वह फ्रेंच भाषा मे पढ सकता है यदि वह कभी कभी ऐसे काय करता है जो फ्रेंच भाषा के पाठकों से अपेक्षित हैं– या वह चिड़चिड़ा है यदि वह झुंझलाता है जब वह क्रोध मे होता है या फिर वह सुस्वभावी है' यदि वह मित्रतापूर्ण व्यवहार करता है। तो भी कोई ऐसी विशेष घटना नही है जिसका घटना इस सम्बन्ध मे आवश्यक एव पर्याप्त दशा हो ताकि उसे व्यक्ति की चित्तवृत्ति के विवरण के लिए[1] लागू किया जा सके। एक इयत्ता या धारणा की खोज करना जो चित्तवृति के द्वारा नामांकित होती हो– एक किसी काल्पनिक प्राणी की खोज करने से अधिक कुछ नही है। राइल की दृष्टि मे यह कहना कि हमारी चित्तवृत्ति अमुक अमुक प्रकार की है' केवल यही कहना है कि हमारा व्यवहार नियमबद्ध है अर्थात् यह एक नियमित रूप से सचालित है।

इसी से सम्बद्ध भाषण जो काउण्टर–फैक्चुअल कण्डीशन्स' नाम से प्रसारित किए गए। अर्थात् ऐसे सशर्त कथन जसे यदि सीजर ने रूबीकन नदी पार नही की होती तो गणतन्त्र नष्ट नहीं होता शामिल हैं। अभी अभी ऐसे तर्कवाक्यो पर व्यापक तौर पर चर्चा हुई क्योंकि (1) ये किसी भी सघटनवादी एव चित्तवृत्त्यात्मक मन या शरीर के विवरण मे एकाएक प्रकट हो जाते हैं। (2) प्राकृतिक नियमो एव मात्र नियमित्तताओ के भेद को केवल इसी बात म निहित माना गया है (देखें अध्याय 17 नीचे पर) कि नियम तो इन दशाओ को स्वीकारते हैं किन्तु मात्र नियमतिताए ऐसा नही होने देती। (3) किसी सत्यफलनीय तकशास्त्र की दृष्टि से उनकी व्याख्या करना स्पष्ट ही ऊटपटाग निष्कर्ष पर पहुचना होगा। जैसे यदि, तो ' के तर्काकार का भौतिक अभिप्रत प्राप्त करने पर प्रत्येक प्रतितथ्यात्मक दशात्मकता इसी तथ्य के बल पर सही होगी कि उसका पूर्वपक्षी (एटिसीडेंट) गलत है। किन्तु प्रकट म कुछ ऐसे तकवाक्य जसे यदि पत्थर से काच पर चोट की जाय तो वह उसे तोड देगा सही है जबकि कुछ अन्य जसे यदि पख से काच पर चोट की जाय तो वह उसे तोड देगा' गलत हो जायगा। चिश्लाम द कण्ट्री टू फक्ट कण्डीशनल (माइण्ड 1946) गुडमैन द प्राब्लम आव काउ टर–फक्चुअल कडीशनल (जे० पी० 1943) इसका पुनमुद्रण फक्ट फिक्शन एण्ड फोरकास्ट के नाम से हुआ (1954), जिसमे इसी विषय की विस्तृत चर्चा है। बिल कृत द कण्ट्रेरी टू फक्ट कण्डीशनल' (माइण्ड 1947), पोपर कृत ए नोट आन नेचुरल लाज एण्ड द सो काल्ड कण्ट्री टू फेक्ट कण्डीशनल्स' (एनालिसिस 1949) पी० ज० डिग्स काउण्टर फेक्चुअल कण्डीशनल्स' (माइण्ड 1952) हेम्पशायर सब्जकटिव कण्डीशनल्स (एनालिसिस 1948), चिश्लोम ला स्टेटमेण्ट्स एण्ड काउण्टरफेक्चुअल इनफरेंस (एनालिसिस 1954)।

1 तुलना के लिए देखें विटजनस्टीन द्वारा समझ पर कही गई बातें। इसी पुस्तक म विवेचित।

राइल द्वारा किया गया प्रयोजनों का विश्लेषण भी इसी आधार पर विकसित होता है। एक प्रयोजन से काम करना, आदत के अनुसार काम करना है। यह बात इस तथ्य से प्रकट होती है कि हम प्राय इस विषय में अनिश्चित रहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने किसी विशेष प्रयोजन से अमुक कार्य किया है या किसी आदत से। किसी कार्य को आदतन प्रकट हुआ मानना उसके रहस्य का उद्घाटन करना है। किन्तु तब उसे अप्रत्याशित या विचित्र कहना अर्थहीन होगा। इसी तरह किसी कार्य को प्रयोजनवश किया हुआ मानना भी उसे किसी सामान्य प्रकार के कर्म की श्रेणी में रखना होगा– और यह उसे कार्य कारण रूप से प्रकट करने से भिन्न होगा। महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर कार्य करना, किसी महत्वाकांक्षी कार्य को उजागर करना है। महत्वाकांक्षा एक अद्भुत अयान्त्रिक कारण नहीं है।[1]

ऐसी तथाकथित मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में वे कहते हैं (जैसे इच्छाशक्ति की क्रियाएं), कि वे किसी भी दशा में प्रक्रियाओं के समान नहीं हैं। किसी प्रकार के विवरण की प्रक्रिया साधारणतः इस पर लागू नहीं होती। यह पूछना निरर्थक है कि इच्छाएं निरन्तर हैं या बाधित? किस प्रकार उन्हें गति दी जा सकती है और कैसे उन्हें धीमा किया जा सकता है? वे सब शुरू एवं खत्म कब होती हैं? स्वैच्छिक एवं अनैच्छिक व्यवहार इस तथ्य पर आश्रित नहीं रहते कि स्वैच्छिक व्यवहार पूर्ववर्ती है जब कि अनैच्छिक व्यवहार किसी भी इच्छित कर्म का पूर्ववर्ती नहीं है।

इसी भांति यद्यपि देखने और न देखने में, स्मरण एवं पुनः स्मरण करने में निश्चय ही भेद है, तो भी ये कोई मानसिक प्रक्रियाएं नहीं हैं। राइल के तर्क के अनुसार, वे देखने की तथा पुनः स्मरण की क्रियाएं ही हैं। देखना एवं पुनः स्मरण करना वास्तव में, उपलब्धिद्योतक शब्द है, प्रक्रियात्मक शब्द नहीं। देखना एक कर्म में सफल होना है, यह तो एक दौड़ जीतने के समानान्तर है जो दौड़ लगाने से भिन्न है। यदि मूर मानसिक क्रियाओं की चकाचौंध से उलझन में पड़ गए थे तो यह सब इसीलिए था कि वे उस वस्तु की खोज कर रहे थे जो वास्तव में थी ही नहीं।

बहुत से दार्शनिक जो राइल द्वारा कार्टेजियन गल्पाख्यान का उन्मूलन करने

---

1 मनोविश्लेषणात्मक व्याख्याओं के स्तर के लिए राइल द्वारा प्रस्तुत 'प्रयोजनों के सिद्धान्त' ने आधुनिक चर्चाओं में एक महत्वपूर्ण योग दिया है। इसी विषय पर देखें एस० टोलमिन को एनालिसिस (1948) में तथा उनके उत्तर के लिए एच० डिगल को (उसी में)। आर० पीटर्स (1949) डब्लू० एफ० आर० हार्डी (1950)। देखें एलेक्जेण्डर एवं मेकिण्टायर काज एण्ड क्योर इन साइकोथैरेपी (पी ए एस एस 1955)।

म उनके प्रति सहानुभूतिशील है उनके कल्पना[1] के विश्लेषण से परेशान हो गए हैं। किन्तु तो भी यह विश्लेषण उनकी इस सामान्य निष्पत्ति के अनुरूप ही है कि जब हम व्यक्तियों का उनके मानसिक कर्मों से जानते हैं तो हम चेतना प्रवाह की किसी अनन्वेषी आत्मिक क्रिया के विषय मे कोई अनुमान नही लगा रहे होते हैं। हम तो उन लोगो द्वारा प्रबल रूप से व्यक्त किए जा रहे लौकिक व्यवहार का आंशिक विवरण प्रस्तुत कर रहे होते हैं– उसे यह बताना है कि कल्पना करना किन्ही निजी इयत्ताओ के किसी एक वर्ग पर गहराई से मनन करने की प्रक्रिया नही है। अर्थात् कोई बिम्ब प्रकटाना नही है जैसा कि किसी की हत्या करने का अभिनय करना *किसी विचित्र प्रकार की वास्तविक हत्या कर देने जैसा नहीं है।* इसी तरह एवरेस्ट के देखने की कल्पना करना वास्तविक रूप से एवरेस्ट का बिम्ब देख लेना नही है। यदि कोई व्यक्ति एवरेस्ट देखने की कल्पना करता है तो न तो उसकी आंखो के समक्ष वास्तव मे एवरेस्ट होता ही है और न कोई बनावटी पहाड़ ही जो उसकी कृत्रिम दृष्टि के समक्ष प्रस्तुत हो। वह तो एवरेस्ट के विषय मे प्राप्त अपने ज्ञान का उपयोग कर रहा होता है जिसके जरिए वह बताना चाहता है कि वह कैसा दिखाई देगा। कल्पना करना राइल की दृष्टि मे एक प्रकार का पूर्वाभ्यास करना है। भविष्य का पूर्वाभास करना है। या फिर बहाना करने का यह एक रूप हो सकता है किन्तु निश्चय ही यह आन्तरिक दर्शन नही है। जहां तक पूर्वाभ्यास एवं पूर्वाभास सैद्धान्तिक रूप से लौकिक है वैसा ही कल्पना करना भी है। इस तरह निजता (प्राइवसी) की आन्तरिक किलेबन्दी (बिम्बो का जगत्) अन्ततः अभेद्य सिद्ध नही हो पाता।

कान्सेप्ट आव माइण्ड मे राइल ने अपनी ही तरह से दार्शनिक मनोविज्ञान की समस्याओं की रचना की है एवं उनका हल निकाला है। उनकी इस बात ने विटजनस्टीन को परेशान कर दिया था। उनकी कृति डाइलेमाज विटजनस्टीन की मुख्य प्रस्थापनाओ की ओर प्रवृत्त है। इसमे दार्शनिक के समक्ष प्रस्तुत हुई अशमनीय दुविधाओं को हल करने की समस्या पर विचार किया गया है। प्राय दार्शनिक के *सामने दो प्रकार के निष्कर्ष रहते हैं और ये इस तरह से परस्पर जुड़े हैं कि इनमे से* एक पूर्णतः गलत होना चाहिए यदि दूसरा आंशिक रूप से सही है तो। बारी बारी से सभी अनेक दुविधाओ का विचार करके राइल यह बताने की कोशिश करते हैं कि प्रत्येक अवस्था मे संघर्ष स्पष्ट है। उन सिद्धान्तों के बीच का एक कृत्रिम संघर्ष जो

---

1 देखें कान्सेप्ट आव माइण्ड की *समीक्षाओ* के अतिरिक्त जे० एम० शोटर कृत इमजीनेशन (माइण्ड 1952) तथा उसके साथ ही ए० जी० एन० फ्लू का उत्तर फैक्ट एण्ड इमजीनेशन (माइण्ड 1956), बी० एस० बेन्जामिन आन रिमेम्बरिंग (उसी मे)। इस मे इसी से सम्बन्धित प्रश्नो की चर्चा की गई है।

स्वकर्मों से भिन्न श्रेणियों के हैं। और उन्हें समन्वित करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

उदाहरणार्थ, एक परिचित समस्या लें कि भौतिक शास्त्र किस प्रकार विज्ञान जगत दैनिक जीवन के जगत से सम्बद्ध है। एक ओर जहां भौतिक शास्त्री हमें यह आश्वासन देता है कि वस्तुएं दरअसल दिक के विद्युदणुओं का संयोजनमात्र हैं कि वे वास्तव में रंगीन नहीं हैं, ठोस नहीं हैं या नियत नहीं है, इसके दूसरी ओर हम इस बात पर भी पूर्णतः आश्वस्त हैं कि मेजें एवं कुर्सियां वास्तविक हैं, और वे रंगीन हैं, ठोस हैं, एक आकार की हैं आदि आदि। किस प्रकार यह दुविधा पार की जाए? भौतिकशास्त्री के निष्कर्ष राइल की दृष्टि में किसी भी प्रकार हमारे दैनिक जीवन के निर्णय से वस्तुतः संघर्ष में नहीं आते। और इस तरह तथाकथित दुविधा केवल हमारी रुचियों का अन्तर मात्र रह जाती है।

वे अपनी बात को एक दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं। एक महाविद्यालय का लेखा परीक्षक (आडिटर) उस विद्यालय के एक उपस्नातक से यह कह सकता है कि महाविद्यालय के लेखे जोखे में विद्यालय का समस्त जीवन आ जाता है उसके खेलकूद मनोरंजन, उसकी शिक्षा आदि सभी उसमें वर्णित हैं। यह लेखापरीक्षक उपस्नातक को धोखा नहीं दे रहा है, क्योंकि दरअसल यह लेखा व्यापक है सही है तथा सब बातों को अपने में समेटता है। तो भी उपस्नातक इस बात से आश्वस्त है कि कुछ ऐसा भी है जो इस लेखे-जोखे से छूट गया है। *यही बात ठीक उसी रूप में भौतिक* शास्त्री एवं हमारी वास्तविक स्थितियों को व्यक्त करती है कि कोई भी भौतिक परिवर्तन विद्युदणुओं की गति के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है और उन मामलों में भौतिकी पूर्ण है। तो भी किसी तरह यह जगत् जिससे हम प्रेम करते हैं और जिससे डरते हैं भौतिकशास्त्री के चंगुल से कहीं न कहीं निकल ही जाता है। राइल सुझाते हैं कि उपस्नातक को लेखापरीक्षक के इस दावे की गहराई से जांच करनी चाहिए कि उसके लेखे में महाविद्यालय का पूरा जीवन समेट लिया गया है या नहीं। निस्सन्देह उसके लेखे में यह सब है। इस अर्थ में कि महाविद्यालय की हरेक गतिविधि को आय व्यय के हिसाब में रखा गया है किन्तु उसके लेखे कालेज जीवन के उस पहलू का वर्णन नहीं करते जो उपस्नातक के लिए मनोरंजक या आवश्यक हैं। लेखाकार के लिए पुस्तकालय की एक नयी पुस्तक 25 शिलिंग भर की है। वह किसी श्रेष्ठ आत्मा की मूल्यवान कृति नहीं है। इसी भांति यद्यपि भौतिकी सभी को समेट लेती है तो भी वह उन सभी चीजों का पूरा विवरण नहीं देती। भौतिकशास्त्री तो हमारे चारों ओर व्याप्त जगत के कुछ पहलुओं में ही रुचि रखता है। जिस प्रकार एक लेखापाल का काम तथा उपस्नातक का काम भिन्न है उसी प्रकार भौतिकशास्त्री का काम भी भिन्न है। हर एक अपने रास्ते पर जा रहा है और उसे इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की दुविधा या भय नहीं होना चाहिए। प्रभाव क्षेत्रों के इस सिद्धान्त के

बहुत से प्रशसक हैं। विशेषत उन लोगो म से जो बिना विवाद के धार्मिक होना, तथा साथ ही विवचनाकार दाशनिक रहना चाहते हैं।

राइल सदव ही इस बात पर बल देते रह हैं कि उनका कम तनिक भी दाशनिक काय नही है और निश्चय ही वे कभी गहन भाषाई विश्लेपण म निरत्त नही होते हैं। ऐसे विश्लेपणो के लिए हमे जे० एल० आस्टिन के निबधो की ओर अभिमुख होना चाहिए जो ओक्सफोड म नीति दशन के प्राध्यापक थ तया जिन्होने अपनी आलोचनात्मक क्षमता क लिए काफी आदर अर्जित किया है किन्तु अपनी इन क्षमताओ के कारण वे बहुत मोटे ग्रन्थों क रचयिता नही हो पाये।

हाउ टू टाक' (पी० ए० एस० 1952)[1] नामक उनका निबध समापण-क्रिया (स्पीच एक्ट) के प्रकारो के अन्तर को बहुत अच्छे ढग से प्रस्तुत करता है। क्ष को य जसा वर्णित करना' क्ष को य कहना तथा यह कहना कि क्ष य है' आदि। निस्सदेह यह सब एक जाच-पडताल का काम ही ता है। क्योंकि आस्टिन का मत है कि दाशनिको ने विवरण एव कथन जस शब्दो का भ्रातिजनक प्रयोग किया है। किन्तु तो भी उनके इस कम को भाषाई विश्लेपण का एक ऐसा प्राथमिक रूप माना जा सकता है–जिसमे प्रकट रूप से कोई चिकित्सात्मक ध्येय नही है। पी० ए० एस० (1946) द्वारा अदर माइण्डस पर आयोजित एक गोष्ठी मे उन्होने अपने एक प्रभावशाली लख म कहा था कि दाशनिक सुवाद का सदम अधिक स्पष्ट हो गया है।' किन्तु उस लेख म उठाए गए भाषाई बिन्दु सुन्दर हैं। अपनी प्रकृति म व राइल की रचनाओ मे पाई जाने वाल भाषाई विश्लेपण स कहीं अधिक भाषा वज्ञानिक हैं। उदाहरणाथ यह बताने का प्रयास कि हम ठीक तौर पर स्वय अनुभूतियो से परिचित नही हो सकते (अथात् जिसे एक व्यक्ति अनुभव कर रहा है उससे) किन्तु हम जिमसे परिचित होते हैं वह यह अनुभव मात्र होता है कि अमुक अमुक स्थिति अनुभव की जा रही है। (अर्थात् वह क्या अनुभव कर रहा है यह जान) आस्टिन का कहना है कि मैं जानता हू कि वह क्या अनुभव कर है जसे वाक्य म क्या एक प्रश्नवाचक सयोजक का काय निबाहता है। एक सबधवाची सयोजक का जिसे' क पर्याय का नही। आस्टिन से पूव किसी ने भी इतने सुन्दर ढग से इस विषय पर ऐसी याकरण[2] सम्मत बात नही कही थी।

---

1 आलोचनात्मक टिप्पणी के लिए दखें डी० आर० कजिन 'हाउ नाट टु टाक (एनालीसिस 1954) जे डब्लू रावसबी कावस फिटिंग एण्ड मैचिंग (एनालीसिस 1955)।

2 कोई भी देख सकता है कि ओक्सफोड दशन या भाषाई दशन पर चर्चा करना कितना खतरे स भरा हुआ है। इसमे कुछ सार तो है ही क्योंकि आक्सफोड दशन

आस्टिन कृत 'अदर माइण्डस' सम्पादन क्रियाओं की एक विशेष श्रेणी की ओर ध्यान आकर्षित करता है जिन्हें उन्होंने प्रश्नकारी उक्तियों की संज्ञा दी थी। दार्शनिकों ने साधारणतया यह मान लिया था कि भाषा शुद्ध रूप से वर्णनात्मक ही है। ऐसी स्थिति में 'मैं जानता हूं स प है' जस वाक्य से अभिमुख होकर व विशिष्ट सन्तान क्रिया (अर्थात् जानने की क्रिया) की खोज में निकल पड़े हैं—जिस मानकथना से वर्णित किया जाता है, और जो आस्था कथनों से भिन्न हैं। किन्तु वास्तव में 'मैं जानता हूं' का काम वही है जसा कि मैं दावा करता हूं का है। यह एक स्वीकारोक्ति के बराबर है। इसमें वही शक्ति है जो आप मुझ पर विश्वास कर सकते हैं' या 'आप इस पर मेरा वचन ले लें' जैसे कथनों में रहती है। यही कारण है कि हम यह नहीं कह सकते कि मैं जानता हूं कि यह सब ऐसा है किन्तु मैं गलत भी हो सकता हूं।' केवल इसीलिए नहीं कि जानने की क्रिया दोष रहित है, अपितु इसलिए कि ऐसा कोई भी कथन इस तरह की स्वीकारोक्ति के एक साथ प्रविष्ट होने तथा उसमें विमुख रहने की बात के बराबर ही है।

आस्टिन की विचार परम्परा को एस० ई० टालमिन जसे कैम्ब्रिजवादियों द्वारा आगे बढ़ाया गया। बाद में जाकर वे ऑक्सफोर्ड के निवासी हो गए। यह परम्परा 'प्रोबेबिलिटी' (पी ए एस 1950) नामक निबंध में देखी जा सकती है। सम्भाव्यता सिद्धान्त के दर्शनमना प्रचना विचारक (जो असीम वर्गों की जटिलता से परेशान हुए या फिर सम्भाव्यता के कथन की स्पष्टता से मोहित हो गये।) प्रश्न विश्लेषणों का समारम्भ एक बहुत ही विशद बात को लेकर करते हैं। उन्हें इस बात से प्रारम्भ करना चाहिए कि ऐसी सामान्य अभिव्यक्तियों को कि मैं सम्भवत आऊंगा।'[1] हम कसे प्रयुक्त करते हैं। तभी यह स्पष्ट होगा कि स सम्भवत प है

का वृहदंश एक विशिष्ट रुचि का है। और एक पुर्तगाली लाल शराब के स्थान पर स्पेन की एक सूखी सफेद शराब का स्मरण दिलाता है। इसमें शम्पेन की भांति बहुदा झाग नहीं उठते। किन्तु इसके साथ ही यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि आस्टिन एवं राइल में क्या अन्तर है। विशेष रूप से वे किन मार्गों पर अलग हो जाते हैं यह जानना। वास्तव में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऑक्सफोर्ड में भी अनेक दार्शनिक हैं। प्राइस नील एवं वेल्श, दृष्टान्त के रूप में रख जा सकते हैं। ये सब किसी न किसी पुरानी परम्परा पर काम कर रहे हैं।

1 विभेद के लिए देखें एन० जे० रसेल द्वारा इसी गोष्ठी में प्रस्तुत एक लेख गतिविज्ञान (डाइनैमिक्स) सबंधी वैज्ञानिक सिद्धान्त क्या उसकी व्याख्या एवं उसके द्वारा दिए जा सकने वाले औचित्य की क्षमता पर निर्भर करता है? या बिना औचित्य के वह इसकी व्याख्या कर सकता है? विशेषतया इन भाषासंबंधी प्रयोगों पर कि शक्ति, गति, कारण आदि आदि सामान्य जीवन से इनका क्या

मानलो औचित्य खोजने की बजाय हम केवल य पूछें कि क्या आगमनात्मक तर्क पर विश्वास करना उचित है ? तब स्ट्रासन का कहना है कि इसका उत्तर निश्चित रूप से हा ही है क्योकि युक्तियुक्त' होने का अर्थ है किसी कथन के प्रति आस्था की एक विशेष मात्रा रखना जो उसके पक्ष मे दिए जाने वाले प्रमाणो के अनुपात म ही है । तब आगमन की युक्तियुक्तता विशेषणात्मक है। इस तरह आगमन युक्तियुक्त या उचित है यह बताने का कोई प्रश्न ही नही उठता । हम भली भाति यह पूछ सकते है कि क्या अमुक अमुक प्रकार की आस्था रखने का कोई औचित्य हमारे पास है ? किन्तु हम यह नही पूछ सकते कि आगमनात्मक तर्क सामा यत उचित है या नही । स्ट्रासन का कथन है कि भूमि सबधी कानून भी वैज्ञानिक हैं या नही इस पर क्या कोई प्रश्न उचित कहा जा सकता है ?

स्टासन स्वीकारते हैं कि दार्शनिक इस प्रकार के मतवाद से असतुष्ट हैं । उनकी शिकायत है कि आगमन पर रही उनकी शका बिल्कुल दूसरी ही तरह की है । किसी न किसी तरह वे यह अनुभव करते हैं कि इस सबध म उनके साथ छल हुआ है । वे यह आपत्ति करने पर तुल जाते हैं कि क्या यह सभव नही है कि वस्तुओ का पता लगाने का कोई अन्य माग भी मनुष्य खोज सके और तब क्या वह प्रणाली आगमन की प्रणाली के स्थान पर काम मे लाई जाय तो क्या यह अधिक उचित नहीं होगा ? इस तरह अ तत क्या यह बताना जरूरी नही है कि प्रयोग के लिए आगमन की प्रणाली ही क्या युक्तियुक्त प्रणाली है ? स्टासन क अनुसार यह सभावना सही नही हैं । क्योकि यदि इस माग के पक्ष की पुष्टि के लिए कहा जाए कि अमुक व्यक्ति ने आगमन से भी अधिक उचित कोई युक्ति खोज निकाली है तो इस बात को सिद्ध करने के लिये भी उस आगमनात्मक युक्ति का ही सहारा लना होगा । ऐसे तर्कवाक्यो की पुष्टि उन्ह इसी प्रकार करनी होगी कि एसा ऐसा करके मुझे सही उत्तर मिलता है और य तर्कवाक्य भी ऐसे होग जो स्वय आगमन पर आधारित होगे । इसीलिए स्ट्रासन कहते हैं कि वास्तव मे यह मुहावरा कि वस्तुओ की खोज करने की ऐसी सफल प्रणाली निकल सकती है जिसका कोई आगमनात्मक आधार न हो स्वय म वदतोव्याघात है ।

यह स्पष्ट हो जाता है कि स्ट्रासन विश्लेषणात्मक एव वदतो याघात तथा स्वय विरोधी जसे शब्दो का मुक्त रूप मे प्रयोग करते ह । कदाचित लबेनीज के बाद किसी ने भी इन शब्दो का इतने विश्वासपूर्वक प्रयोग नही किया है । इसम आश्चय नही कि उन्होने प्रबल रूप से विश्लेषणात्मक एव सम वयात्मक प्रणाली के भेद का क्वाइन के प्रहारो के विरुद्ध भी बचाव[1] किया है ।

---

1 पी० ग्राइस के सहकार मे लिखित इन डोग्माज आव एम्पिरिसिज्म (पी० आर० 1956) मे ग्राइस ने जो स्टासन के शिक्षक रहे थ न केवल स्ट्रासन को ही

अन्तत यह झगडा स्ट्रासन एव रसल पर जाकर रुक जाता है। यहा से ही
आक्सफोड क प्रति शकालु रसल के दाशनिक विचार आक्सफोड के तकशास्त्रियो के
के लिए सदव ही आलोचना का विषय रहे हैं, जो उनम जमन अमरीकी आकारीकरण
प्रभाव भी देखते हैं, जिम पर व गहरा अविश्वास करते हैं। स्ट्रासन कृत 'आन रेफरिंग'
(माइण्ड 1950) इस आलोचना का सर्वाधिक प्रभावशाली स्वर है- जो आकार
वादियो क 'पवित्र' सिद्धान्त (रसल कृत विवरण सिद्धान्त) पर एक[1] प्रबल
प्रहार है।

स्ट्रासन के अनुसार रसेल न दो जुडवा गलतिया की। उन्होने ”स तथ्य का
अनदेखा कर दिया कि एक वाक्य के अनेक प्रयाग हो मकते हैं एव उन्होन गलती म
यह मान लिया कि यदि एक सत्यकथन को कहन के लिए साथक वाक्य का प्रयोग
नही किया गया तो इससे एक गलत कथन ही उत्पन्न होगा। रमल की त्रिविधा
मत्य असत्य एा निरथक एक बार यह जान लेने पर ही ध्वस्त हो जाती है कि
एक वाक्य निरथक या साथक हो सकता है किन्तु कभी मत्य या असत्य नहीं होता,
कि एक तकवाक्य सत्य या असत्य हो सकता है किन्तु कभी निरथक नही होता। अनेक
अवसरो पर जिनमे वाक्यो का प्रयोग होता है सत्यासत्य का प्रश्न सदव ही नही होता।
एक वाक्य से स्ट्रासन का यही आशय है कि अभिव्यक्तिया तथा शब्दो का समूह।'
एक ही वाक्य से बिल्कुल भिन्न कथन कहे जा सकते हैं यथा फ्राम का राजा बुद्धिमान

अपितु अन्य भाषाई विचारको को भी काफी प्रभावित किया। एक प्राणवान विवचक
शिक्षक हाने पर भी उन्होंने बहुत कम लिखा। ”नफोरमल लोजिक पर देखें राइल
डाइलमाज तथा उनका निबध ”फ सो एण्ड दिकॉज (फिलोसोफिकल अनालिसिस
सपा०, ब्लक, 1950) जहा उन्होने यह बात बताई है कि द कान्सप्ट आव माइण्ड में
सामान्य कथन अनुमान सबधी सुविधाए मात्र हैं। उनकी यह बात समष्टिगत कथनो
पर रेमसे एव मिल द्वारा कही गई बाता मे काफी मिलती है।
1 मैंने इस निबध की व्याख्या लोजिकल थ्योरी के आधार पर की है। देखें
सेलस 'प्रीसपोजिंग' एव स्ट्रासन का उत्तर (पी० आर० 1954) मे। इसमे उन्होने
कुछ अशा म अपनी धारणा म सशोधन किया है। आर० क्लाक 'प्रीसपोजीशन्स,
नेम्स एण्ड डेस्क्रिप्शन्स (पी० क्यू० 1959) भी देखें। जो कुछ इस पुस्तक के
आठवें अध्याय के टिप्पणी म प्रेण्टानो के विषय मे कहा गया है वह भी देखें। गिलर
के बारे मे अध्याय 7 देखें। पी० टी० गीच रसल्स थ्योरी आव डेस्क्रिप्शन्स'
एनालिसिस 1949) देखें। एच० एल० हाट ए लोजिशियन्स फरी टल (पी आर
1951) म परम्परागत अरस्तू-तकशास्त्र के प्रयोग का एसा ही विवरण देता है।
हाट साधारण भाषाई तकनीक का वज्ञानिक दशन मे प्रयुक्त करन के लिए विख्यात
रहे हैं। व आजकल आक्सफाड म विधिशास्त्र के आचाय हैं।

है' यह वाक्य लुई चौदहवें अथवा लुई पन्द्रहवें के विषय म भी हो सकता है इसी वाक्य का प्रयोग एक मजाक के लिए भी हो सकता है जिसका अथ है कि फ्रास का राजा ही योरप भर म एक मात्र बुद्धिमान शासक है – या फिर उसका उपयोग केवल एक कहानी कहन के लिए भी हो सकता है। पहले के अतिरिक्त बाद के अय सभी विषयो म यदि कोई यह कहने लगे कि लकिन यह ता असत्य है' तो यह बिलकुल गलत रूप से उस प्रणाली को समझना होगा जिसके अनुसरण म मैं इस वाक्य का प्रयोग कर रहा हू। वे तो वाक्यो क प्रयोग को वाक्यो की रचना स सम्मिलित करते हैं।

इसी प्रकार एक व्यक्ति को जो यह कहता है कि फ्रास का राजा बुद्धिमान है' उसके इस वाक्य के उत्तर मे कोई यह कहे कि इस गणतत्र के युग म फ्रास का कोई राजा ही नही ता यह बात रसल क अनुसार वक्ता के विरोध की हुई। यदि फ्रास का कोई राजा नहा है तो उसका बुद्धिमान होना सही हो या गलत इसका भी कोई प्रश्न नही उठता। रसल के विवरण का सिद्धान्त इस मान्यता स शुरू होता है, कि चूकि 'फ्रास का राजा बुद्धिमान है यह वाक्य न सत्य है न निरथक इसलिए यह गलत होना चाहिए और चूकि यह स्पष्ट ही फ्रास के राजा का विवरण नही प्रस्तुत करता (क्योकि ऐसा कोई राजा है ही नही) अत इसे किसी अय क वणन परक होना चाहिए। भीषण दाशनिक सघष के बाद रसेल अन्त मे इस निष्कष पर पहुचे कि समस्त तकवाक्य वास्तव म किन्ही तार्किक रूप से सिद्ध मुख्य नामो के ही विधेय हैं–और यह काम उन्होने इस उलझन का निवारण करने के लिए किया ताकि वे ऐसे नामो के न होने को भी सिद्ध कर सकें। किन्तु स्ट्रासन के शब्दो म यदि हम यह सबसे पहले जानलें कि यह प्रश्न कि फ्रास का राजा बुद्धिमान है की कोई साथकता है या नही इस प्रश्न से बिल्कुल भिन्न है कि वास्तव मे फ्रास का कोई राजा है या नही' (इसमे अथ तभी होगा यदि हम इसे किसी के विषय मे कहते हुए बोल) दूसरे यह जान लें कि यह वाक्य इस बात को सिद्ध करने के लिए ही नही कहा गया है (यद्यपि निस्सदह यह साधारणत इस अभिप्राय को या धारणा को व्यक्त करता है) कि वास्तव मे फ्रास का एक राजा भी है, तो इस ज्ञान से इस तरह विवरण के सिद्धान्त का आधार जड से ही कट जाता है।

आकारी तकशास्त्रियो ने अपना पूरा ध्यान अपेक्षाकृत सदभच्युत वाक्यो से ही जोड़ा है। ऐसे वाक्यो से जसे 'सब व्हेल मछलिया स्तनधारी हैं' जिन्हे साधारणतया उस समय तक प्रयोग मे नही लाया जाता जब तक कि हमे व्हेल के विषय मे यह नही कहना होता कि वे स्तनधारी हैं। यह बात इस स्थिति को स्पष्ट करती है कि उन्होन क्यो वाक्यो और कथनो के भेद को भुला दिया है। यदि उन्होने उन वाक्यो को ही देखा होता जिसम म' जस शब्द या गोल मेज' जसे वाक्याश हो

(जिन्हें विभिन्न अवसरों पर विभिन्न वाक्यो और कथनो मे प्रयुक्त किया जा सकता है)
तो इस तरह वाक्यों एव कथनो मे यह भेद उन्हे समझ म आ जाना चाहिए था ।
लाजिकल थ्योरी मे स्ट्रासन यह स्पष्ट करते हैं कि उन्हे ऐसी आकारी
प्रणाली की रचना मे काई आपत्ति नही है । उनके विचार म आकारी प्रणालिया
उपयोगी हैं यदि वे सदर्भच्युत बातचीत के लिए काम म ली जाए जसे कि गणित
या भौतिकी मे । एक आकारी तकशास्त्र को इस तरह प्रतिदिन के तकशास्त्र से
पूरित किया जाना चाहिए क्योकि यह स्वय मे साधारण बोलचाल की भाषा के
साथ चलने मे अक्षम है । यदि तो' तथा 'नही और 'एव' जसे
आकार साधारण प्रयोग से ही तकशास्त्रियो के लिए हैं । किन्तु इसके बावजूद
भी बहुत सी ऐसी निष्पत्तिया हैं जिन्हे तकशास्त्री अनदेखा कर गए है । आकारी
तकशास्त्री प्रभावपूवक ऐसे तर्कों का औचित्य नही दे सकते जो सामयिक सबन्धो
पर निभर हैं या फिर विशिष्ट स्थानो या समय से आबद्ध हैं । स्टासन के अनुसार
ये अभाव एक साधारण भाषाई तकशास्त्र के माध्यम से पूरे किए जा सकते हैं,
(जिसका प्रारम्भ ही इस प्रश्न से होता है कि ऐसी कौनसी दशाए है जिनमे हम
अमुक अमुक प्रकार की अभिव्यक्तिया या उनके वग प्रयुक्त करते हैं ?) चाहे वह
उतना व्यवस्थित एव सुन्दर न हो जितना आकारी तकशास्त्र है । तो भी इसमे एक
ऐसी बौद्धिक क्रिया का आकार मिलता है जो अभी तक अपनी समानता जटिलता
तथा ग्रहणशालता म अतुलनीय रही है ।[1]

ओक्सफोर्ड के अन्य दाशनिक शिक्षकों म से जो सवविख्यात है वे हैं एफ० वसमैन । वैसमैन ने चिंतन का प्रारम्भ एक तकसम्मत वस्तुस्थितिवादी की हैसियत म किया । किन्तु वे सदव ही विटजनस्टीन के बहुत निकट रहे हैं । एरकेन्तनिस मे छपे समान्यता (1930) पर उनके निबन्ध (जसा कि पहले बताया जा चुका है) विटजनस्टीन के विचारो का स्पष्टीकरण एव विकास ही था । और कुछ हद तक यही बात उनकी कृति इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल[2] थिंकिंग (1936) पर भी लागू होती है । वसमैन

1 एक आकारवादी के उत्तर के लिए देखें, क्वाइन कृत मिस्टर स्ट्रासन एण्ड लोजिकल थ्योरी' (माइण्ड 1953) । स्ट्रासन ने उनकी दृष्टि मे एक समथ दाशनिक जाच-पडताल की है किन्तु आकारी तकशास्त्र की शक्ति को बहुत गलत समझ लिया है । देखें टोलमिन कृत व्हाट साट आव डिसीप्लिन इज लोजिक ? (1953 म प्रोसीडिंग्स आव एलेवन्थ कांग्रेस आव फिलोसोफी म प्रकाशित) ।

2 1951 मे इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाश म आया था । वसमैन का कहना है कि उन्होने गणित पर विटजनस्टीन की बहुत सी हस्तलिपिया देखी हैं । ए० एम्ब्रोस फिनिटिज्म एव द लिमिट्स आव एम्पिरिसिज्म' (माइण्ड 1937) नामक निबन्ध को विटजनस्टीन के गणित दशन का सब प्रथम केम्ब्रिज के बाहर प्रस्तुतीकरण

पूर्णत इस दृष्टिकोण को अमा य कर देते हैं कि गणित को तक पर आधारित माना जा सकता है। उनके अनुसार गणित (यहा तक कि स्वाभाविक अको का अङ्कशास्त्र भी) किसी वस्तु पर आश्रित नही होगा। यह आवश्यक सत्यो से प्रारम्भ न होकर परिपाटी से प्रारम्भ होता है। इसके तकवाक्य न तो सत्य है न असत्य। उनके विषय म हम यही कह सकते हैं कि वे मूलभूत परिपाटियो से या तो मेल खाते हैं या बेमेल रहते हैं। यदि हमे चुनना पडे तो हम एक भिन्न अङ्कशास्त्र बना लने से कोई रोक न सकेगा और इस अङ्कशास्त्र की भिन्न परिपाटिया होगी। हम सरलता स एस जगत की कल्पना कर सकते है जिनम सामा य रूप से हम जिस गणित का प्रयोग करते हैं उससे भिन्न एक नये गणित का चलन अपेक्षाकृत अधिक मा य हो जाय। गणित दशन का तब अङ्कशास्त्र का वणन करके सतुष्ट हो जाना चाहिए, और उसे उसकी स्थापना करने का प्रयास छोड देना चाहिये क्योकि यहा कवल परिपाटी ही अ तिम है।'

विटजनस्टीन की भाति वे कहते हैं कि अङ्क धारणाओ के एक परिवार को रूपायित करते हैं। अङ्क कोई ठोस इका यात्मक धारणा नही है। ठीक यही बात अङ्कशास्त्र पर लागू होती है। जिसे हम अङ्क या एक तरह का अङ्कशास्त्र कहन को तयार हैं, वह हमारी परम्परा पर निभर करता है आकारी दशाओ पर कतई नही। उनका खुलापन इन धारणाओ के पक्ष का एक बि दु है क्योकि यह हम नयी गणितीय क्रियाओ को विद्यमान शब्दावली म मूर्तिमान करने की स्वत त्रता दे देता है। और यह एक ऐसी समा यता है-जिसे कोई भी स्थिति नियत एव पूव-परिभाषित धारणा कभी मजूर नही करेगी।

वसमैन का परम्परावाद तथा उसके साथ मुक्त स्थिति' पर दिया गया उनका बल उनके तमाम दाशनिक निबधो मे देखा जा सकता है जिसे पी० ए० एस० एम० एव ए न० एल० 1 द्वारा सयोजित एक गोष्ठी म वेरीफाएबिलिटी नामक निब ध के पढे जाने स काफी अभि यक्ति मिली थी। वे नए दृष्टिकोण से तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद के आरम्भिक सघटनवादी सस्करण की तीव्र आलोचना करके अपनी चर्चा का प्रारभ करते हैं। उनके अनुसार सघटनवाद के प्रति मूलभूत आपत्ति यही है कि भौतिक पदाथ सबधी वाक्य के सब शब्दो की मुक्त स्थिति होती है। तब यदि हम ऐंद्रिय सवेदनो की एक इकाई का ऐसा आकलन करना चाहे जो भौतिक

करने का श्रेय दिया जाता है। देखें एव अ य निब ध आर देयर ऐनी कोसीक्यूटिव सेवे स न द एक्स्पेशन आव पाई ?' (मिशीगन एकेडेमी आव साइ स आट स एण्ड लटस 1936), बेसिक मैथेमेटिक्स एण्ड द वल्ड (एल० एल० 2)। विटजनस्टीन के गणित सबधी भाषण 1956 म जाकर काफी देर बाद छपे।

पदार्थ सबंधी कथनों के (जैसे 'वह एक बिल्ली है' के) सत्य को स्थापित करने के लिए पर्याप्त एवं आवश्यक हैं तो हमें तत्काल ही इस प्रकार की आपत्ति का सामना करना होगा कि मानलो ये सारी शर्तें पूरी हो जाती हैं किंतु बिल्ली के रूप में आपने जिस वस्तु का विवरण दिया है यदि वह एकाएक किसी विशालकाय जानवर में बदल जाय तब आप क्या कहेंगे ? इन प्रश्नों का वसमैन के विचार में कोई निश्चित उत्तर नहीं है। केवल मात्र इसीलिए कि बिल्ली की एक मुक्त स्थिति है। हम नहीं जानते हम ऐसे वक्त क्या कहेंगे ? हम यह बताने के लिए कोई विवश नहीं कर सकता कि एकाएक विकसित हो गया बिल्ली का वह विशाल स्वरूप बिल्ली होगा या नहीं ? वसमैन का कथन है कि किसी के द्वारा अनदेखा कर देने से ही बिल्ली सबंधी धारणा में निश्चित सीमाओं का बाधा जाना संभव नहीं है। तथ्य यह है कि हम कभी भी एक भौतिक पदार्थ के विषय में पूरी तरह से नहीं जान सकते। और न कभी उसका पूरा विवरण ही दे सकते हैं। सदैव इस बात का अवसर है कि इसमें से बिल्कुल अप्रत्याशित गुण भी प्रकट हो सकते हैं।

वसमैन के निष्कर्षानुसार अनुभववादी कथन कभी भी पूर्णतः सत्यापनीय (निरूपणीय) नहीं हैं क्योंकि परीक्षणों का कोई भी उपकरण उनकी सचाई को सिद्ध नहीं कर सकेगा। यह निष्कर्ष आश्चर्यजनक नहीं है। वसमैन ने जब तक वरीफाइबिलिटी लिखा था तब तक एक तो यह बात स्वीकार ली गई थी। किन्तु वसमैन इससे भी आगे जाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि एक अनुभववादी तर्कवाक्य किन्हीं प्रत्यक्ष दर्शनात्मक तर्कवाक्यों के व्यक्त होने को अपने में समाहित नहीं करता। यदि ऐसा होता तो फिर अनुभव से ही संघर्ष में अपने द्वारा उसे खण्डित भी किया जा सकता था। वास्तव में ऐसा संघर्ष किसी अनुभववादी तर्कवाक्य का उन्मूलन करने के लिए पर्याप्त नहीं है। हमारे पर्यवेक्षणों एवं हमारी प्रत्याशाओं के मध्य लरजती हुई कोई गलती यह कहकर भी हटाई जा सकती है कि मैं इतनी अधिक सतर्कता से विचार कर नहीं पा सकता।' जो कुछ हम कहने के अधिकारी हैं वह यह है कि एक अनुभव किसी तर्कवाक्य का या तो पक्षधर या विपक्षी या फिर उसे शक्ति देने वाला या कमजोर करने वाला ही हो सकता है। कभी भी वह उसे सिद्ध या असिद्ध नहीं करता।

सामान्य तौर पर ऐसे परम्परागत तार्किक सबंधसूचक (जैसे विरोधाभास) केवल एक ही प्रकार के भाषाई ढांचे में प्रकट हो सकते हैं-(उदाहरण के लिए यान्त्रिकी के दो साध्यों के बीच में या एक ही गतिसूचक[1] में सबंधित दो पर्यवेक्षणों

1 ये ढांचे आगे भी लग्वज स्ट्रेटा (एल० एल० 1) नामक निबंध में चर्चित हुए हैं। भिन्न भिन्न साचों का अन्तर भिन्न तर्क से प्रकट होगा। सत्य, साधक, विरोधाभासी, निरूपणीयता आदि सभी का अलग अलग अर्थ है। खास तौर पर

अध्याय १६

अस्तित्ववाद पर एक पश्‍चलेख

यदि मैं, उन सीमाओ म काय करते हुए जिन्हे मैंने इस पुस्तक के वण्यविपय क लिए बाधा है, अस्ति ववाद के बारे मे कुछ भी न कहू तो भी मुझ पर कोई आरोप औचित्य की सीमा मे लगाया नही जा सकता। प्रथम तो इसलिए कि समकालीन ब्रिटिश दशनशास्त्र की प्रमुख प्रवत्तियो पर इसका प्रभाव बिल्कुल नही रहा है दूसरे जहा तक इसकी चर्चा हुई है अस्तित्ववाद को तत्वदशन की अपेक्षा नीति धर्मात्मक (ethico-religious) चिन्तन के प्रेरक क रूप म गभीरता पूर्वक अपनाया गया है। व्यावसायिक दाशनिको ने अधिकाश म कधो को तिरस्कार सहित उचकाकर इसकी उपेक्षा की है।

फिर भी इसकी पूण उपेक्षा करना एक प्रकार की कायरता ही होगी चाहे यह निणय कि ही अ शा मे स्वागत–योग्य क्यो न हो। अस्तित्ववाद ब्रिटिश दाश निको की चेतना की सीमा–रेखा पर अवस्थित है। ब्रिटिश दाशनिको की दष्टि म यह योरप महाद्वीपीय अतिरेको एव उसके विचारो के खुरदरेपन का प्रतीक है। इसकी गतिविधियो का रेखांकन करते हुए (यदि एक बडी तथा दुरूह पुस्तक न लिखी जाकर कही अयत्र जो कुछ भी प्रयास किया जा सकता है उसमे) ब्रिटिश तथा लटिन ट्यूटोनिक दशनशास्त्र के मध्य वतमान मूलभूत विरोधो की तीव्रता पर विवेचन को केद्रित किया जा सकता है। इस बारे म मैंने पहल भी बलपूर्वक कहा है किन्तु कुछ सामान्य रूप म।[1]

---

1 अधिक यापक भूमिका के लिए देखे आर० जोलिवट लेस डाक्टरीस एग्जि स्टेंश्यलिस्टस (1952), के एफ० रीनहाट द एग्जिस्टेंशलिस्ट रिवोल्ट (1952) एच० ज० ब्लखम सिक्स एग्जिस्टेंश्यलिस्ट थिंकस (1952) एफ० एच० हीनेमान एक्जिस्टेंश्यलिज्म एण्ड द मोडन प्रेडिकामेण्ट (1953)। इस विषय पर एक विशिष्ट रूप से किये गए प्रहार के लिए देखें एन० बोबियो द फिलोसोफी आव डिकेडण्टिज्म (1944 पूरा अग्रेजी सस्करण 1948 मे)। एम० ग्रीन ड्रेडफुल फ्रीडम (1948)। आर० आई० पी० 1949 के विशपाक मे लम्बी पुस्तकसूची दी गई हैं जिसमे इटालवी किताबो की भी सूची है साथ ही विवेचनात्मक निबधो का विवरण भी। देखें के० डगलस ए क्रिटिकल बिब्लियोग्राफी आव एग्जिस्टेंश्यलिज्म (1949), एफ० कपलस्टन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी (1956)। यहा यह उल्लेखनीय है कि इनम स अनेक पुस्तकें उपमार्गीय विचारको द्वारा लिखी गई।

यहां किसी को ब्रिटिश कट्टरता (दूसरे के विचारों का अस्वीकार) पर उपदेश देने का मिथ्याकपण हो सकता है। निश्चय ही, समसामयिक ब्रिटिश दार्शनिकों का महाद्वीपीय सहयोगियों के प्रति रुख कभी कभी उस प्रसिद्ध अखबारी पोस्टर की याद दिलाता है जो ब्रिटिश नहर में एक ऐसे कोहरे का प्रदर्शन करता है जिससे योरप महाद्वीप बिलकुल अलग अलग रह जाता है। फिर भी कम से कम तर्क एवं ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में ब्रिटिश दार्शनिक का यह विरोध कुछ उचित कहा जा सकता है। वह कह सकता है कि यह एकाकीपन एवं कट्टरता तो उसके योरप महाद्वीपीय सहयोगियों में है न कि उस स्वयं में। क्योंकि जहां ब्रिटिश दार्शनिक योरप के डेकार्टे, उसके लेबनीज एवं उसके काट को जानता है वहां महाद्वीपी दार्शनिक सभवत बर्कले, ह्यूम तथा रसल से सर्वथा अपरिचित हैं। यदि ब्रिटिश प्रशिक्षित दार्शनिक के लिए नव महाद्वीपी तात्विकों को धयपूर्वक पढ़ना कठिन है, तो इसी लिए कि वह कार्टेजियन बुद्धिवाद (तर्कवाद) और जर्मन प्रत्ययवाद की अनुभववादी आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयत्न ही नहीं करती उनकी उपेक्षा कर देती है। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, न तो कार्ल यास्पर्स की वृहत् पुस्तक फीलोसफी में और न ही (उसके ही समान विशालकाय) फिलोसोफिकल लोजिक (1947) में बर्कले या ह्यूम के बारे कहीं एक भी उल्लेख मिल पाता है। और यदि सार्त्र के बीइंग एण्ड नथिंगनेस का प्रारम्भ बर्कले की एक प्रसिद्ध उक्ति के उद्धरण से हुआ भी है तो भी सार्त्र शीघ्र ही इस बात को स्पष्ट होने से रोक नहीं सकते कि वे बर्कले की कृतियों का ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ सके हैं।[1]

तो हमारे सम्मुख यही तथ्य रह जाता है कि यदि अधिकांश ब्रिटिश दार्शनिक यह विश्वास किए बैठे हैं कि महाद्वीपीय तत्वदर्शन एकांगी आडम्बरपूर्ण तथा बुद्धि नाशक हैं तो महाद्वीपी दार्शनिकों की यह धारणा भी अशक्त नहीं है कि ब्रिटिश अनुभववादिता असांस्कृतिक, फिलिस्तीनी, पदार्थ एवं आत्मनाशक है। यदि अस्तित्ववाद ब्रिटिश अनुभववादिता के किन्हीं पक्षों का प्रतिबिम्बन करता भी है तो वह उसे तुडा मुडा और विद्रूप करके पेश करता है जैसे कि मेले ठेलों में लगे (Fun-fair) दर्पणों में चेहरा टेढा मेढ़ा दिखा करता है। इससे होता यह है कि जो रूप प्रमुखत तर्कप्रधान तथा सामान्य प्रतीत होता था वह अकस्मात् विद्रूप और विचित्र दीखने लगता है।

1 सार्त्र उन्हें हम सिद्धान्त के हामी बतलाते हैं कि 'होने का अर्थ प्रत्यक्षीकृत होना ही है।' 'भौतिक पदार्थों पर इसे प्रयुक्त नहीं किया जा सकता' बर्कले की इस सीमा को वे अवहेलना कर जाते हैं, और बडी मजीदगी से कह देते हैं कि बर्कले का सिद्धान्त इसलिए पर्याप्त नहीं है कि प्रत्यक्ष होने के लिए जिस प्रकार प्रत्यक्षीकरणीय वस्तु आवश्यक है उसी प्रकार प्रत्यक्षद्रष्टा की भी तो आवश्यकता है।

समवत अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी के साथ मनुष्य और उसके ससार क उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक म समाहित है। प्लेटो के लिए अस्तित्व भाव एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है वतमान वस्तुए वहीं तक वास्तविक हैं जहां तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) क रूप मे प्रतिभासित हो। प्लेटो के अनुयायियो के कथनानुसार विश्व को जसा कि यह वास्तव म है देखना सारो के समूह की एक नेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार वयक्तिकता एक दोप है। मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूढ सकता है जबकि वह स्वय को एक फलन म एक काय म पूणत निमग्न करदे जस एक दाशनिक या एक सरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना। सुशासक तो रूपों स और सुनागरिक आदत की शक्ति स प्रभावित होता है। दोनो म से किसी को भी न तो अपनी पस द की फल वेदना सहनी होती है न कभी स्वय को वचनबद्ध करना होता है। अत अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जडे जमन रूमानियत (स्वच्छ दतावाद) म है जो कि यक्तित्व के नाम पर १८ वी सदी क नवज्ञान के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप मे इसक उद्गम का श्रेय या कम स कम इसकी पूववर्ती सरणि डालने का श्रेय डेमाक निवासी सॉरेन कीकगाद तथा जमन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्श और न हा कीकगाद कोई विधिसम्मत दाशनिक थे। व दोनो वस्तुत निश्चय ही विधिसम्मत दशनशास्त्र के विरुद्ध थ। कि तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नही राक सका। वास्तव मे ब्रिटिश दष्टिकोण के अनुसार स्वय अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपो म दशनशास्त्र विरोधी है।

कीकगाद ने विशाल [1] परिमाण म लिखा है कभी स्वय के नाम से, कभी कल्पित नामो से जसे कि यायाधिकारी या चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामो से क्योकि

---

1 उनकी अधिकाश रचनाओं का अग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीकगाद साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें ए कीकगाद एन्थोलोजी सपा आर० ब्रेटल (1946) या फिर आई बोचेंस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आईन फुरजोन (1948)। डब्लू० लाउरी कीकगाद (1938), आर० जोलिवट इण्ट्रोडक्शन टू कीकगाद 1946, (अग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशाग्रोद कीकगाद एण्ड होडगर (1953), जे० हाल एटयूड कीकगादियने (1938) जे० कोपिन्स द माइण्ड आव कीकगाद (1953)। कीकगाद ने समसामयिक नकारात्मक धमदशन एव साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषत इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

उसकी समझ मे सत्य का सर्वोत्तम उद्घाटन जोवन की विपरित आदतो के नाटकीय सामुख्य से ही हो सकता है। किन्तु वह कहीं भी अपने शुद्ध दार्शनिक विचारो को सीधे तौर पर प्रस्तुत नही करता है। उसका दशन सदा एक नीति धार्मिक सदम मे उद्भूत होता है, जो कि उसकी दृष्टि मे प्रश्नो के इस सारभूत प्रश्न का कि मैं ईसाई कसे हो सकता हू समाधान निकालने के लिए एक आशिक प्रयत्न है।[1]

उसकी विचारणा मे ईसाइयत के दो शक्तिशाली शत्रु हैं विचाररहित चच गामी धार्मिक और हीगलवादी। विचार रहित चच गामी को यह सुनकर धक्का लगेगा कि उसे इसाई बनना सीखना चाहिए। वह सोचता है कि वह पूणत ईसाई है। क्योकि वह ईसाई समाज मे रहता है। वह ईसाई उफ सु नागरिक है (जसे कि कुछ भिन्न परिस्थितियो म वह मुसलमान या हिन्दू होता) पर इसलिए नही कि उसन ऐसा होने के लिए प्रयत्न करना निश्चित किया है। तो उसकी ईसाइयत वयक्तिकता विमुक्त है अर्थात् एक कमवादी का धम कम है। इसी प्रकार हीगलवादी भी दशन को अवयक्तिक बनान का प्रयत्न करता है, वह गुरुघटाल बनकर दशनशास्त्र पर निणय देता है, मानो दशन शास्त्र कभी वैयक्तिक दार्शनिको के प्रयासो के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता है।

इतना तो कीकगाद भी मानने को तयार हैं कि अमूत अवयत्तिक विचारण का भी कोई मूल्य है किन्तु इस मानवीय स्थिति पर लागू करना सवथा असभव है। उसन लिखा है, 'सदा ही यह मानव से दूर चला जाता है, इसका अस्तित्व या अन स्तित्व, वस्तुपरक दृष्टिकोण क अनुसार बिलकुल सही तरीक स असीमतया उदासीन हो जाता है'। उदाहरणाथ गणित मेरे अस्तित्व या अनस्तित्व की कोई परवाह नहीं करता। किन्तु कीकगाद के तर्कानुसार किसी अ तर्विरोध के बिना इस अमूतता को इसके सुदूरतम बिन्दु तक [आत्मपरकता या विषयिगतता (सब्जेक्टिविटी) का पूणत उन्मूलन करके] ले आना सभव नही है। क्योकि गणित भी मानव की ही उद्भावना है। इस अथ म, उसके तर्कानुसार अस्तित्व (मानव प्राणी का अस्तित्व) सार (ऐसेंस) स पूववर्त्ती है, अवैयक्तिक विचारणा की अमूतताओ से पूव तर है। और अस्तित्वयुक्त विषयी (subject) (जो कि विनान से पूव तर है) किसी वैनानिक वस्तु के रूप मे स्वय परिवर्तित नही हो सकता। कीकगाद ने अपने जनल मे लिखा है, इसे (विनान को) पौधो पशुओ और तारो के बारे म ही विवचन करने दिया जाय, किन्तु मानव भावना (spirit) के बारे मे उस तरह विवेचन करना घृणास्पद

---

1 खास तौर पर द्रष्टव्य फीलोसोफीकल फ्रेग्मेण्टस एव द कासेप्ट आव द ड्रेड (1844) क आमुख दखें तथा कनक्लूडिग अनसाइण्टिफिक पोस्टस्क्रिप्ट (1846)।

सम्भवत अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी के साथ मनुष्य और उसके संसार के उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक में समाहित है। प्लेटो के लिए अस्तित्व मात्र एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है, वर्तमान वस्तुएं वहीं तक वास्तविक हैं जहां तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) के रूप में प्रतिभासित हों। प्लेटो के अनुयायियों के कथनानुसार विश्व को जैसा कि यह वास्तव में है देखना सारों के समूह की एक ज्ञेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार, वैयक्तिकता एक दोष है। मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूंढ सकता है जबकि वह स्वयं को एक फलन में एक कार्य में पूर्णत निमग्न कर दे जैसे एक दार्शनिक या एक संरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना। सुशासक तो रूपों से और सुनागरिक आदत की शक्ति से प्रभावित होता है। दोनों में से किसी को भी न तो अपनी पसंद की फल वेदना सहनी होती है न कभी स्वयं को वचनबद्ध करना होता है। अत अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि व्यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जड़ें जर्मन रूमानियत (स्वच्छन्दतावाद) में हैं जो कि व्यक्तित्व के नाम पर १८ वीं सदी के नवज्ञान के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप में इसके उद्गम का श्रेय या कम से कम इसकी पूर्ववर्ती सरणि डालने का श्रेय डेन्मार्क निवासी सारेन कीर्कगार्द तथा जर्मन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्शे और न ही कीर्कगार्द कोई विधिसम्मत दार्शनिक थे। वे दोनों वस्तुत निश्चय ही विधिसम्मत दर्शनशास्त्र के विरुद्ध थे। किन्तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नहीं रोक सका। वास्तव में ब्रिटिश दृष्टिकोण के अनुसार स्वयं अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपों में दर्शनशास्त्र विरोधी है।

कीर्कगार्द ने विशाल [1] परिमाण में लिखा है कभी स्वयं के नाम से, कभी कल्पित नामों से जैसे कि 'न्यायाधिकारी' या 'चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामों से क्योंकि

---

1 उनकी अधिकांश रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीर्कगार्द साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें ए कीर्कगार्द ए योलोजी सपा आर० ब्रेटल (1946) या फिर आई बोर्चेस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आईन फुरुजोन (1948)। डब्लू० लाउरी कीर्कगार्द (1938) आर० जोलिवेट इण्ट्रोडक्शन टू कीर्कगार्द 1946, (अंग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशोग्राद कीर्कगार्द एण्ड हीडेगर (1953), जे० व्हाल एटयूड कीर्कगार्दियने (1938), जे० कोलिन्स द माइण्ड आव कीर्कगार्द (1953)। कीर्कगार्द ने समसामयिक नकारात्मक धर्मदर्शन एवं साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषत इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

उसकी समझ म सत्य का सर्वोत्तम उद्घाटन जीवन की विपरित ग्रादतों के नाटकीय सामुख्य से ही हो सकता है। किन्तु वह कहीं भी ग्रपने शुद्ध दार्शनिक विचारो को सीधे तौर पर प्रस्तुत नही करता है। उसका दर्शन सदा एक नीति धार्मिक सदर्भ मे उद्भूत होता है, जो कि उसकी दृष्टि मे प्रश्नो के इस सारभूत प्रश्न का कि मैं ईसाई कसे हो सकता हू समाधान निकालने के लिए एक ग्राशिक प्रयत्न है।[1]

उसकी विचारणा मे ईसाइयत के दो शक्तिशाली शत्रु हैं विचाररहित चर्च-गामी धार्मिक ग्रौर हीगलवादी। विचार रहित चर्च गामी को यह सुनकर धक्का लगेगा कि उसे इसाई बनना सीखना चाहिए। वह सोचता है कि वह पूर्णत ईसाई है। क्योकि वह ईसाई समाज म रहता है। वह ईसाई उर्फ सु नागरिक है (जसे कि कुछ भिन्न परिस्थितियो म वह मुसलमान या हि दू होता) पर इसलिए नही कि उसने ऐसा हान के लिए प्रयत्न करना निश्चित किया है। तो उसकी ईसाइयत वैयक्तिकता विमुक्त है ग्रर्थात् एक कर्मवादी का धर्म कर्म है। इसी प्रकार हीगलवादी भी दर्शन को ग्रवयक्तिक बनान का प्रयत्न करता है वह गुरुघटाल बनकर दर्शनशास्त्र पर निर्णय देता है, मानो दर्शन शास्त्र कभी वैयक्तिक दार्शनिका क प्रयासो के ग्रतिरिक्त ग्रौर कुछ नही हो सकता है।

इतना ता कीर्कगार्द भी मानने को तैयार हैं कि ग्रमूर्त ग्रवयक्तिक विचारणा का भी कोई मूल्य है किन्तु इम मानवीय स्थिति पर लागू करना सर्वथा ग्रसभव है। उसने लिखा है, 'सदा ही यह मानव से दूर चला जाता है इसका ग्रस्तित्व या ग्रन स्तित्व, वस्तुपरक दृष्टिकोण क ग्रनुसार बिलकुल सही तरीके स ग्रसीमतया उदासीन हो जाता है'। उदाहरणार्थ, गणित मेरे ग्रस्तित्व या ग्रनस्तित्व की कोई परवाह नही करता। किन्तु कीर्कगार्द के तर्कानुसार किसी ग्र तर्विरोध के बिना इस ग्रमूर्तता को इसके सुदूरतम बि दु तक [ग्रात्मपरकता या विषयिगतता (सब्जेक्टिविटी) का पूर्णत उन्मूलन करके] ले ग्राना सभव नही है। क्योकि गणित भी मानव की ही उद्भावना है। इस ग्रर्थ म, उसके तर्कानुसार ग्रस्तित्व (मानव प्राणी का ग्रस्तित्व) सार (एसेंस) से पूर्ववर्ती है, ग्रवैयक्तिक विचारणा की ग्रमूर्तताग्रा से पूर्व तर है। ग्रौर ग्रस्तित्वयुक्त विषयी (subject) (जा कि विज्ञान से पूर्व तर है) किसी वैज्ञानिक वस्तु के रूप मे स्वय परिवर्तित नही हो सकता। कीर्कगार्द ने ग्रपने जर्नल मे लिखा है, 'इसे (विज्ञान का) पौधा पशुग्रो ग्रौर तारों के बारे मे ही विवेचन करने दिया जाय, किन्तु मानव भावना (spirit) क बारे में उस तरह विवेचन करना घृणास्पद

---

1 खास तौर पर द्रष्टव्य फीलोसोफीकल फ्रैग्मेण्ट्स एव द कॉसेप्ट ग्राव द ड्रेड (1844) क ग्रामुख दर्शे तथा कनक्लूडिंग ग्रनसाइण्टिफिक पोस्टस्क्रिप्ट (1846)।

सम्भवत अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी के साथ मनुष्य और उसके ससार के उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक म समाहित है। प्लेटो के लिए अस्तित्व भाव एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है वतमान वस्तुए वही तक वास्तविक हैं जहा तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) के रूप म प्रतिभासित हो। प्लेटो के अनुयायियो के कथनानुसार विश्व को जसा कि यह वास्तव मे है देखना सारो के समूह की एक नेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार, वयक्तिकता एक दोष है । मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूढ सकता है जबकि वह स्वय को एक फलन म एक काय म पूणत निमग्न करदे, जस एक दाशनिक या एक सरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना । सुशासक तो 'रूपो' स और सुनागरिक आदत की शक्ति से प्रभावित होता है। दोनो म स किसी को भी न तो अपनी पस द की फल वेदना सहनी होती है न कभी स्वय को वचनबद्ध करना होता है। अत अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि व्यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जडे जमन रूमानियत (स्वच्छ दतावाद) म है जा कि यत्तित्व के नाम पर १८ वी सदी के नवजागरण के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप म इसके उद्गम का श्रेय या कम से कम इसकी पूववर्ती सरणि डालन का श्रेय डे माक निवासी सॉरेन कीकगाद तथा जमन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्शे और न ही कीकगाद कोई विधिसम्मत दाशनिक थे। वे दोनों वस्तुत निश्चय ही विधिसम्मत दशनशास्त्र के विरुद्ध थे। किन्तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नही रोक सका। वास्तव म ब्रिटिश दष्टिकोण के अनुसार स्वय अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपो म दशनशास्त्र विरोधी है।

कीकगाद ने विशाल [1] परिमाण म लिखा है कभी स्वय के नाम से, कभी कल्पित नामो से जसे कि न्यायाधिकारी या चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामो से क्योंकि

---

1 उनकी अधिकाश रचनाओ का अग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीकगाद साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें, ए कीकगाद एन्थोलोजी सपा आर० ब्रेटल (1946) या फिर आई बोचेंस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आईन फुरजोन (1948)। इ लू० लाउरी कीकगाद (1938), आर० जोलिवेट इण्ट्रोडक्शन टू कीकगाद 1946, (अग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशोग्रोद कीकगाद एण्ड हीडगर (1953), जे० हाल एटयूड कीकगार्दियने (1938), जे० कोलिन्स द माइण्ड आव कीकगाद (1953)। कीकगाद ने समसामयिक नकारात्मक धमदशन एव साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषत इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार मे, इससे अपनी त्रुटियां हम ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नही होते, इसीलिये वे नही जान सकेंगे कि उ होने गलती कहा की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालो और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वय का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगेलवादियो के विरुद्ध कीर्कगाद तक प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे ऐसा बना देते है क्योंकि हम (चुनाव के स्वैच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहा से हम प्रारभ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बडा कदम एक स्वतत्र निर्णय है। कीर्कगाद का कहना है कि सौंदय शास्त्रीय से वैनानिक, और फिर वैनानिक से नतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप म तकसगत नही ठहराई जा सकती। यह हर मामले मे वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा म एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जसी कि कीर्कगाद न देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण हैं, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरतनता (इटनल) से सबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने में असमथ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्टत ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तकसगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर विशेषत आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नही, बल्कि हमारी नैराश्य जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि वास्तविक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असास्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है मानो वह पूर्णत अस्थायी तथा सकुचित एव व्यावहारिक उद्देश्यो मे हा निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव सुलभ हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु इस बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वय को ऐसे फशन म रहने के लिए मजबूर करना पडता है। फिर भी महान कठिन क्षणों म उसे निराशा का सामना करना ही पडता है। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही स्वय को जान पाता है,' कीर्कगाद यहा सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाते हैं।

तो कीर्कगाद के चिन्तन का सार ह ईसाईयत। इसके विपरीत नीत्शे[1] इस

---

1 अध्याय 5 भी देखें।

और अधार्मिक है जिससे नीतिपरकता एवं धार्मिक एषणा कमजोर [1] हो जाती हो। उसने यह तक भी दिया है कि विषयी अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण एक ऐतिहासिक प्राणी है और यहां रहता है, और अब अपने भविष्य व अपनी मुक्ति के बारे में भावनापूर्ण रूप से सलग्न (involved) है। इसके विपरीत, हीगल के तमाम बहानों के बावजूद अमूर्त विषय-परक जांच से इस ऐतिहासिक परिवर्तन में संनिहित गतिमयता और वैयक्तिकता के बारे मे कुछ भी पता नहीं चलेगा।

जब दार्शनिक हमे विषयपरक बनने और हमारे मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण को छोडने के लिए आग्रह करते हैं तो कीर्कगार्द के विचारानुसार उनका तात्पर्य यही है कि हमे अस्तित्वों को अस्वीकार कर देना चाहिए तथा अपना सपूर्ण ध्यान सार-समूहों पर केंद्रित करना चाहिए। कीर्कगार्द ने सुझाव दिया है कि यदि हमे सत्य तक पहुंचना है तो हम बिलकुल विपरीत दिशा म चलना चाहिए। उसका कहना है कि सौंदर्यबोध के साथ जीवित रहना ही पर्याप्त नही है। सभावनाओं की वास्तविकता के बारे मे स्वय को अप्रतिबद्ध रखते हुए उनसे खेलना या बौद्धिक रूप से अर्थात् प्लटोनिक तरीके से सार समूह के अनुचिन्तन मे निमग्न रहना भी पर्याप्त नहीं है।[2] ऐसा करने से वस्तुत वे सत्य जो हमसे सदा सबद्ध हैं, (निश्चय ही यहां कीर्कगार्द का ध्यान ईसाई सत्य की ओर ही है) कभी हमारे हाथ नहीं आएगे क्योंकि सत्य तो अस्तित्व से बधा है न कि सार समूह स। सत्य वस्तुत विषयिगत या आत्मपरक (सब्जेक्टिव) है कीर्कगार्द के अनुसार सत्य केवल वही है जिसे हमने प्रयत्न करके जाना है प्रतिबद्धता के द्वारा सामना करते हुए, इसे अपनी प्रकृति का अग बनाते हुए तथा अपने प्रयत्नों द्वारा ग्रहण किया है। उसका विचार है कि समाज हमे वस्तुपरक बनाने को मजबूर करता है' यह हमसे अपेक्षा रखता है कि हम अपनी वैयक्तिकता को एक नियतता (Type) मे और अपने ज्ञान को अमूत साधारणीकरणो म निमग्न हो जाने दें। अत हमारे लिए विषयिपरक या आत्मपरक होना आसान नही है, किन्तु किसी अन्य रूप मे हम अमूर्तताओ से अस्तित्व की ओर नही जा सकते। यह मजबूरी है।

हम किससे प्रतिबद्ध हैं यह कीर्कगार्द के लिए अधिक महत्वपूर्ण नही है, महत्वपूर्ण यह है कि हम किस प्रकार प्रतिबद्ध हैं। ऊर्जा, लगन तथा चुनाव करने मे सहायक

---

1 दर्शनशास्त्र को मानवीकरणमुक्त (डी–एन्थ्रोपोमोर्फाइज) किए जाने के सबध म इस विचार से विपरीत विचारधारा के लिए देखें एलेक्जेण्डर की रचनाए। इसके अलावा ब्रितानी व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद से अस्तित्ववाद की समानता नोट करें। (विशेषत सेथ पर लिखा अध्याय देखें)

2 विभेद के लिए देखें स टयाना लाइफ आव द स्पिरिट।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार मे, इससे अपनी त्रुटिया हमे ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन, अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नही होते, इसीलिये वे नही जान सकेंगे कि उन्होने गलती कहा की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालों और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वय का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगलवादियो के विरुद्ध कीर्कगार्द तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे वैसा बना देते है क्योंकि हम (चुनाव के स्वच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहा से हम प्रारम्भ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बढ़ा कदम एक स्वतन्त्र निर्णय है। कीर्कगार्द का कहना है कि सौंदय-शास्त्रीय से वैज्ञानिक, और फिर वैज्ञानिक से नैतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप में तर्कसगत नही ठहराई जा सकती। यह हर मामले मे वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा में एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जैसी कि कीर्कगार्द ने देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण हैं, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरतनता (इटर्नल) से सबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने मे असमर्थ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्टत ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तर्कसगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर विशेषत आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नहीं, बल्कि हमारी नराश्य-जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि तात्विक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असास्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है माना वह पूर्णत अस्थायी तथा सकुचित एव व्यावहारिक उद्देश्यों में ही निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव सुलभ हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु इस बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वय को ऐसे फशन मे रहने के लिए मजबूर करना पडता है। फिर भी महान कठिन क्षणों मे उसे निराशा का सामना करना ही पड़ता हैं। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही 'स्वय को जान पाता हैं' कीर्कगार्द यहा सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाते हैं।

तो कीर्कगार्द के चिन्तन का सार है ईसाईयत। इसके विपरीत, नीत्शे[1] इस

1 अध्याय 5 भी देखें।

और अधार्मिक है जिससे नीतिपरकता एवं धार्मिक एषणा कमजोर [1] हो जाती है। उसने यह तक भी दिया है कि विषयी अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण एक ऐतिहासिक प्राणी है और यहां रहता है, और अब अपने भविष्य व अपनी मुक्ति के बारे में भावनापूर्ण रूप से सलग्न (involved) है। इसके विपरीत, हीगल के तमाम बहानों के बावजूद अमूर्त विषय-परक जाच से इस ऐतिहासिक परिवर्तन में सन्निहित गतिमयता और वयक्तिकता के बारे म कुछ भी पता नहीं चलेगा।'

जब दार्शनिक हमे विषयपरक बनने और हमारे मात्र वयक्तिक दृष्टिकोण को छोडने के लिए आग्रह करते हैं तो कीर्कगाद के विचारानुसार उनका तात्पर्य यही है कि हमे अस्तित्वो को अस्वीकार कर देना चाहिए तथा अपना सपूर्ण ध्यान सार-समूहों पर केन्द्रित करना चाहिए। कीर्कगाद ने सुझाव दिया है कि यदि हमे सत्य तक पहुचना है तो हम बिलकुल विपरीत दिशा मे चलना चाहिए। उसका कहना है कि सौंदयबोध के साथ जीवित रहना ही पर्याप्त नहीं है। सभावनाओं की वास्तविकता के बारे मे स्वय को अप्रतिबद्ध रखते हुए उनसे खेलना या बौद्धिक रूप से अर्थात् प्लेटोनिक तरीके से सार समूह के अनुचिन्तन म निमग्न रहना भी पर्याप्त नहीं है।[2] ऐसा करने से वस्तुत वे सत्य जो हमसे सदा सबद्ध हैं (निश्चय ही यहा कीर्कगाद का ध्यान ईसाई सत्य की ओर ही है) कभी हमारे हाथ नही आएगे क्योंकि सत्य तो अस्तित्व से बधा है, न कि सार समूह से। सत्य वस्तुत विषयिगत या आत्मपरक (सब्जेक्टिव) है कीर्कगाद के अनुसार सत्य केवल वही है जिसे हमने प्रयत्न करके जाना है प्रतिबद्धता के द्वारा सामना करते हुए, इसे अपनी प्रकृति का अग बनाते हुए तथा अपने प्रयत्नो द्वारा ग्रहण किया है। उसका विचार है कि समाज हमे वस्तुपरक बनाने को मजबूर करता है' यह हमसे अपेक्षा रखता है कि हम अपनी वयक्तिकता को एक नियतता (Type) मे और अपने ज्ञान को अमूर्त साधारणीकरणों म निमग्न हो जाने दें। अत हमारे लिए विषयिपरक या आत्मपरक होना आसान नही है किन्तु किसी अन्य रूप मे हम अमूर्तताओं से अस्तित्व की ओर नहीं जा सकते। यह मजबूरी है।

हम किससे प्रतिबद्ध है यह कीर्कगाद के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि हम किस प्रकार प्रतिबद्ध हैं। ऊर्जा, लगन तथा चुनाव करने मे सहायक

---

1 दर्शनशास्त्र को मानवीकरणमुक्त (डी-एन्थ्रोपोमोरफिज) किए जाने के सबध मे इस विचार स विपरीत विचारधारा के लिए देखें एलेक्जेण्डर की रचनाए। इसके अलावा ब्रितानी व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद से अस्तित्ववाद की समानता नोट करें। (विशेषत सेथ पर लिखा अध्याय देखें)

2 विभेद के लिए देखें स टयाना लाइफ आव द स्पिरिट।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार में, इससे अपनी त्रुटियां हमें ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन, अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नहीं होते, इसीलिये वे नहीं जान सकेंगे कि उन्होंने गलती कहां की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालों और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वयं का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगेलवादियों के विरुद्ध कीर्कगार्द तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे वैसा बना देते हैं क्योंकि हम (चुनाव के स्वच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहां से हम प्रारंभ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बड़ा कदम एक स्वतंत्र निर्णय है। कीर्कगार्द का कहना है कि सौंदर्य शास्त्रीय से वैज्ञानिक, और फिर वैज्ञानिक से नैतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप में तर्कसंगत नहीं ठहराई जा सकती। यह हर मामले में वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा में एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जैसी कि कीर्कगार्द ने देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण है, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरंतनता (इटर्नल) से संबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने में असमर्थ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्टत ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तर्कसंगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर विशेषत आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नहीं, बल्कि हमारी नराश्य-जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि तात्विक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है मानों वह पूर्णत अस्थायी तथा संकुचित एवं व्यावहारिक उद्देश्यों में ही निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव सुलभ हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु इस बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वयं को ऐसे ध्यान में रहने के लिए मजबूर करना पड़ता है। फिर भी महान कठिन क्षणों में उसे निराशा का सामना करना ही पड़ता है। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही 'स्वयं को जान पाता है,' कीर्कगार्द यहां सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाते हैं।

तो कीर्कगार्द के चिन्तन का सार है ईसाईयत। इसके विपरीत, नीत्शे[1] इस

[1] अध्याय 5 भी देखें।

अनुमान से प्रारंभ करता है कि ईश्वर मर चुका है। उसने यह तक प्रस्तुत किया है कि मानव मानवीय स्थिति का पुन परीक्षण इस तथ्य को ध्यान मे रखकर करना सीखे कि ईश्वर की सत्ता मे विश्वास रखना संभव नही रहा है। यदि कीर्कगार्द की *समस्या यह है कि मै ईसाई कैसे बनू ? तो नीत्शे की समस्या है कि नास्तिक के रूप में मै कैसे जिऊ ?*

तथापि नीत्शे और कीर्कगार्द के मध्य समानता के कई महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिससे यह मात्र एक आकस्मिक घटना नही रही है कि उनका प्रभाव अस्तित्ववाद मे घुलमिल गया है। दोनों ही दार्शनिक मानवीय स्थिति के साथ भिन्नमार्गी होते हुए *भी भावनात्मक रूप से लगाव रखते हैं।* वे दोनों संपूर्ण के अमूर्त के, *वस्तुगतता के तथा* प्रणालीबद्धता के दर्शन को भ्रम कहकर खण्डित कर देते हैं, दोनो के लिए जीवन *तर्कशास्त्र से बड़ा है। नीत्शे ने लिखा है यह बात दरअसल महत्वपूर्ण है* और इससे ही सारा फर्क पड़ता है कि क्या एक विचारक अपनी उन समस्याओ के साथ वैयक्तिक संबंध रखता है जिनसे वह अपना भविष्य अपनी आवश्यकता और अपनी उच्चतम प्रसन्नता देखना चाहता है, अथवा वह उन्हें केवल अवैयक्तिक रूप से सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि के पंजो की पकड़ मे लेकर अनुभव करना चाहता रहता है। यह कहने वाला कीर्कगार्द भी हो सकता था या अन्य कोई भी अस्तित्ववादी ऐसा कह सकता है। पुन कीर्कगार्द और नीत्शे, दोनो 'सार समूह' को एक ऐसी युक्ति समझते हैं जिसे कि मनुष्य विश्व को पालतू बनाने तथा इसे किंचित निरपेक्ष व स्थिर बना देने के काम मे लेते हैं। वास्तविक जगत, उनके कथनानुसार, ऐतिहासिक तथा अस्तित्वपरक है जैसा कि एक साहसी मानव, अभिकर्त्ता के रूप मे उसे देखता है किन्तु वह अमूर्त विचार द्वारा ग्राह्य नही है परे स्थित है क्योकि विचार का काम स्वाभाविक तौर पर नियत नमूनो (टाइप्स) से ही पड़ता रहता है। और कीर्कगार्द की तरह नीत्शे भी असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व मध्यकोटि के उस व्यक्ति पर कटुता पूर्वक आक्रमण करता है जिसका उच्चतम आदर्श स्वयं का अधनिमग्न करना कर्त्ता का पुन करना *तथा एक मानव की अपेक्षा मानव बनना है।*

जर्मनी के दो अग्रणी अस्तित्ववादी हैं, येस्पर्स एवं हैडेगर जो स्वभाव तथा पद्धति मे बिलकुल विभिन्न, ध्रुवीय दूरी पर स्थित हैं। येस्पर्स किसी भी रूप मे विधिसम्मत तत्वशास्त्री नही हैं चाहे उसने तत्वशास्त्रीय विषयो पर बड़ी पुस्तकें लिखी हो। *उसका रुचि-केन्द्र अच्छा जीवन है। उसका तत्वशास्त्र आनुषंगिक है* जो प्राथमिक रूप से चिकित्सात्मक काम करता है। वह वस्तुपरकता की दार्शनिक रुग्णता (malaise) से ग्रस्त होने से हमे ठीक करने का दावा करता हैं। दूसरी ओर है हैडेगर वृहत् ट्यूटोनिक स्तर का तत्वशास्त्री है। वह स्वयं के लिए ज्ञानमीमांसा के दलदल मे से दर्शनशास्त्र को शास्त्रीय तात्विकी (Ontology) के विस्तृत खुले

मैदानों में [जहां सत्ताशील (वीग) व असत्ताशील (नाट वीग) पर विवेचन होता है] ले जाने का दम भरता है। वह वस्तुत इन्कार करता है कि उसे उचित तौर पर अस्तित्ववादी हो कहा जाए, क्योंकि वह, अपने कथनानुसार, सार समूह का एक अमूर्त सिद्धान्त बना रहा है, किन्तु एक ओर तो वह कीर्केगाद के, और दूसरी ओर सात्र के, इतना निकट है कि उसके विरोध निरर्थक से रह गए हैं।

यास्पर्स[1] ने अपना जीवन सन् 1913 मे जनरल साइकोपथोलोजी प्रकाशित करके मनो-रोगवैज्ञानिक (Psycho Pathologist) के रूप में शुरू किया था। किन्तु उसने शीघ्र ही निर्णय किया कि तद्गत रुचि एवं महत्ता के होते हुए भी मनोरोगविज्ञान आत्म (Self) का पूर्ण विवेचन नहीं कर सकता। आत्म, जो कि निर्णय लेता है, अर्थात् अविकृत आत्म (तुलनीय काट की पारवर्ती आत्मा) उस अनधिकृत (या अनुभववादी) आत्म से किंचित ऊपर है जो हमारी शारीरिक बनावट, हमारी आनुवंशिक मूलपरम्पराओं तथा हमारे सामाजिक ढाचों से बना है, जिनका अध्ययन मनोवैज्ञानिक करता है, और कुछ अंशों में उनकी व्याख्या भी करता है। आधुनिक समाज में व्याप्त खतरा, जैसा कि यास्पर्स ने देखा है, यह है कि हमें पूर्ण रूप से स्वयं को अपने अनधिकृत आत्म में पहचानना पड़ता है। पीड़ा अपराध व मृत्यु जैसी अंतिम स्थितियों का महत्त्व यही है कि वे हमें इस अनधिकृत आत्म के खोखलेपन को पहचानने के लिए बाध्य करती हैं। इन कठिन परिस्थितियों में हम यह समझने लगते हैं कि सासारिक अस्तित्व पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

अनधिकृत आत्म का अस्तित्व कुछ ऐसा है जिसको यास्पर्स ने 'विद्यमान होना' बतलाया है। इसको वस्तुपरक वैज्ञानिक जांच के द्वारा ढूढा तथा वर्णित किया जाना चाहिए। यास्पर्स विज्ञानविरोधी नहीं है, न ही वह सोचता है कि संसार की कार्य-पद्धति को जानने के लिए विज्ञानातिरिक्त कोई और अच्छा उपाय है। किन्तु पूर्ण वस्तुपरकता का आदर्श उसकी विचारणा में मोटे तौर पर संकुचित सीमाओं में प्रतिबद्ध है। मनुष्य के विज्ञान (जिसका उल्लेखनीय उदाहरण इतिहास है) रुचि से

---

1 केवल उनकी लघु पुस्तकें ही अंग्रेजी में अनूदित हुई हैं। देखें द पेरेनियल स्कोप आव फिलोसोफी (1949) [जो देर फिलोसोफिश ग्लौबे (1948) का अनुवाद है] एवं वे टू विजडम (1951) [जो इनफुहरूंग इन डाएफिलोसोफी (1950) का अनुवाद है।] अस्तित्ववाद के लिये सामान्य पुस्तकें पढ़ें– ई० ऐलन द सेल्फ एण्ड इट्स हेजड्स ए गाइड टू द थोट आव कार्ल यास्पर्स (1951), जे० डी० टार्वड्क स एक्जिस्टेस द एथिक्स कार्ल यास्पर्स (1945), जे० एन० हार्ट गाड ट्रासेंडेंस एण्ड फ्रीडम इन द फिलासोफी आव कार्ल यास्पर्स आर० एम० (1950) भी देखें।

शून्य, तथा धूलि सम शुष्क हैं [यह तक उसने दिया है,] यदि उनका अध्ययन तत्व शास्त्रीय अन्तदृष्टि से नही किया जाए और मूल्यो की किसी विधि द्वारा उन तक पहुँचा न जाए। अन्तदृष्टि एव मूल्य दोनों ही विनान के क्षेत्र स बाहर स्थित हैं। अन्त मे वह कहता है कि दशनशास्त्र विनान से शुरू होता है किन्तु उस बिन्दु पर ठहर नही सकता।

अनधिकृत आत्म की तुलना मे अधिकृत आत्म ऐसा नही है जिसे कि विनान ढूढे। यह तो एक प्रकार का अस्तित्व है जिसे यास्पस ने 'अपने आप म विद्यमान होना' कहा है। बस। क्योंकि यह स्वय मे मात्र एक सम्भावना है, चुनाव की मात्र क्षमता है। यह उसके सुझाव के अनुसार अनधिकृत आत्म पर अधिकार करके तथा इसक माध्यम स काम करके ही सक्रिय हो मकता है। तथापि अधिकृत आत्म के लिए ससार का कोई अर्थ है जिसे अनधिकृत आत्म अपने साधनो से कभी भी ढूढ नही सकता। अनधिकृत आत्म को सम्मिलित करते हुए, विश्व अधिकृत आत्म के लिए एक विधान (Code) है, चिन्हों की एक व्याख्येय पद्धति है। यह उस पारवर्ती स्थिति की ओर (उसकी ओर जो अपने आप मे विद्यमान है) उछाल लगाने की शुरूआत है। यास्पस के अनुसार आत्मा की यह व्याख्यात्मक गतिविधि कोई दशनशास्त्र नही है। दशनशास्त्र का सम्बन्ध उन सब तत्वों से हैं जो ज्ञेय हैं जिनमे सब समा जाता है। अच्छा विनान तथा अच्छा तत्वशास्त्र अच्छा दशनशास्त्र हो सकता है। यदि यास्पस वस्तुस्थितिवादी के इस कथन के विरोध मे तक देता है कि दशनशास्त्र को विनान नही बनाया जा सकता तो प्रत्ययवादी के इस कथन के विरुद्ध भी वह पूण विश्वास रखता है कि विनान इससे विभेद का उपयुक्त बिन्दु है।

फिर भी वनानिक अपनी कार्यगत सामग्री से विवश हैं जबकि (यास्पस के द्वारा वर्णित उसके काम क अनुसार) तत्वशास्त्री इस प्रकार विवश नही है। विश्व के बारे मे अधिकृत आत्म द्वारा व्याख्या करने का निणय एक स्वतन्त्र निणय हैं। पारवती वस्तुपरक विनान जसी कोई चीज नही हैं। यास्पस ने अन्त मे कहा है कि तत्वशास्त्र अपना औचित्य नही बता सकता क्योकि इसका प्रदशन नही हो सकता हमे इसके बारे म कुछ पता नही हैं, तत्वशास्त्री तो इतना ही कर सकता है कि मनुष्य की उन शक्तियो से अपील करे जो उसे दाशनिक विचार की ओर प्रेरित करें। अब तक तत्वशास्त्रीय सत्य आत्मपरक हैं विषयिगत हैं।

तथापि तत्वशास्त्र मात्र स्वेच्छात्मक (आरबिट्रेरी) नही हैं ऐसा यास्पस हमे समझाने का प्रयत्न करता हैं। उसका कहना हैं कि तत्वशास्त्री उन चिन्तको के समाज के अन्तगत काम करता है जिन्होंने परस्पर मिलकर दाशनिक परम्पराए बनाई हैं अर्थात् शाश्वत दर्शनशास्त्र की स्थापना की हैं। तत्वशास्त्रियो को इस परम्परा के

सम्मुख नत होना चाहिए। इसके साथ ही वे दार्शनिक भी, जो यास्पर्स के नैतिक दृष्टिकोण के प्रति सहानुभूतिपूर्ण प्रवृत्ति रखते हैं उसके तत्वशास्त्र को उद्भ्रांतिजनक रूप से तरल अनिश्चित तथा एकांगी कहकर तिरस्कृत करते हैं। शाश्वत दर्शनशास्त्र में, जैसा कि इसे वह देखता है, स्पष्टता तथा विधिसम्मत ढांचे का (जो सामान्यतया दर्शनशास्त्र का सामान्य लक्षण माना जाता है) अभाव है। कुल मिलकर यास्पर्स की प्रशंसा तत्वशास्त्री की अपेक्षा आधुनिक सभ्यता के आलोचक के रूप में ही की जाती है।

इसके विपरीत हैडेगर निश्चयत अपने विचित्र तरीके से एक रीतिसंगत तत्वशास्त्री है, चाहे उसकी वृहत् रीतिसंगत रचना 'बींग एण्ड टाइम'[1] (1927) कभी पूर्ण न हो पाई हो। मूलत वह रोमन कथोलिक है और उसकी प्रारम्भिक दार्शनिक शिक्षा स्कूलवादी नैपुण्य पर आधारित थी जिससे कि इस बात का पता चलता है कि वह सार अस्तित्व 'भाव' और 'अभाव' के बारे में इतने स्वाभाविक रूप से बात कैसे करता रहता है। बाद में उसने विंडलबेंड तथा रिकर्ट के अधीन अध्ययन किया जिससे कि सम्भवत उसने वास्तविकता की ऐतिहासिक प्रकृति पर बल प्राप्त किया और अन्त में उसने हुस्सल के साथ काम किया, जो इस समय तक परवर्ती संघटनवादी बन चुका था, और हैडेगर पर जिसका प्रभाव अत्यधिक रहा है[2]।

इंगलैंड में हैडेगर को बहुधा इस बात का भयानक उदाहरण माना जाता है कि तत्वशास्त्र कितना अर्थहीन हो सकता है। कार्नेप ने हैडेगर के 'ह्वाट इज मेटाफिजिक्स' से जिस एक स्थल को तत्वशास्त्र के बेहूदा स्वरूप को चित्रित करने के लिए उद्धृत किया है उसे क्लासिकल उदाहरण का दर्जा मिल चुका है। वस्तुत

1 डब्लू ब्रोक एग्जिस्टेंस एण्ड बींग (1949) में पदान्वय देखें। इसमें हैडेगर के बहुत से निबन्ध हैं, जैसे ह्वाट इज मैटाफिजिक्स ?" (1929) तथा 1943 का इसका परिशिष्ट। देखें, एम० विग्चोग्रेड कीर्कगार्द एण्ड हैडेगर (1954), ए० डे० वाउल्हे स ला फिलोसोफी डी मार्टिन हडेगर (1942), एम० ग्लिकमैन "ए नोट आन द फिलोसोफी आव हैडेगर' जे० पी० 1938) के० लोविथ हैडेगर प्रोब्लेम एण्ड बकग्राउण्ड आव एक्जिस्टेंशयलिज्म' (सोशल रिसर्च 1948), पी० मेरलन 'टाइम-कोन्शसनैस इन हसर्ल एंड हैडेगर" (पी० पी० आर० 1947), डब्लू एच बकमीस्टर 'एन इण्ट्रोडक्शन टू हैडेगर्स एग्जिस्टेंशल फिलोसोफी" (पी० पी० आर० 1941), एम० ग्रीन मार्टिन हैडेगर (1957)।

2 अमरीकी विख्यात संघटनवादी एम० फार्बर द्वारा की गई पी० पी० आर० 1945 में हैडेगर की कटु आलोचना देखें।

'निषेधबोध (निहिलेशन) न तो जो विद्यमान है उस का निमूलन है, और न ही यह निषेध से उद्भूत होता है। कोई वस्तु स्वयं का निमूलन नहीं करती।' जैसे वाक्य व्यक्ति पर यही प्रभाव छोड़ते हैं कि वास्तव में कहीं बड़ी गलती हो गई है।

आयर ने "लेंग्वेज ट्रूथ एण्ड लोजिक" नामक अपनी पुस्तक में हमें आश्वासन दिया है कि हैडेगर पथभ्रष्ट हो गया है क्योंकि उसने यह गलत धारणा बनाली है कि प्रत्येक शब्द का एक नाम होता है, चूंकि 'अकिंचित कुछ नहीं' (nothing) शब्द की कोई इयत्ता भी होनी चाहिए जिसका कि यह नाम है। किन्तु आयर द्वारा हैडेगर की तात्विकी की कल्पप्रिय और सीधी सादी व्याख्या को पर्याप्त मानना कठिन है, क्योंकि हैडेगर स्पष्टतः कहता है कि 'अकिंचित' 'कुछ नहीं' न तो वस्तु है और न ही ऐसी कोई चीज जो विद्यमान हो। 'अकिंचित न तो स्वयं ही उद्भूत होता है और न ही अस्ति से पृथक कोई ऐसी चीज है जो कि उससे अनुबंधित हो।' अतः कुल मिलाकर हैडेगर 'अकिंचित को ही मूर्त रूप नहीं दे रहा है। हम उसकी *तात्विकी का मूल अन्यत्र खोजना होगा।*

वस्तुतः जो वह करने की कोशिश कर रहा है वह है कीर्कगार्द कृत मानवीय स्थिति के विश्लेषण को तत्वशास्त्र (ontology) में परिवर्तित करना जिससे कि यह तात्विकी पद्धति का स्वरूप धारण करले। इस प्रकार वह हुसर्ल के मनोविज्ञान विरोधी कार्यक्रम का अनुसरण कर रहा है, यद्यपि हम अनुभव करते हैं कि हैडेगर की तात्विकी तभी सार्थक है जब हम इसका अनुवाद पुनः मनोवैज्ञानिक शब्दावली में करें।[1]

वह भाव के तीन भेदों में स्पष्ट अन्तर बताता है। दासें अर्थात् मानव प्राणी सम्बन्धी वारेंदेन (विद्यमानता) अर्थात् सामान्य वस्तुओं की ओर जुहांदें (उपयोज

---

1 सन्म आर० वडयेव नामक रूस के अस्तित्ववादी धर्मवेत्ता की टिप्पणी। हैडेगर ने बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से कीर्कगार्द के कथ्य को युक्ति-युक्त बनाने का प्रयास किया है और उसने उसे एक अनुवाद एवं शास्त्रीय प्रणाली का रूप दे दिया है। उन्होंने विशुद्ध रूप के अस्तित्ववादी अनुभव को सीधी सादी युक्तियुक्त पदावली में बदल दिया है जो उनकी मूल आत्मा के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। ऐसा करके उसने एक असत्य एवं संकुचित भाषा का आविष्कार किया है-जबकि यही इस सिद्धान्त का ऐसा गुण है जिस पर ही उसकी सारी मौलिकता टिकी है। यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि हैडेगर ने फिलोसोफी आव वीं कभी पूरी नहीं की। और जिस अंश में उसने उसे पूरा किया है उसमें मानवी स्थिति का ही विश्लेषण मात्र है। उसके बहुत से आलोचक यह आपत्ति करते हैं कि इस विश्लेषण से एक सामान्य तात्विकी के निर्मित होने का कोई जरिया नहीं है।

नायता) अर्थात् औजार की उपयोगिता। कोई भी व्यक्ति इस तत्वशास्त्रीय वर्गीकरण की विचित्रता को तुरन्त ही दख सकता है। हमारा स्वाभाविक एतराज यह है कि मानवीय आवश्यकता की दृष्टि से ही औजार का कुछ भी महत्व है जिससे कि जोहार्दे विद्यमानता का कोई विशिष्ट प्रकार नहीं है बल्कि यह कुछ वस्तुओं और हमारे बीच क मध्य का एक सबध है। यह तो हैडेगर की सघटनात्मक पद्धति की विशेषता है कि वह इस प्रकार की आलोचना के प्रति पूर्ण उपेक्षा रखता है। उसका तक यह है कि वस्तुए हमारे उद्दश्य के लिए लाभप्रद हैं या स्वय इसी रूप में वे स्वय का हमारे निकट प्रकट करती हैं अत इसी से पता चलता है कि वे हैं क्या। यही उनका स्वरूप है।

उसने सुझाव दिया है कि मानव प्र णी का दासें' (जो कि उसकी विशिष्ट तत्वशास्त्रीय स्थिति है) इसमे निहित है कि वह यहा अथवा वहा' विद्यमान नहीं है, किन्तु अपनी प्रकृति के कारण उसका स्वरूप है ससार के समग्र स्थानों म गति, अथवा एक गतिविधि किसी को यह नहीं कहना चाहिए कि वह ससार म भ्रमण करता है, क्योंकि इससे यह सकेत मिलगा कि वह प्रथम तो दिक व काल में एक बिन्दु पर था और बाद म दूसरे पर। *वास्तव म यह उसकी प्रकृति है कि वह सदा* ही स्वय से आगे रह, तथा एक ऐसी चीज के रूप म रहे जो कि भविष्यत है, भावी है। दासें (जसी कि हैडेगर ने पदार्थ की व्याख्या की है) 'ससार मे पूवत विद्यमान स्वय का अग्रवर्ती" और ससार म सम्प्राप्त वस्तुओं से सबद्ध सत्ता के समान' है। आत्म तथा ससार जसी दो वस्तुयें कहीं नहीं है, वहां ता 'ससार म आत्म' ही ह।

चू कि यह मानव प्राणी का स्वभाव है कि वह स्वय का अग्रवर्ती रहे अत हैडेगर के विचार म, मृत्यु का अनुभव उसके लिए अत्यधिक महत्व का है। मृत्यु एक ऐसी स्थिति मात्र नहीं है जो कि व्यक्ति को किसी विशिष्ट समय पर पृथक कर दे, यह तथ्य हमारी प्रकृति के निर्माण में सहायता करता ह कि हम विलीन होंगे। मन की स्वय के लिए चिंता, इसके द्वारा इस बात का अभिज्ञान कि आवश्यक रूप स उसका रूप भावी (भविष्य) ह, इस सत्ता के विरुद्ध इसके सर्वाधिक घातक रूप मे ला खडा करता है, मानो यह उसका विनाश हो।

हम अपनी मृत्यु को रीतिरिवाजों म आवृत करके छिपा सकते हैं। हैडेगर के तक के अनुसार यह व्यवस्था इस पद्धति की परिचायिका है जिसम मानव प्राणी अपने दासें अर्थात् अपने अधिकत भाव से परे हट सकता है। वह 'एक आदमी नहीं बल्कि आदमी बन जाता हैं। वह वही करता ह जो प्रत्येक करता ह वह वतमान म रहने का प्रयत्न करता है वह अपनी मृत्यु के कठोर तथ्य को इस

सामान्य मृदु विचार मे परिवर्तित कर देता है कि 'मानव मरणशील है ।' कीकगाद तथा यास्पस की तरह हैडेगर इस अस्तित्व से पलायन मे हमारे युग की मूल बुराई को देखता है । शास्त्रीय तात्विकी समयानुप्राणित सत्ता की अपेक्षा स्थिरता पर बल डालते हुए विस्तृततर दुर्व्यवस्था का एक लक्षण मात्र है । अस्तित्व को फलितीकत करने का एक प्रयत्न मात्र है ।

जसा कि मैने कहा है बीइंग एण्ड टाइम अपूर्ण है । इसके प्रकाशन के बाद हैडेगर ने निबन्धों के अतिरिक्त कुछ भी प्रकाशित नही किया और उनमे सर्वोत्तम निबध एसे प्रान मेटाफिजिक्स (1929) हैं, जिसमे तकशास्त्र पर जोरदार आक्रमण उपलब्ध है । उसका कहना है कि यद्यपि तकशास्त्र को 'अकिंचित्' का नकार के रूप मे उपयोग करना पडता है किन्तु यह इसे समझ नही सकता । यह 'अकिंचित' की बात को बेहूदा मानकर तथा इस आधार पर टाल देता है कि अकिंचित् तो विचार की विशिष्ट वस्तु हो ही नही सकता । किन्तु हैडगर का कहना है कि यही बात 'जो है' के लिए भी लागू होगी जिसे कि एक समग्रता समझा जाता है । तथापि हैडगर कहता है कि, जब कभी हम अपने सामने किसी वस्तु को देखते हैं तो हम उसे समग्रता का एक अग समझने लगते हैं । विशेषत हमे वह अनुभूति तब होती है जबकि हम ऊबे हुए हो । ऊब (वस्तुत वह गहन ऊब जो अस्तित्व के महाशून्य मे से प्रसन्नता की तरह इधर उधर भटकती रहती है) जो है को प्रकट करती है । इसी प्रकार वह आगे कहता है कि आतक हमे अकिंचित का ज्ञान कराता है । हैडेगर के अनुसार तत्वशास्त्री दृष्टि से आतक प्रथम महत्व की प्रवृत्ति है । आतक की स्थिति मे (जिसे फ्रायड ने घबराहट या चिन्ता कहा है ।) हम किसी विशिष्ट वस्तु से नही डरते और फिर भी हम पूर्णतया आतकित हैं अकिंचित् से भयभीत । हैडेगर के तक के अनुसार इससे यह तथ्य उभर जाता है कि अकिंचित को नकार के रूप मे न्यूनीकृत नही किया जा सकता क्योकि अकिंचित् से भयभीत होने को 'भयभीत न होने म नही बदला जा सकता । आतक अकिंचित की आशका नही है क्योकि उसका कहना है कि अकिंचित कभी भी वस्तु नही हो सकता । फिर भी हैडेगर समझते हैं कि आतक हम अकिंचित का 'जो है' के साथ घनिष्ठ रूप से सबद्ध स्वरूप प्रदर्शित करता है । आतक म हम जो है जो कुछ भी नहीं की अपरिमेय पृष्ठभूमि मे, हैडगर उन्मूलन के तट पर प्रकपित होने देखते हैं । और तब हैडेगर के कथनानुसार उस मौलिक अनुभूति मे हमे अन्तिम तत्वदशन की समस्या का सामना करना पडता है आखिर कोई भी चीज है ही क्यों ! अकिंचित् ही क्यो नही ?

यास्पस की दाशनिक रचनाओ मे ईश्वर का मुख्य रूप पारवर्ती सत्ता का रहा है । उसकी उत्तरकालीन कृतियो मे ईश्वर का उल्लेख पूर्ण रूप से ईसाई धम

का प्रतिशय लिए है। दूसरी ओर हैडेगर को सामान्यतया नीत्शेवादी नास्तिक के
रूप स पढा जाता है, किन्तु वह इस व्याख्या को अमान्य ठहराता है। उसने अपने
लटर आन ह्यूमेनिज्म म[1] शिकायत की है कि "चूकि हमने नीत्शे की इस उक्ति
की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया कि ईश्वर मर चुका है, तो वे कहने
लग कि हम नास्तिकता का उपदेश देते हैं। क्योकि इस कल्पना से अधिक तक
सगत क्या बात होगी कि कोई भी व्यक्ति जो (वतमान युग मे) ईश्वर की मृत्यु
का अनुभव करता है पूर्णतया ईश्वरविहीन व्यक्ति माना जाय।" वास्तव मे वह
यह तक प्रस्तुत करता है कि वह ईश्वर की उस कल्पना की ओर मुखातिब है
और उसे ही मानता है जिसके अनुसार ईश्वर सर्वोच्च मूल्य के रूप मे देखा जाता
है। और उसकी सत्ता की समस्या का सामना करने से इकार किया जाता है।
तथापि हैडेगर की अपनी तात्विकी ईश्वर की सत्ता के बारे म किसी भी तरह
निश्चित नहीं है।

फ्रेंच अस्तित्ववाद मे धार्मिक प्रश्न अधिक स्पष्ट है। गब्रियल मार्सेल[2] एक
परिवर्तित कथोलिक है तो जीन पाल सार्त्र समझौता न करने वाला कट्टर नास्तिक है।
वस्तुत अस्तित्ववाद फ्रास मे भयकर धर्म-दशनात्मक विवादो का तूफानी केन्द्र
रहा है। मार्क्सवादियो ने बूर्जुआ वयक्तिकता की अभिव्यक्ति के रूप मे अस्तित्व
वाद की निंदा की है। यद्यपि मार्सेल यास्पस का बहुत बडा प्रशसक है, फिर भी
वह प्रत्ययवाद से स्वय को मुक्त करने के लिए किए गए सघर्ष के परिणामस्वरूप

1 एक फ्रासीसी अस्तित्ववादी के बहुत से प्रश्नो का उत्तर लिखते हुए हैडेगर
अपने आप को सार्त्र से अलग कर रहे हैं।

2 अभी अभी मासल ने (जो अस्तित्ववाद की कथालिको द्वारा की गई आलो
चना से प्रभावित हो गए हैं, 1950) यह मानने से इन्कार किया है कि वे एक
अस्तित्ववादी हैं। किन्तु वे सगव यह घोषणा करते हैं कि उन्होंने फ्रास म अस्तित्ववाद
का प्रवतन किया। 1947 म वास्तव म ई० गिलसन एव उनके कुछ साथियो ने
एक ग्रन्थ एग्जिस्टेंशियलिज्मे क्रेइतन गेबरील मारसल नाम से निकाला। सार्त्र
की रचनाए इण्डेक्स मे हैं। मासल के लिए देखें, एम० डी कोट सा फिलोसोफी
डी गेबरील मारसल। मासल एक नाटककार भी है तथा नाटक एव दशन के सबधों
के विषय मे वे अपनी एक विशेष धारणा रखते हैं। इनके लिए देखें, जी० फेसड द्वारा
मासल की सा सोइफ (1978) नामक पुस्तक पर लिखा गया आमुख। पी० रिकूमर
कृत गेबरील मासल एन काल यास्पर्स फिलोसोफी दू मिस्तीरो एन फिलोसोफी
दी पराडोक्स (1947) में मासल एव यास्पस की तुलना देखें। डब्लू० ई० होकिंग
मासल एण्ड द ग्राउण्ड इश्यूज आव मेटाफिजिक्स (पी० पी० आर० 1954)।

अस्तित्ववाद तक स्वतन्त्रतापूर्वक पहुंच सका है।[1] इस संघर्ष का चित्रण डायरी रूप मे उसके मेटाफिजिकल जर्नल (1947) में हुआ है जो कि इसकी समग्र अनन्तिमता, वैयक्तिक स्वरूप एवं अस्पष्टता के होते हुए भी (अथवा सम्भवतः यह कहना चाहिए कि इन विशिष्टताओं के कारण ही) मार्सेल के इस दार्शनिक आदर्श का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करता है कि तत्वमीमांसीय स्तर तक अन्ततः प्रविष्ट होने के लिए संघर्ष निरन्तर चलता रहना है पर कभी सफल नहीं होता इस संघर्ष का चित्रण अस्पष्ट होता है पर जानबूझ कर नहीं बल्कि इसलिए कि तत्वमीमांसीय स्तर स्पष्टता से परे विद्यमान रहता है। वह कहता है कि वह अपने[2] गिफ़ोर्ड लेक्चर्स से बस इसलिए सन्तुष्ट नहीं है कि वे आवश्यकता से अधिक स्पष्ट हैं और बहुत ज्यादा रीतिसंगत हैं, यद्यपि बहुत ही कम ब्रिटिश पाठक इनके बारे में यह शिकायत करना चाहेंगे।

मार्सेल के मेटाफिजिकल जर्नल में अस्पष्टतया सुझाए गए सिद्धान्त उसके 'एक्जिस्टेंस एण्ड आब्जेक्टिविटी'[3] में कुछ सीमा तक स्पष्ट कर दिए गए हैं। यह निबन्ध कीर्केगार्द की पद्धति की तरह प्रत्ययवाद पर आक्रमण के साथ शुरू होता है जिसे (अफलातूनवाद के अनुसार) यथार्थ का बुद्धिगम्य के साथ (अर्थात सार समूह या मूल्यों के साथ) तादात्म्य के रूप में समझा जा सकता है। मार्सेल के तर्कानुसार आदर्शवाद वस्तुओं को शुद्ध पदार्थों में बदल लेता है। इसे वस्तुओं की उपस्थिति दिखाई नहीं देती यह इस तथ्य को बतलाता है कि वे केवल 'सार' के शरीर-धारी के रूप में ही हमारे सम्मुख विद्यमान नहीं है बल्कि वे हमारे ऊपर अपनी सत्ता के द्वारा हमे निकटतया प्रभावित करती हैं।

अन्त मे वस्तुतः प्रत्ययवादी अस्तित्व की वास्तविकता में भी सदेह करता है। यह कहकर अस्तित्व की निन्दा की जाती है कि यह स्व-विरोधी है, तथा

---

1 खास तौर पर एंग्लो-सवमन प्रत्ययवाद से। आर एम एम (1915-19) मे उन्होंने रोयस पर एक लम्बा निबंध लिखा जो 1945 में एक अलग ग्रन्थ के रूप प्रकाशित हुआ। उन्होंने ब्रेडले का भी गहन अध्ययन किया था जिनका प्रभाव उन पर अन्त तक रहा।

2 1950 मे द मिस्टरी आव बीइंग एज ए रिफ्लेक्शन एण्ड मिस्ट्री तथा फेथ एण्ड रीएलिटी जैसे सामान्य शीर्षकों मे प्रकाशित हुआ।

3 आर० एम० एम० (1925) मे प्रकाशित। अंग्रेजी के अनुवाद के रूप में (परिशिष्ट सहित) इसका पुनः प्रकाशन हुआ जो मैटाफिजिकल जर्नल (1952) मे छपा था। कदाचित् अस्तित्ववादी धारणा की फ्रांस की धरती पर यह सर्वप्रथम आवृत्ति थी।

जहा तक इसकी वास्तविकता का सवध है, यह सार समूहो मे अथवा तक मात्रसार
याने परमात्म म सवथा निमग्न रहता है। किन्तु मार्सल कहता है कि, वास्तव मे
किसी को इस बात पर सदेह नहीं हो सकता है कि किसी चीज का अस्तित्व है या
नही। हम यह सदेह अवश्य कर सकते हैं कि जोंस ईमानदार है या नही क्योकि
उसकी ईमानदारी उसके अस्तित्व से पृथक्करणीय है, किन्तु अस्तित्वयुक्त पदार्थों
तथा उनके अस्तित्व क मध्य ऐसा पार्थक्य नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रत्ययवादी
मात्र एक धर्मादेश को लेकर चलता ह, वह अस्तित्व का मानन से सवथा इन्कार
करता ह। अपने ही तरीके स वह प्रत्येक कथन को कल्पित आकार म रख देता
ह मानो कि निश्चयात्मक एव दृढ़ अस्तित्ववादी कथनो द्वारा मात्र सामान्य
सभावनाओ के मध्य रहे सबधो को आरोपित करन के अतिरिक्त अन्य कुछ नही
किया गया ह।

मार्सल न यास्पर्स क साथ सहमति प्रकट करते हुए कहा ह कि ससार के
बारे मे इस तरह की बातचीत का भी एक मूल्य होता ह। किन्तु मनोवैज्ञानिक
की साधारण मान्यताओ एव परस्पर मानवी सम्बन्धो तथा त्रासदी से कापने वाल
मानवीय जीवन के मध्य बहुत बडा अन्तराल है, इस अन्तराल का अस्तित्व हमारे
सम्मुख साधारणीकृत विचारणा की अपर्याप्तता को स्पष्ट कर देता ह जो एक
वास्तविक अपर्याप्तता है।

कल्पना कीजिए कि दार्शनिक इस बारे मे (जसे कि प्रत्ययवाद के विरुद्ध)
यह धारणा कर लेता ह कि अस्तित्व सभी सन्देहो से परे ह। इसस उसका तात्पय
क्या ह ? मार्सल का कहना ह कि इसका निश्चय ही यह अथ नही ह कि कुछ
ऐसे अनुभववादी कथन भी होते हैं जो सन्देहास्पद नही हैं और यह अथ भी नही
ह कि यह तो एक सामान्य अस्तित्व ही ह जिसके बारे म हम सन्देह नही कर
सकत, क्योकि सामान्य अस्तित्व तो एक खोखली एव पुराणपथी कल्पना ह। मार्सल
ने आगे तक प्रस्तुत किया है कि, कि असन्देहास्पद तो विश्व का अस्तित्व है
जा इयत्ता क रूप मे नही बल्कि उस विशिष्टता को नकारता ह जो, सक्षेप मे ब्रैडल
के अनुभव या मार्सल के कथनानुसार निरपेक्ष उपस्थिति कही जा सकती ह।

मार्सल कहता है कि मानव इस विश्व मे अपनी भूमिका (काय) तुरत ही
प्रारम कर देता ह। इस काय की चेतना उसे अप्रत्यक्ष रूप से (सदेशो या सवेदनाओ
के माध्यम से) नही होती, बल्कि प्रत्यक्षत अपने शरीर के साथ तादात्म्य के
अनुभव स होती ह। यहा तक तो मार्सल स्वय को अनुभववादी कहना चाहेगा।
पर साधारण दृष्टिकोण से शरीर एक ऐसा साधन ह जो वस्तुओ के सन्देशों को
ग्रहण करता ह और उन्ह मस्तिष्क तक प्रेषित कर देता है। इसका तात्पय यह

हुआ कि मैं अपने शरीर से उसी प्रकार सबद्ध हूँ जसे कि किसी रेडियो सट मे होता। मार्सेल ने सुझाव दिया है कि शरीर के बारे मे इस प्रकार बात करते हुए मै उस अन्य पुरुष (तृतीय व्यक्ति) का दृष्टिकोण अपना रहा हूँ जो इस प्रकार के झूठे व काल्पनिक अशरीरीकरण के द्वारा मेरे व्यक्तित्व को मेरे शरीर से भिन्न मानता है। तथापि इसके आगे की विचारणा जिसे मार्सेल द्वितीय विचारणा बताता है उसके तक के अनुसार शीघ्र ही मुझे प्रदर्शित कर देती है कि यह भेद पूणत कृत्रिम है। मेरा शरीर एक ऐसे अभिन्न अथ म मेरा है कि कोई और वस्तु उतनी मेरी[1] हो हो नही सकती। इस प्रकार (जसा कि उसने लिखा है) विचारणा का काय चीरफाड एव वियोजन नही है वल्कि इसके विपरीत, निरन्तरता म उस सजीव तन्तु को उसकी समग्र निरन्तरता म पुन स्थापित करना हैं जिसे कि विश्लेषण निकाल फेंक देता है।

पुन एक बार ब्रेडले का प्रभाव प्रत्यक्ष है। ब्रेडले ने भी कहा था कि दार्शनिक विचारणा उस टूटन का ठीक करती है जिसे चिन्तन अनुभूति म बदल डालता है। कि तु जहा, ब्रेडले के कथनानुसार द्वितीय विचारणा हमे पूण की ओर ल जाती है वहा मार्सेल इसी म सतुष्ट है कि यह हम रहस्यो मे बहुत्व की ओर ले जाए। वह कहता है कि सवप्रथम हम यह मानते हैं कि मस्तिष्क से शरीर को सबद्ध करने की एक समस्या है अर्थात् एक बौद्धिक पहेली है जिसे बौद्धिक साधनों स ही हल करना है। किन्तु हम शीघ्र ही पता चल जाता है कि यह पहेली उस पहेली के समानान्तर कतई नही है जो कि सूय के धब्बो या वायुमडलीय उपद्रवों से सबधित हो? या उस पहेली से जिसमे हम रुचिविहीन दशक के तौर पर प्रविष्ट होते हैं, क्योंकि मस्तिष्क एव शरीर के मध्य सब ध को जानने के लिए हम स्वय पर विचारणा के लिए प्रेरित होते हैं विश्व में हमारी अपनी स्थिति (एव विश्व के प्रति हमारे दृष्टिकोण) के परिणमन (इम्प्लिकेशन) पर विचारणा करने के लिए विवश हो जाते हैं।

एक रहस्य म यही तो विशेषता होती है कि वह प्रथम विचारण के वस्तुपरक स्तर पर हल नही किया जा सकता, क्योंकि यह हमे अपने अस्तित्व पर विचार करने के लिए पीछे धकेल देता है। दूसरा उदाहरण ईश्वर का अस्तित्व है। ईश्वर की सत्ता भी मार्सेल के कथनानुसार बौद्धिक प्रमाणों के आगे नही ठहरती। मार्सेल टोमवादी नही है। प्रथम विचारण से यह कल्पना की जा सकती है कि ईश्वर का अस्तित्व एक समस्या है उसी तरह जसे कि मगल ग्रह पर जीवन है या नही यह एक

---

1 यह कथ्य बींग एण्ड हैविंग (1935) नामक एक अन्य तत्वमीमासीय पत्रिका म और पल्लवित किया गया है।

समस्या है। किन्तु द्वितीय विचारणा से यह प्रदर्शित होता है कि ईश्वर का अस्तित्व हमारे अपने अस्तित्व के साथ घनिष्ठ रूप से बंधा है, हमारी अपनी तात्त्विकीय प्रकृति पर ध्यान हो (न कि आकारी या औपचारिक प्रमाण) ईश्वर की ओर जाने का मार्ग है।[1]

सामाजिक-नीत्यात्मक पक्ष की दृष्टि से मार्सेल, समाज के द्वारा मानव को एक टाइप बनाए जाने पर आक्रमण में भाग लेता है जो एक सामान्य अस्तित्ववादी किया करता है। वह लिखता है, 'मुझे क्रमवादी विश्व के द्वारा उत्पन्न की गई उदासी (दुख) की कठोरतायुक्त अभिव्यक्ति पर बल डालने की कतई आवश्यकता नहीं है। सेवानिवृत्त कर्मचारी की भयावह आकृति अथवा उन नगरीय रविवारों को स्मरण करना पर्याप्त होगा जबकि पास से गुजरने वाले लोग ऐसे लगते हैं गोया कि वे जिन्दगी से भी सेवानिवृत्त हो चुके हैं। तथापि इस बात से डर कर जिसको कि वह सार्त्र के अस्तित्ववाद को अनुशासनविहीन तथा तर्करहित पक्ष कहकर निन्दा करता है, वह इन दिनों टी० एस० एलियट[2] के तरीके से परम्परा के मूल्य एवं महत्ता पर बल डालने लगा है। अब अस्तित्ववाद के लिए (जैसा की संसार सामान्यतः इसे समझता है,) हमें दर्शनशास्त्र के बहुचर्चित फरिश्ते अर्थात् जे पी सार्त्र[3] की ओर मुड़ना पड़ेगा।

अंग्रेजी भाषी देशों में सार्त्र को सामान्यतया पम्फ्लेटियर (पर्चा लिखने वाला) या एक ऐसा साहित्यिक व्यक्ति कहकर टाल दिया जाता है जो संभवत

1 देखें, आन द आण्टोलोजिकल मिस्ट्री", जो मूलतः मार्सल के नाटक 'ले माण्डेकसे' के साथ प्रकाशित हुआ, तथा अंग्रेजी में इसका अनुवाद द फिलोसोफी आव एग्जिस्टेंस (1948) पुस्तक में इस विषय के प्रथम निबंध के रूप में प्रकाशित हुआ।

2 उदाहरणार्थ देखें द डिक्लाइन आव विज्डम (1954) नाम से संकलित निबन्ध। द फिलोसोफी आव एग्जिस्टेंस में 'एग्जिस्टेंस एण्ड ह्यूमन फ्रीडम' नामक निबन्ध सार्त्र पर है।

3 देखें आर० ट्रोइसफोण्टेस ले चाइस द ज्यां पाल सार्त्र (1935), जी० वरेट ल आण्टोलोजी दी सार्त्र (1948), पी० उम्पसी द साइकोलोजी आव सार्त्र (1950) जो शीर्षक में सुझाए गए कथ्य से भी व्यापक क्षेत्रों को घेरता है। आई० मरडोक सार्त्र (1953), ए० जे० एयर नावेलिस्ट फिलोसोफर ज्यां पाल सार्त्र (होराइजन 1945), डी० एम टयूलोक सार्त्रियन एग्जिस्टेंशयलिज्म' (पी० क्यू० 1952), डब्लू० डेमा द ट्रुजिक फिनाले (1954), एच० मारक्यूस एग्जिस्टेंशयलिज्म रिमार्क्स आन ज्यां पाल सार्त्रस ल एत्रे एत् ले निआंत" (पी० पी० आर० 1947)।

युद्धोत्तर यूरापीय सस्कृति का क्षीयमणता को चित्रित करने वाले की दष्टि से रुचिकर है किन्तु दाशनिक के रूप म सवथा निरथक है । तथापि फ्रास म वह बींग एण्ड नथिंग नस नामक उस वृहत् तात्विकीय क ग्रथ के लेखक के रूप म विख्यात है जो अत्यधिक समादत है अ शत इसलिए कि इसन जमनो को उनक खुद के ही तात्विकीकरण के खेल मे हरा दिया है और अ शत इसलिए कि इसके माध्यम स हुसल, यास्पस हैडेगर जसे जमन दाशनिको के विचार फ्रेंच सस्कृति मे प्रसारित किए गए हैं ।

बींग एण्ड नथिंगनस[1] की के द्रीय महत्ता को स्वीकार करते हुए भी हम सात्र को उचित रीति से उसक सव प्रथम उप यास ला ना से (1938) क माध्यम से ही समझ सकते है । यह उपन्यास ढिलाई से परिहित गुप्त वश मे आध्यात्मिक आत्मकथा है जिसम सात्र के अस्तित्ववाद के प्रमुख तत्व (थीम) सवेगात्मक, न कि तत्वशास्त्रीय सदभ म उल्लिखित[2] हैं । ससार को तकत्मक अथवा वृद्धिवादी दष्टिकोण से समझने का प्रयत्न वस्तुत शत्रु है अ शत सात्र न इससे अधिक कुछ नही किया है कि नाटकीय रूप से उसी बात पर बल दे जिसे ब्रिटिश अनुभववादियो न अधिक शीतलता स स्थापित किया है कि आकस्मिकता अर्थात् नृशस वास्तविकता की व्याख्या छद्मवेषी आवश्यकता के रूप मे कभी नही की जा सकती है ।

फिरभी सात्र आकस्मिकता को मात्र स्वीकार करन स सतुष्ट नही है । वह इस कोटि का तकवादी है कि अस्तित्व की आकस्मिकता से इसक बेहूदा तकविहीन तथा[3] यहा तक कि अश्लील होन का निणय कर लता है । ला नाउसे मे रोक्विन्तो

1 एच० बार्निस न इसका अनुवाद लम्बा भूमिका क साथ 1950 मे अ ग्रेजी मे किया है ।

2 द डायरी आव एण्टोइन रोकेन्तीं (1949) क रूप म अनूदित । इसी का एक अमरीकी अनुवाद भी है जो इसी तिथि पर नोशिया के शीषक से प्रकाशित हुआ है । जिस कहानी क नाम स उनकी सकलन पुस्तक ल मूर (1939) का नाम पडा है उस पढना भी लाभदायक है । उनक निब धो के सग्रह ल माउसेस (1943) तथा हुइस–क्लास (1945) को पढा जा सकता हैं । उनकी उप यास शृ खला ले चेमींस दे ला लिबर्टो (1945) सात्र क नीतिशास्त्र की अस्पष्ट प्रकति को स्पष्ट करती है । ये सभी साहित्यिक रचनाए अ ग्रेजी म भी अनूदित हो गई हैं । सात्र की नीतिशास्त्र का विचित्र प्रकृति को उसकी शिष्या सीमोन द बुआए की मस्ट वी बन डो सादे ? (19˚3) तथा रोमन ए क्लेफ द मैण्डारि स (1954) म और भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं ।

3 अ ग्रेजी मुहावरा ब्रूट फक्ट (कटु सत्य) म इसकी तुलना करें । ट्रीटीज के बुक I म ह्यूम को कुछ अतिनाटकीय निष्कर्षों को सात्र की गम्भीर बचनी के साथ

सोचता है कि ' एक निरर्थक वस्तु नहीं है, किन्तु इसका अस्तित्व भी नही है । इसके विपरीत वह जड (वह एक पेड की जड को देख रहा है) इस मात्रा म अस्तित्व रखती है जिसकी मैं व्याख्या नही कर सकता । गाठदार, अचचल तथा नामविहीन इसकी स्थिति मुझे आकर्षित करती है मेरी आखो को भरती है तथा निरतर मुझे इसके स्वकीय अस्तित्व की ओर वापिस खीच ले जाती है । मेरा यह कहना व्यर्थ है कि 'वह एक जड है ।' मै स्पष्टत देखता हूँ कि जड से लेकर चूषण पम्प (सक्शन पम्प) के रूप अपने काय स किसी के द्वारा उस कठोर तथा भरपूर कच्छप चम तक अपना माग बना सकना असमव है । काय कुछ भी व्याख्या नही करता । सात्र का सुझाव है कि किसी वस्तु की गुणवत्तायें जो कि इसका अस्तित्व बनाती हैं, तकशीलता के दृष्टिकोण म कृत्रिम हैं । सक्षिप्तत इसी बात को अधिक तकनीकी रूप स यो कह सकते हैं कि परिभाषा की जाय तो अस्तित्व कोइ आवश्यकता नही है । अस्तित्व रखना तो बस विद्यमान होना है । अस्तित्ववरक वस्तुयें दृश्य बनती है । उनसे हम स्वय मिल सकते हैं किन्तु उन्हे कभी नियमित नही कर सकते । सात्र कहता है कि ससार का तकसगत कायप्रणाली म निमग्न करके आकस्मिकता को आखो से ओझल कर दना स्वय का ससार वास्तव म बसा है इस दृष्टि से अधा बना लेना है ।

इसी प्रकार स्वय को कम एव कतव्यो म निमग्न हो जाने दना स्वय को दृष्टि स ओझल हो जाने दना है । ला नाउसे कतव्य के उस स्वरूप पर जो मध्यवग ने समझ रखा है एक कटु आक्रमण है (जो कि सात्र ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है गम्भीर व्यक्ति, सीधे कार्यमार्ग के कारण प्रकाशमान) इसकी सात्र ने आत्मा की मौत कहकर प्रताडना की है । बूजुआ नतिकता पर किए गए इस आक्रमण म कोई नवीनता नही है । सात्र अपना काम कठोर एव रूक्ष व्यक्तिवाद की उस फ्रेंच परम्परा के भीतर करता रहा है जो कि अग्रेज व्यक्ति[1] को (एक आइरिश व्यक्ति स बिलकुल

भलीभाति विभेद के उदाहरण के रूप म रखा जा सकता है । ह्यूम सन्देहवाद को सामाजिक सम्बन्धो म छोड देने का आग्रह करते हैं । एमी विस्मृतिशीलता को उभारने की बात मात्र भी समाज के विरोध म कहते हैं । ससार की बेहूदगी को एलबट कामू द्वारा ले मिथ डी सिसीफी (1922) म अधिक सशक्त ढग से प्रस्तुत किया गया है । किन्तु कामू अस्तित्ववादी नही हैं । व यह विश्वास नही करते कि बेहूदगी को तात्विक रूप दिया जा सकता है । देखें एल० रोथ वत ए कण्टेम्पोरेरी मोरेलिस्ट एल्बट कामू (फिलोसोफी 1955) ।

1 इस तरह सात्र क रोकेन्तो एव जोयस क स्टीवन डेलस म काफी साम्य है । और ऐसे समय म स्विफट का स्मरण भी हो आता है ।

असमान रूप मे) बहुत ही परेशान करती रही है, किन्तु यह फ्रास मे पर्याप्त रूप से प्रचलित है और सक्षिप्त रूप मे इसे एक वर्णनात्मक मुहावरे पुग्रर एधाते ल बुर्जुग्रा के द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

तो वह अनुभूति जिसे सार्त्र ने ला नाउसे कहा है हैडेगर की उस ऊब का स्वकीय रूपान्तर हैं, जिसके माध्यम से हम जो विद्यमान हैं उसे देख पाते हैं। किन्तु सार्त्र की दृष्टि से यह विश्व को ठोस व क्रूर तथ्यो के एक समूह के रूप मे देखना है। वह समझता है कि मानव प्राणी के लिए यह विश्व बहुत भारी पडता है। यह एक ऐसा विश्व है जिसमे प्राणी को गतिमान् होना तथा सास लेना असभव सा प्रतीत होता है। किन्तु सार्त्र ने सुझाव रखते हुए कहा है कि यदि मैं इसकी आकस्मिकता (Contingency) का सामना साहस के साथ करू तो साथ ही यह देखू गा कि इसमे मेरे लिए भी स्थान है। ठीक इसलिए कि (जैसा कि कोई कह सकता है) मुझे किसी स्थान की आवश्यकता ही नही है, और इसका यह अर्थ हुआ कि काम करने की एक क्षमता मात्र हू, एक ऐसा प्राणी जिसकी प्रकृति ही विशिष्टत कुछ भी न होना' हैं। (तुलनीय अधिकृत आत्मा पर यास्पर्स के विचार)।

मानव स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे सार्त्र-कृत कल्पना की निरपेक्षता उसके दर्शन शास्त्र की विचित्रतम विशेषताओं का स्रोत है। ला नाउसे का नायक एक इतिहासकार है तथा अपनी आध्यात्मिक धर्मयात्रा के मध्य मे वह न केवल विश्व की आकस्मिकता को पहचान लेता है बल्कि भूतकाल के साथ उसकी सम्बन्धहीनता को भी जो कि उसके लिए अधिक आश्चर्योत्पादक है। वह भूतकाल से आकर्षित हुआ था क्योकि इससे प्रवहमान वर्तमान को एक द्वितीय आयाम मिलने की प्रतीति हो रही थी। उसने एक बार यह सोचा था कि प्रत्येक घटना अपनी भूमिका अदा करने के बाद एक सन्दूक मे शान्तिपूर्वक गम्भीरता के साथ अपना स्थान ग्रहण कर लेती हैं और एक आनरेरी घटना बन जाती है अत अकिंचित् की कल्पना करना कितना कठिन है ? किन्तु बाद मे उसके विचार बदल गए 'अब मैं जानता हू कि वस्तुऐं पूर्णत वसी ही है जसी कि वे दिखाई देती है— और उनके पीछे अन्य कुछ नही है। न केवल ईश्वर बल्कि भूतकाल भी मर चुका है। अन्त मे सार्त्र ने कहा है कि यह मानना भूल होगी कि भूत ने हमारा निर्माण किया हो सकता है हमारे कृत्यो मे से प्रत्येक इस अर्थ मे स्वतन्त्र है कि वह जो कुछ घटित हो गया है उससे पूर्णतया असबद्ध अर्थात् अकिंचित् के द्वारा इससे पृथक कृत कर दिया गया है। हमारी प्रकृति भविष्य के बारे मे हमारे चुनाव से निर्मित है न कि उस ढाचे से जो कि भूतकाल मे बना था और अब हमारे बारे मे पूर्णत निश्चय करता है। उसके विचारानुसार, केवल इसी तथ्य के कारण हम स्वतन्त्र हो सकते हैं।

परपरागत दृष्टिकोण के अनुसार स्वतन्त्र इच्छा' उस प्रकृति से किसी किसी

अवसर पर होने वाली विभिन्नता (भाग भेद) स प्रगट होती है जो सामान्यत हमारा निश्चय करती है। इसके विपरीत सात्र की दृष्टि से मनुष्य या तो पूर्णत स्वतत्र है या फिर वह पूर्णत पूर्व निर्धारित, निश्चयीकृत होता है। यदि उसकी प्रकृति ऐसी है जैसा कि इस मुहावरे का साधारण अर्थ होता है (एक स्थायी स्वरूप जिस पर उसकी मर्जी का कोई स्थान नही) तो उसकी प्रकृति ही उसका निश्चय करेगी। सात्र का निष्कर्ष है कि तब, जबकि उसकी प्रकृति केवल मात्र सभाव्यक्षमता (पोर्टेंशलिटी) ही हो तो वह स्वतन्त्र हो सकता है। ल सुर्सी मे, जो कि सात्र की औपन्यासिक शृ खला मे द्वितीय उपन्यास है, मैथ्यू नामक केन्द्रीय पात्र इस प्रकार सोचता है "मानव प्राणी के लिए विद्यमान होना स्वय को चुनना है उसके पास ऐसी कोई भी चीज अन्तस् के बाह्य या अन्तराल स नही आती जिसे वह प्राप्त या स्वीकार कर सके, इस प्रकार स्वतत्रता विद्यमान होना मात्र नही है बल्कि एक मानव का विद्यमान होना है अर्थात् उसका न होना। मनुष्य का अस्तित्व केवल नथिंग (कुछ नही अकिंचित्) के रूप म है। यदि वह कुछ भी (किंचित्) होता तो वह स्वतन्त्र न होता।

सात्र ने यह स्वीकार किया है कि ससार का यह चित्र जो कि हीं अ शो म एक ओर तो कठोर तथ्यो से और दूसरी तरफ सपूर्ण स्वतत्रता सेबना है, कई तरह से भयानक है। गभीर व्यक्ति जिन्ह सात्र ने ले सालाउद कहकर परे हटा दिया है, इसकी सत्यता को स्वीकार नही करते। वे स्वय द्वारा निर्मित सुस्थिर जगत म आश्रय खोजते है चाहे वह जगत विज्ञान का हो या धम का। कि तु उन्ह विज्ञान या धम मे वास्तविक स्थिरता नही मिलती। वस्तुत उनका जगत ठोस होना तो दर किनार, लुजलुजा अथवा चिपचिपा ह।

ल विस्क्यू का वर्णन बिइग ऐंड नथिगनेस के एक विशिष्ट भाग म विस्तार से हुआ है, उसम इसे सभी बुराइयो का टाइप बताया गया ह। यह एक ऐसी बात ह जिसके बारे म हम यह विश्वास के साथ कल्पना करत हैं कि हम इसे समझ लग हम प्रयुक्त कर सकेंगे। या स्वतत्रतापूर्वक व्यवहार कर सकेंगे। किन्तु वस्तुत यह हमे ही फास लेती ह। (यदि विटजनस्टीन बोतल मे घुसी मक्खी को बाहर निकलन का माग दिखाने की आशा रखता ह तो सात्र उसे मक्षिका भक्षी कागज से मुक्त कर देने की आशा रखता ह।) चिपचिपापन न केवल वस्तुओ की बल्कि मानव प्राणियों की विशेषता ह, इस प्रकार की विशेषता कि हाथ मिलाने या मुस्कराहट के कारण मित्रता मे बाध लेती ह किन्तु यह हमारे अपने ही विचारो का मरणातक बन्धन बन जाता ह, इस रूप मे कि वे हम भूतकाल स चिपटाकर पकडे रहते हैं। यह प्रवचना जनक ह, ठीक इसलिए कि यह सभाव्य वस्तुओ के वास्तविक घनत्व तथा कठोर तथ्यो व स्वातन्त्र्य की तरलता के मध्य एक समझौता ह। यह हम ठोस वस्तु की तरह दृढतापूर्वक रोक्ता नही। हम जानते हैं कि ठोस के साथ हम कहा स्थित

है। कि तु चिपचिपा म हमे दलदल की तरह निगल जाता ह। विश्व का चिपचिपापन जसी कडवी चरपरी विशपताम्रो पर बल डालने स सात्र को खि नतामय तथा विपादमय होने का यश मिला ह। किंतु उसने उत्तर मे कहा ह कि उदास तो बुजु म्रा ह। उसने ल एक्जिस्तासियलिज्म एस्त० म्र ह्यू मनिज्म (1946)[1] में पूछा ह कि चरिटि बिगि स एट होम' जसी बुजु म्रा कहावत स बडी विषादमय बात क्या हो सकता ह ?

ला नाउसे जसे उप यास म अथवा ले शेमिजद ला लिवर्ते म भी हम जगत् को स्पष्टत मनको पात्रो की म्रावो स देख रहे हैं। उदाहरणाथ ला नाउसे का नायक कभी नहीं जान पाता कि किसी व्यक्ति या उद्देश्य मे स्वय को लगा देना किस कहते हैं। अत हम सात्र के उपन्यासों को मनोवनानिक अध्ययन की दष्टि स पढते हैं और यह एक दूसरी बात ह कि इस विदीण-मानसीय दष्टिकोण को एक तात्विकी के रूप म अभिव्यक्त किया जाए जसा कि सात्र न बीइ ग एण्ड नथिगनस म दिखलान का प्रयत्न किया ह। वस्तुत यह तक दिया जा सकता ह कि अस्तित्ववादी तात्विकी को तो पहल स ही निराकृत कर दिया गया ह। हम रोक्विती को न ही कहने योग्य बात को भी कहने की अनुमति देते हैं मेथ्यू को यह कहने देते हैं कि म तस जसी कोई चीज नहीं ह, दरअल कही कुछ भी नहीं ह। मैं कुछ नहीं हू। मैं स्वतत्र हू क्योंकि उपन्यासकार को यह अधिकार ह कि वह स्वकीय पात्रों की इस भावना का वणन करे कि व स्वय का क्या समझते हैं। किन्तु यदि हम इन कथनो की व्याख्या शाब्दिक सत्य के रूप मे करने का कहा जाए तो हमारी दाशनिक चेतना तुरत ही जाग खडी हो जाती ह। हम तुरन्त पूछना चाहते हैं कि अपनी रिक्तता को हम पहचान ही कसे सकते हैं जबकि हम कुछ भी नहीं हैं ताकि इसे पहचान सके। और पहचानी जान वाली हमारी रिक्तता क्या भावना की वास्तविक

---

1 इस सक्षिप्त पुस्तक का अनुवाद अ ग्रेजी म भी हुआ ह तथा उसका भ्रामक शीपक एग्जिस्टेंशियलिस्ट, 1947 ह। तथा साथ ही एग्जिस्टेंश्यलिज्म एण्ड ह्यूमनिज्म (1948) भी उसका एक शीपक ह इसमे सात्र यह तक दने की कोशिश करते हैं कि वे व्यक्तिवादी नहीं ह। यदि हम मे से कोई किसी प्रकार एक स्वतत्र व्यक्ति के रूप मे कोई निणय करता ह (जसे हार मानने की बजाय मरने का निणय करना) तो एसा निणय वह मानवता के लिए पस द करता ह।' यह एक गभीर प्रश्न ह कि सात्र इस कथय को तात्विकी के साथ समन्वित कर सकते हैं या नहीं—किन्तु निस्सदेह फासीसी प्रतिवाद से मुठभेड का उनका अनुभव उनमे यह भावना छोड गया कि मानव मात्र मे एक साधम्य ह एक ठास इयत्ता ह। यह बात उनकी आरंभिक रचनाओं म नहीं मिलती।

स्थिति नही होनी चाहिये ? अर्थात यह तत्वशास्त्रीय ग्रथ मे रिक्तता नही होनी चाहिय क्या ?

निश्चयत मानव प्रकृति के बारे मे रोचक विचार समूह को निबद्ध करन पर मी (जबकि इसम यह होना नही चाहिए था) सात्र की बीइग ऐड नथिगनस सामान्यतया दार्शनिक प्रशिक्षण प्राप्त अग्रेजी पाठक को असीम रूप से एकाकी लगेगी सात्र का प्रारमिक दृष्टिबिन्दु वस्तुत पर्याप्त रूप मे परिचित ह । उमने तक प्रस्तुत किया ह कि आकारी रूपो से परे और कोई परवर्ती वस्तु नही है । वस्तु स आकार को केवल इसीलिए पृथक कहा जा सकता ह कि वस्तु प्रत्यक्ष सनिकर्षों की एक असीम शृखला ह । किन्तु सात्र पूछता ह कि आकारो के होने के बारे म क्या स्थिति है ? उसका तक यह है कि उनका होना अपने आप मे केवल एक ऐसी चीज नही हो सकता जो कि केवल आकारयुक्त ह । "सघटना के होने को हान की सघटना के रूप मे नही कहा जा सकता है ।' अत अन्त मे तुरन्त ही आकारो के विश्लेषण क समय भी हम उस किसी चीज को जिसका अ तर्जात होना नात है पहचानने के लिए बाध्य हो जात हैं ।

सात्र ने जिस दृष्टिकोण को बकन का बताया है वह यह है कि होना बस दिखाई देना है । बकले का यह दृष्टिकोण वदतो व्याघात है क्योकि यदि आकार है तो वहा कोई होगा भी जिसे कि दिखाई दने वाला दिखाई न्ता है । सात्र के अनुसार यह होना ही चेतना है । चेतना विषयी का पार-सघटनात्मक हाना है । ब्रे`टानो तथा हुमल के साथ सहमत हाकर वह कहता है कि सम्पूर्ण चेतना इरादतन (इ टेशनल) होती है । यह विषयवस्तु तक पहुच जाती है । और उसके तक के अनुसार इस प्रकार पहुचते हुए चेतना साथ ही साथ स्वय के प्रति भी सचेतन होनी चाहिये ।

यहा उसका तक असाधारण रूप से आदिमकालिक है । उसने लिखा है यदि मरी चतना टबल के प्रति सचतेन होन की चतना न होती, तो यह उस टेबल की चेतना होती बिना इस बात की उसे चेतना हुए । दूसरे शब्दो म यह स्वय के प्रति अज्ञान युक्त चेतना होती, अर्थात् एक अचतन चतना जो अपन आप म असगत है । अपन आपक बारे म यह चेतना सात्र के अनुसार, आत्मचतेना है, वस्तु के रूप म आत्म की चेतना आत्मचतेना नही है । यह कार्टेजियन सिद्धा त के कोजिटा स पूव तर है जो कि (किसी के अपन आप के होन स विभिन्न) हमारे स्वय के होन पर प्रतिफलित होती है । उमने आगे तक दिया है कि इस प्रकार की आत्म चेतना किसी वस्तु क होने का अस्तित्व सार-समूह क एक प्राणी होन की एक बात है । सार समूह इसलिए होत हैं, क्योकि आत्म चतन प्राणी का स्वय ही पहले से अस्तित्व होता है । यह सार समूह की कृपा से अस्तित्वयुक्त नही होता । इस प्रकार, अस्तित्व सार-समूह से पूवतर है ।

इस स्थिति म सात्र बीइग के अनुसरण मे अच्छी तरह सपृक्त है। बीइग एण्ड नथिगनस के बहुत थोडे से पृष्ठो के बाद ही हमारे सामने ऐसे वाक्य आने लगते हैं बीइग है। बीइग स्वय के अन्दर है। जो है वही बीइग है।' ऐसे वाक्य जो तत्त्वमीमासा की वस्तुस्थितिवादी परोडियो की परोडी जसे लगते हैं। फिर भी दो बातें इस तत्वशास्त्र को अपने पूववर्तियो से पृथक करती हैं। प्रथम तो न होने (नाटबीग) के बारे मे सात्रकत विश्लेषण और द्वितीय मनोवज्ञानिक सिद्धान्तों को तत्वशास्त्रीय शब्दावली म अनूदित करने के लिए उसका प्रयत्न।

वह हेडगर के साथ इस बात में सहमत है- कि न होने को नकारात्मक निणय के साथ एकीभूत नही कर सकते, क्योकि हमे नथिग (अकिंचित्) की एक अ त प्रेरणा (अन्त साक्ष्य) होती है, ऐसी अन्त प्ररणा जो निणय से पूवतर होती है। वह कहता है 'मान लो मैं किसी कफे म किसी मित्र की प्रतीक्षा कर रहा हू। मै चारो ओर देखता हू और कहता हू पीटर तो यहा है ही नही। तो यह किसी भी रूप मे इस प्रकार क स्वीयात्मक अस्वत स्फुरित तथा नकारात्मक निर्णय का समानाथक नही हैं कि इस कफे मे कटरबरी का आचबिशप नही है। इस क्फे म पीटर की अनुपस्थिति व्याप्त हो रही है इस प्रकार की अनुभूत अनुपस्थिति सार्त्र के कथनानुसार नकारात्मक निर्णय का अनादि प्राथमिक मूल है।' अन्त म वह कहता है कि नथिगनस (अकिंचित्) की सत्ता हमारे बीइग से आती है। हम अभावकारी (निहिलटेर)के क्योकि यह तो केवल हमारे लिए ही है कि पीटर अनुपस्थित हैं। और है वह कहता है कि हम इस प्रकार का निषेध इसलिए कर सकते हैं क्योकि हमारे अभ्यतर म अकिंचित' मौजूद हैं। इसी प्रकार हमारे कत्यो के मध्य 'अकिंचित' है बस इसीलिए कि वे सतत रूप से उस अस्वतन्त्र अनवरत सम्पूर्ण' के भाग नहीं बनते जिसम प्रत्येक कत्य अपने पूववर्ती कृत्यो द्वारा पूवनिर्धारित हो जाते हैं। यह इसलिए हैं (जसा कि मैथ्यू न कहा है) कि स्वतन्त्रता कोई बीइग नही है यह तो मनुष्य का बीइग होना है अर्थात उसका स्वकीय नान बीइग।

इस प्रकार सात्र की तत्वशास्त्रीय विचारणाए तत्वदशनीय स्वतत्रता के सिद्धा त को इसकी सुदूरतम स्थिति तक ढकेलने के लिए एक जानबूझ कर किया गया प्रयत्न है। वह तो सपूण स्वतन्त्रता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही बीइग और नाटबीइग के युगल विचारो के साथ इस प्रकार की अस्पष्टता से खिलवाड करता है। हम यह महसूस करने को विवश हैं कि इस स्वतन्त्रता के चारों ओर कुछ याधिकीय कारणो जसी बात अवश्य है माने कोई मनोरोगी (न्यूराटिक) स्वय को यों समझ बठा हो कि उसकी चिन्ता तो साहस है, कि नष्ट करने की उसकी प्रवृत्ति निर्माणात्मक है। ज्यो ज्यो सात्र आगे लिखता है हम उसकी तात्विकी को फ्रायड कृत याख्याओ द्वारा समझने के लिय स्वय को विवशीकृत सा पाते हैं।

जो कुछ वह कहता है उसका इतना कम अर्थ निकलता है कि हम इसकी व्याख्या स्वप्न या व्यक्तिगत फंटेसी के रूप में करने के लिए आमादा हो जाते हैं।

किन्तु सार्त्र हमें सचेत करता है। वह वस्तुतः फ्रायड कृत व्याख्या हम पर जान बूझ कर लाद रहा है। उदाहरणार्थ वह 'चिप-चिपे' के बारे में जो लिखते हैं उसमें बहुत ही स्पष्ट रूप में यौन शब्दावली है। इस प्रकार वह अपने अंतिम बलशाली दाँव पेचों का मार्ग तैयार करता है। उसने तर्क दिया है कि स्वयं यौन आवेगों के प्रतीक तत्वशास्त्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप हैं, उस से अधिक कुछ नहीं हैं। यदि कोई फ्रायडवादी सार्त्र के तत्वशास्त्र में सर्वत्र यौन प्रतीकों को देखता है तो, सार्त्र के सुझाव के अनुसार यह इसलिए है कि फ्रायडवादी अपने तत्वशास्त्रीय एकाकीपन को छुपाना चाहता है। एक ऐसे प्राणी के एकाकीपन को छिपाना चाहता है जो इस अश्लील आकस्मिक सभायता से भरे तथा ईश्वर विहीन विश्व में, जिसमें कोई मूल्य नहीं रह गये हैं (स्वयं द्वारा निर्मित मूल्यों को छोड़कर) यदि जीवित रह सकता है तो बस केवल स्वयं के इस प्रकार के स्वतंत्र कृत्यों द्वारा ही रह सकता है। फ्रायडवादी इस सिद्धान्त की आड़ में शरण लेना चाहता है कि यह एकाकीपन यौन आवश्यकता से अधिक कुछ नहीं है उसे तुष्ट करना भी मानवीय सामर्थ्य व चातुर्य से बाहर की कोई बात नहीं है। फ्रायडवादियों को सार्त्र ने यह उत्तर दिया है एक ऐसा उत्तर जिसे तत्वशास्त्रीय मनोविश्लेषण के तौर पर विस्तृत रूप से तैयार किया गया है। सार्त्र के शब्दशास्त्रीय स्रोतों को देखते हुए जो कुछ वह सामान्य भाषा के आलोचकों को कह सकता है अच्छा हो कि उसे कहने की बजाय हम कल्पना के लिए ही छोड़ दें।

पुस्तक–सूची

[यह सूची लेखकों के कुलनाम के अकारादि-क्रम से है। साथ में उनके जन्म मृत्यु के ईस्वी वर्ष का उल्लेख है। इस सूची में जिन लेखकों का नाम है, उनकी केवल महत्वपूर्ण कृतियाँ ही उल्लिखित हैं। उन्हीं लेखकों को लिया गया है जिन्होंने उल्लेखनीय परिमाण में लिखा है, सिवा कुछ अपवादों के। जो पुस्तकें अंग्रेजी में हैं उनके प्रकाशन वर्ष कोष्ठकों में नहीं हैं। अन्य भाषाओं की कृतियों में प्रकाशन वर्ष कोष्ठक में मिलें तो उसका अर्थ है कि उस वर्ष उस कृति का अंग्रेजी अनुवाद निकला। शोध लेख आदि के साथ उनके प्रकाशन करने वाली शोध पत्रिकाओं के नाम भी दिये हैं। उनका परिचय आरम्भ में देखें।]

अरबन, विल्बर मार्शल (1873)	द इन्टेलिजिबल वर्ल्ड (मेटाफिजिक्स एण्ड वेल्यूज 1925) लग्वेज एण्ड रियलिटी 1939 बियांड रियलिज्म एण्ड आइडियलिज्म 1949 ह्यूमनिटी एण्ड डीटी 1951
अमसन, जेम्स ओपी (1915-)	फिलोसोफिकल एनलीसिस 1956
अलक्जेंडर, सेम्यूअल (1859–1938)	मोरल आर्डर एण्ड प्रोग्रेस, 1889, लॉक 1908 फाउन्डेशन्स एण्ड स्केच प्लान आव ए कानेशनल साइकॉलोजी (ब्रिटिश जनल० साइको० 1911)
अवनेरियस रिचर्ड हायनरिख लुडविग (1843–1896)	फिलोसफी आल्स देनकन दर वल्त 1876 क्रितिक डर रीनन आरफाहरुंग 1888–90
आइंस्टीन, एलबर्ट (1879–1955)	यूवर डाइ स्पेजियल उन्द दाई एलगेमीन रिलेतिवितात्स थियरी, गेमीनवर्स्टा दलिख 1917 इसका अनुवाद रिलेटिविटी, दी स्पेशल एण्ड दी जनरल थ्योरी ए पापुलर एक्सपाजीशन," (1920) के रूप में छपा। ज्योमेट्री उन्द अर्फाहरुंग 1921 [साइडलाइट्स आन रिलेटिविटी II–ज्योमेट्री एण्ड एक्सपीरियेन्स (1922)]

	दा एवोल्यूशन ग्राफ फिजिक्स , 1938
	ग्राटोबायोग्राफीकल नोटस' —तथा ए रिप्लाई टु क्रिटिसिज्म्स ग्रलबर्ट ग्राइसटीन फिलोसफर साइटिस्ट, सम्पादक पी ए शिल्प 1949 मे छपे हैं ।
ग्रायर, ग्रल्फ्रेड ज्यूल्स (1910)	लग्वेज, ट्रूथ एण्ड लाजिक 1936
	द फाउन्डेशन्स ग्राव एम्पिरिकल नालेज 1940
	थिंकिग एण्ड मीनिंग 1947
	फिलोसोफिकल एसेज 1954
	फिलोसोफिकल स्केप्टीसिज्म (सी०वी०पी० III) 1956
	दी प्रोब्लम ग्राफ नालेज 1956
	परसेप्शन (बी० पी० एम०) 1957
ग्रारन रिचर्ड ग्राइथेमर (1901)	दा नेचर ग्राफ नोइंग 1920
	जोन लाक 1937
	दा थ्योरी ग्राफ यूनीवर्सल्स 1952
	द रेशनल एण्ड दी इम्पीरिकल सी० बी० पी० III 1656
ग्रास्टिन जॉन लगशॉ (1911-)	ग्रदर माइन्डस (परिचर्चा, पी० ए० एस० एस०) 1946
	ट्रूथ (परिचर्चा पी० एस० एस०) 1852
	हाऊ टु टाक (पी० ए० एस० एस०) 1950
ईटन, रेल्फ मुनरो (1893–1932)	सिंबोलिज्म एण्ड ट्रूथ 1925
	जनरल लाजिक 1937
एंगेल्स फ्रायडरिख (1820–9895)	हेरन यूजेन डूहरिंगस ग्रम्बालजग दर विसेनखाफट 1878 (इंगलिश ट्रांसलेशन नहीं हुग्रा ।)
	एल फयरबाख ग्र उण्डर ग्रसगग दर क्लासिसकेन फिलोसोफी 1888 (1934)
	दियालेकटिक दर नेचर 1927 (1940)
एण्डरसन जॉन (1893)	दी नोग्रर एण्ड दी नोन (पी० ए० एस० 1926)
	एम्पिरिसिज्म (ए० एम० पी० 1627)
	रियलिज्म एण्ड सम ग्राफ इटस क्रिटिक्स (ए एफ पी 1930)
	डिजाइन (ए एफ पी० 1935)

एबटन हेरल्ड बी (1908)	दा इल्यूजन ग्राफ दा इपोक 1955
एडमसन, रॉबट (1852–1902)	ग्रान दी फिलोसफी ग्राफ का ट 1879 दा डेवलपमेंट ग्राफ माडरन फिलोसफी 1903 ए शॉट हिस्ट्री ग्राफ लोजिक 1911
एडिंगटन, सर ग्रायर स्टेनली (1829-1944)	दी नेचर ग्राफ दी फिजीकल वल्ड 1928 दा फ्लिोसफी ग्राफ फिजीकल साइम 1939
एबट, टामस किंग्समिल (1829–1993)	साइट एण्ड टच 1864
एमट, डोरोयी मेरी (1904)	०ह्वाइटहैडस फिलोसोफी ग्राफ ग्रार्गेनिज्म 1932 दा नेचर ग्राफ मेटाफिजिकल थिंकिंग 1245
एलिस राबट लेसली 1897–1859)	दी मेथेमेटिक्ल एण्ड ग्रदर राइटिंगम ग्राफ राबट लेसली एलिस, 1863
करखाफ गुस्ताफ राबट, (1824-1887)	वरलस ग्र जन उवर मेथेमटिक फिजिक 1676 (फोय एडिशन 1897) वरलेस ग्रजेन ऊवर मेकानिक शीपक स पुन प्रका
कार हबट विडलन (1857–1931	ए थ्योरी ग्राव मोनेडस 1919 ग्राइडियालिज्म एज ए प्रिंसिपल इन साइस एण्ड फिलोसफी (सी० बी० पी० 1924) कोजीटटस कोजीटेटा 1930
कारनप, रूडोल्फ (1891)	दर लोजीके ग्राफ वउ दर वेल्ट 1928 स्केइनप्रोब्लम इन दर फिलोसफी 1928 एबरिस दर लोजिस्टिक 1929 डाई फिजीकालिसके स्पाक ग्राल्स यूनीवसल स्पाक दर विसनशापट (ग्रर्के० 1932) [दा युनिटी ग्राफ साइ स (1934)] लोजिस्क सिनटेक्स दर स्पाक 1934 (1937) फिलोसफी एण्ड लोजिकल सिनटेक्स 1935 ८स्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० एस० सी० 1936) लोजिकल फाउंडेशन्स ग्राफ दा यूनिटी ग्राफ साइस (यू० एस० वोल्यूम I न० I 1938)

	फाउन्डेशन्स आफ लोजिक एण्ड मैथेमैटिक्स (यू एस० वाल्यू० न० 3, 1939)
	इन्ट्रोडक्शन टू सेमेनटिक्स 1942
	दा फरमलाइजेशन आफ लोजिक 1942
	मीनिंग एण्ड नेसेसिटी स्टडी इन सेमंटिक्स एण्ड मोडल लोजिक 1947
	लोजिकल फाउन्डेशन आफ प्रोवेबिलिटी 1950
	द कान्टीन्यूयम आफ इन्डक्टिव मैथडस 1950
	ईनफ्यूहरग इन डाइ सिम्बोलिक लोजिक 1951
कीन्स जॉन मेनार्ड (1883–1946)	ए ट्रीटीज आन प्रोबेबिलिटी, 1921
कीन्स, जॉन नेविल (1852–1949)	स्टडीज एण्ड एक्सरसाइजेज इन फारमल लोजिक 1884
केंप स्मिथ, नॉरमन (1872)	स्टडीज इन दी कोर्टेजियन फिलोसफी 1902
	ए कमेंटरी टू कान्टस क्रिटीक आफ प्योर रीजन 1918
	प्रोलेगोमेना टू एन आइडियलिस्ट थ्योरी आफ नोलज 1924
	दा नेचर आफ यूनीवर्सम (माइण्ड) 1927
	न्यू स्टडीज इन दी फिलोसफी आफ डेकार्ट 1952
कैंपबल, चार्ल्स आर्थर (1997)	स्केप्टिसिज्म एण्ड कन्सट्रक्शन 1931
	इन डिफेंस आफ फ्री विल 1938
	सेल्फ एक्टीविटी एण्ड इटस मोडस (सी बी पी III 1956)
कैंपबल, नॉरमन रॉबर्ट (1880 1949)	फिजिक्स दी इलीमेंटस 1920
	व्हाट इज साइंस ? 1921
	एन अकाउंट आफ दी प्रिंसिपल आफ मेजरमेंट एण्ड कलकुलेशन 1938
केयर्ड एडवर्ड (1835–1908)	ए क्रिटिकल अकाउंट आफ दी फिलोसफी आफ कांट 1877
	हीगल 1883
	दी सोशल फिलोसोफी एण्ड रीजन आफ कान्ट 1885

केयड, जॉन (1820–1906)	एन इन्ट्रोडक्शन टु दी फिलासफी ग्राव रिलीजन 1880
केस, टॉमस एच, (1844–1825)	फिजिकल रियलिज्म 1888
करोल, लुइस,	देखें डाजसन, चार्ल्स, लुटविज
कलकिन्स, मेरी ह्वाइटन (1863–1930)	दा परसिस्टट प्रोब्लमस ग्राफ फिलोसफी 1907 दी फिलोसोफीकल ग्रेडो ग्राफ एन एब्सोल्यूटिस टिक परसोनलिस्ट (सी ए पी I 1930)
कसिरर, ग्रन्स्ट (1874–1945)	दास ग्ररकेंतनिस प्रोब्लम इन दर फिलासाफी उन्द विशेनशाफ्ट दर 'युरेनजाइत 1906–20 वाल्यू 4, 1950 । इंगलिश मे दी प्रोब्लम ग्राफ नालज' नाम से । सब्सटेन्ज वेरिफ उन्द फन्क्शन्स वेरिफ 1910 स्टेंस थ्योरी ग्राफ रिलेटिविटी 1923 फिलोसोफी दर सिम्बोलिसकेन फारमेन 1923 31 (1953) स्पाक उन्द माइथोस 1925 (1946) डाई प्लेटोनिस्क रेनाइसेंस इन इगलड उन्द डा[illegible]ल वा[illegible] कम्ब्रज, 1932 (1953) दा[illegible]ई फिलोसोफी दर ग्राफक्लारूग 1932 (1951) एन [illegible]एसे ग्रान मेन, 1944 दी मिथ[illegible] ग्राफ दी स्टेट, 1946 गेलोलिय[illegible]ोज प्लेटोनिज्म, स्टडीज एण्ड ऐसेज इन दी हिस्ट्[illegible]ी ग्राफ साइस, सपा० एम एफ एशले मोटाग[illegible] 1946 [illegible]रट' तथा लाइफ (कान्टेम्पोरेरी फिलोसफी मे) सि[illegible] फिलोसफी ग्राफ ग्रन्स्ट क्सीरर, सपा० पी०ए० 'द[illegible] [illegible]ल्प 1949 मे पुस्तकसूची भी है । शि[illegible]
कोम्ट, ग्रागस्ट (1798–1857)	[illegible] डी फिलोसोफी पोजिटिव, 1830–42 कोह[illegible] [illegible]प्त ग्रनुवाद 1853 मे) (स[illegible] [illegible]कोस्सरल' ग्रासांम्बल पाजिटिविज्म 1848 'डिस[illegible] 65) (18[illegible] [illegible]म डी पोलीटिक पोजिटिविस्ट 1851–54 सिस्ट[illegible] 75–79) (18[illegible]

कोटारबि स्की, तादेउज्ञ (1886)	एलीमेंटस ग्राफ एपिसटमोलोजी ग्राफ फारमल लोजिक एण्ड मथोडालोजी 1929 (पोलिश भाषा मे। उस भाषा म 'एलीमेंटा टयोरजी पाज्नानिय लोजिकी फारमलनिज मेटोडोलोजी नाउक' शीपक है।)
कोफी, पीटर 1976-1943	दा साइ स ग्राफ लोजिक 1912 एपिस्टेमोलोजी 1917
कोलिंगवुड, राबिन जॉज (1889-1943)	स्पेक्यूलम मटिस 1924 ऐस ग्रान फिलोसोफिकल मेथड 1933, ग्रोटाबायग्राफी 1939 ऐसे ग्रान मेटाफिजिक्स 1940 दी न्यू लवाइथन 1942 दी ग्राइडिया ग्राफ नेचर, 1943 दी ग्राइडिया ग्राफ हिस्ट्री 1946 (पी बी ए 1943 म पुस्तकसूची)
कोहेन, मारिस रेफायल (1880 1947)	दी फेथ ग्राफ लोजीशियन (सी०ए०पी० 1930) रीजन एण्ड नेचर 1931 एन इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड साइंटिफिक मेथड (ई० नजल के सहकार मे) 1934 ए प्रेफस टू लोजिक 1944 ए ड्रीमस जरनी 1949 रीजन एण्ड ला 1950 ग्रमेरिकन थाट 1954
कोहेन हरमैन (1824-1914)	काटस थ्योरी दर रिनेन ग्रफारिग 1871 सिस्टम दर फिलोसोफी 1902-12
कोटुरेट लुई (1868-1914)	ला लोजिक्यू डी लाइबिज 1901 एल एलजेब्रा डी ला लोजिक 1905 (1914) दाई प्रिसिपेन दर नोजिक एनसाइकिलो (1921) (एनसायक्लोपेडिया ग्राफ फिलोसोफिकल साइसेज 1913)
कॉफमेन, फलिक्स (1895)	मैथोडनलेरे दर सोजियाल्विसेनशाफट 1936 (1944)

क्रेटन, जेम्स एडविन, (1861-1924)	स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलोसोफी 1925
क्रोचे, बेनडिटो (1866-1952)	फिलोसोफिया डेला स्पिरिटो (1) एस्टेशिया कम साइजा डेल ऐस्प्रेस जन लिंगुस्टिका जनरल 1902-1909 (2) लोजिक कम साइजा डेल कौसेट्टोप्यूरो 1909 (1917) (3) फिलोसोफिया डेला प्रेस्टिका इकोनोमिया एडेशियका 1909 1915 (4) टियोरियाय स्टारिया डेला स्टोरियाग्राफिया 1917 (1921) मैटेरियलिसनो स्टोरिको एण्ड इकोनोमिया मोरालिस्टिका 1900 (1914) सेग्गियो सुल हीगल 1907 (व्हाट इज लिविंग एण्ड व्हाट इज डय इन फिलोसफी ग्राफ हीगल 1915) ला फिलोसोफी डी जो वाइको 1911 (1913) 'सेल्वसत्दारस्टेलग', दाई फिलोसफी दर गेजनवट इन सेल्वस्तदारसोलजन वाल्यू 4, 1923 ला लेटलिचुरा इटालियाना (वॉल्यू 75) 1951
क्वाइन, विलड वान ग्रोरमन (1908)	मैथेमेटिक्ल लोजिक 1940 सप्लीमेंट्री लोजिक 1941 मथडस ग्रॉफ लोजिक 1950 फ्राम ए लाजिक्ल प्वाइट ग्राफ व्यू 1953
क्लिफर्ड, विलियम किंगडन (1845-1879)	सीइंग एण्ड थिंकिंग 1879 लेक्चस एण्ड एसेज 1879 दी कामनसेंस ग्राफ दी एक्जेक्ट साइंसेज 1885
गिबसन, विलियम रेल्फबाइस (1869 1935)	दी प्राब्लम ग्राफ फ्रीडम (परसनल ग्राइडियलिज्म, सपा० एच स्टुग्रट 1902) रूडोल्फ यूकन्स फिलोसफी ग्राफ लाइफ 1906 दी प्राब्लम ग्राफ लोजिक 1908

गिल्सन, एटिन हैनरी (1884)	ला लिवरटे चेज डकाट एट ला थयेग्रोलोजी 1912 इडेक्श स्कोलेसटिको कार्टेजियन 1913 ली टोमिज्म 1920 दी फिलोसोफी ग्राफ टॉमस एक्विनस 1924 इट्रयडस दे फिलोसोफी मैंडीएवल 1921 सेंट टामस ड ग्रक्यून 1925
गुडमैन हैनरी नेलसन (1906)	दा स्ट्रक्चर ग्रॉफ एपियरेंस 1951 फक्ट फिक्शन एण्ड फारकास्ट 1954
गोडेल कुत (1906)	यूबर फारमल ग्रनउटेसचीडवेग्रर साटजा ग्र प्रिसपिया मैथेमेटिक उद वरवानउतर सिस्टम मोनात्सशफते दर माथयूफिजिक्स 1931
ग्रीन टामस हिल (1831 1882)	इ टोडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज प्रालेगामेना ट एथिक्स 1883 वक्स 1885—8
ग्रेलिग—कुत्त (1886)	मैंनजेनलेहरें 1924 द लोजिक्ल पेराडोक्सेज (माइण्ड 1931)
ग्रोटे, जोन (1863 1866)	*एक्सप्लोरेशिया फिलोसोफिका भाग I, 1865* भाग II 1900
चच ग्रलोन्जो, (1903)	ए नोट ग्रान दी ऐन्तशीदुन्ग प्राबलम (जे एस एल) 1931 ए फारमूलेशन ग्राफ दी लाजिक ग्राफ सेन्स एण्ड डिनोटेशन' स्टक्चर मैथड एण्ड मीनिंग मे सम्पादक पी हैनल एच एम कालन व एस के ल जर 1951 इन्ट्रोडक्शन टू मैंथेमेटिकल लाजिक 1956
जेंटील जुवानी (1874—1944)	टयोरिया जनराल डे लो स्पिरिटो कम ऐटो पुरो 1916 (1922) ग्रार० डब्ल्यू होलमस दि ग्राइडियलिस्म ग्राफ जुवानी जन्टील 1931 म पुस्तकसूची भी है
जेफ्रीज हेरल्ड (1909)	साइ टिफिक इनफरेंस 1931 थयोरी ग्राफ प्रोबेबिलिटी 1931 (बी० जेफ्रीज के सहकार म लि०) मैथडस ग्रा फमैथमेटिकलफिजिक्स 1946

जोर्जेनसन जाजन (1894)	ए ट्रीटीज ग्राव फारमल लोजिक 1931
जोसफ, हॉरेस विलियम	इन्टोडक्शन टू लाजिक 1906
ब्रिडले (1867–1943)	एंशियेंट एण्ड माडन फिलोसफी 1935
टाउलमिन स्टीवन एडेलसटन (1922)	एन एग्जामिनेशन ग्राफ दि प्लेस ग्राफ रीजन इन ऐथिक्स, 1950 दि फिलोसफी ग्रॉफ साइन्स
टार्स्की, एलफ्रेड (1902)	इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक एण्ड टू दी मैथेडोलोजी ग्राफ डिडक्टिव साइन्सेज 1934 ग्रनडिसाइडेबल थ्योरीज 1953 स्टडीज इन लोजिक एण्ड दी फाउन्डेशन्स ग्राफ मेथेमेटिक्स 1956
टेनाट फ्रेडरिक रॉबट (1866)	फिलोसाफिकल थियोलोजी वाल्यूम I दि सोल एण्ड इटस फैकल्टीज 1928 वाल्यूम II दि वल्ड दी सोल एण्ड गाड 1930 दि नेचर ग्राव बिलीफ, 1943
टेलर, ग्रल्फ्रेड एडवड (1869–1945)	एलीमेंटस ग्राव मैटाफिजिक्स 1903 दि फ्रीडम ग्राव मैन 1825 प्लेटो, दि मैन एण्ड हिज वक, 1926 दि फेथ ग्राफ ए मोरालिस्ट 1930 फिलोसोफिकल स्टडीज 1934 डज गॉड एग्जिस्ट ? 1945
टॉमसन विलियम (1819–1890)	ग्राउटलाइन ग्राव दि लाज ग्राफ थाट 1842
टवारडोस्की, कासीमीर (1866–)	ग्राइडी एण्ड परसप्शन 1892
डाउस हिक्स	दखें हिक्स जाज डाउस
डाजसन, चाल्स लुटविग- (1832–1898)	दि गेम ग्रॉव लाजिक 1887 ए लाजिकल पराडोक्स (माइण्ड 1894) व्हाट दि टाटवाज सेड टू एक्लिीज (माइण्ड 1895) सिंबोलिक लाजिक 1897

डार्सी, मार्टिन सिरिल, (1888–)
दि नेचर प्राव बिलीफ, 1931
बिलीफ एण्ड रीजन, 1944

डि ब्रोग्ली (प्रिंस) लुई विक्टर (1892–)
ला फिजीक नोविले एत लेस क्वाण्टा 1937
(द रिवाल्यूशन इन फिजिक्स, 1954)
मैतियर एत ल्यूमियर 1937 (1939)

डि मारगन, प्रागस्टस (1806–1871)
एन एसे प्रान प्रोबबिलिटाज
फ़ारमल लॉजिक, 1847
प्रान दी सिलाजिज्म (विभिन्न शीर्षकों एव भिन्न भिन्न परिशिष्टों सहित इस विषय पर इनके 5 प्राधलेख तकपदों पर प्रकाशित हैं, ट्रान्जेक्शन प्राव द कम्ब्रिज फिलोसोफिकल सोसायटी मे जिल्द 8 (1849) जिल्द 9 (1856) जिल्द 10 (1864)
सिलेबस प्राव ए प्रोपोस्ड सिस्टम प्राफ लोजिक, 1860
ए बजट प्राव पराडोक्सेज 1872

डिंगल हर्बट, (1890–)
साइंस एण्ड ह्यूमन एक्सपीरिएंस 1932
थ्रू साइंस टू फिलोसफी 1937

ड्यूकास, कुर्त जान, (1881–)
नेचर माइण्ड एण्ड डेथ 1951
फिलोसफी एज ए साइंस 1941

ड्यूई, जॉन (1859–1952)
साइकोलॉजी, 1887
हाउ वी थिंक ? 1910
स्टडीज इन लाजीकल थ्योरी, 1903
दि इनफ्लुएंस प्राव डारविन प्रपोन फिलोसफी एण्ड प्रदर ऐसेज एसेज इन एक्सपेरीमेंटल लाजिक 1916
रिकास्ट्रक्शन इन फिलोसफी 1910
एक्सपीरिएंस एण्ड नेचर 1925
द क्वस्ट फार सरटेन्टी 1929
फ्राम प्रब्सोल्यूटिज्म टू एक्सपेरिमेंटलिज्म (सी० ए० पी० II 1930)
लाजिक द थियरी प्राव इन्क्वायरी 1938
एक्सपीरियंस नालेज एण्ड वेल्यू (द फिलोसोफी

	प्राव जान ड्यूई, सपा० पी०ए० शिल्प 1939) नोइग एण्ड द नोन 1949 ए० एम० बेंटली के सहकार म लिखी गई है ।
ड्रेक, ड्यूरेंट	दी एप्रोच टु क्रिटिकल रियलिज्म' (ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920) माइण्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर 1925
दुहैम, पियरे (1861–1916)	ला थ्योरी फिजिक सन आजेट एट सा स्ट्रक्चर, 1906 (1954) ली सिस्टम डू मण्डे 1913 17
ड्यूहरिंग, यूजन काल (1833–1921)	कुसस दर फिलोसफी 1875
नन सर टामस पर्सी (1870–1944)	द एम्स एण्ड अचीवमेंटस आफ साइंटिफिक मेथड 1907 आर सेकेंडरी क्वालिटीज इनडिपेंडेंट आफ परसप्शन ' (पी० ए० एस० 1909) साइंटिफिक आबजेक्टस एण्ड कामन-सेंस थिंग्स (पी० ए० एस० 1923)
निकोड जीन, (1893–1924)	ए रिडक्शन इन दी नम्बर आफ प्रिमिटिव प्रोपोजी श स आफ लाजिक प्रोसी० केम्ब्रिज फिलो० सोसा० 1916, फाउन्डेशन आफ ज्यिोमेट्री एण्ड इ डकशन
नीत्शे फ्रायडरिख (1844–1900)	आलसो स्पाक जाराथुस्ट्रा 1883 पसइंटस वान गट उ द बोस 1886 कम्प्लीट वक्स, 18 जिल्दें 1909 ।
नटलशिप रिचड लुइस (1846–1892)	फिलोसोफीकल लेक्चरस एण्ड रिमेंस, 1887 ।
नेटाप पॉल (1854–1924)	प्लेटोस आईडीनलहर 1903 लोजिक 1904 ।
नेजल, अर्न्स्ट (1901–)	एम०आर० काहेन के साथ लिखित एन इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड साइंटिफिक मेथड 1934 प्रिंसिपल आफ दी थ्योरी आफ प्रोबेबिलिटी (यू० एस० वाल्यू न० 6, 1939)

	लोजिक विदाउट आटोलोजी, नेचरलिज्म एण्ड दा ह्यूमन स्प्रिट'' सपादक, एच० क्रिकोरियन 1944
	सोवरन रीजन 1954
नील, विलियम केलवट (1906–)	प्राबबिलीटी एण्ड इडक्शन 1949
	द प्रॉविस आव लाजिक, (सी० वी० पी०) 1956
नेलसन, लियोनार्ड (1882–1927)	डाई क्रिटिस्क मयड उन्द दास वरहल्टनिस दर साइकालोजी जर फिलोसफी 1904
	ऊवर दास सोजन एण्ट अर्कंटनिस प्रावलम 1908
	डाई सोक्रेटिक मेथड 1929, (1949)
न्यूमन, जॉन हनरी (1801 1890)	ऐसे इन एड आफ ग्रामर आफ एसेंट 1870
न्यूरथ ऑटो (1882–1945)	ली डेवलमट डु सरकल दी वियना एट ल अवनिर डी ल इम्पीरिज्म लोजिक एक्चुअलिटीस 1935
	यूनीफाइड साइस एज इनसायक्लापडिक इटग्रेशन (यू० एस०, वाल्यू० I न० I 1938)
	फाउडेशन आफ दी सोशल साइसेज (यू एस वाल्यू II न० 4 1944)
	यूनीवसल जारगन एण्ड टरमीनोलोजी (पी ए एस 1940)
पियर्स डेविड एफ (1921–)	हायपोथटिकल्स (एनालिसिस 1950)
	यनीवसल्स (पी० क्यू० 1951 एल एल II)
	इ कॉम्पेटीविलिटीज ऑफ कलस (एल एल II 1953)
पियर्सन काल (1857–1936)	दी ग्रामर आफ साइस 1892
पियर्स, चार्ल्स सेंतियागो सैंडर्स (1839–1914)	स्टडीज इन लाजिक 1883
	कलक्टेड पपस 1931–5
पीयनो, ग्यूसेप (1858–1932)	फारमूलाइरिस दी मथमटिक्स 1895 (1908)
पैटन, हर्बर्ट जेम्स (1887	काटस मेटाफिजिक आफ एक्सपीरिय स 1939
	इन डिफेंस आफ रीजन 1951
	दी मोडन प्रेडिकामेट 1955

पप, आर्थर (1921-)	दी ए प्रायोरी इन फिजीकल थ्योरी 1946 एलीमेंटस आफ एनालीटिक फिलोसोफी 1949
परी, रेल्फ बाटन (1876-)	ए रियलिस्टिक थ्योरी आफ इन्डेपेंडेंस', दा न्यू रियलिज्म 1912 प्रेजेंट फिलोसोफीकल टर्डेंसीज 1912 दा थॉट एण्ड केरेक्टर आफ डब्ल्यू जेम्स 1935
पॉइनकेयरे हेनरी (1853-1912)	ला साइंस 'एट ल हायपाथिसिस 1902 (1905) ला वलर ला साइंस 1905 साइंस एट मेथड 1908 जी बी हाल्सटेड द्वारा किया दा फाउंडेशंस आव साइंस 1913 में इन तीनों का अंग्रेजी अनुवाद छपा है।
पॉपर, कार्ल रेमन्ड (1902)	लोजिक दर फासचुंग 1935 'दी पावर्टी आफ हिस्टोरीसिज्म', इकोनोमिका 1949-5 द आपेन सोसाइटी एण्ड इटस एनीमीज 1945 लोजिक विदाउट एजम्पशंस (पी० ए० एस० 1946) न्यू फाउंडेशंस आफ लोजिक (माइंड) 1949 दी व्यूज कंसर्निंग ह्यूमन नालेज (सी० बी० पी० III) 1956 फिलोसोफी आफ साइंस, ए परसनल रिपोर्ट (बी पी एम 1957)
प्राइस हैनरी हेबरली, (1899-)	परसेप्शन 1932 ह्यूम्स थ्योरी आफ दी एक्सटर्नल वर्ल्ड 1940 थिंकिंग एण्ड एक्सपीरियंस 1953 सम आस्पेक्टस आफ दी कॉनफ्लिक्ट बिटवीन साइंस एंड रिलीजन 1953
प्रायर आर्थर नारमन, (1914-)	लाजिक एण्ड दी बेसिस आफ एथिक्स 1949 फारमल लाजिक 1955
प्रिंगल-पेटीसन, ए० एस०	देखें, सेथ ए०
प्लांक मैक्स (1858 1947)	द फिलासफी आव फिजिक्स 1936

फयरबाख, लुडविग, (1805-1872)	दास वेसन देस क्रिसर्टेम्स 1841 (1854) सामृतलिख वक 1846-66
फारबर, मारविन (1901	दी फाउंडेशन ग्राफ फिनोमिनालोजी 1943
फिडले जॉन नीमियर (1903-)	मीनाग्स थ्योरी ग्राफ ग्रावजक्ट्स 1933 सम रीएक्शस टू रीसेंट केम्ब्रिज फिलासफी (ए० ज० पी०) 1940-41 टाइम ए ट्रीटमट ग्राफ सम पजल्स (ए० जे० पी० तथा एल एल I) 1941 एन एग्जामिनेशन ग्राफ टेंसेज (सी० बी० पी०) 1956
फिशर क्यूनो (1824-1907)	सिस्टम दर लोजिक उन्द मेटाफिजिक 1852 गेशिष्टे दर यूरेन फिलासफी 1854-77
फिस्के, जोन (1842-1901)	ग्राउटलाइन्स ग्राफ कोसमिक फिलासफी 1874 दी ग्राइडिया ग्रॉफ गाड 1886
फीग्ल, हर्बट (1902-)	थ्योरी उन्द मफहूहग इन दा फिजिक 1929 'लोजीकल ईम्पीरिसिज्म', टवन्टीयथ सेनचुरी फिलोसफी, सपा० डी० रूस 1943 दि प्रिंसिपाइज नान डिमप्यूटाडम ? 'ग्रान दी मीनिंग एड दी लिमिटस ग्राफ जस्टीफिकशन' (फिलोसोफीकल एनालिसिस) सपा० एम० ब्लेक 1950
फुलटन, जांज स्टुग्रट (1859-1925)	ए सिस्टम ग्राफ मेटाफिजिक्स, 1904
फेकनर, गुस्टाव थियोडोर (1801 1897)	जेन्ड ग्रवेस्ता 1851
फरियर, जेम्स फ्रेडरिक (1808 1864)	इन्सटीटयूटस ग्राफ मेटाफिजिक्स 1854 फिलोसोफिकल वक्स ग्राफ दी लेट जेम्स फ्रेडेरिक फेरियर, 1875-88
फ्रेजर, ग्रलक्जेंडर कपबल (1819 1914)	दी फिलोसफी ग्राफ थीइज्म, 1895 7 बकल एन्ड स्पिरिचुग्रल रियलिज्म, 1908
फ्रेंक, फिलिप (1884-)	इन्टरप्रेटेशन्स एड मिसइन्टरप्रेटेशन्स ग्राफ मॉडन फिजिक्स 1938

	बिटवीन फिजिक्स एंड फिलोसफी, 1941 फाउंडेशन्स आफ फिजिक्स (यू० एस०) वाल्यूम न० सेवन 1946
फ्रैंकलिन क्रिस्टीन लड (1847–1930)	आव दी एलजबरा आफ लोजिक, स्टडीज इन लोजिक मेम्बस आफ जोन्स हापकिंस यूनिवर्सिटी द्वारा लिखित 1883
फ्रेगे गाटलाब, (1848–1925)	(अ) वेग्रिफशिफ्ट 1879 डाई ग्रन्डलाजेन दर अथमेटिक 1884 (1950) (स) ग्रन्डगजेस्टेजा दर अथमेटिक 1893–1903) पी० गीच तथा एम० ब्लेक कृत फिलोसोफीकल राइटिंग्स आफ गाटलाब फ्रेगे' (1952) मे (अ) तथा (स) का आंशिक अनुवाद हुआ है कुछ अन्य शोधलेख तथा समीक्षाएँ भी इसमे ह।
फ्लिट राबट (1838–1910)	थीइज्म 1877 एन्टी-थीइस्टिक थ्योरीज 1879
बटलर सेमुअल (1835 1902)	लाइफ एण्ड हैबिट 1877 इवोल्यूशन ओल्ड एण्ड न्य 1879
बगमान गुस्ताव 1906)	दी मेटाफिजिक्स आफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1954
बर्गसा, हनरी लुइ (1859–1941)	लेस डोन्नीस इमीजियेटस डी ला काशस 1889 [टाइम एण्ड फ्री विल' (1910)] मेटीयर एट मेमायर 1896 (1911) ली रायर 1906 (1911) इन्ट्रोडक्शन ए ला मेटाफिजिक रिव्यू डी मेटाफिजिक 1903 (1913) ल एवोल्यूशन क्रिएटरिस 1907। ल इनर्जी स्पीरीचुअल 1919 (माइण्ड एण्ड एनर्जी 1920) ला परसेप्शन दू चेंजमट 1911 ड्यूरी एट सायमल्टेनीटी 1922

ले ड्यूक्स सोर्सेस डी ला मारल एट डी ला रिलीजन 1932 (1935)
ला पेंसी एट ले मूवाट 1934
द क्रियेटिव माइण्ड 1946

बर्लिन, इसाइया (1909)
वेरीफिकेशन (पी ए एस) 1938
काल मार्क्स 1939
एम्पीरिकल प्रापाजीशन्स एण्ड हायपोथेटिकल स्टटमेंटस (माइण्ड) 1950
लोजिकल ट्रासलेशन (पी० ए० एस०) 1950
हिस्टारिकल इनवीटेबिलिटी 1954

बूल, जाज (1815–1864)
दा मथमटिकल एनालिसिस आफ लाजिक 1847
एन इनवेस्टीगेशन आफ दी लाज आफ थॉट 1854
जाज बूल्स कलक्टेट लाजीकल वर्क्स 1916
स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटी 1952

बूतराक्स, एमिल (बाउट्राउ) (1845–1921)
डी ला कांटिनजेंस डेन लाइस डी ला नेचर 1874 (1916)
ल आइडी डी लोई नेचुरली 1895

बूक्नर, लुडविग फ्रायडरिख, (1824–1899)
श्राफ्ट उन्द स्टाफ, 1855 (1864)
डाई स्टेलग डस मसकेन इन दर नेचर 1869 (1872)

बूलर जस्टस (1914–)
चार्ल्स पियर्सेस एम्पीरीसिज्म 1939
नेचर एण्ड जजमट 1955

बेंजमिन एब्रम कोर्नेलियस (1897–)
दी लाजिकल स्ट्रक्चर आफ साइन्स, 1936
एन इन्ट्रोडक्शन टू दी फिलोसोफी ऑफ साइन्स,' 1937
'फिलोसफी इन अमेरिका बिटवीन टू वार्स, फिलोसाफिक याट इन फ्रांस एंड दी यूनाइटेड स्टेट्स, सपा० एम फारबर 1950
आॅपरेशनिज्म 1955

बेन, एलक्जेंडर (1818–1903)
दी सेंसेज एण्ड दी इन्टेलक्ट 1855
दी इमोशन्स एण्ड दी विल 1859

	लोजिक डिडक्टिव एण्ड इन्डक्टिव 1870
	आटोबायोग्राफी 1904
बेन्स, टामस स्पेंसर (1823-1887)	ऐसे आन दी न्यू एनलीटिक आफ लोजिकल फार्म्स, 1850
बेलफोर (प्रथम अर्ल)	ए डिफेंस ऑफ फिलोसोफिक डाउट 1879
आयर-जेम्स (1843-1930)	दी फाउन्डेशन्स आफ बिलीफ (1895)
बेली सम्युअल (1791-1870)	ए रिव्यू आफ बकलेस थ्योरी आफ विजन 1842 लेटस आन दी फिलोसफी आफ दी ह्यूमन माइंड 1855-63
बेवन एडविन रॉबर्ट (1870-1943)	सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ 1938
ब्राउन, बोडन पाकर (1847-1910)	परसोनेलिज्म 1908
बोखेन्स्की (बोचेन्स्की) इनोसेंटियस एम० (1902)	ला लोजिक डी थियोफ्रास्टे 1947 प्रसिस डी लोजिक मथेमेटीक 1948 एनसियेंट फारमल लोजिक 1951
बोमेन आर्चिबाल्ड एलन (1883-1936)	स्टडीज इन दी फिलोसोफी आफ रीजन 1938 ए सेक्रामेंटल यूनीवर्स 1938 परसोनलिज्म 1908
बोल्जानो बनर्ड प्लेसिड्स	विश्सनशाफ्टस्लेहर 1836
बोहान 1781-1848)	पराडाक्सियन डेस अनऐंडलिचेन 1851 (1950)
बोन मैक्स (1882-)	दा रस्टलेस यूनीवर्स 1935 एक्सपेरिमेंट एण्ड थ्योरी 1943 नेचुरल फिलोसफी आफ कॉज एण्ड चान्स 1949
बोसाके बनर्ड (1848-1823)	नॉलेज एण्ड रियलिटी 1885 लाजिक 1888 हिस्ट्री आफ एस्थटिक 1892 फिलोसाफिकल थ्योरी आफ दी स्टेट 1899 दा प्रिंसिपल्स आफ इंडीविजुअलिटी एण्ड वेल्यू 1972

	दी वल्यू एण्ड डेसटिनी आफ दी इंडीविजुअल 1913 दी डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इटस आब्जेक्टस 1913 इम्पलीकेशन एण्ड लीनियर इनफरेंस 1920 दी मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कोटेम्परेरी फिलोसफी 1921 लाइफ एण्ड फिलोसफी (सी० बी० पी० १६२४) बनार्ड बोसाके एण्ड हिस फ्रेंडस, सपा० जे एच म्यारहैड 1935
ब्राइटमैन, एडगर शफील्ड (1884–1653)	परसनलिटी एण्ड रिलीजन 1934
ब्राउवर, लुइटजन एक्बटस जन (1881–)	इन्टयूशनिज्मे एन फारमलिज्मे 1912 अनुवाद, बुलेटिन०अमे०मैथे० सोसाइटी (1913) कान्शसनेस, फिलोसफी एण्ड मथमेटिक्स (प्रोसी डिंग्स दशम इन्टरने० काग्रे० फिलो०) 1949 इन्ट्यूशनिज्म 1956
ब्रिजमैन, पर्सी विलियम्स (1182)	दी लाजिक आफ मॉडन फिजिक्स 1927 दी नेचर आफ फिजीकल थ्योरी 1936 रिफ्लक्शस आफ ए फिजीसिस्ट 1950 दी नेचर आफ सम आफ आवर फिजीकल कान्सेप्टस 1952
ब्रिटन, कार्ल विलियम्स (1902–)	कम्यूनिकेशन, ए फिलासोफिकल स्टडी आफ लग्वेज 1936 जान स्टुअर्ट मिल 1953
ब्रुन्शविग, लियोन (1969–1944)	लेस एटेपस डी ला फिलोसफी मेथेमेटिक 1912 एल एक्सपीरियेंस ह्यूमैन एड ला केजुमलटी फिजिक 1622 लेस प्रोग्रेस डी ला कॉन्शस डस ला फिलोसफी आक्सीडेंट 1927 ला कानेसास डी सोई 1931 ला फिलोसफी डी ले इस्पिरिट 1949

	लोजिक, डिडक्टिव एण्ड इन्डक्टिव 1870 आटोबायोग्राफी 1904
बेन्स टामस स्पेंसर (1823-1887)	ऐस ग्रान दी यू एनलीटिक ग्राफ लोजिकल फार्म्स, 1850
बेलफोर (प्रथम अर्ल)	ए डिफेंस ग्राफ फिलोसोफिक डाउट 1879
बायर-जेम्स (1843-1930)	दी फाउन्डेशन्स ग्राफ बिलीफ (1895)
बैली सम्युग्रल (1791-1870)	ए रिव्यू ग्राफ बकलेस थ्योरी ग्राफ विज़न 1842 लेटस ग्रान दी फिलोसफी ग्राफ दी ह्यूमन माइंड 1855-63
बेवन एडविन रॉबर्ट (1870-1943)	सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ 1938
बाउन, बोडन पाकर (1847-1910)	परसोनेलिज्म 1908
बोखेन्स्की (बोचेन्स्की) इनोसेंटियस एम० (1902)	ला लोजिक डी थियाफ्रास्टे 1947 प्रेसिस डी लोजिक मथेमेटीक 1948 एनसियेंट फारमल लोजिक 1951
बोमैन ग्रार्चिबाल्ड एलन (1883-1936)	स्टडीज इन दी फिलोसोफी ग्राफ रीजन 1938 ए सेक्रामेंटल यूनीवर्स 1938 परसोनलिज्म 1908
बोल्जानो, बर्नड प्लेसिडस जोहान 1781-1848)	विश्सनशाफ्टस्नेहर 1836 पराडोक्सियन डेस ग्रनएंडलिचेन 1851 (1950)
बोन मैक्स (1882-)	दा रेस्टलेस यूनीवर्स 1935 एक्सपेरिमेंट एण्ड थ्योरी 1943 नेचुरल फिलोसफी ग्राफ काज एण्ड चान्स 1949
बोसांके बनर्ड (1848-1823)	नालेज एण्ड रियलिटी 1885 लाजिक 1888 हिस्ट्री ग्राफ एस्थटिक 1892 फिलोसाफिकल थ्योरी ग्राफ दी स्टेट 1899 दा प्रिंसिपल्स ग्राफ इन्डीविजुअलिटी एण्ड वेल्यू 1972

पुस्तक-सूची

दी वेल्यू एण्ड डेसटिनी ग्राफ दी इंडीविजुग्रल 1913
दी डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इटस ग्राब्जेक्ट्स 1913
इम्पलीकेशन एण्ड लीनियर इनफरेंस 1920
दी मीटिंग ग्राफ एक्स्टीम्स इन को टेम्परेरी फिलोसफी 1921
लाइफ एण्ड फिलोसफी (सी० वी० पी० १६२४)
बनाड वोसाके एण्ड हिस फ्रेंडस, सपा० जे एच म्योरहैड 1935
परसनलिटी एण्ड रिलीजन 1934

ब्राइटमैन, एडगर शफील्ड (1884–1653)

ब्राउवर, लुइटजन एकबटस जन (1881–)
इन्टयूशनिज्मे एन फारमेलिज्मे 1912
अनुवाद, बुलेटिन०ग्रमे०मैथे० सोसाइटी (1913)
काशसनेस, फिलोसफी एण्ड मेथेमेटिक्स (प्रोसीडिंग्स दशम इन्टरने० काग्रे० फिलो०) 1949
इन्ट्युशनिज्म 1956

ब्रिजमैन, पर्सी विलियम्स (1182)
दी लाजिक ग्राफ माडन फिजिक्स 1927
दी नचर ग्राफ फिजीक्ल थ्योरी 1936
रिफ्लैक्शस ग्राफ ए फिजीसिस्ट 1950
दी नेचर ग्राफ सम ग्राफ ग्रावर फिजीकल कॉसेप्टस 1952

ब्रिटन, काल विलियम्स (1902–)
कम्यूनिकेशन, ए फिलोसोफिकल स्टडी ग्राफ लग्वेज 1936
जान स्टुग्रट मिल 1953

ब्रूशविग, लियोन (1969–1944)
लेस एटेपस डी ला फिलोसफी मेथमेटिक 1912
एल एक्सपीरियेंस ह्यूमैन एट ला केजुअलटी फिजिक 1622
लेस प्रोग्रेस डी ला कॉशस डस ला फिलोसफी ग्रावसीडेंट 1927
ला कोनसास डी सोई 1931
ला फिलोसफी डी ले इस्पिरिट 1949

ब्रेंटानो फ्राज क्लीमेस (1838–1917)	सायकोलोजी वोम इम्पीरिस्केन स्टेंडपक्टे 1874
	वोम ग्रसप्रुग मिटलिचर अर्केतनिस 1889 (1902)
	डाई वीर फासेन दर फिलोसफी 1895
	वोम डेजाइनगाटस 1929
	वाहरहेइट उन्द एवीडेंज, 1930
	केटीगारियनलहर 1933
ब्रेथवेट, रिचर्ड बेवन (1900–)	दी ग्राइडिया ग्राफ नेसेसरी कनेक्शन (माइड) 1927–8
	साइंटिफिक एक्सप्लनेशन 1953
	एन एम्पीरिसिस्टस व्यू ग्राफ दी नेचर ग्राफ रिलीजियस बिलीफ 1955
	थ्योरी ग्राफ दी गेम्स एज ए टूल फार दी मोरल फिलोसफर 1955
	प्रोबेबिलटी एण्ड इडक्शन (बी० पी० एम,) 1957
ब्रेडले, फ्रांसिस हूबर्ट (1846–1924)	दी प्री-सपोजीशस ग्राफ क्रिटीकल हिस्ट्री 1874
	एथीकल स्टडीज 1876
	दी प्रिंसपल्स ग्राफ लाजिक 1883
	एपीयरेंस एण्ड रिएलिटी 1893
	एसे ग्रान ट्रूथ एण्ड रियलिटी 1914
	कलेक्टेड ऐसेज 1935
ब्राड, चार्ल्स डनबर (1887–)	परसेप्शन, फिजिक्स एण्ड रियलिटी 2914
	साइंटिफिक थॉट 1923
	क्रिटीकल एण्ड स्पेकुलेटिव फिलोसफी (सी बी पी) 1924
	दी माइंड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर 1925
	फाइव टाइप्स ग्राफ ऐथीकल थ्योरी 1930
	दी प्रिंसपल ग्राफ डिमाण्सट्रेटिव इन्डक्शन (माइंड) 1930
	एन एग्जामिनेशन ग्राफ मैकटेगाटस फिलोसफी 1933–38
	एथिक्स एण्ड दि हिस्ट्री ग्राफ फिलोसफी 1952
	रिलीजन फिलोसफी एण्ड फिलोसोफिकल रिसर्च 1953

ब्लाशाड, ब्राड (1892–)	दी नेचर ग्राफ थाट 1939 करेंट सिट्रक्चस ग्रॉन रीजन (पी० ग्रार० 1945) ग्रॉन फिलोसोफिकल स्टाइल 1954
ब्लक, मवस (1609–)	दी नेचर ग्राफ मैथेमेटिक्स 1933 लग्वेज एण्ड फिलोसफी 1949 प्राब्लम्स ग्राफ एनालिसिस 1954
मासल, गब्रियल (1889–)	जनल मटाफिजीक 1927 (1952) एतरे एट एवियोर 1935 (1949) दि फिलोसफी ग्राफ एग्जिस्टेंस 1948 *दी मिस्ट्री ग्राफ बीग 1950*
मारीचल, जोसफ (1878–1944)	ली प्वाइट डी डिपार्ट डीला मेटाफिजिक 1923–6
मार्जेनो, हेनरी (190–)	लिडसे के सहकार म फाउ डेशन ग्राफ फिजिक्स (1939) दी नेचर ग्राफ फिजीकल रियलिटी, 1950
मिचल सर विलियम (1906–)	दी स्ट्रक्चर एण्ड ग्रोथ ग्राफ दी माइड 1907 दी प्लेस ग्राफ माइण्डस इन दी वल्ड 1933
मिल, जॉन स्टुग्रट (1966–1873)	ए सिस्टम ग्राफ लोजिक 1843 डिसर्टेश स एण्ड डिसक्श स 1869 75 एग्जामिनेशन ग्राफ सर विलियम हेमिल्ट्स फिलोसफी 1865 ग्रागस्ट कोम्ट एण्ड पाजीटिविज्म 1866 सम्पादक जेम्स मिल एनालिसिस ग्राफ दी फेनोमीना ग्राफ दी ह्यूमन माइण्ड 1869 ग्राटोबायोग्राफी 1873 थी ऐसेज ग्रान रिलीजन 1874 सेण्ट लींकस सर ल एटरेट लेस प्रीमियस प्रिंसिपल्स [एम० मेकमीन जे० ग्रार० हाइडस तथा जे० एम० मैकम्रिमोन कृत विबलियोग्राफी ग्राफ दी पब्लिशड वक्स ग्राफ जे० एस० मिल देखें]
मिलहॉड, गेस्टन (1858–1918)	एस्साई सुरलस कडीशन्स एट लस लिमिटस् डी ला सर्टीट्यूड लाजिक 1894 ली रेशनल, 1898

मोड, जॉज हबट (1863–1931)	दी फिलोसफी ग्राफ दी प्रेजेंट 1932 माइड, सेल्फ एण्ड सोसाइटी 1934 मूवमट्स ग्रॉफ थॉट इन दी नाइनटीथ सेनचुरी, 1936 दी फिलोसफी ग्राफ दी एक्ट 1938
मोनोग, एलेक्सियस वॉन (1853–1930)	ह्यू म स्टडीन, 1877–82 ग्रण्डरसकहूजेन जर वरथयोरिय, 1894 ग्रबर ग्रन्नाहेमेन 1902 ग्र टरसचनजेन जर गेजेंस्टेंड थ्योरी उन्द साइकोलोजी 1904
मीसेज रिचड वान (1883–1953)	वार्शोनलिखकीत स्टटेटिस्टिक उन्द वाहेंटि, 1928 (1939) क्ली स लेहबक डेस पोजीटिविजमस 1939 (पोजिटिविज्म 1951) (स्टडीज इन मेथमेटिक्स एण्ड मेकेनिक्स प्रेजेंटेड टू रिचड वोन मिसेज मे) 1954
मूर, जाज एडवड (1873–)	फ्रीडम, (माइण्ड 1898) दी नचर ग्राफ जजमेट', माइण्ड 1899 नेसेसिटी माइण्ड 1900 प्रिंसीपिया एथिका 1903 फिलोसोफिकल स्टडीज 1922 ए डिफेम ग्राफ कामनसेंस (सी० बी० पी० II) 1925 प्रूफ ग्राफ एक्सटनल वल्ड (पी० बी० ए० 1939) एन ग्राटोबाइयोग्राफी, ए रिपलाई टू माई क्रिटिक्स, द फिलोसफी ग्राफ जी० ई० मूर मे सम्पादक पी० ए० शिल्प 1942 सम मेन प्रोब्लम्स ग्राफ फिलोसफी 1953 विजुग्रल सेंस डेटा (बी० पी० ए०) 1957
मेयरसन, एमिली (1856–1933)	ग्राइडेंटिटी एट रियलिटी, 1908 (1903) डी ल एक्सप्लीकेशन डेंस लेस साइसेज 1621 ला डीडक्शन रिलेटिवस्ट 1925 ड्यू केमिनमेट डी ला पेंस 1931 एसेज 1936

मेस, सेसिल प्रलेक (1894-)	दी प्रिंसिपल्स प्राफ लाजिक 1933 इन्ट्रोस्पेक्शन एण्ड एनालिसिस (फिलोसोफिकल एनालिसिस-सम्पादक एम ब्लैक 1950) सम ट्रुथ्स इन दी फिलोसफी प्राफ माइण्ड' (पी० पी० एम० 1957)
	प्राउटलाइ स प्राफ मेटाफिजिक्स 1902 एलीमेंट्स प्राफ कन्सट्रक्टिव फिलोसोफी 1917
ईके जी जान स्टुअर्ट (1860-1935)	
मैक्टेगर्ट, जान-मैक्टेगर्ट एलिस, (1866-1925)	स्टडीज इन दी हीगेलियन डाइलेक्टिक 1896 स्टडीज इन हीगेलियन कास्मोलाजी 1910 सम डागमास प्राफ रिलीजन, 1906 ए कमट्री प्रॉन हीगल्स लोजिक 1910 दी नेचर प्राफ एग्जिसटेंस, 1921-7 एन प्राटोलोजिकल प्राइडियलिज्म (सी० बी० पी० I) 1924 फिलोसोफिक्ज स्टडीज 1934
मैकमरे, जान 1891-)	रीजन एण्ड इमोशन 1935 दा बाउंडरीज प्राफ साइंस 1959
मैनसल हेनरी लागवील (1820-1871)	प्रोलगामेना लोजिक 1851 दा लिमिटस प्राफ रिलिजियस थाट 1858 दा फिलोसफी प्राफ दी कंडीशण्ड, 1866
मैरिटेन, जेक्विज (1882-)	इन्ट्रोडक्शन जनरल ए ला फिलोसफी 1920 एन इन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी 1933 ल प्राडर डस कासेप्टस ला पिटाइट लोजिक 1923 (इन्ट्रोडक्शन टु लाजिक 1937-समीक्षा 1946 एज फारमल लाजिक) डिस्टिंगुर पाडर यूनिरर प्राउ लस डिग्रेस ड्यू सवियर 1932 (दी डिग्री प्राफ नॉलेज) (1938) लीका सर ल इतर एत लस प्रिमियस प्रिंसिपस डी ला रेजन स्पकुलटिव 1934 ए प्रिफेस टू मेटाफिजिक्स, 1939

मीड, जॉर्ज हबट
(1863-1931)
दी फिलोसफी श्राफ दी प्रेजेंट 1932
माइंड, सेल्फ एण्ड सोसाइटी 1934
मूवमेंटस श्रॉफ थॉट इन दी नाइनटीय सेन्चुरी, 1936
दी फिलोसफी श्राफ दी एक्ट 1938

मीनाग एलेक्सियस वॉन
(1853-1930)
ह्यूम स्टडीन, 1877-82
श्रण्डरसकहुजेन जर वरथेयोरिय 1894
श्रबर श्रन्नाहेमेन 1902
श्र टरसचनजेन जर गेजेंस्टेंड थ्योरी उन्द साइकोलोजी 1904

मीसेज, रिचड वॉन
(1883-1953)
वार्शानलिखकीत स्टटेटिस्टिक उन्द वार्हेट, 1928 (1939)
क्ली स लेहबक डेस पोजीटिविजमस 1939
(पोजिटिविज्म, 1951)
(स्टडीज इन मेथमेटिक्स एण्ड मेकेनिक्स प्रेजेंटेड टू रिचड वोन मिसेज म) 1954

मूर, जाज एडवड
(1873-)
फ्रीडम (माइण्ड 1898)
दी नचर श्राफ जजमेंट', माइण्ड 1899
'नेसेसिटी माइण्ड 1900
प्रिंसीपिया एथिका 1903
फिलोसोफिकल स्टडीज 1922
ए डिफेंस श्राफ कामनसेंस (सी० बी० पी० II) 1925
प्रूफ श्राफ एक्सटनल वल्ड (पी० बी० ए० 1939)
एन श्राटोबाइयोग्राफी, ए रिपलाई टू माई क्रिटिक्स द फिलोसफी श्राफ जी० ई० मूर मे सम्पादक पी० ए० शिल्प 1942
सम मेन प्रोब्लम्स श्राफ फिलोसफी 1953
विजुग्रल सेंस डेटा (बी० पी० ए०) 1957

मेयरसन, एमिलो
(1856-1933)
श्राइडेंटिटी एट रियलिटी, 1908 (1903)
डी ल एक्सप्लीकेशन डेंस लेस साइसेज 1621
ला डीडक्शन रिलेटिवस्ट 1925
ड्यू केमिनमेट डी ला पेंस 1931
एसेज 1936

मेस, सेसिल ग्रलेक (1894-)
दी प्रिंसिपल्स ग्राफ लोजिक 1933
इन्ट्रोस्पेक्शन एण्ड एनालिसिस (फिलोसोफिकल एनालिसिस-सम्पादक एम ब्लक 1950)
सम ट्रुडस इन दी फिलोसफी ग्राफ माइण्ड' (बी० पी० एम० 1957)

मैके जी जान स्टुग्रट (1860-1935)
ग्राउटलाइ स ग्रॉफ मेटाफिजिक्स 1902
एलीमेंटस ग्राफ कन्सट्रक्टिव फिलोसोफी 1917

मैकटेगट, जान-मैक्टेगट एलिस (1866-1925)
स्टडीज इन दी हीगेलियन डाइलेक्टिक 1896
स्टडीज इन हीगेलियन कास्मोलोजी 1910
सम डागमास ग्राफ रिलीजन 1906
ए कमेंट्री ग्रान हीगल्स लोजिक 1910
दी नेचर ग्राफ एग्जिस्टेंस, 1921-7
एन ग्रादोलोजिकल ग्राइडियलिज्म (सी० बी० पी० I) 1924
फिलोसोफिकल स्टडीज 1934

मैकमरे जान 1891-)
रीजन एण्ड इमोशन 1935
दा बाउडरीज ग्राफ साइंस 1959

मैनसल, हेनरी लागवील (1820-1871)
प्रोलेगामेना लोजिक 1851
दा लिमिटस ग्राफ रिलिजियस थाट 1858
दा फिलोसफी ग्राफ दी कंडीशण्ड, 1866

मैरिटेन, जेक्विज (1882-)
इन्ट्रोडक्शन जनरल ए ला फिलोसफी 1920
एन इन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी 1933
ल ग्राडर डस कासेप्टस ला पिटाइट लोजिक 1923
(इन्ट्रोडक्शन टु लाजिक 1937-समीक्षा 1946 एज फारमल लाजिक)
डिस्टिंगुर पाउर यूनिरर ग्राउ लस डिग्रेस ड्यूसेवियर, 1932 (दी डिग्री ग्राफ नॉलेज) (1938)
लोकासर ल इतर एत लस प्रिमियस प्रिंसिपस डी ला रेजन स्पेकुलटिव 1934
ए प्रिफेस टू मेटाफिजिक्स, 1939

	ह्यूमेनिज्म इंटेग्रल 1936 (द ह्यूमानिस्म 1938) दी रेंज आफ रीजन 1952 सी० ए० फीचर कृत दी फिलोसफी आफ जेक्स मेरीटेन, 1953
मेर्विन, वाल्टर टेलर (1872–1944)	एन इंट्रोडक्शन टु सिस्टेमेटिक फिलोसफी 1903 दी इमसीपशन आफ मेटाफिजिक्स फ्राम एपिस्टेमोलोजी दि न्यू रियलिज्म 1912 ए फर्स्ट बुक इन मेटाफिजिक्स, 1912
मैल्कम, नामन एडरियन (1911–)	दी नेचर आफ ए टेन्मट (माइण्ड 1940) आर नेससरी प्रोपोशीशंस रियली वरबल ? (माइण्ड) 1940 मूर एण्ड आर्डीनरी लग्वज (दी फिलोसफी आफ जी० मूर, सम्पा० पी० ए० शिल्प 1942) दी वेरीफिकेशन आग्यूमेंट (फिलोसोफिकल एनालिसिस सम्पा० एम ब्लक 1950
मैश, अर्न्स्ट (मैख) (1838–1916)	डाई मकनिक इन इहर एटविक्लग 1883 दी साइंस आफ मिकेनिक्स (1893) बरर्टेग जर एनालाइस डर सर्मफिण्ड्यूजेन 1886 (1897) डाई एनालाइस दर इम्पफाइजेन 1900 के रूप में पुन प्रका० पापुलर विशनफापरलिक्न वारलसं आनेजन 1896–(1898) अर्केतनिस उन्द इरटग 1905
मारिस, चार्ल्स डब्लू (1901–)	लाजिकल पोजिटिविज्म प्रेगमटिज्म एण्ड साइंटिफिक एम्पीरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937) साइंटिफिक एम्पीरिसिज्म, (यू० एस० वाल्यूम न० I 1638) फाउन्डेशन आफ दी थ्योरी आफ साइन्स (यू एम वाल्यूम I न० 2 1938) साइंस लग्वज एण्ड बिहेवियर 1946
मार्गन, सी० लॉयड (1852–1936)	इन्सटिंक्ट एण्ड एक्सपीरिएन्स 1912 इमरजेंट एवाल्यूशन 1923

रसल (तृतीय अल), बर्ट्रेंड आथर विलियम (1872)

एन एसे आन दी फाउ डेशन्स आफ जियोमट्री 1997
ए क्रिटिकल एक्सपोजीशन आफ दी फिलासफी आॅफ लेबनिज 1900
दि प्रिंसपल्स आफ मेथेमटिक्स 1903
मीनोंग्स थ्योरी आफ कम्प्लक्सेज एण्ड अजम्पशस (माइण्ड) 1904
आन डिनोटिंग माइण्ड 1905
(ए० एन० व्हाइटहैड के सहकार म) *प्रिंसिपिया मथमटिका* 1010–13
फिलोसोफिक्ल एसेज 1910
दी प्राब्लमस आफ फिलोसफी 1912
आवर नालज आफ दी एक्सटनल वल्ड 1914
मिस्टीसिज्म एण्ड लोजिक 1917
फिलोसफी आफ लाजिकल एटोमिज्म (मोनिस्ट) 1918–19
इन्ट्रोडक्शन टु मथमटिक्ल फिलोसफी 1919
लोजिक्ल एटोमिज्म (सो० बी० पी० I 1924)
दी एनालिसिस आफ मटर 1927
एन आउटलाइन आफ फिलोसफी 1927
दा लिमिटस आफ एम्पीरिसिज्म (पी० ए० एस० 1936)
एन इन्क्वायरी इन्टू मीनिंग एण्ड टूथ 1940
माई मेटल डवलपमंट एण्ड ए रिपलाई टु क्रिटिक्स, दी फिलोसफी आफ बरट्रेंड रसल सम्पा० पी० ए० शिल्प 1944
ए हिस्ट्री आफ वस्टन फिलासफी 1945
ह्यूमन नालज एण्ड इटस स्कोप एण्ड लिमिट 1948
लाजिक एण्ड नालज 1959

राइट, चासी (1830–1875)

फिलोसोफिक्ल डिस्कशन्स 1877 (1941)

राइट जाज हनरिक वॉन (1916–)

द लाजिकल प्राब्लम आव इडक्शन फाम एण्ड कटेंट इन लाजिक) 1949

ए ट्रीटीज ऑन इंडक्शन एण्ड प्रावबिलिटी 1951
एन एसे इन मोडल लाजिक 1951

राइल गिलबर्ट (1900–)
आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी० ए० एस०) 1929
सिस्टेमेटिकली मिसलीडिंग इक्सप्रेशंस (पी० ए० एस० 1931 तथा एल एल I)
फिनोमेनोलोजी (पी० ए० एस० एस०) 1933
टॉकिंग साइडस इन फिलासफी (फिलो०) 1937
केटेगारीज (पी० ए० एस०) 1938 तथा (एल एल II)
फिलोसोफिकल आग्युमेंटस 1945
दा कान्सेप्ट ऑफ माइण्ड, 1949
इफ, सो एण्ड बिकाज, (फिलोसाफिकल एनालिसिस, सम्पा० मेक्स ब्लेक 1950)
फीलिंग (पी० क्यू०) 1950
डाइलेमाज 1954
सेंसेशन (सी० बी० पी० III 1956)
दी थ्योरी आफ मीनिंग (बी०पी०एम०) 1957
दी कान्सेप्ट आफ माइण्ड एला स्पिरिटो कम कम्पार्टमटो" के इतालवी अनुवाद में पुस्तक सूची देखें। सम्पा० एफ रोमोलडी 1955

राधाकृष्णन सर्वपल्ली (1888–)
दी रेन आफ रिलीजन इन कान्टेम्परेरी फिलोसफी 1920
रिपलाई टु क्रिटिक्स, दि फिलोसफी आफ एस आर (सम्पा० शिल्प) 1952

रिकर्ट, हायनरिख (1863–1936)
कलचर विसेनशाफ्ट उन्द नेचर विसेनशाफ 1899

रिचो आयर डविड (1891–)
साइंटिफिक मेथड 1923
नेचुरल हिस्ट्री आफ माइण्ड 1936
एसेज इन फिलोसफी 1948

रीकनबाख (राइकनबक) हैंस (1891–1933)
वारशेनलिखकीतलहर 1935 (1949)
एक्सपारियेन्स एण्ड प्रेडीक्शन 1938
फिलोसाफिक फाउंडेशन्स आफ क्वान्टम मैकनिक्स, 1944

	एलीमेंटस ग्राफ सिम्बोलिक लोजिक 1947 दी राइज ग्राफ साइंटिफिक फिलोसफी 1951
रेनोवियर, चाल्स (1819–1903)	एसस डी क्रिटिक जेनरल 1854–64
रमजे, फ्रंक प्लपटन (1903–1930)	दी फाउंडेश न ग्राफ मेथमेटिक्स एण्ड ग्रदर लोजिकल ऐसज 1931
रेशडाल हेस्टिंग्स (1858–1924)	'पसर्नालटी ह्यूमन एण्ड डिवाइन" पसनल ग्राइडियलिज्म सम्पा० एच स्टुग्रट 1902 दी थ्यारी ग्राफ गुड एण्ड ईविल 1907
राइस जोसिया (1855–1916)	दी रिलीजियस ग्रास्पक्टस ग्रॉफ फिलोसफी, 1885 दी स्पिरिट ग्राफ माडन फिलासफी 1892 दी वल्ड एण्ड दी इन्डीविजुग्रल 1900 राइसे'स लोजिकल एसेज, सम्पा० डी० एस० रॉबिनसन, 1951 पी० ग्रार 1916 मे पुस्तक सूची
राबटसन जाज क्रूम (1842–92)	हा स 1186 फिलोसोफिकल रिमस 1894
राबिन्सन रिचड (1902–)	दी प्रोविन्स ग्राफ लाजिक 1931 प्लटोज ग्ररलियर डायलेक्टिक, 1941 डेफीनिशन 1950
रॉजस ग्रायर केनियन (1908–)	दी प्राब्लम ग्राफ एरर" ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920 व्हाट इज ट्रूथ? 1923
रोमेन्स, जाज जॉन (1848–1894)	ए कॅंडिड एग्जामिनेशन ग्राफ थीइज्म 1878 माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म 1895
लवजाय, ग्रायर ग्रार्नाकिन (1873–)	दी रिवोल्ट ग्रगेस्ट ड्यूग्रलिज्म 1930 दी ग्रेट चेन ग्राफ बीग 1936 ऐसेज इन दी हिस्ट्री ग्राफ ग्राइडियाज 1946
लाड जाज ट्रबुल (1842–1921)	फिलोसफी ग्राफ नालेज 1897 ए थ्योरी ग्राफ रियलिटी 1899

लाड-फ्रैंकलिन क्रिस्टीन	फ्रैंकलिन, क्रिस्टीन लाड देखें
ली राय एडुवार्ड (1870)	ला वॅस इन्ट्यूटिव 1929–30
लीबमन, प्राटो (1840–1912)	कॅंट उ द डाई एपीजोनेन 1865
लीविस क्लेरेंस प्रविंग (1883–)	ए सर्वे ग्राफ सिम्बोलिक लाजिक 1918 माइण्ड एण्ड दी वर्ल्ड ग्रॉडर 1929 जी० एच० लगफोर्ड के सहकार म सिम्बोलिक लाजिक 1932 एन एनालिसिस ग्राफ नॉलिज एण्ड वेल्यूएशन 1946
लेवीज जॉज हेनरी (1817-1878)	प्रॉब्लम्स ग्राफ लाइफ एण्ड माइण्ड 1874-9
लेन्ज फ्रायडरिख एलबर्ट (1828-1875)	डाई गेसेपिफट डेम मेटेरियालिज्म उन्द क्रितीक साइनर विड्यूटग इन दर गेजेनवार्ट 1866 (1879) लाजिक स्टडीन, 1877
लेयर्ड जॉन (1887–1946)	प्राब्लम्स ग्राफ दी सल्फ 1917 ए स्टडी इन रियलिज्म 1920 हाउ ग्रावर माइण्डस मे गो वियाण्ड देमसेल्वस इन देयर नोइंग ? (सी वी पी I 1924) नालेज, बिलीफ एण्ड प्रोपीनियन 1930 थीइज्म एण्ड कॉस्मोलोजी 1940 माइण्ड एण्ड डीटी 1941 ग्रान ह्यूमन फ्रीडम 1947
लॅंजर, सूसन के (1895–)	एन इण्ट्रोडक्शन टु सिम्बालिक लाजिक 1937 फिलोसफी इन ए यू की, स्टडी इन दी सिम्बोलिज्म ग्रॉफ रीजन राइट एण्ट ग्राट 1942
लेजरोविच मोरिस (1909)	ए एम्ब्रोम के सहकार म 'फण्डामटल्स ग्राफ सिम्बोलिक लोजिक' 1948 दो स्ट्रक्चर ग्राफ मेटाफिजिक्स 1955

	एलीमेंटस ग्राफ सिम्बोलिक लोजिक 1947 दी राइज ग्राफ साइंटिफिक फिलासफी 1951
रेनोवियर, चार्ल्स (1819–1903)	एसस डी क्रिटिक जनेरल 1854–64
रमजे, फ्रैंक प्लम्पटन (1903–1930)	दी फाउंडेशन्स ग्राफ मैथेमेटिक्स एण्ड ग्रदर लोजिकल ऐसेज 1931
रेशडाल हेस्टिंग्स (1858–1924)	"पर्सनालिटी, ह्यूमन एण्ड डिवाइन,' पर्सनल ग्राइडियलिज्म सम्पा० एच स्टुग्रट 1902 दी थ्यारी ग्राफ गुड एण्ड ईविल 1907
राइस जोसिया (1855–1916)	दी रिलीजियस ग्रास्पक्टस ग्रॉफ फिलोसफी, 1885 दी स्पिरिट ग्राफ माडन फिलासफी 1892 दी वल्ड एण्ड दी इण्डीविजुग्रल 1900 राइसे'स लोजिकल एसेज, सम्पा० डी० एस० रॉबिनसन 1951 पी० ग्रार 1916 म पुस्तक सूची
रावटसन जाज क्रूम (1842–92)	हॉस 1186 फिलासोफिकल रिमेंस 1894
राबिन्सन रिचड (1902–)	दी प्रोविन्स ग्राफ लाजिक 1931 प्लेटोज ग्ररलियर डायलेक्टिक, 1941 डेफीनिशन 1950
रॉजस ग्रायर केनियन (1908–)	'दी प्राब्लम ग्राफ एरर ' ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920 व्हाट इज ट्रुथ ? 1923
रोमन्स, जाज जॉन (1848–1894)	ए कॅडिड एग्जामिनेशन ग्राफ थीइज्म 1878 माइण्ड मोशन, एण्ड मोनिज्म 1895
लवजाय ग्रार्थर ग्रानकिन (1873–)	दी रिवाल्ट ग्रगेंस्ट ड्यूग्रलिज्म 1930 दी ग्रेट चेन ग्राफ बीग 1936 ऐसेज इन दी हिस्ट्री ग्राफ ग्राइडियाज 1946
लाड जाज ट्रुबुल (1842–1921)	फिलोसफी ग्राफ नालेज 1897 ए थ्योरी ग्राफ रियलिटी 1899

	प्रॉबलिम ग्रिस्टीन साइ देर्ने सा नेंग इन्टूटिव 1929-30
लाइ-फ कलिन, ब्रिटोन सी राय एडुवाड (1870)	वॅट उ द डाई एबीजानन 1865
लोयमन प्राहो (1840-1912)	
लेविस क्लेरेंस अर्विंग (1883-)	ए सर्वे ऑफ सिम्बालिक लॉजिक 1918 माइण्ड एण्ड दी वल्ड ऑर्डर 1929 जी० एच० लगफोर्ड के सहकार में सिम्बोलिक लॉजिक 1932 एन एनालिसिस ऑफ नॉलेज एण्ड वल्यूएशन 1946 प्राब्लम्स ऑफ लाइफ एण्ड माइण्ड 1874-9
लेवीज, जॉर्ज हेनरी (1817-1878)	
लेज फ्रायडरिख एलबर्ट (1828-1875)	डाई गशिच्ट डेस मटरियालिज्म उ द क्रिटीक साइनर बिडयूटग इन दर गजनवार्ट 1866 (1879) लॉजिक स्टडीन, 1877
लेयर्ड, जॉन (1887-1946)	प्रॉब्लम्स ऑफ दी सल्फ 1917 ए स्टडी इन रियलिज्म 1920 आउ आवर माइण्ड्स मे गो बियॉण्ड देमसल्वस इन स्पर नोईंग ? (सी बी पी I 1924) नेचिज, विमीफ एण्ड प्रापोजियन 1930 थीइज्म एण्ड कॉस्मोलोजी 1940 माइण्ड एण्ड बोडी 1941 ऑन ह्यूमन फीडम 1947
लेंजर, सूसन के (1895-)	एन इन्ट्रोडक्शन टु सिम्बालिक लाजिक 1937 फिलोसफी इन ए न्यू की, स्टडी इन दी सिम्बालिज्म ऑफ रीजन राइट एण्ड आर्ट 1942
लेजरोविच मोरिस (1909)	ए एम्ब्रोस के सहकार म, 'फण्डामेंटल्स ऑफ सिम्बोलिक लोजिक' 1948 दी स्ट्रक्चर ऑफ मेटाफिजिक्स 1955

ललॅन्ड पियरे एन्ड्रे (1867-)	लक्चरस सुर ला फिलासफी डस साइ स 1893 लेस थ्योरीज डो एज इ डक्शन एट डी एक्सपरीमटेशन 1929
लनजन विक्टर एफ० (1890-)	दी नेचर ग्राफ फिजीफल थ्योरी 1231 प्रासीजस ग्राफ एम्पीरिकल साइस, (यू० एस० वाल्यूम० १ न० ८) 1938 कंजुअलिटी इन नेचुरल साइस 1954
लशलियर, ज्यूलस (1829–1909)	ड्यू फडामट डो एल इन्डक्शन 1871
लारी साइमन सोमर्वील (1829–1909)	मटाफिजिक नावा एट बटुस्टा 1884 सिन्थेटिक 1906
लात्जे, रूडोल्फ हरमन (1817–1881)	मटाफिजिक 1841 लोजिक 1843 (1884) माइक्रोकासमास 1856-64 (1885) सिस्टम डर फिलोसफी 1874–9 1884
ल्यूकासीविच जन (1878–1956)	दी शार्टेस्ट एक्जियम, (प्रोसीडिंग्स ग्राव रायल ग्राइरिश एका० 1948 एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टक 1951
वारनाक, जेफ्रे जे० (1923)	वरीफिकेशन एण्ड दी यूज ग्राफ लग्वेज (ग्रार० ग्राई० पी०) 1951 मटाफिजिक्स इन लोजिक (पी०ए० एस०) 1951 बकले 1953 एवरी इवेंट हेज ए काज (एस० एल० II) 1953
वाड जेम्स (1843–1925)	नचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म 1899 दी रीलम ग्राफ एन्डस 1611 सायकोलोजी प्रिंसपल्स 1918 एथइस्टिक मोनेडिज्म (सी बी पा II) 1925 एसेज इन फिलोसफी 1927
वाकर लेसली जे (1877-)	थ्यारीज ग्राफ नालज 1910
विडलबड विलहेल्म (1848–1915)	ग्राइनलेटिंग इन डाई फिलोसफी 1914 (1921)

विटजनस्टीन, लुडविग (1889-1951)
ट्रैक्टेटस लोजिको-फिलोसोफिकस 1922
सम रिमार्क्स ग्रान लोजीकल फार्म (पी० ए० एस० एस०) 1929
फिलोसोफिकल इन्वस्टिगेशस 1953
फिलासोफिकल रिमाकस ग्रान दी फाउडेशन्स ग्राफ मथेमेटिक्स 1956

विलियम्स, डोनल्ड करी (1899-)
दी ग्राउड ग्राफ इन्डक्शन 1947
प्रोबेबिलिटी इन्डक्शन एण्ड दी प्रावीडेंट मेन'
फिलोसोफिकल थाट इन फ्रास एन्ड दी युनाइटेड स्टेटस, सम्पा० एम फारबर 1950

विलसन, जान कुक (1849-1915)
ग्रान एन इवोल्यूशनिस्ट थ्योरी ग्रॉफ एक्जियम्स 1889
स्टेटमेंट एण्ड इनफेरेन्स 1926

विजडम ग्रायर जान टेरेन्स डिवर (1904-)
लोजिकल कन्सट्रक्शन्स (माइण्ड) 1931-3
प्रोब्लम्स ग्राफ माइण्ड एण्ड मेटर 1934
ग्रदर माइण्डस 1952
फिलोसफी एण्ड सायकोएनालिसिस 1953

वीनबर्ग, जूलियस रूडोल्फ (1908-)
एन एक्जामिनेशन ग्राफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1936

वील, हरमन (1885-)
डास कोन्टीयुयम 1918
फिलासोफी डर मथेमेटिक उन्द नेचर विसेंसखाफ्ट 1926 (1949)

वुडब्रिज, फ्रेडरिक जेम्स यूजीन (1867-1940)
दा रिएल्म ग्राफ माइण्ड 1926
कन्फेशन्स (सी० ए० पी० I)I 1930
एन एसे ग्रान नेचर 1940

वूजर जोसफ हेनरी (1894-)
बायोलोजिकल प्रिंसिपल्स 1929
दी एक्सिग्रोमेटिक मथड इन बायोलोजी 1937
दी टेकनीक ग्राफ थ्योरी कन्सट्रक्शन (यू० एस० वाल्यूम II न० पाच) 1939
बायालाजी एन्ड लैंग्वेज 1952

वेन, जॉन (1834-1923)
दी लोजिक ग्राफ चास, 1866
सिम्बालिक लाजिक 1881

लर्लेंड, पियरे एड्रे (1867-)	लेक्चरस मुर ला फिलासफी डस साइ स 1893 *लेस थ्यारीज डी एज इ डक्शन एट डी एक्सपेरी मटेशन* 1929
लेनजन, विक्टर एफ० (1890-)	दी नेचर ग्राफ फ़िजीफल थ्योरी 1231 प्रासीजस ग्राफ एम्पीरिकल साइस, (यू० एस० वाल्यूम० १, न० ५) 1938 कजुग्रलिटी इन नेचुरल साइस 1954
लशेलियर, ज्यूल्स *(1829-1909)*	ड्यू फडामट डी एल इ डक्शन 1871
लॉरी साइमन सोमर्वील (1829-1909)	मटाफिजिक नोवा एट वटुस्टा 1884 सि थटिक 1906
लात्जे रूडोल्फ हरमन (1817-1881)	मटाफिजिक 1841 लाजिक 1843 (1884) माइक्रोकासमास 1856-64 (1885) सिस्टम डर फिलासफी 1874-9 1884
ल्यूकासीविज जन (1878-1956)	दी शार्टेस्ट एक्जियम, (प्रोसीडिंग्स ग्राव रायल ग्राइरिश एका० 1948 एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टक 1951
वारनाक, जेफ्रे जे० (1923)	वरीफिकेशन एण्ड दी यूज ग्राफ लग्वेज (ग्रार० ग्राई० पी०) 1951 मटाफिजिक्स इन लाजिक (पा०ए० एस०) 1951 बकल 1953 एवरी इवेंट हेज ए काज (एस० एल० II) 1953
वाड, जेम्स (1843-1925)	नचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म 1899 दी रील्म ग्राफ एण्ड्स 1611 सायकोलोजी प्रिसपल्स 1918 एथेइस्टिक मोनेडिज्म (सी बी पा II) 1925 एसेज इन फिलोसफी 1927
वाकर लेसली जे (1877-)	थ्योरीज ग्राफ नालेज 1910
विडलबड विलहेल्म (1848-1915)	ग्राइनलटिंग इन डाई फिलोसफी 1914 (1921)

विटजनस्टीन, लुडविग (1889-1951)	ट्रैक्टेटस लोजिको-फिलोसाफिक्स 1922 सम रिमाक्स ऑन लोजीकल फार्म (पी० ए० एस० एस०) 1929 फिलोसाफिकल इंवेस्टिगेशंस 1953 फिलोसोफिकल रिमार्क्स ग्रान दी फाउंडेशंस ग्राफ मैथेमेटिक्स 1956
विलियम्स, डोनल्ड करी (1899-)	दी ग्राउंड ग्राफ इंडक्शन 1947 'प्रोबेबिलिटी इंडक्शन एण्ड दी प्राबीडेंट मेन' फिलोसोफिकल थाट इन फ्रांस एंड दी युनाइटेड स्टेटस, सम्पा० एम फारबर 1950
विलसन, जॉन कुक (1849-1915)	ग्रॉन एन इवोल्यूशनिस्ट थ्योरी ग्रॉफ एक्जियम्स 1889 स्टेटमंट एण्ड इनफेरेंस 1926
विज़डम, ग्राथर जान टेरेंस डिवर (1904-)	लोजिकल कंसट्रक्शंस, (माइण्ड) 1931-3 प्रोब्लम्स ग्राफ माइण्ड एण्ड मेटर 1934 ग्रदर माइण्डस 1952 फिलोसफी एण्ड सायकोएनालिसिस 1953
वीनबर्ग, जूलियस रूडोल्फ (1908-)	एन एक्जामिनेशन ग्राफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1936
वील, हरमन (1885-)	डास कोंटीयुयम 1918 फिलोसोफी डर मेथमेटिक उंद नेचर विसेंसखाफ्ट 1926 (1949)
वुडब्रिज, फ्रैडरिक जेम्स यूजीन (1867-1940)	दा रिएल्म ग्रॉफ माइण्ड 1926 कंफेशंस (सी० ए० पी० I)I 1930 एन एसे ग्रान नेचर 1940
वूजर जोसफ हेनरी (1894-)	बायोलोजिकल प्रिंसिपल्स 1929 दी एक्सिग्रोमटिक मेथड इन बायोलोजी 1937 दी टेकनीक ग्राफ थ्यारी कंसट्रक्शन (यू० एस० वाल्यूम II न० पाच) 1939 बायालोजी एंड लैंग्वेज 1952
वेन, जॉन (1834-1923)	दी लोजिक ग्राफ चास, 1866 सिम्बालिक लाजिक 1881

	दी प्रिंसिपल्स ग्राफ एम्पिरिकल ग्रार * डक्टिव लाजिक 1889
वाँहिजर, हैंस (1852–1933)	कोमटर जर क्रिटिक ʼर रेनेन वरनुफट 1882–92 फिलोसफी डेस ग्रलस ग्रार 1911 '1929)
वसमैन, फ्रायडरिख (1896–)	ʼाजिस्के एनालाइस डेस वाशशीनलिखकाइटस बेगरिफस ग्रर्के॰ 1930 इ फ्यूहरंग इन डास मथमेन्टिस डेनकेन 1936 (1951) वेरीफिंयेबिलिटी (पी॰ ए॰ एम॰ एस॰ 1945 एण्ड एल एल I) एनालीटिक सिं थेटिक (एनालिसिस) 1949–52 लग्वग स्ट्रटा (एल॰ एल॰ ʼI) 1953 हाऊ ग्राई सी फिलोसफी (सी॰ बी॰ पी॰ III) 1956
वब, क्लीमट चाल्स जूलियन (1865-)	गॉड एण्ड पसनलिटी 1919 डिवाइन पसनलिटी एण्ड लाइफ 1920 ग्राउटलाइ स ग्राफ ए फिलासफी ग्रॉफ रिलीजन (सी॰ बी॰ पी॰ II) 1924 रिलीजियस एक्सपीरियेंस 1945
वलेस विलियम (1844-1897)	दी लोजिक ग्राफ हीगल 1874 लक्चस एण्ड एसज ग्रान नेचुरल थियोलाजी एण्ड एथिक्स 1898
वल्श विलियम हेनरी (1913-)	रीजन एण्ड एक्सपीरियेंस 1947 एनट्रोडक्शन टु दी फिलोसफी ग्राफ हिस्ट्री 1951
ह्वाइटहेड ग्रल्फ्रेड नाथ (1961–1941)	ए ट्रीटीज ग्रान यूनीवसल एलजबरा 1898 ग्रान मेथेमेटिकल कन्सेप्टस ग्राफ दी मेटीरिएल वल्ड फिलो॰ ट्रासे॰ रायल सोसाइटी 1906 एन इ ट्रोडक्शन टु मेथमटिक्स 1911 दी ग्रार्गानाइजेशन ग्राफ थाट, 1917 एन इन्क्वायरी कन्सनिंग दी प्रिंसिपल्स ग्राफ नेचुरल नालेज 1919 दी कान्सेप्ट ग्राफ नेचर 1920 दी प्रिंसपल ग्राफ रिलेटिविटी 1922

साइंस एण्ड दी माडन वर्ल्ड 1925
सिम्बोलिज्म इट्स मीनिंग एण्ड इफेक्ट 1928
प्रोसस एण्ड रियलिटी 1929
एडवेंचस ग्रॉफ प्राइडियाज 1933
ग्राटोबायोग्राफीकल नोटस एक्सप्लनटरी नोटस, मैथमटिक्स एण्ड दी गुड, इमर्पोरटेलिटी (दी फिलोसफी ग्राफ ए० एन० व्हाइटहैड, सम्पा० पी० ए० शिल्प (1941) म
एसेज इन साइंस एण्ड फिलोसफी 1947

शिलर, फर्डिनेंड कनिंग स्काट (1864–1937)
एक्सियम्स एज पोस्चुलेटस, (पर्सनल आइडियलिज्म सम्पा० एच स्टुट) 1902
ह्यूमैनिज्म 1903
स्टडीज इन ह्यूमैनिज्म 1907
फॉरमल लाजिक 1912
प्राब्लम्स ग्राफ बिलीफ 1924
लाजिक फार यूज 1919
व्हाई ह्यूमैनिज्म ? (सी० बी० पी० 1) 1924

शेफर, हेनरी मारिस (1883–)
इनएफेबिल फिनासाफीज (जे० पी० 1909)
ए सेट ग्राफ फाइव इंडिपेंडेंट पोस्चुलेटस फॉर एलजबराज, एम० मेथ द्वारा अनुवादित
(देखें, स्ट्रक्चर मेथड एण्ड मीनिंग एसेज इन ग्रॉनर ग्राफ हनरी एम० शफर सपा० पी हनल, एच एम कालन ए तथा एस० के० लैंगर 1951)

श्रोदर, फ्रायडरिख विलेहेल्म अन्स्ट (1841–1902)
वरलेस गजेन ग्रबर डाई एलजेबरा डर लाजिक 1890–1905
एबरिस डर एलजेबरा डर लोजिक 1909–10

श्लिक, मारिज (1882–1936)
राय उंद जाइट इन डर गगनवारटाईजेन फिजिक 1917
ग्राजगेमेन ग्रर्केतनिसलहर, 1918
फाजेन डर एथिक, 1930 (प्रॉब्लम्स ग्राफ एथिक 1939)
फेक्ट एण्ड प्रोपोजीशन्स (एनालिसिस 1935)
गसाम्मेलट ग्राफसाज 1926–36, 1938,
जसटज कॉशलितात उंद वाहरशीनलिखकीत 1948

सार्त्र ज्यां पाल (1909–)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यून थ्योरी डेस इमोशंस 1940 (1948) ल एट्रो एटल नीअट 1943 (1956) ल एक्सिस्टेंशियलिज्म ऐस्ट अन ह्यूमानिज्म 1946 (एक्जिसटेंशीलिज्म 1947) सिचुएशंस 194769 (वाल्यू० I लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिकल एसेज नाम से प्रकाशित 1955)
सिगवट, क्रिस्तोव (1830–1904)	लाजिक 1873–78 (1895)
सिजविक, अल्फ्रेड 1850–1943)	फालसीज 188२ दी प्रोसेस आफ आर्ग्यूमेंट 1893 दा यूज आफ वर्डस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेशंस आफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838–1900)	मेथड्स आफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इट्स स्कोप एण्ड रिलेशंस 1902 फिलोसफी आफ केंट एण्ड अदर लेक्चर्स एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिंगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856–1931)	स्काटिश फिलोसफी 1885 हीगेलीयनिज्म एण्ड पर्सनलिटी 1887 दी आइडिया आफ गाड 1917 दी आइडिया आफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863–1952)	दी लाईफ आफ रीज़न 1905–6 केरेक्टर एण्ड ओपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्कप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ 1923 रियेल्मस आफ बीग मे दा रियेल्म आफ ऐसेज 1927 दा रियेल्म आफ मेटर 1930 दा रियेल्म आफ ट्रुथ 1938 दा रियेल्म आफ स्पिरिट 1940 दी वर्क्स आफ जाज सेंटयाना 1936–40

	ए जनरल थ्योरी ... एग्रारियन ... (दी फिलासफी ऑफ जॉर्ज सैंटायाना सम्पादक, पी० शिल्प) 1940
सेलर्स, रॉय वुड (1880–)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916
	दी फिलासफी ऑफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी० पी० आर० में 1954)
सोरल, जार्ज (1847–1922)	रिफ्लेक्शन्स सुर ला वायोलेंस, ... प्रका० 1905, 1908 (1914) में पुस्तकाकार में प्रकाशित व अनूदित
	दी ला यूटीलिटी दे प्रैग्मेटिज्म 1921
स्टर्लिंग, जेम्स हचिसन (1820–1909)	दी सीक्रेट ऑफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1860–1944)	एनालीटिक सायकोलोजी 1896
	ए मैनुअल ऑफ सायकोलोजी 1899
	स्टडीज इन फिलासफी एण्ड सायकोलोजी 1930
	माइण्ड एण्ड मैटर 1931
	गॉड एण्ड नेचर, 1952
स्टीफन, सर लेस्ली (1832–1904)	इंग्लिश थॉट इन दी एटीन्थ सेन्चुरी, 1876 (1908)
	साइन्स ऑफ एथिक्स 1882
	एन एगनास्टिक्स एपालोजी 1893
	दी इंग्लिश यूटीलिटेरियन्स 1900
स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेस्ली	पर्सुएसिव डेफीनीशन्स (माइण्ड) 1938
	एथिक्स एण्ड लैंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिज्जी सूसन, (1885–1943)	प्रैग्मेटिज्म एण्ड फ्रेंच वालन्टरिज्म 1915
	ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लॉजिक, 1930
	फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्ट्स 1941
	आइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941
	फिलासोफीकल स्टडीज एसेज इन मेमोरी ऑफ एल० एस० स्टेबिंग में प्रका० 1948
स्टेस, वाल्टर टेरेन्स (1886–)	दी थ्योरी ऑफ नॉलेज एण्ड एग्जिस्टेंस 1932
	दी नेचर ऑफ द वर्ल्ड 1940
स्ट्रॉंग, चार्ल्स ऑगस्टस (1852–1940)	व्हाई दी माइण्ड हेज ए बॉडी ? 1903
	दी ओरीजिन ऑफ कॉन्शसनेस 1918
	ए क्रीड फॉर स्केप्टिक्स (1936)

सात्र, ज्याँ पाल (1909–)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यून थ्योरी डेस इमोशस 1940 (1948) ल एट्रो एटले नीग्रट 1943 (1956) ल एक्सिटशियलिज्म ऐस्ट श्रन ह्यूमानिज्म 1946 (एक्जिसेंटशीलिज्म 1947) सिचुएशस 194769 (वाल्यू० I 'लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिक्ल एसज नाम से प्रकाशित 1955)
सिगवट, क्रिस्तोब (1830–1904)	लाजिक 1873–78 (1895)
सिजविक अल्फ्रेड 1850–1943)	फलसीजा 188२ दी प्रोसस ग्राफ ग्राग्यूमेंट 1893 दा यूज ग्राफ वडस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेशस ग्राफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838–1900)	मेथडस ग्राफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इटस स्कोप एण्ड रिलेश स 1902 फिलोसफी ग्राफ केंट एण्ड ग्रदर लेक्चस एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856–1931)	स्काटिश फिलोसफी 1885 हीगेलीयनिज्म एण्ड पसनलिटी 1887 दी ग्राइडिया ग्राफ गाड 1917 दी ग्राइडिया ग्राफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863–1952)	दी लाईफ ग्राफ रीजन 1905–6 केरेक्टर एण्ड ग्रोपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्कप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ 1923 रियलमस ग्राफ बीग म दा रियेल्म ग्राफ ऐसेज' 1927 दा रियेल्म ग्राफ मेटर, 1930 दा रियेल्म ग्राफ ट्रुथ 1938 दा रियेल्म ग्राफ स्पिरिट 1940 दी वक्स ग्राफ जाज सेंटयाना 1936–40

	ए जेनरल कन्फेशन, एपोलोजिया प्रो मेटा सुम्रा (दी फिलोसफी ग्राफ जॉर्ज सँटयाना, सम्पादक पी० शिल्प) 1940
सेलस, राय वुड (1880-)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916
	दा फिलोसफी ग्राफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी० पी० ग्रार० म, 1954)
सॉरल, जार्जिस (1847-1922)	रिफ्लेक्शस सुर ला वायोलेंस, लेखों के रूप म प्रका० 1905, 1908 (1914) मे पुस्तकाकार म प्रकाशित व ग्रनूदित,
	डी एल हुटीली टी ड्यू प्रेग्मटिज्म 1921
स्टर्लिंग, जेम्स हचिसन (1820-1909)	दी सीक्रेट ग्राफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1806-1944)	एनालीटिक सायकोलोजी 1896
	ए मेनुग्रल ग्राफ सायकालोजी, 1899
	स्टडीज इन फिलोसफी एण्ड सायकोलोजी 1930
	माइण्ड एण्ड मैटर 1931
	गॉड एण्ड नेचर, 1952
स्टीवन, सर लेसली (1832-1904)	इग्लिश थाट इन दी एटीथ सेनचुरी, 1876 (1908)
	साइंस ग्राफ एथिक्स 1882
	एन एगनोस्टिक्स एपोलोजी 1893
	दी इग्लिश यूटीलिटेरियन्स 1900
स्टीवेंसन, चार्ल्स लेसली	पस्युएसिक डेफीनीशन्स (माइण्ड) 1938
	एथिक एण्ड लैंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिजी सूजन, (1885-1943)	प्रेग्मटिज्म एण्ड फ्रेंच वालन्टरिज्म 1915
	ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लोजिक, 1930
	फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्टस 1941
	ग्राइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941
	फिलोसाफीकल स्टडीज ऐसेज इन मेमोरी ग्राफ एल० एस० स्टेबिंग म प्रका० 1948
स्टस, वाल्टर टेरेन्स (1886-)	दी थ्योरी ग्राफ नालज एण्ड एक्जिस्टेंस 1932
	दी नेचर ग्राफ द वर्ल्ड 1940
स्ट्रोंग चार्ल्स ग्रोगस्टस (1852-1940)	व्हाई दी माइण्ड इज ए बॉडी ? 1903
	दी ग्रारीजिन ग्राफ कॉन्सनस 1918
	ए क्रीड ग्राफ स्कपटिक्स (1936)

सात्र, ज्यां पाल (1909-)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यू न थ्योरी डेस इमोशस 1940 (1948) ल एट्रो एटल नीअट 1943 (1956) ल एक्सिटेंशियलिज्म ऐस्ट अन ह्यू मानिज्म 1946 (एक्जिसेंटशीलिज्म 1947) सिचुएशस 194769 (वाल्यू० I लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिक्ल एसेज नाम से प्रकाशित 1955)
सिगवट, क्रिस्तोव (1830-1904)	लाजिक 1873-78 (1895)
सिजविक अल्फ्रेड 1850-1943)	फलसीज 1883 दी प्रोसेस ग्राफ ग्राग्यूमट 1893 दा यूज ग्राफ वडस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेशस ग्राफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838-1900)	मेथडस ग्राफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इटस स्कोप एण्ड रिलेश स 1902 फिलोसफी ग्राफ क्ट एण्ड ग्रदर लेक्चस एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिंगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856-1931)	स्काटिश फिलोसफी, 1885 हीगलीयनिज्म एण्ड पसनलिटी 1887 दी ग्राइडिया ग्राफ गाड 1917 दी ग्राइडिया ग्राफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863-1952)	दी लाईफ ग्राफ रीजन 1905-6 केरेक्टर एण्ड ग्रोपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्केप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ 1923 रियेल्मस ग्राफ बीग मे दा रियेल्म ग्राफ ऐसेज 1927 दा रियेल्म ग्राफ मेटर 1930 दा रियेल्म ग्राफ ट्रूथ 1938 दा रियेल्म ग्राफ स्पिरिट 1940 दी वक्स ग्राफ जाज सेंटयाना 1936-40

	ए जेनेरल कन्फेशन, एपोलोजिया प्रो मटा सुग्रा (दी फिलोसफी ग्राफ जॉर्ज सेंटयाना, सम्पादक, पी० शिल्प) 1940
सेलस, राय वुड (1880-)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916
	दा फिलोसफी ग्राफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी० पी० ग्रार० म 1954)
सॉरल, जार्जिस (1847-1922)	रिफ्लेक्शन्स सुर ला वायोलेंस, लखा के रूप म प्रका० 1905, 1908 (1914) में पुस्तकाकार मे प्रकाशित व अनूदित
	डी एल ट्रूसीजी टी ड्यू प्रेग्मटिज्म 1921
स्टलिंग, जेम्स हचिन्सन (1820-1909)	दी सीक्रट ग्राफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1806-1944)	एनालीटिक सायकोलोजी 1896
	ए मेनुअल ग्राफ सायकालोजी 1899
	स्टडीज इन फिलोसफी एण्ड सायकोलोजी 1930
	माइण्ड एण्ड मैटर 1931
	गाड एण्ड नेचर, 1952
स्टीवन, सर लेसली (1832-1904)	इंग्लिश थॉट इन दी एटीथ सेनचुरी, 1876 (1908)
	साइस ग्राफ एथिक्स 1882
	एन एगनोस्टिक्स एपोलोजी 1893
	दी इंग्लिश यूटीलिटेरियन्स 1900
स्टीवन्सन, चार्ल्स लसली	पस्युएसिक डेफोनीशन्स (माइण्ड) 1938
	एथिक्स एण्ड लेंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिजी सूजन, (1885-1943)	प्रेग्मटिज्म एण्ड फ्रेंच वालन्टरिज्म 1915
	ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लोजिक, 1930
	फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्ट्स 1941
	माइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941
	फिलोसोफीकल स्टडीज ऐसेज इन मेमोरी ग्राफ एल० एस० स्टेबिंग म प्रका० 1948
स्टेस, वाल्टर टेरेन्स (1886-)	दी थ्योरी ग्राफ नालज एण्ड एक्जिस्टेंस 1932
	दी नेचर ग्राफ द वर्ल्ड 1940
स्ट्रांग चार्ल्स ग्रॉगस्टस (1852-1940)	व्हाई दी माइण्ड हेज ए बाडी ? 1903
	दी ग्रारीजिन ग्राफ कान्शसनेस 1918
	ए थीड ग्राफ स्केपटिक्स (1936)

हीडगर, मार्टिन (1889–)	सेन उन्द जाइट 1927 वाज इस्ट मेटाफिजिक ? 1929 (एक्जिटेंस एडण बाग मे प्रका०, सम्पादक, डब्ल्यू ब्राक, 1949) इनपयूहरग इन डाई मेटाफिजिक, 1953
हीसेनबग वनर (1901–)	या डलजन इन डेन ग्र डलजन डर नेचर विशेन शाण्ट 1935 फिलोसोफिक प्रोब्लम्स ग्राफ न्यूक्लियर साइंस (1952)
हुक सिडनी (1902–)	दी मेटाफिजिक्स ग्राफ प्रोग्मेटिज्ज 1927 टुवडस दी ग्रडरस्टेंडिंग ग्राफ काल मावस 1933 फ्राम हीगल टु मावस 1936
हेम्पेल, काल गुस्ताव (1905–)	दी फक्शन ग्राफ जनरल लाज इन हिस्ट्री (जे० पी० 1942) इस्टीज इन दी लाजिक ग्राफ कन्फरमेशन (माइण्ड 1945) फडामटल्स ग्राफ कासप्ट फारमशन इन एम्पीरिकल साइस (यू० एस० वाल्यूम सकिड, न० सेवन) 1952
हेयर, रिचड मरविन (1919–)	इम्पेरेटिव सेंटेंसेज (माइण्ड) 1949 दी लग्वग ग्राफ मारल्स, 1952
हेल्महोल्ज हरमन वान (1821-1894)	उबर डेन ग्रसप्रग उ द डाई विडियूटग डर जिम्रोमट्रिसकेन एक्जियम 1870 इ डक्शन उन्द डिड्यूक्शन 1873 स्क्रिप्टन जर ग्रकेंटनिस थ्योरी 1921
हैकल, ग्रन्स्ट हायनरिख (1834–1919)	डाई वल्टरायसेल 1899)1900)
हैमिल्टन सर विलियम (1788-1959)	डिस्कशस ग्रान फिलोसफी एण्ड लिटरेचर ', एजुकेशन एण्ड यूनीवर्सिटी रिफाम, 1852 दी वक्स ग्राफ टामस रीड का सपादन किया 1956–63 लेक्चस ग्रान मटाफिजिक्स एण्ड लोजिक 1859–60
हैम्पशायर, स्टुग्रट एन० (1914–)	स्केपटिसिज्म एण्ड मीनिंग (फिलोसफी) 1950 स्पिनोजा 1951

	दी एनाटामी ऑफ फ्रीडम (माइण्ड 1952
	आइडेंटिफिकेशन एण्ड एनफ्रिस्टेंस (सी० बी० पी० III) 1946
	दी इंटरप्रेटेशन आफ माइण्ड (बी० पी० एम०) 1957
हैलेट, हैराल्ड फास्टर (1886-)	एटरनिटास ए स्पिनोज़िस्टिक स्टडी 1930
हैरिस विलियम टोरी (1835–1923)	होगेल्स फर्स्ट प्रिंसिपल 1869
	फिलासफी इन आउटलाइन 1883
हैरिसन फ्रेडरिक (1831–1923)	फिलासफी आफ कामन सेंस 1907
	पाजिटिव एवाल्यूशन आफ रिलीजन 1912
हॉकिंग, विलियम अर्नेस्ट (1873–)	दी मीनिंग आफ गाड इन ह्यूमन एक्सपीरियंस, 1912
	ह्यूमन नेचर एण्ड इट्स रिमेकिंग 1918
	टाइप्स आफ फिलासफी 1929
हॉब्सन शैडवर्थ हालवे	टाइम एण्ड स्पेस 18 5
	दी फिलासफी आफ रिफ्लेक्शन 1878
	दी मेटाफिजिक आफ एक्सपीरियंस 189x
होर्नली रीनहोल्ड फ्रायड रिक अल्फ्रेड (18880–1943)	स्टडीज़ इन कन्टेम्पररी मेटाफिजिक्स 1920
	मैटर, लाइफ माइण्ड एण्ड गॉड 1922
	स्टडीज़ इन फिलासफी, 1952
होल्ट, एडविन बिसेल (1873–1949)	दी प्लेस आफ इल्यूज़री एक्सपीरियेंस इन ए रियलिस्टिक वर्ल्ड (दी न्यू रियलिज्म) 1912
	दी कॉन्सेप्ट आफ कॉन्शसनेस 1914
हृवीसन, जार्ज होम्स (1834–1914)	दी कॉन्सेप्शन आफ गॉड 1897
	दी लिमिट्स आफ एवाल्यूशन 1901

पारिभाषिक शब्दावली

(हिन्दी–अंग्रेजी)

अकिंचित्	Nothing
अंकशास्त्र	Arithmetic
अजैव	Inorganic
अधिगणित	Metamathematics
अधिभाषा	Metalanguage
अधितर्कशास्त्र	Metalogic
अनीश्वरवाद	Agnosticism
अनुभव	Experience
अनुभववाद	Empiricism
अनुभवसाहचर्य	Association
अनुभूति	Feeling Experience
अनेकिक	Polyadic
अंतरिम	Ultimate
अंतर्निवेश	Introjection
अंतःसाक्ष्य	Intuition
अंतिम	Ultimate
अभिमंडन	Vindication
अर्थक्रियावाद	Pragmatism
अर्थविज्ञान	Semantics
अर्थशास्त्र	Economicys
अल्पाश्रयी अनुमान	Trivial Inference
अवकाश	Space
अवन्यूनित	Reduced
अवशेष	Residue
असत्ताशील	Not being
अस्तित्ववाद	Existentialism
अस्वगुण निर्देशक	Non connotative
अहम	Ego
आकस्मिकता	Contingency
आकारी	Formal

आख्यानिक	Mythical
आगमन	Induction
आणविक	Molecular, Atomic
आणविक भौतिकी	Atomic Physics
आत्मपरक	Subjective
आत्मवाद	Idealism
आदिम	Primitive
आदिमकालिक	Primitive
आधारभूत प्रकथन	Basic proposition
आध्यात्मिक	Spiritual
आनुभविक	Empirical
आपकर्ता	Automaton
आयाम	Dimension
इयत्ता	Entity
उद्देश्य	Object
उद्देश्यवाद	Teleology
उन्मूलन	Annihilation
उपकरणवादी	Instrumentalist
एकिक	Monadic
ऐन्द्रिय	Sense
ऐन्द्रिय प्रदत्त	Sense-data
कर्ता	Subject
कल्पनात्मक	Speculative
कुछ नहीं	Nothing
केवलात्मवाद	Solipsism
गतिविज्ञान	Dynamics
गुण	Quality
गुणन	Multiplication
चलांक	Variable
चाक्षुष	Visual
चेतना	Consciousness

पारिभाषिक शब्दावली

(हिंदी–अंग्रेजी)

अकिंचित्	Nothing
अंकशास्त्र	Arithmetic
अजैव	Inorganic
अधिगणित	Metamathematics
अधिभाषा	Metalanguage
अधितर्कशास्त्र	Metalogic
अनीश्वरवाद	Agnosticism
अनुभव	Experience
अनुभववाद	Empiricism
अनुभवसाहचर्य	Association
अनुभूति	Feeling Experience
अनेकिक	Polyadic
अन्तरिम	Ultimate
अन्तर्निवेश	Introjection
अन्त साक्ष्य	Intuition
अंतिम	Ultimate
अभिमंडन	Vindication
अर्थक्रियावाद	Pragmatism
अर्थविज्ञान	Semantics
अर्थशास्त्र	Economicys
अल्पाश्रयी अनुमान	Trivial Inference
अवकाश	Space
अवन्यूनित	Reduced
अवशेष	Residue
असत्ताशील	Not being
अस्तित्ववाद	Existentialism
अस्वगुण निर्देशक	Non connotative
अहम	Ego
आकस्मिकता	Contingency
आकारी	Formal

आख्यानिक	Mythical
आगमन	Induction
आणविक	Molecular, Atomic
आणविक भौतिकी	Atomic Physics
आत्मपरक	Subjective
आदर्शवाद	Idealism
आदिम	Primitive
आदिस्वीकृतिक	Primitive
आधारभूत प्रकथन	Basic proposition
आध्यात्मिक	Spiritual
आनुभविक	Empirical
आत्मकर्ता	Automaton
आयाम	Dimension
इयत्ता	Entity
उद्देश्य	Object
उद्देश्यवाद	Teleology
उन्मूलन	Annihilation
उपकरणवादी	Instrumentalist
एकदिक	Monadic
इन्द्रिय	Sense
इन्द्रिय संवेदन	Sense data
कर्ता	Subject
कल्पनात्मक	Speculative
कुछ नहीं	Nothing
केवलात्मवाद	Solipsism
गतिविज्ञान	Dynamics
गुण	Quality
गुणन	Multiplication
चलांक	Variable
चाक्षुष	Visual
चेतना	Consciousness

जीवशास्त्र	Biology
जैव	Organic
जैविकी	Biology
तत्व	Element
तत्वदर्शन	Metaphysics
तत्वमीमांसा	Metaphysics
तत्ववादी	Metaphysician
तत्वशास्त्र	Ontology
तर्क कथन	Proposition
तर्कवाक्य	Syllogism
तर्कशास्त्र	Logic
तर्क सम्मत	Logical
तात्विकी	Ontology
तादात्म्य	Identification
तार्किक अनुगणन	Ratiocination
त्रैत	Trichotomy
दत्त सामग्री	Data
दिक	Space
द्वयिक	Diadic
द्वैत	Dichotomy (Duality)
धर्मदर्शन	Theology
धारणा	Concept
नकार	Negation
नकारात्मक	Negative
नकारात्मकता	Negativity
नव	Neo
नाममात्रवाद	Nominalism
नास्तिक	Agnostic Atheist
नास्तिकवाद	Atheism
निरूपण	Verification
निरूपणीय	Verifiable
निर्बन्ध	Unconditioned

निर्णय	Judgement
निष्क्रिय अनुक्रमण	Passive Sequecity
न्यूनीकरण	Reduction
पंचायामी	Five-dimensional
पदार्थवादी	Materialist
परमात्म	Absolute
परिमाण	Quantity
परिमाणन	Quantification
परिवर्तन	Flux
परीक्ष्यता	Testability
पर्यवेक्षण	Observation
पारमाणविक	Atomic
पारवर्ती	Transcendental
पुनर्मुद्रित	Reprinted
पुष्टीकरण	Confirmation
पुष्टीकरणीयता	Confirmability
पुराणवाद	Syncecism
पुरोवर्तिता	Priority
प्रकृतिविज्ञान	Natural Sciences
प्रतिरूपवाद	Representationalism
प्रतीक	Symbol
प्रत्यय	Idea
प्रत्ययानुरूपता	Correspondence
प्रत्ययवाद	Idealism
प्रत्ययात्मक	Ideal
प्रयोजन	Object
प्रयोगवाद	Experimentalism
प्राक्कल्प	Hypothesis
प्राणी	Being
फलनीभूत	Functionalised
बुद्धिवादी	Rational, Rationalist
ब्रह्माण्डविज्ञान	Cosmology

जीवशास्त्र	Biology
जैव	Organic
जैविकी	Biology
तत्व	Element
तत्वदर्शन	Metaphysics
तत्वमीमांसा	Metaphysics
तत्ववादी	Metaphysician
तत्वशास्त्र	Ontology
तर्क कथन	Proposition
तर्कवाक्य	Syllogism
तर्कशास्त्र	Logic
तर्क सम्मत	Logical
तात्विकी	Ontology
तादात्म्य	Identification
तार्किक अनुगणन	Ratiocination
त्रैत	Trichotomy
दत्त सामग्री	Data
दिक	Space
द्वयिक	Diadic
द्वैत	Dichotomy (Duality)
धर्मदर्शन	Theology
धारणा	Concept
नकार	Negation
नकारात्मक	Negative
नकारात्मकता	Negativity
नव	Neo
नाममात्रवाद	Nominalism
नास्तिक	Agnostic Atheist
नास्तिकवाद	Atheism
निकषण	Verification
निकषणीय	Verifiable
निर्बन्ध	Unconditioned

पारिभाषिक शब्दावली

निर्णय	Judgement
निष्क्रिय अनुक्रमण	Passive Sequacity
न्यूनीकरण	Reduction
पंचायामी	Five-dimensional
पदार्थवादी	Materialist
परमार्थ	Absolute
परिमाण	Quantity
परिमाणन	Quantification
परिवर्तन	Flux
परीक्षणीयता	Testability
पर्यवेक्षण	Observation
पारमाणविक	Atomic
पारवर्ती	Transcendental
पुनर्मुद्रित	Reprinted
पुष्टीकरण	Confirmation
पुष्टीकरणीयता	Confirmability
पूर्णान्वाद	Syncretism
पूर्ववर्तिता	Priority
प्रकृतिविज्ञान	Natural Sciences
प्रतिरूपवाद	Representationalism
प्रतीक	Symbol
प्रत्यय	Idea
प्रत्यभिमुखता	Correspondence
प्रत्ययवाद	Idealism
प्रत्ययात्मक	Ideal
प्रयोजन	Object
प्रयोगवाद	Experimentalism
प्राक्कल्प	Hypothesis
प्राणी	Being
फलनीकृत	Functionalised
बुद्धिवादी	Rational, Rationalist
ब्रह्माण्डविज्ञान	Cosmology

भाग्यवाद	Tychism
भावात्मक	Emotive
भूत	Past
भूत	Stuff
भौतिकवाद	Materialism
भौतिकतावाद	Physicalism
भौतिकी	Physics
मध्य	Middle
मध्य, विलगित	Middle Excluded
मन सघटन	Psychic Phenomena
मनस्तकविनान	Psychologism
मनस्तात्विकी	Psychology
मनोरोगविज्ञान	Psychopatholog
मनोरोगवनानिक	Psychopathologist
महाद्वीप	Continent
मुक्त	Free
मूलभूत एषणा	*Vital* urge
मृत्युलेख	Obituary
यतिवाद	Epistemology
यथाथवाद	Realism
यथोचित	*Precise*
रीतिविधान	Methodology
रूपाकार	Pattern
वदतो व्याघात	Contradiction in terms
वग	Sqare
वर्ग	Class
वर्णनात्मक	Descriptive
वस्तुगत	Objective
वस्तुपरक	Objective
वाक्यशली	Syntax
विकल्प	Alternative

पारिभाषिक शब्दावली

विकासवाद	Evolution, ism
विद्यमान	Being
विद्युत्पुंज	Aura
विधेय	Predicate
विधेयपरिमाणन	Predicate-quantification
विरोधाभास	Contradiction
विरोधास्पद	Paradox
विरोधास्पदी	Paradox,doxical
विवरणात्मक	Descriptive
विवृत	Descriptive
विषय	Subject
विषयी	Subject
विषयिगत	Subjective
विषयवस्तु	Subject matter, Content
वृत्त	Circle
वैचारिक पूर्णक	Ideal Whole
सकर्मक	Transitive, Objective
सकल्पात्मक	Conative
संकेतन	Denoting
संघटना	Phenomenon
संघटनावाद	Phe nenology
संवेदन	Sensation
संदर्भ	Reference
सत्य	Truth, true
सत्यफलन	Truth function
सत्यापन	Verification
सत्ता	Being
सत्ताशील	Being
संदेहवाद	Scepticism
संनिहित	Immediate
समन्वयात्मक	Synthetic
सह परिवर्तन	Concomitant Variation
सांकेतिक मुहावरा	Denoting Phrase

सांख्यिक	Statistician, Statistical
सांख्यिकी	Statistics
सांख्यिकीकार	Statistician
सापेक्ष	Relative
सापेक्षवाद	Relativism
सापेक्षता	Relativity
सामान्यीकरण	Generalisation
सार तत्व	Essence
सार्थकता	Meaning, Utility Usefulness
सार्वभौम	Universal
सूचक	Pointer Index
स्थापना	Assertion
स्मृति ग्रन्थ	Memoir
स्वगुणनिर्देशक	Connotative
स्वयंचल	Automobile Automative
स्वेच्छात्मक	Arbitrary
हेत्वनुमान	Syllogism
ज्ञानमीमांसा	Epistemology
ज्ञानाश्रित	Cognitive